CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2-2

श्रीभागवतम्

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलि, करौंदी
वाराणसी-5

दशम स्कन्ध से अन्त तक
भाषा टीका सहित

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतीय, काशी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

L. C. Sharma

32/30
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतमंदिर, कमच्छा
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, वाराणसी-5

श्रीवृन्दावन-विहारिणे नमः

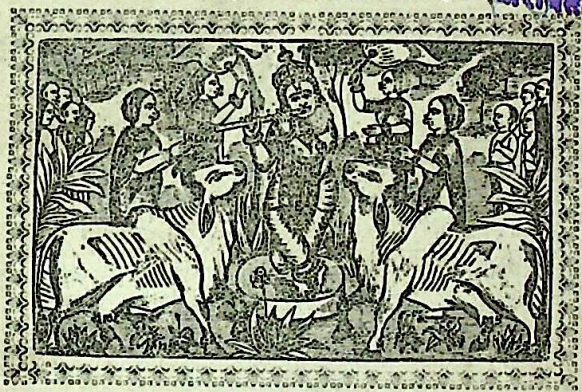

अथ दशमस्कन्धः प्रारभ्यते.

श्रीः ॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता

विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ॥
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ॥ १ ॥

जगत् के सर्ग विसर्गादि नौ लक्षणों करके लक्षित और जगत् के अधिष्ठान जो श्रीकृष्ण नामक परब्रह्मस्वरूप तिन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण भगवान् की कीर्त्ति का वर्णन करने के निमित्त नव्वै (९०) अध्याय कहे हैं, तिनमे पहिले चार अध्यायों करके ब्रह्माजी की प्रार्थना से पृथ्वी का भार दूर करने के निमित्त प्रसङ्गसहित श्रीहरि का अवतार निरूपण कराहै, तदनन्तर पैंतीस अध्यायों करके गोकुल में वास करते हुए रामकृष्णकी वृन्दावन आदि के विषैं करी हुई लीला वर्णन करी हैं फिर एक अध्याय में यमुना के जल के विषैं अक्रूरजी की करी हुई स्तुति वर्णन करी है, तदनन्तर ग्यारह अध्यायों करके मधुवन अर्थात् मथुरापुरी के विषैं रहते हुए श्रीकृष्णजी की कंसवध आदि और विद्याभ्यास आदि लीलाओं का वर्णन करा है, शेष उनतालीस अध्यायों करके द्वारकापुरी की लीला वर्णन करी हैं, इस प्रकार नव्वै (९०) अध्यायों का सारांश है, तिनमें पहिले अध्याय में तौ 'देवकी के आठवें गर्भ से तेरी मृत्यु होयगी' ऐसी आकाशवाणी सुनकर भयभीत हुए कंस ने तिस देवकी के छः पुत्रों का वध करा, यह कथा वर्णन करी है नवम स्कन्ध के अन्त में संक्षेप से वर्णन करे हुए कृष्णावतार के चरित्रों के श्रवणरूपी अमृत से तृप्त हुए राजा परीक्षित्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोमसूर्ययोः राज्ञाश्चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥२॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विनापशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वातरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं संतानबीजं कु-

ने तिनही चरित्रों को विस्तार पूर्वक श्रवण करने की इच्छा से प्रश्न करा राजा ने कहा कि—हे शुकदेवजी ! चन्द्रसूर्य्य के वंश का विस्तार, तुमने मेरे अर्थ वर्णन करा, और दोनों वंशों मे उत्पन्न हुए राजाओं का आश्चर्यकारक चरित्र भी वर्णन करा, ॥ १ ॥ तिस में चन्द्रवंश में उत्पन्न हुआ अत्यन्त धर्म्मशील जो राजा यदु तिस के वंश का विस्तार और चरित्र भी वर्णन करा, अब तिस यदुवंश के विषैं अंश करके अवतार धारण करनेवाले श्रीविष्णुभगवान् के चरित्र मेरे अर्थ वर्णन करिये ? ॥ २ ॥ और यदि कहो, कि—वह तो नवम स्कन्ध में वर्णन करही चुके,सो ठीक है, परन्तु जगदात्मा और प्राणियोंके रक्षक विष्णुभगवान् ने,राजा यदुके वंशमें अवतार धारण करके जो चरित्र करे हैं वह हमारे अर्थ विस्तारपूर्वक वर्णन करो ? ॥ ३ ॥ इस लोक में मुक्त मुमुक्षु और विषयी यह तीन प्रकार के प्राणी हैं, तिन में भगवच्चरित्र का किसी को भी विराग नहीं है ऐसा वर्णन करते हैं, कि—जिन की विषयभोग की इच्छा निवृत्त होगई है ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषों करके भी गानकरे हुए,मुमुक्षुपुरुषों को तो संसाररोग की औषधिरूप और विषयी पुरुषों के कर्णों को मधुर प्रतीत होनेवाले, श्रेष्ठकीर्त्ति भगवान् के गुणानुवाद से आत्मघाती को छोड़ दूसरा कौनसा पुरुष विरक्त होगा ? अर्थात् कोई नहीं होगा ॥ ४ ॥ अब अपने कुलदेव श्रीकृष्ण हैं इसकारण तिन की कथा ही नित्य श्रवण करना उचित है; इस आशय से कहते हैं, कि—हे ब्रह्मनिष्ठ ! मेरे पितामह (युधिष्ठिर आदि) जिस श्रीकृष्णरूप नौका का आश्रय करके, युद्ध में, देवताओं को भी जीतनेवाले भीष्म आदि अतिरथीरूप तिमिङ्गिल × नामक महामत्स्यों करके दुस्तर, कौरवों की सेनारूपी समुद्र को, बछड़े के चरण के चिन्ह की समान अतितुच्छ करके तरगए, अर्थात् उन्होंने अनायास में ही कौरवों की सेना को, जिन के अवलम्ब से जीतलिया तिन श्रीकृष्णजी के चरित्र मेरे अर्थ वर्णन करिये ? ॥५॥ श्रीकृष्ण जी ने केवल पाण्डवों की ही रक्षा करी ऐसा

× चार सौ कोस लम्बे मत्स्य (मच्छ) को 'तिमि' कहते हैं उसको भी निगलजानेवाला मत्स्य 'तिमिंगिल' होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुपांडवानां ॥ जुगोप कुक्षिंगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥ वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबंधः कुतो देहांतरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरर्द्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथामृ-

नहीं किन्तु अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भस्म होतेहुए कौरव और पाण्डवों के वंश के मूल-बीज, इस प्रत्यक्ष मेरे शरीर की भी, शरणगईहुई मेरी माता (उत्तरा) के उदर में प्रवेश कर जिन्हो ने हाथ में चक्र लेकर रक्षा करी है ॥ ६ ॥ और जो संपूर्ण प्राणियों के भीतर और बाहर पुरुषरूप और कालरूपसे स्थित होकर अन्तर्दृष्टि और बाह्यदृष्टि पुरुषोंको मोक्ष और संसार देते हैं, तिन माया करके मनुष्य अवतार धारणकरनेवाले श्रीकृष्णभगवान् के पराक्रम मेरे अर्थ वर्णन करो? इसप्रकार कहने का अभिप्राय यह है, कि-जो अन्तर्दृष्टि पुरुषों को अन्तर्यामीरूप से मुक्ति देते हैं और बहिर्दृष्टि पुरुषों को कालरूप से जन्म मरणरूप संसारचक्र में डालते हैं तिनके चरित्र अन्तर्दृष्टि से ही श्रवण करने चाहियें ॥ ७ ॥ तिसप्रकार ही तुमने सङ्कर्षण बलराम जी को, रोहिणी का पुत्र कहा और फिर उन ही को देवकी का पुत्र कहा, सो देहान्तर हुए विना एक ही जन्म में दोनों के पुत्र किसप्रकार हुए सो मेरे अर्थ वर्णन करो? ॥ ८ ॥ तथा यादवों के पति जो श्रीकृष्णभगवान्, वह कंसादि का भय न होने पर भी पिता वसुदेव जी के स्थान को त्यागकर गोकुल में किस कारण से गए? और उन्हों ने नन्दादि गोपों के साथ कहां निवास करा? ॥ ९ ॥ तथा तिन श्रीकृष्णजी ने गोकुल में, मथुरा में और द्वारकापुरी में रहकर क्या क्या चरित्र करे? और उन्हों ने देवकी का भ्राता होने के कारण वध करने के अयोग्य ऐसे अपने कंस मामा का अपने आपही किसकारण वध करा? ॥ १० तथा उन्हों ने, मनुष्यशरीर को स्वीकार करके यादवों के साथ द्वारकापुरी में कितने वर्ष निवास करा? तिन प्रभु श्रीकृष्ण जी की स्त्री कितनी थीं? ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ मुने! यह मेरे बूझेहुए और जो न बूझेहुए भी होयँ वह संपूर्ण श्रीकृष्णभगवान् के चरित्र श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेवाले मेरे अर्थ कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १२ ॥ यदि कहो, कि-क्षुधा (भूँख) और तृषा (प्यास) करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनन्दनसाधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातं ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी मतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ॥ उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सन्निधिं तत्र क्षीरोदस्य यतो विभुः ॥ १९ ॥ तत्र गत्वा ज-

व्याकुल हुए तुम्हें श्रवण करनेके विषय में स्वस्थता किसप्रकार है ? सो—जो यह क्षुधा पहिले मुझे अतिदुःसह प्रतीत होरहीथी वह क्षुधा इससमय जल का भी त्याग करनेवाले मुझको, "मैं तुम्हारे मुखकमल से प्रगटहोते हुए हरिकथारूप अमृतको पीरहा हूँ, इस कारण' पीड़ा नहीं देती है, परन्तु तिस हरिकथारूप अमृतका सेवन न होनेपर मेरे प्राण नहीं बचैंगे ॥ १३ ॥ सूतजी कहते हैं, कि—हे शौनक! राजा परीक्षित् के इसप्रकार के उत्तम प्रश्नको सुनकर, भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ, तिन भगवान् शुकदेव जी ने, राजा की प्रशंसा करके, कलियुग के पातकों का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् के चरित्रोंको वर्णन करना प्रारम्भ करा ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजर्षिश्रेष्ठ! तुम्हारी बुद्धि ने बड़ा सुन्दर निश्चय कराहै, क्योंकि-जिस बुद्धि के द्वारा तुम्हें वासुदेव भगवान् की कथा में निष्ठायुक्त प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ १५ ॥ वासुदेवभगवान् की कथा के विषय में करा हुआ प्रश्नभी, जिसप्रकार वासुदेवभगवान् का चरणोदक (गङ्गा) दर्शन स्पर्श आदि करनेवाले को पवित्र करता है, तिसीप्रकार वर्णन करनेवाले प्रश्न करनेवाले और श्रवण करनेवाले ऐसे तीन प्रकार के पुरुषों को पवित्र करताहै॥१६॥अब प्रथम भगवान् के अवतारका कारण वर्णन करतेहैं, कि-हेराजन्! मदोन्मत्त होकर राजाओंकेसे वर्त्ताव करनेवाले जो दैत्य तिनकी लक्षों सेनाओं के अत्यन्तभार करके पीड़ितहुई भूमि, खिन्न होनेके कारण गौ का स्वरूप धारण करके करुणायुक्त विलाप करतीहुई और जिसके मुखपर दुःख से आंसू वह रहे हैं ऐसी होकर ब्रह्मा जी की शरणगई और उनके समीप में खड़ी होकर स्तुति करतीहुई तिन से अपना दुःख वर्णन करनेलगी ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्मा जी, तिस भूमि के दुःख को श्रवण करके, तिसके साथ, देवताओं और महादेव जी को साथ में लेकर क्षीरसमुद्र के तीर पर गए ॥ १९ ॥ तहाँ जाकर उन्हों ने, एकाग्रचित्त होकर जगत् के नाथ, दे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गन्नाथं देवदेवं वृषाकपिं ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुपूपजन्यतां ॥ सं यावदुर्व्याभरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भवितो देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः॥ आश्वास्य चैनां गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥ शूरसेनो

वताओं के देव, भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले और तिसके दुःख को दूर करनेवाले भगवान् की पुरुषसूक्त से स्तुति करी ॥ २० ॥ तब तिन ब्रह्माजी ने समाधि के समय आकाश में उच्चारण करी हुई देववाणी को सुनकर समाधि को त्यागा और देवताओं से कहने लगे, कि– हे देवताओं ! समाधि के विषैं मेरी श्रवण करी हुई भगवान् की आज्ञारूप वाणी को, तुम मुझ से शीघ्रही सुनो और बड़ी शीघ्रता से उस के अनुसार वर्त्ताव करो देरी न करो॥२१॥ईश्वर ने हमारे प्रार्थना करने से पहिलेही भूमि के सन्ताप को जानलिया है, इस कारण तुम भी अपने अपने अंशों करके यादवों के विषैं, तिनके अवतार धारण करने से पहिले ही अवतार धारण करलो, और वह देवाधिदेव भगवान् अपनी कालशक्ति के प्रभाव से पृथ्वी का भार दूर करतेहुए जिस समय पर्य्यन्त पृथ्वी पर विचरैं तबतक उन की सहायता करने को तुम भी पृथ्वी पर रहो ॥ २२ ॥ वसुदेवजी के यहां साक्षात् भगवान् परमपुरुष, अवतार धारण करैंगे उन का प्रिय करने के निमित्त तुम्हारी स्त्रियें भी अवतार धारण करैं ॥ २३ ॥ सहस्र मुखवाले और अपने तेज से प्रकाशवान् जो वासुदेवभगवान् के अंश दिव्यरूप शेषजी, वहभी श्रीहरि का प्रिय करने की इच्छा से तिन से पहिले 'तिन के बडे भ्रातारूप से' अवतार धारण करैंगे ॥ २४ ॥ अधिक क्या कहूँ जिसने सम्पूर्ण ही जगत् को मोहित कर रक्खा है वह ऐश्वर्य्यादि गुणयुक्त विष्णुभगवान् की माया भी, भगवान् के आज्ञा करनेपर, देवकी के गर्भ का आकर्षण करना और यशोदा को मोहित करना, इत्यादि कार्य्य करने के निमित्त यशोदा के गर्भ में अवतार धारण करेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकार मरीचि आदि प्रजापतियों के अधिपति प्रभु ब्रह्माजी, देवताओं को आज्ञा करके और पृथ्वीको, 'तेरा अहोभाग्य है, तू भगवान् के चरणकमलों से शीघ्रही भूषित होयगी' इस प्रकार के वचनों से धैर्यधरा कर, सर्वश्रेष्ठ अपने स्थान सत्यलोक को चलेगए ॥ २६ ॥ अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीं ॥ माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजां ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥२८॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्द्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनां ॥ अश्वानामयुतं सार्द्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥ दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्यान्ने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदंगाश्च नेदुर्दुदुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हंता यां वहसेऽबुधः ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो

कंस के बन्दीगृह (जेलखाना) में अवतार हुआ यह वर्णन करने के निमित्त भूमिका बांधते हैं, कि—पहिले यादवों का अधिपति शूरसेन नामक राजा था, उस ने मथुरा नामक नगरी में निवास करके माथुर और शूरसेन नामक देशों का राज्य करा ॥२७॥ उस समय से यादवों में सब राजाओं की राजधानी (रहने का मुख्य स्थान) वह मथुरापुरी हुई, जिस मथुरा के विषैं भगवान् श्रीहरि नित्य निवास करते हैं ॥ २८ ॥ तिस मथुरापुरी के विषैं, एक समय शूरपुत्र वसुदेवजी विवाह करके नवीन प्राणिग्रहण करी हुई देवकी स्त्री सहित अपने स्थान को जाने के निमित्त रथपर सवारहुए ॥२९॥ उस समय उग्रसेन का पुत्र जो कंस तिसने, अपनी बहिन का सन्मानपूर्वक प्रिय करने की इच्छा से, सुवर्ण से मँढ़ेहुए सैंकड़ों रथों को अपने साथ में लेकर और स्वयं वसुदेवजी के रथ पै बैठकर घोड़े की बागडोर लेलीं अर्थात् वसुदेव देवकी को रथ के भीतर बैठाकर अपने आप सारथि बना ॥३७॥ तब चलते समय कन्यापर प्रेम करने वाले देवक (देवकी के पिता) ने अपनी कन्या देवकी को, ' सुवर्ण की मालाओं से भूषित चार सौ हाथी, पन्द्रह सहस्र घोड़े, अठारह सौ रथ और नवीन यौवन को प्राप्त हुई आभूषण धारण करेहुए दो सौ दासी' इतना दहेज दिया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब चलने के समय वरवधू को मङ्गलकारक शंख—नरसिङ्गे—मृदङ्ग और नगाड़े आदि बाजे एकसाथ बजने लगे ॥३३॥ मार्ग में घोड़ों की बागडोर पकड़नेवाले कंस से अरे अरे ! कंस ! ऐसा सम्बोधन करके अदृश्यरूप वाणी (आकाशवाणी) कहने लगी, कि-अरे मूर्ख कंस ! तू जिस अपनी बहिन को सन्मानपूर्वक पति के यहां पहुँचाता है तिस देवकी का आठवां गर्भ तेरा वध करेगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार आकाशवाणी के कहनेपर, भोज के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हंतुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसांत्वयन् ॥३६॥ वसुदेव उवाच॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहे पंचत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥३९॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥ स्वप्ने यथा पश्यति देहमेदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां

कुल में कलङ्करूप वह पापी दुष्ट कंस, बहिन के मारने को उद्यत हुआ और उस ने एक हाथ में खड्ग लेकर दूसरे हाथ से तिस देवकी की चोटी पकड़ली ॥ ३५ ॥ तब निर्लज्ज घातकी (कठोर) और निन्दित कर्म्म करनेवाले तिस कंस को, स्तुति, युक्ति समझाना और भेद के द्वारा समझातेहुए महाभाग्यवान् (परमधर्मिष्ट) वसुदेवजी कहनेलगे, ॥ ३६ ॥ वसुदेवजी बोले, कि—हे कंस ! जरासन्ध आदि शूरों ने जिस तेरे, शूरता आदि गुणों का वर्णन करा है वह, भोजकुल में उत्पन्न हुए पुरुषों के यश को बढानेवाला तू, विवाहोत्सव में, स्त्री जाति को, तिसपर भी बहिन को कैसे वध करता है ? ॥ ३७ ॥ यदि ऐसा कहै, कि—मरण के भय से मारताहूं, सो—हे वीर ! जन्म धारण करनेवाले प्राणियों के शरीर के साथही मृत्यु उत्पन्न हुई है, यह ब्रह्माजीने ललाट में लिखही दियाहै तथापि अधिक काल जीवित रहने के निमित्त मारता हूँ, यदि ऐसा कहो, सो—आज अथवा सौ वर्ष के अनन्तर प्राणियों का मरण अवश्य ही होगा फिर अधिक काल जीवित रहने के निमित्त पापकर्म्म करना उचित नहीं है ॥ ३८ ॥ और इस देह के जानेपर यदि दूसरा देह प्राप्त होय ही नहीं तो पापकर्म्म करकै भी तिस की रक्षा करना उचित होय, परन्तु तैसा है नहीं, इस देह के मरण को प्राप्त होने का समय आते ही तिस देह के विषैं विद्यमान कर्म्मानुसारी परतन्त्र जीव, कर्म्मके वशीभूत होकर यत्न के विनाही प्राप्त हुए दूसरे शरीर के मिलनेपर, पहिले शरीर को त्यागता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलनेवाला पुरुष, आगे रक्खे हुए एक चरण से भूमि को पकड़कर और तिसचरणपर शरीर का भार डालकर खड़ा रहताहै, तदनन्तर पिछला चरण आगे को धरकै चलता है अथवा जिस प्रकार तृणोंपर का कीड़ा अपने देह के आगे के भाग से प्रथम दूसरे तृण को पकड़ लेता है तदनन्तर पिछले भाग से पकड़ेहुए तृण को छोड़ देता है तिसी प्रकार कर्म्ममार्ग के विषैं प्राप्त हुआ जीवभी पहिले दूसरे शरीर को प्राप्त होकर तदनन्तर पहिले शरीर को त्यागता है ॥४०॥ स्वीकार करना अथवा परित्याग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनसानुचिंतयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्युपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पंचसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देहसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो वि-

करना, यह धर्म देह का ही है, यह वार्त्ता दर्शाने के निमित्त दूसरा दृष्टान्त कहते हैं, कि—जाग्रत् अवस्था में देखे हुए (राजादि शरीर) और श्रवण करे हुए (इन्द्रादि शरीर) पदार्थों को प्राप्त करने के निमित्त तिन पदार्थों का मन से चिन्तवन करनेवाला पुरुष, जिस प्रकार स्वप्न में तिन राजादि शरीरों की समानही किन्ही शरीरों को देखता है और तत्कालही 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है और तदनन्तर तिस को जाग्रत् अवस्था के शरीर का विस्मरण होजाता है, अथवा दूसरा दृष्टान्त है, कि—जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में ही देखे और श्रवण करेहुए विषयों का मन से चिन्तवन करनेवाला पुरुष, मनोरथ के द्वारा, बुद्धि के तदाकार होजाने से, तिन देखे और श्रवण करेहुए ही किसी देह को प्राप्त होता है और वह ही मैं हूँ ऐसा मानता है तदनन्तर मूल (असली) देह की स्मृति रहित होजाता है तिसी प्रकार जीव इसजन्म में ही कर्म्म के वशीभूत होने के कारण दूसरे देह को प्राप्त होकरही पहिले देहका त्याग करताहै ॥४१॥ यदि कहो, कि—अनेक प्रकार के देह उत्पन्न होने के कारणरूप कर्म्मों के करनेपर, अमुकही शरीर मिलैगा, यह कैसे प्रतीत होसक्ता है ? तहाँ कहते हैं, कि—देहके मरणकालमें फल देने वाले कर्मों का प्रेरणा कराहुआ, इस जीव का सङ्कल्पविकल्पात्मक मन, माया करके देवमनुष्यादि नानाप्रकार के देहरूप से रचेहुए गुणों के कार्य्यरूप पञ्चमहाभूतात्मक देहों में से जिस २ देहकी ओर को दौड़ता है अर्थात् जिस २ देह का चिन्तवन करता है और जिस २ देहको अभिमान करकै प्राप्त करता है, तिस २ देह के विषैं, यह जीवात्मा, 'वह मैं हीं हूँ' ऐसा मानकर उस के साथ उत्पन्न होताहै ॥ ४२ ॥ और यदि कहो, कि—कोई न कोई शरीर प्राप्त होयगा यह ठीक है, परन्तु इस अतिप्रियराजशरीर की रक्षा करने के निमित्त, निन्दित कर्म को भी करता हूँ ? सो हे कंस ! जिसप्रकार सूर्य चन्द्रमादि ज्योति, जल से भरे हुए घटादिकों के विषैं प्रतिबिम्बितहोनेपर, वायुसे कम्पायमान होते हुए से प्रतीत होते हैं, तिसी प्रकार अपनी अविद्या से रचेहुए देहादि के विषैं, यह जीवात्मा प्रेम से प्रवेश करने पर तिस के अभिमान को धारण करता है, इसप्रकार कहने का अभिप्राय यह है, कि—देहके अध्यास से देह के कृशत्व (दुबलापन) आदि धर्म जिस प्रकार आत्माके विषैं प्रतीत होने लगते हैं तिसी प्रकार प्रेमास्पदत्व आदि आत्मा के धर्म भी देह के विषैं प्रतीतहोते हैं, इसकारण राजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुह्यति ॥ ४३ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयं ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा॥ हंतुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः॥४५॥श्रीशुक उवाच ॥ एवं ससामभिर्भेदैर्बोध्यमानोपि दारुणः॥ न न्यवर्त्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः॥४६॥निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुंदुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्त्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रादाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमां ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥ वि-

के अथवा श्वान शूकरादि के शरीर में किसी प्रकार की विशेषता न होने के कारण मृत्यु का उपाय करना व्यर्थ है ॥४३॥ अब भेद नामक उपाय का वर्णन करते हैं, कि–दूसरे से द्रोह करनेवाले पुरुष को इसलोक में जिससे द्रोहकरै उससे और उस के संबन्धियों से तथा परलोक में यमराज से भय प्राप्त होता है, इसकारण अपने कल्याण की इच्छा करनेवाला पुरुष, किसी से द्रोह न करे ॥ ४४ ॥ फिर साम उपायही कहते हैं, कि–हे कंस ! यह देवकी तो काठकी पुतलीकी समान, अपनी रक्षाकरनेमें असमर्थ, दीन और लाड़ करने योग्य, तेरी छोटी बहिन है, और तू दीनोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाला है, इसकारण इस निरपराधिनी का वध करना तुझे उचित नहीं है॥४५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि–हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार साममार्गों करकै और भेदों करकै देवकी के वधसे निवृत्त होनेके निमित्त समझाया हुआ भी वह कंस, अपने क्रूरस्वभाव से और तिसपरभी हिंसा करनेवाले राक्षसों का अनुगामी होने के कारण निवृत्त नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ तब तो कंस का आग्रह जानकर, देवकी के प्राप्त हुए मृत्यु को हटाने के निमित्त, विचार करके वसुदेवजीने यह उपाय मन में सोचा, कि– ॥ ४७ ॥ जहां तक अपनी बुद्धि और बल का प्रभाव चले तहां तक बुद्धिमान् पुरुष अपनी तथा दूसरे को प्राप्त हुई मृत्यु को हटावै और प्रयत्न करनेपर भी यदि मृत्यु दूर नहीं होय तो फिर प्राणी का अपराध नहीं है, अन्यथा है ॥ ४८ ॥ इस कारण इस मृत्युरूप कंस को, आगे को उत्पन्न होनेवाले पुत्रों के देने का वचन देकर आज इस दीन देवकी को छुड़ाता हूँ, यदि कहो कि–ऐसा वचन देना भी उचित नहीं है, तहां कहते हैं, कि–इस देवकी के विषैं यदि आगे को मेरे पुत्र होयँगे तौ उस समय जो होयगा सो होय, परन्तु आज तो यह वचजाय, कदाचित् तबतक यह ही मृत्यु को प्राप्त हो गया तौ फिर कुछभीअनुचित नहींहै,और यदि मेरे पुत्र उत्पन्न होयँगे तथा तबतक इस कंसका मरण नहीं होयगा तो मेरे पुत्र से ही इसका मरण होजाय,ऐसा विपरीतपना क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्ययो वा किं न स्या-द्गतिर्धातु-र्दुरत्ययाः ॥ उपस्थितो निवर्त्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥ प्रसार्य वदनांभोजं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ न ह्यस्या-स्ते भयं सौम्य यद्धि सा-हाशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निवृत्तेते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोऽपि तं प्रीतः

नहीं होसक्ता है ? यदि कहो कि—ऐसे महाबली कंस की तेरे बालक से किस प्रकार मृत्यु होयगी ? तहां कहते हैं, कि—'इस का आठवां गर्भ तेरा वध करेगा' ऐसा कहनेवाले ईश्वर की शक्ति अचिन्त्य है इस कारण इस समय पुत्र देने का वचन देनाही श्रेष्ठ है,और ऐसा होनेपर आज प्राप्त हुआ देवकी का मरण हट जायगा तथा आज हट कर फिर किसी समय आजायगा तो मेरा दोष नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब प्राणियों के प्रारब्ध की दुर्वितर्कता का दृष्टान्त के द्वारा वर्णन करते हैं, कि—जिस प्रकार वन में वृक्षों को और नगर में स्थानों को जलानेवाला अग्नि, समीप के भी वृक्षों अथवा स्थानों को बीच में छोड़कर दूर के वृक्षों को तथा स्थानों को जलाने लगता है,उस अग्नि को काष्ठों का संयोग अथवा वियोग होने के विषय में, प्राणियों के पुण्य पापरूप अदृष्ट (प्रारब्ध) के सिवाय दूसरा कुछ भी निमित्त नहीं है; तिसही प्रकार जीव के भी शरीर के जन्म और मरण का हेतु तर्कना करने में नहीं आता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार वसुदेवजी ने अपनी बुद्धि की शक्ति के अनुसार विचार करके, पाप करने को उद्यत हुए तिस कंस का अति आदर पूर्वक 'स्तोत्र नमस्कार आदि के द्वारा सत्कार करा ॥ ५२ ॥ और भय के कारण कम्पायमान होरहा है मन जिन का ऐसे भी वह वसुदेवजी, तिस को विश्वास कराने के निमित्त प्रसन्नमुखकमल होकर हँसते हँसते तिस क्रूर और निर्लज्ज कंस से कहने लगे ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले, कि हे सौम्य ! तिस आकाश वाणी ने, जैसा तुम से कहा है, वैसा ही मैंने भी निश्चय करा है, कि—इस देवकी से तुम्हैं भय नही होयगा, क्योंकि—जिस पुत्र से तुम्हैं भय उत्पन्न हुआ है, अर्थात् 'आठवां पुत्र वध करेगा' ऐसा आकाश वाणी ने कहा है, सो परस्पर की अपेक्षा से कदाचित् सब ही पुत्र अष्टम हों, इस कारण इस देवकी के सब ही पुत्र मैं तुम्हैं समर्पण करदूँगा,फिर तुम उनको मारो या न मारो, इस का मुझे कुछ आग्रह नहीं है ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि—हे राजन् ! तिन वसुदेवजी के वाक्य में की युक्ति और सत्यता को जाननेवाले उस कंस ने, उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥ अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्त्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनां ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिं ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ प्रतियातु कुमारोयं नह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः ॥ नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः

समय बहिन के वध करने का निश्चय त्याग दिया, तदनन्तर मनोरथ सिद्ध होने से प्रसन्नहुए वसुदेवजीने भी तिस कंस की 'तू बड़ा ज्ञानी और तत्त्वको जाननेवालाहै' इसप्रकार प्रशंसा करकै देवकी सहित अपने स्थान में प्रवेश करा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर सन्तानके उत्पन्न होने का समय आनेपर, केवल भगवान् का ही आराधन करनेवाली उस देवकी ने 'प्रत्येक वर्ष में एक २ इसप्रकार आठ पुत्र और एक कन्या को उत्पन्न करा॥५६॥ असत्य से अत्यन्त भयमाननेवाले, सत्यप्रतिज्ञ तिन वसुदेवजीने तिन आठों पुत्रों में से प्रथम उत्पन्न हुआ कीर्त्तिमान् नामक पुत्र, बडे दुःख से कंसको समर्पणकरा ॥ ५७ ॥ यदि कहो कि—मृत्यु के निमित्त पुत्र कैसे देदिया ? तहाँ कहते हैं, कि—सत्यप्रतिज्ञ साधु पुरुष कौन से दुःख को नहीं सहसक्ते ? अर्थात् सब दुःखों को सहलेते हैं, यदि कहो कि—पुत्र के लालनकी इच्छा क्यों त्यागदी ? तहाँ कहते हैं, कि—संसार में भगवान् ही सारहैं और सब असार है ऐसा जाननेवाले विवेकी पुरुषों को किसी वस्तुकी इच्छा नहीं रहती है, यदि ऐसा कहो कि—अपने आपही लाएहुए बालक का कंस वध नहीं करैगा ऐसा समझकर लेगए होंगे, ? सो नहीं, क्योंकि—आत्मा-धर्मकार्य-पुत्र—स्त्री और सेवक आदिकों को पीड़ा देनेवाले कठोर पुरुषों को करने के अयोग्य कौनसा कार्य है ? अर्थात् कोई भी नहीं है, यदि कहोकि-देवकीने माता होकर अपना पुत्र किस प्रकार देदिया ? तहाँ कहतेहैं, कि—जो अपने चित्त में श्रीहरि को धारण करेहुए हैं उनको कौन वस्तु त्यागना कठिन है ? अर्थात् कुछ त्यागना कठिन नहीं है ॥ ५८ ॥ सो हे राजन् ! पुत्र को ले आने से वसुदेव जी की सुख दुःखमें समता और सत्यवचन में निष्ठा देखकर चित्तमें प्रसन्न हुआ कंस यह वचन बोला कि-॥ ५९ ॥ हे वसुदेव ! इस कुमार को लौटाकर लेजाओ, क्योंकि-इस से मुझे भय नहीं है,किन्तु तुम्हारे आठवें गर्भ से मेरी मृत्यु है, ऐसा आकाशवाणी ने कहा है ॥ ६० ॥ तब वसुदेवजी, 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर पुत्र को ले अपने घर को चले आए, परन्तु तिस अव्यवस्थितचित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ६१ ॥ नंदाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बंधुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥ देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स ऽयरुध्यत ॥ ६८ ॥ उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू०

दुष्ट कंस के वचन को सत्य नहीं माना ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार कंस का शांति करना देवताओं के कार्य में अनुकूल नहीं होयगा ऐसा जानकर भगवान् नारदजी कंसके पास आए, और उस से एकान्त में कहनेलगे, कि–हे कंस ! गोकुल में जो नन्द आदिगोप हैं और यशोदा आदि जो उनकी स्त्रियें हैं, तथा वसुदेव आदि जो यादव हैं और उनकी भी देवकी आदिजो स्त्रियें हैं, तथा नन्द और वसुदेवजीके जो गोत्र के पुरुष बान्धव और मित्र हैं तथा तुम्हारे आश्रित रहनेवाले जो अक्रूर आदि हैं यह सबही प्रायः देवतारूप हैं और उन्होंने पृथ्वी के भाररूप हुए दैत्यों का वधकरने के निमित्त, भगवान् की प्रार्थना करने का उद्योग करा है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसप्रकार कंस को जताकर नारदजी तो चलेगए और कंस ने यादवों को देवता जानकर तथा अपना वध करने के निमित्त देवकी के गर्भ के विषैं उत्पन्न हुए विष्णुभगवान् ही हैं ऐसा जानकर देवकी और वसुदेव इन दोनों के पैरों में बेड़ी डालकर कारागार (जेलखाने) में डालदिया और विष्णुभगवान् की शङ्का से देवकी के जो २ पुत्र उत्पन्न हुआ उन सबका वध करतागया ॥ ६५ ॥ हेराजन् ! इस पृथ्वीपर अपने प्राणों को ही तृप्त करनेवाले और विषयभोग की कामना करनेवाले जो राजे होते हैं वह बहुधा माता, पिता भ्राता और सम्पूर्ण मित्रों का भी प्राणान्त करदेते हैं औरों कातो कहनाही क्या?॥६७॥ मैं पहिले जन्म में कालनेमि नामक दैत्य था और विष्णुभगवान् ने मेरा वध कराथा,वह ही मैं इसरूप से उत्पन्न हुआ हूँ ऐसा जाननेवाला वह कंस 'यादव देवता हैं' ऐसा सुनकर उनके साथ विरोध करनेलगा ॥ ६८ ॥ और तदनन्तर यादव, भोज, अन्धक इनके अधिपति अपनेपिता राजा उग्रसेन को भी कारागार (जेलखाने) में डालकर वह महाबली कंस अपने आपही शूरसेन देशों का राज्य करनेलगा ॥ ६९ ॥ इति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतैः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकैकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुधाना ज्ञातयः पर्युपासत ॥ हते षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥ गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ * ॥ अब इस द्वितीय अध्याय में कंस का वध करने के निमित्त देवकी के गर्भ में विराजमान श्रीहरि की ब्रह्मादिक देवताओं नें स्तुतिकरी और तिसदेवकी को धैर्यदिया यह कथा वर्णन होयगी कंस यादवों के साथ विरोध करनेलगा ऐसा वर्णन करा, तिस विरोध का विस्तार पूर्वक वर्णन करने के निमित्त श्रीशुकदेव जी बोले, कि-हे राजन् प्रलम्बदैत्य, बक (पक्षिरूपधारीदैत्य) चाणूर (मल्ल), तृणावर्त (आँधीरूपी दैत्य), अघासुर (अजगररूपी दैत्य), मुष्टिक (मल्ल) , अरिष्ट (वृषभरूपी दैत्य), द्विविद (वानर) पूतना (राक्षसी), केशी (अश्वरूपीदैत्य), और धेनुक (गर्दभरूपी दैत्य), इन करके तथा बाणासुर नरकासुर इत्यादि और दैत्यरूपराजाओं करके युक्त तथा जरासंधका है आश्रय जिस को ऐसा वह महाबली कंस यादवों को दुःखदेनेलगा ॥ १ ॥ २ ॥ तिस कंस से पीड़ा को प्राप्त हुए वह यादव कोई कुरुदेशों में, कोई पाञ्चालदेशों में कोई कैकयदेशों में, कोई शाल्वदेशों में, कोई विदर्भदेशों में, कोई निषधदेशों में और कोई कोसलदेशों में जाकर रहनेलगे ॥ ३ ॥ कितनेही अक्रूर आदि तिस कंसकी ही आज्ञा में रहकर उसकी सेवा करने लगे, जब कंस ने देवकी के छः पुत्रों का प्राणांत करदिया तिसके अनन्तर जिनको अनन्त कहते हैं वह विष्णुभगवान् का तेजरूपी अंश देवकीके सातवाँ गर्भ हुए वहगर्भ आनंदरूप भगवान् का अवतारहोने के कारण हर्षका और पहले गर्भों की समान दृष्टि को शोक का कारण भी हुआ।४।५। तदनन्तर विश्वरूप भगवान् ने,अपने आप ही हैं नाथ जिन के ऐसे यादवों को कंस से भय प्राप्त होरहा है ऐसा जानकर,अपनी शक्तिरूप योगमाया को आज्ञा करी कि—॥६॥हेदेवि ! हे भद्रे ! तू गोप और गौओं करके शोभायमान गोकुल में जा तिस नन्दजी के गोकुल में वसुदेवजी की रोहिणी नामक स्त्री है, यदि कहै कि—वह गोकुल में क्यों है ? तहां कहते हैं, कि—वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीं ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदां ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥ कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥ गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विहीं केवल गोकुल में है यह नहीं किन्तु और भी वसुदेवजी की स्त्रियें कंस के भय से देशान्तरों में गुप्तरूप से निवास करती हैं ॥ ७ ॥ तहाँ जाकर यह कार्य्य कर कि—देवकी के उदर में शेष नामक मेरा अंश गर्भरूप से विराजमान है, उस को तहाँ से युक्ति से निकाल कर रोहिणी के उदर में ठीक २ स्थापनकर ॥ ८ ॥ हे शुभे ! तदनन्तर शीघ्र ही मैं परिपूर्ण स्वरूप से देवकी के पुत्ररूप को प्राप्त होऊँगा और तू नन्दपत्नी यशोदा के विषैं उत्पन्न होयगी ॥ ९ ॥ इसप्रकार मेरी आज्ञा को पालन करनेपर पुत्रादि कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ और भक्तों को इच्छित वर देनेवाली जो तू तिस तेरा, धूप दीप नैवेद्य और बलि आदि सामग्री से मनुष्य पूजन करेंगे ॥ १० ॥ और भूलोक में मनुष्य तेरे मन्दिर बनवावेंगे और तेरे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका ऐसे नाम रक्खेंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तू गर्भ को खैंचेगी इस कारण तिस रोहिणी के पुत्र का भूलोकवासी पुरुष 'सङ्कर्षण' नाम कहेंगे, वह पुरुषोंको प्रसन्न करेंगे इसकारण पुरुष उन को 'राम' इस नाम से पुकारेंगे और बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण तिन को 'बल' इस नाम से पुरुष पुकारेंगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार श्रीभगवान् के आज्ञा करनेपर उस योगमाया ने 'तथास्तु' इसप्रकार और 'ॐ' इसप्रकार कहकर आदरपूर्वक तिन श्रीभगवान् के वचन को स्वीकार करा, और तिस कार्य्य को करने की सामर्थ्य प्राप्त होने के निमित्त भगवान् की प्रदक्षिणा करके भूलोकको चली गई और जिस प्रकार भगवान् ने आज्ञा करी थी सो सब कार्य्य तिसी प्रकार करदिया ॥ १४ ॥ उस समय तिस योगनिद्रा ने जब देवकी का गर्भ रोहिणी के उदर में पहुँचा दिया तब 'अहो देवकी का गर्भपात होगया' इसप्रकार खिन्न होतेहुए मथुरावासी पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभागेन मन आनकदुंदुभेः ॥ १६ ॥ स विभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽनंदकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न-रेजे ॥ भोजेंद्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितांतरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मितां ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥

पश्चात्ताप करनेलगे परन्तु इस का तत्व उन्हों ने कुछ नहीं समझा ॥ १५॥ इधर भक्तों को अभय करनेवाले विश्वरूप भगवान् श्रीहरि ने,पूर्ण आनन्द से वसुदेवजी के मन में प्रवेश करा ॥१६॥ भगवत्सम्बन्धी तेज को धारण करे हुए वह वसुदेवजी सूर्य्य की समान प्रकाश को प्राप्त होने लगे, उस समय किसी प्राणी को उन के समीप जाने की तथा उन का तिरस्कार करनें की शक्ति अपने में नहीं प्रतीत होती थी ॥ १७ ॥ तदनन्तर वसुदेवजी ने शुद्धमन से वैधदीक्षा + करके अर्पण करेहुए, अपने (देवकी के) विषैं पूर्व से ही विराजमान,संसार के मूर्त्तिमान् मङ्गलरूप और अखण्ड ऐश्वर्य्यस्वरूप भगवान् को तिस शुद्धसत्वरूप देवकी ने मन करके ही, जिस प्रकार पूर्वदिशा चन्द्रमा को धारण करती है तिस प्रकार धारण करा ॥ १८ ॥ तिस समय जगन्निवास भगवान् का निवास स्थान हुई वह देवकी, कंस के कारागार (जेलखाने) में पड़ी हुई थी इस कारण' जिस प्रकार घडे आदि में बन्द करी हुई दीपक की ज्वाला संपूर्ण प्राणियों में प्रकाश करने वाली नहीं होती है और जिस प्रकार 'मेरी विद्या को दूसरा पुरुष न जान जाय' ऐसा विचारनेवाले ज्ञानवञ्चक पुरुष के विषैं गुप्त रहनेवाली वेदादि विद्या संपूर्ण प्राणियों को लाभदायक नहीं होती है तिसी प्रकार सब प्राणियों को आनन्दित न करके अत्यन्त शोभा को प्राप्त न हुई किन्तु स्वयं ही आनन्द का अनुभव करनेलगी ॥१९॥ उससमय जिस की कोख में भगवान् वास कररहे हैं, जो अपनी कान्ति से तिस स्थान को शोभायमान कररही है और जिस का हास्य आनन्दयुक्त है ऐसी तिस देवकी को देखकर कंस कहनेलगा, कि—यह देवकी पहिले तो ऐसी कांतियुक्त देखने में नहीं आती थी, इस से प्रतीत होता है, कि—मेरे (गज के) प्राणहरण करनेवाले हरि ही (सिंह ही)

+ "यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमात्रेण पोषयेत् । वैधदीक्षोपदेशस्तु तादृशः कथितः प्रिये ॥" अर्थात्-जैसे कछुआ अपने बच्चों का ध्यानमात्र से ही पोषण करता है तैसे तू ध्यानमात्र से परमेश्वर को धारण कर, ऐसे उपदेश को वैधदीक्षा कहते हैं, ऐसा कुलार्णव तन्त्र में कहा है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंपद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम्॥स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ स एव जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन॥ देहे मृते तं मनुजाः शपंति गंता तमोंऽधं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥ इति घोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३ ॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीं ॥ चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रेत्य मुनिभिर्नारदादिभिः देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैरयन् ॥ २५ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये॥

इस की कोख में (गुहा में) निःसन्देह विराजमान हैं ॥ २० ॥ सो अब मुझे इस विषय में क्या करना चाहिये ? यदि साम आदि उपायों से कार्य लेता हूँ तो—यह भगवान् देवताओं का कार्य करने के निमित्त उद्योग कररहे हैं, इसकारण मेरा वध करने के निमित्त पराक्रम अवश्य ही करेंगे, और यदि इस देवकी का प्राणान्त करदूँ सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि—कार्य सिद्ध करतेहुए पुरुष को अपना पराक्रम नष्ट नहीं करना चाहियें, और यह स्त्री तिसपर भी बहिन तिसपर भी गर्भिणी है इसकारण इस का प्राणान्त करनेपर तत्काल यश सम्पत्ति और आयु का नाश होयगा ॥ २१ ॥ और यदि अतिक्रूरपने से वर्त्ताव करूँ सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि—जो पुरुष अतिक्रूरता से वर्त्ताव करता है वह जीवित भी मृतक की समान होता है कारण यह है कि—उस के जीवित रहते ही पुरुष उस को धिक्कार देते हैं और देहत्याग (मरण) के अनन्तर पापियों को प्राप्त होनेवाले नरक में पड़ता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार विचार करके देवकी के वधरूप अति भयंकर सङ्कल्प से वह स्वाधीन कंस अपने आप ही निवृत्त होकर चित्त में श्रीहरि से वैरभाव होने के कारण तिन श्रीहरि के जन्म की वाट देखता हुआ समय को व्यतीत करने लगा ॥ २३ ॥ तदनन्तर बैठते में, शयन करते में, खडे रहते में, भोजन करते में, और पृथ्वीपर विचरते में, अर्थात् हरसमय वैरभाव से श्रीकृष्ण का चिन्तवन करनेवाले उस कंस ने संपूर्ण जगत् को श्रीकृष्णरूप ही देखा ॥२४॥ एक समय नारदादि ऋषि, गन्धर्वादि अनुचर और इन्द्रादि देवताओं सहित ब्रह्माजी और महादेवजी तिन वसुदेव देवकी के समीप कारागार मे आए और सब मिलकर सुन्दर वाणियों से मनोरथ पूर्ण करनेवाले तिन भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ तहां पहिले तो भगवान् ने अपने कथन को सत्य करा इस कारण हर्षयुक्त हुए वह देवता तिन भगवान् की सत्यरूप से स्तुति करनेलगे, कि=जिन का व्रत (सङ्कल्प) सत्य है जिन के विषैं सत्यही सुन्दर प्राप्ति का साधन है, जो सृष्टि के पहिले प्रलय के अनन्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥ त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥ विभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानां ॥ २९ ॥

और स्थितिकाल में सत्यरूप से रहते हैं, जो पृथ्वी-जल-तेज-वायु और आकाश इन पञ्चमहाभूतों के कारण हैं, जो तिन पञ्चमहाभूतों के विषैं अन्तर्यामिरूप से विराजमान हैं, और तिन पञ्चमहाभूतों के लयस्थान हैं तथा जो मधुरवाणी और समदृष्टि के प्रवर्त्तक हैं ऐसे सबप्रकार से सत्यरूप तुम भगवान् की हम शरण में प्राप्तहुए हैं ॥ २६ ॥ यदि कहो कि—तुम भी लोकाधिपति होने के कारण मेरी समान ही हो फिर मेरी शरण क्यों आए हो ? सो ठीक नहीं है, क्योंकि—सम्पूर्ण सृष्टि आदि के मूलकारण और अद्वितीय सर्वेश्वर तुम ही हो, हम तो तुम्हारे आश्रय से ही रहनेवाले हैं, और लोकादिरूप द्वैत तुम से निराला नहीं है, ऐसा वर्णन करने के निमित्त द्वैतप्रपञ्च का वृक्षरूप से वर्णन करते हैं, कि—यह प्रपञ्च आदि वृक्षरूप है, प्रकृति ही जिस वृक्ष का एक घमला है, जिस के सुख दुःख यह दो फल हैं, सत्व रज और तम यह तीन मूल (जड़) हैं, धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष यह चार जिस में रस हैं,त्वचा—नेत्र—कर्ण—जिव्हा और घ्राण (नासिका) यह पांच जिस के जानने के प्रकार हैं, काम—क्रोध—लोभ—मोह मद और मत्सर यह छः जिसके स्वभाव हैं, त्वचा चर्म्म आदि सप्तधातु जिसकी छालहैं, पञ्चमहाभूत मन बुद्धि और अहङ्कार यह आठ जिस की शाखा हैं, मुख आदि नौ द्वार जिस की नौ खकोड़ल हैं, और दश प्राण ही जिस के दश पत्ते हैं, तथा जिस के ऊपर जीव और ईश्वर यह दो पक्षी बैठे हैं ॥ २७ ॥ ऐसे इस संसारवृक्ष रूप कार्य्य के तुम एक ही उत्पत्ति स्थान हो, तुम ही लयस्थान और तुम ही पालन करनेवाले हो, यदि कहो कि—ऐसे कार्य्य करनेवाले तो ब्रह्मा विष्णु और रुद्र प्रसिद्ध हैं, तहां कहते हैं कि—तुम्हारी माया से जिन का ज्ञान आच्छादित होरहा है वह तुम को ही ब्रह्मादिरूप करके नाना प्रकार का देखते हैं और जो मायामोह करके रहित विवेकी पुरुष हैं उन को ऐसी प्रतीति नहीं होती है किन्तु ब्रह्मादिरूप करके स्थित जो तुम तिन को एक रूप ही देखते हैं ॥ २८ ॥ यदि कहो, कि—मुझ देवकी के पुत्र का इस प्रकार वर्णन कैसे करते हो ? तहां कहते हैं कि—ज्ञानैकस्वरूप आत्मा जो तुम सो तुम ही स्थावर जङ्गमरूप जगत् का पालन करने के निमित्त धर्म्म के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुषों के सुखकारक और दुष्टों के नाशक शुद्ध सत्वगुणात्मक स्वरूप को धारण करते हो, तुम किसी के भी पुत्र नहीं हो ॥ २९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वंति गोवत्सपदं भवाब्धिं ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदांभोरुहनावमत्र ते निधाय यातः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः ॥ ॥ ३२ ॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरंति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

और केवल इतने के निमित्त ही नहीं किन्तु भक्तों को मोक्ष देने के निमित्त भी तुम अवतार धारण करते हो ऐसा वर्णन करते हैं, हे कमलनेत्र ! शुद्धसत्त्वगुण है मूर्त्ति जिन की ऐसे आप के विषैं समाधि के द्वारा स्थापन करे हुए चित्त से विवेकी पुरुष, साधुओं के सेवन करे हुए तुम्हारे चरणरूप नौका का आश्रय करके संसारसमुद्र को गौ के बछडे के खुर के चिन्ह की समान करलेते हैं ॥ ३० ॥ यदि कहो कि—चरणरूप नौका के द्वारा पूर्वपुरुष इस संसारसमुद्र को तरगए परन्तु आजकल के पुरुषों की क्या गति होयगी ? तहां कहते हैं, कि—हे स्वप्रकाशस्वरूप ! जिस प्रकार सूर्य्य का आश्रय करने वाले पुरुषों को अन्धकार का भय नहीं होता है तिसी प्रकार तुम्हारा आश्रय करनेवाले भक्तों को संसार का भय नहीं होता है, इस कारण संपूर्ण प्राणियों से प्रेमभाव रखनेवाले तुम्हारे भक्त, तुम्हारे चरणरूप नौका के समीप पहुँचते ही, उन को संसार समुद्र बछड़े के चिन्ह की समान होजाता है, फिर वह भक्त तुम्हारे चरणकमलरूप नौका को, अन्य पुरुषों के उपकार के निमित्त तहां ही छोडकर अर्थात् भक्तिमार्ग के सम्प्रदाय को चलाकर वह भक्तपुरुष, अन्य पुरुषों को भयदायक तथा दुस्तर संसारसमुद्र को अनायास में तरगए, इस का मुख्य कारण यह है, कि—तुम भक्तों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले हो ॥ ३१ ॥ यदि यह कहो, कि—विवेकी पुरुषों को मेरा भजन करने से क्या लाभ है ? क्योंकि—वह तो मुक्त ही हैं, सो हे कमलनयन ! जो कोई पुरुष अपने को स्वयं ही मुक्त माननेवाले हैं और तुम्हारे चरणों का आदर नहीं करते हैं तथा तुम्हारे विषैं भक्ति न होने के कारण जिन की बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है वह पुरुष अनेकों जन्मों में करे हुए तप के प्रभाव से सत्कुल में जन्म, तप और शास्त्रपठन आदि मोक्ष के समीप की पदवी को प्राप्त होकर भी तहां से नीचे (नरक में) गिरपड़ते हैं, अर्थात् विघ्नों करके तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ हे माधव ! तुम्हारे भक्त तो तुम्हारे विषैं दृढ़प्रेम करने के कारण अभक्तों की समान कदापि अपने भक्तिमार्ग से भ्रष्ट नहीं होते हैं, किन्तु हे प्रभो ! तुम्हारे रक्षा करे हुए वह भक्त काल कर्म्मादिकों के भय से रहित होकर विघ्नों की सेना के स्वामियों के भी मस्तक पर चरण धरकर विचरते हैं अर्थात् वह सम्पूर्ण विघ्नों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः॥वेदक्रियायोगतपः-समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥ न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियत्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ॥

नीतिकर अपने कार्य्यों को सिद्ध करते हैं ॥ ३३ ॥ साधुओं के सुखकारकरूप को धारण करते हो ऐसा कहा सो यदि कहो कि--वह कौन प्रकार का सुख देना है ? तहां कहते हैं, कि-हे प्रभो ! तुम जगत् का पालन करने के निमित्त प्राणियों को कर्म्मों का फल देनेवाले शुद्ध सत्त्वगुणीरूप शरीरको धारण करते हो इसकारण तिस शरीर करके युक्तहुए तुम्हारा, चारों आश्रमों को अङ्गीकार करनेवाले पुरुष, क्रम से वेदाध्ययन, कर्म्मानुष्ठान-वानप्रस्थ धर्म्म और समाधि के द्वारा पूजन करते हैं, यदि तुम अवतार धारण न करो तो, न तुम्हारा पूजन होय और न कर्म्मफल की सिद्धि होय ॥ ३४ ॥ हे जगत् के आधार ! तुम्हारा यह सत्त्वगुणात्मक शरीर यदि प्रकट न होय तो अज्ञानियों की अज्ञान से उत्पन्नहुए द्वैतभेदको नष्ट करनेवाला अपरोक्षज्ञान कदापि नहीं होय, यदि कहो कि--जिस से बुद्धि आदि जड़ पदार्थों का प्रकाश होता है उस ब्रह्म का ज्ञान कैसे न होगा ? तहां कहते हैं, कि--ऐसा नहीं होसक्ता, क्योंकि--जिस के सम्बन्ध से यह घटपटादि पदार्थरूप गुण, बुद्धि के विषैं प्रतिबिम्बित हुए जिस के योग से प्रकाश को प्राप्त होते हैं, और तिस प्रकाश के द्वारा तुम सर्वसाक्षी परिपूर्ण हो ऐसा जो केवल अनुमान होता है वह काल्पनिक है इस कारण उस को प्रत्यक्षज्ञान नहीं कहसक्ते, और तुम शुद्ध सत्त्वगुणरूप उत्पन्न होते हो,सो तुम्हारी सेवा से तदाकार हुए अन्तःकरणके विषैं तुम्हारे अनुग्रह से तुम्हारा साक्षात्रूप प्रत्यक्षज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ हे देव ! जो मन इन्द्रियादिकों का साक्षी है और जिसका मार्ग अनुमान करके ही जानने में आता है तिन तुम्हारे भक्तवात्सल्य आदि गुण, रामकृष्ण आदि जन्म और रावणवध आदि कर्म्म इन के साथ में स्वीकार करे हुए जो नाम और रूप हैं वह यद्यपि अभक्तों को मन से चिन्तवन करने को और वचन से कीर्त्तन करने को अशक्य हैं परन्तु तुम्हारी उपासना करनेवाले पुरुष उपासना के विषैं आप का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ऐसा प्रसिद्ध है ॥३६॥ इस कारण जो पुरुष तुम्हारे पुण्यकारक नामोंका, रूपोंका और कर्म्मोंका श्रवण करतेहुए, वर्णन करतेहुए, चिन्तवन करतेहुए और दूसरे पुरुषों को स्मरण क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियासु यस्त्वच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्यांऽकितां त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥ ३८ ॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥ दिष्ट्यांऽब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-

रातेहुए, लौकिक कर्म्मों के विषैं भी, तुम्हारे चरणकमलों के विषैं चित्त को लगाए रखते हैं वह फिर संसार में जन्म नहीं लेते हैं अर्थात् कर्म्मबन्धन से छूटजाते हैं ॥ ३७ ॥ अब विशेष करके श्रीकृष्णावतार की प्रशंसा करते हैं, कि--हे हरे ! तुम ईश्वर के जन्म मात्रसे ही तुम्हारी चरणरूप इस पृथ्वीका भार दूरहुआ सा ही है यह बड़े मङ्गलकी वार्त्ता है, अब हम आप के वज्र अंकुश आदि शुभलक्षणयुक्त कोमल चरणों करके चिन्हित पृथ्वी को और आपके कृपा करेहुए स्वर्ग को भी देखेंगे यह भी हमारा भाग्य ही उदय होनेवाला है ॥ ३८ ॥ अब यदि ऐसा कहो कि-'आप के जन्म होने से भूभार दूरहुआ सा ही है' ऐसा कहने से क्या मुझे भी जीव की समान संसार है, ऐसा कहते हो ? सो नहीं, किन्तु हमारे कहने का प्रयोजन यह है, कि--हे नित्यमुक्त ! हे ईश्वर ! तुम जन्मरहित हो और तुम्हारे जन्म धारण करने का कारण, क्रीड़ा के सिवाय दूसरा हमारे तर्क करने में नहीं आता, तुम्हारे जन्म का कारण नहीं है यह वार्त्ता तो अलगरही किंतु जीवात्मा के विषैं भी जो उत्पत्ति मरण और स्थिति की प्रतीति होतीहै सो भी, तुम्हारे विषैं, देह,इंद्रिय अंतःकरण आदि के विषैं जो तादात्म्य अध्यासरूप अविद्या तिस के करेहुए हैं वास्तव में सत्य नहीं हैं ॥ ३९ ॥ अब प्रस्तुत कार्य की प्रार्थना करते हैं, कि--हे ईश्वर ! जिस प्रकार तुम मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म्म, वराह, नृसिंह, हंस, श्रीराम और वामन आदि अवतार धारण करके हमारी और त्रिलोकी की रक्षा करते हो तिसीप्रकार इससमय भी पृथ्वी का भार दूर करिये, हे यादवश्रेष्ठ ! आप के अर्थ प्रणाम है, ऐसा कहकर सम्पूर्ण देवताओं ने मस्तक से नमस्कार करा ॥ ४० ॥ तदनन्तर देवता देवकी से कहनेलगे, कि—हे मातः ! जिन साक्षात् षड्गुणऐश्वर्यसम्पन्न परमपुरुष ईश्वर ने हम देवताओं के कल्याण के निमित्त पहिले श्रीराम आदि अवतार धारण करे थे वह ही इस समय तुम्हारी कोखके विषैं आकर प्राप्त हुए हैं यह बड़े ही आनन्दकी वार्त्ता है, अब कंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोप्तां यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतियुर्दिवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ महीमङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥ वव्वौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नदु-

के मरण का समय समीपही आगया है इसकारण तुम अब उससे भय मतमानो, तुम्हारापुत्र यादवों का रक्षा करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजन् ! इसप्रकार जिनका स्वरूप 'यह अमुक हैं' ऐसे दिखाने में नहीं आता तिन सर्वान्तर्यामी पुरुष की स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजी इन दोनों को आगे कर सब देवता स्वर्गलोक को चलेगए ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में द्वितीय अध्यायः समाप्त ॥ * ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ अब इस तृतीय अध्याय के विषैं श्रीहरि स्वयं प्रकटहुए, देवकी वसुदेव ने उनकी स्तुति करी और कंस से भयभीत हुए वसुदेवजीने उनको गोकुलपुरी में पहुँचादिया, यह कथा वर्णन होयगी ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं, कि—हे राजन् परीक्षित् ! ब्रह्मादि देवताओं के चलेजाने के अनन्तर जिस समय भक्तजनों की अविद्या को दूर करनेवाले और काल कर्म्मादि के स्वाधीन जो जन्म तिस करके रहित वह स्वतन्त्र भगवान् प्रकट हुए वह सम्पूर्णगुणों करके युक्त, परमकल्याण कारक समय प्राप्त हुआ उससमय शान्त स्वरूप नक्षत्रतारा और ग्रहों करकेयुक्त ब्रह्माजी का रोहिणी नक्षत्र था ॥ १ ॥ उस समय सम्पूर्ण दिशा प्रसन्न होगईं, आकाश निर्म्मल और नक्षत्रादिकों के उदय से युक्त होगया, पृथ्वी जिन के विषैं पुत्रजन्मादि अनेकों उत्सव होरहे हैं ऐसे नगर, ग्राम, गोशाला और रत्नादि की खानों करके युक्त होगई ॥ २ ॥ नदियें स्वच्छ जलयुक्त होगईं, बड़े २ सरोवर कमलों की शोभा से युक्त होगए, वन के वृक्षों की पंक्तियें जिनके ऊपर पक्षी और भ्रमरों के समूहों का मनोहर शब्द होरहा है ऐसे पुष्पों के गुच्छों करके युक्त होगईं ॥ ३ ॥ उस समय वायु स्पर्श होनेपर आनन्द देनेवाला, पवित्र, सुगन्धयुक्त, और शुद्ध चलनेलगा, और ब्राह्मणादि के कुण्डों के विषै शांतहुआ अग्नि स्वयं जाज्वल्यमान होनेलगा ॥ ४ ॥ कंसादि असुर जिनसे द्वेष करते थे उन साधुओंके मन प्रसन्न होगए, तिन जन्मरहित परमेश्वरका जन्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मन्दं मंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरं ॥ ७ ॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुंडलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ॥ उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥ स विस्मयोमोऽस्पृष्टमनाः प्रमुदो त्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुंदुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमो द्विजेभ्योयुतमाप्लुतो गवां ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः

होनेपर स्वर्गके विषैं दुन्दुभी बजनेलगीं ॥ ५ ॥ उस समय किन्नर और गन्धर्व भगवान् के गुणानुवाद गान करनेलगे, सिद्ध और चारण स्तुति करनेलगे, विद्याधरों की स्त्रियें अप्सराओंके साथ नृत्य करनेलगीं ॥ ६ ॥ हर्षसे पूर्णहुए ऋषि और देवता पुष्पों की वर्षा करनेलगे, समुद्रकी गम्भीर गर्जना का प्रारम्भ होते ही मेघभी मन्द२ गरजनेलगे ॥ ७ ॥ घनान्धकारयुक्त अर्धरात्रिके समय, जिसप्रकार पूर्वदिशाके विषैं सोलहों कलायुक्त चन्द्रमाका उदय होता है तिसीप्रकार देवतारूप तिस देवकी के विषैं सबकी बुद्धियों में अन्तर्यामीरूप से निवास करनेवाले वह व्यापक विष्णुभगवान् चतुर्भुजरूप से प्रकटहुए ॥ ८ ॥ जिसके कमलकी समान सुन्दर नेत्र थे, जो चार भुजा और उन में शंख गदा चक्र तथा कमल धारण करेहुए, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न और कण्ठ में शोभायमान कौस्तुभमणि धारण करेहुए, पीताम्बर पहिने और जल भरेहुए काले मेघमण्डलकी समान सुन्दर श्यामवर्ण था, जिसके केश बहुमूल्य के वैदूर्य्यरत्नों करके जटित किरीटकी और कानोंके कुण्डलों की कान्ति से प्रकाशित होरहे थे, और जो सुन्दर तगड़ी-बाजूबन्द-तथा कड़े आदि भूषणोंसे शोभायमानहोरहा था ऐसे तिसअद्भुत बालक का वसुदेवजीने दर्शनकरा ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय वह वसुदेवजी 'साक्षात् श्रीहरि मेरे पुत्ररूप से उत्पन्न हुए हैं' ऐसा देखकर आश्चर्य्य से प्रफुल्लनेत्र और कृष्णावतार के निमित्त करने योग्य उत्सव की शीघ्रता में लगकर अत्यन्त ही हर्षयुक्त हुए, और मन से ब्राह्मणों को दशसहस्र गौ दान करदीं क्योंकि—उस समय कारागार में बन्द होने के कारण प्रत्यक्ष तो गौओं का दान करही नहीं सक्ते थे इस कारण उन्हो ने गौओं के देने का मन से ही सङ्कल्प करलिया ॥ ११ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर शुद्धबुद्धि और भगवान् के प्रभाव को जानने के कारण निर्भय हुए वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतांजलिः॥स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभावित् ॥१२॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्॥१३॥स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम्॥तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥ १५ ॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव ॥ प्रागेवं विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ ॥ १६ ॥ एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ॥ अनावृ-

वसुदेवजी, अपनी कान्ति से सूति का गृह को प्रकाशित करनेवाले तिस बालक को, 'यह परमेश्वर हैं' ऐसा जानकर साष्टाङ्ग नमस्कार करा और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ वसुदेवजी कहने लगे, कि–हे ईश्वर! मैंने तुमको जानलिया है, तुम इस समय यद्यपि मुझे पुत्र की समान दीखरहे हो तथापि तुम वास्तव में प्रकृति से पर और केवल अनुभव करने योग्य आनन्दस्वरूप हो, सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धियों को देखनेवाले अन्तर्यामी ईश्वर हो, तुम्हारा मुझे जो यह प्रत्यक्ष दर्शन हुआ सो यह मेरे भाग्य का उदय है ॥ १३ ॥ यदि कहो कि–देवकी के उदर में प्रविष्ट होनेवाले मेरी इतनी अधिक स्तुति क्यों करते हो? तहां कहते हैं, कि–हे भगवन्! वास्तव में तुम सच्चिदानन्द स्वरूप हो और सृष्टि की आदि में अपनी माया के द्वारा इस त्रिगुणमय जगत् को उत्पन्न करके तदनन्तर तिस में प्रविष्ट न होकर भी प्रत्यक्ष में अथवा सद्रूप से प्रविष्ट हुए से दीखते हो ॥ १४ ॥ इस विषय में दृष्टांत कहते हैं, कि–जिस प्रकार यह भिन्न स्वभाववाले महत्तत्त्वादि एक से एक भिन्न होकर जबतक भिन्न भिन्न रहते हैं तबतक किसी विशेष कार्य्य को उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं और वह ही तत्त्व शब्दादि पांच विषय तथा ग्यारह इंद्रियें इस प्रकार सोलह विकारों के साथ एक स्थानमें मिलकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करदेते हैं और उत्पन्न करने के अनंतर उस में प्रविष्ट हुए से दीखते हैं परंतु उस में वह प्रविष्ट नहीं होते हैं क्योंकि--कार्य्य उत्पन्न होने के प्रथम ही वह तहां होने के कारण कार्य्य उत्पन्न होने के अनंतर उन का तहां प्रवेश नहीं होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकार जिनका स्वरूप रूपादि विषयों के ज्ञान से अनुमान करने योग्य है ऐसी इंद्रियें और तिन इंद्रियों करके ग्रहण करने योग्य जो घटादि विषय तिनके साथ वर्त्तमान भी तुम रहते हो परंतु तिन विषयों के साथ तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि–ऐसा नियम नहीं है कि–पदार्थों के साथ जितने गुण हों उन सबकाही प्रत्येक इन्द्रिय को ज्ञानहो किन्तु जिस इन्द्रिय में जिस विषय को ग्रहण करने की शक्ति है उस इन्द्रिय को उतने ही विषय का ज्ञान होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्वाद्धिरंतरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुद्ध्यते

है, जिसप्रकार आम्र आदि पकेहुए फलको दूरसे देखनेपर चक्षु इन्द्रिय से उस के पीलि रूपमात्र की ही प्रतीति होगी परंतु उस के साथ में विद्यमान मधुररस और कोमल स्पर्श आदि गुणों का ज्ञान चक्षुइन्द्रिय से कदापि नहीं होगा, तिसीप्रकार हे प्रभो! तुम विषयोंके साथ वर्त्तमान रहते हो परंतु विषयोंके ज्ञानके साथ तुम्हारा ज्ञान नहीं इसपूकार यह वर्णन करा, कि—जो पदार्थ पहिलेही विद्यमान है उसका पीछे [illegible] नहीं बनसक्ता; अब आप के स्वरूपका यदि कुछ प्रमाण (नाप) होता तो [illegible] पक्षी आदि का घोंसले (निवासस्थान) में प्रवेश होता है तिसीप्रकार तुम्हारे [illegible] नाभी सम्भव था परन्तु तुम तो आवरणरहित सर्वरूप, सर्वात्मा, व्यापक और [illegible] वस्तुहो इसकारण तुम्हारा बाहरका और भीतर का भाग, ऐसा विभाग है ही नहीं; [illegible] प्रवेश होना किसप्रकार बनसक्ता है ? अर्थात् कदापि नहीं बनसक्ता, इससे यह सिद्ध हुआ कि—तुम अन्तर्यामीरूप से सृष्टि में प्रवेश करते हो स्थूलरूप से नहीं, [illegible] के गर्भ में प्रविष्टहुए यह कहना तो कदापि बनही नहीं सक्ता, इसकारण आप केवल अनुभवगम्य आनन्दस्वरूपही हो, और तुम्हारा ज्ञान जो मुझे हुआ सो [illegible] है॥ १७ ॥ जो पुरुष आत्मासे प्रकाश को प्राप्त होनेवाले देहादिके [illegible] भी यह देहादि सत् हैं ऐसा निश्चय करता है वह मूढ़ है, क्योंकि—विचार करनेपर वह सत् मानेहुए देहादि सम्पूर्ण पदार्थ केवल वाणी से उच्चारण करनेमात्र ही हैं इसके सिवाय उनमें और कुछ तथ्य नहीं है इसकारण विचारवान् पुरुषों ने जिन को, अवस्तु जानकर त्यागदिया है ऐसे देहादिपदार्थों को, सत् बुद्धिसे स्वीकार करनेवाला पुरुष, निःसंदेह मूर्ख ही है ॥ १८ ॥ हे सर्वव्यापक भगवन्! सत्व रज और तम इन तीन गुणों करके रहित, किसी पूकार का भी व्यापार न करनेवाले और विकार रहित जो तुम तिन तुम से ही इस जगत् के उत्पत्ति-पालन और संहार होते हैं ऐसा लोक और वेद वर्णन करहे हैं, यदि कहो कि—मुझ व्यापारशून्य के विषैं कर्त्तृत्व किस प्रकार होसकेगा ? और कर्त्तृत्व हुआ तो निर्विकारपना किस प्रकार होसकेगा ? तहां कहते हैं, कि— तुम ब्रह्मस्वरूप (सर्वव्यापक) और ईश्वर (सर्वशक्तिमान्) हो इस कारण तुम्हारे विषैं कर्त्तृत्व और 'निर्विकारित्व यह दोनों धर्म्म विरुद्ध नहीं होते हैं, तुम्हारे विषैं कर्त्तृत्व कहने का अभिप्राय इतनाही है, कि—तुम गुणों के आश्रय हो इस कारण जिस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वेदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स

सेवक के करेहुए कर्म्मों का कर्त्तृत्व राजा के विषैं मानते हैं तिसीप्रकार गुणों के करेहुए सृष्टि आदि कार्य्यों का कर्त्तृत्व तुम्हारे विषैं मानते हैं तथापि वास्तव में तुम अकर्त्ता और निर्विकार हो ॥ १९ ॥ वह ही तुम त्रिलोकी की रक्षा करने के निमित्त अपनी माया के द्वारा अपने शुभ्रवर्ण (सत्वगुणात्मक विष्णुमूर्त्ति) को धारण करते हो, तिसी प्रकार त्रिलोकी की उत्पत्ति करने के निमित्त रजोगुण करके वृद्धि को प्राप्तहुए ताम्रवर्ण (रजोगुणात्मक ब्रह्मारूप) को धारण करते हो और सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रलय (नाश) करने के समय कृष्णवर्ण (तमोगुणात्मक रुद्रमूर्त्ति) को धारण करते हो ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे सर्वशक्तिमान् ! हे परमेश्वर ! इस समय इसलोक की रक्षा करने की इच्छा करनेवाले तुम, मेरे गृह में कृष्णरूप मूर्त्ति धारण करके अवतीर्ण हुए हो इसकारण साधुओं की रक्षा करने के निमित्त तुम, राजाओं का नाममात्र धारण करनेवाले जो करोड़ों दैत्य सेनापति हैं उन की इधर उधर नियत करके भेजीहुई सेनाओं का संहार करोगे ॥ २१ ॥ हे देवाधिदेव ! इस दुष्ट कंस ने तो, तुम्हारा जन्म हमारे घर होयगा ऐसा सुनकर तुम्हारे बड़े छः भ्राताओं का प्राणान्त करदिया, वह अत्र ही अपने दूतों के सूचित करेहुए तुम्हारे अवतार को सुनकर हाथ में शस्त्र धारण करके यहाँ को दौड़ताहुआ आवैगा इसकारण आप सावधान होजाइये ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तदनन्तर कंस से भयभीत हुई देवकी, भगवान् के चतुर्भुजादि लक्षणों से युक्त इस अपने पुत्रको देखकर आनन्द से प्रसन्नमुख होती हुई तिस पुत्र की स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ देवकी कहनेलगी, कि—हे ईश्वर ! वेदों ने जो परमार्थ स्वरूप वर्णन कराहै वह बुद्धि आदि इन्द्रियों के प्रकाशित करनेवाले साक्षात् विष्णु तुमही हो, वह तुम्हारास्वरूप ऐसा है, कि—जो अव्यक्त (समझ में न आनेवाला) सब का आदिकारण, ब्रह्मरूप, प्रकाशरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, सर्व प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन यांते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरांतो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधामं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहाऽसि ॥ रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मां प्रत्यक्षं मांसदृशां कृपीष्टाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर

के विशेष धर्मों करके और सम्पूर्ण क्रियाधर्मों करके रहित है इसकारण तुमको दूसरे से भयकी शङ्का नहीं है ॥ २४ ॥ अब महाप्रलय के समय भी शेष रहनेवाले तुम को किससे भय होसक्ता है ? ऐसा वर्णन करते हैं,कि–हे प्रभो ! काल के वेगसे ब्रह्मा जी का दो परार्द्ध आयु समाप्तहोने पर महाप्रलय के समय चराचर सम्पूर्ण प्राणी जब नष्टहोकर पञ्चमहाभूतों में लीन होजाते हैं तब 'यह जगत्, मेरेविषैं इसप्रकार लयको प्राप्त हुआ है फिर इसको इसप्रकार उत्पन्न करनाचाहियें' ऐसा जानने वाले एक तुमही शेष रहते हो ॥ २५ ॥ हे मायाके प्रेरक देव ! जिस करके यह जगत् चलरहा है, जो निमेषसे सम्वत्सर पर्यन्त भेदों करके युक्त और प्रलयका कारण है, वह यह महाकाल, प्रलयके विषैं अवधिभूत (मर्यादारूप) जो तुम तिन तुम्हारी ही लीला है ऐसा कहते हैं, तिन अभयस्थानरूपी परमात्मा की मैं शरण आई हूँ ॥ २६ ॥ अब भगवान् का निर्भयस्थानपना वर्णन करते हैं, कि–हे सृष्टिकर्त्तः ईश्वर ! मृत्युरूप सर्प से भयभीत हुआ यह मरणधर्मयुक्त संसारी जन, सम्पूर्ण लोकों में भागता फिरा परन्तु तहां तहां सब लोकों में मृत्यु होने के कारण इस को निर्भय स्थान नहीं मिला, परन्तु इस समय किसी भाग्योदय के कारण आप के चरण कमलों के समीप पहुँच गया इस से निर्भय होकर शयन करता है क्योंकि–इस से मृत्यु दूर रहता है ॥२७॥ इस प्रकार देवकी स्तुति करके अब प्रस्तुत वार्त्ता की प्रार्थना करती है, कि–हे देव ! वह तुम भक्तों के सङ्कट को दूर करनेवाले हो इस कारण, घोर कर्म्म करनेवाले इस कंस से भयभीत हुए जो हम तिन हमारी रक्षा करो और मुमुक्षु पुरुषों के ध्यान करने योग्य जो यह आपका ईश्वरीय स्वरूप है तिस का मांसदृष्टि पुरुषों को प्रत्यक्ष दर्शन न दीजिये ॥ २८ ॥ इस का कारण यह है, कि–हे मधुसूदन ! यह पापी कंस, मेरे गर्भ से आप का जन्म हुआ है ऐसा न जाने, क्योंकि–इस कंस ने मेरे बहुत पुत्र मारडाले हैं इस कारण मैं अधीर बुद्धिवाली तुम्हारे निमित्त इस कंस से अत्यन्त ही भयभीत हूँ ॥ २९ ॥ हे विश्वमूर्त्ति !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशांते यथाऽवकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्त्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः॥ सन्नियम्येंद्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशांतेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराट् युवयोः कामदि-

शंख चक्र गदा और पद्म की शोभा करके सेवन करे हुए इस अपने अलौकिक चतुर्भुज स्वरूप को गुप्त करिये ॥ ३० ॥ यदि कहो कि-इस स्वरूप को गुप्त क्यों करूँ ? ऐसे मुझ पुत्र से तेरी बड़ीभारी प्रशंसा होयगी, सो हे भगवन् ! जो परम पुरुष तुम प्रलय के समय इस सम्पूर्ण जगत् को अपने शरीर के विषैं निःसङ्कोचता से धारण करलेते हो वह ही तुम मेरे उदर में जन्म धारण करने को आए हो, ऐसा जो कहना है सो मनुष्यों में असम्भवरूप प्रतीत होने के कारण अत्यन्त हास्य करानेवाला होयगा इस कारण इस स्वरूपको गुप्तकरिये ॥ ३१ ॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले, कि–हेपतिव्रते ! देवकि ! तुम इस से पहिले के तीसरे जन्म में स्वायंभुवमन्वन्तर में पृश्नि नामक स्त्री थीं, उस समय यह वसुदेवजी सुतपा नामक प्रजापति थे और इनका आचरण परमशुद्ध था ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जिस समय ब्रह्माजीने तुम्हे सृष्टिरचने की आज्ञादी उस समय तुम दोनों ने सम्पूर्ण इन्द्रियों का दमन करके परम उग्र तप करा ॥ ३३ ॥ वह ऐसा तप करा, कि वर्षा, वायु, धूप, सर्दी, पञ्चाग्निसाधन से प्राप्त हुई उष्णता और भिन्न २ ऋतुओ के धर्मों का वारम्वार सहन करके प्राणायाम के द्वारा अपने अन्तःकरण के मलको सर्वथा नष्टकरदिया, तथा गिरेहुए पत्ते और वायु का भक्षण करते हुए, मुझ से मनोरथ पूर्ण करालेने की इच्छा करनेवाले तुम दोनों ने एकाग्रचित्त से मेरा आराधन करा ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार मेरे विषैं अन्तःकरण की वृत्तिको लगाकर अत्यन्त दुर्घट तीक्ष्ण तपस्या करनेवाले तुम दोनों को दिव्य वारहसहस्र वर्ष वीतगए ॥ ३६ ॥ हे पवित्रदेवकि ! उससमय तप, श्रद्धा और निश्चलभक्ति से हृदय के विषैं चिन्तवनकरा हुआ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुमको वरदेने की इच्छा से इस चतुर्भुजरूप को धारण करे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्सया ॥ त्रियतां वरं इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥३८॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥ गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषा युवां ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते ॥ ४४ ॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिंतयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं परां ॥ ४५ ॥ यदि कंसाद्बिभीथ त्वं तर्हि

हुएही तुम्हारे सन्मुख प्रकट हुआ और तदनन्तर जब मैंने तुमसे कहाकि—'वरमाँगो' तब तुमने मेरी समान पुत्रही वरमाँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उससमय पर्यन्त तुमदोनोंने विषयभोग (मैथुनआदि) का किंचिन्मात्रभी अनुभवनहीं कियाथा और तुमको संतानकी प्राप्तिभीनहीं हुई थी इसकारण तुमने देवमाया से मोहित होकर मुझ से मोक्ष नहीं मांगी॥ ३९॥ जब 'तथास्तु' कहकर वरदान दे मैं चलागया तिस के अनन्तर तुम मेरी समान पुत्र को प्राप्त होकर पूर्णमनोरथ हुए और विषयभोगों को भोगने लगे ॥ ४० ॥ तदनन्तर इस लोक में स्वभाव उदारता और अन्यगुणों करके मेरी समान योग्यता वाला दूसरा कोई भी नहीं है ऐसा देखकर मैं ही पृश्निगर्भ इस नाम से प्रसिद्ध तुम्हारा पुत्र हुआ था ॥ ४१ ॥ फिर वह ही तुम दोनों अदिति कश्यपरूप से उत्पन्न हुए तब जो कश्यपजी से अदिति के विषैं उत्पन्न होकर 'उपेन्द्र' नाम करके प्रसिद्ध और छोटे शरीरवाला होने के कारण 'वामन' इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ वह भी फिर मैं ही हुआ था ॥ ४२ ॥ हेपतिव्रते देवकि ! अब तिन कश्यप अदितिरूप ही तुम्हारे इस तीसरे जन्म में पहिले दिखाए हुए तिस चतुर्भुज स्वरूप से ही फिर उत्पन्न हुआ हूँ, इस प्रकार, तुम्हारे, मेरी समान पुत्र होयगा, ऐसा जो मैंने कहा था सो सत्य हुआ ॥ ४३ ॥ पहिले मेरा इस प्रकार का जन्म हुआ था, ऐसा स्मरण कराने के निमित्त यह चतुर्भुजरूप मैंने तुम्हैं दिखाया है क्योंकि—उस के बिना मनुष्य की समान शरीर से मेरे स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, अब तुम्हारी इच्छा से मैं फिर बालकरूप होजाऊँगा ॥ ४४ ॥ यदि कहो कि—जो तुमप्रसन्न होगए थे तो फिर हमारा वारम्वार जन्म किसकारण हुआ ? सो अब आगे को नहीं होयगा, अब तुम इस जन्म में पुत्रभाव से अथवा ब्रह्मभाव से वारम्वार मेरा चिन्तवन अथवा मेरे में प्रीति करो तब तुम अन्त में परमसुन्दर मेरी मोक्षरूप गति को प्राप्त होओगे ॥ ४५ ॥ सो हे वसुदेवजी ! यदि तुम कंस से भय मानते हो तो तुम मुझे गोकुल को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवां ॥ ४६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४७ ॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाजनि नंदजायया ॥ ४८ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४९ ॥ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यंत यथा तमो रविः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ५० ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः ॥ ५१ ॥ नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान् गोपा-

पहुँचा दो और तहाँ यशोदा के गर्भ में मेरी माया उत्पन्नहुई है तिस को लेकर शीघ्र ही यहाँ चलेआओ ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजन् ! इसप्रकार कहकर श्री हरि मौन होगए और तिन माता पिता के देखते ही देखते तत्काल अपनी योगमाया से सांसारिक बालक की समान छोटा सा रूप धारण करलिया ॥ ४७ ॥ तदनंतर वसुदेवजी ने भगवान् की आज्ञा के अनुसार जब ही पुत्र को लेकर सूतिकागृह से बाहर जाने की इच्छा करी उसीसमय भगवान् की अजन्मा योगमाया भी नन्द की स्त्री यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई ॥ ४८ ॥ जिस समय वसुदेवजी श्रीकृष्ण को लेकर चले उस समय, योगमाया ने द्वारपालों के ज्ञान की साधनभूत इन्द्रियों की सम्पूर्ण वृत्तियों को हरलिया अर्थात् जागते हुए भी द्वारपालों को चित्र की समान चेष्टारहित करदिया और संपूर्ण नगरनिवासियों को निद्रित करदिया, तथा जो द्वार पहिले कंस ने बड़े २ कपाट—लोहे की कीलैं और शृंखलाओं से बन्द करदिए थे और किसी से खुल नहीं सक्ते थे वह सब द्वार श्रीकृष्ण को लेकर वसुदेवजी के आनेपर, जिस प्रकार सूर्य्य के आने से अन्धकार विदीर्ण होजाता है तिसी प्रकार अपने आप खुलगए मन्द मन्द गर्जनेवाले मेघ मार्ग में पुरुषों का विचरना बन्द करने के निमित्त—वर्षा करने लगे और अपने फैले हुए सहस्र फणों से वर्षा के जल को रोकते हुए शेषजी वसुदेवजी के पीछे पीछे चलनेलगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस समय इन्द्र के वारंवार वर्षा करने के कारण यमुना नदी अगाधजल के प्रवाह के वेग से उत्पन्न हुई तरङ्गों के झागों से भररही थी और सैंकड़ों भयानक भँवर पड़ रहेथे, तिस यमुना नदी ने, जिस प्रकार पहिले सीतापति श्रीरामचन्द्रजी को समुद्र ने मार्ग दिया था तिसी प्रकार श्रीकृष्ण को लेजानेवाले वसुदेवजीको मार्ग दिया॥५१॥फिरवह वसुदेवजी,नन्दकी गोकुल में जाकर,तहां निद्रारूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५२ ॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकां ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमासते पूर्ववदावृतः ॥ ५३ ॥ यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुद्ध्यत ॥ न तल्लिंगं परि श्रांता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५४ ॥ इतिश्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ७ श्रीशुक उवाच ॥ बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहपगोत्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्द्धजः ॥ ३ ॥ तमाहं भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ वैहवो

योगमाया करके नन्दादिगोपोंको गाढ़निद्रामें शयनकरतेहुए देखकर तिसपुत्रको यशोदाकी शय्यापर शयन करादिया और तिसकी कन्या को लेकर फिर अपने निवासस्थान को लौट आए ॥ ५२ ॥ तदनन्तर तिन वसुदेवजी ने देवकी की शय्यापर तिस कन्या को शयनकराकर अपने चरणों में लोहे की बेड़ियें बाँधलीं और पहिले की समान बन्दीगृह में स्थित होगए ॥ ५३ ॥ इधर गोकुल में नन्दकी स्त्री जो यशोदा तिस ने, 'मेरे कुछ सन्तति हुई है' केवल इतनाही जाना परन्तु कन्या हुईहै या पुत्र हुआ है यह नहीं जाना, क्योंकि वह प्रसूति की पीडा से व्याकुल होगई थी और तिसपरभी योगनिद्राने वेसुध करदिया था ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ इस चौथे अध्याय के विषैं, हे मूढ़ ! मेरे मारने से क्या लाभ है ? तेरा मारनेवाला शत्रु कहीं न कहीं उत्पन्न होगया है" ऐसे, तिस योगमाया के कथन को सुनकर कंस अति भयभीत होगया और उस ने दुष्टमंत्रियों के साथ संमति करके 'छोटे बालकों का वध करना ही कल्याण कारक है' ऐसा निश्चय करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजन् ! वसुदेवजी के बन्दीगृह में आजानेपर नगर के बाहर और भीतर के सब द्वार पहिले की समान बंद होगए, तदनंतर बालक का शब्द सुनकर बंदीगृह के रखवाले जागउठे ॥ १ ॥ और उन्होंने बड़ी शीघ्रता से कंस के पास जाकर उस कंस से 'वह जिस की, घबराहट से बाट देखता था तिस' देवकी के आठवें गर्भ के जन्म की सूचना दी ॥ २ ॥ तिस को सुनकर, यह मेरा काल उत्पन्न हुआहै ऐसा जानकर व्याकुल हुआ वह कंस, शय्या से घबड़ा के उठकर ठोकरें खाता हुआ, केश खुले हुए, जैसा का तैसा ही शीघ्रता से सूतिकागृह में चलागया ॥ ३ ॥ तहां तिस भ्राता से देवमाता देवकी, दीनतापूर्वक इस प्रकार कहनेलगी कि—हेकल्याणरूप कंस यह कन्या तुझे स्नुषा की समान पालन करनेयोग्य है इस स्त्री का वध करना तुझशूर को योग्य नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया ॥ दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयतांम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मंदाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम्॥६॥श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदन्त्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगंबरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मन्द जातः खलु तवांतकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥१२॥

है ॥ ४ ॥ हे भैय्या ! दैवके प्रेरणा करेहुए तूने मेरे अग्नि की समान तेजस्वी बहुत से पुत्र मारडाले हैं अब इस एक कन्या को तौ तू मुझे देदे ॥५॥ हे समर्थ कंस ! क्या मैं तेरी छोटी बहिन नहीं हूँ ? तैने मेरे पुत्र मारडाले इस कारण मैं अत्यन्त दीन होरही हूँ, सो मुझ हतभागिनी को इस अन्त की एक पुत्री के दैने की तो कृपाकरना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे, कि—हेराजन् ! इस प्रकार तिस देवकी के याचना करनेपर भी तिस कंस ने देवकी को ललकार कर, पुत्री को चिपटाकर अत्यन्त दीन की समान रोदनकरतीहुई तिस देवकी के हाथोंमेंसे तिस दुष्टने उस कन्याको खैंचकर छीनलिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपने प्राणबचाने की इच्छा से या स्वार्थ की ओर ध्यानदेकर जिसने स्नेहरूप अंकुर को मनसे सर्वथा उखाडकर फेंकदिया है ऐसे तिस कंसने,तत्कालउत्पन्नहुई तिस बहिन की कन्या को चरणों से दाबकर, आँगन में स्नान करने के निमित्त स्थापन करीहुई शिलापर देमारा ॥ ८ ॥ उस समय वह विष्णु की छोटी बहिन शिलापर न गिरकर तिस के हाथों में से निकल उछलकर ऊपर आकाश में चलीगई और तहाँ तत्काल देवी होकर आयुध धारणकरेहुए बड़ी २ आठभुजाओं से युक्त दीखने लगी ॥ ९ ॥ दिव्य पुष्पों की माला, सुन्दरवस्त्र, लेप और रत्नजटित भूषणों से शोभायमान; धनुष, शूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा इनको धारण करनेवाली ॥ १० ॥ और बड़े २ उपहारों को अर्पण करनेवाले, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, और नागों करके स्तुति करीहुई वह देवी, कंस से इसप्रकार कहने लगी ॥ ११ ॥ कि—रेमूर्ख कंस ! मुझे मारकर तैने क्या करलिया ? तेरा अन्त करनेवाला पूर्वजन्म का शत्रु अभी तेरे मारने निमित्त कहीं उत्पन्न होगया है, अब और दीन बालकों के व्यर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पापेन ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ कांल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विश्रंभादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून्॥ १७॥ मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः ॥ जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनाः समासते ॥ १८॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथा-

प्राण नष्ट मतकर ॥ १२ ॥ इसप्रकार वह भगवती मायादेवी. तिस कंस से कहकर इस भूलोक में अनेक क्षेत्रों में अनेकों नामों से प्रसिद्ध होकर रही ॥ १३ ॥ तिस मायादेवी के कहनेको सुनकर वह कंस 'उलटी आकाशवाणी कैसे हुई' इस आश्चर्य में पडगया और देवकी वसुदेव को कारागार में रखना व्यर्थ समझकर उनको बन्धन से छुटादिया और नम्रतापूर्वक उन से कहनेलगा, कि—हे बहिन ! हे भगिनिपते ! मुझपापी ने राक्षसों की समान अपनेही बहुतसे बालक मारडाले, यह बड़ा अनर्थ हुआ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ तुम्हारे पुत्रों का मारनेवाला, निर्दयी, अपने कार्य्य के निमित्त बांधव और मित्रों को त्यागनेवाला, खल और जीवित रहकर भी मृतक की समान मैं, ब्रह्महत्यारे की समान नहीं जानता कौनसे नरकादि लोक में जाऊँगा ?॥१६॥ बड़े आश्चर्य की बात है, केवल मनुष्य ही नहीं किंतु देवता भी मिथ्याभाषण करते हैं, आकाशवाणी के ऊपर विश्वास रखकर मुझ दुष्ट ने, बहिन के बालक वृथा मारडाले ॥ १७ ॥ हे वसुदेव ! हे देवकि ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, इसकारण तुम, अपने प्रारब्ध कर्म्मों को भोगनेवाले पुत्रों का शोक मत करो, सब ही प्राणी दैवाधीन होने के कारण सदा जीवित नहीं रहते हैं और न एक स्थान में रहते हैं किंतु वियोग को प्राप्त होते रहते हैं ॥ १८ ॥ जिसप्रकार आधारभूत भूमि के विषैं घटादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तिसी प्रकार आधार भूत आत्मा के विषैं देह उत्पन्न होते हैं तथा नाश को प्राप्त होते हैं और घटादि पदार्थों के भिन्न भिन्नरूप और विकारयुक्त होनेपर भी जिस प्रकार भूमि विकार को नहीं प्राप्त होती है तिसी प्रकार जन्म मरणादि से शरीर के विकार को प्राप्त होने परभी आत्मा में विकार नहीं होता है किंतु आत्मा एकरूप ही रहता है, ऐसे विचार करनेपर शोकादि को स्थान नहीं मिलता है ॥ १९ ॥ अज्ञान से तौ कदापि संसार से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽज्ञेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हतोऽस्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांतरोषा च देवकी ॥ व्य-

मुक्ति नहीं होती है, ऐसा वर्णन करते हैं कि—आत्मा विकार रहित है ऐसा यथार्थ रीति से न जाननेवाले प्राणी को, देहादि के विषैं आत्मबुद्धि होती है और ऐसा होनेपर 'मैं अन्य हूँ, वह अन्य है' इत्यादि भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, फिर स्त्री पुत्रादि शरीरों के विषैं संयोग वियोग का अनुभव होनेलगता है इसकारण जन्ममरणादिरूप संसार से मुक्ति नहीं होती है ॥ २० ॥ इसप्रकार विचारकरने से तो यह तेरे पुत्र नहीं थे 'और मैंने मारडाले' ऐसा कहनाभी नहीं बनता, अब अज्ञानदृष्टि से, तेरे पुत्रों को मैंने मारडाला ऐसा यदि तेरे मनमें होय तथापि हे भद्रे देवकि ! सम्पूर्ण ही प्राणी कर्मके अधीन होकर अपने करेहुए कर्मों के जन्ममरणादिरूप फल को भोगते हैं इस कारण यह सब चरित्र मेरे और उनपुत्रों के कर्म के अनुसार हुआ ऐसा मन में विचार कर, तू शोक मत कर ॥ २१ ॥ तो फिर ब्राह्मणादिकों के मारनेवाले का और मरनेवाले का प्रायश्चित्त कैसे सुनने में आता है? तहाँ कहते हैं कि—वह अज्ञानमूलक ही है, क्योंकि जिस समयतक यह देहाभिमानी पुरुष 'मैं मारागया, अथवा मैं मारनेवाला हूँ' ऐसे मानकर देह के विषैं होनेवाले कर्तृत्व को आत्मा के विषैं मानताहै तबतक ही तिस मारने वाले आदिका अभिमान धारण करनेवाला वह अज्ञानी पुरुष तिस से हुए पाप और दुःखों को प्राप्त होता है, और कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ तथा देहाभिमान से 'मैंने पाप कर्म करके तुम्हें दुःखदिया है, ऐसा मानते हो तो—हे दीनवत्सल साधुओ ! मेरे दुष्टपने की मुझे क्षमा करो, ऐसा कहकर, फिर मुखपर दुःख के आँसू बहाकर तिस कंसने देवकी वसुदेव के चरण पकड़लिये ॥ २३ ॥ इसप्रकार हाथों में से छूटकर गई हुई कन्या के कथन से, वसुदेव देवकी निर्दोष हैं, ऐसा विश्वास जिसको होगया है ऐसे तिस कंस ने अपना प्रेमदिखाते हुए तिन देवकी वसुदेवको बेडियें दूरकरके बन्दीगृह से छुटादिया ॥ ॥ २४ ॥ देवकी ने भी भाई को पश्चात्ताप हुआ है ऐसा जानकर अपने क्रोध को शान्त करा और उसको अपने गृहको जाने को कहा, वसुदेवजी ने भी अपना क्रोध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंसं एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंसं आहूय मंत्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेंद्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥ किमुद्यमैः करिष्यंति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समंततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयो दीना न्य-

शान्तकरा और भगवन्माया की महिमा को मन में विचारकर हँसतेहुए तिस कंससे कहा कि-॥ २५ ॥ हे महाभाग कंस ! तुम जैसा कहते हो ऐसा ही है अर्थात् सब प्राणियों को आत्माके अज्ञान से अहंबुद्धि उत्पन्न होती है और तिस से यह मेराहै, यह पराया है ऐसी भेददृष्टि उत्पन्न होती है ॥ २६ ॥ भेददृष्टि को धारण करनेवाले वह पुरुष,शोक हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मद इन करके युक्त होते हुए देवदैत्यादिस्वरूपों से परस्पर मारनेवाले देव दैत्यादिरूपी परमेश्वर को नहीं देखते हैं किन्तु हमही मारनेवाले और मरण को प्राप्त होनेवाले हैं ऐसा मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजन् ! इसप्रकार प्रसन्नचित्तहुए देवकी और वसुदेव से निष्कपटपने से भाषण करनेवाला और गृह को जाने के लिये आज्ञादिया हुआ वह कंस अपने घरको चलागया ॥ २८ ॥ तदनन्तर तिसरात्रि के वीतजाने पर दूसरे दिन प्रातःकाल के समय कंस ने सभा में मंत्रियों को बुलाकर, योगनिद्रा ने जो कहाथा सो सब उनको सुनाया॥ ॥ २९ ॥ कंस के कथन को सुनकर दूरदृष्टि से शून्य वह देवताओं के शत्रु दैत्य, देवताओं के विषय में क्रोध का वेग दिखाते हुए तिस कंस से कहने लगे कि-॥ ३० ॥ हे भोजेंद्र ! यदि ऐसा है तो आजही नगर, ग्राम और गोकुल आदि के विषैं दशदिनके भीतर के और दशदिन जिनको होगए हैं ऐसे सबबालकों को हम मारेडालते हैं, अब हमैं आप आज्ञादीजिये और मानों कार्य होगया ॥ ३१ ॥ हे कंस ! तुम्हारे धनुष के रोदे की टंकार के शब्द से निरन्तर भयभीत होनेवाले और युद्धसे घबडानेवाले देवता उद्योग करके क्या करसक्ते हैं ? उनसे कुछभी नहीं होगा ॥३२॥ पहिले जो युद्ध हुआथा उसमें जब तुमने बाण छोडे तब तुम्हारे बाणोंसे चारों ओर ताड़ितहोकर 'बचनेकी इच्छा करनेवाले वह देवता' 'भागनाही बचने का उपायहै' ऐसा विचारकर भागगए थे ॥ ३३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद्दीनाः स्म इति वादिनः ॥३४॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापान-युद्ध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिंद्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखननेनियुंक्ष्वास्मानमनुव्रतान् ॥ ३७ ॥ यथाऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेंद्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्र-

कितने ही देवताहाथ में से शस्त्र छोड़कर दीनता पूर्वकआप के सामने हाथ जोड़कर खड़े होगए, कितनो ही की भागते भागते धोती खुलगई, कोई कहने लगे कि—हम भयभीत हैं ॥ ३४ ॥ तुम्हारी तौ ऐसी रीति है कि—शस्त्रास्त्र को भूले हुए, रथहीन हुए, भयभीत हुए, दूसरे के साथ युद्ध करते हुए, भागे हुए, जिनका धनुष टूटगया है और युद्ध न करनेवाले शत्रुओं के ऊपर तुम प्रहार नहीं करते हो ॥३५॥ फिर निर्भय स्थान में शूर वनकर रहनेवाले तथा युद्ध के सिवाय अन्यत्र अपनी वीरता को प्रसिद्ध करने वाले देवता इस समय भी उद्योग करके क्या करसक्ते हैं? यदि कहो कि—विष्णु या शिव से मुझे भय है, सो संपूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में प्रवेश करके कहीं बाहर न रहनेवाले ही अथवा जहां पुरुष किसी प्रकार नहीं जाते हैं ऐसे इलावृत नामक वन में रहनेवाले शिव क्या करसक्ते हैं? तिसी प्रकार अल्पपराक्रमी इन्द्र और तप करनेवाले ब्रह्मा क्या करसक्ते हैं? ॥ ३६ ॥ तथापि देवताओं में और हम में शत्रुता होने के कारण हमैं उन की उपेक्षा (उन से वेपरवाई)करना योग्य नहींहै किन्तु नीति के अनुसारही वर्त्तावकरना चाहिये, हमारी तौ ऐसी सम्मतिहै,सो तुम्हारे आज्ञाकारी हमको उनकी जड़ उखाड़कर फैंकदेनेकी आज्ञा दीजिये॥३७॥ जिसप्रकार शरीरमें उत्पन्न हुए ज्वरादि रोगकी स्नानपानादि कुपथ्य करनेवाले मनुष्यों के उपेक्षा करनेपर वह रोग,शरीर में व्याप्त होकर फिर और औषधादि का सेवन करनेसे भी दूरहोने कठिन होजातेहैं तथा जिसप्रकार इन्द्रियोंको पहिले से वशमें न करके उनको यथेष्ट वर्त्तनेदेनेसे फिर उनका वशमें करना अतिकठिनहोजाताहै तिसीप्रकार शत्रु भी जब सेना को इकट्ठी करके अधिक प्रबल होजाता है तो फिर उस को जीतना अतिकठिन होजाता है ॥ ३८ ॥ सब देवताओं के मूल आधार विष्णु हैं वह तो जहाँ अनादिधर्म का वर्त्ताव होता है तहाँ रहते हैं और तिस धर्म के मूल, वेद, गौ, ब्राह्मण, तप और दक्षिणायुक्त यज्ञ यह हैं ॥ ३९ ॥ इसकारण हे राजन्! हम सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गोश्चाहन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्रुग् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥ संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा गूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जा-

प्रकार से यत्न करके वेद के जाननेवाले तपस्वी, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण और दूध दही तथा घृत आदि को उत्पन्न करनेवाली गौएँ इन को मारेडालते हैं ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, शांति, श्रद्धा, दया, सहनशीलता और यज्ञ यह विष्णु की मूर्त्ति हैं ॥ ४१ ॥ और वह ही सब देवताओं का स्वामी सब का अन्तर्यामी और असुरों का घात करनेवाला है, शिव और ब्रह्मदेव सहित सब देवताओं को तिस का ही आधार है, सो उस के वध करने का उपाय यही है कि—ऋषियों को मारडालना चाहियें ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! इसप्रकार, मृत्यु के पाशों से बँधेहुए दुष्टबुद्धि तिस असुर कंस ने दुष्ट मंत्रियों के साथ विचार करके 'ब्राह्मणों की हिंसा करना ही उत्तम हितकारकहै' ऐसा निश्चय करलिया॥४३॥तदनन्तर दूसरोंको दुःख देनाही जिनको प्रियहै ऐसे यथेच्छरूप धारण करनेवाले तिनराक्षसोंको साधुजनोंको दुःख देनेकेनिमित्तदशों दिशाओं को जाने की आज्ञा देकर कंस अपने गृह में चलागया ॥४४॥ प्रथम तो जिनका स्वभाव ही रजोगुणी है, तिस पर भी तमोगुण अर्थात् क्रोध के आवेश से जिन की बुद्धि नष्ट होगई है और जिनका मरणकाल समीप आगया है ऐसे वह दैत्य कंस की आज्ञा से साधुपुरुषों के साथ द्वेष करनेलगे ॥ ४५ ॥ हे राजन्! साधुओं से छल करने से केवल मरण ही नहीं होता है किन्तु ऐसा करने से पुरुष की आयु, संपत्ति, यश धर्म्म, उत्तम लोक की प्राप्ति, महात्माओं के दिए हुए 'आयुष्मान् हो, पुत्रवान् हो' इत्यादि आशीर्वाद और सब प्रकार के कल्याणों का नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ इति-श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्धके पूर्वार्द्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त॥*॥अब इस पांचवें अध्याय में बड़े उत्साह के साथ अपने पुत्रों का जातकर्म्म संस्कार करके नन्दजी, 'कर' देने के निमित्त मथुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तांह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्दैवज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवंदिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुंदुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः ॥ चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥ गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ॥ ७ । महार्हवस्त्राभरणकंचुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥ गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आ-

को गए तहां वसुदेवजी से भेट होने पर उन को परम आनन्द हुआ, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! इधर गोकुल में उदारचित्त नन्दजी ने पुत्र के उत्पन्न होनेपर आनन्दयुक्त हो ज्योतिषी ब्राह्मणों को बुलाकर अपने आप स्नानादि से पवित्र होकर आभूषण धारण करे और तिन ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन करा कर अपने पुत्र का जातकर्म्म नामक संस्कार शास्त्रोक्त विधि से करवाया और पितरों का तथा देवताओं का नान्दीमुख श्राद्ध आदि करके पूजन कराया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर तिन नन्दजी ने अलंकार आदि से भूषित करी हुई दो लाख गौ ब्राह्मणों को दीं, तथा रत्नसमूह और सुवर्ण के तार से शोभित वस्त्रों से ढके हुए तिलों के सात पर्वत(ढेर)दिए।३। काल से, अपवित्रहुए भूमि आदि पदार्थों की शुद्धि होती है, स्नान से देह की, धोने से अपवित्र पदार्थ लगेहुए वस्त्र पात्रादि की, संस्कारों से गर्भादि की, तप से इन्द्रियादिकों की, यज्ञों से ब्राह्मणादिकों की, दान से धान्यादि द्रव्यों की, संतोष से मन की और ब्रह्मविद्या से जीवात्मा की शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ उससमय ब्राह्मण कल्याणकारक आशीर्वाद देनेलगे. सूत मागध और बन्दीगण स्तुति पाठादि करनेलगे, गवैये गानकरनेलगे, नफीरी और नगाडे आदि बाजे बजगे लगे ॥ ५ ॥ उससमय धूलि आदि दूर करके स्वच्छकरी हुईहैं गोशाला जिस में तथा चन्दनादिसे छिड़काव करेहुएहैं द्वार आँगन और गृह के मध्यभाग जिस में ऐसा व्रज, टाँगीहुई चित्रविचित्र प्रकार की ध्वजा, जय पताका, माला, वस्त्रों की झालर और कोमल पत्तोंकी बन्दनवारों करके शोभायमान हुआ॥६॥हरिद्रा और तैललगाकर शोभायमान करीहुई गौएँ बैल और छोटे२बछड़े,गेरू आदि चित्रविचित्र धातु, मोरकेपङ्ख,पुष्पोंके हार,वस्त्रोंकी झूलें और सुवर्णके पुष्पों की मालाओंसे शोभायमानहुए७॥ उस समय गोप, बहुमूल्य वस्त्र, भूषण, अंगरखे और पगड़ी धारण करके हाथों में नाना प्रकार के वस्त्र भूषणादि की भेटें लेकर नन्दजी के घर आनेलगे ॥ ८ ॥ गोपियें भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पांजनादिभिः ॥ ९ ॥ नवकुंकुमकिंजल्पमुखपङ्कजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नन्दालयं सबलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुंडलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥ ता आशिषः प्रयुंजानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ ॥ १२ ॥ अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते १३ ॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृतांबुभिः ॥ आसिंचंतो विलिंपन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥ नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ॥ सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योद-

'यशोदा के पुत्र हुआ है' यह समाचार सुनकर आनन्दित होती हुई अपने शरीरोंको वस्त्र भूषण और काजल आदि से भूषित करनेलगीं ॥ ९ ॥ नवीन केसर पीसकर तिस के लगाने के कारण जिन के मुखकमलपर शोभा आरही है और जिन के कटिपश्चाद्भाग भारी हैं ऐसी वह गोपियें गोद भरने की वस्तुएँ हाथों में लेकर शीघ्रता से नंदजी के घर गईं उस समय चलते में उन के स्तन हलते जाते थे ॥ १० ॥ नंदजी के घर जानेवालीं वह गोपियें अत्यन्त ही शोभा को प्राप्त हुईं उन के कानों में उज्ज्वल करे हुए मणिजटित कुण्डल थे, उनके कण्ठों में सुवर्णकीमाला पचलरे आदि आभूषणथे, चित्र विचित्र वर्ण के वस्त्र पहिने हुए थीं, हाथों में जड़ाऊ कंकण धारण करे हुए थीं, उन की वेणी में से मार्ग में पुष्पों की वर्षा होती चली जाती थी, और हलते हुए कुण्डल, स्तन तथा हारों से उन की परमशोभा होरही थी ॥ ११ ॥ वह गोपियें नंदजी के घर जाकर बालक को तू गोकुल का राजा होकर चिरकालपर्यंत प्रजा की रक्षाकर, इस प्रकार आशीर्वाद देकर हरिद्रा का चूर्ण तेल और पानी आपस में शरीरों पै डालकर ऊँचे स्वर से गीत गाने लगीं ॥ १२ ॥ जगत् के स्वामी अनन्त श्रीकृष्णजी के नंदजी की गोकुल में जन्म धारण करके आनेपर बड़ा भारी उत्साह हुआ और उस समय नानाप्रकार के बाजे बजनेलगे ॥ १३ ॥ परम हर्ष को प्राप्त हुए गोप भी परस्पर एक के ऊपर एक, दधि, दूध, घृत और पानी छिडकते हुए, एक एक के मुखपर दधि आदि मलते हुए और नृत्य करते में दधि, दूध, घृत और पानी की कींच में एक एक को ढकेलकर गिराने लगे ॥ १४ ॥ उस समय उदारचित्त नन्दजी ने, गोप गोपियों को, सूत मागध बन्दियों को तथा जो गीतनृत्य आदि विद्याओं से आजीविका करनेवाले और अनाथ थे उनको, वस्त्र, भूषण, गौ, धन और जो पदार्थ जिसको इच्छित था वह उनको, विष्णुभगवान् के प्रसन्न होने के अर्थ तथा अपने पुत्र का कल्याण होने के अर्थ, उदारचित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यौग चं ॥ १६ ॥ रोहिणी चं महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कंठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥ तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥१८॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥ वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥ नं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतं ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारच-

से देकर योग्यता के अनुसार सब का सत्कार करा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस समय महा भाग्यवती रोहिणी को भी नन्दजी ने, 'तू यहाँ आई इसकारण तेरे चरणों के प्रतापसेही मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ, तू बड़ी भाग्यवती है इत्यादि वचनों से' अपना आनन्द दिखाकर प्रसन्न करा तब रोहिणी ने उत्तमवस्त्र माला और कंठ में अनेकों आभूषण धारण करके घरकी मालकनी की समान, तिन श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव में आई हुई सब स्त्रियों का सत्कार करा ॥ १७ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण के जन्मदिन से वह नंदजी का गोकुल सब प्रकार की समृद्धियों से युक्त और श्रीहरि के निवास करने से सब को प्रिय लगना आदि अपने गुणों से युक्त होकर लक्ष्मी के भी क्रीडा करने का स्थान हुआ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव करके एक समय नन्दराजा गोकुल की रक्षा करने को गोपों से कहकर, कंस का वार्षिक कर देने के निमित्त मथुरापुरी को गए ॥ १९ ॥ तदनन्तर वसुदेवजी नें अपनें भ्राता की समान परममित्र नंदजी को आया हुआ सुनकर और उन्हों ने राजा कंस को कर देदिया ऐसा जानकर उन के गाड़ों को छोड़ने की जगह (पडाव में) मिलने के निमित्त गए ॥ २० ॥ आते हुए तिन अति प्रिय वसुदेवजी को देखकर, देह में प्राण आनेपर जिस प्रकार वह देह उठबैठता है तिसी प्रकार नन्दजी एकाएकी उठकर चित्त में प्रसन्न और प्रेम से विव्हल होगए और वसुदेव जी को दोनों भुजाओं से हृदय से लगालिया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर नन्दजी ने पाद्य आसन आदि से पूजा करी और कुशल प्रश्न करके आदर करा, तब आसन पै सुख से बैठे हुए वसुदेवजी अपने रामकृष्ण दोनों पुत्रों में आसक्त चित्त होकर नन्दजी से इस प्रकार कहनेलगे, कि-॥ २२ ॥ हे भैय्या नन्द ! वृद्धावस्था को प्राप्त हुए, पुत्र रहित और पुत्र होने की आशा न रहनेपर, हाल में ही मैंनें सुना है कि-तुम्हारे पुत्र हुआ है यह बडे आनन्द की वार्त्ता है ॥ २३ ॥ हे भैय्या नन्द ! जिस प्रकार भँवर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रेऽस्मिन्वर्त्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥ नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यबुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः । न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥

पड़े हुए पुरुषों का वचनाही दुर्लभ होता है फिर उन में एक को एक का दर्शन होना तौ अत्यंत ही कठिन है यदि ऐसा होय तौ दूसरे जन्म की समान होता है, तिसी प्रकार इस संसारचक्र में पड़े हुए तुम, फिर जन्म को प्राप्त हुए से आज मुझे मिले हो यह बड़े आनंद की वार्त्ताहै क्योंकि—प्रियमित्रोंका दर्शन होना परमदुर्लभहै ।२४॥जिसप्रकार जल के प्रवाहके वेगसे वहकर जानेवाले तृणकाष्ठादिकी स्थिति एकस्थानपरनहीं रहसक्ती तिसीप्रकार चित्रविचित्र कर्म करनेवाले प्रियमित्रों का प्रियकारक समागम एक स्थानपर नहीं होता है ॥ २५ ॥ जहाँ इष्टमित्रों के साथ तुम हाल में रहते थे वह बड़ा वन इससमय गौ आदि पशुओं को हितकारक है ना ? तथा दोषरहित और बहुत सा जल, गौत तथा वेलों आदि से युक्त है ना ? ॥ २६ ॥ हे भैया ! मेरा पुत्र (बलराम) अपनी मैया सहित तुम्हारी गोकुल में बसै है, वह तुम्हें पिता की समान माने है और तुम दोनों उस का लालन पालन करो हो, वह प्रसन्न है ना ? ॥ २७ ॥ अब पुत्र के दर्शन न होनेका क्लेश कहते हैं—जिस पुरुष का, शास्त्र में कहाहुआ धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग अपने इष्टमित्रों को सुख मिलने के निमित्त है, वह त्रिवर्ग, इष्टमित्रों के क्लेश को प्राप्त होनेपर सुखदायक नहीं होता है ॥ २८ ॥ इसप्रकार वसुदेवजी के भाषण को सुनकर समझाते हुए कहनेलगे कि—हे भैया वसुदेव ! तेरे देवकी के विषैं उत्पन्न हुए बहुत से पुत्र कंस ने मारडाले, यह बड़ी अनर्थ की वार्त्ता हुई, एक पिछली कन्या शेषरही थी वह भी स्वर्ग को चलीगई ॥२९॥वास्तवमें इसप्राणी की सब स्थिति दैव के ही ऊपर निर्भर है, इसकारण जब इस का पुत्रादिसुख देनेवाला दैव क्षीण होजाता है तबही वह पुत्रादि नष्ट होजाते हैं और वह दैव ही जिसको सुख देनेवाला होताहै यदि उसको पुत्रादिकावियोग हुआ होय तौ भी वह दैवही फिर उनका संयोग करादेता है इसप्रकार अपने को सुखदुःखों के प्राप्त होनेका कारण दैवहीहै, ऐसा जो जानताहै वह कदापि मोह को प्राप्तनहीं होताहै, अर्थात् दैवयोग से मरण को प्राप्त हुओं का भी कालान्तर में दर्शन और वियोग को प्राप्त हुओं का भी काला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥ वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको देयो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द० पू० वसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ७ ॥ ७॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥ कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वंति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचरी-

न्तर में संयोग होने का संभव होने से तुम मन में किसी प्रकार का दुःख न मानो ॥३०॥ इस प्रकार नन्दजी के कथन को सुनकर दुःख को विसार के नन्दजी से वसुदेवजी कहने लगे कि-हे भैय्या नंद! तुमने, कंस को जो वार्षिक कर देना था सो देदिया और हमारी तुम्हारी भेट भी होगई, अब आगे को यहां अधिक दिन न ठहरो, क्योंकि गोकुल में उत्पात होते हैं इस कारण तुम शीघ्रही लौटकर चले जाओ ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि—इस प्रकार वसुदेवजी के कहनेपर वह नन्दादि गोप, उन की आज्ञा लेकर गाड़ियों में बैल जोतकर गोकुल को चलदिये ॥३२॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस षष्ठ अध्याय में, वसुदेवजी के कहने से नंदजी, गोकुल को जाते में मार्ग के विषैं मरण को प्राप्त हुई राक्षसी को देखकर और उस की मृत्यु को सुनकर आश्चर्य में होगए यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजन्! वसुदेवजी का कथन मिथ्या नहीं होसक्ता ऐसा विचार करते हुए वह नन्दजी, मेरे पुत्र को कोई न कोई भयंकर संकट प्राप्त हुआ होगा इस प्रकार मन में शंकित होकर मार्ग में ही सब दुःखों को दूर करनेवाले श्रीहरि की शरण गए ॥ १ ॥ इधर कंस ने छोटे २ बालकों को मारने के निमित्त भेजी हुई बालकों का घात करनेवाली पूतना नामक भयंकर राक्षसी, नगर, ग्राम, और गोकुल आदि के विषैं बालकों का वध करती हुई विचरने लगी ॥ २ ॥ हे राजन्! जिन नगर आदिकों में अपने २ कार्यों के करने में लगेहुए पुरुष, भक्तपालक श्रीकृष्ण का, राक्षसों का नाश करनेवाला श्रवण कीर्त्तनादि नहीं करते हैं तहाँ ही वह राक्षसादि विघ्न करते हैं अर्थात् स्वधर्म्माचरण में भगवान् का श्रवण कीर्त्तनादि करनेवाले पुरुष जहाँ रहते हैं तहाँ भी राक्षसों की शक्ति नहीं चलती है फिर साक्षात् भगवान् के विषैं किसप्रकार चलसक्ती है? ॥ ३ ॥ आकाश में विचरनेवाली यथेच्छ रूप धारण करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केदोपेत्यं पूतना नन्दगोकुलम् ॥ योपित्त्वा मायया त्मानं प्राविशत्कामचारिणी॥ ॥ ४ ॥ तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमां ॥ सुवाससं कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुंतलभूषिताननाम् ॥ ५ ॥ वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अंसंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेसदंतकं ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥ विबुद्ध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ॥ अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां बहिर्मृदुः कोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्म-

वाली वह राक्षसी पूतना, एकसमय अपनी माया से, श्रेष्ठ स्त्रीका वेष धारण करके नंदजी की गोकुल में जाय उन के घर में घुसगई ॥ ४ ॥ तिस स्त्री को, अपने पति को देखने के निमित्त हाथ में कमल लेकर आईहुई यह अति रूपवती लक्ष्मी ही है ऐसा सब गोपियों ने जाना, उस की वेणी में मल्लिका के पुष्प गुँथेहुए थे, उस के स्थूल कटिपश्चाद्भाग करके और बड़े २ स्तनों करके दोनों ओर को खिचने के कारण मानो उस का मध्यभाग (पेट) दुर्बल होरहा था, वह उत्तम वस्त्र पहिरेहुए थी, उसके हलतेहुए कर्णभूषणों (कर्णफूलों) की कांति से अधिक चमकनेवाले केशों करके उस का मुख शोभित होरहा था और वह सुन्दर हास्ययुक्त कटाक्षोंको फेंककर गोकुलवासी पुरुषों के चित्तों को खैंचलेतीथी इसकारण उन्होंने उसे रोका नहीं, गोपियों को तो, लक्ष्मी ही आई है ऐसा विदित हुआ इसकारण अलग ही रहीं अर्थात् किसीकी भी न रोकीहुई वहपूतना नंदजीके घर में चलीगई ॥५॥६॥ और तहां छोटे २ बालकों को ढूँढनेवाली तिस पूतना ने, प्रारब्धयोग से, शय्यापर सोए हुए, दुष्टों का संहार करनेवाले परन्तु राख से ढकेहुए अग्नि की समान जिन्होंने अपना प्रचण्ड तेज गुप्त कर रक्खा है ऐसे तिस श्रीकृष्णरूप बालक को देखा ॥ ७ ॥ तब चराचर जगत् के अंतरात्मा वह श्रीकृष्ण, तिस पूतना को, यह छोटे २ बालकों को मारने वाली पिशाची है, ऐसा जान अपने नेत्रों को मूँदकर सोते रहे, उस समय, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष, रज्जु समझकर सोते हुए सर्प को उठालेता है तिसी प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूपको न जाननेवाली तिस पूतना राक्षसीने दुष्टोंकानाश करनेवाले तिन अनंत भगवान् को, 'यह बालक है ऐसा समझककर' उठाकर अपनी गोदी में लेलिया ॥ ८ ॥ यदि कहो कि—यशोदा और रोहिणी इन दोनों ने उसे निषेध क्यों नहीं करा ? तहां कहते हैं कि—वह यशोदा और रोहिणी दोनों माता, बाहर से कोमल और सुन्दर चित्र विचित्र दीखनेवाले, म्यान के भीतर विराजमान तीक्ष्ण तलवार की समान बाहर से माता की समान प्रेम करनेवाली और मनोहर आचरण दिखाती हुई परन्तु भीतर क्रूरस्वभाववाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठतां ॥ ९ ॥ तस्मिंस्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ ॥ गाढं करांभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सा मुंच मुंचालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाऽखिलजीवमर्मणि ॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा सादिर्महीद्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेंद्र महदासीत्तदं-

तिस सुंदर स्त्री को एकाएकी घर में देखकर उस के तेज से चकाचौंध मे पड़ी हुई और 'इस बालक की माता यह है अथवा मैं हूँ' इस विषय में मोहित होकर केवल उस की ओर को देखती हुई खड़ी रहीं अर्थात् तैने बालक को क्यों उठालिया है इतना भी उन दोनो ने उस से नहीं कहा ॥ ९ ॥ तिस भयंकर पूतना ने तहां श्रीकृष्ण को गोदी में लेकर अति कठिन से पचनेयोग्य विष जिस में भरा हुआ है ऐसा अपना भयंकर स्तन दिया, तब तौ क्रोध युक्त हुए भगवान् ने दोनो हाथों से वह उस का स्तन जोर से पकडकर, वह प्रसूत नहीं हुई थी इस कारण उस के स्तनों में दूध कुछ भी नहीं था, केवल विष ही था सो भगवान् ने उस के प्राणों सहित विष को पीना प्रारंभ किया॥१०॥ तब तौ उस के जीव के सब मर्मस्थानों में पीडा होने लगी, सो छोड, छोड, बस ! इस प्रकार कहनेवाली वह पूतना राक्षसी नेत्रों को फाड़कर हाथ पैरों को वारंवार पीटने लगी और उस के सब शरीर से पसीना टपकने लगा तब तौ वह बड़े शब्द से रोने लगी ॥ ११ ॥ बड़े गम्भीर वेगयुक्त उस के तिस शब्द से पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, ग्रहों सहित अन्तरिक्ष लोक डगमगाने लगा, सात पाताल और आठों दिशाओं में वह शब्द गुञ्जारने लगा, क्या वज्रपात हुआ ? ऐसे भय से प्राणी पृथ्वीपर गिरनेलगे ।१२। इस प्रकार प्राणों को खैंच कर भगवान् स्तनपान करने लगे तब स्तनों में प्राणनाशक पीड़ा उत्पन्न होनेपर मरणकाल में मृत्युपीडा से व्याकुल हुई वह राक्षसी पूतना, मायिक स्वरूप धारण करने में असमर्थ होगई तब तौ उस ने अपना वास्तविक (असली) स्वरूप धारण करलिया और वह अपने मुख को फैलाकर और केश तथा हाथ पैरों को फैलाकर प्राणों को त्यागती हुई बज्र से ताडना करे हुए वृत्रासुर की समान गोकुल में गिरपडी ॥ १३ ॥ हे राजश्रेष्ठ ! उस के देह ने गिरते गिरते भी छः कोस पर्य्यंत की भूमि पर के वृक्षों का चूर्ण करडाला, उस समय गौ मनुष्यादिकों को छोड कर केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्भुतम् ॥१४॥ ईषामात्रोऽग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्द्धजम् ॥ १५ ॥ अंधकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ वद्धसेतुभुजोर्वंघ्रिशून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडंतमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥१८॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु

वृक्षों ही का चूर्ण हुआ यह एक बडाही आश्चर्य्य हुआ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जिस के मुख में हलके अग्रभागकी समान भयङ्कर दाढें हैं, जिसकी नासिका के छिद्र पर्वतकी गुहा की समान हैं, जिस के ऊपर पर्वतसे गिरीहुई शिलाओं की समान स्तन हैं और जो भयङ्कर और फैलेहुए लालवर्ण के केशों करकै युक्तहै ॥ १५ ॥ अंधेरिये कूप की समान जिस के नेत्र हैं, जो नदीके कड़ारों की समान जंघाओं से भयङ्कर है, जिस के फैलेहुए हाथ घुटुए और पैर नदी के ऊपर बाँधेहुए पुल की समान लम्बे हैं और जिसका पेट सूखेहुए तालावकी समान है ॥ १६ ॥ ऐसे तिस भयङ्कर शरीर को देखकर पहिले तिसके बड़ेभारी शब्दके साथ रुदन करनेपर जिनके हृदय विदीर्ण होगए थे, कान गुम्म होगए थे और शिरों में पीड़ा होनेलगी थी वह सब गोप और गोपी, अत्यन्त भयभीत होगए ॥ १७ ॥ और तिस पूतना के वक्षःस्थलपर निर्भयपने से क्रीड़ा करनेवाले (हाथ पैर आदि चलानेवाले) बालक कृष्ण को देखकर जिनको परमस्नेह के कारण व्याकुलता होगई है ऐसी तिन गोपियों ने तत्काल उस के पास जाकर कृष्ण को उठाकरगोदीमें लेलिया ॥१८॥तदनन्तर तिन गोपियोंने यशोदा और रोहिणी के साथ में तिस बालकके सब अङ्गों के विषैं गौ की पूँछ फिराना, उठावने उठाना इत्यादि करके तिसकी उत्तमप्रकार से रक्षा करी ॥ १९ ॥ प्रथम तिस बालकको गोमूत्र से स्नान कराया फिर गौके चरणों की धूलि और गौके गोबर से तिसके ललाट आदि बारह स्थानों में केशवादि बारह नामों से तिलक लगाकर रक्षा करी ॥ २० ॥ इस प्रकार राक्षसी के वक्षःस्थलपर पड़ेहुए तिस बालक को भूतबाधा होगई होयगी इसकारण प्रथम तो घबराहट में अपने आप आचमन आदि विनाकरेही उसकी रक्षा करी और जब उनकी घबराहट दूरहोकर कुछएक धैर्य हुआ तब उन गोपियों ने अपने हाथ पैरों को धोकर और आचमन करके प्रथम अपने हस्त आदि के विषैं भिन्न २

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यर्थं बालस्य बीजंन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अंघ्रयोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥ चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ॥ क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजंतमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ॥ भुंजानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्मांडा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ को-

अनादि ग्यारह बीजों का न्यास करके अर्थात् हस्तशुद्धि के विषैं तीन बीज और दोनों हाथों की सन्धियों के विषैं चार चार बीज तथा फिर चरण आदि एक २ अवयव के विषैं अनादि एक २ बीज इसप्रकार अपने न्यासकरके तिन गोपियोंने बालक श्रीकृष्ण के अङ्गों मे भी तिसीप्रकार बीजों का न्यास करा ॥ २१ ॥ हे हमारी रक्षा करनेवाले बालक ! तेरे चरणों की अज (जन्म रहित ईश्वर) रक्षा करैं, तथा घुटनों की मणिमान् जानुओं की यज्ञ, कमरकी अच्युत, उदरकी हयग्रीव, हृदय की केशव, तेरे वक्षःस्थल की ईश, कंठ की सूर्य, भुजाओं की विष्णु और तेरे मस्तक की ईश्वर रक्षा करैं२२। चक्रधारी हरि तेरे अग्रभाग में रहैं, गदाधारी हरि तेरे पृष्ठभाग में रहैं, धनुर्धारी मधुसूदन और खड्गधारी अजन(अजन्मा भगवान्) यह दोनों तेरेदोनों पार्श्व में रहैं, शंखधारी उरुगाय (अनेकों पुरुषों करके गान करे हुए भगवान्) तेरे चारों ओर रहैं, उपेन्द्र (वामनरूप भगवान्) तेरे ऊर्ध्वभाग में रहैं, गरुड़ तेरे अधोभाग में रहैं और हलधर बलरामजी तेरे सब ओर रहैं ॥ २३ ॥ इसप्रकार बाहर की रक्षा करके अन्तरंग रक्षा करती हैं, कि—हृषीकेश तेरी इन्द्रियों की रक्षा करें, नारायण तेरे प्राणों की रक्षा करैं, श्वेत द्वीप के स्वामी भगवान् तेरे चित्तकी और योगेश्वर तेरे मन की रक्षा करें, ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धि की रक्षा करैं, षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न ईश्वर तेरे अहंकार की रक्षा करैं, क्रीडा करते में तेरी गोविन्द रक्षा करैं, शयन करते में तेरी माधव रक्षा करैं ॥ २५ ॥ वैकुण्ठपति तेरी चलते में रक्षा करैं, बैठेहुए तेरी लक्ष्मीपति रक्षा करें, सब पिशाचों को भय देनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनकाल में तेरी रक्षा करैं ॥ २६ ॥ डाकिनी (दुष्ट स्त्रियें), राक्षसी, कूष्मांड नामक रुद्र तथा जो बालग्रह हैं वह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और जो विनायक (विघ्नकर्त्ता) हैं ॥ २७ ॥ कोटरा, रे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain; Digitizagtion by eGangotri

टेरा रेवती[१३] ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ॥ उन्मादा ये[१८] ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये[२४] ॥ सर्वे नश्यन्तु ते[२७] विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः[४] कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥ तावन्नन्दादयो गोपा मथुरायां व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समासः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठवोट्टितं ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ३४ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिं ॥ ३५ ॥

वती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका, आदि जो उन्माद हैं तथा जो देह, प्राण और इन्द्रियों को दुःख देनेवाले अपस्मार ग्रह हैं ॥ २८ ॥ तथा जो स्वप्न में दीखनेवाले बडे२ उत्पात हैं और जो आगे को दुःखकी सूचना देनेवाले ग्रह हैं तथा जो वृद्ध और बालकों के ऊपर झपटा करनेवाले ग्रह हैं वह सबही विष्णुभगवान् के नामों का उच्चारण करने से भयभीत होजाते हैं इसकारण वह सब पहिले कहेहुए नामों के उच्चारण करने से नष्ट होजायँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णके विषैं परम प्रेम करनेवाली तिन गोपियों ने, जिस की रक्षाविधि करी है ऐसे तिस बालक को यशोदा माता ने दूध पिलाकर शयन करादिया ॥ ३० ॥ इतनेही में मथुरा से गोकुल में आकर पहुँचेहुए नन्दादि गोप, तिस मरे पडेहुए पूतना के शरीरको देखकर बडे आश्चर्य में होगए ॥ ३१ ॥ और कहनेलगे, कि-अहो ! वसुदेवजी पूर्वजन्म में बडे तपस्वी ऋषि होंगे, वही यहाँ आकर जन्मे हैं, अथवा यह पूर्वजन्म में बड़े ज्ञानी होंगे क्योंकि-तिन वसुदेवजी ने जो 'गोकुल में उत्पात होते हैं' ऐसा कहा था, वही देखो उत्पात हमारे दृष्टगोचर होरहे हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर गोकुल के रहनेवाले तिन गोपोंने उस पूतना के शरीर को कुल्हाड़ोंसे काटकर अलग२टुकड़े करदिये।३३। दूसरा एक आश्चर्य यह हुआ कि-श्रीकृष्ण के स्तनपान करने से तत्काल पापरहित हुआ वह उस राक्षसी का शरीर, जब जलनेलगा तब उस में से अगर की सुगंधि की समान सुगन्धियुक्त धुआं निकला ॥३४॥ पुरुषों के बालकों को मारनेवाली और रक्त भक्षण करनेवाली पूतना सी राक्षसी जब मारने की इच्छा से भी श्रीकृष्ण को स्तनपान कराकर सद्गति को प्राप्त होगई तो फिर माताओं * की समान गौ तथा गोपियोंकी

* ब्रह्माजी ने, गोपों के बालक और बछड़ों को चुरालिया तब श्रीकृष्ण ने गोपों के बालक और बछड़ों का रूप धारण करा था इसकारण उससमय बछड़े और गोप बालकरूप भगवान् की माता गौ और गोपी हुई उसी अभिप्राय से यहाँ 'माताओं' ऐसा बहुवचन दिया है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंपुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किंनु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः ॥ अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिवत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीरा किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥ पयांसि यासामपिवत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलं ॥ भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः॥३९॥तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः४०कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य ए-

समान तिन श्रीकृष्णजी के विषैं परमप्रीतियुक्त होकर तिन का परमप्रिय करने वाला आस्तिक्य बुद्धि और प्रेमलक्षण भक्ति से परमात्मा कृष्णको तुलसी आदि प्रिय वस्तुओं का समर्पण करनेवाला भक्त, उत्तम गति को क्यों न प्राप्त होगा ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ भगवान् ने, त्रिलोकी के वन्दनीय तथा ब्रह्मादि देवताओं के भी प्रणाम करने योग्य और भक्तों के हृदयों में रहनेवाले अपने चरण से जिस के शरीर को खूँदकर स्तनपान करा वह पूतना राक्षसी भी यदि देवकी और यशोदाको प्राप्त होनेयोग्य गति को प्राप्त होगई तो जिन के स्तनोंका दूध श्रीकृष्णने पानकरा वह गौ और यशोदादि गोपी उस गतिको प्राप्त होंगी इस में कहना ही क्या है ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सो हे राजन् ! कैवल्य (मोक्ष) आदि सब पुरुषार्थों को देनेवाले देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ने, जिन के पुत्रस्नेह से टपकेहुए दूधों को संतोषपूर्वक पिया, तिन श्रीकृष्ण के विषैं निरन्तर पुत्रदृष्टि से स्नेह करनेवालीं गौ और गोपियों को, अज्ञान से प्राप्त होनेवाला संसार ही, फिर प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ ३९ ॥ ४० ॥ पूतना के मृतक शरीर को भस्म करा तब, चिता में से निकलेहुए धूम की अगर की समान सुगन्धि को, पूतना राक्षसी के आने से पहिले ही गौ चरानेको दूरगएहुए गोकुलवासी पुरुष सूँघकर, 'यह क्या आश्चर्यहै ! कहाँ से यह सुगंधि आतीहै!' ऐसे आपसमें कहते कहते गोकुलमें आकर पहुँचे॥४१॥और तहाँगोपोंकेकहेहुए पूतनाके आगमन,उसकी सुंदरता,उसका कार्य्य तथा मरण और बालक की कुशल सुनकर वह गोप बडे आश्चर्य में हुए ॥४२॥ हेराजन् ! उदार बुद्धिनन्दजी ने तो, मृत्यु के मुख से बचे हुए पुत्र श्रीकृष्ण को गोदी में लेकर मस्तक के विषैं चुम्बन करा और परम आनन्द को प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य, इस श्रीकृष्ण के अद्भुत बालच-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति० भा० म० द० पू० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुध्यतः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लुते जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ॥ ४ ॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्ना-

रात्रि को भक्तिपूर्वक श्रवण करता है उस को गोविन्द भगवान् के विषैं परम प्रीति प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कंध के पूर्वार्द्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ अब इस सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने शकटासुर को ऊपर को उडाकर तृष्णावर्त्त दैत्य को नीचे लुटाकर और माता को मुख में जगत् दिखाकर क्रीडा करी, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीकृष्ण की बाललीला को श्रवण करकै आनन्द को प्राप्त हुआ राजा फिर वही प्रश्न करने के निमित्त बोला, कि—हे समर्थ शुकदेवजी! भगवान् श्रीहरि ईश्वर, जिस जिस मत्स्यादि अवतार को धारण करके जो जो वेद का उद्धार आदि कर्म करते हैं वह वह संपूर्ण कर्म मेरे कानों को मधुर लगनेवाले और मन को आनंद देनेवाले हैं ।१। तथापि जिस चरित्र को श्रवण करनेवाले मनुष्यमात्र की मन की ग्लानि और तिस ग्लानि से उत्पन्न होनेवाली नानाप्रकार की तृष्णा तत्काल नष्ट होजाती हैं अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै श्रीहरिके विषैं भक्ति उत्पन्न होती है और भगवद्भक्तों की मित्रता होती है, वह ही श्रीहरि का चरित्र यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करतेहैं तो मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥२॥ तथा इससमय मनुष्य लोकमें प्राप्त होकर मनुष्यजातिका अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्ण के और बालचरित्र भी मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले, कि—हे राजन् ! एक दिन श्रीकृष्ण ने करवट लिया, इसकारण उसके कौतुक से मंगलस्नान कराना था और उसही दिन श्रीकृष्णका जन्मनक्षत्र (रोहिणी नक्षत्र) का योग आगया था इसकारण तिन दोनों उत्साहों के कारण गोकुल की सब सौभाग्यवती स्त्रियें इकट्ठी हुई थीं, उस समय यशोदा ने, बाजों का शब्द, गोपियों के गीत और ब्राह्मणों की वेदध्वनि कराकर श्रीकृष्णको उबटना करकै मंगलस्नान कराया ॥ ४ ॥ तदनन्तर तिस नन्दरानी यशोदा ने, जिस के—अंगा टोपी आदि वस्त्र पहिराना, गहने पहिराना, कस्तूरी कीसुगंधि लगाना, गोरोचनका तिलक लगाना, नेत्रोंमें काजल डालना इत्यादि कार्य्य करेहैं और अन्न, पात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्रुदितं सुतस्य सा रुदन्तनार्थी चरणावुदक्षिपत्।६। अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पकमवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्त्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम्॥७॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ इति ब्रुवन्तोऽतिविवादमोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रुरातवत् ॥ ८ ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कु-

वस्त्र, माला, इच्छित पदार्थ और गौ देकर उत्तम सत्कार करेहुए ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन कराकर जिसके रक्षाबन्धनादि मङ्गल कार्य्य करे हैं ऐसे नींद में आतेहुए श्रीकृष्ण को, छकड़े के नीचै पालने में धीरे धीरे झोंटे देकर गीत गाते गाते सुलादिया ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह औत्थानिक उत्सव के उत्साह को पूरा करने में उत्कण्ठित हुई उदारचित्त यशोदा, अपने घर आईहुई गोपी आदि व्रजकी स्त्रियोंका, हरिद्रा कुंकुम देना, गोद भरना, वस्त्र भूषणादि देना इत्यादि से सत्कार करने में लगरही थी, सो उसने श्रीकृष्ण का रोना किञ्चिन्मात्र भी नहीं सुना. इधर दूध पीनेकी इच्छा से रोदन करनेवाले वह बालक श्रीकृष्ण, रोतेरोते अपने पैर ऊपर को चलाने लगे ॥ ६ ॥ तबतौ छकड़े के नीचै सोते हुए तिस बालक के छोटे और नवीन पत्तेकी समान कोमल चरण से ताड़ना कराहुआ वहगाड़ा, जिसके ऊपर के चाँदी सोनेके सिवाय काँसी आदि के दूधदही से भरेहुए पात्र गिरपड़े हैं. और जिसके पहिये तथा धुरे अस्तव्यस्त टूटेपड़े हैं और जिसका नीचैका भागसब टुकड़े२ होगया है ऐसा होकर नीचै उलटकर गिरपड़ा ॥ ७ ॥ तब उस उत्सव में जो यशोदा आदि गोकुल की स्त्रियें इकट्ठी हुईथीं उन्हो ने और नन्दादि गोपोंने उस गाड़ेको उलटा हुआ देखकर बड़ा आश्चर्य माना और सब घबड़ागए तथा गाड़ा आपसे आप कैसे उलट गया ऐसी वार्ता करते हुए उत्पात आदि अनेकों प्रकार की शङ्का करनेलगे और मोह में पड़ेहुए वह सब तिसबालक और गाड़ेके चारोंओर इकट्ठेहोगए और यहकोई उत्पातहै ? अथवा अपने आपही गाड़ा गिरपड़ा है! इस प्रकार संशय में पड़ेहुए तिन गोप और गोपियों से तहां खेलते हुए बालकों ने ऐसा कहाकि—रोतेहुए कृष्णने ही अपने पैरसे इस गाड़ेको उलटदिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ ९॥ परन्तु उन नन्दादि गोपोंने, तिन बालकों का कहना सत्य नहीं माना क्योंकि—वह श्रीकृष्ण बालक के अपरिमित बल को नहीं जानते थे ॥ १० ॥ और रोतेहुए तिस बालक को गोदी में लेकर, इसको कोई पि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपायय्यत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदंभेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्युक्तमालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

शाचबाधा होगई है, ऐसी मनमें शङ्कित हुई यशोदा ने ब्राह्मणों से, राक्षसों का नाश करने वाले वेदमंत्रोंसे तिसके शरीर पर प्रोक्षण कराया और आशीर्वाद दिलाकर पीछे से स्तन पान कराया ॥ ११ ॥ अब भगवान् की सामर्थ्य को न जाननेवाले ब्राह्मणों का चरित्र कहते हैं कि—ब्राह्मणों ने बलवान् गोपों से उस गाडेको पहले की जगह रखवाकर सब पात्र उसमें रखवादिये और श्रीकृष्ण कोभी पहिलेकी समान पालने में लिटाकर ग्रहोंकी शान्ति के अर्थ नवग्रहों का पूजन करके श्रीकृष्ण तथा गाडेके सबओर आठों दिशाओं में आठ दिक्पालों को बलि दिया और दधि, अक्षत तथा कुशोदक आदिसे पूजन करा ॥ १२ ॥ जिन के चित्त को निश्चय है ऐसे नन्दगोपने भी, जो ब्राह्मण, गुणो में दोष लगाना, मिथ्याभाषण, पाखण्डीपन, शान्ति के साथ न रहना, हिंसा और अभिमान इन दुर्गुणों से रहित होते हैं उन सत्यस्वभाव ब्राह्मणों के दिएहुए आशीर्वाद निष्फल नहीं होते हैं, ऐसा मन में विचारकर उस बालक को अपने पास लेकर, उन ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन कराकर, अरिष्ट की शान्ति के निमित्त होम कराकर और सामवेद, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद से संस्कार करे हुए और जिन में पवित्र औषधि डाली हैं ऐसे जलों से अभिषेक करके उन ब्राह्मणों को जिनमें छः रस हैं ऐसा अन्न अर्पण करा ॥१३॥१४॥ १५ ॥ और उन को, अपने पुत्र का कल्याण होने के निमित्त, सूधापन आदि सकल गुणयुक्त और वस्त्रों की झूलें, फूलों की माला तथा सुवर्ण के फूलों की माला पहिरे हुए गौ दीं, उस समय उन ब्राह्मणों ने भी आशीर्वाद दिये ॥ १६ ॥ हे राजन्! जो ब्राह्मण मन्त्र जाननेवाले और योगाभ्यासी हैं वह जो आशीर्वाद कहेंगे सो तैसे ही होंगे; निष्फल कभी नहीं होंगे, यह स्पष्ट है ॥ १७ ॥ एक समय वह पतिव्रता यशोदा, अपने सुत को गोद में बैठाकर उस को लाड करती हुई खिला रही थी सो अचानक पर्वत के शिखर की समान भारी लगनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्त्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः । चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमाच्छन्नमुष्णैश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ॥ सुतं यशोदानापश्यत्स्वयं न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्त्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरत्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥ रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नन्द-

उन कृष्ण का भार सहन न कर सकी ॥ १८ ॥ तब श्रीकृष्ण के पेट में के प्राणियों के भार से पीडित होने के कारण आश्चर्य में हुई तिस यशोदा ने, उस बालक को भूमिपर बैठाकर (तृणावर्त्त से अपनी मृत्यु बचाने के निमित्त, मुझे गोद में से नीचे बैठाल देय इस इच्छा से कृष्ण के ही करे हुए भार को न जान कर) उस ने उत्पात की शङ्का से महापुरुष भगवान् का (हे परमेश्वर ! अपने दिये हुए पुत्र की तुम ही रक्षा करो) ऐसा ध्यान करा और घर के संसारी काम करनेलगी ॥ १९ ॥ इधर छोटे २ बालकों को मारने के निमित्त कंस का भेजा हुआ, कंस का सेवक तृणावर्त्त नामवाला दैत्य, चक्रवात (आंधी) के स्वरूप से गोकुल में आया और उस ने धूलि से सब गोकुल को ढककर सब के नेत्र धूलि से अत्यन्त भरदिये और भयङ्कर बडे भारी शब्द से पूर्व आदि दिशा तथा अग्नि आदि कोणों को शब्दायमान करके आंगनके विषैं भूमिपर बैठे हुए कृष्णको उठाकर आकाश में लेगया ॥ २० ॥ २१ ॥ उस समय दो घडी पर्यन्त सकल गोकुल, धूलि और अन्धकार से भरगया था; यशोदा ने जहां अपने बालक को बैठाया था वहां वह उस ने नहीं देखा ॥ २२ ॥ तृणावर्त्त की उत्पन्न करी हुई धूलि आखों में भरजाने से घबडाये हुए सब गोकुलवासी ऐसे होगये कि किसी ने अपनेको तथा दूसरे को देखा नहीं ॥ २३ ॥ इस प्रकार भयङ्कर आंधी से गोकुल में धूलि की वर्षा होनेलगी तब, बालक का मार्ग न देखकर उस को देखने का उपाय करने में असमर्थ्य हुई वह माता यशोदा, बारम्बार तिस बालक कृष्णके गुणों को स्मरण करती हुई, जैसे बच्चेके मर जाने पर गौ अति दीनता से रम्भाने लगती है तिसी प्रकार करुणस्वर से शोक करने लगी और शोक से व्याकुल होकर मूर्छित हो भूमिपर गिरपडी ॥ २४ ॥ तदनन्तर धूलि की वर्षा का वेग कम होकर उस आंधी के झोकों के भी कम होनेहर, गोपियें, यशोदा का रोना सुनकर उस के समीप आईं और तहां श्रीकृष्ण को न पाकर वह अ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ २५ ॥ तृणावर्त्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभो गतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे २८॥ तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालं ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तं ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः

अत्यन्त दुःखित चित्त हो और मुखपर दुःख के आंसू बहाकर रुदन करने लगीं ॥२५॥ इधर तृणावर्त्त भी आंधी का रूप धारण करके कृष्ण को उठाय किसी प्रकार ऊपर आकाश में गया, परंतु भगवान् उस को मारने के निमित्त फिर भारी होगए इस कारण वह कृष्ण को लेकर आगे को (मथुरा को) न जासका किंतु कृष्ण के भार से उस के जाने का वेग रुकगया ॥ २६ ॥ तब उस ने दैत्यरूप धारण करके कृष्ण को मारने का मन में विचार करा तब कृष्ण ने उस का गला पकडलिया; उस समय गलेमें पकडा हुआ वह दैत्य, अपनेसेभी अधिक भारी तिस अद्भुतबालक (श्रीकृष्ण) को पर्वतसमान मानता हुआ उनको, गला छुडाकर दूर करनेकोभी समर्थ नहीं हुआ।२७।किन्तु गला पकडनेसे ही निश्चेष्ट हुआ तथा जिस के नेत्र बाहर निकल पडे हैं और शब्द बन्द होकर प्राणहीन हुआ वह दैत्य, बालकसहित गोकुल में, गोपालों ने दुहने आदि की सम्मति करने को बैठने के निमित्त एक बडीभारी शिला बिछारक्खी थी तिसपर आगिरा ॥ २८ ॥ उससमय एक स्थानपर इकट्ठी होकर रोतीहुई स्त्रियों ने, जैसे रुद्र के बाण से बिधकर त्रिपुरासुर नीचे गिरा था तैसे ही आकाश में से, नीचे शिलापर पडेहुए और जिस के सकल अङ्ग टूटगए हैं ऐसे उस भयङ्कर दैत्य को देखा ॥ २९ ॥ और उस की छातीपर लटकेहुए श्रीकृष्ण को देखकर, उन गोपियों ने उन को शीघ्रता से उठाकर लेजाय उन की माता को दिया और वह सब आश्चर्य में होगईं. इसप्रकार आकाशमार्ग से राक्षस के लेगएहुए तथापि मृत्यु के मुख में से छूटकर कुशलपूर्वक आयेहुए तिन श्रीकृष्ण को फिर पाकर, यशोदा आदि गोपी और नन्द आदि सकल गोप अतिहर्ष को प्राप्तहुए ॥ ३० ॥ और परस्पर कहनेलगे कि—अहो ! यह कैसा बडाभारी आश्चर्य है कि—हम ने कहीं भी ऐसा न देखा न सुना है. यह बालक राक्षस के मारडालने पर भी फिर आप ही मिलगया. इतने ही में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं-पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदं ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धू-न्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेव-वचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदाऽर्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्य ज-नेनी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालयती राजन् जृंभतो ददृशे इदम् ॥ ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येंदुवन्हिश्वसनांबुधींश्च ॥ द्वीपान्न-गांस्तद्दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं

दूसरे कहनेलगे कि—अहो ! इस में कौन आश्चर्य है ? यह ऐसा ही होना था; क्योंकि-यह दैत्य, क्रूरस्वभाव और हिंसक था इसकारण अपने ही पाप से मरण को प्राप्त होगया. साधु की सर्वत्र समदृष्टि होती है इसकारण वह भय से छूटजाता है, हमने वा हमारे बालक ने किसी की हिंसा आदि नहीं करी इसकारण यह मृत्यु से भी छूटगया है ॥ ३१ ॥ अहो ! हमने पूर्वजन्म में क्या कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तप करा था, वा भगवान् का पूजन करा था अथवा कोई कूप तालाव आदि बनवाया था, या विधि विधान से पञ्चमहायज्ञ करे थे अथवा तुलादान आदि दान करा था, या सकल प्राणीमात्र का भगवान् की बुद्धि से स-त्कार करा था, यह हम कुछ नहीं जानते; जिस के पुण्य से कि-मरण को प्राप्तहुआ भी यह बालक, हम अपने बांधवों को हर्षित करताहुआ फिर प्राप्तहुआ है सो वास्तव में हमारा अहोभाग्य है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार तिस बृहद्वन नामक गोकुल में अतिआश्चर्य कारी चमत्कार देखकर विस्मितहुए नन्द गोप ने 'गोकुल में उत्पात होते हैं' ऐसा वसु-देवजी का वचन ही वारम्वार सत्य होता है, यह समझा ॥ ३३ ॥ अब, तृणावर्त्त दैत्य के आने के समय, अपना भारीपन देखकर सन्देह में हुई माता यशोदा को, विदित करने के निमित्त श्रीकृष्णजी ने अपने मुख में जम्भाई के समय ब्रह्माण्ड दिखाया सो वर्णन करते हैं—एकसमय पुत्र के स्नेह में भरीहुई परम सौभाग्यवती यशोदा ने, खेलतेहुए कृष्ण को लेकर अपनी जंघापर बैठाया और उन को दूध से टपकताहुआ स्तन पिलाया ॥ ३४ ॥ हे राजन् । प्रायः पेट भरनेयोग्य दूध पीलेनेपर तिन श्रीकृष्ण के सुन्दर हास्ययुक्त मुख को, चूमकर लाड़ करतीहुई तिस माता यशोदा ने, अकस्मात् जम्भाई लेतेहुए तिन के मुख में इस बाहर दीखते हुए सकल विश्व को देखा ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, दिशा, सूर्य. चन्द्रमा, अग्नि, वायु, सात समुद्र. द्वीप, पर्वत और उन पर्वतों से उत्पन्न हुई नदी, वन और स्थावर जङ्गमरूप सकल प्राणी ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ३७
इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० तृणावर्त्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः७।
श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नंदस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधियाप्रणिपातपुरःसरं ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिं ॥ नंदयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किं ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद प-

इस प्रकार यह सकल जगत् देखकर हेराजन् ! वह मृगशावाक्षी यशोदा, एक साथ भयभीत होकर थरथर कांपने लगी और नेत्र मूँदकर, मैंने यह क्या देखा ऐसा मानकर आश्चर्य में होगई ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस आठवें अध्याय में गर्गाचार्य के करे हुए श्रीकृष्ण जी के नामकरण और बाललीलारूप कौतुक में उन के ऊपर मट्टी खाने के दोष लगने पर उन के मुखमें यशोदाने विश्वरूप का दर्शन करा यह कथा वर्णनकरी है, और माता ने मेरा विश्वरूप देखा यह सुनकर मन में सन्देह करनेवाले पिता नंदजी को भी श्रीकृष्ण जी ने नामकरण करनेवाले गर्ग ऋषि के वाक्य से अपना तत्त्व सूचित करा, यह भी वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! महातपस्वी जो गर्गमुनि, वह यादवों के पुरोहित थे; इस कारण पुत्रों का नामकरण करने को वसुदेव जी ने उन से कहा तब वह एकसमय नन्दजी की गोकुल में आये ॥ १ ॥ उन को देखते ही परमप्रसन्न हुए नन्दजी ने, उठकर खडे रहकर हाथ जोडे और यह मुनि साक्षात् विष्णुही हैं ऐसी बुद्धिसे नमस्कार करके उन की पूजा करी ॥ २ ॥ तदनन्तर आदर सत्कार करेहुए उन मुनि के स्वस्थता से आसनपर विराजने के अनन्तर उन को मधुरवाणी से आनन्दितकरतेहुए नन्दजी कहनेलगे कि–हे ब्रह्मन् ! जिस के सकल मनोरथ पूर्ण हैं ऐसे आप की हम क्या शुश्रूषा करें ? ॥ ३ ॥ यदि कहो कि–पूर्ण मनोरथ था तो मैं तुम्हारे घर क्यों आया ? सो हे सर्वज्ञ ! आपसमान महात्माओं का अपने आश्रम से दूसरों के घर जाना प्रायः नहीं होता है, यदि कदाचित् होय भी तो वह दीनचित्त गृहस्थियों के कल्याण के निमित्त ही होता है इस के सिवाय अपने स्वार्थ के निमित्त कभी नहीं होता है ॥ ४ ॥ अब उन से बालकों का नामकरण करने को कहने के निमित्त उन के ज्ञान की अधिकता कहते हैं कि–हे गर्ग ऋषे ! इन्द्रियों से न होनेवाला ज्ञान जिस से मिलता है वह ज्योतिषशास्त्र तुमने आपही रचा है, जिस ज्योतिषशास्त्र से पुरुष को, बीते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीवरम् ॥ ५ ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ दारयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मयां संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुंदुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचिंतयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हंतागतांशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥ नंद उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सु-

हुए और होनहार का ज्ञान होता है ॥ ५ ॥ ऐसे तुम ज्योतिषी होकर मन्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ हो, तिस से इन बालकों के नामकरण आदि करने की कृपा करिये यदि कहो कि यह तो गुरु का काम है सो हे ऋषे ! यह ब्राह्मण जन्म पाते ही सकल मनुष्यों का गुरु होताहै ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर अति उत्साह में भरे हुए नन्दजी से 'यह गुप्तरीति से करना चाहिये,ऐसे अभिप्रायसे' निषेध करते हुए गर्गजी कहने लगे कि—हे नन्द! मैं सकल भूतलपर यादवों का आचार्य प्रसिद्ध हूँ इस कारण मेरे संस्कार करेहुए तुम्हारे पुत्र को कंस अपने मन में देवकी का ही पुत्र मानेगा ॥ ७ ॥ और यदि कहो कि—यादवों का पुत्र है ऐसा जाने, परंतु यह वसुदेव का ही उनकी देवकी स्त्री के विषैं ही उत्पन्न हुआहै, यह कैसे जानेगा ? सो हे नन्दजी ? वह पापबुद्धि कंस तेरा शत्रु कहीं उत्पन्न होगया है ' ऐसे देवकी की कन्या के कथन को सुनकर, देवकी का आठवां गर्भ स्त्री नहीं होसक्ता, ऐसी मन में नित्य चिन्ता करके साधारणतया देवकी का पुत्र कहीं तो है यह जानता है, तिस में तुम्हारी और वसुदेवजी की मित्रता है ऐसा मन में विचारकर,वही बालक तुम्हारे घर आया होगा, ऐसी तर्कना करता है, तिसपर मैं संस्कार करूँगा तो ' यह वही है ' ऐसा निश्चय करके यदि तुम्हारे बालक को उस ने मारडाला तो हमारा बड़ाभारी अन्याय होगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ नन्दजी ने कहा कि-हे ऋषिवर्य ! यदि ऐसा है तो, जिस में मेरे समीप के पुरुष भी न देखसकें इसप्रकार तुम इस गोकुल के विषैं एकांत स्थान में पुण्याहवाचन करके इन रामकृष्ण का, जो कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों को आवश्यक है वह संस्कारमात्र करदीजिये बहुत विस्तार का विधान न करिये ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार प्रार्थना करेहुए उन गर्गमुनि ने, गुप्तरीति से अपना इच्छित ही वह बालकों का नामकरण एकांत स्थान में करा ॥ ११ ॥ गर्गजी ने कहा कि—हे नन्दजी ! यह रोहिणी का पुत्र,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते रामं इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशत्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रियाः कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१९॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नंदः प्रमुदितो मेने

अपने पालन पोषण आदि गुणों से सम्बन्धियों को आनंद देगा इसकारण यह आप ही 'राम' नाम से प्रसिद्ध होगा; लोकों की अपेक्षा अधिक बलवान् होने के कारण इस को 'बल' कहेंगे; तथा किन्ही कारणों से यादवों में कलह उत्पन्न होनेपर यह उन को सदुपदेश दे कर एक करेंगे इसकारण लोक इन को सङ्कर्षण कहेंगे ॥ १२ ॥ हे नन्दजी ! प्रति युग में देह धारण करनेवाले इस तुम्हारे बालक का स्वेत, लाल और पीला यह तीन तथा और भी वर्णन होते हैं, इससमय यह कृष्णवर्ण को प्राप्त हुआ है इसकारण इसका 'कृष्ण' नाम होयगा ॥१३॥ यह श्रीमान् तुम्हारा पुत्र, पहिले कभी तो वसुदेवजी का पुत्र हुआ था इसकारण इसका दूसरा 'वासुदेव' नाम होयगा ॥ १४ ॥ इस तुम्हारे पुत्र के गुणोंके अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ आदि और कर्मोंके अनुसार गिरिवरधारी आदि बहुत से नाम और रूपहैं उन सब को मैं ही जानताहूँ और लोक नहीं जानतेहैं॥१५॥गोप और गौओंके कुल को आनन्द देनेवाला यह पुत्र तुम्हारा कल्याण करेगा, इस के द्वारा तुम सकल सङ्कटों को अनायास में ही तरजाओगे ॥ १६ ॥ हेगोकुलपति नन्दजी ! पहिले जब राजा वेनका मरण होगया था तब चोरों से पीडितहुए साधुपुरुषों की इस ने पृथुरूपसे रक्षा करी थी इसकारण बढ़ेहुए उन्हों ने तिन चोरों को जीतलिया ॥ १७ ॥ जो महाभाग पुरुष, इससे प्रीति करते हैं उनका शत्रु तिरस्कार नहीं करसक्ते हैं जैसे कि—दैत्य, विष्णु के रक्षाकरेहुए देवताओं का तिरस्कार नहीं करसक्ते हैं ॥ १८ ॥ तिस से हेनन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र, गुणों से,ऐश्वर्य से,कीर्त्ति से और पराक्रम से साक्षात् नारायण की समान है, तुम इसकी सावधानी से रक्षाकरो ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हेराजन् ! इसप्रकार नन्दजीसे कहकर गर्गमुनि, अपने घरसे चलेगए तब परमप्रसन्नहुए उन नन्दजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मानं पूर्णमाशिषां॥२०॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः॥२१॥ तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपतौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्तिं मात्रोः॥ २२॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्यां॥ दत्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितार्पदशनं ययतुः प्रमोदम्॥२३॥ यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः॥ वत्सैरितस्ततो उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः॥ २४॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम्॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थां॥ २५॥ कालेनालपेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले॥ अघृष्टजा-

ने अपने को पूर्णमनोरथ माना॥ २०॥ अब बलरामसहित श्रीकृष्णजी ने, गोकुल में बालक्रीड़ा के मिष से अनेकोंप्रकार के चमत्कार करके नन्दजी और यशोदा को जो परम आनन्दित करा, तिस का वर्णन करते हैं—नामकरण होकर थोड़ा सा ही काल बीतनेपर, राम और कृष्ण यह दोनों ही गोकुल में हाथों से और घुटनोंसे चलतेहुए विहार करनेलगे॥ २१॥ वह रामकृष्ण, फिर हाथ टेककर चलते में दोनों पैरों को सरकाते २ गोकुल में की गोमूत्रादि की कींचमें, कमर और पैरों में पहिरे हुए भूषणों में लगेहुए घूँघुरुओं के स्पष्ट शब्द के साथ मनोहरता से विचरते हुए, तिन घूँघुरुओं की झनकार से जिनका मन हर्षित हुआ है ऐसे वह मनुष्यलोक के अनुसार किसी परमनुष्य के दृष्टि पडते ही अनजान की समान भयभीत से होकर अपनी माताके समीप को लौटकर चलेजाते थे॥ २२॥ उस समय कृपा से जिनके स्तनोंमें दूध आकर टपकने लगाहै ऐसी उनकी माता (यशोदा और रोहिणी), कींच लगजाने से सुन्दर दीखने वाले अपने पुत्रों को भुजाओं से चिपटाकर उनके मुखमें स्तन देकर, उनके स्तन को पीनेपर, मन्दहास्य सहित, छोटे२दातोंवाले मुखको देखकर परम आनन्द पातीथीं॥२३॥फिरवह रामकृष्ण ग्राममें की स्त्रियोंको बाललीला दिखाने योग्य बडेहुए, उससमय वह गोकुल के बछड़ोंकी पूँछको कसकर पकड़ लेतेथे; फिर पूँछपकड़े हुए बछड़ोंसे जिधर तिधरको घसिटते हुए तिन रामकृष्णको देखनेवालीं गोकुलकी, स्त्रियें अपने२घरमें के करने योग्य कार्योंको छोड़कर वह चमत्कार देखकर अत्यन्त ही आनन्द पाती थीं॥२४॥उन रामकृष्णकी माता (रोहणी और यशोदा) जब गौ भैंस आदि सींगवाले पशुओं से अग्नि से, कुत्ते वानर आदि दाढ़वाले पशुओं से, तरवार कुल्हाड़ी आदि शस्त्रोंसे, काक गिज्ज आदि पक्षियोंसे और कीकड़ आदिके काँटों से, अति चपल और खिलाड़ी अपने बालकों को रोकने में और घरके काम छोडने में समर्थ नहीं होती थीं तब उनका मन चक्कर में पडजाता था; हे राजन्! घरके सुखकी पराकाष्ठा यही है॥ २५॥ हे राजर्षे! फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नुभिः पेद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदं ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलं ॥ शृण्वंत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुंचन कचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान् भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्य रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभां-

थोडेही काल में गोकुल में राम और कृष्ण यह दोनों ही घुटनों चलना छोडकर विना सहारेके ही सहज मे पैरों २ चलने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम सहित गोकुल में, समान अवस्था के बालकों को साथ लेकर गोकुल की बसने वालीं स्त्रियों को हर्षित करते हुए क्रीडा करने लगे ॥ २७ ॥ तिन कृष्ण का कुमार अवस्था का सुन्दर चपलपना (ढिठाई) देखकर अपने २ घर से निकल इकठ्ठी होकर नन्दजी के घर आई हुई गोपियें, उन कृष्ण की माता यशोदा को सुनाती हुई इस प्रकार स्पष्ट कहने लगीं कि-॥ २८ ॥ अरी यशोदा ! तेरौ बेटा, चाहें जब दूध दुहने कौ समय न होयतो भी हमारे बछड़ान को खोलदेय है, सो वह बछड़ा सब दूध पीजायँ हैं, यासों हमारी बडी हानि होय है और उन छोड़ेहुए बछड़ोंको पकडवेको घरके लोग दौडि कै जायँहैं तो रीते घरन में घसि कै हमारे सम्हारि कै धरेहुए दही दूधको, हमारे विनादिये ही चुराय कै खाजाय है; अरी या कृष्ण को ताड़ना करौ, बांध राखौ, ऐसौ भय दिखायवे को चिल्लावैं है तौ हँसन लागै है; भय नहीं मानै है; दही, दूध, माखन आदि पदार्थ ऊँचे पै रक्खे हैं तो उन्हें चुरायवे को उपाय करै है; केवल आप ही नहीं खाय है किन्तु अपने खायवे से पहिले वह बानरों को बांट देय है, और तिन बानरन में जो तृप्त हुआ कोई बानर दही दूध नहीं खाय है तौ दही दूध के भरेहुए भाँडन को फोरिडारै है तथा घर में दही दूध आदि नहीं धरैं और याकौ नहीं मिलै तौ, 'मैं इन के घरन को जलायडारूँ हूँ' या प्रकार कहिकै क्रोध में भरि पलिकान पै सोयेहुए बालकन कौ नौचि कै रुवाय देय है; 'यह कदाचित् घरन में आग नाहिं लगायदेय' या भय सों हमैं घरन में दही आदि रखनौ पड़ै है ॥ २९ ॥ या के चोरी करिवे के यह उपाय हैं कि-कौन से भाँडे में कौन सौ अच्छौ पदार्थ रख्यौ है सो जानने हारो तेरौ बेटा दही आदि पदार्थ, ऊँचे छींकान पै धरेहुए होन के कारण हाथ नाहिं आवैं हैं तौ उन को नीचै गिरायवे को तिन के नीचै पीढ़ा ओखली आदि रखिवे को उपाय करै है, तथापि जो वह भांडे नीचे नहीं उतर सकें हैं तो लकुटी आदि से वा में छेद करदेय है तब वामें से धार निकसि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डेषु तद्वित् ॥ ध्वांतागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धार्ष्ट्यान्युशंति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्थो प्रहसितमुखी नाद्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥ एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥ कस्मान्मृदमदांतात्मन्भवान्भक्षितवान् रहः ॥ वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥ नाहं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥ यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र ददृशे विश्वं

के ठीक बालकन के मुख में पड़े है, घर में अँधेरो होय है तो अनेकों चमकते रत्नन को धारण करे अपने शरीर को ही पदार्थन को प्रकाशक करै है; जा समय गोपी अपने घर के कामन में आसक्तचित्त होय हैं वाही समय यह ऐसे ऊधम मचावैहै॥३०॥और देवपूजा स्वयम्पाक आदि करिवेके निमित्त भली प्रकार झाडे बुहारेहुए घरनमें मूत्र पुरीष (विष्टा)कर देय है, ऐसी अनेकन ढिठाई करै है, या प्रकार चोरी के उपायन सौं विलक्षण काम करिकै भी तेरे ढिंग आय सूधो सो होजाय है, इस प्रकार गोपियों के कहने से भयभीत हुए नेत्रों से शोभायमान श्रीकृष्णजी के मुख को देखनेवालीं उन गोपियों के उलाहिना देनेपर यशोदा के मुख में हँसी आगई और उस नें कृष्ण को ललकारने आदि का मन में विचार नहीं करा ॥ ३१ ॥ एक समय किसी अपराध के कारण कृष्ण को ताडना चाहा था परन्तु उस समय तो बडाही आश्चर्य हुआ; वह यह कि—खेलतेहुए तिन बलराम आदि गोपों के बालकों ने यशोदा के समीप आकर कृष्ण के मट्टी खाने का वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥ तब उन के हित की इच्छा करनेवाली यशोदा ने कृष्ण के हाथ पकड़लिये और ललकार कर, भय से घबड़ाकर देखनेवाले नेत्रों करकै युक्त तिन कृष्ण से कहने लगी कि—॥३३॥ अरे चपलशरीर कृष्ण ! तैने एकान्त में जाकर मट्टी क्यों खाई है ? हित चाहनेवाले यह बालक ही कहरहे हैं और देख ऐसे ही तेरा बड़ा भ्राता बलराम भी कहरहा है ॥ ३४ ॥ तब कृष्ण ने कहा कि—अरी मैया ! मैंने मट्टी नहीं खाई है, यह तो सब ही मिथ्या कहरहे हैं और यदि तुझे यह निश्चय होय कि—यह सत्य कहरहे हैं तो तू प्रत्यक्ष मेरे मुख को देखले ॥ ३५ ॥ अच्छा यदि ऐसा है तो अपना मुख खोलकर दिखा, ऐसा माता के कहनेपर क्रीडा करने के निमित्त ही मनुष्यबालक हुए किन्तु अखण्डित ऐश्वर्यवान् तिन भगवान् श्रीकृष्ण ने, अपना मुख फैलाया ॥ ३६ ॥ तब यशोदा ने उस फैले हुए मुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ सद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकं ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्का ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥ अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणताऽस्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां

में विश्व को देखा-स्थावर, जङ्गम, ज्योतिश्चक्र (अन्तरिक्षलोक) दिशा, पर्वत, पूर्वादि द्वीप और समुद्रसहित भूलोक, प्रवह नामक वायु, बिजलीरूप अग्नि, चन्द्रमा और तारों सहित स्वर्गलोक, जल, तेज, वायु और आकाश, सात्विक अहंकार से उत्पन्नहुए देवता, राजस अहङ्कार से उत्पन्नहुई इन्द्रियें, तामस अहङ्कार से उत्पन्नहुए शब्दादि विषय और तीन गुण; इसप्रकार पुत्र के छोटे से शरीर में तिसमें भी फैलेहुए छोटेसे मुखमें जीव, काल, स्वभाव, कर्म और अन्तःकरण के द्वारा स्थावर जङ्गम शरीरों के भिन्न २ भेदों से भराहुआ यह विचित्र जगत् एकसाथ देखकर, उस में एक कोने में अपनेसहित गोकुल को भी देखकर वह यशोदा, मन में ऐसी शङ्का करनेलगी कि-॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो मैंने देखा यह क्या स्वप्न है ? तदनंतर मैं जागती हूँ ऐसा समझकर कहती है कि-यह भगवान् की माया है क्या ? या मेरी बुद्धि में कुछ मोह उत्पन्न होगया है ? अथवा इस मेरे बालक का ही यह कोई अचिन्त्यनीय स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? ॥ ४० ॥ ऐसी अनेकों तर्कना कर अन्त का पक्ष स्वीकार करके कहती है-जिस परमेश्वर से, चित्त, मन, कर्म और वाणी के द्वारा अनायास में जिस की तर्कना करना कठिन है ऐसा, जिस के आश्रय से रहनेवाला यह जगत्, जिस के द्वारा, जिस बुद्धि की वृत्ति से प्रतीत होता है तिन परमेश्वर के परम अचिन्त्य चरणकी मैं शरण हूँ ॥ ४१ ॥ मैं यशोदा, इन नन्द जी के सब प्रकार के द्रव्यों की रक्षा करनेवाली स्त्री हूँ; यह नन्दजी मेरे पति हैं, यह कृष्ण मेरा पुत्र है, गोधनसहित सकल गोपीं और गोप यह मेरे ही (परिवार) हैं इस प्रकार की अनर्थकारिणी बुद्धि जिस की मायाने मेरे में उत्पन्न करी है वह भगवान् ही मेरी गति (माया से रक्षाकरनेवाले) होयँ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार तिस यशोदा गोपीको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयास यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सांऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥ पितरौ नान्वविंदेतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायंत्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययांऽजो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥

तत्त्वज्ञान होनेपर सर्वसमर्थ ईश्वर तिन श्रीकृष्णजी ने उसके ऊपर पुत्रस्नेहरूप अपनी माया फैलाई ॥ ४३ ॥ तत्र तत्काल जिसका पहिले का ज्ञान नष्ट होगया है ऐसी वह यशोदा पुत्र को गोदी में लेकर जैसे पहिले चित्त में बढ़ेहुए स्नेह से व्याप्त हुई थी तैसी ही फिर होगई ॥ ४४ ॥ अत्र मायाबलकी अधिकता कहते हैं—कर्मकाण्डरूप ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन के द्वारा इन्द्रादिरूप से, उपनिषद्भागों में ब्रह्मरूप से, सांख्यशास्त्रों में पुरुषरूप से, योगों में परमात्मारूप से और पंचरात्र आदि वैष्णव तंत्रों में भगवद्रूप से जिन का माहात्म्य गाया है उन श्रीहरि को तिस यशोदा ने अपना पुत्र माना ॥ ४५ ॥ राजा ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! नन्दजी ने भगवान् की बाललीला का अनुभवरूप परम फल देनेवाला जन्मान्तर में कौन सा कल्याण का साधन करा था ? तथा जिस की तृप्ति करने को यज्ञ आदि भी समर्थ नहीं होते हैं तिन श्रीहरि ने जिस का स्तन पिया है उस परम भाग्यवती यशोदा ने भी कल्याण का कौनसा साधन कराथा ? ॥ ४६ ॥ जिन के ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् ने अवतार धारण करा है उन देवकी वसुदेव को भी कृष्ण के, जिस उदार बालचरित्र का का अनुभव नहीं मिला, बडे २ ज्ञानी जिस का अब भी गान करते हैं और जो श्रोता आदिकों के पापों का नाश करनेवाला है तिस बालचरित्र का जिन नन्द और यशोदा ने अनुभव करा उन्हों ने पहिले कौनसा पुण्य करा था ? ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! आठ वसु में परम श्रेष्ठ जो द्रोण नामक वसु, वह अपनी धरा नामवाली स्त्री सहित ब्रह्माजी की गोपालन आदि आज्ञा को स्वीकार करता हुआ उन से कहने लगा कि—॥ ४८ ॥ हम दोनों तुम्हारी आज्ञा को मानते हैं परन्तु भूमिपर उत्पन्न हुए हम दोनों को, देवाधिदेव विश्वनियन्ता श्रीहरि के विषैं ऐसी उत्तम भक्ति प्राप्त होय कि—जिस से संसारी जन अनायास में ही संसारदुःख को तरजाय (मुक्त होय) ॥ ४९ ॥ तद-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्त्वेवमुक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः ॥ जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दंपत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥ कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥ इतिश्रीभागवते द० पू० विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥ कर्मांतरनियुक्तासु निर्ममंथ स्वयं दधि ॥ १ ॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिर्मथने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥ क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूः ॥ रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममंथ ॥ ॥ ३ ॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नतीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा

नन्तर ब्रह्माजी ने 'अच्छा ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहा तब वह द्रोण वसु, गोकुल में उत्पन्न हुआ, वही ऐश्वर्य आदि गुणयुक्त महायशस्वी 'नन्द' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और उस की स्त्री जो धरा वह यशोदा हुई ॥ ५० ॥ हेराजन् ! उन ब्रह्माजी के आशीर्वाद से और गोप गोपियों की अपेक्षा तिन यशोदा नन्द की, पुत्ररूप से उत्पन्न हुए जनार्दन भगवान् के विषैं परमप्रीति हुई ॥ ५१ ॥ प्रभु श्रीकृष्ण ने भी, ब्रह्माजी का वरदान सत्य करने के निमित्त बलराम सहित गोकुल में वास करके पुत्रभाव के अनुसार अपनी लीला से तिन नन्दादिकों के हृदय में प्रीति उत्पन्न करी ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ इस नवम अध्याय में दूध उफननेलगा तब यशोदा माता उधरगई इसकारण श्रीकृष्ण ने क्रोध से दही का पात्र फोड़कर मक्खन की चोरी करी तब यह देख यशोदा ने उन को डोरी से बाँधदिया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! नन्दजी के घर बहुत सी दासी थीं, वह एकसमय जिस तिस कार्य के करने में लगादी थीं सो नन्दजी की स्त्री यशोदा, आप ही दही को मथनेलगी ॥ १ ॥ तब दही को मथतेसमय उस प्रसिद्ध श्रीकृष्ण बालक के इस लोक में पुराण आदि में और गोकुल में जो२ गान करेहुए जो२ चरित्र वह जानती थी उन को स्मरण करतीहुई गानेलगी ॥२॥ और जिस की मौं सुन्दर हैं और जिस की चोटीमें से मालतीके फूल गिररहे हैं वह यशोदा, पुष्ट कटितट में तागड़ी से लिपटीहुई रेशमी साडी, पुत्र के स्नेह से दूध टपकते हुए दोनों स्तन, डोरी खैंचने से थके हुए हाथों में चञ्चल कङ्कण, कानों में कुण्डल और पसीने से भीगे हुए मुख को धारण करती हुई वह यशोदा दही मथनेलगी ॥ ३ ॥ उस दही मथतीहुई माता के समीप, स्तन का दूध पीने की इच्छा करनेवाले श्रीहरि ने आकर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दधिमंथानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥ तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया बुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥५॥ संज्ञातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमंथभाजनम् ॥ भित्त्वा मृषाऽश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयंगवमंतरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचिस्थितम् ॥ हैयंगवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥ अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिः

दही मथने की रई को पकडकर, माता की प्रीतिकारक चेष्टा करते हुए मथने से रोक दिया ॥ ४ ॥ तब वह यशोदा, उन के हास्य युक्त मुख को देखती हुई, गोदी में बैठे हुए उन के स्नेह से टपकनेवाला स्तन पिलाने लगी; इतने ही में चूल्हेपर रक्खा हुआ दूध अधिक अग्नि लगने से उफनने लगा तब तृप्त न हुए कृष्ण को तैसाही छोड़कर वह झपटीहुई तिस दूध को उतारने के निमित्त चलीगई ॥ ५ ॥ तब माता पेटभर के विना पिलाये ही छोडकर चलीगई इस कारण क्रुद्धहुए श्रीकृष्ण कोप से कांपनेवाले अपने लाल अधर ओठ को दांतों से चबाकर, पत्थर से दही का भांडा फोड बनावटी रोने से नेत्रों में आंसू भरकर घर में जा एकान्त में माखन खानेलगे ॥ ६ ॥ इधर यशोदा, खूब औटा हुआ वह दूध उतारकर फिर मथने के स्थानपर आई सो तहां फूटाहुआ दही का भांडा देखकर, यह काम मेरे पुत्र का ही है ऐसा जाना और उस को भी तहां न देखती हुई वह हँसनेलगी ॥ ७ ॥ तदनन्तर उस ने उलटी करके डाली हुई ओखलीपर चढ़कर छींके पर रक्खाहुआ माखन अपनी इच्छानुसार वानरों को देनेवाले और जिस के नेत्र चोरी का काम करने से 'कहीं मय्या नहीं आजाय' इस भय से घबाड ये हुए होरहे हैं ऐसे उन कृष्ण को दूर से ही देखकर, फिर चलते में होनेवाला चरणों का शब्द जैसे उस को सुनाई न देय तिस प्रकार धीरे २ पीछे होकर उस के समीप गई ॥ ८ ॥ तब जिसने हाथ में लकडी ली है ऐसी आनेवाली उस माता को देखकर, शीघ्रता से वह श्रीकृष्णजी तिस ओखली पर से नीचे उतरकर डरेहुए से भागनेलगे. उस समय एकाग्रता से तदाकार हुए और प्रवेश करने को समर्थ हुए योगियों के मन को भी जिस की प्राप्ति नहीं होती है ऐसे कृष्ण के पकडने को यशोदा उन के पीछे २ दौड़ने लगी ॥ ९ ॥ इस प्रकार कृष्ण के पीछे दौड़नेवाली, जिस की गति हिलते हुए नितम्ब के भार से रुकरही है, जिस की कमर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमध्यमा ॥ जवेन विस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषंतमंजन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्ष्यमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयंत्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥ तद्दामं बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ॥ तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनामुत्स्मयंतीनां स्म-

अतिसुन्दर है और जिस के वेग से खुले हुए केशपाश में से विखरे हुए पुष्प पीछे २ बिखरते जाते हैं ऐसी तिस यशोदा ने कृष्ण को पकड़लिया ॥ १० ॥ और अपराध करने वाले, रोतेहुए, जिन में आंजा हुआ काजल चारों ओर फैलगया है ऐसे अपने नेत्रों को हाथ से मलते हुए, पिटने के भय से ऊपर को देखते हुए और जिनके नेत्र भय से कातर होरहे हैं ऐसे उन कृष्ण को हाथ से पकडकर वह यशोदा उन से अरे ! रे ! चोर !, मैं तुझे छड़ी से पीटूँगी कि–जिस से तू फिर ऐसी ढिठाई नहीं करेगा ऐसे भय देती हुई ललकारने लगी ॥ ११ ॥ तदनन्तर पुत्र के ऊपर प्रेम करनेवाली परंतु उसकी सामर्थ्य को न जाननेवाली तिस यशोदा ने, पुत्र पिटने के भय से डर रहा है ऐसा जानकर, हाथ में छड़ी फैंककर, उन को डोरी से बांधने का मन में विचार करने लगी ॥२२॥ जिन कृष्ण की भीतर भाग नहीं, बाहरी भाग नहीं, पूर्व भाग नहीं और पश्चिमादि भाग भी नहीं, और व्यापक से व्याप्य का बन्धन होता है ऐसा देखनेपर, जगत् का पूर्वभाग, पश्चिमभाग (आदि और अन्त), अन्तर्भाग और बहिर्भाग है, यह सब जो है और जो जगद्रूप है तिस अव्यक्त होकर मनुष्यरूप धारण करनेवाले अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पुत्र मानकर वह यशोदा, जैसे किसी साधारण बालक को उस की माता बाँधती है तैसे ऊखल से बाँधनेलगी ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब भाँडा फोड़ना आदि अपराध करनेवाले तिस अपने बालक को वह गोपी बाँधनेलगी तो वह डोरी दो अंगुल कम पड़ी तब उस ने तिस डोरी में और एक डोरी जोडी ॥ १५ ॥ तब दोनों डोरी जोडकर जो एक डोरीहुई वह भी दो अंगुल कम होनेलगी तब उस में तीसरी डोरी बाँधी तब वह भी दो अंगुल कमहुई; फिर चौथी पांचवीं ऐसे जो २ डोरी जोडी वह २ ही दो अंगुल कमहुई ॥१६॥ इसप्रकार अपने घर की सब डोरियोंको जोडकर भी वह यशोदा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यंती विस्मितोऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्रापं विमुक्तिदात् ॥ २० ॥ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूवरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियाऽन्वितौ

दोअंगुलडोरीकम होनेके कारण जब कृष्णबाँधनेकोसमर्थनहीं हुइ तो अपना उद्योगनिष्फल हुआ देखकर मंद२मुसकरानेवालीं सकलगोपियों में वहआपभी मुसकरातीहुई बडेआश्चर्यमें पडी १७तब श्रीकृष्णजी, जिसके शरीर पर पसीना आरहाहै, और जिसके केशोंके जूडेमें से पुष्पमाला खसक रही हैं ऐसी अपनी माता को, मेरे बाँधने के निमित्त बडाश्रम हुआ है ऐसा देख कृपा करके वह आपही बँधगये; उस समय नन्द और रोहिणी तहाँ नहीं थे, यदि होते तो यशोदा को निषेध करते॥ १८॥हे राजन् ! ब्रह्मादि पालन करनेवालों सहित यह सकल जगत् जिसके वशमें है,उन स्वतन्त्र और भक्तोंके सङ्कट दूर करनेवाले श्रीकृष्ण जीने, इसप्रकार माता के हाथ से बँधकर यह दिखाया कि—मैं भक्तोंके वशमें हूँ ॥ १९ ॥ अब, भगवान् का प्रसाद और भी भक्त पाते हैं परन्तु यहतो बडाही आश्चर्य है ऐसा रोमाञ्च सहित होकर कहते हैं कि-ब्रह्माजी (पुत्र) महादेव (अपना आत्मा) और जिस ने हृदय में स्थान पाया है ऐसी लक्ष्मी (स्त्री) इन तीनोंही ने ईश्वर और कृपापात्र प्रसिद्ध होकर भी भगवान् से प्रसाद नहीं पाया ऐसा नहीं है किन्तु पायाही; तथापि मुक्ति देने वाले भगवान् से, उनको ही बाँधकर मनोरथ पूर्ण करना, जैसा दुर्लभ प्रसाद, जाति आचार आदि से हीनभी गोपीको प्राप्त हुआ ऐसा उन ब्रह्मादिकों को भी प्राप्त नहीं हुआ ॥ २० ॥ सार यह है कि—यह यशोदानन्दन श्रीकृष्णजी, इससंसार में भक्तिमान् पुरुषों को जैसे सुलभ हैं तैसे देहाभिमानी तपस्वियों को अथवा भगवान् के आत्मस्वरूप देहाभिमान रहित ज्ञानियोंको भी सुलभ नहीं हैं ॥ २१ ॥ अब भक्तों के बांधेहुए भी भगवान् की दूसरों को मुक्त करने की शक्ति कहते हैं—तिन प्रभु श्रीकृष्णजी ने, माता यशोदा के, अपने को ओखली से बांधकर घर के काम में आसक्त होनेपर, नन्दजी मुझे छुडादें ऐसा, मन में विचारकर तिन नन्दजी को शीघ्रही तहां बुलाने के निमित्त, तहां से समीप ही में अर्जुन नामक जुडेहुए दो वृक्षों को देखा; वह वृक्ष पहिले गुह्यक नामक देवयोनि में उत्पन्न हुए और नलकूवर मणिग्रीव इन नामों से प्रसिद्ध थे; वह सम्पत्तिगान् होने के कारण मदान्ध होगये, तब उन को नारदजी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मंदाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अन्तः प्रविश्य गंगायामंभोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥ यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीवाणौ समबुद्ध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदांधौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं-

शाप देकर वृक्षयोनि में पहुँचादिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ इस दशवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने, ओखली को खचेडते हुए बीच में जाकर, जुडे हुए अर्जुन नामक वृक्षों को गिराया तब उन में से उत्पन्न हुए दो देवताओं ने श्रीकृष्णजीकी स्तुति करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ राजा ने कहा कि—हे भगवन्! उन नलकूवर मणिग्रीव के शाप का कारण जो ऐसा निन्दित कर्म था कि—जिस से भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ नारदजी को भी क्रोध आगया और उन को शाप दिया, सो मुझ से कहो ॥ १ ॥ ऐसा प्रश्न करनेपर श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—कुवेर श्रीमहादेवजी का मित्र था, उस के पुत्र जो नलकूवर और मणिग्रीव वह भी महादेवजी के सेवक थे; बडे घमण्डी और मदोन्मत्त होकर उन्हों ने महादेवजी की सेवा करना त्याग दिया और एक समय वह वरुण की बनाई हुई, बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाली, मदिरा को पीकर, जिन के नेत्र मद से घूम रहे हैं ऐसे होकर गङ्गा के समीप कैलास पर्वतपर सुन्दर पुष्पवाटिका में मिलकर गानेवालीं स्त्रियों के साथ क्रीडा करते हुए विचरनेलगे ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह कुवेर के पुत्र, स्त्रियों के साथ, कमलों के वनों की पंक्तियों से फूले हुए गङ्गा के मध्य में घुसकर, जैसे हाथी हथनियों के साथ क्रीडा करते हैं तैसे क्रीडा करनेलगे ॥ ४ ॥ हे राजन्! तहां अचानक आये हुए भगवान् देवर्षि नारदजी ने इन देवताओं को देखा और यह मत्त होरहे हैं ऐसा जाना ॥५॥ क्योंकि—उस समय उन के साथ क्रीडा करनेवालीं अप्सरा नगीं थीं, उन्हों ने नारदजी को देखते ही लज्जित होकर 'यह कहीं शाप न देदें' ऐसी शङ्का से शीघ्रता के साथ अपने वस्त्र पहिनलिये, परंतु नङ्गे वह दोनों गुह्यक विना वस्त्र पहिने ही खडेरहे ॥ ६ ॥ तब मदिरा के पीने से मत्त और लक्ष्मी के मद से अन्धे हुए उन कुवेर के पुत्रों को देख कर नारद ऋषि, उन के मद का नाश कर श्रीकृष्णजी का दर्शनरूप अनुग्रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ नह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्युनश्वरं ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥ देहः किमन्नदातुः स्वं निषेकुर्मातुरेव च ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमांजनम् ॥

करने के निमित्त शाप देतेहुए इस प्रकार कहनेलगे ॥ ७ ॥ नारदजी ने कहा कि—प्रिय विषयों का सेवन करनेवाले पुरुष को जैसे लक्ष्मी का मद बुद्धि का भ्रष्ट करनेवाला होता है तैसा सत्कुल में जन्म और विद्या आदि अथवा रजोगुण के कार्य हर्ष आदि कोई भी मद बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाला नहीं होता है; क्योंकि—जिस श्रीमद में स्त्री—जुआ और मद्यपान आदि विषयों का सम्बन्ध होता है ॥ ८ ॥ जिस लक्ष्मीके मद में नाशवान् भी इस शरीर को, यह जरामरण रहित है ऐसा माननेवाले, और मन को वश में न रखनेवाले निर्दयी पुरुष (भक्षण करनेके निमित्त) पशुओं की हिंसा करतेहैं, ॥ ९ ॥ देखो—यह शरीर जीते में नरदेव (राजा) भूदेव (ब्राह्मण) आदि नाम धारण करनेवाला होकर भी मरण के अनन्तर कुत्ते आदिकों ने खालिया तो विष्ठारूप होजाता है, पुत्र आदिकों ने जलादिया तो भस्मरूप होजाता है और वैसाही पडारहा तो कीडेरूप होजाता है, ऐसे शरीर के निमित्त जो पुरुष, प्राणियों से द्रोह करता है क्या वह अपने स्वार्थको जानता है? किन्तु नहीं जानता है, क्योंकि—जिस द्रोहसे नरक की पीडा प्राप्त होती हैं ॥ १० ॥ यह देह क्या स्वाधीन पनेसे प्रसिद्ध होनेके कारण अपना कहाजाय ? वा अन्न देनेवाले के अन्नसे रक्षित होनेके कारण अन्नदाताका कहाजाय ? अथवा पिताके वीर्यसे उत्पन्न होने के कारण पिताका कहाजाय ? या माता के उदर में से उत्पन्न होनेके कारण माता का कहाजाय ? अथवा माता का पिता (नाना) 'इस के पुत्र होगा वह मेरा होगा' ऐसा ठहराकर कन्या देता है उस का कहाजाय ? अथवा आज्ञा चलानेवाले बलवान् पुरुष का है ऐसा कहाजाय ? अथवा बेचनेवाले का कहाजाय ? वा अग्नि का अथवा कुत्तों का कहाजाय ? ॥ ११ ॥ इसप्रकार साधारण और प्रकृति से उत्पन्न होकर उसमें ही लीन होजानेवाले देह को 'यह मेरा ही है' ऐसा मानकर उस के सुख के निमित्त, मूर्ख पुरुष के सिवाय कौन सा ज्ञानीपुरुष, प्राणियों का प्राणान्त करेगा ? अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥ १२ ॥ इसप्रकार लक्ष्मी के मद का वर्त्ताव करके अब उस के उपाय का निश्चय करते हैं—लक्ष्मी के मद से अन्ध होने के कारण 'यह करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कंटकविद्धांगो जंतो-र्नेच्छति तां व्यथां ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः ॥ १४ ॥ दरिद्रो निरहंस्तंभो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥ नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इंद्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसाऽपि विनिवर्त्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यंते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुद्ध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुंदचरणैषिणां ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्यां वारुण्या श्रीमदांधयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोर-

ऐसी दृष्टि न रखनेवाले विवेकहीन पुरुष को दरिद्रता ही श्रेष्ठ अञ्जन है; क्योंकि–दरिद्री पुरुष ही, मेरी समान ही सकल प्राणी हैं, ऐसा देखता है अर्थात् दरिद्रता के कारण अनेकों दुःख भोगनेवाला दरिद्री, ऐसे ही दुःख सब को प्राप्त होते होंगे, ऐसा निश्चय करके जानता है ॥ १३ ॥ इस विषय में दृष्टांत कहते हैं कि–जैसे शरीर में काँटे चुभाहुआ पुरुष, मुख की मलिनता आदि चिन्होंसे, सकल जीवों को मुख दुःख समान होते हैं ऐसा जानकर, दूसरे प्राणी के कांटा चुभने की इच्छा नही करताहै किंतु उसके कांटे को दूर करने की इच्छा करता है, तैसे ही जिस के कभी भी काँटा नहीं चुभा है वह दूसरे की पीडा को नहीं जानता है और उस के दूर करने की भी इच्छा नहीं करता है ॥ १४ ॥ और यह दारिद्र्य ही मोक्ष भी प्राप्त करा देता है; क्योंकि–इस संसार में दरिद्री पुरुष ही विद्या तप आदि के मदों से और अहङ्कार के उद्धतपने से रहित होकर प्रारब्धवश जो कुछ दुःख पाता है वही उस का परमतप होता है ॥ १५ ॥ क्षुधा से दुर्बल शरीर होकर नित्य अन्न की इच्छा करनेवाले दरिद्रियों की इंद्रियें प्रतिक्षण सूखती चलीजाती हैं और नरकादि दुःख की हेतुभूत हिंसा भी दूर होजाती है ॥ १६ ॥ और दरिद्रियों को ही, सबों में ब्रह्मरूप देखनेवाले साधुओं की सङ्गति प्राप्त होती है, तदनन्तर उन साधुओं का समागम करके वह दरिद्री पुरुष, विषयवासनारूप तृष्णा का क्षय करडालता है और वह फिर शीघ्रही जीवन्मुक्त होजाता है॥१७॥यदि कहो कि साधुओं को भी धनवान् ही प्रिय होता है दरिद्री प्रियनहीं होताहै,तहां कहतेहैं कि–जिन का चित्त शत्रु मित्रादिभाव से रहितहै ऐसे मुकुन्द भगवान् के चरण की इच्छा करनेवाले साधुओंको,धनके घमण्डी,उपेक्षा करनेयोग्य, दुराचरणी पुरुषोंका साथ करनेवाले दुर्जनोंसे क्या प्रयोजनहै? अर्थात् कुछ प्रयोजन नहींहै १८ इसकारण लक्ष्मी के मदसे अन्ध और वारुणी मदिरा से अन्ध होकर स्त्रियों से जीतेहुए और मनको वशमें न करनेवाले इन नलकूबर और मणिग्रीवों का अज्ञान से उत्पन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ नैवं विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूवरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामो-

हुआ सम्पत्ति का मद, मैं दूरकरता हूँ ॥ १९ ॥ जो यह लोकपाल कुवेर के पुत्र होकर भी अज्ञान से भरेहुए और अतिखोटे मद से युक्त होकर नग्न हुए अपने शरीर को भी न जाननेवाले होगए हैं इस से यह कुछकालपर्यन्त वृक्षयोनि को प्राप्त होनेयोग्य हैं, जिस से कि–फिर ऐसे मदसे अन्धे कभी नहीं होंगे और उस वृक्षयोनि में भी मेरे अनुग्रह से इन को अपने खोटे कर्म का स्मरण रहैगा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवताओं के सौ वर्ष बीतजानेपर मेरे अनुग्रह से श्रीकृष्ण की समीपता को पाकर यह नलकूबर और मणिग्रीव फिर देवयोनि को प्राप्त होंगे और इनको उन श्रीकृष्णजी की भक्ति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! उन देवर्षि नारद जी ने ऐसे कहकर नरनारायण के आश्रम (बदरिकाश्रम) को गमन करा और नलकूबर मणिग्रीव यह गोकुल में यमलार्जुन वृक्ष होकर रहे ॥ २३ ॥ इसप्रकार राजा का बूझा हुआ शाप का कारण कहकर अब प्रस्तुतविषय को कहते हैं कि–भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ नारदजी का कथन सत्य करने को ओखली में बँधेहुए श्रीकृष्णजी, जहाँ वह यमलार्जुन बृक्ष थे तहाँ धीरे २ पहुँचगये ॥ २४ ॥ इस का अभिप्राय यह है कि–क्योंकि नारदजी मुझे अतिप्रिय हैं और यह कुवेर के पुत्र देवता होकर वृक्षयोनि को प्राप्त हो गये हैं इसकारण उन महात्मा नारदजी ने 'देवताओंके सौ वर्ष के अनन्तर श्रीकृष्णजी का दर्शन होनेपर यह शाप से छूटजायँगे' ऐसा जो कहा था उसको वैसेही साधता हूँ ॥२५॥ ऐसा मन में विचारकर वह श्रीकृष्णजी जुडेहुए उन अर्जुननामक वृक्षों के मध्य में गये, सो श्रीकृष्णजीके प्रवेश करतेही वह उनका खचेडा हुआ ऊखलभी तिरछा होकर चलतागया॥२६॥उससमय पीछे२ तिरछे लुढ़कते जानेवाले और वृक्षोंमें अटके हुए तिस ऊखल को वेग से खेंचनेवाले और डोरी से बँधेहुए उन श्रीकृष्ण बालक ने,जिनकी जड़ उखाड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दरेण तरसोत्कलितांघ्रिबन्धौ ॥ निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपत्स्कन्धप्रवालवि-टपौ कृतचंडशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रियां परमया ककुभः स्फुरंतौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोककंनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेंद्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजःसत्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारविन् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥

दी हैं और उन ही परमेश्वर के पराक्रम से जिन के गुद्दे,पत्ते और डालियें अत्यन्त कम्पायमान होगई हैं ऐसे वह दोनों अर्जुन के वृक्ष बड़ा भयङ्कर कडकडाहट का शब्द करके पृथ्वीपर गिरपडे ॥ २७ ॥ और जैसे वृक्षों में होनेवाला अग्नि, उन में से मूर्त्ति धारण करे हुए प्रकट होता है तैसे ही उन वृक्षों में से प्रकट हुए और परमकान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले दोनों सिद्ध (नलकूबर और मणिग्रीव) श्रीकृष्णजी के समीप आये और सम्पत्ति के मद से रहित हुए उन्हों ने सकल लोकों के नाथ श्रीकृष्णजी को मस्तक से प्रणाम करके हाथ जोडकर इस प्रकार कहा कि–॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अचिन्त्य प्रभाव ! तुम गोप के बालक नहीं हो किन्तु सकल जगत् के कारणभूत परमपुरुष हो, स्थूल सूक्ष्मरूप यह सकल जगत्, तुम्हारा ही स्वरूप है ऐसा ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ २९ ॥ जगत् के नियन्ता भी तुम ही हो, क्योंकि–सकल प्राणियों के जो देह, प्राण, अहङ्कार और इन्द्रियें हैं उन सब की रक्षा करनेवाले एक तुम ही हो यदि कहो कि काल इस जगत् का निमित्तकारण है, प्रकृति उपादान कारण है, प्रकृति से उत्पन्न हुआ महतत्त्व जगत् के आकाररूप से परिणाम को प्राप्त होता है, इस का कर्त्ता और नियन्ता पुरुष है इस में मैं क्या हूँ ? सो- हे भगवन् अविनाशी, ईश्वर, विष्णु तुम ही हो इस कारण काल भी तुमही हो अर्थात् काल तुम्हारी लीला है ॥३०॥ महत्तत्त्व और रज, सत्त्व, तम इन तीन गुणों से युक्त प्रकृति नामवाली सूक्ष्म शक्ति भी तुम ही हो; तुम ही सर्वसाक्षी पुरुषहो और सबों के शरीर, इन्द्रिय तथा मनों के रोग, राग,और प्रीति आदि विकारों के जाननेवाले तुमही हो अतः सबकुछ तुमही हो ॥ ३१ ॥ मैं ही यदि सबकुछ हूँ तो घट आदि पदार्थों का ज्ञान होनेपर मेरा ज्ञान क्यों नहीं होता है ? और यदि ऐसा होना मानो तो सब पुरुष ब्रह्मज्ञानी होने चाहिये ? यदि ऐसा कहो तो हे भगवन् ! प्रकृति के गुणकार्यरूप बुद्धि, अहङ्कार, इन्द्रियें आदि जो दीखनेवाले विकार उन से सकलविश्व को देखनेवाले आपको ग्रहण नहीं होता है, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौ 'न्विहाहति' विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मैतु तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः॥३३॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वी--र्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४ ॥ स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ॥ वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः' ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनां ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलू-

फिर प्रकृति का कार्य न होनेके कारण जीवही मेरे स्वरूपको जाने. ऐसा कहो तो हे-भगवन् ! जीव आदि की उत्पत्ति होने से पहिले ही अपने प्रकाश से सिद्ध आप को, इस संसारमें देहादिकों से लिपटाहुआ कौन जीव जानने को समर्थ होगा ? अर्थात् कोई नहीं होगा ॥३२॥इसकारण षड्गुणऐश्वर्यवान्,वसुदेवजीके पुत्र,प्रजाओं की रचना करनेवाले और आप से प्रकाश पानेवाले सत्त्वादि गुणों से जिन की महिमा, मेघों से सूर्य के प्रकाश के ढकजाने की समान ढकीहुई है ऐसे ब्रह्मरूप आप को नमस्कार हो ॥ ३३ ॥ मैं ऐसा ईश्वर हूँ यह तुमने कैसे जाना ? यदि ऐसा कहो तो हे भगवन् ! देहधारी जीवों से भिन्न और जिनकी समान वा जिनसे अधिक किन्ही में नहीं है ऐसे तुम्हारे पराक्रमों से, शरीर रहित भी जिन तुम्हारे अवतार प्राणियों में समझेजाते हैं ऐसे चारप्रकार के पुरुषार्थों के स्वामी तुम; सकल लोकों की उन्नति के निमित्त और मोक्ष के निमित्त अपने परिपूर्ण स्वरूप से इससमय अवतीर्ण हुए हो ३४ ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याण ! तुम्हें नमस्कारहो हे परममङ्गल ! तुम्हें नमस्कार हो; सर्वान्तर्यामी और शान्त तुम यादवों के पालक को नमस्कारहो ॥ ३६ ॥ हे व्यापक ! हम. तुम्हारे सेवक जो नारदजी तिन के दास हैं, हमें अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दीजिये; हे भगवन् ! हमें आप का दर्शन, नारद ऋषि के अनुग्रह से ही हुआ है ॥ ३७ ॥ अपने स्थानको पहुँचनेपरभी हमारा फिर पहिले की समान दुष्टस्वभाव न हो, किन्तु हमारी वाणी तुम्हारे गुणगान करने में तत्पर हो, हमारे कान—तुम्हारी कथाओं के सुन ने में. हाथ तुम्हारी पूजा आदि कर्म करने में, मन—तुम्हारे चरणों का स्मरण करने में, शिर-तुम्हारे निवासस्थान जगत् को नमस्कार करने में और दृष्टि—तुम्हारी मूर्त्तिरूप सत्पुरुषों का दर्शन करने में तत्पर होय ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इसप्रकार उन नलकूबरोंके स्तुति करनेपर,डोरीसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खेले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदांधयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनां ॥ दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ॥ सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामंत्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तरां ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नंदादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततोरवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणं ॥२॥ उलू-

ऊखल में बँधेहुए वह गोकुलपति भगवान् श्रीकृष्णजी, हँसकर उन नलकूबर और मणिग्रीव से कहनेलगे ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे गुह्यकों ! सम्पत्ति के मदसे अन्धहुए तुम्हारे ऊपर दयालुहुए नारदऋषि ने, वाणी के द्वारा लक्ष्मी का नाशरूप अनुग्रह करा है, यह मुझे पहिले से ही विदित है ॥ ४० ॥ और यह योग्य ही है, आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—जैसे सूर्य के दर्शन से दृष्टि को रोकनेवाला अन्धकार दूर होजाता है तैसे ही आत्मज्ञानी साधुओं का उन में भी विशेष करके मेरे विषैं चित्त लगानेवाले साधुओं का दर्शन करके बन्धन नहीं प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इस कारण हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरा ध्यान आदि करने में तत्पर होते हुए अपने स्थान को चलेजाओ, तुम को मेरे विषैं इच्छा करा हुआ परमप्रेम प्राप्त हुआ ही है, यहही संसार बन्धन को दूर करनेवाला है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के आज्ञा करे हुए वह नलकूबर मणिग्रीव ऊखल से बँधेहुए तिन श्रीकृष्णजी को वारंवार प्रदक्षिणा और नमस्कार करके उन की आज्ञा लेकर उत्तर दिशा की ओर को चलेगये ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में दशम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ इस ग्यारहवें अध्याय के विषैं वृन्दावन में आकर फिर बालकों के साथ बछडों की रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णजी ने, वत्सासुर और बकासुर इन दोनों का ही वध करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे कुरुश्रेष्ठ राजन् ! नन्दादि गोप, गिरनेवाले उन वृक्षों का शब्द सुनकर वज्रपात के भय से शङ्कितचित्त होतेहुए तहाँ आये ॥ १ ॥ और उन्हों न तहाँ भूमिपर पड़ेहुए वह यमलार्जुन वृक्ष देखे, परन्तु वह, गिरने का कारण प्रत्यक्ष होनेपर भी उसको लक्ष्य (ध्यान) में न लातेहुए भ्रम में पड़गये ॥ २ ॥ अर्थात् ओखलीको ख-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजं ॥ विलोक्य नंदः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥ गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥ दर्शयन्स्तद्विदां लोके आत्मनो भृत्यवश्यतां ॥ व्रज-

चेड़तेहुए, डोरी से बँधेहुए उन श्रीकृष्ण बालकको न जानकर, यह किसी राक्षसादि का काम है ? यह किसकारण से हुआहै ! यह तो बड़ा आश्चर्य है ! यह क्या आनेवाले दुःख की सूचना देनेवाला उत्पात है ? ऐसा कहकर भय से व्याकुल होतेहुए वह नन्दादि गोप भ्रम में पडगये अर्थात् वह कुछभी निश्चय नहीं करसके ॥ ३ ॥ तब उन से तहाँ खेलते हुए बालक कहने लगे कि—टेढपड़े हुए ऊखल को खचेड़ने वाले और वृक्षोंके मध्य में को गयेहुए इस कृष्णने ही वृक्षों को गिराया है, यह हमने देखा है;केवल इतना ही नहीं किन्तु उनवृक्षों में से निकले हुए दोदिव्य पुरुष भी हमने देखे थे ॥ ४ ॥ तब तहाँ जो गोप केवल तर्कना ही करनेवालेथे,उन्होंने,उस बालक के हाथ से ऐसे बड़े वृक्षोंका उखड़ जाना सम्भव नहीं है, ऐसी तर्कना से उन बालकों का कहना नहीं माना. कितनो हीनेतो—पूतना, तृणावर्त्त आदिकों का प्राणान्त प्रत्यक्ष देखाथा इसकारण वह, यह भी कृष्णका ही कार्य है या नहीं ? ऐसे सन्दिग्ध चित्तवाले होगये ॥ ५ ॥ डोरी में बँधे ऊखलको खचेड़ते हुए अपने पुत्रको देखकर हँसनेवाले नन्दजी ने उसको शीघ्रही खोलदिया ॥६॥ फिर भगवान् ने 'मुझे लोक जानजायँगे' ऐसी शङ्कासे अत्यन्त ही बालभाव के अनुकरण करेकि—जब गोपियों ने इसप्रकार प्रशंसा करीकि - तू बड़ाअच्छा नृत्य करैहै तब भगवान् बालककी समान नृत्य करतेथे; तैसेही कभी गानेके निमित्त गोपियोंने उनकी प्रशंसा करीतो काठकी पुतली की समान उनके वशमें होकर अनजान बालक की समान जैसे उन को हर्ष आदि प्राप्त होय तैसे बडे ऊँचे स्वर से गान करते थे ॥ ७ ॥ कभी गोपियों ने, पीढ़ा, पसेरी और पादुका आदि लाने की आज्ञा करी तो उन भारी वस्तुओं के लाने में असमर्थ होकर भी केवल हाथों से उन को उठाते थे; कभी हमारे साथ युद्धकर, ऐसा कहनेपर अपने गोकुलवासी भक्तों को और तिस चरित्र के देखने वालों को हर्षित करते हुए दण्डठोकना आदि मल्ललीला की क्रीडा करते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार लोक में जो उन के ऐश्वर्य को जाननेवाले ज्ञानी थे तिन को केवल अपना भक्तों के वश में होना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ गृह्णीहि भो फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १२ ॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १३ ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासंगेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलां ॥ १४ ॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहरामामच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १५ ॥ क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १६ ॥ कृष्ण कृष्णारविंदाक्ष तात एहि

दिखाते हुए वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, बालक की समान क्रीडा करके गोकुलवासियों के चित्त में हर्ष उत्पन्न करते थे ॥ ९ ॥ एक समय वेर आदि फल वेचनेवाली मालिन ने अरे लोगों ! फल मोल लेओ, ऐसा कहा सो उस के शब्द को सुनकर सकल फल देनेवाले श्रीकृष्णजी, फल लेने के निमित्त अन्न लेकर दौडतेहुए उस मालिन के समीप आये ॥ १० ॥ तब दौडकर बाहर आनेवाले उन श्रीकृष्णजी के, जिन में से मार्ग में कुछ अन्न विखरता आया है ऐसे दोनों हाथ, फल वेचनेवाली मालिन ने, फलों से भरदिये, श्रीकृष्णजीने, विखरते२ हाथ में शेष रहेहुए अन्न के द्वारा उस का फलों का पात्र (टोकरी) मोती आदि रत्नों से भरदिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर एकदिन यमुनाजी के तटपर जाकर खेलतेहुए अर्जुनवृक्ष के तोडनेवाले कृष्ण को माता ने पुकारा कि—अरे वेटा ! आज तेरा जन्मनक्षत्र है सो तू स्नानादि से शुचि होकर ब्राह्मणों को गौओं का दानकर ॥ १२ ॥ अरे कृष्ण ! देख, देख, यह तेरी समान अवस्था के बालक, माता के स्नान कराये हुए और आभूषण धारण करेहुए हैं, अरे ! तू भी स्नान करके भोजन करले, और आभूषण धारण करके आनन्द से खेल ॥ १३ ॥ अपने पुकारनेपर वह रामकृष्ण, खेल में मगन होने के कारण जब नहीं आये तब उन को बुलाने के निमित्त रोहिणी ने, पुत्र पर प्रेम करनेवाली यशोदा को भेजा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार स्नेहवश जिस की बुद्धि श्रीकृष्णजी के विषैं अत्यन्त आसक्त होरही है ऐसी वह यशोदा ब्रह्मादिकों के भी चूडामणि (परमपूजनीय) तिन अच्युत भगवान् को अपना पुत्र मान उन का बलराम सहित हाथ पकडके अपने घरको लेगई और उनको स्नान भोजन कराकर गहने पहराये फिर जन्म नक्षत्र का उत्सव करा ॥ १५ ॥ फिर एक दिन पुत्र के स्नेह से जिस के स्तनों में से दूध टपक रहा है ऐसी वह यशोदा, बहुत देरी से बालकों के साथ खेलनेवाले श्रीकृष्णजी को पुकारने लगी कि— ॥ १७ ॥ हे कमलनयन ! हेकृष्ण ! हेकृष्ण ! घरको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तनं पिबँ ॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रांतोसि पुत्रक ॥ १७ ॥ हे रामागच्छ तातासु सानुजः कुलनन्दन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥१८॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोपवृद्धा महोत्पातानननुभूय बृहद्वने ॥ नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयन् ॥ २० ॥ तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ ॥ २१ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ॥ आयात्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २२ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमन्यथोपरि नापतत् ॥ २३ ॥ चक्रवातेन नीतोयं दैत्येन विपदं व्रियत ॥ शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ ॥ २४ ॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वाऽपि

आओ, बहुत खेलचुका, अरेबेटा ! तू खेलते२बहुत थकगयाहै और भूँख से घबड़ारहा है इस कारण स्तन पीले ॥ १७ ॥ हे तात ! कुलनन्दन राम ! तू कृष्ण के साथ शीघ्रता से घर को आ, अरे ! तूनेप्रातःकाल ही भोजन कराहै सोतू अब शीघ्रता से भोजन करले ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! भोजन करने को उद्यत हुए गोकुलपति (नन्द) तेरीवाट देखरहे हैं इसकारण शीघ्रही घरको आ, हमदोनों को आनन्दित कर, अरे बालकों ! तुमभी अपने अपने घर को जाओ ॥ १९ ॥ इसप्रकार बृहद्वन में क्रीड़ा करके अब वृन्दावन में जानेकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णजी के प्रेरणा करेहुए गोपोंकी सम्मति का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि–नन्दआदि वृद्ध गोप, वृहद्वन में पूतना आई, इत्यादि बडे २ उत्पातों को भोगकर एक समय सब एक स्थानपर इकट्ठे हुए और गोकुल के हितकी सम्मति कर नेलगे ॥ २० ॥ उन में उपनन्द नामवाला एक गोप, अधिक अवस्थावाला और सबसे बुद्धिमान् था, तथा कौन समय कैसा वर्त्ताव करने पर अपना कार्य सिद्ध होता है इसके तत्वको जाननेवाला और रामकृष्ण का प्रिय करनेवाला था; वह कहनेलगाकि ॥२१॥ गोकुल का हित चाहनेवाले हमको यहाँसे उठकर दूसरे स्थानपर चलाजाना चाहिये; क्योंकि–यहाँ बालकों के नाश के कारण बडे २ उत्पात प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ देखो–यह बालक श्रीकृष्ण, बालकों को मारनेवाली तिस पूतना राक्षसी से दैववश ही छूटा है; तैसे ही निःसन्देह श्रीहरि की कृपा से ही इस के ऊपर छकड़ा नहीं गिरा ॥ २३ ॥ इस बालक को चक्रवातरूप (हवा की चक्राकार गाँठरूप) दैत्य, पक्षियों के विचरने के स्थान आकाश में लेगया था तहाँ और तहाँ से भी यह शिलापर आकर गिरा तब भी हमारे आराधना करेहुए देवताओं ने ही इस की रक्षा करी ॥ २४ ॥ उन दोनों यमलार्जुन वृक्षों के बीच में फँसकर यह कृष्ण वा दूसरा कोई भी बालक जो मरण को नहीं प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २५ ॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २६ ॥ वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २७ ॥ तत्रैवाद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्ष्व मा चिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान् स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ २९ ॥ वृद्धान्बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्सारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ॥ ३० ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३१ ॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुंकुमकांतयः ॥ कृष्णलीलाः जगुः प्रीता निष्कंठ्यः सुवाससः ॥३२॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते॥रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोन्मुखे॥३३॥वृन्दावनं संप्रविश्य स-

हुआ वह भी भगवान् ने ही रक्षा करी ॥ २५ ॥ इसकारण जबतक और उत्पातों के कारण से अनर्थ गोकुल को स्पर्श न करे तबतक (तिस से पहिले ही) बालकों को लेकर गोधन और सेवकादिकों को साथ ले हम यहाँ से और स्थान को जायँगे ॥ २६ ॥ एक वृन्दावन नामवाला वन है; वह पशुओं का हितकारी, नये२ बागों से युक्त, गोपाल गोपी और गौओं के सेवन करनेयोग्य तथा पवित्र पर्वत, तृण और लताओं से युक्त है ॥ २७ ॥ तहाँ जाना यदि तुम सबोंको रुचै तो आज ही चलेंगे; अपने अपने छकड़ों में सामान भर कर बैल जोतो, देरी न करो, गोधनों को आगे २ लेचलो ॥२८॥ ऐसा उपनन्द गोपका वचन सुनकर सब एकमति होकर बहुत अच्छी वार्त्ता है, बहुत अच्छी वार्त्ता है ऐसा कहते हुए अपने २ छकडों के समूह को जोडकर उनके ऊपर घरकी सामग्री (सामान) लादकर चलदिये ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वह गोपाल वृद्ध, बालक, स्त्रियें, और वर्त्तन भांडे आदि सब सामग्री को गाड़ियों पर लाद आप कमर बाँध सावधानी के साथ हाथमें धनुष लेकर, गोधन को आगेकर चारों ओरको नरसिंहा बजाकर बाजोंका बड़ाभारी शब्द करते हुए पुरोहित ब्राह्मणों के साथ चलदिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय जिनके कण्ठों में हमेलें हैं और सकल आभूषणों से शोभित हुई तथा स्तनों में लगाए हुए नवीन केशर से जो शोभायमान होरही हैं और जिन्हों ने उत्तम वस्त्र पहिने हैं ऐसी रथों में बैठीहुई गोपियें, बड़े आनन्द के साथ कृष्ण की लीलाएँ गानेलगीं ॥ ३२ ॥ तथा उन कृष्ण और रामके चरित्रों को सुनने में उत्कण्ठित हुई यशोदा और रोहिणी उनही कृष्ण और राम को लेकर एकरथ में बैठकर चलते में शोभा को प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ इसप्रकार नन्द आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥ ३४ ॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती रामाधवयोर्नृप॥३५॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छंतौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३६ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३७ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३८ ॥ वृषायमाणौ नदंतौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जन्तोश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ३९॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४० ॥ तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वोऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितं ॥ सकपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः

गोपोंने गरमी आदि सकल ही ऋतुओं में सुख देनेवाले उस वृन्दावन में प्रवेश करा और तहाँ उन्होंने अर्धचन्द्र के समान आकारसे छकड़ों को खडे करके गोकुलके वसनेका स्थान बनाया॥३४॥हेराजन्! कृष्ण और बलरामनेभी वृन्दावन,गोवर्द्धन और यमुनाकी कछारों को देखकर,यह क्रीडा आदि करनेके योग्यस्थान हैं ऐसा मनमें विचारकर परम आनन्द माना।३५। इसप्रकार बालचरित्रों से और मधुर भाषणोंसे गोकुलवासी पुरुषों को प्रसन्न करने वाले वह बलराम और श्रीकृष्णजी,कुछकालमें बछड़े चरानेयोग्य अवस्था के होगए।३६॥ गोकुल से कुछएक दूर स्थान में गोपालों के बालकों के साथ मुरली, वेत आदि खेलने की सामग्री लेकर क्रीड़ा करनेवाले वह बलराम और श्रीकृष्ण बछड़ों को चरानेलगे।३७। वह कभी मुरली बजाते थे, कभी गोफनों से पत्थर फैंकते थे, कभी पैरों में घूँघरू बांधकर नृत्य करते थे, कभी कम्बल की घोंघी आदि ओढकर बैलों का स्वांग बनानेवाले दूसरे गोपालों के बालकों के साथ आप भी तैसा ही बैलों का स्वांग धरकर गर्जना करते हुए परस्पर युद्ध करते थे. कभी तिन२ जातियों के शब्दों से हंस मोर आदि का अनुकरण (नकल) करके साधारण बालकों की समान क्रीड़ा करते थे ॥३८॥३९॥ एक समय यमुना के तटपर अपने प्रेमी सखाओं के साथ बछडे चरानेवाले तिन बलराम और श्रीकृष्णजी को मारने की इच्छा करनेवाला एक दैत्य आया ॥ ४० ॥ बछड़ों के समूह में आये हुए उस बछडे का रूप धारण करनेवाले दैत्य को देखकर,भौं के सङ्केत (इशारे) से बलरामजी को दिखाते दिखाते, अनजान की समान वह अच्युत श्रीकृष्णजी धीरे २ उस के समीप आये ॥ ४१ ॥ और उन्हों ने पूँछ सहित उस के पिछले पैरों को पकड़ कर घर २ घुमाया और घुमाने से ही प्राणहीन हुए उस को एक कैथ के पेडपर फेंक.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पपात ह ॥ ४२ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४३॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः॥४४॥स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा ॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥४५॥ ते तत्र ददृशुर्बालाः महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥ ४६ ॥ स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४७ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥ बभूवुरिंद्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४८ ॥ तं तालुमूलं प्रदहंतमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चंचद्दं संद्योतिरुपाऽक्षतं बकस्तुण्डेन हंतुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ४९ ॥ तमापतंतं स निगृह्य तुंडयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां-

दिया ॥ ४२ ॥ तब अन्तकाल में माया का स्वरूप न रहने के कारण बडा शरीर धारण करनेवाला वह दैत्य, गिराये हुए कैथ के फलों के साथ आप भी भूमिपर गिरपड़ा उस पडेहुए दैत्य को देखकर आश्चर्य में हुए सब ही बालक 'हे कृष्ण ! तुमने बहुत अच्छा करा, बहुत अच्छा करा' इस प्रकार श्रीकृष्णजी की प्रशंसा करनेलगे; उस समय परम प्रसन्न हुए देवताओं ने भी पुष्पों की वर्षा करी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सकल लोकों के मुख्य पालक वह बलराम और श्रीकृष्णजी बछड़ों के पालक (रखवाले) होकर साथ में प्रातःकाल का भोजन लेकर बछडों को चरातेहुए विचरने लगे ॥ ४४ ॥ एक समय बलराम कृष्ण आदि सब ही गोपों के बालकों ने अपने अपने बछड़ों के समूह को, पानी पिलाने के निमित्त यमुनाजी की झीलपर जाकर पानी पिलाया और आप भी पिया॥४५॥ तदनन्तर उन बालकों ने यमुना की कछार में, इंद्र के वज्र से टूटकर भूमिपर गिरेहुए पर्वत के शिखर की समान बगले के रूप का एक बडाभारी प्राणी देखा और वह भयभीत होगये ॥ ४६ ॥ वह तीखी चोंच का बगुले का रूप धारण करनेवाला बक नाम वाला महाबली दैत्य था, उस ने एक साथ श्रीकृष्णजी के शरीरपर को झपटकर उन को निगल लिया ॥ ४७ तब कृष्ण को महाबक ने निगल लिया यह देखकर बलरामजी के सिवाय सब ही गोपों के बालक, जैसे प्राणों के बिना इन्द्रियें चेष्टारहित होजाती हैं तैसे मूर्छित होगये ॥४८॥ इधर बक ने तालुए के मूल को अग्नि की समान जलानेवाले ब्रह्मा जी के भी पिता परंतु नन्दजीके बालक तिन श्रीकृष्णजी को, बिना कुछ पीडाहुएही तत्काल वमन करके बाहर को उगल दिया और बडे क्रोध में भरकर चोंच से उन को मारने के निमित्त फिर उन के शरीरपर को झपटा ॥ ४९ । तब भक्तों के पालक और देवताओं को आनन्द देनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने, वेग से आते हुए उस बकासुर की चोंच के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्विवौकसां ॥ ५० ॥ तदा वकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५१ ॥ मुक्तं वकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेंद्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५२॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवोत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥ ५३ ॥ अहो वतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५४ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यंत्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५५ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५६ ॥ इति

'नीचे का और ऊपर का' दोनों भागों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर सकल बालकों के देखतेहुए पतेल की समान सहज में चीरडाला ॥ ५० ॥ तब स्वर्गलोक में रहनेवाले देवताओं ने, नन्दनवन में के मल्लिका आदि फूलों की वकासुर के शत्रु (श्रीकृष्ण जी) के ऊपर वर्षा करी और नगाडे तथा शङ्ख के शब्द के साथ उत्तम २ स्तोत्रों से स्तुति करी, यह देखकर गोपों के बालक आश्चर्य में होगये ॥ ५१ ॥ तब बलराम आदि बालक बकासुर के मुख में से छूटे हुए उन श्रीकृष्णजी को पाकर अपने बैठने के स्थानपर आये हुए उन को आलिङ्गन करके, जैसे प्राणों के विना व्याकुल हुआ इंद्रियों का समूह, फिर अपने स्थान में आये हुए प्राण का संयोग पाकर आनन्द पाता है तैसे ही आनन्द को प्राप्त हुए और सायङ्काल के समय सब बछडों को इकट्ठा कर गोकुल में आकर वह बकासुर का वध आदि कृष्ण का चरित्र कहने लगे ॥ ५२ ॥ गोपों के बालकों के कहेहुए उस कृष्णचरित्र को सुनकर अति प्रीति से आनन्दयुक्त हुई गोपियें और, गोप मानो मरण को प्राप्त होकर फिर लौटकर आये हुए उन श्रीकृष्णजी की ओर को तृप्त न हुए और अमृत सा पीते हुए नेत्रों से देखने लगे ॥ ५३ ॥ औरकहने लगे कि—अहो ! क्या कहाजाय ! इसबालक को अनेकों वार मृत्यु के कारण (दैत्य आदि) प्राप्त हुए तथापि, उन्होंने पहिले दूसरों को भय दिया इस कारण उनका ही नाश होगया ॥५४॥ यद्यपि वह (दैत्य) देखनेमही प्राण हरणसे करेलेतेथे तथापि वह,इस बालक का जरा भी बाल बांकाकरने को समर्थ नहीं हुए, किंतु मारने की इच्छा से इस के समीप आकर 'जैसे अग्नि का नाश करने को आयेहुये पतङ्गे आपही नष्ट होजाते हैं तैसेही, आपही नाशको प्राप्त होगये ॥ ५५ ॥ अहो ! ब्रह्मज्ञानी ऋषियों की वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होती है, क्योंकि—भगवान् गर्गऋषि ने, 'हेनन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुणों में नारायण की समान ही है' इत्यादि जो कहाथा सो तैसाही हमारे अनुभव में आया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविंदन् भववेदनां ॥ ५७ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वत्सवकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयन् शृंगरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान् स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयंतोऽलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ कांचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥

है ॥ ५६ ॥ इसप्रकार कहनेवाले नन्दादि गोपोंने, हर्षसे कृष्ण और बलरामकी कथा वर्णन करते हुए और उनके साथ में आनन्दित होतेहुए संसारबन्धन के तापका भी अनुसन्धान नहीं रक्खा ॥ ५७ ॥ यह कहेहुए तथा औरभी धाईविछौना खेलना, पुलबाँधना वानरों की समान कूदना इत्यादि छोटे बालकों के खेलखेलकर उन बलराम और श्रीकृष्ण जी ने गोकुल में अपना बालपन बिताया ॥५८॥ इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस बारहवें अध्यायमें, अजगर सर्पका वेषधारण करनेवाले और बछडों को तथा बछडोंके रखवालों को निगलजाने वाले अघासुर का, क्रोध में भरेहुए श्रीकृष्णजी ने उसके गलेमें अपने शरीर को बढ़ाकर वधकरा यहकथा वर्णन करी है पहिले बडेभारी बकासुरके गलेमें केवल अपनीही क्रीडाहुई यहकोई कौतुक की बातनहीं है ऐसा दिखानेके निमित्त ही श्रीकृष्णजीने मानो अब अपने मित्रोंके साथ अघासुरके मुख में प्रवेश करा ॥ * ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि—हे राजन् ! एक समय, वनमें ही पहिले भोजन करनेके निमित्त प्रातःकाल उठकर मनोहर सींगके शब्दसे समान अवस्थाके गोप बालकों को 'मैं वनमें को जाता हूँ तुम सबभी शीघ्रही आओ' ऐसा सूचित करनेवाले श्रीकृष्णजी बछडों को आगे करके गोकुल से चलदिये ॥ १ ॥ तब उन श्रीकृष्णजी के साथही उनके प्रेमी सहस्रों गोपों के बालक, प्रातःकाल के भोजनके सुन्दर छीके, बेत, सींग और मुरली यह सामग्री लेकर सहस्रों से भी अधिक संख्या के अपने २ बछडों को आगे आगे चलाते हुए बडे आनन्द के साथ गोकुल के बाहर निकले ॥ २ ॥ तदनन्तर वह बालक श्रीकृष्णजी के असंख्य बछडोंमें अपने बछडों को मिलाकर चराते हुए उन वनोंमें छोटेबालकों के अनेकों प्रकार के खेल खेलने लगे ॥ ३ ॥ उन को, उन की माताओं ने, पहिले काँच (झूँठे मोती आदि), गुञ्जा (चोंटनी), रत्न और सुवर्ण आदि के गहनों से भूषित करदिया था तथापि अति उत्सुकता से उन्हों ने फिर फलों के गुच्छे, पल्लव, फूलोंके गुच्छे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुष्णंतोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानीराच्चं चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥५॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६॥ केचिद्वेणून्वादयन्तो धमंतः शृंगाणि केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥ विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ॥ वकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षतः कीशबालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वतश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्यम्बुसंप्लुताः ॥ विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं

मोरों के पंख और गेरु आदि धातुओं से अपने को भूषित करा ॥ ४ ॥ वह आपस में एक दूसरे के छींके सींग आदि चुराकर छुपादेते थे, और वह मेरे पास है ऐसा उसने जानलिया, यह समझते ही दूर को फेंकदेते थे; तदनन्तर उस को पाकर दूसरे और भी दूर को फैंकदेते थे, इस प्रकार जिस का छींका आदि फेंका जाताथा उस के रोने को होजानेपर, हँसते हुए छींका आदि लाकर दे देते थे ॥५॥ किसी समय श्रीकृष्णजी, यदि वन की शोभा देखने को दूर चले जाते थे तो उन को, 'मैं पहिले छूऊँगा, मैं पहिले छूऊँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके (बाजी बदकर) दौड़ते २ जाकर उन को स्पर्श और आलिङ्गन करके परम आनन्द पाते थे ॥ ६ ॥ कितने ही बालक मुरली बजाते हुए खेलते थे, कितने ही सींग बजाते थे, कितने ही भौंरों के साथ गाते थे, कितने ही कोकिलाओं के साथ वैसा ही शब्द करते थे, कोई पक्षियों की छायाओं के साथ दौड़ते थे कोई हंसों के साथ उन की समान मनोहर गति से चलते थे, कितने ही बगलों के समीप में उनकी समान ध्यान करते हुए बैठते थे, कोई मोरों के साथ उन का सा नृत्य करते थे, कितने ही वृक्षों की शाखाओं में नीचे को लटकती हुई पूँछों को खैंचते हुए और उन को पकड कर आप वृक्षोंपर चढ़ते थे, कोई वानरों के साथ उन को दांत निकालकर दिखाते थे, कोई वानरों के साथ वृक्षों की एक शाखा से दूसरी शाखापर को कूदकर जाते थे ॥ ७ ॥ ॥८॥९॥ कोई नदी की कछार में बहते हुए थोड़े से जल में गोता लगाकर मेंडकोंके साथ उन की समान छलांग मारमारकर कूदते थे, कोई नदी के जल में पडी हुई अपनी छायाओं को हँसते थे, कोई अपने ही शब्द की प्रतिध्वनि (गुञ्जार) निकलने पर, यह कोई दूसरा मनुष्य बोलरहाहै ऐसासमझकर उस को 'अरे तू चोरहै' इत्यादि गालियें देतेथे १० इसप्रकार गोपों की क्रीड़ा का वर्णन करके विस्मय में होतेहुए उन की प्रशंसा करते हैं— हे रामन् ! इसप्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषों को स्वप्रकाश परमसुखरूप, दासभाव रखनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसां ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोरनेनैव सबलं हनिष्ये ॥ १४ ॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्र-

भक्तों को आत्मस्वरूप देनेवाले नाथ और माया का आश्रय करनेवाले पुरुषों को, मनुष्यरूप से दर्शन देनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णजी के साथ, जिन्होंने बहुत से पुण्य करे हैं तिन गोपों के बालकों ने क्रीड़ा करी, इस से अधिक उन के भाग्य का क्या वर्णन करें ? ॥ ११ ॥ जिन भगवान् के चरणों की रज, अनेकों जन्मों में करेहुए तप से और समाधि आदि के कष्टों से जिन्होंने अपने मन को वश में करलिया है उन योगियों को भी दुर्लभ है, वही भगवान् आप ही जिन की दृष्टि के सन्मुख आकर बसरहे हैं, उन के भाग्य का क्या वर्णन करें ? वह वाणी के और मन के भी अगोचर हैं ॥ १२ ॥ इसप्रकार बलराम और श्रीकृष्णजी के साथ गोपोंके बालकों की क्रीड़ा होनेपर, उस सुख से होतीहुई क्रीडा को देखना जिस को सहन नहीं हुआ है ऐसा एक अघासुर नामवाला बडाभारी दैत्य, उस वृन्दावन में अकस्मात् आगया, वह इतना बलवान् था कि—अमृत पीने के कारण अमरहुए देवताओं ने भी 'हम इस के हाथ से जीवित रहेंगे या नहीं' ऐसी शङ्का करके जीवित रहने की इच्छा से वह, यह दुष्ट दुरात्मा कब और कैसे मरेगा, ऐसी निरन्तर बाट देखरहे थे, अथवा इस का ही दूसरा अर्थ यह होता है कि—उन बलराम श्रीकृष्णजी आदिकों की क्रीडा ऐसी थी कि—अमृत पीकर अमरहुए भी देवता, हमारे जीवित रहने की सफलता हो, ऐसा मन में विचारकर जिन की क्रीडा का मन में चिन्तवन करते थे अर्थात् केवल अमृत पीने से ही जीवन का साफल्य नहीं होता हैं किन्तु भगवान् की लीलाओं का स्मरण करने से ही होता है इस कारण उन का ही निरन्तर ध्यान करते थे ॥ १३ ॥ इधर कंस का आज्ञा करा हुआ, पूतना और बकासुर का छोटा भ्राता वह अघासुर, जिन में कृष्ण मुख्य हैं ऐसे बालकों को देखकर, यह कृष्ण ही मेरे भाई बहिन का मारनेवाला है इसकारण उन दोनों के स्थान में (बदले में) इस कृष्ण को बछडे और गोपालों के बालकों सहित मारडालूँगा ॥ १४ ॥ यदि कहो कि—इसको मारने परभी गोकुल में गोप आदि शेष रहेंगे ? तहाँ कहते हैं कि— इन बलराम और श्रीकृष्ण आदि सब बछड़े और गोपबालकों से जब मेरे भाई बहिन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जौकैसः ॥ प्राणे गते वर्ष्मसु कानुचिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरं ॥ धृत्वाऽद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः ॥ ध्वांतांतरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृंदावनश्रियं ॥ व्यात्तांजगरतुंडेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥ १८ ॥ अहो मित्राणि गदत सत्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तरांहनुवद्धनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययाऽरुणम् ॥ ॥२०॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुंगशृंगालयोऽप्येतास्तद्वं-

तिलाञ्जली होजायगी तो गोकुल में के नन्द आदि सकल गोप मरेहुए से होजायँगे-क्यों कि-प्राण चलेजाने पर शरीर की चिन्ताही क्या?, जितने भी प्राणी हैं उन सब के पुत्र ही प्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा निश्चय करके वह दुष्ट अघासुर, बलराम कृष्ण आदि को निगल जानेकी इच्छा से, चारकोस लम्बे, बड़े पर्वत की समान पुष्ट, गुफा की समान फैले हुए मुखवाले, और आश्चर्यकारी एक बड़े भारी अजगर का स्वरूप धारण करके उन बछड़े और बछड़ों के रखवालों के जानेके मार्ग में सोरहा ॥ १६ ॥ उस समय, वह दैत्य जिसका नीचेका ओठ भूमि में फैलाहुआ है, ऊपर का ओठ मेघमण्डल में पहुँचगया है, जिसके दोनों जावडे पर्वत की छोटी गुफाओं की समान और दाढें पर्वत के शिखरों की समान हैं, जिसके मुखमें के भीतर का भाग अन्धकार से भरा है और जीभ एकलम्बे चौडे मार्ग की समान हैं, जिसकी नाकमें से कठोर वायुकी समान श्वास चलने के कारण जो वनकी अग्नि की समान भस्म करनेवाली दृष्टिसे युक्त है ॥ १७ ॥ अजगर का रूप धारण करनेवाले उस दैत्यको देखकर, सब गोपबालक, यह एक प्रकारकी वृन्दावनकी शोभा हीं है ऐसा मानकर, तिस अजगर के फैलेहुए मुखके इकसारपने की कौतुक से उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ वह कहने लगे कि-अरेमित्रों ! आगे दीखता हुआ यहवन, एकप्राणी की समान दीखरहा है या नहीं? कहो तिसपर भी हमको निगलने के निमित्त फैलेहुए अजगर सर्प के मुखकी समान दीखता है यानहीं? यह बताओ तो! ॥ १९ ॥ वास्तव में ऐसाही है, यह सूर्यकी किरणों से लालहुआ मेघ, उसके ऊपर के ओठकी समान दीखरहा है देखो-तैसेही उस मेघकी पडनेवाली छायासे लालवर्ण का दीखने वाला यह नदीका तट उसके नीचेके ओठकी समान प्रतीत होरहा है ॥ २० ॥ यह दाहिने और बायें ओरकी पर्वतों की गुफा, दोनों ओठों के प्रान्तभाग (जावडों) की समान दीखरहीं हैं देखो! यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृंगैश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ॥ एषा-मन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यंतरानंनम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोप्यंतरामिषगंधवत् ॥ २३ ॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकारिमुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांतस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च

ऊँचे शिखरों के स्थानभी उस अजगर की दाढ़ों की समान दीखरहे हैं देखो ! ॥ २१ ॥ यह लम्बा और चौंडा मार्ग, उसकी जिव्हा की समान प्रतीत होरहा है, इन शिखरों के भीतरका यह अन्धकार भी उसके मुखमें के मध्यभाग की समान प्रतीत होरहा है ॥२२॥ अहो ! वनकी दौं से गरम हुआ यह प्रखर वायु उसके श्वासकी समान प्रतीत होता है देखो ! उस दौंसे जलेहुए प्राणियों का जो यह दुर्गन्ध आरहा है सोभी अजगर के पेट में के मांसकी दुर्गन्धि की समान प्रतीत होता है देखो ! ॥ २३ ॥ इतने ही में दूसरे बालक कहने लगेकि– ठीकयह सर्पही है,तथापि हमइसमें भीतर चलेजायँतो यहहमको खाजायगा क्या? यदिऐसाहुआतोइनश्रीकृष्णजीकेहाथसेयहभीबकासुरकी समान एकक्षणमेंहीनाशको प्राप्त होजायगा; इसप्रकार परस्पर वार्त्तालाप करके वह सब ही बालक, बकासुर को मारनेवाले तिन श्रीकृष्णजी के सुन्दर मुख की ओर को देखकर थट्ठा मारकर हँसते हुए ताली बजाते बजाते बछडों सहित उस के मुख में घुसगये ॥ २४ ॥ इधर सब प्राणियों के हृदय में रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने ' यह अजगररूप राक्षस है ' ऐसा न जाननेवाले उन बालकों के इस प्रकार मिथ्या ही परस्पर हुए भाषण को सुनकर, ' वास्तव में ही यह राक्षस है ' ऐसा जाना और यह निःसन्देह राक्षस होकर इन बालकों को अजगर की समान वृन्दावन की शोभा प्रतीत होरहा है ऐसा विचारकर अपनें साथियों को भीतर जाने को निषेध करने का मन में विचार करा ॥ २५ ॥ त्यों ही तिन बछडों सहित सकल बालक, दैत्य के उदर में घुसगये, परंतु मरण को प्राप्तहुए पूतना और बक नामक अपनी बहिन भाई का स्मरण रखनेवाले और इस कारण ही बकारि (श्रीकृष्ण जी) का भीतर कब प्रवेश होय ? ऐसी बाट देखनेवाले उस ने मुख को बन्द करके निगला नहीं था क्योंकि–श्रीकृष्ण के साथ सब को निगल जाऊँ, ऐसा उस के मन में था ॥ २६ ॥ तब सब को अभय देनेवाले श्रीकृष्णजी, प्रारब्धवश बनेहुए अघासुर के मुख में प्रवेश करने से दीन हुए, जिन का दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है ऐसे, अपने हाथ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत्योर्जठराग्निघासान् घृणाऽर्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यादिति सविश्चित्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धा हेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः साभवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा वृद्धये गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतश्चितस्ततः ॥ पूर्णोऽतरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्जगन्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो

छूटेहुए और मृत्युरूप अघासुर की जठराग्नि को तृण की समान हुए उन गोपबालकों को देखकर, विस्मित और दया से आर्द्र हुए ॥ २७ ॥ और उन सब को देखनेवाले श्रीहरि ने विचार करा कि—इस दुष्ट दैत्य का प्राण न बचे और इन मेरे भक्तों की हिंसा न हो, यह दोनों वार्त्ता कैसे होंगी ? और इस विषय में मुझे क्या कार्य करना चाहिये ? इस का विचार करके वह दोनों वार्त्ता होने का उपाय समझ कर उस अघासुर के मुख में घुसगये ॥ २८ ॥ तब मेघों के आड में रहनेवाले देवता, भगवान् के प्रभाव को भूलकर ' अब श्रीकृष्ण मरण को प्राप्त होजायँगे ' ऐसा मन में विचारकर और अघासुर के मरण से निराश होकर हाय हाय शब्द का उच्चारण करके विलाप करनेलगे और उस अघासुर के बान्धव तथा कंस आदि राक्षस हर्ष को प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ वह देवताओं का विलाप सुनकर, नाशरहित भगवान् श्रीकृष्णजीने, बालक और बछडों सहित अपना चूर्ण करने की इच्छा करनेवाले उस दैत्य के कण्ठ में,उस के निगलनेसे पहिले ही अपना वेग बढ़ाया ॥ ३० ॥ उस बढ़ने के कारण जिस का मार्गरूप कण्ठ रुकगया है, जिस के नेत्र बाहर को निकल पडे हैं और जो सटपटाने लगा है तिस बड़ाभारी शरीर धारण करनेवाले अघासुर के शरीर में रुका हुआ प्राणवायु, मस्तक मे के ब्रह्मरन्ध्र को फोडकर उसी द्वार से बाहर को निकलगया ॥ ३१ ॥ उस प्राणवायु के साथ ही सब ही इन्द्रियों के बाहर निकलजानेपर फिर छोटा स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् श्री कृष्णजी, तिस अजगर के पेट में घुसकर मरण को प्राप्तहुए मित्रों को और बछडों को, अपनी अमृत की वर्षा करनेवाली दृष्टि से उठाकर, उन के साथ उस अघासुर के मुख में से फिर बाहर निकले ॥ ३२ ॥ तब बडे पुष्ट उस अजगर के शरीर में से निकलाहुआ, आश्चर्यकारी, बडाभारी, शुद्ध, सत्त्वगुणी तेज; अपने प्रकाश से दशों दिशाओं को प्रका-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दश ॥ प्रतीक्ष्य खेवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसां ॥३३॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽत्यज आगतोऽचिरादृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणं ॥ मृत्योः पौगंडके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदंगप्र-

शित करता, श्रीकृष्णजी के बाहर निकलने की बाट देखताहुआ आकाश में स्थित रहा वह, श्रीकृष्णजी के बाहर निकलते ही उन में, सब देवताओं के देखते २ प्रवेश करगया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अघासुर के वध से अतिहर्ष को प्राप्तहुए देवताओं ने, अपना कार्य करनेवाले श्रीकृष्णजी का सत्कार करा, उन में देवताओं ने उन के ऊपर पुष्पों की वर्षा करी, अप्सराओं ने नृत्य करा, गन्धर्व आदिकों ने गान करा, बाजा बजानेवाले विद्याधरादिकों ने बाजों का शब्द करा, वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों ने स्तुति करी और पार्षदों ने जय जयकार का शब्द करके सत्कार करा ॥ ३४ ॥ उन आश्चर्यकारी, स्तोत्र और उत्तम बाजों का शब्द, गान, जयजयकार का शब्द आदि अनेकों उत्साहों से उत्पन्नहुए माङ्गलिक शब्दों को ब्रह्माजी अपने सत्यलोक के समीप सुनकर तिस वृन्दावन में आये और उन ईश्वर श्रीकृष्णजीकी महिमा देखकर आश्चर्यमें होगये।३५। हे राजन्! वह अद्भुतअजगर का चर्म वृन्दावन में (फैलायाहुआ)पूछकर बहुतकालपर्यन्त गोकुलकेपुरुषोंकेक्रीडाकरनेकी गुफा सा होगया था ॥३६॥ आश्चर्य में हुए सकल बालकों ने, जो अपने को श्रीकृष्णजी ने, प्रसिद्ध मृत्यु से छुडाया था और सर्परूप अघासुर को, उस के तेज का श्रीकृष्णजी के विषैं प्रवेश होता हुआ दीखने से, जो संसाररूप मृत्यु से छुडाया था वह श्रीकृष्णजी का कुमार अवस्था में (पांचवें वर्ष में) करा हुआ कर्म उस ही समय देखकर, वह पौगण्ड अवस्था (छठे वर्ष) में, आज ही हुआ है ऐसा गोकुल में जाकर कहा ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जिन के स्पर्श से सकल पातक धुलकर वह अघासुर (पापरूप दैत्य), असज्जनों को अति दुर्लभ भगवान् की समानरूप को प्राप्त होगया;परंतु वास्तव में ब्रह्माजी से लेकर स्थावर पर्यन्त सकल उत्तम अधम वस्तुओं को उत्पन्न करनेवाले और माया से मनुष्य के पुत्रभाव को स्वीकार करनेवाले परमेश्वर श्रीकृष्णजी का, यह मृत्यु से बछडे और गोपोंके बालकोंको छुटाना और अघासुर की मुक्ति करना आश्चर्य क्या है?३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिमांऽतरांहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिं ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽतर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरांतुश्चरितं विचित्रं ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगंडकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथाऽमृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्र-

क्योंकि—केवल मन में चिन्तवन करी हुई और एकवार बडे परिश्रम से हृदय में स्थापन करी हुई जिन की मूर्त्ति की प्रतिमा ने भी प्रल्हाद आदि कितने ही भक्तों को भगवत्स्वरूप की प्राप्तिरूप मुक्ति दी है फिर नित्य निजानन्दके अनुभव से माया को दूर करनेवाले वही साक्षात् परमेश्वर, आप ही जिस के शरीर में घुसे उस को मुक्ति प्राप्त हुई तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ३९ ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनकादि ऋषियों ! इसप्रकार, श्रीकृष्णजी ने रक्षा करके धर्मराज आदि को दियेहुए वह राजा परीक्षित्, अपनी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णजी का आश्चर्यकारी चरित्र सुनकर, उस सुनने से मनके और भी अति तत्पर होने पर फिरभी उसही पुण्यकारी श्रीकृष्णचरित को कहने के विषय में व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी से कहने लगे ॥ ४० ॥ राजाने कहाकि—हे ब्रह्मन् ! पाँचवर्ष के भीतर की कौमार अवस्था में श्रीहरि का करा हुआ अघासुर का वधरूप कर्म, दशवर्ष के भीतर की पौगण्ड अवस्था में बालकों ने गोकुल में कहा. यह जो तुमने मुझ से कहा है सो कालान्तर (कौमार अवस्था) का करा हुआ कर्म तत्कालीन (पौगण्ड अवस्था में करा हुआ) कैसे होगया अर्थात् पांचवें वर्ष में करा हुआ कर्म, छठे वर्ष में, आज ही करा है ऐसा उन बालकों को कैसे प्रतीत हुआ ? ॥ ४१ ॥ सो हे त्रिकाल का ज्ञान रखनेवाले गुरो ! मुझ से कहो, वह मुझे बडा कौतुक प्रतीत होरहा है, और यह निःसन्देह श्रीहरि की माया ही होगी, इसके विना ऐसा होना सम्भव ही नहीं है ॥ ४२ ॥ हे गुरो ! हम ब्राह्मणों का अपराध करनेवाले होने से यद्यपि अधम क्षत्रिय हैं तो भी जो आप से पवित्र कृष्णकथारूप अमृत का वारम्वार पान कररहे हैं तिसकारण इस मनुष्यलोक में सब से धन्य हैं ॥ ४३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे भगवद्भक्तों में अति उत्तम शौनकजी ! इस प्रकार राजा परीक्षित् के प्रश्न करनेपर वह व्यासपुत्र शुकदेवजी, तिस प्रश्न से स्मरण कराये हुए अनन्त भगवान् ने जिन की सकल इन्द्रियों को खैंचा है ऐसे एकाग्रचित् होकर समाधि में स्थित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते म० द० पू० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नृतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदनान्मृत्योरक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् स्फुटत्सरोगंधहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यस्माभिर्दिवारूढं क्षुधा-

हुए, तदनन्तर फिर जयजयकार आदि शब्द के सुनने से जिन को बाहरीदृष्टि प्राप्त हुई ऐसे होकर वह राजा से कहने लगे ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस तेरहवें अध्याय में बछडे और बछडों के रखवालों को ब्रह्माजी ने चुरालिया तब श्रीकृष्णजीने अपनी माया से उन सब बछडे और गोपबालकों का रूप धारण करके एक वर्ष पर्यन्त पूर्ववत् बाललीला करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे महाभाग ! हे भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ ! राजन् ! तुम ने परम उत्तम प्रश्न करा है, क्योंकि–तुम ईश्वर की कथा को वारम्वार श्रवण करतेहुए भी फिर२ प्रश्न करके उस कथा को नवीन नवीन सी करदेते हो ॥१॥ जैसे स्त्रीलम्पट पुरुषों को स्त्रियों के विलासों की वार्त्ता अनेकोंवार अनुभव करीहुई भी प्रतिक्षण नवीन२ सी ही प्रतीत होती हैं तैसे ही भगवान् की वार्त्ता ही जिनकी वाणियोंका, कर्णों का और अन्तःकरणों का विषय है ऐसे सार ग्रहण करनेवाले साधु पुरुषों को, अच्युत भगवान् की कथा ही क्षण २ में नवीन २ सी प्रतीत होती है, यह उनका स्वभावही है ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो, तुम्हारा बूझाहुआ भगवान् का चरित्र यद्यपि गुप्त है तौ भी मैं तुम से कहता हूँ, क्योंकि–अपने में और भगवान में स्नेह करनेवाले शिष्यको गुरु, गुप्त वार्त्ता भी कहदेते हैं ॥ ३ ॥ पहिले वर्णन करने के अनुसार अघासुरके मुखरूप मृत्यु से भगवान् ने बछड़ों की और बालकों की रक्षा करी और उनको यमुना नदी के तटपर लिवालाकर वह उनसे यह कहनेलगे कि–॥ ४ ॥ अरे मित्रों ! यह यमुनाका तट बड़ा ही मनोहर है, यह हमारे क्रीडा करने के साधनों की सम्पत्ति से युक्त और चमकती हुई स्वच्छ रेती से रम्य है; तथा फूलेहुए कमलों की सुगन्धि के लोभी भ्रमरों की और पक्षियों की जल में होनेवाली प्रतिध्वनि (गुञ्जार) से तटपर के शोभायमान वृक्षों की घनी पंक्ति से व्याप्त होरहा है ॥ ५ ॥ दिन चढ़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽर्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वाऽर्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ भुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥ कृष्णस्य विष्वक् पुरुरा जिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाऽम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभोजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसंतो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन-

आया, हमारे भोजन का समय होगया, इसकारण हम भूँख से परम व्याकुल हो रहेहैं, सो आओ हम यहाँही भोजन करें, बछड़े पानी पीकर समीपही कोमल घासको धीरे२ चरें ॥ ६ ॥ ऐसा भगवान् का कथन सुनकर उन बालकों ने 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर बछडों को पानी पिलाया और हरी २ घासकी भूमि में उन सबको इकट्ठा करके अपनी भोजन की पोटलियों को खोलकर बडे हर्षसे भगवान् के साथ भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ तब उस वंन में श्रीकृष्णजी के चारोंओर एकके बाहर एक इसप्रकार बैठीहुई बहुतसी गोलाकार पङ्क्तिओंसे कृष्णकी ओरको मुख करके और कृष्ण दर्शनसे-प्रफुल्लितनेत्र होकर, भीतर को छोटे २ और बाहर को बडे २ इसक्रम से एकसे एक भिड़कर बैठेहुए वह गोपालों के बालक, जैसे कमल में की कर्णिका के चारोंओर बाहर लगेहुए छोटे २ के अनन्तर बड़े२ कमल के पत्ते शोभित होते हैं तैसेही शोभित होनेलगे उस समय चारों ओरके सब बालकों को श्रीकृष्णजी का मुख अपने सन्मुख ही दीखता था ॥ ८ ॥ उनमें से कितने ही बालकों ने फूलों के अपने भोजन के पात्र बनाए, कितनोही ने पत्तोंके, कितनोही ने कोंपलों के, अङ्कुरों के, फलोंके, भोजन बाँधने के वस्त्रोंके, वृक्षोंकी छालोंके और पत्थरों के भोजन करने के पात्र बनाए और भोजन करने लगे ॥९॥ कृष्ण सहित वह सब ही बालक, अपने २ घरोंसे लाएहुए भोजन के पदार्थों का दूसरोंको भिन्न भिन्न प्रकार का स्वाद दिखाते हुए और 'भाई तुम्हारी माता बडी फूहड है, अच्छा भोजन आदि करना नहीं जानती है' इत्यादि नानाप्रकार के वाक्योंसे दूसरों की हँसी करते और अपनी हँसी कराते हुए भोजन करनेलगे ॥ १० ॥ उस समय पहिरेहुए वस्त्रमें वा फेंटमें मुरली उरसकर, बाईंकोख में सींग और बेंत दावकर, बायेंहाथ की हथेली पर दही भातका ग्रास और उसही हाथकी अंगुलियों के पोरुओं पर निम्बू अदरख और चटनी आदि लेकर, सब बालकों के सन्मुख मध्य में खडे होकर और अपने चारोंओर बैठेहुए साथियों को, अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्वालकेलिः ॥ ११ ॥ भारतैवं वत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मां विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन् भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अंभोजन्मजनिस्तदंतरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजुमहित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वाऽन्यत्र कुरुद्वहांतरदधात् खेवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥ क्वाप्यदृष्ट्वाऽन्तर्वि-

---

कहेहुए हास्य के वचनोंसे हँसाते हुए, उस समय बालकों की समान लीला करनेवाले वह यज्ञभोक्ता भगवान् श्रीकृष्णजी भोजन करनेलगे स्वर्गलोक में रहनेवाले देवता भी वह चमत्कार आश्चर्य के साथ देखरहे थे, ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजी में जिन का मन मगन होरहा है ऐसे उन गोपबालकोंके भोजन करते समय, हरी घासमें चुगते हुए उनके बछडे तृणों के लोभ से दूर वन में चलेगये ॥ १२ ॥ तब बछडों के न दीखने से उन बालकों को भयभीत हुए देखकर, श्रीकृष्णजी कहने लगे कि—अरेमित्रों! भय के हेतु व्याघ्र आदिकोंसे बछड़ोंको भयप्राप्त होगा ऐसा तुम मनमें विचार न करो और भोजन न छोड़ो, मैं बछड़ों को यहीं लाता हूँ ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर पर्वत, पर्वतों की गुफा, लता झाड़ी आदि के कुञ्जवन और खाड़ियों में अपने और मित्रों के बछड़ों को ढूँढने के निमित्त वह भगवान् श्रीकृष्णजी, हाथ पर दही भातका ग्रास लिये हुए फिरने लगे ॥१४॥ हे राजन् ! उससमय जो (ब्रह्माजी) आकाश में स्थित होकर श्रीकृष्णजी से होने वाले अघासुर के मोक्ष को देखकर परमविस्मय को प्राप्त हुए थे वह कमल से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजी, अपनी इच्छा से बालक का रूप धारण करके, उन श्रीकृष्णजीकी और कोई भी मनको आनन्द देनेवाली महिमा देखने के निमित्त 'श्रीकृष्ण भोजन में लगे और बछड़ों को ढूँढने के निमित्त वन में गये, यह 'बछड़ों को और गोपबालकोंको चुराने का' अवसर पाकर, वन में से उन के बछड़ोंको और भोजन करतेहुए गोपबालकों को दूसरे मायाशय नामक स्थान में लेजाकर सुलादिया और आप अन्तर्धान होगए ॥ १५ ॥ इधर श्रीकृष्णजी, टीले कुञ्जवन आदिकों में कहीं भी बछडों को न देखकर यमुनाकी रेती में आये और तहाँ गोपालबालकों को भी न देखकर, वन में चारों ओर उन को ढूँढनेलगे ॥ १६ ॥ वन में कहीं भी बछडे और रेती में बालक नहीं हैं ऐसा देखकर उन विश्वको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकालपकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांबरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽगवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान् पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्संज्ञ प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म

जाननेवाले श्रीकृष्णजी ने, तत्काल वह सब बछडे और गोपबालकों का चुरालेना, ब्रह्माजी का काम है ऐसा जानलिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन जगत् की रचना करनेवाले ईश्वर श्रीकृष्णजी ने, मन में विचारा कि—यदि मैं मौन रहूँगा तो बछडों की और गोपों के बालकों की माताओं को (गौओं को और गोपियों को) दुःख होयगा तथा ब्रह्माजी के चुरायेहुए बछडे और गोपालों को ही यदि लौटालाऊँ तो ब्रह्माजी को मोह नहीं होगा और उनका उद्योग व्यर्थहोने के कारण उलटा उन को केवल खेदही होगा अतः ऐसा न करके उन बछडे गोपालों को तथा उन की माताओं को आनन्द होने के निमित्त अपने को ही बछडे और गोपालरूप से उत्पन्न करा ॥ १८ ॥ गिनती में जितने बछडे और ग्वालों के छोटे, बडे, काले, गोरे, कोमल आदि शरीर थे; जितने लम्बे चौडे हाथ पैर आदि अङ्ग थे, जिसप्रकार के उन के पैने सींग, मुरली, पत्ते और छीके आदि थे; जैसे उन के भूषण, और वस्त्र थे; जैसे उन के स्वभाव, गुण, आकार, अवस्था आदि थे और जैसा उनका चलना, बोलना, बुद्धि, स्मरणशक्ति आदि था. वैसे और उतने ही सकल स्वरूपोंसे वास्तवमें जन्मरहितभी भगवान् श्रीकृष्णजी, 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इस श्रुतिके स्वरूपकी समान शोभितहुए ॥ १९ ॥ और स्वयं आपही पुकारनेवाले बनकर, आत्मस्वरूप गौ बछडों को, आत्मस्वरूप गोपालों के द्वारा पीछे को लौटाकर, गेंद आदि आत्मस्वरूप खेलने की सामग्रियों से क्रीडाकरतेहुए सर्वात्मा भगवान् गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥ और हेराजन् ! जिधर २ को जिस २ गोपबालक के जाने का मार्ग फिरा था उधर २ को उस २ के ही बछडों को अलग करके उस २ की ही गोशाला में लेजाकर घुसादिया और उस २ केही स्वरूप से उस २ केही घर में चले गये. इसप्रकार तिन सबों का भिन्न२ स्वरूप धारण करनेवाले वह श्रीकृष्णजी हुए ॥ २१ ॥ अब गोपियों का मोह कहते हैं— उन गोपों के बालकों की माताओं ने मुरली का शब्द सुनतेही शीघ्रतासे उठकर अपने२ पुत्रों को आया मानकर, उन पर ब्रह्मरूप श्रीकृष्णजी कोही हाथों से ऊपरको उठाकर परम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुतानपाययन् ॥ २२ ॥ ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान् स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहत्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना ॥ पुरावदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहं ॥ शनैर्निःसीमं ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एक-

स्नेह के साथ छाती से लगाया. और उनको अमृतकी समान मधुर तथा मद्यकी समान मदकारी स्नेह से टपकते हुए स्तनों में का दूध पिलाया ॥२२॥ हेराजन्! इसप्रकार, जिस २ समय जो जो क्रीडा होती थी वह २ करके दिन के चारों पहर बीतजानेपर सायङ्काल के समय मुरली बजाना आदि अपनी लीलाओं से माताओं को आनन्दित करते हुए वह बालकरूपी श्रीकृष्णजी, उन २ के घर में गये तब, उन माताओं ने उन के शरीर को सुगन्धित तेल उबटन आदि लगाना, स्नान कराना, चन्दन आदि लगाना, वस्त्र पहिराना, भूषण पहिराना, रक्षाबन्धन करना, तिलक लगाना, भोजन कराना, और शय्यापर सुलाना इत्यादि लाड़ करा ॥ २३ ॥ अब गौओं का मोह कहते हैं—जो गौ चरने के निमित्त वन को गईथीं वह गौएँ तहां से बड़ी शीघ्रता के साथ गोशाला में आकर हुङ्कारयुक्त शब्दों से बुलानेपर समीप आएहुए, अपना २ स्तन पीना छोडनेवाले भी पहिले बछडों को बारंबार चाटती हुईं, ऐन को फोडकर टपकता हुआ दूध पिलानेलगीं॥२४॥ उस समय गौओं का और गोपियों का इन पुत्ररूप हुए श्रीकृष्णजी के ऊपर लालन पालन आदिरूप मातृभाव, एक स्नेह के अधिकपने को छोडकर पहिले की समान ही था केवल स्नेह की वृद्धिही अधिक हुई तथा उन गौ और गोपियों में श्रीकृष्णजी का बालकपनभी एकमाया को छोड और सब पहिले की समान ही था, उनको—यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ ऐसा मायाकल्पित मोहही नहीं था ॥ २५ ॥ जैसी गोकुलवासियों की, यशोदापुत्र श्रीकृष्णजी के विषैं पहिले अपने पुत्रोंसे भी अधिक प्रीति थी वैसी ही अब अपने पुत्रोंके विषैं भी एकवर्ष पर्यन्त स्नेहलता पहिले से भी अधिक प्रतिदिन धीरेधीरे निःसीम (बेहद्) बढ़ने लगी ॥ २६ ॥ इसप्रकार वह सर्वात्मा भगवान् गोकुल में बछडों के रखवाले होकर, बछडों के और उनके रक्षक बालकों के मिषसे आपही अपनी रक्षा करते हुए एकवर्ष पर्यन्त वनमें और गोकुल में क्रीडा करनेलगे ॥ २७ ॥ इतने समय पर्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ॥ पञ्चपासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणं ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्कक्कुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुङ्कृतैरानुपथा जवेन॥३०॥ समेत्य गावोऽथो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणप्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्द्धनि घ्राणैरवापुः

(कुछकम वर्षभर पर्यन्त) बलरामजी को भी मोहही था, फिर उन्हों ने श्रीकृष्णजी के कहने से सब वृत्तान्त जाना ऐसा वर्णन करते हैं-एकसमय, वर्षपूरा होनेमें पाँच छः रात्रि कम थीं, उससमय बलराम सहित श्रीकृष्णजी बछडों को चराने के निमित्त वन में गये तब गोवर्धन पर्वत के शिखरपर चरनेवाली गौओं ने तहाँ दूर स्थानपर गोकुल के समीपकी घासमें चरनेवाले अपने बछडोंको देखा॥२८।२९॥और देखकर तत्काल वहगौओं का समूह, उन बछड़ों के स्नेह से परवश होकर, जिन को देह का मान नहीं रहा है, जिन्हों ने अपने पालक गोपालों को भी कुछ न गिनकर काँटे खाही आदि के ऊँचे नीचे मार्ग में को गमन करा है, जिन्हों ने अपनी ग्रीवा को तिरछा करके कन्धेपर को लिया है, जिन्हों ने मुख और पूँछ ऊपर को उठाई हैं, जो पैर उठाय छलाँग मारकर दौड़ती हुई जाने के कारण दोही पाँव से दौड़तीहुई सी प्रतीत होती हैं और जिनका दूध ऐन में न समाने के कारण स्तनों में से जिधर तिधर को भूमि पर टपक रहा है ऐसी उन गौओंका समूह, हुङ्कारशब्द करताहुआ बड़े वेगसे बछडो के समीप को चलागया ॥३०॥ दुसरी वार प्रसूतहुई (व्याहीहुई) भी वह गौएँ, गोवर्द्धन की तलैटी में चरते हुए पाहिले बछडों के समीप आकर मानों उन के अङ्गों को निगलही रही हैं इसप्रकार चाटती हुई उन पाहिले के बडे बछडों को ही अपने ऐनो में का दूध पिलाने लगीं ॥ ३१ ॥ गोपोंने भी गौओं को रोकने का परिश्रम निष्फल होने के कारण लज्जाके साथ प्राप्त हुए बडे क्रोध में भरकर विकट मार्ग में को होकरही गोवर्धन से नीचे आकर गौ और बछडो के साथ आये हुए अपने बालकों को देखा ॥ ३२ ॥ यह बालकही गौओं के सामने बछडे ले आये हैं इसकारण गौओं ने ऐसा झञ्झट करा अतः इन बालकों कोही ताडना करना चाहिये,ऐसा विचारकर वह गोपाल आयेथे परन्तु उन बालकोंको देखनेसे उत्पन्नहुए प्रेमरस में उन के अन्तःकरण निमग्न होगये और उनका क्रोध दूर होगया तथा उन के हृदय में उन बालकों के ऊपर प्रीति उत्पन्न हुई तब उन गोपोंने तिन बालकों को अपनी भुजाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युद्भवः ॥ ३४ ॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिंतयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नाण्युतासुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति सञ्चिंत्य दाशार्हो वत्सान्संवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन व्रजयो-

से उठाकर छाती से लगाया और उन के मस्तक का चुम्बन करके परम आनन्द का अनुभव करा॥३३॥तदनन्तर बालकों को छाती से लगानेसे परम तृप्तहुए वह वृद्ध गोप, तहां से बडे कष्टके साथ धीरे२फिर गोवर्द्धन पर्वतपर को चले आए,परन्तु तहां भी उन बालकों का वारंवार स्मरण आकर उनके नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भरआतेथे॥३४॥इसप्रकार जिन का स्तनपीना छूटा है ऐसे बछडे और उन के रखवालों में गौ-वृषभरूप और गोपी गोपरूप गोकुल के प्रेम की वृद्धि की उत्कण्ठा देखकर, 'इस का क्या कारण है ?' सो न जानते हुए बलराम जी चिन्तवन करने लगे कि—॥ ३५ ॥ सर्वात्मा वासुदेव भगवान् में (श्रीकृष्णजी के विषै) जैसा पहिले सब का प्रेम था, अब मुझ सहित सब गोकुल का इन बछड़े और वत्सपालों में भी अपूर्व प्रेम बढ़ रहा है, न जाने यह क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥ इस को माया कहा जाय तब भी यह कौन है और कहां से आई है ? क्या यह देवताओं ने फैलाई है ? अथवा मनुष्यों ने वा असुरों ने फैलाई है ? परन्तु यह प्रायः मेरे स्वामी श्रीकृष्णजी की ही माया होनी चाहिये, क्योंकि यह मुझ को भी मोहित कर रही है इसकारण दूसरे किसी की नहीं है ॥ ३७ ॥ वह बलरामजी इस प्रकार चिन्ता करके ज्ञानचक्षु से देखने लगे तो उन को, सब बछडे और समान अवस्था के सकल बालक कृष्णरूप ही दीखने लगे ॥ ३८ ॥ तब वह बलरामजी श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि—हे कृष्ण ! आज पर्यन्त मैं ऐसा समझता था, कि-पालन करने योग्य जो सकल बछडे हैं और पालन करनेवाले जो सकल बालक हैं वह देवताओं के अंश हैं अब तो वैसा नहीं है किन्तु लौकिक दृष्टि से यह बछडे हैं, यह बछडों के रखवाले हैं इत्यादि भेद प्रतीत होरहा है तथापि तत्त्व दृष्टि से यह ऋषि वा देवता कोई भी प्रतीत नहीं होते हैं; किन्तु तुम ही प्रतीत होते हो इस कारण हे ईश्वर ! यह सब कैसे हुआ है ? सो तुम मुझ से स्पष्ट करके कहो, ऐसा प्रश्न करनेपर प्रभु श्रीकृष्णजी ने वह सब वृत्तान्त संक्षेप से कहा तब उतने से ही बलरामजीने जानलिया॥३९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिं ॥ ४० ॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मनि ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव मायया ऽजोपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ तस्यां तमोवन्नैहारं खद्योताचिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपाला पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यंत

इतने ही में ब्रह्माजी ने अपने प्रमाण से त्रुटिमात्र काल में शीघ्रता से आकर देखा तो सब बछडे और उन के रखवालों सहित श्रीकृष्णजी पहिले की समान एक वर्ष पर्यन्त क्रीडा कररहेहैं ॥४०॥ और वह विचार करने लगे कि—गोकुल में जितने बालक हैं उन सबको ही मैं बछडों सहित दूसरे स्थान में लेगयाहूँ, इस में सन्देह नहीं है कि— मैंने मायाकल्पित स्थानमें उन को शयन करा दियाहै सो वह मोहित होकर अभीतक फिरउठेनहींहैं॥४१॥ और यहाँ मेरी माया से मोहित होनेवालों के सिवाय दूसरे उतनेही एक वर्ष पर्यन्त श्री कृष्णजीके साथ क्रीडा करनेवाले यह बछडे और बालक कहाँ से आगये हैं ? ॥ ४२ ॥ इसप्रकार बछडे और बालकों के दो दो भेद हो जाने पर बहुत देरी पर्यन्त विचार करने वाले भी वह ब्रह्माजी, सत्य कौन से हैं और मायासे रचे हुए कौन से हैं (मेरे ले गये हुए सत्य हैं या यहाँ के सत्य हैं) यह जानने को किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हुए ॥४३॥ इस प्रकार मोह रहित और जगत् को मोहित करनेवाले विष्णु भगवान् को मोह में डालने को प्रवृत्त हुए वह ब्रह्माजी भी अपनीही माया से आपही मोहित होगये ॥ ४४ ॥ जैसे कुहर के घुटजाने से होनेवाला अन्धकार दिनमें लोकों को दिशाओं का भ्रम आदि करने वाला होता है परन्तु वह रात्रि के अन्धकार में अपनी कुछ शक्ति नहीं चला सक्ता है किन्तु उस में आपही लुप्त होजाता है अथवा जैसे पटवीजनेकी चमक रात्रि के समय प्रकाशित होती हुई भी दिन में वह मालूम भी नहीं होती है किन्तु वह सूर्य के तेज में लीन होकर अपने आश्रयरूप पटवीजने काही निस्तेजपना दिखाती है तैसेही बडे पुरुषों के ऊपर अपनी माया चलाने वाले नीच पुरुष की वह नीच माया, उन के ऊपर अपनी कुछ शक्ति चलाने को समर्थ न होकर अपने स्वामी की ही कुछ शक्ति को नष्ट करडालती है, तात्पर्य यह है कि—महामायावी श्रीकृष्णजी के ऊपर चलाई हुई ब्रह्माजी की माया, उन के ऊपर अपनी कुछ शक्ति चलाने को समर्थ न होकर उलटी ब्रह्माजी को ही मोह में डालने का कारण हुई ॥ ४५ ॥ जबतक ब्रह्माजी बछडे और बालकों में सत्य कौन से हैं और मायाकल्पित कौन से हैं, यह विचार कररहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ अंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः । स्वकार्थानामिव रजःसत्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥ आत्मादिस्तंबपर्यंतैर्मूर्त्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमाभिराद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्त्तिभिर्द्विरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तानंदमात्रैकरसमूर्त्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशां

थे सो इतने ही में उन ब्रह्माजी के देखते हुए तत्काल बछडे और उन के रखवाले बालक लकड़ी, सींग आदि सब ही भगवान् के स्वरूप वाले दीखने लगे, वह सब मेघ की समान श्यामवर्ण, पीले रेशमी वस्त्र पहिने हुए, चतुर्भुज, शङ्ख चक्र गदा और पद्म को धारण करनेवाले, किरीट, कुण्डल, हार और वनमालाओं से भूषित थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उन की भुजाओं में श्रीवत्सचिन्ह की प्रभा से युक्त बाहुभूषण थे, उनके हाथों मे शङ्ख की समान तीन धारोंवाले रत्नजडे कङ्कण थे; वह—नूपुर, कड़े, तोड़े, और अँगूठी इन भूषणों से शोभित थे ॥ ४८ ॥ तथा सकल अङ्गों में, अनेकों जन्मों मे पुण्य प्राप्त करने वाले भक्तजनों की समर्पण करी हुई तुलसी की कोमल नवीन मालाओं से चरणों से मस्तक पर्यन्त भरे हुए थे ॥ ४९ ॥ वह अपने लाल २ कटाक्षपातों से और चन्द्रमा के प्रकाश की समान स्वच्छ मन्द मुसकुरानों से, क्रम करके रजोगुण और सत्त्वगुण के द्वारा अपने भक्तों के मनोरथों को पूरा करनेवाले और मानों पालन करनेवाले ही हैं ऐसे दीखते थे ॥ ५० ॥ अपने से (ब्रह्माजी से) तृण पर्यन्त मूर्त्तिमान चराचर प्राणियों से, अपने २ अधिकार के अनुसार नृत्य गान आदि अनेकों प्रकार की पूजाकी सामग्रियों से भिन्न २ प्रकार से आराधना किये जारहे थे ॥ ५१ ॥ भगवान् की महिमा से जिनका स्वतन्त्रपना नष्ट होगया है ऐसे मूर्त्तिमान् अणिमा महिमाआदि ऐश्वर्यों से, अजा अविद्या आदि शक्तियों से, जगत् के कारण महत् आदि चौवीस तत्त्वों से, और गुणों को क्षोभित करने वाला काल परिणाम का कारण स्वभाव, वासना का बोध कराने वाला संस्कार, भोग की इच्छारूप काम, लौकिक वैदिकादि व्यापार रूपकर्म और सत्त्वादि गुणों से घिरेहुए उपासना किये जारहे थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादि और सबों के मूर्त्तिमान् होनेपर, भी उन बछड़े और बालक आदि उपासना करनेयोग्य मूर्त्तियों में यह विशेषता थी कि—वह मूर्त्तियें—सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त और आनन्दरूप, आनन्दमात्र (विजातीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ५४ ॥ एवं सकृद्दर्शजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्य स्तिमितैकादशेंद्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्तिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चछादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोजाजवनिकां ॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीरचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृंदावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्र नैसर्गदु-

भेद रहित) और निरन्तर एकरसरूप थीं इसकारण उनका बडाभारी माहात्म्य, आत्मज्ञानरूप दृष्टिवाले पुरुषों को भी निःसन्देह समझने में आना कठिन था ऐसी वह (वत्सवत्सपालादिरूप भगवान् की) मूर्त्तियें दीखने लगीं ॥ ५४ ॥इसप्रकार उन ब्रह्माजीने, सबही बछड़े और ग्वालबालों को, एकसाथ उन परब्रह्मके स्वरूपवाला देखा कि जिन के तेज से यह चराचर विश्व प्रकाशित होता है ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अति आश्चर्य से चकित होने के कारण अपनी दृष्टि को अन्तर्मुख करके, उन भगवान् की मूर्ति के तेज से जिन की पाँचों ज्ञानेन्द्रियें, पाँचों कर्मेन्द्रियें और मन यह ग्यारहों स्तब्ध (काम न देनेवालीं) होगई हैं ऐसे वह ब्रह्माजी, निश्चल खड़े होगए, उस समय वह ऐसे प्रतीत होते थे कि—मानो गोकुलग्रामकी अधिष्ठात्री देवताके सामने चारमुख की पुतली खड़ी करदी है ॥ ५६ ॥ इसप्रकार वह सरस्वती के पति ब्रह्माजी, जिसकी तर्कना न होसके ऐसी परममहिमा से युक्त, स्वयंप्रकाश और सुखरूप, प्रकृति से पर, ब्रह्म से अन्य जड़ पदार्थों के त्याग से उपनिषदों के द्वारा जानने योग्य और ब्रह्मरूप अपने स्वरूप में 'यह क्या दीख रहा है' इसप्रकार मोहित होकर देखने को भी समर्थ नहीं हुए तब श्रीकृष्णजीने, उनके मोह आदि क्लेश को जानकर तत्काल 'जिस से आश्चर्य दिखाया था वह, अपना मायारूप परदा दूर करदिया. अथवा यह लोकाभिमानी ब्रह्माजी, मेरा ऐश्वर्य देखने के योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर उनके ऊपर माया का परदा डालदिया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर जिन की इन्द्रियें बाहरी विषयों की ओर को प्रवृत्त हुई हैं ऐसे वह ब्रह्माजी, जैसे मराहुआ पुरुष उठ बैठै तैसे, उठकर बड़े सङ्कट से अपने नेत्रों को खोलकर उन्होंने अपने शरीरसहित यह सकल जगत् देखा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर तत्काल सकल दिशाओं की ओर को देखने पर उन्होंने अपने आगे,जिसमें चारों ओर प्रिय पदार्थहैं और जो लोकों की जीविका चलानेवाले वृक्षों से भरा हुआ था ऐसे वृन्दावन को देखा ॥ ५९ ॥ तदनन्तर जहाँ से, श्रीकृष्णजी के निवास के कारण क्रोध, लोभ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराः सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं स्वपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवातिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ॥ कृतांजलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥ इतिश्रीभागवते दशमस्कन्धे पू० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥

भय आदि दूर होगए हैं और जहाँ स्वभाव से ही परस्पर परमवैरभाव रखनेवाले मनुष्य व्याघ्र, बिलाव और मूषक (चूहा) आदि प्राणी मित्रों की समान एक स्थान में रहते हैं ऐसे उस वृन्दावन में ब्रह्माजीने, पहिले की समान ही नन्दगोप के पुत्ररूप से लीला करनेवाले, तहाँ अद्वितीय (विजातीयभेदरहित) होकर भी विजातीय बछड़ों को ढूँढनेवाले, एक (सजातीयभेदरहित) होकर भी सखाओं को ढूँढनेवाले, अगाधज्ञानस्वरूप होकर भी अनजानकी समान ढूँढनेवाले, अनन्त होकर भी जिधर तिधर ढूँढनेवाले, प्रकृतिसे पर होकर भी गोपबालक का रूप धारण करनेवाले, और आकार तथा हस्तपादादि अङ्गों से रहित होकर भी हथेलीपर दहीभातका ग्रास लेकर फिरनेवाले श्रीकृष्ण जी को देखा॥ ६० ॥ ६१ ॥ और देखकर शीघ्रता से अपने हंसरूपवाहन से (सवारी से) नीचे उतरकर पृथ्वी पर सुवर्ण के दण्डे की समान अपने शरीर को लिटाकर, चारों मुकटों के अग्रभागों से उन श्रीकृष्णजीके दोनों चरणों को स्पर्श करके और नमस्कार करके आनन्दकी अश्रुधाराओं से उन का अभिषेक करा ॥६२ ॥ तदनन्तर पहिले देखी हुई श्रीकृष्णजी की महिमा को वारंवार स्मरण करके और वारंवार उठकर उन को नमस्कार करते हुए अन्त में चिरकालपर्यन्त श्रीकृष्णजी के चरणों में पड़े रहे ॥ ६३ ॥ तदनन्तर धीरे २ उठकर, आनन्द के अश्रुओं से भरेहुए अपने दोनों नेत्रोंको पूछकर, श्रीकृष्णजीकी ओर को देखकर,लज्जासे गरदन नीचे को करके आदरके साथ हाथ जोड़े हुए,नम्रतासे युक्त और भयसे थर थर काँपतेहुए वह ब्रह्माजी,एकाग्रचित्त होकर गद्गदवाणी से श्रीकृष्णजीकी स्तुति करनेलगे॥६४॥इतिश्रीमद्भागवत दशमस्कन्धके पूर्वार्द्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ इसचौदहवें अध्याय में भगवान् की आश्चर्यकारिणी लीला देखकर, पहिलेके बछड़े और ग्वालबाल कौन थे और नये कौन थे,इस का निश्चय करने को असमर्थ होकर मोहित हुए ब्रह्माजी ने, श्रीकृष्णजी की स्तुति करी यह कथा वर्णन करी है ॥*॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥ अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ॥ नेशे महि त्वेवसितुं मनसांतरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्तां ॥ स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधल-

अपने करे हुए अपराध के भय से थर २ कांपकर भगवान् की महिमा के जानने को असमर्थ हुए वह ब्रह्माजी, भगवान् के दीखते हुए ही स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—हे स्तुति के योग्य भगवन् ! मैं तुम्हें प्रसन्न करने के निमित्त तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ—तुम मेघ की समान श्यामसुन्दरमूर्त्ति, बिजली की समान चमकीले पीले वस्त्र पहिननेवाले, कानों में पहिरेहुए गुञ्जाओं के कर्णभूषण और मस्तकपर धारण करेहुए मोरमुकुट से शोभायमान मुखवाले, और कोमल चरणोंवाले नन्दगोप के पुत्र हो, तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ अब, स्तुति करता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा करके केवल देखे हुए स्वरूप का ही क्यों वर्णन करते हो ? यदि ऐसा कहो तो हे देव ! भक्तों की इच्छा के अनुसार प्रकटहुए और मेरे ऊपर अनुग्रह करनेवाले इस तुम्हारे अति सुलभ अवतार की भी महिमा के जानने को मैं ब्रह्मा वा दूसरा और कोई भी समर्थ नहीं है क्योंकि—यह अवतार अचिन्तनीय शुद्ध सतोगुणी है, इस अवतार की महिमा ही यदि नहीं जानी जाती तो केवल आत्मसुख के अनुभवमात्र तुम्हारे गुणातीत स्वरूप की महिमा को, एकाग्र करे हुए भी मन से जानने को कोई समर्थ नहीं है इस का तो कहना ही क्या ? ॥ २ ॥ तो अज्ञानी पुरुष संसार को कैसे तरेंगे ? ऐसा कहो तो हे भगवन् ! ज्ञान की प्राप्ति में कुछ भी परिश्रम न करके केवल साधुओं के समीप में अपने २ स्थान पर बैठकर साधुओं करके स्वभाव से ही नित्य वर्णन करीं हुई और आप ही कानों में आई हुई तुम्हारी कथाओं को जो पुरुष, तन मन वचन से सत्कार करते हुए ही जीवित रहते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं उन पुरुषों ने हे अजेय परमेश्वर ! तुम प्रायः त्रिलोकीमें औरोंसे यद्यपि नहींजीतेजाते हो तथापि तुम्हें जीतलिया है अर्थात् तुम उन को प्राप्तहोगये हो, फिर ज्ञानके निमित्त परिश्रम करके उन को क्या करना है ? कुछ नहीं ॥३॥ हे प्रभो ! जैसे सरोवर अनेकों सोतों से बहने वाला होता है तैसे ही धर्म—अर्थ—काम मोक्षरूप चार प्रकार के पुरुषार्थों को देनेवाले तुम्हारी भक्ति को त्यागकर जो पुरुष, केवल ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त शास्त्रों का अभ्यास आदि क्लेश करते हैं उन को,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनां ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ॥ विबुद्ध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं परां ॥ ५ ॥ तथाऽपि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलांतरात्मभिः ॥ अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुकंपां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान ए-

जैसे सूक्ष्म दीखने वाले कणयुक्त धान्यों को त्यागकर, भीतर से कणहीन और बाहरसे बड़े भारी धान्य की समान दीखनेवाले खोकले धान्यके कूटनेवालों को केवल क्लेशही शेष रहता है तैसेही, क्लेशही शेष रहता है दूसरा कोई फल प्राप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥ हे व्यापक अच्युत ! इसलोक में पूर्वकाल के अनेकों योगी, योगके साधनों से ज्ञान की प्राप्ति न होने के कारण अपना लौकिक व्यापार भी तुम्हें समर्पण करके तुम्हें समर्पण करे हुए उनकर्मों से ही चित्त की शुद्धि होने पर प्राप्तहुई और कथा सुनने आदि से बढ़ी हुई तुम्हारी प्रेमरूप भक्ति सेही आत्मस्वरूप को जानकर अनायास में ही तुम्हारी परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होगये हैं ॥ ५ ॥ इसप्रकार सगुण और निर्गुण इन दोनों स्वरूपों का ज्ञान दुर्घट होने के कारण तुम्हारी कथा आदि सुनने सेही तुम्हारी प्राप्ति होती है और प्रकार से नहीं होती है, ऐसा वर्णन करा.अब, यद्यपि दोनों स्वरूपों का ज्ञान दुर्घट कहा है तथापि निर्गुणस्वरूप का ज्ञान कदाचित् होजाय परन्तु तुम अचिन्त्य और अनन्तगुणहो इस कारण तुम्हारे सगुण स्वरूपकाही ज्ञान नहीं होगा ऐसा वर्णन करते हैं—हे व्यापक ! यद्यपि तुम्हारी महिमा विषयासक्त पुरुषों केजानने में आना काठिन है तथापि इन्द्रियों को वश में करलेनेवाले पुरुषोंको गुणातीत तुम्हारी महिमा इन्द्रियों का विषय न होने के कारण, उनकी प्रवर्त्तक होने से, विशेष आकार न होने के कारण जगत् की अधिष्ठान होने से और आत्माकार हुए अन्तःकरण में उसका साक्षात्कार होनेसे स्वप्रकाशरूपसे जानने के योग्य होतीहै केवल विषयरूप से जाननेमें नहीं आती है॥६॥हे प्रभो! जिन अतिचतुर पुरुषों ने,बहुत से जन्मों के समय करके, पृथ्वी के रजों के कणों की तथा अन्तरिक्षलोकमें के तुषारों के कणों की और स्वर्गमें के चन्द्रमा सूर्यादि की जो किरणें तिन के परमाणुओं की गणना (गिनती) करी है ऐसे भी कौन से पुरुष, इस जगत् का पालन करने के निमित्त बहुत से गुण प्रकट करके अवतार धारण करने वाले, गुणों के अधिष्ठाता जो तुम परमेश्वर तिन के गुणों की (इतने हैं, ऐसी) गणना करने को समर्थ होयँगे ? अर्थात् कोई भी गणना नहीं करसक्ते ॥७॥ इस प्रकार तुम्हारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वात्मकृतं विपाकम् ॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजाऽवलेपांधतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥ क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टितांडघटसप्तवितस्तिकायः ॥ क्वेदृग्विधाविगणितांडपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वं ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः

ज्ञान होना दुर्घट है इसकारण हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा कब होयगी ? ऐसी बाट देखने वाला, अपने करेहुए कर्मों का फल (सुख वा दुःख) आसक्त न होकर भोगनेवाला और शरीर वाणी मन से तुम्हारी वन्दन आदि भक्ति करनेवाला जो पुरुष जीवित रहता है वह पुरुष, 'जैसे पिता की सेवा करनेवाला पुत्र पिता के धन का भागी होता है तैसे ही' मुक्तिफल का भागी होता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार भगवान् की स्तुति करके अब क्षमा कराने के निमित्त अपना अपराध कहते हैं—हेईश्वर ! मेरा यह मूढ़पना देखो कि—जिस मैंने, मायावी पुरुषों को भी मोहित करनेवाले, सब के कारण, सब के नियन्ता और नाशरहित तुम्हारे ऊपर भी अपनी माया फैलाकर तुम्हारा ऐश्वर्य देखने की इच्छा करी, ऐसा करने को मैं तुम्हारे सामने क्या हूँ ? अर्थात् कुछ नहीं हूँ ! जैसे अग्नि से उत्पन्न हुई लपट, दूसरों को जलाती है परन्तु वह अग्नि के ऊपर अपना कुछ प्रभाव नहीं चलासक्ती है तैसेही तुम से उत्पन्न हुआ मैं, औरों को मोहित करता हूँ परन्तु तुम्हारे ऊपर अपना कुछ भी प्रभाव चलाने को समर्थ नहीं हूँ ॥ ९ ॥ इस कारण हे अच्युत ! रजोगुण से उत्पन्न हुआ, तुम्हारे प्रभाव को न जाननेवाला,तुम से निराला मैं ही ईश्वर हूँ ऐसा अभिमान रखनेवाला और मैं जगत् का कर्त्ता हूँ ऐसे गाढ अन्धकार से जिसके नेत्र अन्ध हो रहे हैं ऐसे मेरे अपराधों की, 'मैं इस का नाथ (रक्षक) होऊँगा तबही इस की रक्षा होयगी नहीं तो नहीं होयगी इसकारण इस सेवक के ऊपर मुझे कृपा करना चाहिये ऐसा समझकर' क्षमाकरो ॥ १० ॥ अब,ब्रह्माण्डरूप धारण करनेवाला तू भी ईश्वर ही है, यदि ऐसा कहो तो हे देव ! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इन आवरणों से लिपटा हुआ ब्रह्माण्ड घटही जिसका 'अपने प्रमाणसे' सात बिलस्त का शरीर है ऐसा मैं कहाँ ? और ऐसे असंख्य ब्रह्माण्डरूप अणु परमाणुओं का यथेच्छ सञ्चार(जाना आना रूपगति)होने योग्य झरोखोंकी समान जिनके शरीर के रोमों के छिद्रहैं ऐसे आपका प्रभाव कहाँ ? इसकारण मुझ अतितुच्छ के ऊपर कृपा करके तुम मेरे अपराध क्षमा करो ॥ ११ ॥ और हे अधोक्षज ! गर्भ में स्थित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं कल्पते मातुरधोऽक्षजांगसे ॥ किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥ जगन्त्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्वति वाङ्न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽगं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥

बालकका पैरों को ऊपर को उछालना(लात मारना)क्या माताके अपराध का कारण होता है ? किन्तु नहीं होता है. फिर है और नहीं है इन शब्दों से उच्चारण करीहुई कोई भी वस्तु, थोडीसी भी क्या तुम्हारे उदर से बाहर है ? अर्थात् कुछ नहीं है इसकारण सबही जब तुम्हारे उदर में है तो मैं भी उसके ही भीतर हूँ इसकारण तुम मेरे अपराधको माताकी समान सहन करो ॥ १२ ॥ और विशेष करके मेरा जन्म तुम से ही प्रसिद्ध है, देखो त्रिलोकी का प्रलय होने के समय सब समुद्रों के मिलकर एक होजाने पर, उस जल में नारायण के उदर में स्थित नाभिकमल में से ब्रह्माजी निकले हैं ऐसी जो वाणी है सो वास्तव में मिथ्या नहीं है, हे ईश्वर ! तुमही कहो, कि–मैं तुम से उत्पन्न हुआ हूँ या नहीं ? ॥ १३ ॥ मैं तुमसे बूझता हूँ कि–सकल जीवों के समूहको जिस का आश्रय है वह नारायण * तुमही नहीं हो क्या ? किन्तु तुमही हो. नर से (ईश्वरसे) उत्पन्न हुआ जो जल सो नार कहाता है वह जिस के रहने का स्थानहै, ऐसे अर्थ से प्रसिद्ध जो नारायण वह भी तुम्हारी ही मूर्त्ति है; वह भी तुम्हारा नारायण स्वरूप सत् नहीं है किन्तु वह तुम्हारी मायाही है अर्थात् लीला के निमित्त वह रूप तुम ने दिखाया है वास्तव में तुम व्यापक (सर्वत्र पुरेहुए) हो ॥ १४ ॥ हे अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् ! जगत् का आश्रय वह तुम्हारा जल में रहनेवाला शरीर सत्य था, यदि ऐसा कहो तो हे भगवन् ! उस ही समय कमल की दण्डी के मार्ग से जल में प्रवेश करके सौ वर्ष पर्यन्त ढूँढनेवाले भी मैंने, उस को तहां जल मे क्यों नहीं देखा ? और हृदय में भी वह मेरी दृष्टि क्यों नहीं पड़ा ? और तप करने के अनन्तर तत्काल ही फिर वह भलीप्रकार दृष्टि क्यों नहीं पड़ा ? इसकारण वह माया ही है अर्थात् तुम्हारी मूर्त्ति का जो देशपरिच्छेद आदि भासता है सो सत्य नहीं है ॥ १५ ॥ हे माया को दूर

* नर से (पुरुष से , उत्पन्न हुए तत्वों को विद्वान् ' नार ' कहते हैं, वह तत्त्व नारायण के पहिले अयन (आश्रय वा रहने का स्थान) थे इसकारण वह नारायण कहाते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्रैव मायाश्रमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वर्य्य—पीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वद्वतेऽस्य किं मम ने ते मायात्वमादर्शितमे कोसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावंत्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥ अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मनो भासि वितत्य मायां ॥ सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेवोऽत इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ॥ जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो

करनेवाले ईश्वर ! इस अवतार में ही बाहर प्रत्यक्ष दीखनेवाले सकल प्रपञ्च को तुमने अपने उदर में यशोदामाता को दिखाकर इस का असत्पना ही प्रकट करा है ॥ १६ ॥ प्रतिविम्ब दीखने का ऐसा नियम है कि—वह विम्ब का प्रतिकृति दीखता है, दर्पण का प्रतिविम्ब उस ही दर्पण में नहीं दीखता है; फिर यशोदा को यह सकल जगत् यहां (बाहर) जैसा भासता था तैसा ही वह सब तुम्हारे उदर में भी तुम्हारे सहित भासमान हुआ, फिर तुम्हारे विषैं तुम सहित बाहर की समान जगत् का भासना क्या माया के विना होसक्ता है ? अर्थात् कभी नहीं होसक्ता ॥ १७ ॥ हे देव ! तुम्हारे सिवाय इस सकल प्रपञ्च का मायाकल्पितपना तुमने क्या आज ही मुझे नहीं दिखाया है ? किन्तु दिखाया ही है मेरे बछडे और ग्वालबाल हरने से पहिले तुम एक श्रीकृष्ण थे, तदनन्तर गोकुल के बालक, बछडे, सींग आदि सब तुम ही होगये; तदनन्तर मेरे सहित सकल तत्त्वों करके सेवन करे हुए, गिनती में उतनी ही चतुर्भुज मूर्त्तिवाले तुम होगये, फिर उतने ही ब्रह्माण्डरूप होगये; उन प्रत्येक ब्रह्माण्डों में भी अस्मदादिकों से सेवन करे हुए थे अब अन्त में पहिले की समान एक कृष्णही रहे हो, इस से अपरिमित परिपूर्ण एकही तुम्हारा स्वरूप शेष रहता है ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारा स्वरूप न जाननेवाले पुरुषों कोही अनात्मरूप प्रकृति में रहनेवाले आत्मातुम,उन के ऊपर स्वाधीनता से अपनी माया फैलाकर, जगत् की सृष्टि करने के विषय में मुझ ब्रह्मा की समान, पालन करने के विषय में इस अब दीखते हुए तुम विष्णु की समान और संहार के विषय में रुद्र की समान भासत हो ॥ १९ ॥ हे रक्षा करनेवाले ! हे प्रभो ! हेईश्वर ! असज्जनों का दुष्टमद नष्ट करने के निमित्त और साधुओं के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त जन्मरहित भी तुम्हारे—देवताओं में वामन आदि, ऋषियों में परशुराम आदि, मनुष्यों में श्रीरामचन्द्र आदि, तिर्यक्योनियों में वराह आदि और जलचरों में मत्स्य आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधातः सदनुग्रहाय ॥ २० ॥ को वेत्ति भूमन् भगवन्परात्मन् योगेश्वरोतीभवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः॥ ॥ २३ ॥ एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवार्णवं तां बुधिं ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् ॥ ज्ञानेन भूयो-

अवतार हुए हैं ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! जब तुम अपनी योगमाया को फैलाकर क्रीड़ा करते हो तब तुम्हारी लीला, इस त्रिलोकी में, कहाँ, कैसी, कितनी और कब होती हैं यह कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता है इसकारण तुम्हारी योगमाया का ऐश्वर्य अचिन्तनीय है ॥ २१ ॥ तिससे अनन्त और सत्यज्ञानानन्दरूप तुम्हारे विषैं प्रतीत होनेवाला यह सम्पूर्ण जगत्, स्वप्नकी समान मिथ्या, ज्ञानशून्य, अनेकों दुःखों से युक्त होने के कारण उत्तरोत्तर दुःखरूप और मायासे उत्पन्न होकर नाश को प्राप्त होनेवाला होने के कारण नश्वर है तथापि इसके अधिष्ठानभूत तुम्हारी सत्ता से यह मिथ्या होकर भी सत्य की समान, अनित्य होकर भी नित्य की समान, दुःखरूप होकर भी सुख की समान और जड़ होकर भी चेतन की समान भासता है ॥२२॥ हे परमेश्वर ! तुम एक आत्मा (द्रष्टा) होने के कारण परमार्थरूप सत्य हो, पुरातन और अन्तर्यामी होने के कारण आद्य (प्रपंचसे पहिले भी होनेवाले) हो, नित्य होने के कारण अस्तित्वरूपविकार से रहित हो; पूर्ण, नित्यानन्दरूप, अक्षर और अमृत होने से वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश से रहित हो; अनन्त और अद्वयहोनेसे देश आदिपरिच्छेदसे(इतने देशमें रहनेवाले ऐसी अवधिसे)रहितहो, तथा स्वप्रकाश, निर्मल और उपाधिरहित होने के कारण उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति और संस्कार से रहित हो ॥ २३ ॥ इसप्रकार सकल ही जीवोंके स्वरूपभूत तुम भगवान् को जो पुरुष, गुरुरूप सूर्य से प्राप्त हुए उपनिषद्जनित ज्ञानरूप उत्तम नेत्र से अपने अन्तर्यामीस्वरूप करके देखते हैं वह पुरुष, संसाररूप मिथ्यासमुद्रको तरेहुए से होजाते हैं ॥ २४ ॥ जो पुरुष आत्माको ही सत्यस्वरूप से नहीं जानते हैं उन को तिस अज्ञान करके ही तिस आत्मा में अहन्ता ममता आदिरूप सकल प्रपञ्च प्राप्त हुआ है, वह प्रपञ्च फिर भी तिस आ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पि चं तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवौ भवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्तऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचिंत्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६ ॥ त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥ अतर्भवेऽनंत भवंतमेवं ह्यतत्त्यजंतो मृगयंति संतः ॥ असंतमप्यंत्यहिमन्तरेण संतं गुणं तं किमु यन्ति संतः ॥ २८ ॥ अथापि ते देव पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव

त्मस्वरूपके सत्यज्ञान करके ही, जैसे डोरी के अज्ञान से डोरी में भासनेवाला सर्पका शरीर फिर डोरी का सत्यज्ञान होने से ही नष्ट होता है तैसेही नष्ट होजाता है॥२५॥ अब, ज्ञानसे तरही जाते हैं, ऐसा होते हुए तरेहुए से होजाते हैं ऐसा क्यों कहा ? तहाँ कहते हैं कि—संसार से जो बन्धन और मोक्ष यह दोनों ही वास्तव में अज्ञानसे ही उन नामों को प्राप्तहुए हैं जैसे सूर्य में रात्रि और दिनरूपभेद हैं ही नहीं तैसे ही अखण्ड अनुभवरूप केवल शुद्ध आत्माका विचार कियाजाय तो तिस सत्य ज्ञानस्वरूप से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ २६ ॥ यदि कहो कि—परमार्थ के ज्ञान से अज्ञान कर के उत्पन्न हुए बन्धन को दूर होने दो, परमात्मा का स्वात्मस्वरूप से ज्ञान होना चाहिये ऐसाही आग्रह क्यों है? सो—जहाँ देहाभिमानरूप भ्रम से अपना सत्यस्वरूप नहीं भासताहुआसा हो रहा है, तिस शरीर में ही भ्रम दूर होकर आत्मज्ञान होना उचित है, यही ब्रह्माजी विस्मय में होकर कहते हैं कि—हे प्रभो ! तुम परमात्माके विषैं देह आदिकों का अध्यास करके और देहादिकों में आत्मा का अध्यास कर के (तादात्म्य मानकर) आत्मस्वरूपको न समझने के कारण खोयेहुए आत्मा को फिर बाहर ढूँढे तब अज्ञानी प्राणियों की यह कितनी मूढता है ? घर में खोई हुई वस्तुकहीं वन में खोजने से मिलती है? किन्तु कभी नहीं ॥ २७ ॥ इससे हे अनन्त ! इस चैतन्यजडरूप शरीर में ही, जड का त्याग करनेवाले विवेकी पुरुष, तुमसे अपने को अभिन्न समझकर तुम्हें ही खोजते हैं, यदि कहो कि—सत्यरूप के ज्ञान से ही कार्य सिद्धि होजायगी, जड पदार्थ के त्यागका कौन प्रयोजन है? तहाँ कहते हैं कि—समीप में सर्प के न होने पर भी सर्प का निषेध करे विना समीप में स्थित भी रज्जु को क्या विवेकी पुरुष जानतेहैं किन्तु नहीं जानते हैं इसकारण अन्तर्यामी आत्मासे अभेद मानकर तुम्हारा ज्ञान होने पर मुक्ति होती है नहीं तो नहीं होती है॥२८॥तो फिर ऐसे ज्ञान से ही प्राप्त होने वाले मोक्ष के विषय में भक्ति क्यों कही है? ऐसा कहो तो हे देव ! यद्यपि ज्ञान को हाथसे प्राप्त होनेयोग्यसा कहा है तथापि तुम्हारे दोनो चरणकमलों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोपि चिरं विचिन्वन् ॥ ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनं ॥ ३२ ॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं वत भूरिभागाः ॥

प्रसादलेश ने जिस के ऊपर अनुग्रह करा है ऐसा पुरुष ही, तुम भगवान् की महिमा के तत्व को जानता है, दूसरा (तुम्हारी भक्ति न करनेवाला) एक भी पुरुष एकान्तमें वासकरके जड़पदार्थों के त्याग से शास्त्र के बल करके चिरकालपर्यन्त विचारकरे तब भी नहीं जानता है ॥२९॥ हेनाथ ! इस कारण इस ब्रह्मजन्म में, अथवा कर्मवश पशु आदि योनियोंमें प्राप्त होनेवाले जन्म में मुझे वही परम भाग्य प्राप्तहोय कि–जिसभाग्यसे, तुम्हारे भक्तजनों में कोई एकाद यःकश्चित् भक्तहोकर, तुम्हारे चरणपल्लवकी परमसेवा करूं ॥ ३० ॥ अब देवता आदिकों के जन्मों की अपेक्षा कहीं तुम्हारी भक्ति से युक्तही जन्म श्रेष्ठ है, ऐसी,उत्कण्ठा से सात श्लोकों करके भक्तों के जन्म की प्रशंसा करते हैं कि– अहो ! इस गोकुल में की गौ और गोपियें परम धन्य (कृतार्थ) हैं,क्योंकि–हे सर्वव्यापक ! जिन तुम्हें तृप्त करने को सकलही यज्ञ, अबभी समर्थ नहीं हैं ऐसे प्रतिक्षण में तृप्त होते हुए तुमने बछड़ों के और वत्सपालों के स्वरूप से जिन गौ और गोपियोंके स्तनों का अमृत की समान मधुर दूध परम हर्ष से पिया है ॥ ३१ ॥ अहो ! नन्दगोप के गोकुल में वसनेवाले गौ गोपी आदि सबों का कैसा परम (अकथनीय) भाग्य है !! क्योंकि-जो परमानन्दरूप सनातन पूर्ण ब्रह्म है वह अपना मन वाणी आदि के अगोचरपनारूप स्वभाव त्यागकर जिनका मित्र हुआ है, उनके भाग्यकाजितना वर्णन करें उतना थोड़ाही है ॥ ३२ ॥ हे अच्युत ! इन गोकुलवासी लोगों के भाग्य की महिमा तो अलगरही, उसका तो वर्णन ही कौन करसक्ता हैं ? परन्तु अहङ्कार,बुद्धि,मन और दश इन्द्रियें इन तेरहों के अधिष्ठाता रुद्र आदि तेरह देवताओं में हम ग्यारह×ही देवता परमभाग्यवान् हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि हम इन गोकुलवासियों के इंद्रियरूप पीने के पात्र (कटोरों) करके चित्त के अधिष्ठाता तुम वासुदेवके अमृतसमान मधुर और आसवकी समान मदकारी चरणकमल के मकरन्द का वारम्वार पान करते हैं

× दश इन्द्रियें, मन, बुद्धि और अहंकार इन के तेरह देवता हैं उनमें से वायु और उपस्थ इन दोनों इन्द्रियों से सेवामें लाभ न होनेके कारण उनके देवताओंको छोड़कर मूल में ग्यारहकहाहै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतद्रूपीकचैपकैरसंकृत्पिर्वामः शर्वादयोऽप्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां तद्गोकुलेपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम् ॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्वद्व्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ॥ ३४ ॥ एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देव रातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥ सद्वेषोदिवं पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्॥तावन्मोहोऽघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न

इससे जब प्रत्येक इन्द्रिय के अभिमानी देवता हम, तुम्हारे कीर्त्ति, सुन्दरता सुगन्धि आदि एक २ गुण का सेवन करने से ही कृतार्थ हैं तो सकल इन्द्रियों के गुणों का सेवन करनेवाले व्रजवासियों के भाग्य का तो वर्णन ही क्या करें! ॥ ३३ ॥ इस कारण पहिले मैंने जिस की प्रार्थना करी है तिस परम भाग्य से युक्त, इस मनुष्यलोक में, जिस में भी वृन्दावन में, तिस में भी गोकुल मे कृमिकीट आदि कोई सा जन्म मुझे प्राप्तहो, जिससे कि-इन गोकुलवासी लोगों में से किसी के तो चरणकी रज का अभिषेक मेरे ऊपर होयगा, यदि कहो कि- गोकुलवासी ही क्यों धन्य है? तो-जिनके चरण की रजको श्रुति भी अभी खोजती हैं ऐसे तुम भगवान् श्रीकृष्ण, जिन गोकुलवासियों के स्त्री पुत्र गृह आदि सहित आयुभी हुए हो इसकारण वह कृतार्थ हैं ॥ ३४ ॥ ऐसे इन गोकुलवासियों की कृतार्थता का कहांतक वर्णन करूं! कि-जिन की भक्ति से षड्गुण ऐश्वर्यवान् तुमभी, ऋणी की समान होकर रहते हो, यदि कहो कि क्या मैं उनको चाहें सो देने को समर्थ नहीं हूँ जो उनका ऋणी रहूँगा? सो-हे देव! चाहे जोकुछ देने को समर्थ भी तुम, इन गोकुलवासियों को सर्वफलरूप अपने स्वरूपसे अन्य दूसराकौनसा फल दोगे? इस विषय में हमारा चित्त सब स्थानों में विचारके साथ विचरता हुआ भी मोह को प्राप्त होता है, यदि कहो कि मैं अपना स्वरूपही देकर उन का अनृणी (बेकर्ज) होजाऊँगा? सो नहीं नहीं यह नहीं होसक्त; क्योंकि-भक्तों का वेष ही स्वीकार करने से पापिनी पूतना राक्षसी भी तुमने अपने स्वरूप को पहुँचादी है, फिर वही फल क्या उनकी भक्ति के योग्य होसक्ता है? यदि कहोकि-इन के सम्बन्धी पुरुषों को भी मैं आत्मस्वरूप देदूँगा सो उस पूतना को अघासुर बकासुर आदि कुलसहित ही तुमने आत्मस्वरूप दिया है फिर इन को भी वही फल देना ठीक नहीं है. क्योंकि-जिन गोकुलवासियों के घर, धन, मित्र, स्त्री पति आदि, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण यह सब तुम्हारे निमित्त ही हैं फिर ऐसे परमभक्तों को क्या प्राणनाशक राक्षसों को दिया हुआ ही फल देना चाहिये? ॥ ३५ ॥ यदि कहोकि-वीतराग संन्यासियों को भी मुझ से दूसरा फल ही नहीं है, फिर इनको वह ठीक क्यों नहीं होगा? सो हे कृष्ण! जबतक पुरुष,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ते[13] जनाः ॥ ३६ ॥ प्रपञ्चं निष्प्रपंचोपि[3] विडंबयसि भूतले ॥ प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥ जानंत एव जानन्तु किं वहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥३९॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोपदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उ-

अनन्यभाव से तुम्हारी शरण में न आवें तवतक ही उन के विवेक धैर्य आदि धन को राग लोभ आदि चोर चुराते हैं, तवतक ही उनको यह घर कारागार (जेलखाने) की समान है और तवतक ही यह मोह उनको पैर में डाली हुई वेड़ी की समान रोकता है; तुम्हारे भक्तों के तो रागमोह आदि शत्रु भी तुम्हारे भजन में विशेष साधन होते हैं इस कारण इन गोकलवासी वीतराग और संन्यासियों में कुछ भी भेद न होकर इनका भजनमात्र अधिक है ॥ ३६ ॥ यदि कहोकि—इसकारण ही मैं इनका पुत्रादि रूप हुआ हूँ सो हेप्रभो ! प्रपञ्च से परभी तुमअपनी शरण आयेहुए लोकोंको उत्तरोत्तर आनन्द ही प्राप्त होता है ऐसा प्रसिद्ध करने के निमित्त इस भूतलपर पुत्रादिरूप प्रपञ्च का अनुकरण (नकल) करते हो, सो कपट से स्वीकार करे हुए पुत्ररूप आदि करके उनकी सच्ची निःसीम भक्ति का आनृण्य (वेकर्जपना) नहीं होता है ॥ ३७ ॥ इसप्रकार प्रथम से आरम्भ करके ' अनन्तगुण होने के कारण ' भगवान् के स्वरूप को अपने जानने में न आना वर्णन करके अव जोकोई ' हम भगवान् को जानते हैं' ऐसा अभिमान करतेहैं उनको हास्यसा करतेहुए कहतेहैं कि-हेप्रभो!तुम्हारी महिमा को 'हम जानतेहैं' ऐसा कहनेवाले जो हैं वही जानें उनकी अधिक निन्दा करके क्या करना है ? मेरेतो मन को, शरीर को और वाणी को तुम्हारे ऐश्वर्य का ज्ञान होता नहीं है अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्यका चिन्तवन आदि करना मेरेमन आदिके अधिकार से वाहरहैं॥३८॥अव जगदीश्वरपने आदिके अभिमान को त्यागकर कहते हैं कि—हे कृष्ण ! तुम सर्वसाक्षी होनेके कारण अपनी महिमा और अस्मदादिकों की ज्ञान वल आदि सवही सामर्थ्यों को जानते हो और अनन्त ब्रह्माण्डो के स्वामी भी तुमही हो इतनाही मैं समझता हूँ इसकारण ममता का स्थान यह जगत् और अहम्भाव का स्थान यह शरीर भी तुम्हें अर्पण करा है, अव मुझे सत्यलोक में जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३९ ॥ इसप्रकार स्तुति करके जातेसमय अति आदर से वहुत से सम्बोधन देकर नमस्कार करते हैं कि—यादवों के कुलरूप कमल को आनन्द देनेवाले हे सूर्यसमान ! भूमि, देवता, ब्राह्मण और गौ आदि पशुरूप समुद्र को वढानेवाले हे चन्द्रसमान ! पाखण्डधर्मरूप रात्रिके अन्धकार का नाश करनेवाले हेचन्द्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्धर्मशावरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान्॥वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम्॥४२॥एकस्मिन्नपि यातेब्दे प्राणेशं चातरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्द्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किं किं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः ॥यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽद्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यतां ॥ ४५ ॥ ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्त्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥

सूर्यसमान ! और उदय होतेही पृथ्वी पर के कंसादि राक्षसों से द्रोह करनेवाले हे सूर्य समान ! और हे सूर्यपर्यन्त सबके ही पूजनीय ! भगवन् श्रीकृष्ण ! आपको कल्पपर्यन्त नमस्कार हो ॥ ४० ॥ शुकदेवजी ने कहाकि–हे राजन् ! जगत् को रचनेवाले ब्रह्माजी इसप्रकार सर्वव्यापक होकर भी जगत् का हित करने के निमित्त मनुष्यरूप से विराजमान श्रीकृष्णजी की स्तुति करके, तीन प्रदक्षिणा कर और उनके चरणों में नमस्कार करके सब लोकों के पूजनीय अपने सत्यलोक को चलेगये ॥४१ ॥ श्रीकृष्णजी ने भी अपने से उत्पन्न हुए उन ब्रह्माजी को सत्यलोक को जानेकी आज्ञा देकर, तदनन्तर पहिलेही ब्रह्माजी के लाकर छोड़देने के कारण कोमल घासोंको चरतेहुए बछड़ों को पहिले की समान,अपने सखा जहां भोजन कररहेथे तिस अपने क्रीड़ा की सामग्री युक्त पुलिनस्थानपर ले आये४२यदि कहोकि-वह ग्वालबाल इतने समयपर्यन्त तहांही कैसेरहे और वह भूँख प्यास को कैसे भूलगये ? सो हे राजन् ! कृष्ण की माया से मोहितहुए उन बालकोंने,अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय उन श्रीकृष्णजी के विना एक वर्ष वीतजानेपर भी उस समय को आधे क्षणकी समान जाना ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! माया से मोहितचित्त हुए पुरुष इस जगत् में क्या क्या नहीं भूलजाते हैं ? सबही भूल जाते हैं; जिस मायासे मोहित हुआ यह जगत्, शास्त्र और आचार्यों के बोध करानेपर भी वारंवार अपने स्वरूप को भूलजाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण ही वह मित्र श्रीकृष्णजी से यह कहने लगे कि–हे कृष्ण ! तुम बड़ी शीघ्रता से लौट आये यह बड़ा अच्छा हुआ, हमने तो तुम्हारे विना अभी एक ग्रास भी नहीं खाया है अब अपने स्थानपर आकर बैठो और स्वस्थता से भोजन करो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर सर्वान्तर्यामी वह श्रीकृष्णजी हँसते२ उन बालकों के साथ भोजन करके उन को अघासुर के शरीर की खाँकड़ दिखाते हुए वन से गोकुल में आने के मार्ग में को चलदिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्न-नुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना हतोऽविता वयं चास्मादिति बालाः व्रजे जगुः ॥४८॥ राजोवाच। ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥ श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥ तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनां ॥ न तथा ममतालंबिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा नह्यनु ये च तं ॥ ५२॥ देहोऽपि ममतांभाक् चेत्तर्हि सो नात्मवत्प्रियः ॥ यज्जीवितोऽपि देहेऽस्मिन्

॥ ४६ ॥ तदनन्तर मोरों के पर, पुष्प और गेरू पेवड़ी आदि नवीन धातुओं से चित्र विचित्र दीखनेवाले, सुन्दर मुरली, पत्तों के बनायेहुए बाजे और सींगों के शब्दों से होनेवाले उत्साह करके युक्त बछड़ों को अलग २ रक्खेहुए नामों से पुकारने वाले, साथ के बालकों ने जिन की पवित्र कीर्त्ति की गाथा है और गोपियों की दृष्टियों को जिनका दर्शन आनन्ददायक है ऐसे उन श्रीकृष्णजी ने, गोकुल में प्रवेश करा ॥ ४७ ॥ गोकुल में जाने पर तहां सब बालकों ने, यह कहा कि-यशोदानन्द के पुत्र इस श्री कृष्णने, वृन्दावन में आज एक बड़ाभारी अजगर सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी ॥ ४८ ॥ राजा ने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! गोकुलवासियों का एक वर्षपर्यंत पुत्ररूप हुए श्रीकृष्णजी के ऊपर अपने पुत्रों से भी अधिक अपूर्व प्रेम बढ़ा ऐसा जो तुमने कहा तिसमें यह शङ्का होतीहै कि-लोकों में तो दूसरों के अति गुणवान् भी पुत्रोंकी अपेक्षा अपने गुणहीन पुत्रों के ऊपरभी अधिक प्रेम होता है; ऐसा होनेपर गोकुलवासियों के अपने से उत्पन्न हुए पुत्रों के विषैं भी जो प्रेम पहिले नहीं हुआथा वह अकथनीय प्रेम दूसरे से उत्पन्न हुए श्रीकृष्ण के ऊपर कैसे हुआ ? इसका कारण कहिये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! सबही प्राणीमात्र को अपना आत्माही परम प्रिय है और पुत्र धन आदि तो तिस आत्मा के सुखके साधन होने से ही प्रिय हैं स्वतः प्रिय नहीं हैं ॥ ५० ॥ इसकारण हे राजेंद्र ! प्राणीमात्र को जैसे अपने २ अहङ्कार के स्थान देह आदि में प्रीति होती है तैसी ममता के स्थान पुत्र, धन, घर आदिकों में नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे राजश्रेष्ठ ! यह देहही आत्मा है ऐसा कहनेवाले पुरुषों को भी जैसे देह अतिप्यारा है तैसे उस देह के अनुसार रहनेवाले पुत्र घर आदि अतिप्रिय नहीं है ५२ अब देह को देखो तो जड़ और अनात्मा होने के कारण घर पुत्र आदिकों की समानही ममता का स्थान है मैं आत्मा हूँ ऐसा कहनेवाले का विषय नहीं है, ऐसा यद्यपि देहा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवितांशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनां ॥ तदर्थमेव सकलं जगच्चेतच्चराचरं ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनां ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यतां ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवांबुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषां ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरि-

तीत आत्मदृष्टि से कहा है तथापि यह (ममता का स्थान) शरीर आत्माकी समान प्रिय नहीं है ऐसाही सिद्ध होता है क्योंकि-यह शरीर मरणकाल के अत्यन्त ही समीप होकर अत्र नहीं बचूँगा ऐसा निश्चय होने परभी तहां आत्मा की जीवित रहनेकी आशा अतिबलवान् होती है अर्थात् उस शरीर में जो प्रेम है वह उससे भिन्न आत्मा का अंश है और वह देह से अध्यास होने के कारण मिलरहा है इसकारण उसका देह के साथ होनेवाला अभाव किसी को भी प्रिय नहीं लगता है ॥ ५३ ॥ इसकारण सबही प्राणियों को अपना २ आत्माही अतिप्रिय है और उसके सुखके निमित्तही चर (स्त्री पुत्रादिक) अचर (घर क्षेत्र आदि) यह सब जगत् प्रिय होता है ॥ ५४ ॥यदि कहो कि-आत्मा सबको प्रिय होय कृष्ण सब के प्रिय कैसे हुए ? सो-हे राजन् ! इन कृष्णको 'सबप्राणी मात्रके आत्मा हैं'ऐसा जानो, तो इन्द्रियगोचर कैसे हुए,यदि ऐसा कहोतो-वह सर्वात्माभी जगत् के हित के निमित्त अपनी मायासे इस गोकुल में मनुष्यरूप करके विद्यमान से प्रतीत होरहेहैं ॥५५॥ परन्तु परमार्थदृष्टि से श्रीकृष्णजीको जाननेवाले पुरुषों को, इस संसार में स्थावर जंगमरूप सब ही जगत, भगवद्रूप प्रतीत होता है उन से भिन्नजगत्‌ों और कुछ प्रतीत नहीं होताहै॥५६॥यदि कहोकि क्यों? तो-सबही वस्तुमात्रके परमार्थ प्रकृतिरूप कारणके विषें स्थितहैं और तिसकारणके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रहैं इस कारण कृष्णके सिवाय और क्या वस्तुहै सो कहो?॥५७॥श्रीकृष्णही परमार्थरूप हैं तिससे उन की ही शरण में जाने वालों को यत्न के विना मोक्ष प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं— सत्पुरुषों के आश्रय, पवित्र कीर्त्ति श्रीकृष्ण के चरणपल्लवरूप नौका का जिन्हों ने आश्रय करा है उनको संसारसमुद्र बछड़े के चरणके चिन्ह की समान सहज में तरने योग्य होजाता है, वैकुण्ठनामक स्थान प्राप्त होता है, दुःखों का स्थान जो संसार सो फिर कभी भी प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उनकी पुनरावृत्ति नहीं होतीहै ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! तुमने भगवान् की लीला के विषय में आश्चर्य से जो कौमार अवस्था में भग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कृतं पौगण्डे परिकीर्तितं ॥५९॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥६०॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥६१। इतिश्रीभा० म० दशमस्कंधे पू० ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ॥ गांश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मंजुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःस्वच्छपयःसरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगंधिना निरीक्ष्य रन्तुं भग-

वान् का कराहुआ अघासुर का मोक्ष सो पौगण्ड अवस्था में बालकों ने गोकुल में कैसे वर्णन करा इस विषय में जो मुझ से प्रश्न कराथा तिसका उत्तर यह सब मैंने तुम से कहा है ॥ ५९ ॥ हेराजन् ! जो यह श्रीकृष्णका मित्रों के साथ खेलने का चरित्र अघासुर का मोक्ष, पुलिनपर सखाओं के साथ भोजन, जड प्रपञ्च से भिन्न शुद्ध सत्वगुणी धारण कराहुआ बछडे और ग्वालवालों का स्वरूप तथा ब्रह्मा जीकी करीहुई स्तुति इन को जो पुरुष सुनता है वा पढता है वह पुरुष सबही पुरुषार्थों को पाता है ॥ ६० ॥ इसप्रकार कुमार अवस्थाके योग्य परस्पर एक दूसरे के छीके चुराना, आदि पहिले कहेहुए विहारों से और अन्यभी धाईमिचौना खेलना, मट्टी के पुल बांधना और वानरों की समान कूदना आदि विहारों से गोकुल में उन बलराम और श्रीकृष्णजीने अपनी कुमार अवस्था विताई ॥ ६१ ॥ इतिश्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धपूर्वार्द्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ इस पन्द्रहवें अध्याय में श्रीकृष्णका गौओंकी रक्षा करना, धेनुकासुरकानाश और कालिय सर्प के विष से गोपों की रक्षा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन् ! कुमार अवस्था बीत जाने पर फिर जब उन बलराम और श्रीकृष्ण ने पौगण्ड अवस्था का आश्रय करा अर्थात् छः सातवर्ष के हुए तब वह गौओं का पालन करना, बाँधना, छोड़ना आदि कामों में नन्द आदि के सम्मत हुए, तदनन्तर उन्हों ने सखाओं के साथ गौएं चराते हुए सब स्थान में उभरे हुए अपने चरणों के चिन्हों से वृन्दावन को परम पवित्र करा॥१॥एकदिन उस वृन्दावन में क्रीड़ा करने की इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णजी ने मुरली बजाते २ अपना यश गानेवाले गोपोंके साथ और बलरामजी के साथ गौओंको आगे करके पशुओं के हितकारी और फूलोंकी खान ऐसे वृन्दावन में को प्रवेश करा ॥२॥ तब मधुर शब्द करनेवाले भौंरे, हिरन और पक्षियों से भरे हुए जिस में साधुओं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रियो फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पादांबुजं ते सुमनःफलार्हणम् ॥ नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवं ॥ ६ ॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वंति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागतोय धन्या वनौकस ईयान् हि सतां निसर्गः

मन की समान स्वच्छ जल है ऐसे सरोवर में से कमलों के सुगन्ध को हरकर आये हुए पवन करके सेवन करे हुए तिस वृन्दावन को देखकर उन श्रीकृष्णजी ने वहां क्रीड़ा करने का मन में विचार करा ॥ ३ ॥ और वह आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णजी, उस वन में के अनेकों स्थानोंपर लाल २ पत्तों की शोभायुक्त फल और फूलों के अतिभार से जिन की शाखा चरणों को स्पर्श कर रही हैं ऐसे वृक्षों को देखकर, हर्ष से हँसते हुए बलरामजी से कहनेलगे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—हे देववर बलराम ! देखो कैसा आश्चर्य है यह वृक्ष अपनी शाखाओं से फूलफल आदि पूजा की सामग्री तुम्हारे आगे रखकर, ब्रह्मादि देवताओं के भी पूजनीय तुम्हारे चरणकमल को,जिस अज्ञान से अपने को वृक्ष का जन्म प्राप्तहुआ है तिस अज्ञान के नाश के निमित्त नमस्कार कर रहे हैं अथवा जिन तुम ईश्वर ने, सब का उपकारी होनेवाला वृक्ष जन्म हमें दिया है ऐसे प्रशंसनीय अपने जन्म में जो अज्ञानरूप अन्धकार है उस के नाश के निमित्त तुम्हें नमस्कार कररहे हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष ! यह भौंरे लोकदृष्टि से यद्यपि झङ्कार शब्द कररहे हैं ऐसा दीखता है तथापि वास्तव में यह वक्ता और श्रोताओं को पवित्र करने वाले तुम्हारे यश को गाकर पग २ पर तुम्हारी सेवा कररहे हैं हे पवित्र बलराम ! प्रायः यह भौंरे तुम्हारे सेवकों में मुख्य ऋषियों के समूह ही हैं, यह; मनुष्य के वेष से वन में गुप्त रहनेवाले अपने देवता ऐसे तुम्हें त्यागते नहीं हैं अर्थात् तुम जब मनुष्य वेष से गुप्त हुए तब वह ऋषि भी भ्रमरों के वेष से गुप्त होकर तुम्हारी सेवा कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे स्तुतियोग्य बलराम ! यह मोर तुम्हारे आगे नृत्य कररहे हैं, तैसे ही यह हिरनी भी गोपियों की समान प्रेमयुक्त होकर अपने घर (वन में) आये हुए तुम्हारा कटाक्षों से प्रिय करती हैं तथा यह कोकिलाओं के समूह भी घर आये हुए तुम्हारा स्तोत्ररूप मधुर शब्दों से प्रिय करती हैं, इसकारण यह भ्रमर आदि सब अधम जाति के होकर भी कृतार्थ हैं; क्योंकि अपने पास जो कुछ होय वह घर आये हुए सत्पुरुष को अर्पण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ७ ॥ धन्ये यमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽतरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितं ॥ अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन् क्वचित्॥११॥ मेघगंभीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः

करें यह ही सज्जनों का स्वभाव इन्हों ने स्वीकार करा है ॥७॥ हे राम! तुम्हारे चरण के स्पर्श से यह पृथ्वी धन्य है, तुम्हारे चरणों को स्पर्श करनेवाले तृण और लता धन्य हैं, तुम्हारे हाथों के नखों के स्पर्श करे हुए वृक्ष और उन के समीप की यह लता धन्य हैं, तुम्हारे दयायुक्त देखने से नदी, पर्वत, वृक्ष और मृग यह धन्य हैं तथा लक्ष्मी भी जिस के आलिङ्गन की इच्छामात्र करती है उस तुम्हारे भुजाओं के मध्यभाग (वक्षःस्थल) का आलिङ्गन पाकर गोपी धन्य हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इस प्रकार शोभायुक्त वृन्दावन की प्रशंसा करके प्रसन्नचित्त हुए वह श्रीकृष्णजी, गोवर्द्धन के समीप की भूमि के स्थानों में और यमुना नदी के कछारों में साथियों सहित गौओं को चराते हुए क्रीड़ा करनेलगे ॥ ९ ॥ कभी तो, साथी गोपों ने वा देवताओं ने जिन का चरित्र गाया है ऐसे पुष्पों की माला पहिने बलराम सहित वह श्रीकृष्णजी, मद से अन्ध हुए भौंरों के गान करनेपर आप भी गान करने लगते थे ॥ १० ॥ कभी राजहंसों के शब्दों के पीछे आप भी तैसा ही शब्द करते थे, कभी अपने सखाओं को हँसाते हुए नाचते हुए मोरों के समीप में आप भी नृत्य करते थे ॥ ११ ॥ किसी समय गौओं को और गोपों को प्रिय लगनेवाली मेघकी समान गम्भीरवाणी से धरेहुए नामों करके दूरगईहुई गौओं को प्रीति के साथ समीप को बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी, चकोर, क्रौंच, चकवे, भारद्वाज, और मोर इन पक्षियों के शब्दों का अनुकरण करते थे, कभी अन्यप्राणी व्याघ्रसिंह आदि का शब्द सुनकर भयभीत हो भागते हुए दूर को जाने लगते थे तो आप भी भयभीत से होकर दूर को भागजाते थे ॥ १३ ॥ कभी खेलते २ थककर गोपों की जङ्घाओं का तकिया करके सोये हुए अपने बड़े भ्राता बलरामको, वह श्रीकृष्णजी आपही चरणदबाना आदि से श्रम (थकावट) रहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्वापि वल्गतो युद्ध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः॥ गायंति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥१८॥एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंबयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा॥ सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतो विदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥ फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतंति च ॥ सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दु-

करते थे ॥१४॥ कभी परस्पर हाथ पकड़कर खडे हुए वह रामकृष्ण,एकदूसरे के साथ मिलकर नाचनेवाले, गानेवाले और कुश्ती लड़नेवाले गोपों की,तुम नृत्य करनेमें विद्याधरों की समान हो, गाने में गन्धर्वों की समान हो और कुश्ती में त्रिलोकी को जीतने वाले हो इसप्रकार हँसते २ प्रशंसा करते थे ॥ १५ ॥ कभी बाहुयुद्ध (कुश्ती) के श्रम से थके हुए श्रीकृष्णजी, वृक्षके नीचे कोमल पत्तों के बिछौने पर गोपकी जंघापर शिर रखकर सोते थे ॥ १६ ॥ उससमय कितनेही गोप उन महात्मा श्रीकृष्णजी की चरणसेवा करते थे ' भगवान् के साथ क्रीडा करने से ही ' निष्पापहुए कितनेही गोप, पत्ते आदि के पंखों से उनकी वियार(हवा)करते थे ॥१७॥ हेमहाराज ! दूसरे कितनेही गोप, जिनकी बुद्धि स्नेहसे पसीजीहै ऐसे होकर उन महात्मा श्रीकृष्णजीकी शयनआदि लीलाओं के योग्य और उनको सुखकारी गीत धीरे२ जैसे उन की निद्रा न उछटे तिस रीति से ' गाते थे ॥ १८ ॥ इसप्रकार, जिनके चरणपल्लव का लक्ष्मीने लालन करा है ऐसे उन भगवान् ने, अपनी मायासे अपने सत्यस्वरूप को ढककर, अपने आचरणों से गोप के पुत्ररूप का अनुकरण करते हुए और बीच २ में ईश्वर की समान चरित्र करके दिखातेहुए ग्रामवासियों के साथ ग्रामवासी गोपकी समान होकर क्रीडा करी ॥ १९ ॥ अब उन का ईश्वरचारित्र दिखाने के निमित्त कहते हैं कि–बलराम और श्रीकृष्णजी का एक परममित्र श्रीदामा नामवाला गोपाल था वह और सुबल,स्तोककृष्ण आदिगोप इनसबों ने बलराम और श्रीकृष्णजी के समीप आकर प्रेम से यह कहा कि ॥ २० ॥ हे महापराक्रमी राम ! राम ! हे दुष्टनाशककृष्ण ! इस खेलने के स्थान के समीपही तालके वृक्षों की पंक्तियों से भराहुआ एक बडावन है ॥ २१ ॥ तहाँ बहुत से तालके वृक्षों के फल हैं, वह कितनेही नीचे पड हैं और कितनेही ऊपर पककर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्मना ॥ २२ । सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यतेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गंधो विपूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गंधलोभितचेतसां ॥ वांछाऽस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकंपयन् ॥ फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ॥ अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ २९ ॥ समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि कांशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा परांक् स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षि-

नीचे गिरते हैं परन्तु क्या करें ! दुष्टात्मा धेनुकासुर ने उनको रोककरखा है ॥ २२ ॥ हेराम ! हेकृष्ण ! गर्दभकारूप धारण करनेवाला वह महापराक्रमी असुर अपनी समान बलवान् और बहुत से जातिवालोंसे घिराहुआ है ॥ २३ ॥ हेशत्रुनाशक कृष्ण ! वह मनुष्यों को भक्षण कर लेता था इसकारण उस से भयभीतहुए मनुष्य उस वनमें नहीं जाते हैं,वह वन गौ आदि पशुओं से और पक्षियों के समूहों से भी रहित करदिया है॥२४॥ पहिले कभी भी भक्षण न करेहुए सुन्दर सुगन्धवाले फल तहाँ हैं, यहदेखो जिधर तिधर फैलाहुआ सुन्दर गन्ध आरहा है ॥२५॥हे कृष्ण ! सुगन्ध से जिनका चित्त पानेका लोभी हुआ है ऐसे हमें वह फल देओ; उन फलोंको भक्षण करने की हमें बड़ी इच्छा होरही है परन्तु हेराम ! यदि तुम्हें हमारा कहना रुचेतो फल लेनेको चलो ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्र गोपोंका कहना सुनकर हँसते हुए उन मित्रों का प्रिय करने की इच्छा से वह प्रभु रामकृष्ण, गोपों से घिरकर उस तालवन में को चलेगये॥ २७ । बलरामने तो उसवन में घुसकर अपनी भुजाओं के बल से तालके वृक्षोंको, मदोन्मत्त हाथीकी समान कँपाकर उस के फल भूमिपर गिरादिये ॥ २८ ॥ तब गर्दभ का रूप धारण करनेवाला वह धेनुकासुर गिरते हुए फलोंके शब्द को सुनकर वृक्ष पर्वतों सहित पृथ्वीतल को कँपाता हुआ बलराम को मारने के निमित्त उनके सन्मुख को दौड़ा ॥२९॥ और आकर पिछले दोनों पैरों से बड़े वेगसे बलरामजी के वक्षःस्थल पर प्रहार करके गर्दभ जातिका शब्द करता हुआ वह बलवान् खल धेनुकासुर, फिर प्रहार करने के निमित्त बलरामजी के सामने को भागने लगा ॥ ३० ॥ और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ वह धेनुकासुर, फिर बलरामजी के समीप आकर उनकी ओरको अपनी पूँछ करके खड़ाहुआ और हे राजन् ! वह बलरामजी को मारने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्रुपा ॥३१॥स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतो महातालो वेपमानो महाशिराः ॥ पार्श्वस्थं कंपयन भग्नः स चान्यं सोपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वंग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन सर्वे सरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्रोहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलं ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य त्रिदुषादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः॥

के निमित्त अपने पिछले पैर झाड़ने लगा ॥ ३१ ॥ तब बलराम ने उस दैत्यको एकही हाथसे पिछले पैरों के अग्रभाग में पकड़कर थर २ घुमाया, घुमाने से ही मरण को प्राप्त हुए तिसको एकताल के वृक्षकी जड़ में फेंकदिया ॥ ३२ ॥ उस बलराम के फैंकेहुए गर्दभ के शरीर से ताड़ित होनेके कारण काँपनेवाला, बड़े गुद्दोंवाला वह महाताल, अपने समीप के दूसरे ताल वृक्षको कँपाताहुआ उसके ऊपरही टूटपडा. वहभी दूसरे तालको कँपाता हुआ उसीके ऊपर टूटपडा, वहभी और दूसरे तालके ऊपर टूटपडा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार बलराम ने लीला करके फेंकेहुए गर्दभ के शरीर से जो तालवृक्ष ताडित हुआथा उस से दूसरा और तिससे तीसरा इसप्रकार सबही तालके वृक्ष बडे वेगसे पवन के चलनेपर जैसे कम्पित होते हैं तैसे कम्पायमान हुए । ३४ ॥ हे राजन्! जिसमें यह जगत्, सीधेआडे तन्तुओं से बुनेहुए वस्त्रकी समान ओतप्रोत रचाहुआ है ऐसे जगदीश्वर अनन्त भगवान् के विषैं यह धेनुकासुर को घर २ घुमाकर मारना आदि आश्चर्य नहींहै॥३५॥इस प्रकार धेनुकासुरके मरण को प्राप्त होनेके अनन्तर उसकी जातिके जो गर्दभ थे वह सबभी अपना बन्धु माराजाने के कारण क्रुद्ध होकर,कृष्ण,बलराम और गोपों को मारने के निमित्त उनकेशरीरों के ऊपर को दौडे॥३६॥तब हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलरामने ऊपर को दौडकर आने वाले उनगर्दभोंकोस्वाभाविकलीलासेपिछलेपैरपकडकरघर२घुमाकरतालकेवृक्षोंपरफेंकदिया॥३७। उस समय फलोंके समूहों से और टूटे हुए तालवृक्षों के गुद्दों सहित प्राण हीन होकर पड़े हुए दैत्यों के देहों से भराहुआ वह भूतल, जैसे मेघों से भरा आकाश शोभित होता है तैसे शोभित होने लगा ॥ ३८ ॥ औरों को जिस का करना कठिन है ऐसे उस राम कृष्ण के बड़े भारी कर्म को देखकर, देवता आदिकों ने पुष्पों की वर्षा आदि करी, उन में देवताओं ने फूलों की वर्षा करी, गन्धर्वों ने गाने के साथ बाजे बजाये और ऋषियोंने स्तुति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हत-धेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ॥ स्तूयमानो-नुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्य-प्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासं ॥ वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृ-शोऽभ्यगमन् समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्वि-रहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सकृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासवि-नयं यदपांगमोक्षं ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथा-कामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनो-न्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमण्डितौ ॥ ४५ ॥ ज-नन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे

करी ॥ ३९ ॥ तदनन्तर सब मनुष्य, धेनुकासुर के मरजानेपर उस वन में निर्भय होकर तालों के फल खाने लगे और गौ भैंस आदि पशुभी तृण चरने लगे ॥ ४० ॥ फिर कमलदलनयन और श्रोता वक्ताओं को जिन का श्रवण कीर्त्तन पुण्यकारी है ऐसे वह बलराम सहित श्रीकृष्णजी, देव ऋषि आदिकों से तथा गोपों से स्तुति करेजाते हुए गोकुल में को लौटगये ॥ ४१ ॥ उस समय उन के दर्शन को जिन की दृष्टि उकत रही हैं ऐसी गोपियें इकट्ठी होकर, वन में से आनेवाले, गोरज से अटेहुए घुँघराले केशों में जिन्हों ने मोरों के पंख और वन के फूल धारण करे हैं, जिन का देखना मन को मोहित करनेवाला है, जिन का हास्य मनोहर है, जिनकी कीर्त्ति को साथी गोप गारहे हैं ऐसे मुरली बजानेवाले उन श्रीकृष्णजी को देखने के निमित्त सन्मुखगईं ॥ ४२ ॥ उन गोपियों ने, श्रीकृष्णजीके मुखका मधु, नेत्ररूप भ्रमरों से पीकर अर्थात् मुखकी सुन्दरता नेत्रों से देखकर दिन में जो उन श्रीकृष्णजीका विरह रहाथा उस के ताप को त्यागा श्रीकृष्णजीने भी, उन गोपियों ने लज्जायुक्त हास्य के साथ नम्रता दिखाकर अपनी ओर को जो कटाक्षों से देखा था उसही सत्कार को स्वीकार करके गोकुल में प्रवेशकरा ॥ ४३ ॥ तब वन में से आये हुए उन रामकृष्ण नामवाले पुत्रों को, पुत्रवत्सल उन यशोदा और रोहिणी ने उन की इच्छा के अनुसार समय २ के योग्य भोजन वस्त्र आदि उत्तम भोग समर्पण करे ॥ ४४ ॥ तब वह रामकृष्ण, उन नन्दजीके घर में स्नान, सुगन्धित तेल आदि मलना, बाल काढना आदि से मार्ग के श्रमको दूर करके सुन्दर वस्त्र पहिन दिव्य पुष्पों की मालाओं से और च-न्दन आदि उबटनों से भूषित हुए ॥ ४५ ॥ तदनन्तर वह रामकृष्ण, माताओं के परोसे हुए स्वादयुक्त अन्न भोजन करके उनही माताओं से, ताम्बूल अर्पण करना पवनकरना आदि करके लालितहोते हुए पलङ्ग आदि पै पुष्प आदि बिछाकर बनाई हुई उत्तम शय्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ४६ ॥ एवं स भगवान् कृष्णो वृंदावनचरः क्वचित् ॥ ययौ रामगृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान्संमजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परं ॥ ५१ ॥ अन्वमंसत तद्राजन् गोविंदानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः

पर सुख से सोये ॥ ४६ ॥ हेराजन् इसप्रकार वह भगवान् श्रीकृष्णजी, वृन्दावन में गौएं चराते हुए, एक दिन बलरामके विनाही और गोपों को साथ लेकर कालिन्दी नदी के तटपर जल पीने को गये ॥ ४७ ॥ सो इत ने ही में धूपकी गरमी से पीडित होकर पिलासे हुए कितने ही गौ और गोपों ने, पीछे से आते हुए कृष्णकी वाट न देखकर शीघ्रही आगे को जाकर कालिय सर्प के विषसे दूखित हुआ वह यमुना का जल पीलिया ॥ ४८ ॥ हे राजन्! जिन्हों ने जल नहीं पियाथा उन्हों ने भी उस विषैले जल में स्नान वा आचमन करलिया इसकारण प्रारब्धवश मोहितचित्त हुए वह सवही (गोप और गौएँ) प्राणहीन होकर जल में गिरपडे ॥ ४९ ॥ तव योगेश्वरों के भी ईश्वर श्रीकृष्णजीने, मैं ही इनका रक्षक हूँ ऐका समझकर प्राणहीन होकर पडे हुए उन गौ और गोपों को अमृत वर्षानेवाली दृष्टि से देखकर जीवित करा ॥ ५० ॥ तव तत्काल स्मरण को प्राप्तहुए वह सवही गौ गोप जलके समीप से उठकर एक दूसरे की ओर को देखने लगे और बडे आश्चर्यमें होगये ॥५१॥ और हेराजन्। उन्होने विष पीकर मरे हुए अपने शरीरों का फिर उठाना उन श्रीकृष्णजी की कृपादृष्टि से देखने के कारण है ऐसा माना ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में पञ्चदश अध्यायसमाप्त ॥ * ॥ इस सोलहवें अध्याय में यमुना के कुण्ड में श्रीकृष्ण जीने,कालियसर्प को नाथा तव नागपत्नियों ने उन की स्तुति करी और कृष्ण ने उस कालिय के ऊपर अनुग्रहकरा यह कथा वर्णन करी है। तथा गर्दभरूपी दैत्यों को मारकर और इच्छानुसार ताल के फल खाकर सन्तुष्टहुए उन सर्वकलानिधि भगवान् श्रीकृष्णने तिस कालिय सर्प के फणरूप रङ्गमण्डपमें नृत्यकरा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजन्!कालिय सर्प ने यमुनानदी दूषित करदी ऐसा देखकर उसकी शुद्धता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्यां विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदयासयत् ॥१॥ राजोवाच ॥ कथमंतर्जलेगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिं ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽसीद्विप कथ्यतां ॥ २ ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छंदवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्वस्यमाणपया यस्मिन् पतत्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विषुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियंते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ५ ॥ तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरग-

होने की इच्छा करने वाले समर्थ भगवान् श्रीकृष्णने, उस सर्प को तहाँ से निकाल दिया॥१॥ राजा ने कहा कि—हे विप्र ! * भगवान् श्रीकृष्णजीने अथाह जलमें बहुत युगोंसे रहनेवाले तिस कालियसर्प को किसप्रकार नाथा तथा रमणक द्वीपमें रहनेवाला वह कालियसर्प भी जलचरों के न होतेहुए उस जल में आकर क्यों रहा ? सो मुझ से कहो ॥ २ ॥ हे-ब्रह्मन् ! अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले उन सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के, गोपालरूपसे करेहुए मोक्षदायक चरित्ररूप अमृत का सेवन करनेवाला भला कौनसा पुरुष तृप्त होगा ? इसकारण मुझसे कहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! यमुना नदी के पात्र में कालियके विषरूप अग्निसे जिसका जल अधहन की समान औट रहा है, जिसमें ऊपर होकर जानेवाले पक्षी भी मरकर गिरजाते थे और जिस के विषैले जल की तरङ्गों से जल के कण लेकर आयेहुए पवन से स्पर्शहुए तीर के वृक्ष और पशु पक्षी आदि प्राणी मरजाते थे ऐसा एक कालियसर्प का कुण्ड था ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ तिस प्रचण्डवेगयुक्त विषकी शक्ति से बलवान् हुए कालियसर्पको और उस की विषयुक्त करीहुई यमुना नदीको देखकर दुष्टोंका दमन करने के निमित्त अवतार धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीने उस को निकालने के निमित्त अपनी कमर वस्त्र से दृढ़ बाँधकर और अति ऊँचे कदम्बके वृक्ष के ऊपर चढ़कर हाथों से दण्ड ठोके और उस कदम्ब ÷ पर से नीचे विषैले जल से भरेहुए उस कुण्ड में को छलाँग मारी ॥ ६ ॥ उस समय जिस का जल, उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी के कूदने के वेग से क्षोभितहुए भीतर रहनेवाले सर्प के विष

* जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणमिति । याज्ञवल्क्यः ।

÷ इसके भाग्य में श्रीकृष्ण के चरण का स्पर्श होना था, इसकारण वह एक कदम्ब ही उस कुण्डके तटपर नहीं सूखा, क्योंकि अमृत को लातेहुए गरुड़जी उस के ऊपर बैठे थे, अतः वह बचारहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषोच्छ्वसितांबुराशिः ॥ पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशत-मनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमंग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समस-रत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुंदरास्यं ॥ क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदरांघ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥ तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्त्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रंदमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पाता त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा

से युक्त होकर ऊपर को उछल रहा है और जिस की तरङ्गें विष से लाल पीले आदि वर्णों की भयङ्कर हुई हैं वह कालिय सर्प का कुण्ड, चारों ओर को फैलता फलता चार सौ हाथ पर्यन्त का चौड़ा होगया; हे राजन् ! अनन्तबली श्रीकृष्णजी के विषय में यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर कुण्डे में बडेभारी हाथी की समान लीला करके विहार करनेवाले उन श्रीकृष्णजी के भुजदण्डों से ताड़ित हुए जल का शब्द सुनकर, इन कृष्ण की क्रीड़ा से मेरे घर का नाश होजायगा ऐसा देखकर उस को न सहनेवाला वह कालिय सर्प कृष्ण के समीप को दौड कर आया ॥ ८ ॥ और उस ने देखने योग्य, सुकुमार, मेघ की समान श्यामवर्ण, श्रीवत्सलाञ्छन और पीला पीताम्बर धारण करनेवाले, मन्दमुसकरान से मनोहरमुख दीखनेवाले, निर्भयपने से क्रीड़ा करनेवाले और कमल के गर्भ की समान कोमल चरणों से युक्त तिन श्रीकृष्णजी को क्रोध से मर्मस्थानों में काटकर अपने देह से लपेट लिया ॥ ९ ॥ तब सर्प के देह से लिपटे हुए और हलना चलना रहित हुए उन कृष्ण को देखकर, जिन्हों ने अपना देह, मित्र, सम्पदा, स्त्री और इस लोक तथा परलोक के भोग श्रीकृष्ण को अर्पण करे हैं और जिन को वह कृष्ण ही प्रिय हैं ऐसे उन के सखा गोप, अत्यन्त दुःखित और दुःख के अनन्तर अति बढेहुए शोक और भय से जिन की बुद्धि विचाररहित होगई है ऐसे हो मूर्छित होकर गिरपड़े ॥ १० ॥ तथा गौ, बैल, और खिंचरी यह सब भी श्रीकृष्ण जी की ओर को दृष्टि लगाकर, वह कृष्ण सर्प से लिपटजाने के कारण चेष्टारहित हो गये हैं ऐसा देखकर अत्यन्त दुःखित और भयभीत हो हाहाकार के साथ रोते हुए से खडे होगये ॥ ११ ॥ उसी समय गोकुल में, आगे शीघ्रही भय को सूचित करनेवाले भूमिपर भूकम्प (हाला चाला) आदि, आकाश में उल्कापात आदि और देह में बायां नेत्र फड़कना आदि तीन प्रकार के अतिभयङ्कर उत्पात होनेलगे ॥ १२ ॥ हे राजन् !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वे पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटं ॥ ॥ १७ ॥ ते तत्र तत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्त्तोः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो

उन को देखकर नन्द आदि सब गोप, बलराम के विना कृष्ण गौ चराने को वन में गया है ऐसा जानकर तदनन्तर उन होतेहुए उत्पातों से कृष्ण का मरण होगया ऐसा मन में विचार भय से व्याकुल हुए और (कृष्ण के वियोग से होनेवाले) दुःख (आगे को निर्वाह कैसे होयगा ऐसी चिन्तारूप) शोक और (अब कृष्ण के वियोग से हमारा मरण होजायगा ऐसे) भय से वह अत्यन्त कातर होगये, क्योंकि—वह कृष्ण के वास्तविक प्रभाव को नहीं जानते थे और उन के प्राण और मन कृष्णमें लगेहुएथे ।१३।१४। तदनन्तर दीन और बछड़ों से छूटी हुई गौओं की समान डकरानेवाले वह सब गोप,बाल, वृद्ध और स्त्रियों सहित कृष्णके देखने को उत्कण्ठित होकर कृष्ण को खोजने के निमित्त गोकुल से चलदिये ॥ १५ ॥ वह नन्द आदि गोप, ऐसे व्याकुल होरहे हैं, यह देखकर, मधुकुल में उत्पन्न हुए और ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणों से पूर्ण तिनवलरामजी ने हँसकर कुछ कहा नहीं, क्योंकि वह श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे अर्थात् श्रीकृष्ण को कालियका भय नहीं है किन्तु उन के मन में यह आया है कि—कालियमर्दन देखने के निमित्त नन्द आदि यमुनाके तटपर आवें, यह जानते थे ॥ १६ ॥ वह नन्द आदि गोप, भगवान् को जतानेवाले लक्षणों से युक्त चरणके चिन्हों से सूचित करे हुए मार्ग से प्रिय श्रीकृष्ण को ढूँढते २ यमुनाके तटपर पहुँचगये ॥ १७ ॥ अर्थात् हेराजन् ! उन गोपों ने,गौओंके जाने के मार्ग में जहाँ तहाँ और गोप आदिकों के चरणोंके चिन्होंके बीच २ में कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजा इन चिन्हों से युक्त गोपाधिपति श्रीकृष्ण जी के चरण मार्ग में उभरे हुए देखकर,बडी शीघ्रतासे यमुनाके तीर पर गमनकरा ॥१८॥ और वह दूर सेही कुण्ड में कालियसर्प के शरीर से लिपटकर चेष्टाहीन हुए श्रीकृष्ण को, तथा कुण्डे के तटपर मूर्छितहोकर पडेहुए गोपों को और चारों ओर से डकराते हुए गौ आदि पशुओं को देखकर, अति दुःखित हो परममूर्छा को प्राप्त हुए ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ॥ तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयन्त्य आसन्कृष्णानिनीपतदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदं ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्त्तमानः स्थित्वा मुहूर्त्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥ २३ ॥ तत्प्रध्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ॥ तस्थौ श्वसन् श्वसनरंध्रविषांबरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः॥२४॥

उससमय कृष्णके प्रेम, मन्दहास्य, अवलोकन और प्रियवचनों का स्मरण करनेवाली और तिन अनन्त भगवान् में अनुरक्तचित्तहुई सकल गोपियें, प्रिय श्रीकृष्ण को कालियसर्प से लिपटाहुआ देखतेही परमदुःख से सन्तप्त हुईं तथा प्रियकृष्ण से रहित त्रिलोकी को शून्य देखनेलगीं ॥ २० ॥ और उससमय कृष्णकी माता (यशोदा) कृष्णके समीप जाने को कालिय के कुण्ड में प्रवेश करनेलगी तब उस को हाथ से पकडकर उसकी समानही दुःखमाननेवाली और दुःख से आँसू बहानेवाली वह गोपियें उस को समझाने के निमित्त गोकुलप्रिय श्रीकृष्ण की पूतनावध आदि अनेकों कथा कहती रहीं अन्त में वहभी श्रीकृष्णके मुखकी ओर अपनी दृष्टि लगाकर शवसमान (मूर्छित) होगईं ॥ २१ ॥ उससमय जिनके पाँच प्राण, इन्द्रियें और अन्तःकरण कृष्णकी ओर लगे हैं ऐसे वह नन्द आदि गोपभी, कालियके कुण्डे में प्रवेश करनेलगे ऐसा देखकर कृष्णके पराक्रम को जाननेवाले उन भगवान् बलरामने, उन को 'अब ही कृष्णकालिय का मर्दन करके बाहर आवेगा' तुम कुण्डे में न घुसो, ऐसा कहा। २२॥ इसप्रकार मनुष्यलीला का नाट्य करनेवाले तिन श्रीकृष्णजीने, दोघडी पर्यन्त कालिय सर्प के लपेटने में रहकर अपने वियोगसे स्त्री बालकों पर्यन्त सकल गोकुल दुःखित हुआ है यह देखकर और इन का रक्षक मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं है ऐसा जानकर कालियसर्पके करेहुए लपेटने रूप बन्धनसे बाहर निकलने के निमित्त अपने शरीरको फुलाया॥२३॥ तब उन श्रीकृष्णजी के बढ़ाये हुए शरीर से जिसके शरीर में व्यथाहुई है ऐसा वह कालियसर्प, कृष्ण को लिपटा हुआ अपना शरीर खोलकर लम्बी फुङ्कारें भरता हुआ क्रोध से अपने फन को उठाकर, जिसकी नाक में श्वासलेने के साथ बाहर विष निकलरहा है, जिस के पथराये हुए नेत्र भाड़ के तपेहुए खिपड़े की समान लाल २ दीखरहे हैं और जिस के मुख में घर २ घुमाई हुई मसाल की समान लहराती हुई जीभ हिलरही है ऐसा वह सर्प,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥
क्रीडन्मुहुः परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥
एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरः स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्द्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त्त ॥ २६ ॥ तं नर्त्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेऽग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृक् नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ॥ नृत्यत्पदाऽनुनमयन्

कृष्ण को देखता हुआ डटाहुआ खड़ारहा ॥ २४ ॥ तब वह श्रीकृष्ण भी क्रीड़ा करते हुए हरएक मुख में दो अगली जीभों से दोनों ओठों के किनारों को चाटनेवाले और अतिभयङ्कर विषैली अग्नियुक्त दृष्टिवाले तिस कालिय सर्प के चारोंओर उस के फन के ऊपर को छलाँग मारने का अवसर पाने के निमित्त, गरुड़ की समान निर्भय फिरने लगे और वह सर्प भी कृष्ण को डसने का अवसर पाने के लिये अपने ही चारोंओर घर २ फिरने लगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार अपने चारों ओर फिरने से ही शक्ति हीनहुए परन्तु ऊपर को फन उठानेवाले उसकालिय को नीचे को झुकाकर उस के बड़ेभारी फन के ऊपर चढ़ेहुए और नृत्य आदि चातुरी के आदिगुरु वह आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णजी, तहाँ नृत्य करनेलगे उससमय उन के चरण कमल, स्वयं ही लाल २ थे और वह उसकालिय के फणोंपर के रत्नों के स्पर्श से अधिक लाल २ चमकने लगे ॥ २६ ॥ तब गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण और अप्सरा यह उनकी सेवकमण्डली, अपने स्वामी श्रीकृष्ण को नृत्य करनेके निमित्त उद्यत हुआ जानकर, शीघ्रता से तहाँ (आकाश में) आकर मृदङ्ग, नौबत नगाड़े आदि बाजे बजाना, गाना, पुष्पों की वर्षा, नैवेद्य और स्तुति करके उनकी सेवा करने लगी ॥२७॥ हे राजन् ! उससमय खलों को दण्ड देनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने, जिसके सौ मुख्य मस्तक हैं और जो क्षीणबल होकर मराहुआ सा होकर भी क्रोध के वश में होने के कारण वारंवार घरघर फिररहा है, उसकालिय का जो २ मस्तक अपना ढीठपना छोड़कर नहीं नमता था उस २ मस्तक को नृत्य के मिष से चरण का प्रहार करके मर्दनकरा; तब वह सर्प, मुख में से और नाक के पुड़ों में से विष से मिलाहुआ भयङ्कर रुधिर उगलता हुआ परम मूर्छा को प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ तथापि फिर क्रोध से बड़े २ श्वास भरनेवाले और नेत्रों में से विष की वमन करनेवाले तिस कालिय सर्प के मस्तकों में से जो जो मस्तक ऊपर को उठता था उस २ को श्रीकृष्णजी ने अपने नृत्य करने के चरण के प्रहार से तिरछा करके दबादिया;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवह पुमान्पुराणः ॥ २९ ॥ तच्चित्रतांडवविरुग्ण-फणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रं दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्यः आर्त्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कांयं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्त्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दंडः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दंडोऽ-

इससमय हर्ष को प्राप्त हुए गन्धर्वादिकों ने, उन श्रीकृष्णजी को शेषशायी पुराण पुरुष की समान (श्रीनारायण की समान) पुष्पों से पूजा अथवा गन्धर्वादिकों से पुष्पों करके पूजा करेहुए उन श्रीकृष्णजी को गोपों ने शेषशायी श्रीनारायण की समान देखा ॥२९॥ हे राजन् ! उन श्रीकृष्णजी के अलौकिक ताण्डव नृत्य से जिसके छत्रकी समान बड़े २ फण टूटगये हैं और पहिले फूलनेवाले तिन श्रीकृष्णजी के शरीर से जिसके शरीर के हाड़ चूरा होकर खील २ होगये हैं वह कालिय सर्प, मुखसे बहुत से रुधिर की वमन करताहुआ तिन श्रीकृष्णजी को, यह चराचर के गुरु पुराण पुरुष भगवान् नारायण हैं ऐसा जानकर मन से शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ उससमय, जिनके उदर में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं तिन श्रीकृष्णजी के अत्यन्त भार से दबेहुए और उनकी एड़ियों के प्रहार से जिसके फणरूप छत्र चिरगये हैं ऐसे उस कालिय सर्पको देखकर, दुःखित हुई उसकी स्त्रियें (नागपत्नी) शरण जानेकी शीघ्रता में जिनके वस्त्र, भूषण और केशों के बन्धन ढीले पड़गये हैं ऐसी होकर श्रीकृष्णजी के समीप पहुँची ॥ ३१ ॥ और अपने अपराधी पति का छुटकारा होनेकी इच्छा करनेवालीं और अत्यन्त खिन्नचित्त हुई वह पतिव्रता नागिनीयें, अपने बच्चों को आगे करके भूमिपर (तहाँही जलके नीचे) अपने शरीर को दण्डे की समान लुटा हाथ जोड़कर, प्राणिमात्र के पालक और शरणागतों को आश्रय देनेवाले तिन श्रीकृष्णजी की शरण गईं और उन्होंने उनको नमस्कार करा ॥ ३२ ॥ और वह नाग पत्नियें, पहिले कुपितहुए भगवान् को, दण्ड देनेकी सराहना करके शान्त करती हुई कहने लगीं कि—हे देव ! डसना और लपेटना आदि अपराध करने वाले इस सर्प के ऊपर तुम्हारा कराहुआ दण्ड योग्यही है क्योंकि—शत्रुके ऊपर और पुत्रोंके ऊपर समान दृष्टि रखनेवाले तुम्हारा यह अवतार खलोंको दण्ड देनेके निमित्त और साधुओं की रक्षा करने के निमित्त है इससे तुम, 'दुष्टों को पापनिवृत्ति आदि फल प्राप्त होगा' यह सूचित करते हुएही दण्ड देतेहो ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! तुमने जो हमारे ऊपर यह दण्डकरा है सो अनुग्रहही कराहै,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दंदशूकत्वमसुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथवा सर्वजनानुकंपया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वांछया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेष नोऽर्थोऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय

क्योंकि–तुम्हारा कराहुआ दण्ड वास्तव में दुष्टोंके सकल दोषोंको दूर करनेवाला है, क्योंकि–देहधारी इस कालिय को जन्मान्तरों के पापोंसे यह सर्प योनिका प्राप्तहोना दीखरहा है, तिससे इस सर्प योनि के कारणभूत पापको दूर करनेवाला और क्रोधरूप से प्रतीत होनेवाला यह तुम्हारा दण्ड भी 'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्य, इत्यादि वाक्यों के प्रमाण होने के कारण, अनुग्रहही है ऐसा सत्पुरुषों ने माना है ॥ ३४ ॥ हेदेव ! सबकी जीविका चलानेवाले तुम जिस तप अथवा धर्मसे सन्तुष्ट होतेहो वह तप इसने पूर्वजन्म में स्वयं मान रहित होकर और दूसरों का सम्मान करके क्या कराथा ? अथवा सकल प्राणियोंके ऊपर दया करके कोई धर्म कराथा ? ॥३५॥ यह ब्रह्मादिक देवता भी तप आदि करके जिसके अनुग्रह की इच्छा करते हैं तिस, सकल स्त्रियों में श्रेष्ठ लक्ष्मीने भी जिस चरणरज के स्पर्श होनेका अधिकार पानेकी इच्छा से सकल भोगों को त्यागकर और आहार नियम आदि अनेकों प्रकार के व्रत धारण करके बहुतकाल पर्यन्त निरन्तर तपस्या करी, तिन तुम्हारी चरणरज के स्पर्श का अधिकार इस नीच कालिय को प्राप्त हुआ, यह इस के कौन से तपका वा पुण्य का प्रभाव है ? सो हम नहीं जानती हैं ॥ ३६ ॥ जिन तुम्हारे चरणरज को प्राप्तहुए भक्तजन, स्वर्गस्थान, सकल भूमण्डल का राज्य, ब्रह्मपद, पातालादि रसातलों का राज्य, अणिमादिक ऐश्वर्य अथवा मोक्ष की भी किञ्चिन्मात्र इच्छा नहीं करते हैं किन्तु इन सब को तुच्छ मानते हैं ॥ ३७ ॥ और जिस चरणरज के प्राप्त होने की इच्छा करके जन्ममरण आदि संसारचक्र में घूमते हुए भी प्राणी को अपने आप इच्छित सम्पत्ति प्राप्त होती हैं; हे नाथ ! ऐसा लक्ष्मी आदिकों को भी दुर्लभ तुम्हारा चरणरज, इस तमोगुण से उत्पन्न हुए और क्रोध के वशीभूत रहनेवाले भी मेरे पति नागराज ने पाया, इस से इस के भाग्य का हम कहां तक वर्णन करें ? ॥ ३८ ॥ इसकारण अचिन्त्य ऐश्वर्य आदि गुणरूप, अन्तर्यामी, परिमाणरहित, पञ्च-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेंद्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये॥प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः॥४४॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ मनोगुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्र-

महाभूत के आश्रय, तिन से पहिले भी होनेवाले और कारणरूप होकर कारण से निराले, तुम कारण को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ तुम अनन्त शक्तियों से युक्त, प्रकृति के प्रवर्त्तक और चैतन्यशक्ति से पूर्ण ईश्वर होने से कारणरूप हो और गुणरहित निर्विकार तथा ज्ञानपूर्ण ब्रह्मरूप होने के कारण से पर हो, ऐसे उभयस्वरूप तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४० ॥ अब अनन्त शक्ति होने के कारण कालशक्ति से विश्वसृष्टि आदि रूप तिन भगवान् को नमस्कार करती हैं—कालस्वरूप, कालशक्ति के आश्रय, सृष्टि काल प्रलयकाल आदि कालों के साक्षी, जगत्रूप, जगत् के साक्षी, जगत् के कर्त्ता, जगत् के कारण, सूक्ष्मभूत, इन्द्रियें, प्राण, मन, बुद्धि और चित्तस्वरूप तथा त्रिगुणमय अभिमान करके जिन्हों ने अपने अंशरूप जीवों का स्वानुभव गुप्त रक्खा है ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अनन्त, सूक्ष्म, निर्विकार, सर्वज्ञ, अनेक प्रकार के अस्ति, नास्ति, सर्वज्ञ, किञ्चिज्ज्ञ, बद्ध, मुक्त, एक, अनेक आदि वादों को माया के द्वारा अनुसरण करनेवाले तथा नाम और नामों के वाच्य इन शक्ति भेदों से नानाप्रकार के प्रतीत होनेवाले तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के आधार (नेत्र आदि इन्द्रियरूप), स्वतः सिद्ध ज्ञानवान्, वेदरूप श्वासों वाले और अनेकों प्रकार के विधि निषेध दिखानेवाले वेदरूप तुम भगवान् को वारंवार नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! सङ्कर्षण, वासुदेव,प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, इन चार मूर्त्तियों से उपासकों का पालन करनेवाले तुम कृष्ण को वारंवार नमस्कार हो ॥ ४५ ॥ मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त इन अन्तःकरण के चार भेदों को प्रकाशित करनेवाले, तिन ही भेदों से उपासकों को भिन्न २ फल प्राप्त होने के निमित्त, गुणों से अपने को ही ढककर नानाप्रकार से प्रकाशमान होनेवाले, चित्त आदि की चेतना निश्चय आदि वृत्तियों से प्रतीत होनेवाले उन वृत्तियों के साक्षी और स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् अर्थात् चित्त आदि जिन की खोज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥ अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव ते ऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥ शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥ अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद्धर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥ विधेहि

मात्र ही करते हैं परन्तु उन की समझ में नहीं आते ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४६ ॥ हे इन्द्रियप्रवर्त्तक ! अतर्क्य महिमा से युक्त, सब प्रकार के ज्ञान के मूलकारण, अपने स्वरूपमें मग्न रहनेवाले और उस ही स्वभाववाले आप को नमस्कार हो ४७ स्थूल और सूक्ष्म सकल तत्त्वों की गतिको जाननेवाले, सबों के अधिष्ठाता, जगत के निषेधकी सीमा, जगत् के भासमान होने के आधार, जगत् के अध्यास और अपवाद के साक्षी तथा तिसजगत् का अध्यास और अपवाद होने के अविद्या और विद्या के द्वारा कारण ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४८ ॥ इसप्रकार दण्डदेने के अनुमोदन से और नमस्कारों से भगवान् को प्रसन्नकर के, अब, तुम्हारे वश में रहनेवाले प्राणियों का क्या अपराध है? इस आशय से प्रार्थना करते हैं कि–हेप्रभो ! तुम वास्तव में इच्छारहित होकर भी, अनादिसिद्ध कालशक्ति को स्वीकार करके जीवों को चारप्रकार के पुरुषार्थ देनेवाली सृष्टि आदि लीलाकरते हुए केवल देखनेमात्र करके संस्काररूप से रहनेवाले प्राणियों के नानाप्रकार के शान्त घोर आदि स्वभावों को जगाते हुए गुणों के द्वारा इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हो ॥४९॥ तिन तुम्हारी ही त्रिलोकी में यह अनेक प्रकार की कोई शान्त (सतोगुणी) कोई अशान्त (रजोगुणी) और कोई मूढ (तमोगुणी) मूर्त्ति है उन में इससमय साधुओं के धर्म की रक्षा करने के निमित्त अवतार धारणकरनेवाले और वह (धर्मरक्षा) करते हुए तुम्हें शान्त (सतोगुणी) मूर्त्ति ही प्रिय हैं, और (रजोगुणी वा तमोगुणी) प्रिय नहीं हैं ॥ ५० ॥ हेभगवन् ! यह जो कालियसर्प प्राण छोडरहा है सो अब इसके ऊपर अनुग्रह करो और पराधीन होने के कारण साधुओं के भी शोक करने योग्य हम स्त्रियों को यह पतिरूप प्राण दीजिये ॥ ५१ ॥ अपनी प्रजा का करा हुआ अपराध स्वामी को एकवार सहना चाहिये, इस कारण हे शान्तचित्त कृष्ण ! तमोगुणी होने के कारण तुम्हें न जाननेवाले इस कालिय सर्प का अपराध तुम्हें क्षमा करना उचित है ॥ ५२ तुम्हारी आज्ञा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाथ्रकुट्टनैः ॥ ५४ ॥ प्रतिलब्धेंद्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः ॥ ५५ ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्याजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥ वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥ कथं त्वन्नामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहितास्त्वयि ॥ ५८ ॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ॥

पालनेवाली हम दासियों को, हम क्या करें सो बताओ; क्योंकि—तुम्हारी आज्ञा का पालन करनेवाला पुरुष, नानाप्रकार के भययुक्त संसार से छूटजाता है ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! इस प्रकार नागपत्नियों से स्तुति नमस्कार आदि करके प्रार्थना करे हुए तिन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, चरणों के प्रहारों से फण फटजानेपर मूर्छित हुए उस कालिय सर्प को छोड दिया और उस के आगे आप खड़े होगये ॥५४॥ तदनन्तर धीरे २ इन्द्रिय और प्राणों को प्राप्त हुआ वह दीन कालिय सर्प, बडे कष्ट से श्वास लेता हुआ हाथ जोड़कर उन श्रीकृष्णजी से कहने लगा ॥ ५५ ॥ कालिय ने कहा कि—हे देव! हम जन्मसे ही दूसरों को दुःख देनेवाले दुष्ट तामसी और दीर्घकोपी हैं; हे नाथ! सकल प्राणियों को अपना स्वभाव त्यागना बड़ा कठिन है, क्योंकि—उस स्वभाव से ही प्राणियों को देह आदि में अहन्ता ममतादिरूप दुराग्रह होता है ॥ ५६ ॥ हे सृष्टि करनेवाले देव! गुणों के द्वारा नानाप्रकार का रचा हुआ यह जगत, तुमने ही उत्पन्न करा है, इस में नानाप्रकार के शान्त, घोर आदि स्वभाव, देहशक्ति, इन्द्रिय शक्ति, मातृशक्ति, पितृशक्ति, वासना और स्वरूप हैं ॥५७॥ हे भगवन्! उस सृष्टि में हम जाति से ही बडे क्रोधी सर्प हैं, इस कारण जिस को ब्रह्मादिक भी न जीतसकें ऐसी तुम्हारी दुर्जय माया को, तिस माया से ही मोहित हुए हम तुम्हारे अनुग्रह के विना कैसे छोड़ें ॥ ५८ ॥ इसकारण उन शान्त घोर आदि स्वभावों के उत्पन्न होने के विषय में तुम सर्वज्ञ जगदीश्वर ही कारण हो इस कारण हमारे ऊपर अनुग्रह करना या हम को दण्ड देना जो उचित हो सो करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! ऐसा कालिय का कथन सुनकर यमुना की शुद्धि और भक्तों की रक्षा आदि कार्य करने के निमित्त मनुष्य अवतार धारण करनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ ६० ॥ यं एतत्संस्मरन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनं ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्यांबरस्रग्मणिभिः पराध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तं ॥६६॥ सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव सोऽमृतजलायमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति-

से कहने लगे कि—हे सर्प तू इस कुण्ड में न रह, शीघ्र ही अपने जाति, बच्च और स्त्रियों सहित समुद्र में के अपने रमणक द्वीप में चला जा यह यमुना नदी, गौ और मनुष्यों के जल पीने की है इस को आज से स्वच्छ जल वाली होनेदे ॥ ६० ॥ जो मनुष्य,तुझ से मेरी कही हुई इस आज्ञा का प्रातःकाल वा सन्ध्याकाल के समय स्मरण करेगा अथवा कीर्त्तन करेगा उस को तुम कभी भी भय मत दो ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य मेरे क्रीड़ा करे हुए इस कुण्ड में स्नान करके इस में के जलों से देवादिकों का तर्पण करेगा और उपवास करके मेरा ध्यानपूर्वक पूजन करेगा वह सकल पापों से छूट जायगा ॥६२॥ हे कालिय ! तू जिस भय से अपने रमणक द्वीप को त्यागकर इस कुण्ड का आश्रय करके रहता है वह गरुड तुझे अब कभी भी नहीं खायगा, क्योंकि—तेरे फणों के ऊपर मेरे चरणों के चिन्ह होगये हैं ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा तब उस कालिय सर्प ने, हर्षित हो आदर के साथ उन श्रीकृष्णजी की, दिव्यवस्त्र, माला, मणि, बहुमूल्य भूषण, दिव्य चन्दन के उबटने और कमलों की बडी २ माला समर्पण करके पूजा करी तैसे ही नागपत्नियों ने भी पूजा करी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इस प्रकार स्त्री, पुत्र, मित्रों सहित तिस कालिय सर्प ने, जगन्नाथ गरुडध्वज श्रीकृष्ण का पूजन करके उन को प्रसन्न करलिया तब उन्हों ने प्रसन्नता से 'जा' ऐसी आज्ञा करी तब वह कालिय, स्वयं सन्तुष्ट होकर उन को प्रदक्षिणा और नमस्कार कर समुद्रमेंके अपने रमणक द्वीप को चलागया;उसी समय वह यमुना, क्रीडा करने के निमित्त मनुष्यरूप से अवतार धारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी के अनुग्रह से विष के सम्बन्ध से रहित और अमृतसमान मधुर जलवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः कद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिं ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमापतंतं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकफणस्तकः ॥ दंद्भिः सुपर्णं दशतो

होगई ॥६६॥६७॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में षोडश अध्याय समाप्त *॥ इस सत्रहवें अध्याय में, उस कालिय सर्प को रमणकद्वीप में भेजदेने के अनन्तर अपने दुःख से श्रम को प्राप्तहुए और तहाँ ही सोयेहुए नन्द आदि बान्धवों की श्रीकृष्णने वनकी अग्नि से रक्षा करी, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ राजाने कहाकि-हे शुकदेवजी ! कालिय सर्प ने, रमणकद्वीप नामवाला अपना स्थान क्यों त्याग दिया था ? यदि कहोकि—गरुड़ के भय से, सो—तिस एक कालिय सर्प ने ही गरुड़ का कौनसा विगाड़ करा था ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे महापराक्रमी राजन् ! गरुड़ के भोजनरूप सर्पों ने, अपनी बाधा दूर होने के निमित्त रमणकद्वीप में पाहिले एक वृक्ष के नीचे गरुड को जो एक बलि प्रतिमास की अमावास्या के दिन अर्पण करने का नियम * करा था, उसी प्रकार हर अमावास्या को सब सर्प अपनी रक्षा के निमित्त अपना २ भाग महापराक्रमी गरुड़ को देते थे ॥ २ ॥ ३ ॥ विष और पराक्रम के मद से भरेहुए उस कद्रू के पुत्र कालिय सर्प ने ही गरुड़ जी को तुच्छ मानकर उनको अपने बाँट का भाग कभी दिया ही नहीं और उलटा दूसरों का दियाहुआ भी उन का बलि, उस ने खालिया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! यह वृत्तान्त सुनकर क्रोध में भरेहुए भगवान् के प्यारे वाहन वह भगवान् गरुड़जी, तिस कालिय को मारने की इच्छा करके वेग के साथ उस के ऊपर को दौडकर गये ॥ ५ ॥ तब वेग के साथ आनेवाले उन गरुड़ जी को देखकर, विष और दाँत ही जिसके शस्त्र हैं, जिसने अपने अनेकों फणों को ऊपर को खडा करलिया है और जिस की जीभ लक २ कररही है, जिस

* इस विषय में ऐसी आख्यायिका है कि—गरुड़ जी माता के वैर को स्मरण करके सदा जो मिलतेथे सबही सर्पों को खालेते थे और उदरभरजाने पर वृथा ही किनहीं को मारडालते थे तब वासुकि आदि सर्प भयभीत होकर ब्रह्माजी की शरण में गये तो ब्रह्माजी ने गरुड़ जी को बुला मेल कराकर नियम से प्रत्येक अमावास्या को सर्पोंसे बलि बँधवादी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥-७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीवविह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिंद्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहं ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रांतं दिव्यस्रग्गन्धवाससं ॥ महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिर्भृतात्मानो

के नेत्र लाल २ और भयङ्कर हैं ऐसा वह कालिय सर्प भी बड़े वेग से गरुडजी के ऊपर को युद्ध करने के निमित्त दौड़ा और उसने अपने दाँतों से गरुड़ जी को डसलिया ॥ ६ ॥ तब क्रोध में भरेहुए, भगवान्के वाहन, उग्रपराक्रमी और महावेगवान् तिन गरुड़जी ने, उस कालिय को ललकारकर उसके ऊपर अपने सुवर्ण की समान कान्तिवाले दाहिने पक्ष का प्रहार करा ॥ ७ ॥ तब गरुड़जी के पक्ष से ताडित हुआ वह कालिय अत्यन्त विह्वल होकर जहां गरुडजी न जासकें ऐसे यमुना के कुण्ड में घुसगया ॥ ८ ॥ उस यमुना के कुण्ड के तटपर एक समय सौभरि ऋषिके निषेध करने पर भी उन गरुडजी ने भूखे होनेके कारण अपने को प्रियलगनेवाले एक बडे मत्स्यको बलात्कारसे(जबरदस्ती) मारकर भक्षण करलिया ॥९। तब उस मत्स्यराज के मारेजाने के कारण उस के कुटुम्ब के सकल मत्स्य दीन और अत्यन्त दुःखित होरहे हैं ऐसा देखकर, कृपाकरके तहां रहने वाले मत्स्योंको निर्भयपना करतेहुए वह सौभरिऋषि कहनेलगेकि-।१०।इस यमुनाकेकुण्डमें घुसकर आजसे वह गरुड मत्स्यों को भक्षण करेगा तो तत्काल प्राणहीन होजायगा, यह मैं सत्यही कहता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसे उस सौभरि ऋषि के शाप को केवल कालिय सर्पही जानताथा और कोई नहीं जानताथा इसकारण वह कालियसर्पही गरुडजी से भय मानकर तहाँ जाकर रहा था, उस को श्रीकृष्णजीने निकाल दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रासङ्गिक कथा कहकर अब प्रस्तुतकथा कहते हैं—तदनन्तर कुण्ड में से बाहर निकले हुए, दिव्यमाला, चन्दन और वस्त्रधारण करनेवाले,बहुमूल्य रत्नों के समूहों से सब अंगों में भूषित और जाम्बूनद नामक सुवर्ण से शोभित श्रीकृष्णजी को देखकर उठे हुए सकल गोप, ' जैसे हाथ पैर आदि इन्द्रियें प्राण चले जाने पर मूर्छित होजाती हैं और फिर प्राण प्राप्त होजाने पर अपने २ कार्य करनेलगती हैं तैसे ही ' आनन्द से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो गोप्यो गोपाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिंग्य जहासास्यानुभाववित् ॥ गावो गोवृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नंदं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८ ॥ यशोदाऽपि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेंद्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथे आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग हे

पूर्णचित्त होकर प्रीति से चारों ओर उन श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करनेलगे ॥ १३॥१४॥ हेराजन् ! उससमय यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोपी और गोप यह सबही श्रीकृष्णजी को पाकर मूर्छा को त्याग अपनी वास्तविक दशा में आये और पूर्णमनोरथ हुए ॥ १५॥ बलरामभी श्रीकृष्णजी को आलिङ्गन करके हँसने लगे, क्योंकि-वह उन श्रीकृष्णजी के प्रभाव को जानते थे वृक्षभी पहिले सूखगये थे वह तत्काल हरे होगये. गौ, बैल और बछडे भी परम आनन्द को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ उससमय, जो स्त्रीसहित पुरोहित ब्राह्मण थे वह नहाँ आकर नन्दजी से कहने लगे कि—हेनन्द ! कालियसर्प से ग्रसाहुआ यह तुम्हारा पुत्र श्रीकृष्ण, छूटगया, यह बडे आनन्द की वार्त्ता हुई ॥ १७ ॥ इसकारण इस कृष्ण के छूटने के आनन्द में हम सपत्नीक ब्राह्मणों को दानदो, तब हे राजन् ! प्रसन्नचित्त हुए नन्दजीने उन ब्राह्मणों को गौ और सुवर्ण का दान दिया ॥ १८ ॥ उससमय जिसका खोया हुआ पुत्र फिर मिला है ऐसी उस महा भाग्यवती पतिव्रता यशोदा ने भी ब्राह्मणों को दान देकर श्रीकृष्णजीको छातीसे लगाया और गोदी में बैठालकर वारंवार नेत्रों में से आनन्द के आँसू बहाने लगी ॥ १९ ॥ हे राजश्रेष्ठ ! जिस दिन कालियमर्दन हुआ उस दिन भूँख, प्यास, रोना और दौडना आदि परिश्रम से व्याकुल हुए वह गोकुलवासी पुरुष और गौएँ उस रात्रि में तिस यमुना के तटपर ही रहे ॥ २० ॥ उसरात्रि में आधीरात के समय ग्रीष्मऋतु में वन से उत्पन्न हुआ दौं का अग्नि, सोए हुए गौओं सहित गोलोकवासी पुरुषों को एकसाथ चारों ओर से घेरकर जलानेलगा ॥ २१ ॥ तब जलते हुए वह गोलोकवासी पुरुष, उठकर बडे घबडागये और वह, माया से मनुष्य की समान प्रतीत होने वाले परन्तु वास्तव में साक्षात् ईश्वर तिन श्रीकृष्णजी की शरण गये ॥ २२ ॥ हेकृष्ण ! हेकृष्ण ! हेमहाभा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयं ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इतिश्रीभा० म० द० पू० कालियदमनं नाम सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान् शरीरिणां ॥२॥ स च वृंदावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः॥३॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरजीपद्रुममण्डलमण्डितम् ४॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौ

ग ! हे परमपराक्रमी बलराम ! यह भयङ्कर अग्नि, तुम्हारे कहलानेवाले हमें भस्म करे देती है ॥ २३ ॥ इसकारण हे सर्वसमर्थ प्रभो ! अतिदुस्तर इस मृत्युरूप अग्निसे हम अपने मित्रों की रक्षाकरो. हे देव ! हम, सकलभयों को दूर करने वाले तुम्हारे चरणों का त्याग करने की इच्छा नहीं करते हैं अर्थात् हमें मृत्यु का भय नहीं है किन्तु तुम्हारे चरणों का वियोग होजायगा यही बडाभारी भय है ॥ २४ ॥ इसप्रकार निज जनोंकी व्याकुलता को देखकर, उन सकल शक्ति धारण करनेवाले जगदीश्वर अनन्त भगवान्ने, अतिदुःसहभी तिस अग्निको पीलिया ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥*॥इस अठारहवें अध्याय में वसन्तऋतु के गुणों से युक्त ग्रीष्मऋतु के आनेपर श्रीकृष्णजीने सहजमें लीलामात्र सेही बलरामजी के हाथ से प्रलम्बासुर को मरवादिया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेव जीने कहा कि हेराजन् ! तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर, कालियदमनसे और वनकी दौंसे अपनी रक्षा करने के कारण सन्तुष्टचित्त हुए गोपों से घिरेहुए वह श्रीकृष्णजी, उन सेही वारंवार गान करेजाते हुए, गौओं के समूहों से शोभायमान गोकुल में को चले गये ॥ १ ॥ इसप्रकार जिस में गोपालरूप का बहाना है ऐसी माया से, उन रामकृष्ण के गोकुल में क्रीडा करते हुए, प्राणीमात्र को अति प्रिय न लगनेवाला ग्रीष्मनामकऋतु प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ परन्तु वह ग्रीष्मऋतुभी, जिस में साक्षात् बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णजी रहते हैं तिस वृन्दावनके (आगे कहे हुए) गुणों से वसन्तऋतु की समान लोकों की दृष्टि को प्रतीत होने लगा ॥३॥ जिस ग्रीष्मऋतु में भी वृन्दावन में सर २ वहने वाली झरनों की नदियों से झिल्ली नामवाले कीडों की कठोर ध्वनि सर्वथा लुप्त होगई थी; और उनही झरनों की फुहारों से भीजेहुए वृक्षों ने उस वृन्दावन को शोभायमानकरा ॥ ४ ॥ जिस वन में रहनेवाले पुरुषों को, परम कोमलघाससे भरे हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कसांदेवो निदाघवन्ह्यर्कभवोऽतिशांद्वले॥५॥अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजं ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तैत्कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन

स्थानों मे नदी सरोवर और झरनों की तरङ्गों से गीले होकर आये हुए और सन्ध्या काल रात्रि तथा दिन में क्रम से खिलनेवाले कल्हार, कुमुद और उत्पल नामक कमलों मेंसे उनके सुगन्धित परागको उडाकर लानेवाले पवनसे,ग्रीष्मऋतुमें अग्नि और सूर्य से होनेवाला ताप किञ्चिन्मात्रभी नहीं होताथा ॥५॥जिस वृन्दावन में अपरम्पारजलवाली नदियों के तटोंपर लहरानेवालीं तरङ्गोंसे पुलिनसहित चारों ओर की सिक्त हुई भूमिका'जिसपर कोमल घासहै ऐसा गीलापन,विष की समान अति प्रखरभी सूर्यकी किरणोंसे सूखा नहीं ॥ ६ ॥ और जहां शब्द करनेवाले चित्र विचित्र मृग और पक्षी हैं, गान करनेवाले मोर और भौंरे हैं, मनोहर शब्द करनेवालीं कोकिला और सारस पक्षी हैं, उस प्रफुल्लित वृक्षों से भरे हुए, शोभायुक्त, वृन्दावन में क्रीडा करने की इच्छा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम के साथ गोप और गौओं से घिरकर मुरली बजाते हुए प्रवेश करा ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर बलराम कृष्ण आदि गोपाल, अपने शरीरों को गेरू पेवडी आदि धातुओं का रङ्ग लगाकर उस के ऊपर पत्ते मोरों के पर, फूलों के गुच्छे और मालारूप आभूषण धारण करके नृत्य, गान और परस्पर कुश्ती करनेलगे ॥ ९ ॥ उस समय जब कृष्ण नाचने लगे तो कितने ही गोपाल भी गानेलगे, कोई मुरली, ताली और सींग आदि बाजे बजाने लगे और कोई दूसरे ' वाह, वाह, बहुत अच्छा ' इसप्रकार उन की प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! गोपों की जातियों में छुपकर गोपालरूप से अवतरे हुए देवता, उन श्रीकृष्णजी की, ' जैसे खेल करने के स्थान में स्वाँग भरकर आये हुए नट दूसरे नटों की प्रशंसा करते हैं तैसे ' स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ घुँघराले केशोंवाले वह रामकृष्ण, कभी एक एक को पकड कर घर २ घूमना, टीलोंपर से कूदना, किसी वस्तु को फेंककर उठालाना, हाथों से दण्ड ठोकना, परस्पर खनेडना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्वचिच्चामलकमुष्टिभिः ॥ अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्ष-

इत्यादि कुश्ती की रीतियों से क्रीडा करते थे । १२ ॥ हे महाराज ! कभी तो वह बलराम और कृष्ण, जब दूसरे कोई गोप नाच ने लगते थे तो आप भी गाने लगते थे, बाजे बजाते थे और 'वाह, धन्य, बहुत उत्तम है' ऐसे कहकर उनकी प्रशंसा करने लगते थे ॥ १३ ॥ कभी वह बेल के फलों से, कभी कुम्भ के फलों से, कभी आमलों की मुट्ठियों से, कभी न छूने के खेल से और कभी नेत्र मूँदकर तथा कभी पशु पक्षियों की लीलाओं से क्रीडा करते थे ॥ १४ ॥ कभी मेंडक की समान कूदकर कभी नाना प्रकार के उपहास करके, कभी वृक्षों की शाखाओं में झूलकर और कभी राजा आदि बनकर क्रीडा करते थे ॥ १५ ॥ इसप्रकार लोक में प्रसिद्ध खेल खेलते २ वह बलराम और कृष्ण, वृन्दावन में और नदी, पर्वत दोनों के समीप, पर्वतों की गुहा, कुञ्ज, बाग और सरोवरों के विषैं विचरते थे ॥ १६ ॥ एकसमय उस वन में गोपों सहित बलराम और कृष्ण गौएँ चरारहे थे सो उन दोनों को हरकर लेजाने की इच्छा से, गोपका रूप धारण करेहुए कोई एक प्रलम्ब नामवाला दैत्य तहाँ आया ॥ १७ ॥ तब दाशार्हकुल में उत्पन्नहुए सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णजी ने, उस को जानलिया तथापि मनमें उसका वध करने का विचार करके उसके साथ मित्रता करने की गोपों को सम्मति दी ॥ १८ ॥ और अनेकों चमत्कारी खेलों को जाननेवाले वह श्रीकृष्णजी, तहाँ गोपालों को अपने समीप बुलाकर कहनेलगे कि-हे गोपों ! हम परस्पर बल और अवस्था के अनुसार सबों में दो२ के जोड़े मिलाकर खेलेंगे ॥ १९ ॥ तब गोपालों ने, हाँ हाँ अच्छी बात है ऐसा कहकर बलराम और कृष्ण दोनों को दोनों ओर का मुखिया बनालिया और कितने ही कृष्णकी ओर होगये और कितने ही बलराम की ओर होगये फिर वहगोप, एक पीठपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णाः ॥ यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ॥ भांडीरकं वटं नाम जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ॥ वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परं ॥ २५ ॥ तमुद्वहन् धरणिधरेंद्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडित्प्रगानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्पुरलंगनैरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥

बैठे और दूसरा उस को नियमित करेहुए स्थान पर्यंत चढ़ाकर लेजाय, ऐसा ठहराकर नानाप्रकार के खेल खेलनेलगे, जिस खेल में जीतनेवाले चढ़ते हैं और हारनेवाले उठाते हैं ॥ २१ ॥ इसप्रकार उठानेवाले और पीठपर बैठनेवाले वह कृष्ण आदि गोपाल, गौएँ चराते हुए भाण्डीरक नामवाले वड़ के समीप जापहुँचे, वही वड़, कन्धेपर से चढ़ेहुओं के नीचे उतरने की अवधि था ॥ २२ ॥ हे राजन्! फिर जब खेल में बलराम जी के पक्ष के श्रीदामा वृषभ आदि गोपों ने, जय पाई तब उन को श्रीकृष्ण आदि अपने ऊपर चढ़ानेलगे ॥ २३ ॥ तब पराजय पायेहुए भगवान् श्रीकृष्णजी, श्रीदामा को अपने ऊपर चढ़ानेलगे, भद्रसेन वृषभ को और प्रलम्बासुर बलरामजी को अपने ऊपर चढाने लगा ॥ २४ ॥ उससमय दानवश्रेष्ठ वह प्रलम्बासुर, मन में, श्रीकृष्णजी को जीतना कठिन समझकर उन की दृष्टि से बचने के निमित्त बलरामको पीठपर चढाकर ले जाते हुए उतारने की अवधि से परली ओर अर्थात् उस भाण्डीर वृक्ष के परली ओर बडी शीघ्रता के साथ लेजाने लगा ॥ २५ ॥ तब वह महाअसुर, मेरु पर्वतकी समान भारी प्रतीत होने वाले उन बलदेवजीको शीघ्रता से लेजाता हुआ जब वेग से न चल सका तो 'गोपरूप शरीर से उठाना कठिन है' ऐसा मन में विचार कर उस दैत्य ने अपना साक्षात् दैत्यरूप धार लिया तब सुवर्ण के आभूषण धारण करनेवाला वह दैत्य बिजली की कान्तियुक्त और चन्द्रमा को उठानेवाले मेघकी समान शोभित होने लगा ॥ २६ ॥ जिस स्वरूप में जलते हुए अग्निकी समान धक २ करते हुए नेत्र हैं, भौं पर्यन्त पहुँची हुई भयङ्कर दाढें हैं, अग्निकी लपटों की समान केश हैं और जो कडे, किरीट तथा कुण्डलों की कान्ति से आश्चर्यकारी दीख रहा है ऐसे, आकाश में अत्यन्त ही ऊपर को बढते चले जाते हुए तिस दैत्यरूप को देखकर बलदेवजी को कुछ एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २७ ॥ अथागतस्मृतिरसूंयो रिपुं बलो विहाय साऽर्थमिव हरंतमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्समीरयन् गिरिर्यथा मघवता आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोभिगृणंतस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिंग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥ पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलंबवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं चर्त्यो विवि-

भयलगा ॥ २७ ॥ फिर तत्काल स्मरण आकर भय रहित हुए उन बलरामजीने, अपनी गोपालों की मण्डली को छोडकर मर्यादा के परली ओर को अपने को लेजाने वाले उस प्रलम्बासुर शत्रु के मस्तक में वज्रकी समान वेगवाली कठोर मुट्ठी से, 'जैसे इन्द्र, वज्र से पर्वत के ऊपर प्रहार करता है तैसे' क्रोधमें भरकर प्रहार करा॥२८॥इस प्रकार प्रहार करा हुआ वह दैत्य तत्काल मस्तक फूट जाने के कारण, स्मृतिरहित(बेहोश)होकर मुख में से रुधिर की वमन करताहुआ और बडा भयङ्कर शब्द उच्चारण करता हुआ प्राणहीन होकर, जैसे इन्द्रके वज्रसे प्रहार कराहुआ पर्वत खस पडता है तैसे भूमि पर गिरगया२९॥ तब महाबली बलरामजी के मारे हुए उस प्रलम्बासुर को देखकर बलराम जी से 'बहुत अच्छाकरा, बहुत अच्छा करा' इसप्रकार कहते हुए वह गोप परम विस्मित हुए ॥ ३० ॥ और परलोक में जाकर आये हुए की समान उन बलरामजी को हृदय से लगा कर प्रेम से विह्वलचित्त हुए वह गोप, 'हेराम! तुम चिरंजीव रहो और इसी प्रकार निरन्तर हमारी रक्षा करते रहो' ऐसा आशीर्वाद देकर स्तुति करनेयोग्य उन बलरामजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सब के विघ्नकारी तिस प्रलम्बासुर का बलरामजीने प्राणान्त करदिया तब परम आनन्द को प्राप्त हुए देवताओं ने बलरामजीके ऊपर फूलों की वर्षा करी और 'हेराम! तुमने बहुत अच्छा करा, ठीक है' इसप्रकार प्रशंसा करी ॥ ३२ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे उन्नीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने मूँजके वन में घुसे हुए गोपोंकी और गौओं के समूहोंकी, वनकी अग्निको पीकर रक्षाकरी यह कथा वर्णन करीहै ॥*॥श्री शुकदेवजीने कहा कि—हेराजन्! प्रलम्बासुर को मारने के अनन्तर, वह गोपाल खेल में मग्न होगये, तब इच्छानुसार चरती २ दूर पहुँची हुई उनकी गौएं चारे के लोभसे एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शुस्तृणैर्लोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटव्यां विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रांतास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥ ५ ॥ तां आहूता भगवता मेघगंभीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत् क्षयकृद्वनौकसां ॥ समीरितः सारथिनोल्वणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥

घोर वन में को चलीगईं ॥ १ ॥ वह सब गौएं, बकरियें और भैंसें इस वन से उसवन में और उस वन से दूसरे वनमें इसप्रकार जाती हुई ग्रीष्मऋतुके ताप से पिलासी होकर डकराती २ अति ऊँचे एक घाससे भरे हुए सीकोंके वनमें चली गईं॥२॥इधर कृष्ण और बलराम जिनमें मुखिया हैं ऐसे उन सकल गोपों को जब पशु नहीं दीखे तब पश्चात्ताप करके ढूँढने लगे परन्तु ढूँढते हुए भी उन को बहुत देरी पर्यन्त गौओं का पता नहीं मिला, उससमय केवल कृष्ण बलरामकोही असह्य नहीं प्रतीत हुआ क्यों कि—वह जानते थे कि—गौएँ किधर गई हैं और आगे को क्या होनेवाला है ॥ ३ ॥ तदनन्तर आजीविका की साधन गौओं के खोजाने से व्याकुलचित्त हुए वह सब गोपाल गौओं के चरणों के चिन्हवाले स्थानों से और तिन गौओं के खुर तथा दाँतों से टूटेहुए तृणों से गौओं के जाने का मार्ग पहिचानते हुए चल दिये ॥ ४ ॥ जाते २ मूँज के वन में, मार्ग भूलकर रम्भाते फिरते हुए अपने गोधन को पाकर, चलते २ थकगये और धूपके कारण प्यास से व्याकुल हुए वह गोप, गौओं को तहाँ से हाँककर पीछे को लौटे ॥ ५ ॥ उससमय भगवान् ने मेघकी समान गम्भीर वाणी से पुकारीहुई वह गौएँ अपने २ कारी धौरी आदि नामो का शब्द सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई और रम्भाने के शब्द से श्रीकृष्ण को पुकारने लगीं ॥ ६ ॥ सो इतने ही में उस वन में, प्राणियों के किसी दुर्भाग्य के कारण, वायुकी सहायता से बढाहुआ और गोपों के नाशका कारण बडाभारी वनका अग्नि (दौं) चारोंओर लगगया और वह अपनी भयङ्कर लपटों से स्थावर जङ्गम सबको जलाने लगा ॥ ७ ॥ तब चारों ओरसे जलकर अपने समीप को आतेहुए उस वनके अग्निको देखकर गौ और गोपाल भयभीत हुए और वह जैसे मृत्युके भय से घबडायेहुए पुरुष श्रीहरि की शरण जातेहैं तैसे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बांधवाः कृष्ण न चार्हंत्यवसीदितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बंधूनां भगवान् हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ॥ वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपानां परमानन्द आसीद्गोविंददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दश-

बलरामसहित श्रीकृष्णजी की शरण जाकर कहने लगेकि—॥८॥ हेकृष्ण ! हेकृष्ण ! तुम महाशक्तिमान् हो,हे बलरामजी ! तुम्हारे पराक्रम का अन्त नहीं है तुम दोनो, वनकी अग्निसे जलतेहुए और तुम्हारी शरण में आयेहुए हमारी रक्षा करने को समर्थ हो ॥९॥ हे सर्वधर्मज्ञ कृष्ण ! तुम्हारे सम्बन्धी बन्धु बान्धव भी निःसन्देह दुःख भोगने के योग्य नहीं हैं, फिर हमारे तो तुमही रक्षक हो और तुम्हारे ही आश्रय से रहते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हेराजन् ! इसप्रकार उन गोपालों का दीन वचन सुनकर वह भगवान् श्रीकृष्णजी उनसे कहने लगे कि—अरे गोपालो ! तुम भय न मानो और नेत्र मूँदलो तो तुम्हारा कल्याण होयगा ॥ ११ ॥ तब 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर गोपालों के नेत्र मूँदलेने पर, उन योगेश्वर भगवान् ने, उस भयङ्कर अग्नि को मुखसे पीकर उन गोपालों को, मूँजके वनमें जाना, भूख, प्यास और परिश्रम आदि से होनेवाले सङ्कट से छुटाकर एकक्षण में फिर भाण्डीरक बड के समीप लाकर पहुँचादिया. तदनन्तर उन गोपों ने नेत्र उघाडकर देखा तो अपने को और गौओं को श्रीकृष्णजी ने सङ्कट से छुटाया है ऐसा देख बडे आश्चर्य में हुए ॥ १२ ॥ १३ ॥ और योगमाया से रचेहुए वन के अग्नि से अपने को छुटानारूप वह श्रीकृष्णजी का अपूर्व सामर्थ्य देख उन गोपोंने, श्रीकृष्णजी को, यह मृत्युको भी दूर करदेनेवाले परमेश्वर हैं ऐसा माना ॥ १४ ॥ तदनन्तर बलरामसहित गोपों से स्तुति करेहुए वह श्रीकृष्णजी, गौओं को पीछेको लौटाकर सायङ्काल के समय मुरली बजाते २ गोकुल में चलेगये ॥ १५ ॥ तब, जिनको श्रीकृष्ण के विना एकक्षण का समयभी सौयुगकी समान बडा प्रतीत होताहै तिन यशोदादि गोपियों को गोविन्द का दर्शन होनेपर परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

मस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्त्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मवं सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वतो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ॥ प्राणिनां जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी

एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगेके बीसवें अध्याय में वर्षाऋतु और शरद ऋतु के वर्णन से गोप और बलरामसहित श्रीकृष्णजी की वन में करीहुई वर्षा ऋतुमें की लीला वर्णन करीहैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि–हे राजन् ! श्रीदामा आदि गोपों ने वनकी दौंसे अपने सबोंको छुटाना और प्रलम्बासुर का वध करना यह उन बलराम कृष्ण के अद्भुत कर्म वृद्धगोपों से और यशोदा आदि स्त्रियों से कहे ॥ १ ॥ यह सुनकर अचरजमें हुए उन वृद्धगोपों ने और गोपियों ने, गोकुल में अवतार धारनेवाले रामकृष्ण को, यह कोई देवताओं में श्रेष्ठ देवता हैं ऐसा माना ॥ २ ॥ इसप्रकार ग्रीष्मऋतु के दिन बीतजाने के अनन्तर, सब जीवजन्तुओं की उत्पत्ति करनेवाली सकल प्राणियों का जीवन चलानेवाली, चन्द्रमा सूर्य के चारों ओर चक्राकार परिधि डालनेवाली, और मेघ के खण्डों को जिधर तिधर फिराकर आकाशमण्डल को क्षोभित करनेवाली वर्षाऋतु आई ॥ ३ ॥ उससमय बिजली और गर्जनासहित घिरकर आयेहुए घने श्याममेघों से आच्छादित हुआ और जिस में सूर्य चन्द्रमाआदि ग्रह स्पष्ट नहीं दीखते हैं ऐसाआकाश सत्त्वादि गुणों से ढके हुए और जिस का स्वयम्प्रकाशरूप स्पष्टरूप से अनुभव में न आवे ऐसे सगुण ब्रह्मकी समान शोभित होनेलगा ॥ ४ ॥ तब, जैसे राजे प्रजाओं से कर लेकर धन इकट्ठा करते हैं परन्तु समय आनेपर उस धन को उनकेही निमित्त व्यय (खर्च) करदेते हैं तैसेही, सूर्य–आठमास पर्यन्त अपनी किरणों से सुखाकर लिया हुआ भूमिका जलरूप धन, वर्षाकाल आने पर फिर पृथ्वी पर छोडनेलगा ॥ ५ ॥ जैसे दयालु पुरुष, भूख आदि से दुःखित हुए प्राणियों को देखकर आर्द्रचित्त होकर उन को बचाने के निमित्त अपने जीवनके साधन भी अन्नआदि का दान करते हैं तैसे ही, बडे २ मेघभी, अपने बिजलीरूप नेत्रों से, तपे हुए जगत् को देखकर प्रचण्डवायु से कम्पायमान होते हुए, इसजगत् की वृद्धि करनेवाले और जीवनके साधन जलकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ उससमय ग्रीष्मऋतु से सूखीहुई भूमि, फिर जल से भीग जाने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥ निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः ॥ यथा पाषेन पाखंडा नहि वेदाः कलौयुगे ॥८॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूकाः व्यसृजन् गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥ १० ॥ हरिताः हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिताः ॥ उच्छिलींध्रकृतच्छाया तृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानतां ॥१२॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥ अधिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषे-

जैसे सकाम तप करनेवाले पुरुष का शरीर उस तप का फल (भोग) पाकर भोजनादि करके पुष्ट होता है तैसेही पुष्ट हुई ॥ ७ ॥ जैसे कलियुग में पाखण्डियों के ग्रन्थ, अज्ञान से होनेवाले पाप करके प्रकाश पाने लगते हैं, वेद प्रकाश नहीं पाते हैं तैसेही रात्रि के आरम्भ में पटवीजने, मेघों से होने वाले अन्धकार करके प्रकाश पानेलगे गुरु शुक्रआदि ग्रह प्रकाशित नहीं हुए ॥ ८ ॥ जैसे पहिले गुरु के नित्यकर्म के समय समीप में ही रहनेवाले शिष्य ब्राह्मण, गुरु का शब्द सुनने के अनन्तर पढने लगते हैं तैसेही पहिले मौन होकर सोये हुए मेंडक मेघों का शब्दसुनकर अपनी वाणी उच्चारण करनेलगे ॥ ९ ॥ जैसे जितेन्द्रिय पुरुष की यौवन आदि शरीर की सम्पदा और धन घर आदि द्रव्यसम्पदा, पहिले शान्तस्वभावका होकर पीछे से शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन करके वर्त्ताव करने लगने पर, कुमार्ग में को जाने लगती है तैसेही पहिले सूखीहुई भी छोटी नदियें, वर्षा होने पर अपने २ पात्रों से बाहर को निकलकर इधर उधर के मार्गों में को होकर बहनेलगीं ॥१०॥ जैसे राजाओं की सेनारूप सम्पदा कितनों ही का हरा, कितनोंही का लाल वेष और कितनोंही के मस्तकपर धारण करे हुए स्वेत छत्रों से हरी लाल और स्वेत दीखती है तैसेही भूमि, कहीं २ उगेहुए हरे तृणों से हरी, कहीं २ इन्द्रगोप (वीरबहुटी) नामक कीडों से लाल और कहीं २ उगेहुए छत्रों से ढकी हुई होने के कारण स्वेत दीखने लगी ॥ ११ ॥ तैसेही खेत, अच्छी वर्षा होकर सुन्दरदीखनेवाले धान्यों से किसानों को आनन्द देनेलगी और फिर वर्षा बन्दहोने के कारण सूखनेवाले वही खेत, वर्षा होना और न होना यह दैवके अधीन है ऐसा न जाननेवाले उन खेतों के स्वामी किसानों को खेद भी देनेलगी ॥ १२ ॥ जैसे भगवद्भक्त, श्रीहरि की सेवा से साधकदशा में सुन्दररूप और सिद्धदशा में परमानन्दस्वरूप धारण करते हैं तैसेही जल में रहनेवाले मत्स्य आदि और भूमिपर रहनेवाले वृक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्षा ॥ १३ ॥ सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥१४॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्च्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ ॥ १६ ॥ लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्विय्यति माहेंद्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपच्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहमित्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः॥गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे

आदि सकल प्राणी, नवीन जल के सेवन से सुन्दररूप धारण करने लगे ॥१३॥ उससमय जैसे जिस का योगसाधन पूर्ण नहीं हुआ है ऐसे योगी का भोगवासनायुक्त हुआ चित्त, विषयों में लगकर चञ्चल होजाता है तैसेही नदियों से मिलेहुए और वायु से जिस में तरङ्ग उठरही हैं ऐसा समुद्र क्षोभित होनेलगा ॥ १४ ॥ जैसे परमेश्वर में मग्नचित्तहुए पुरुष, आध्यात्मिक आदि तापों से कितनी ही पीडा पानेपर भी डिगते नहीं हैं तैसेही गोवर्द्धन आदि पर्वत मेघों की धाराओं से बहुत कुछ प्रहार करेहुए भी कुछ दुःखको नहीं प्राप्तहुए ॥ १५ ॥ जैसे ब्राह्मणों के पाठकरेहुए भी वेद, कुछदिनों पर्यन्त आवृत्ति न करनेपर कालगति से विस्मृत से होकर अन्त में सन्दिग्ध होजाते हैं तैसेही इस वर्षा ऋतु में घाससे ढकेहुए और घासको दूर करके साफ न करेहुए मार्ग, उन मार्गों में को वारंवार जानेवाले पुरुषों के भी जानने में नहीं आये ॥१६॥ जैसे क्षणिक प्रेम करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियें देना आदि गुणों से युक्त भी पुरुषों के पास नहीं रहती हैं तैसेही सकल लोकों के ऊपर उपकार करनेवाले भी मेघों में बिजलियें स्थिरता के साथ नहीं रहीं ॥ १७ ॥ जैसे निर्गुण पुरुष, माया के सत्व आदि तीनों गुणों के मेल से प्रकटहुए प्रपञ्च में शोभित होता है तैसे ही जिस में डोरी है ही नहीं ऐसा इन्द्रका धनुष, गर्जना आदि गुणयुक्त आकाश में शोभित होनेलगा ॥ १८ ॥ जैसे अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाली अहंबुद्धि से ढकाहुआ जीवात्मा, 'मैंदाता हूं, मैं शूर हूं इत्यादि' गर्व से फूलते ही शोभा नहीं पाता है तैसेही, अपनीही कान्ति से प्रकाशित होनेवाले मेघों से ढकाहुआ चन्द्रमा शोभायमान नहीं हुआ ॥ १९ ॥ जैसे घरमें रहकर तीनों तापों से तपेहुए और विरक्तहुए पुरुष, भगवान् के भक्त का समागम होतेही आनन्द पाकर पूजा स्तुति नमस्कार आदि से उसका सत्कार करते हैं तैसेही पहिले ग्रीष्म के तापसे तपकर खिन्नहुए मोर, मेघों के आने से उत्साहयुक्त और हर्षित होकर अपना 'केका शब्द और नृत्य आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥२०॥पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्मभूतयः॥प्राक्क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामानुसेवया ॥२१॥सरस्स्वशांतरोधस्सु न्यूपुरङ्गापि सारसाः॥गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे॥पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥ व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्यो ऽर्थामृतं घनाः ॥ यथाऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः॥२४॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजंबुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्नाः

करके, उन का सत्कार करनेलगे ॥ २० ॥ जैसे पहिले तपस्या के क्लेशोंसे दुर्बल और शिथिल इन्द्रिय हुए सकाम तपस्वी, पुण्यके प्रभाव से इच्छित विषय भोग पाकर, उन भोगोंके निरन्तर सेवनसे पुष्ट होतेहैं तैसेही पहिले ग्रीष्मके तापसे सूखेहुए वृक्ष, अपनी जड़ो से जल को खेंचकर नये अङ्कुर, फूल, फल आदि से पुष्टहुए ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जैसे खोटी बुद्धिवाले विषयवासनाओं से बँधेहुए गृहस्थ, घोरकार्यों से युक्त वा जिन में के कार्य कभी समाप्त ही नहीं होते ऐसे घरों में रहते हैं तैसे ही मत्स्य आदि का लोभ करनेवाले चक्रवाक (चकवे) पक्षी, जिनके किनारे काँटे कीच आदि से युक्त हैं ऐसेभी सरोवरों में रहने लगे॥२२॥जैसे वेदोंमें कहेहुए वर्णाश्रम धर्मों के मार्ग, पाखण्डी पुरुषोंकी कुतर्कोंसे कलियुगमें अस्तव्यस्त होजाते हैं तैसेही, इन्द्रके वर्षा करनेपर नदी और खेतों के बाँध, जलके प्रवाहसे टूटनेलगे ॥ २३ ॥ जैसे पुरोहितों के प्रेरणा करेहुए राजे, अथवा धनी पुरुष, समय २ पर दुःखित हुए पुरुषों को अन्न वस्त्र आदि उपभोगकी वस्तुओं का दान करते हैं तैसे ही वायु के प्रेरणा करेहुए मेघ, सकल प्राणियों के जीवनरूप जलकी समय २ पर वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ इसप्रकार वर्षा ऋतुकी सम्पदा से बढ़ेहुए और पकेहुए फलों से झुके खजूर और जामुनों के वृक्षोंवाले तिस वृन्दावन में गौ और गोपालों से घिरेहुए वह बलराम सहित श्रीकृष्णजी, क्रीडा करने के निमित्त गये ॥ २५ ॥ तहाँ बड़े ऐन के भार से धीरे२ चलने वालीं गौएँ, भगवान् ने अपने आप धरेहुए नामों से जब उन को बुलाया तो, प्रीति के कारण स्तनो में से दूध टपकाती हुई दौडती २ उन के समीप पहुँचीं ॥ २६ ॥ उससमय उसलीला को देखकर आनन्द पानेवालीं उसवन में की कितनी ही भीलनियें भगवान् के देखने में आईं; कभी वह कृष्ण परमात्मा, उस वन में मद टपकाने वाले वनों की पंक्तियें, पर्वत से नीचे गिरने के कारण धू धू बजनेवालीं जलकी धारा और उन के समीपकी गुहाओं को देखते हुए तथा पक्षियो के नानाप्रकार के शब्द सुनते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दद्दशे गुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणाऽन्वितः ॥ २९ ॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्दृप्तान्वत्सतरान् गांश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥ प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहां ॥ भगवान्पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहितां ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छांबुवपुषोनिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलं ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥३४॥ सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः॥ यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्विषाः ॥ ३५ ॥ गिरयोः मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न

फिरते थे ॥ २७ ॥ कभी, कन्दमूल और फलों का भक्षण करनेवाले वह भगवान्, वर्षा होने पर वृक्षों के झाड़ों में और गुहा में घुसकर तहाँही क्रीडा करते थे ॥ २८ ॥ कभी, बलराम सहित वह श्रीकृष्णजी, अपने साथ भोजन करनेके योग्य सखा गोपालों के साथ, जल के समीप शिलापर बैठकर घरसे लाये हुए दही भातका भोजन करते थे ॥ २९ ॥ हरीघास से भरेहुए स्थानोंपर बैठकर जुँगाल करनेवाले और नेत्र मूँदकर तृप्त हुए वृषभों को, बछड़ों को और अपने ऐनके भारसे थकीहुई गौओं को देखकर, तैसे ही अपने प्रभावसे बढ़ीहुई और सकल प्राणियोंको आनन्द देनेवाली वर्षाऋतु में की तिस वृन्दावन की शोभाको देखकर भगवान् ने सराहना करी ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसप्रकार क्रीड़ा करतेहुए वह रामकृष्ण, गोकुल में रहते थे सो—जिसमें मेघनष्ट होगए हैं, जल स्वच्छ होगये हैं और वायु शान्त होकर चलने लगा है ऐसा शरदऋतु आगया ॥ ३२ ॥ उससमय जैसे कुसङ्ग से योगभ्रष्ट हुए पुरुषों के अन्तःकरण, फिर प्राणायाम आदियोग साधनोंके सेवन से ठीक होकर स्वच्छ होजाते हैं तैसेही बरसात में गदलेहुए नदी आदिकों के जल, कमलों को उत्पन्न करनेवाली उस शरदऋतुके आनेसे स्वच्छ और मधुर होगये॥३३॥जैसे श्रीकृष्ण भगवान् के विषैं होनेवाली भक्ति, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी, इनचारों आश्रमों के दुःखों का नाश करती है तैसेही शरदऋतु से, आकाश में के मेघ, प्राणीमात्र की सङ्कीर्णता, पृथ्वी की कींच और जल में के मल का नाश करा॥३४॥ उससमय, जैसे पुत्रेषणा, वित्तेषणा, और लोकेषणा आदि सब इच्छाओं को त्यागकर पापों से छूटेहुए शान्तस्वभाव ऋषि शोभापाते हैं तैसेही अपना सकल जल पृथ्वीपर छोड़कर स्वेतवर्ण के हुए मेघ शोभा पानेलगे ॥ ३५ ॥ जैसे ज्ञानीपुरुष, मोक्षसाधनरूप ज्ञानामृत का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ "नैवा-विदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ॥ यथायुरन्वहं क्षेत्यं नरा मूढाः कुटुंबिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविंदन् शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुंब्य-विजितेंद्रियः ॥ ३८ ॥ शनैः शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथा-हंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्र शर-दागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽ-गृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥ शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रज-योषिताम् ॥४२॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं

किसी अधिकारी पुरुष को ही कृपा करके उपदेश करते हैं, कर्मविद्याका उपदेश करनेवाले उपाध्यायों की समान चाहेजिस को देकर सर्वत्र नहीं फैलाते हैं तैसेही पर्वत, अपने में विद्यमान कल्याण कारीजल, कहीं ही छोडते थे सर्वत्र नहीं ॥ ३६ ॥ जैसे कुटुम्बका पोषण करने में आसक्तहुए मूढपुरुष, प्रतिदिन क्षीण होतेहुए अपने आयु को नहीं जानते हैं तैसे ही थोडे जल में रहनेवाले जलजन्तुओं ने, उस शरद ऋतु में अपने जीवन का हेतु जल आगे को बराबर क्षीण होरहा है ऐसा नहीं जाना ॥ ३७ ॥ जैसे इन्द्रियों को वश में न रखने वाला दरिद्री और दीन कुटुम्बी पुरुष, संसार में अनेकों प्रकार के दुःख पाता है तैसे ही थोड़े जल में रहनेवाले जलचर प्राणी, शरद् ऋतु के सूर्य की किरणों से होनेवाले ताप को पानेलगे ॥ ३८ ॥ जैसे धैर्यवान् ज्ञानी पुरुष, धीरे २ इस जड शरीर आदि में की अहन्ता और ममता का त्याग करते हैं तैसेही सब स्थान कीच का और लता अपक्वता (कच्चापन) का त्याग करने लगीं ॥ ३९ ॥ जैसे ध्यान करनेवाला ऋषि, मन को उपराम होनेपर वेद घोष आदि कर्ममार्ग को छोडकर शान्त होजाता है तैसे ही शरद ऋतुके आनेपर समुद्र, गर्जना करना आदि छोड़कर निश्चल जलवाला हुआ ॥ ४० ॥ जैसे योगसाधन करनेवाले पुरुष, क्षोभ पानेवाली अपनी द्वाररूप इन्द्रियों में को स्रवने (क्षीणहोने)वाले ज्ञान की, इन्द्रियों को रोककर (वश में करके) रक्षा करते हैं तैसेही किसानलोग, अपने धान आदि के खेतों में से बाँध तोडकर जानेवाले जलोंको, उन बाँधों (मेंड़ों) को दृढता से बाँधकर रोकते थे ॥ ४१ ॥ जैसे ज्ञान होनेपर वह ज्ञान, देहाभिमान से होनेवाले तापका नाश करता है और जैसे श्रीकृष्णजी, गोकुल की स्त्रियोंके अपने विरह से उत्पन्नहुए ताप का नाश करते थे तैसेही, चन्द्रमा, प्राणियों को शरद ऋतु में के सूर्य की किरणों से होनेवाले ताप का नाश करनेलगा ॥ ४२ ॥ जैसे सत्त्वगुण से युक्त (शुद्ध) हुआ अन्तःकरण, वेदब्रह्म में की पूर्वोत्तरमीमांसा में निर्णय करेहुए अर्थोंको दिखाता हुआ शोभा पाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रियाइव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरिंद्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पकसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थेभ्यपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिंडान्काल आगते

है तैसेही मेघोंसे रहित हुआ आकाश, शरद् ऋतु करके तारागणोंको स्पष्ट दिखाताहुआ शोभा पानेलगा ॥ ४३ ॥ जैसे यादवसमूह से घिरेहुए यादवपति श्रीकृष्ण,पृथ्वीपर शोभापाते थे तैसेही तारागणों सहित षोड़शकलापूर्ण चन्द्रमा, आकाश में शोभा पानेलगा ॥ ४४ ॥ उस शरद् ऋतु में सबोंने समशीतोष्ण (न अधिक शीतल न अधिक उष्ण) ऐसे, पुष्पों के वन में से आयेहुए वायुको शरीरसे लगाकर सकल तापोंको त्यागा परन्तु सकल गोपियें उसवायु के लगने से भी ताप के त्यागनेको समर्थ नहींहुईं क्योंकि उनके मन श्रीकृष्ण जी ने हरलियेथे॥४५॥ जैसे ईश्वराराधनरूप कर्मयोग,ईश्वरके सम्बन्धसे धर्मादि पुरुषार्थरूप फलों से युक्त होकर सकलभोगोंको उत्पन्न करनेवालेहोतेहैं तैसेहीगौएं,पक्षी और स्त्रियें,शरद ऋतु के निमित्त से अपने २ पतियों से सम्बन्ध को पाकर पुष्पवती (गर्भिणी) हुईं ॥ ४६ ॥ हेराजन् ! जैसे चोरों के सिवाय सकललोक, धार्मिक राजा करके निर्भय और हर्षयुक्त होते हैं तैसे ही चन्द्रमा के उदय में खिलनेवाली कमलिनियों के सिवाय सकल कमल सूर्योदय से प्रफुल्लितहुए ॥ ४७ ॥ उससमय जिधर तिधर धान्य पककर सम्पन्न हुई भूमि, नगर और ग्रामों में सर्वत्र होनेवाले नवान्नप्राशन आदि वैदिक महोत्सवों से और दीपावली आदि इन्द्रियों को प्रीति देनेवाले उत्सवों से शोभित होनेलगी, तिसपरभी श्रीहरिके बलराम श्रीकृष्णरूप अवतारों से उन के दर्शन आदि उत्साहों से और भी अधिक शोभापानेलगी ॥ ४८ ॥ यज्ञ आदिकर्म, योगसाधन, मन्त्र सिद्धि और भगवान् की भक्ति आदि साधनों से सिद्ध हुए पुरुष, जैसे प्रारब्ध से आयु शेष होय तबतक जीते रहकर उस प्रारब्ध के समाप्त होतेही मृत्युकाल प्राप्त होने पर अपने यज्ञ आदि से सम्पादन करे हुए देव आदि शरीरों को पाते हैं तैसेही वैश्य (व्यापारी) संन्यासी, राजे और ब्रह्मचारी, वर्षाऋतु में जल पडना आदि कारणों से एकस्थान में रहकर उस शरद्ऋतु के आतेही अपने २ स्थान से निकलकर अपने २ व्यापार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ४९ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० शरद्वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगंधिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥ तद्व्रजस्त्रियः आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ॥ रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः

स्वच्छन्दता, दिग्विजय और विद्याका अभ्यास आदि कार्य करने लगे ॥ ४९ ॥ इतिश्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में विंशतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इक्कीसवें अध्याय में,शरद्ऋतु करके सुन्दर हुए वृन्दावन में श्रीकृष्णजी के जाने पर, उन के वेणुगीतके शब्द को सुनकर गोपियों के गाये हुए गीत वर्णन करे हैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा ।कि हेराजन् ! इसप्रकार शरद्ऋतु के आने से जहाँ जल स्वच्छहोगया है और जहाँ कमलों के समूह में को होकर आयाहुआवायु चलरहा है ऐसे तिस वृन्दावन में एक दिन, गौ गोपालोंसहित श्रीकृष्णजी गये ॥ १ ॥ जहाँ प्रफुल्लित हुई बन की पंक्तियों में मत्तहुए भौंरो के और पक्षियों के समूहों से सरोवर नदियें और पर्वत गुञ्जार रहे हैं ऐसे उसवन में गौ, गोपाल और बलरामजी सहित श्रीकृष्णजीने प्रवेश करके गौओं को चराते २ वंशी बजाई ॥ २ ॥ उस कामदेव को प्रदीप्त करनेवाले वेणुगीत को सुनकर तिस बन में जाकर तहाँ के वृत्तान्त का अनुभव करके आई हुई कितनी ही गोकुल की स्त्रियें अपनी सखियोंसे वर्णन करनेलगीं ॥ ३ ॥ हेराजन् ! उन्हों ने, उस कृष्णचरित्र के वर्णन का प्रारम्भ करा परन्तु कृष्णकी मूर्त्ति ध्यान में आतेही कामदेव के वेग से व्याकुल चित्त हुई गोपियें, वर्णन करने को समर्थ नहीं हुई ॥ ४ ॥ अब, जिस प्रकार कृष्णका स्मरण उनके मनको क्षोभित करनेवाला हुआ सो कहते हैं— मस्तक पर मोरों के परोंका शिरों भूषण, नटकी समान सुन्दर शरीर, कानों में कनेर के वृक्ष के फूल, सुवर्ण की समान पीला जरीका पीताम्बर और वैजयन्ती (पाँच वर्ण के सुगन्धित फूलोंकी गूँथी हुई माला को धारण करनेवाले और गोपों के समूहों ने जिनकी कीर्त्तिको गाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी वंशी के छिद्रों को अधरामृत मुखकी वायु से पूर्ण करते (बजाते) हुए, जहाँ तहाँ भूमिपर दीखते हुए अपने चरणों के चिन्हों से सबको रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तवकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो

णीय प्रतीत होनेवाले वृन्दावनमें को गये ॥५॥ हे राजन्! इसप्रकार स्मरण करनेवालीं वह गोकुलकी सकलस्त्रियें, सकल प्राणियोंका मन हरलेनेवाले वंशी के शब्दको सुनकर श्रीकृष्ण जी के स्वरूप की मधुरता आदिका वर्णन करती हुई पद २ पर, परमानन्द मूर्त्ति श्रीकृष्ण जी को मनसे आलिङ्गन करनेलगीं ॥ ६ ॥ गोपियों ने कहाकि—अरी सखियों! नेत्रधारी पुरुषों के नेत्रोंका यही मुख्य फल है और इससे दूसरे फल को हम नहीं जानतीं कि—समान अवस्था के मित्रों सहित गौओं को एक वनमें से दूसरे वनमें को लेजाने वाले नन्द नन्दन बलराम और श्रीकृष्ण के वंशी बजानेवाले और स्नेह युक्त कटाक्ष फेंकने वाला मुख जिन्होंने पिया है अर्थात् नेत्ररूप भ्रमरों से उसकी मधुरता का अनुभव कराहै उन्होंही ने नेत्रोंका फलपाया है दूसरे किसीने नहींपाया है ॥ ७ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि—अरी! आमके कोमल पत्ते, मोरों के पर, फूलोंके गुच्छे और भूमितथा जलमें उत्पन्नहुए कमल, इनकी चित्रविचित्र बनीहुई मालाओं से बीच २ में लगेहुए नीले और पीले पीताम्बरों से जिनका वेष विचित्र दीखरहा है ऐसे वह रामकृष्ण, गोपालों की सभा में जबकभी गान करनेलगते हैं तब जैसे रङ्गभूमि (खेल दिखानेके स्थान) में गानेवाले उत्तम नट शोभा पाते हैं तसे शोभा पाने लगते हैं यह गोपों का कैसा अहोभाग्य है? ॥ ८ ॥ दूसरी कहने लगीं कि—अरी गोपियों! न जाने इस वंशी ने कौन पुण्य करा है? क्योंकि—यह वंशी, गोपियों के ही भोगने योग्य भी श्रीकृष्णजी की अधरसुधा को स्वतन्त्रता के साथ इच्छानुसार भोगती है और दूसरों के बाँटे में केवल अपने जूठेकरे हुए रसका अंश छोड़देती है; यदि कहो कि—यह कैसे जाना तो—उसके जतानेवाले चिन्ह कहते हैं कि—जैसे कुलवृद्ध पुरुष, हमारे वंश में भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न होकर उसको भगवान् का प्रसाद मिला ऐसा सुनकर रोमाञ्चयुक्तहो आनन्द के आँसू बहाते हैं तैसेही यह वंशी जिन के जल से पुष्टहुई है वह माता की समान न दियें, अपने में खिले हुए कमलों के समूहरूप से रोमाञ्चयुक्त हुई दीखती हैं और तैसेही यह वंशी जिनके कुल में उत्पन्न हुई है वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथाऽर्थाः ॥ ९ ॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदां-बुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकवरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥१२॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः॥

वृक्षभी, मदकी धाराओं के रूप से आनन्द के आँसू बहाते हुए से दीखते हैं ॥ ९ ॥ दूसरी गोपी कहनेलगीं कि—हे सखियों ! यह वृन्दावन, भूमि की कीर्त्ति स्वर्ग से भी अधिक फैलारहा है, क्योंकि-इसवृन्दावन ने, जहाँ तहाँ उमडेहुए श्रीकृष्णजी के चरण कमलों से शोभारूप सम्पदा पाई है; इस में गोविन्द की वंशी का शब्द सुनते ही मत्तहुए मोर, उनगोविन्दको, यह मन्द २ गर्जनेवाला श्याममेघ ही है ऐसा मानकर आनन्द से नृत्य करते हैं और उस नृत्य को देखकर, पर्वतों की गुहाओं में फिरनेवाले सकल जङ्गली जीव समूहके समूह इकट्ठे होकर उस नृत्य को देखने के निमित्त और मुरली का शब्द सुनने के निमित्त बुत्त से खडे होजाते हैं; यह चमत्कार और लोकों में नहीं है इसकारण यह वृन्दावन भूमि की कीर्त्ति को फैलारहा है ॥ १० ॥ दूसरी कहनेलगीं—अरी सखियों ! तिर्यक्योनि में उत्पन्न होने के कारण विवेक से हीन भी यह हरिणियें कृतार्थ ही हैं, क्योंकि—जो वंशी के शब्द को सुनकर विचित्र वेष धारण करनेवाले नन्दकुमार की, प्रेमयुक्त कटाक्षों से रचीहुई पूजा (सन्मान) करती हैं और तिसपर भी अपने पतिकृष्णसार हरिणों के साथकरती हैं, देखो—हमारे पति तो हमें कृष्णकी ओर को देखतेहुए भी देखकर क्रुद्ध होते हैं ! ॥ ११ ॥ दूसरी गोपी बोलीं-अरीसखियों ! हम एक आश्चर्य कहतीं हैं सुनो—जिनका रूप और स्वभाव स्त्रियों के उत्साह को उत्पन्न करनेवाला है तिन श्रीकृष्णजी को देखकर और उनकी बजाईहुई मुरली के विचित्र गान को सुनकर विमान में बैठकर जातीहुई देवाङ्गना, अपने २ पतियों की गोदियों में बैठीहुई भी कामदेव के वेग से धैर्य नष्ट होजाने के कारण मोहित होजाती हैं, तब व्याकुल और अस्तव्यस्त हुई उनकी चोटियों में से पुष्प गिरनेलगते हैं तथा उनकी साडी शिथिल होजाती हैं, अर्थात् जब देवाङ्गना भी देखकर मोहित होजाती हैं तो फिर हमारे मोहित होने में कौन आश्चर्य है ? ॥ १२ ॥ उससमय गौएँ भी, कृष्णके मुख में से निकलाहुआ वेणुगीतरूप अमृत नीचे न गिरपडे इसकारण अपने ऊपरको खडे करेहुए कर्णरूप अञ्जलियों से उसको पीती हैं और श्रीकृष्णजी को नेत्रों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविंदमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥ प्रायो वतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वंति मीलितदृशो विगतान्यवाचः॥१४॥ नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुंदगीतमावर्त्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिंगनस्थगित मूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णंति पाद युगलं कमलोपहाराः ॥१५॥ दृष्ट्वाऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयंतमनु वेणुमुदीरयंतम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्यु व्यधात्स्ववपुषांऽबुद आतपत्रम्॥१६॥पूर्णाः पुलिंद उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन

द्वारा मन में को लेजाकर दृढ आलिङ्गन करती हैं और नेत्रों में से आनन्द के आँसू वहातीहुई बुत्तसीखड़ी रहती हैं तैसे ही छोटे २ बछडे भी, दूध पीतेहुए, कृष्णकी मुरली का शब्द कानों में पड़ते ही देह के भानको विसारकर स्तनों में से खेंचकरलिये हुए दूध के ग्रास (घूँट) को गलफडों में से नीचे को टपकाते हुए निश्चेष्ट खड़े रहते हैं ॥ १३ ॥ एक गोपी कहनेलगी कि—अरी ! इस वन में जो पक्षी हैं वह प्रायः परम मनन करनेवाले ऋषि ही हैं, क्योंकि—जैसे मननशील ऋषि, जैसे श्रीकृष्ण का दर्शन होय तिस रीति से वेदोक्त कर्म फलोंको त्यागकर, वेदरूपवृक्षों की शाखाओं का आश्रय करके और सुन्दर पल्लवरूप कर्मों को ही स्वीकार करके श्रीकृष्ण की कथाओं का गान और श्रवण करते हैं तैसे ही यह पक्षी भी, जैसे श्रीकृष्ण का दर्शन होय तिस रीति से फलपुष्प आदि से रहित और सुन्दर वृक्षों के पत्तों से युक्त गुहों पर बैठकर कृष्णके प्रकट करे हुए मुरली के मधुरगीत को, किसी अकथनीय सुख के साथ नेत्रों को न मूँदकर और अपनी २ जाति के कलकलाहट शब्द को न करतेहुए सुनते हैं ॥ १४ ॥ दूसरी गोपी कहनेलगी कि—अरी ! जीवित प्राणियों की बात तो अलगरही परन्तु यह निर्जीव नदियें भी, वह कृष्णकी मुरली का गान सुनकर भँवरो के रूप से सूचित होनेवाले कामदेव ने इस के प्रवाह के वेग को रोक दिया है और वह कृष्णको कमलरूपी भेट अर्पण करती हुई अपनी तरङ्गरूपी भुजाओं से श्रीकृष्ण जी के चरणयुगल को, जैसे दृढता के साथ आलिङ्गन होय तैसे ग्रहण करती हैं ॥१५॥ दूसरी कहनेलगीं कि—यह मेघ श्रीकृष्णजीको अपना मित्र मानताहै और धूप में बलराम तथा गोपों सहित गोकुल में की गौओं को चरानेवाले और गौओं के पीछे जाते में मुरली बजाते हुए उन श्रीकृष्णजी को देखकर पहिले उन के ऊपर आप प्रकट होता है और फिर प्रेम से वृद्धिको प्राप्त होकर पुष्पों की वर्षा सहित अपने शरीरका उस मित्र (श्रीकृष्ण) के ऊपर छत्र लगाता है (छायाडालता है) यहाँ देवताओं की करीहुई पुष्पवर्षा मेघोंने ही करी ऐसावर्णनकरा है ॥१६॥ दूसरी अहङ्कारयुक्त गोपी कहनेलगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयितास्तन मंडितेन॥तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूपितेन लिंपंत्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥हंतायमद्रिरबलाहरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः॥मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकंदरकंदमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रं ॥ १९ ॥ एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ॥ वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

कि अरी सहेलियों ! वनमें रहनेवालीं भीलिनियें वास्तव मे कृतार्थ (धन्य) हैं जो भीलिनियें, प्रथम श्रीकृष्णकी स्त्रियोंके स्तनोंमें लपन करेहुए फिर श्रीकृष्णके चरणकमलों को लगने के कारण उनके चरणों की लालीसे विशेष शोभाको प्राप्तहुए और श्रीकृष्णजी के वनमें फिरनेसे तृणों में लगेहुए केशरको देखतेही उसके दर्शनसे कामपीडा को प्राप्त होकर वह (तृणको लगाहुआ) केशरलेकर, कामसे तप्तहुए अपने मुख और स्तनोंके ऊपर लेपकर कामपीडा को दूरकरती हैं इसकारण वही धन्य हैं और जो गन में नहीं जातीहैं तथा उस केशर को पाकर अपनी कामपीडा को शान्त नहीं करती हैं ऐसी हमसमानस्त्रियों को धिक्कार है ॥ १७ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि—अरी गोपियों ! क्या कहैं ! यह गोवर्धन पर्वत तो भगवद्भक्तों का शिरोमणि है; क्योंकि—यह बलराम और कृष्ण के चरणों का स्पर्श होने से आनन्दयुक्त तथा उगेहुए तृणों के रूप से रोमाञ्च को धारण करता हुआ, गौगोपालों सहित अपने ऊपर आयेहुए उन बलराम और श्रीकृष्ण का, जल, कोमलतृण, गुहा, कन्द तथा मूल के द्वारा सन्मान करता है ॥ १८ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि—अरी सखियों ! गोपालों सहित प्रत्येक वन में गौओं को चरानेवाले और दूध दुहते समय गौओं के पैर बाँधने की डोरी मस्तक को लपेटकर और मरखनी गौओं का दूध दुहने के समय खैंचने के निमित्त बनायी हुई फन्देदार डोरी कन्धेपर रखकर श्रेष्ठ गोपों की शोभा से विराजमान होनेवाले बलराम कृष्णके मधुर शब्दों वाली मुरली की ध्वनियों से, शरीरधारी गौ मोर आदि जंगम प्राणियों में जो चलना बन्द होकर स्थावर धर्म दीखता है और वृक्ष आदि निर्जीव प्राणियों के शरीरोंपर रोमाञ्च खडे होकर उन में जङ्गम प्राणियों का धर्म दीखता है यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार वृन्दावनमें विचरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों क्रीडाओं का वर्णन करनेवालीं वह गोपियें; अन्त में तन्मयता को प्राप्त हुईं ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में एकविंशतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे बाईसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी, वस्त्रहरण रूपलीलासे गोपकन्याओं को वर देकर यज्ञशाला में गये यह कथा वर्णन करी है *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ इति मन्त्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ ५ ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्यावद्धबाहवः ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्गत्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र कर्मसिद्ध्यै ॥ ८ ॥ तासां वासांस्युपादाय

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! हेमन्तऋतु में तिसमें भी पहिले मार्गशीर्ष मास में नन्दकी गोकुल में की कन्याओंने, हविष्यान्न भोजन करने का नियम धारकर, कात्यायनी देवी का पूजनरूप व्रत करा अर्थात् श्रीकृष्णजी की प्राप्ति के निमित्त एकमासपर्यन्त प्रति दिन कात्यायनीदेवी का पूजन करने का नियम करा ॥ १ ॥ हे राजन्! उन कन्याओं ने, अरुणोदय के समय यमुनाके जल में स्नान करके, उस जल के तटपर बालूकी कात्यायनी देवी की प्रतिमा बनाकर उस देवी की चन्दन, सुगन्धयुक्त पुष्प, पल्लव, फल, तण्डुल, धूप, दीप, छोटे बड़े भक्ष्य आदि के नैवेद्य और दही भात आदि बलि समर्पण करके पूजा करी ॥ २ ॥ ३ ॥ हे कात्यायनि! हे महामाये! हे महायोगिनि! हे सर्वेश्वरि! हे देवि! नन्दगोप का पुत्र जो श्रीकृष्ण उस को मेरा पतिकर, तुझे नमस्कारहो, इसप्रकार प्रार्थना करके नमस्काररूपी मन्त्र का अपने२ मन में जप करके उन कन्याओं ने देवी की पूजा करी ॥ ४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी की ओर को चित्त लगानेवालीं उन कन्याओं ने एक महीनेपर्यन्त, हविष्यान्न व्रत करके, नन्दका पुत्र हमारा पति हो इस इच्छा से भद्रकाली नामक कात्यायनी देवी का पूजन करा ॥ ५ ॥ प्रतिदिन उषःकाल में (पौफटने के समय) वह कन्या उठकर भिन्न२ नाम से दूसरी कन्याओं को जगाकर एक एकका हाथ पकड़ेहुए यमुना में स्नान करने के निमित्त जानेलगीं और ऊँचे स्वर से श्रीकृष्णजी का गीत गानेलगीं ॥ ६ ॥ वह कन्या एकदिन यमुनाजी के तटपर जाकर तहाँ अपने २ वस्त्र पहिले की समान उतारके रखकर बड़े हर्ष के साथ श्रीकृष्णजी का गान करतीहुई जल में 'एक दूसरी के ऊपर को जल उछालकर' क्रीडा कररहीं थीं ॥ ७ ॥ इतने ही में योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी, वह उन का व्रत करना अपनी प्राप्ति के निमित्त है ऐसा जानकर उन के कर्मों का फल देने के निमित्त मित्रों सहित तहाँ आपहुँचे ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीपमारुह्य सत्वरः ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥ अत्रागत्यावलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ १० ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ ११ ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ १२ ॥ एवं ब्रुवति गोविंदे नर्मणाक्षिप्तचेतसः ॥ आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनैषीरेतदेवं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितं ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥

और उन के वस्त्र उठाकर बडी शीघ्रता से कदम्ब के वृक्ष के ऊपर चढ़कर हँसनेवाले बालकों के साथ आप भी हँसतेहुए वह कृष्ण हास्यमें उन से कहनेलगे कि–॥ ९ ॥ हे स्त्रियों ! यहाँ (कदम्बके वृक्ष के नीचे) आकर यथेष्ट अपने २ वस्त्र लेजाओ, मैं यह सत्य कहता हूँ, उपहास नहीं है, क्योंकि–तुम व्रत करके श्रम को प्राप्त होरही हो इस कारण तुम्हारा उपहास करना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ मैंने आजपर्यंत कभी मिथ्या बोला ही नहीं, सो यह गोप जानते हैं; इससे हे सुन्दर कटिवालियों ! तुम में से एक २ यहाँ आकर वा सब साथही आकर अपने २ वस्त्र पहिन लो, एक२ को ही आना चाहिये यह मेरा आग्रह नहीं है॥ ११ ॥ तब उस, उन श्रीकृष्ण के वस्त्रहरण आदि रूप हास्य को देखकर प्रेम में भरीहुई और एक दूसरी की ओर को देखकर लज्जा से हँसतीहुई वह गोपियें जल में से बाहर निकलीं ॥ १२ ॥ और श्रीकृष्णजी के ऐसा कहनेपर हास्य से जिन के चित्त कृष्ण की ओर को खिचे हैं ऐसी शीतलजल में कण्ठपर्यंत छुपीहुई और थर २ काँपतीहुई वह गोपियें, वस्त्र हरनेवाले उन श्रीकृष्ण से कहनेलगीं ॥ १३ ॥ कि–हे कृष्ण ! तुम अन्याय न करो, बहुत से गोपों के साथ में कुलीन स्त्रियों को नग्न देखने की इच्छा करना तुम्हारा अन्याय है; तुम नन्दगोप के पुत्र, सब के प्यारे और गोकुल में प्रशंसा के योग्य हो, यह हम जानती हैं; यदि अन्याय करोगे तो देखो गोकुल में तुम्हारी अपकीर्त्ति होगी और हम को अप्रिय प्रतीत होगा इसकारण हमारे वस्त्र देदो, हम शीत के कारण बड़ी काँपरही हैं ॥ १४ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि–हे श्यामसुंदर ! हम तुम्हारी दासी हैं इसकारण तुम्हारा सब कहना करती हैं, और दूसरी प्रौढ़ स्त्रियें कहनेलगीं कि–हे धर्मज्ञ ! नग्न स्त्री का देखना धर्मनहीं है यह तुम जानते हो इससे हमारे वस्त्र देदो, यदि नहीं दोगेतो यहतुम्हारी ढिठाई हम नन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाहतां वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देव हेलनम् ॥ बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेऽहसः कृत्वा नमोऽधोवसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥ दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥

राजा से कहैंगी ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि हे मन्दहास्य करनेवाली स्त्रियों ! तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना करने को उद्यत होतो और अधिक कुछ न कहकर यहाँ आय अपने २ वस्त्र लेजाओ॥ १६॥ तदनन्तर, भगवान् की आज्ञाका उलंघन करनायोग्य नहीं है ऐसा निश्चय करके शीतके कारण बाहरसे काँपनेवालीं और अन्तःकरणमे क्लेशपानेवालीं वह सबही कन्या हाथोंसे योनियोंको ढककर यमुनाके जलमेंसे बाहरनिकलीं॥ १७॥ तदनन्तर उन्होंने प्रेमरूप भक्तिसे जिनको प्रसन्न कराहै ऐसे सन्तुष्ट हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, ऋतु सम्पर्क नहोने की अवस्था में आईहुई उन सकल कन्याओं को देखकर कदम्ब के वृक्षके गुहोंपर उनके वस्त्र रखकर मन्द २ हँसतेहुए उनसे कहनेलगे ॥ १८ ॥ कि—हेस्त्रियों! तुमने व्रत धारण करनेवालीं होकर भी जो नग्नपने से जलमें स्नान करासो 'जलमेंअग्नि और देवता रहते हैं इत्यादि अर्थकी श्रुति होनेके कारण' व्रत भङ्ग करने वाला देवताओं का अपराध ही हुआ है, सो उस पाप को दूर करने के निमित्त अपने मस्तक पर दोनों हाथों को जोड़कर नीचे को झुककर नमस्कार करो और अपने वस्त्र लो॥ १९॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी के कहेहुए भाषण को सुनकर 'नग्नहोकर कराहुआ स्नानव्रतभङ्ग करनेवाला होता है ऐसा, मानकर तिस व्रत के पूर्ण होने की इच्छा करनेवालीं उनकन्याओं ने, उसव्रतके तथा और भी सकलकर्मों के फलभूत तिन श्रीकृष्णजी को नमस्कारकरा, क्योंकि—वही सकलपापों के दूर करनेवाले हैं ॥ २० ॥ तब अपने कहने के अनुसार नमस्कार करनेवालीं उनकन्याओं को देखकर उन के नमस्कार करने से प्रसन्नहुए उन करुणामूर्त्ति देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने उनको वस्त्र दिये ॥ २१ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजीने, उनकन्याओं को यद्यपि, 'तुमने नंगी होकर जो स्नान करा इत्यादि कहकर' धोखा दिया, 'यहाँ आकरही अपने २ वस्त्रलो ऐसे आग्रह से'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमु तां नाभ्यसूयन्प्रियसंगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ताः नो चेलुस्तस्मिन्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥ तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६ ॥ यातावला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्नि-

उनकी लज्जा छुडाई; 'मैं सत्यही बोलता हूँ, मिथ्या नहीं इत्यादि कहकर' उनका हास्यकरा; 'मस्तकपर हाथरखकर नीचे को नमस्कार करके अपने २ वस्त्र लो ऐसाकह कर' खेलने की पुतलियोंकी समान खिलाई हुई उन के वस्त्र हरणकरे तथापि उनकन्याओं ने इन श्रीकृष्णजीकी निन्दा वा उनकी ओर को दोषदृष्टि से अवलोकनमात्रभी नहीं करा, क्योंकि-वह कन्या, उन प्रिय श्रीकृष्ण के समागम से ही आनन्दयुक्तहुई थीं ॥ २२ ॥ फिर अपने २ वस्त्र पहिनकर उन प्रिय श्रीकृष्ण के समागम से, उन के वश में हुई और उन्हों ने जिनके चित्त को हरलिया है ऐसी वह कन्याएँ,उन श्रीकृष्णकी ओर को लज्जा और विलासयुक्त नेत्रों से देखतीं हुई तहाँ ही चित्रलिखितसी खडी रहीं ॥ २३ ॥ तब, पतिभावसे अपने चरणस्पर्श की इच्छा करके कात्यायनी के पूजनरूप व्रत को करनेवाली कन्याओं का सङ्कल्प जानकर, वह भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णजी उन स्त्रियों से कहने लगे कि- ॥ २४ ॥ अरी पतिव्रता स्त्रियों ! मेरी सेवा करने का तुम्हारा मनोरथ है,यद्यपि वह तुम मुझ से लज्जा के कारण नहीं कहती हो तथापि मैंने जानलिया है और उस को मैंने स्वीकार भी करा है, वह मनोरथ कुछ सत्य होने के योग्य है ॥ २५ ॥ क्योंकि जैसे भुने हुए वा उबाले हुए धान्य प्रायः फिर अंकुर उत्पन्न होने के योग्य नहीं रहते हैं, केवल भक्षण करने केही कार्य में आते हैं तैसेही जिन्हों ने मेरे में अपनी बुद्धि को लगादिया है उनका विषयभोग का सङ्कल्प, वारंवार जन्ममरणरूप संसार में विषयभोग करनेवाला नहीं होता है किन्तु कुछ समय भोग भोगकर अन्त में उन को मुक्ति देनेवाला होता है ॥ २६ ॥ इसकारण हे अबलाओं ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ, अब गोकुल को जाओ, अरी सतियों ! तुम ने जो सङ्कल्प करके यह कात्यायनी का पूजनरूप व्रतकरा है सो तुम आगे को आनेवाली इस शरद्ऋतु में की रात्रियों में मेरे साथ क्रीडा करोगी ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं-हेराजन् ! इसप्रकार भगवान् की आज्ञा करी हुई और वरदान मिलने के कारण पूर्णमनोरथ हुई वह कुमारिका,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विंविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजीविनः ॥ वातवर्षातपहिमान् सहंतो वारयन्ति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्येव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गंधनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येनयमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥

भगवान् को त्यागना कठिन होने के कारण बडी कठिनता से उन के चरण कमलों का ध्यान करती तहाँ से गोकुल में को चलीगई ॥ २८ ॥ इधर गोपों से घिरेहुए वह देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णजी, बलरामजी के साथ गौओं को चराते २ वृन्दावनसे दूरचलेगये ॥२९॥ तदनन्तर कठोर गरमीकी धूपमें अपनी छायाओं से, अपने ऊपर छत्र समानहुए वृक्षों को देखकर वह भगवान् श्रीकृष्णजी,गोकुलवासी गोपोंसे कहने लगेकि–॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीदामा ! हे सुबल ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! केवल दूसरों के निमित्तही जीनेवाले इन भाग्यशाली वृक्षोंको तुम देखो, यह आप वायु, वर्षा, गरमी और शीतको सहकर हमारे,वह वायु, वर्षा आदि सब दूर कररहे हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अहो ! सकल प्राणियोंकी जीविका चलने का साधन इनका जन्म, सत्पुरुषों के जन्म की समान श्रेष्ठ है, देखो–जिन वृक्षों के पाससे याचक (समीप आएहुए प्राणी) कभी विमुख नहीं जातेहैं ॥३३॥ यह वृक्ष अपने पत्ते, फूल,फल,छाया, जड़,छाल, काठ, सुगन्ध, गोंद, भस्म, सार और पल्लव आदि अङ्कुरों से दूसरों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इससंसार में के प्राणियों के जन्म की इतनी ही सफलता है कि–अपने प्राणों से, धन आदिसे, हित चिन्तन से और हितके उपदेश आदिसे निरन्तर दूसरों का कल्याण करते हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वृक्षों की प्रशंसा करतेहुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, पल्लव फूलों के गुच्छे, फल, फूल और पत्तोंके झड़ोंसे झुकीहुई शाखाओंवाले वृक्षों के मध्य में को होकर यमुना के तटपर को चलेगये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तहाँ उनसकल गोपोंने, स्वच्छ और आरो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ७ ॥ गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छांतिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वायाचंत ते तथा । कृतांजलिपुटा विप्रान् दण्डवत्पतिता भुवि ॥५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्तान् जानीत

ग्यकारी यमुना का शीतल जल गौओं को पिलाकर फिर वह मधुर जल आप भी यथेच्छ पिया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस यमुना के उपवन में इच्छानुसार गौओं को चरानेवाले परन्तु भूँख से व्याकुल हुए वह गोप बलराम और श्रीकृष्णजी के समीप जाकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे तेईसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने, गोपों से अन्न की याचना कराने के मिष से यज्ञ करनेवालों की स्त्रियों के ऊपर अनुग्रह करके उन यज्ञ के दीक्षितों को अनुतापयुक्त करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ गोपों ने कहा कि—हे महापराक्रम राम ! हे राम ! हे दुष्टनाशक श्रीकृष्ण ! यह बडीभारी भूँख हमको पीडित कररही है इस से तुम्हें उस को दूर करना योग्य है ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इसप्रकार गोपों ने, क्षुधा को दूर करने के निमित्त जिन की प्रार्थना करी है ऐसे वह देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनी भक्त ब्राह्मण की स्त्री के ऊपर प्रसन्न होतेहुए कहनेलगे कि—॥ २ ॥ अरे गोपों ! यहाँ से समीपही वेद के अर्थ का उपदेश करनेवाले ब्राह्मण, स्वर्गपाने की इच्छा से आङ्गिरस नामक सत्र कररहे हैं । ३ ।। सो तहाँ जाकर उन से भगवान् बलरामका और मेरा नामलेकर, हमारे भेजे हुए तुम,हमारे निमित्त उन से अन्न माँगो तब तुम्हारी भूँख दूर होगी ॥४॥ इसप्रकार भगवान् के आज्ञाकरेहुए वह गोप, तहाँ जाकर उन ब्राह्मणों के हाथ जोड़कर पहिले भूमि में दण्डे के समान लेटे और फिर भगवान् के कहने के अनुसार उन से अन्न की याचना करी ॥ ५ ॥ कहनेलगे कि—हे ब्राह्मणों ! तुम्हारा कल्याण हो, हम विनय करते हैं, इधर ध्यान दो, श्रीकृष्णजी की करीहुई आज्ञा को बजानेवाले और बलरामजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथक्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च तन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥ न ते यदो मिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदी-

ने, तुम्हारे पास भेजेहुए हम गोप हैं ऐसा तुम जानो ॥ ६ ॥ यहाँ से समीप में ही गौओं को चराते२ आयेहुए बलराम और श्रीकृष्ण भूँख से बहुत व्याकुल होरहे हैं सो इस समय तुम से अन्न मिले ऐसी इच्छा कररहे हैं इसकारण हे धर्मजाननेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! यदि तुम्हारे पास अन्न और उस के देने की श्रद्धा होय तो अन्न चाहनेवाले उन बलरामकृष्ण को अन्न देओ ॥ ७ ॥ यदि कहो कि—हमारे दीक्षित होने के कारण हमारे पास के अन्नको भक्षण करनेवाला दोषी होता है तो हे ब्राह्मणों सुनो—पशुयाग दीक्षा में और सोम के उद्देश से पशुका आलम्भन होने से पहिले उन दीक्षितों का अन्न भक्षण करनेवाला ही दोषी होता है और समय दीक्षितोंका अन्न भक्षण करनेवाला पुरुष दोषी नहीं होता है यह शास्त्र में प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥ इसप्रकार गोपोंके मुख से भगवान् की करीहुई याचनाको सुनकरभी उन ब्राह्मणों ने, मानों वह सुनीही नहीं इसप्रकार उधर कोचित्त नहीं दिया, क्योंकि—वह ब्राह्मण, स्वर्गादि के विषय में ही आशारखनेवाले, अनेकों क्लेशों से होनेवाले कर्मों में श्रद्धा करनेवाले, अज्ञानी और हमही ज्ञानियों में वृद्ध हैं ऐसा अभिमानकरनेवाले थे ॥ ९ ॥ अब, कर्मों के क्रम का उल्लंघन करके, देवताओं के उद्देश से कराहुआ अन्न दूसरे को कैसे दें, ऐसा कहो तो—हे ब्राह्मणों ! देश,काल चरुपुरोडाश आदि भिन्न पदार्थ, मन्त्र, तन्त्र (प्रयोग), ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और फल उत्पन्न करनेवाला धर्म यह सब जिन के स्वरूप हैं ॥ १० ॥ उन साक्षात् परब्रह्म, अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्ण का, मनुष्यशरीर पर 'हम ब्राह्मण बडे हैं ऐसा अभिमानरखनेवाले उन दुर्बुद्धि दीक्षितों ने 'यह मनुष्य है ऐसी दृष्टि से' आदर नहीं करा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब उनब्राह्मणों ने, अन्नदेते हैं ऐसा अथवा नहीं देते ऐसा भी नहीं कहा तब अन्नमिलने में निराशहुए उन गोपोंने, बलराम और श्रीकृष्णजी के समीप आकर सब वृत्तान्त कहसुनाया ॥ १२ ॥ वह गोपो का कहा हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिं ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतो विदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयतां ॥ ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥ निषिद्ध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥२०॥ यमुनो-

ब्राह्मणों का वर्त्ताव सुनकर वह जगदीश्वर भगवान्, हँसकर उन गोपों से कहनेलगे कि-कार्यार्थी पुरुषों को खेद नहीं करना चाहिये, कौनसे याचक का अपमान नहीं होता है? भक्तिहीन पण्डित भी मोह में पड़ते हैं ऐसी लोकों की स्थितिहै ॥१३॥ हे गोपों! अब तुम,मैं यहाँ आकर बलरामसहित भूँखा हूँ यह वृत्तान्त उन ब्राह्मणों की स्त्रियों के पासजाकर कहो तब वह तुम्हें, जितना चाहोगे उतना अन्न देंगी; क्योंकि--वह देहमात्र से तहाँ (यज्ञशालामें)रहतीहैं परन्तु बुद्धिसेमेरे समीप रहकर मेरे ऊपरपरमप्रेम करनेवालीं हैं ॥१४॥ तदनन्तर उन गोपोंने,फिर यज्ञमण्डप में जाकर तहाँ पत्नीशाला में बैठी हुई और आभूषण पहिने हुई ऋषिपत्नियों को देखकर नमस्कार करके नम्रताके साथ कहा कि- ॥ १५ ॥ हेविप्रपत्नियों! तुम्हें हम (गोप) नमस्कार करते हैं, तुम हमारे कथनको सुन लो; यहाँ से समीपही फिरते २ आये हुए श्रीकृष्णजीने, हमें यहाँ (तुम्हारे पास) भेजा है ॥ १६ ॥ गोप और बलराम सहित वह श्रीकृष्णजी, गौएँ चराते २ घरसे बहुत दूर यहाँ आगये हैं, उन को भूँख लगरही है इस से हम गोपों सहित भूँखेहुए उन को तुम अन्न दो ॥ १७ ॥ तब श्रीकृष्णजी समीपही आये हैं ऐसा सुनकर, उन को शीघ्रही अन्न परोसकर लेजाने के काम में वह अत्यन्तही घबड़ाई हुई सी होगईं; क्योंकि-वह कृष्णकी कथाओं से चित्त खिंचने के कारण नित्य उन के दर्शन के निमित्त उत्सुकरहती थीं ॥ १८ ॥ और बहुत काल से यश सुनने के कारण उत्तमकीर्त्ति भगवान् के विषैं चित्त लगाने वालीं वह सब स्त्रियें, रससुगन्ध आदि अनेकों गुणों से युक्त, भक्ष्य भोज्य लेह्य और चोष्य ऐसा चार प्रकार का अन्न भिन्न २ पात्रों में लेकर पति, भ्राता, बन्धु, और पुत्रों के निषेध करने परभी उनका कहा न मानकर, जैसे समुद्रकी ओर को नदियें जाती हैं तैसे श्रीकृष्णकी ओर को चलदीं ॥ १९ ॥ २० ॥ तिन स्त्रियों ने, अशोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ॥ विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं दृदृशुः स्त्रियः ॥२१॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासं ॥ २२ ॥ प्रायःश्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाऽभिमतयो विजहुर्नरेंद्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥२४॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किं ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहिता भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥ प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद्यातं

वृक्षों के नवीनपल्लवों से शोभायमान यमुना के उपवन में, गोपों को साथ में लेकर बलराम सहित विचरनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा ॥ २१ ॥ वह श्रीकृष्णजी, मेघकी समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, कण्ठ में पहरीहुई पुष्पों की माला, मस्तकपर धारण करेहुए मोर के पंख, शरीर पर लगाई हुई धातु और कानों में उरसे हुए कोमल पत्तों से नट की समान वेष धारण करनेवाले, मित्र के कन्धे पर हाथ रक्खेहुए, दूसरे हाथसे कमल को नचाने वाले, कपोलों पर घुँघराली अलकें लटकरही थीं और मुखकमल मन्दमुसकरान से युक्त था ॥ २२ ॥ हेराजन् ! जो स्त्रियें, पहिले अनेकों समय सुने हुए प्रियतम कृष्ण के उत्कर्षरूप, कानों को कृतार्थ करनेवाले कर्णभूषणों से श्रीकृष्ण के विषें निमग्नचित्त होरही थीं, उन्होंने, इससमय उनही श्रीकृष्ण का नेत्रों के द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश कर के और चिरकालपर्यन्त उन से आलिङ्गन करके, जैसे अहङ्कार की वृत्तियें सुषुप्ति के साक्षी प्राज्ञ को आलिङ्गन करके (उस में लय पाकर) ताप को त्यागती हैं तैसे संसार के ताप को त्यागा ॥ २३ ॥ उससमय घरपति आदि सब की आशा छोडकर केवल अपने दर्शन की इच्छा से तिसप्रकार प्राप्तहुई उन स्त्रियों को, सकल बुद्धियों के साक्षी उन भगवान् ने जानकर हास्ययुक्त मुखसे कहा कि— ॥ २४ ॥ हेमहाभाग्यवतियों ! तुम आई यह बडी सुन्दर वार्त्ताहुई, बैठो, हम तुम्हारा कौनसा कार्य करें ? क्योंकि— तुम्हारे आने में विघ्न होने पर भी उसका तिरस्कार करके तुम हमें देखने की इच्छा से आई हो, यह तुम्हें योग्यही है ॥ २५ ॥ वास्तव में ऐसाहै कि--अपना पुरुषार्थ देखनेवाले विवेकी पुरुष, आत्मा और सब से अधिक प्रिय मेरेविषें स्वयं ही फलकी इच्छा से रहित उत्तमप्रकार से अखण्डभक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ जिसमेरे सम्पर्क से ही प्राण, बुद्धि, मन, जाति, देह, स्त्री, पुत्र, धन, आदि प्रिय हुए हैं ऐसे मुझ से दूसरा भला कौन प्रिय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ॥ स्वसेतुं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥ गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुतो वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्यो भवेद्गतिररिंदम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च ये मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युंजाना अचिरान्मामम-

होगा ? २७ ॥ इसकारण मेरे दर्शनसे कृतार्थहुई तुम अब लौटकर यज्ञशाला में को ही चलीजाओ; क्योंकि तुम्हारे पति गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण हैं वह तुम तहाँ जाओगी तो तुम्हारे साथमें यज्ञ की समाप्ति करेंगे, इसकारण पतियोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त पीछेको ही लौटजाओ ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहनेपर वह ब्राह्मणी कहनेलगीं—हे विभो ! आप को ऐसा कठोर भाषण करना उचित नहीं है; किन्तु, तुम अपने प्रतिज्ञारूप ('न मे भक्तः-प्रणश्यति' मेरा भक्त नाश को नहीं प्राप्त है । 'न स पुनरावर्त्तते' उसका संसार में पुनरागमन नहीं होता है, ऐसे अपने) वाक्य को सत्य करो हम तो पति पुत्रादि सकल बान्धवों का तिरस्कार करके, तुम्हारी चरणसे अवज्ञा के साथ भी दीहुई तुलसी की माला को बड़े सन्मान के साथ मस्तकपर धारण करने के निमित्त (तुम्हारी दासी होने के निमित्त) तुम्हारे चरणों के समीप प्राप्त हुई हैं इसकारण अब हमें लौटकर जाना योग्य नहीं है ॥ २९ ॥ और अब, घर में से उनका कहा न सुनकर चली आईहुई हमें हमारे पति, माता, पिता अथवा पुत्र भी घर में नहीं घुसने देयँगे फिर भ्राता, जाति और मित्र आदि अपने घरों में हमें कहाँ से आनेदेयँगे ? अर्थात् कदापि नहीं आनेदेयँगे इसकारण हे कामलोभादि नाशक ! तुम्हारे चरणों के आगे जिनका शरीर पड़ा है ऐसी हमें अब तुम से भिन्न स्वर्गादि गतिभी प्राप्त न हो इसप्रकार तुम हमें अपने दासभाव का ही उपदेश दो ॥ ३० ॥ इसप्रकार प्रार्थना करनेपर श्रीभगवान् फिर कहनेलगे कि—हे स्त्रियों ! मैंने भक्तरूप से स्वीकार करके घर जाने को आज्ञा करीहुई तुम्हारी तुम्हारे पति, मातापिता, भ्राता, पुत्र, आदि तथा दूसरे जो सकलपुरुष हैं उन में से कोई भी निंदा नहीं करेंगे ऐसा कहकर और उन को प्रत्यक्ष देवताओं को दिखाकर कहनेलगे कि—देखो यह देवता भी तुम्हें घर जाने की सम्मति दे रहे हैं ॥ ३१ ॥ हे यज्ञपत्नियों ! इस संसार में जो मेरे अङ्गका सङ्ग होना है सो मनुष्यों के सुख के निमित्त वा अधिक स्नेह की वृद्धि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडंबयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञतां ॥ धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं वि-

निमित्तही नहीं है इसकारण तुम शीघ्र मेरे विषै मन को स्थापन करनेका ही यत्न करो ॥३२॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् की कहीहुई वह यज्ञपत्नियें, फिर यज्ञशाला में को चलीगईं और उन ऋषियों ने भी स्त्रियों के ऊपर कोई दोष न लगाकर अपनी२ स्त्रियों की सहायता से यज्ञकी समाप्ति करी ॥ ३३ ॥ उस यज्ञशाला में, पहिले जब स्त्रियें अन्न लेकर निकलकर गईथीं तब एक स्त्री को उस के पति ने पकड़कर रोकरक्खा था उस ने, पहिले भगवान् का जैसा स्वरूप सुना था उस के अनुसार मन में ध्यान करेहुए उन भगवान् के साथ मन से ही आलिङ्गन करके कर्म के अनुसार प्राप्तहुए शरीर को त्यागदिया अर्थात् वह अपना शरीर पति के समीप ही छोड़कर अपने चैतन्य करके भगवत्स्वरूप में जापहुँची (मुक्त होगई) ॥ ३४ ॥ इधर भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजी ने भी, स्त्रियों के लाकर दियेहुए उस चार प्रकार के अन्न का गोपोंको भोजन कराकर आपभी भोजन करा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार लीला के निमित्त मनुष्य शरीर धारनेवाले वह श्रीकृष्णजी, मनुष्यलोक का अनुकरण करतेहुए अपने स्वरूप की सुन्दरता से, वाणी की मधुरता से और नानाप्रकार के चरित्रों से गौ, गोप तथा गोपियों को क्रीड़ाकराने के निमित्त आपभी क्रीड़ा करनेलगे ॥३६॥ इधर यज्ञ मण्डपमें के वह ब्राह्मण, हमने जो मनुष्यों का अनुकरण करनेवाले विश्वेश्वर बलराम कृष्णकी आज्ञा को टालाहै इसकारण हम अपराधी हैं ऐसा मनमें विचारकर पश्चात्ताप करनेलगे॥ ३७ ॥ उन्होंने, स्त्रियोंकी कृष्ण में अति उत्कट भक्ति देखकर और अपने को उस भक्तिसे रहित जानकर पश्चात्ताप करा और अपनीही निन्दा करते हुए कहने लगेकि– ॥ ३८ ॥ जो हम अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णजी से विमुखहैं ऐसे हमारे शौक्र(उत्पत्तिसे हुए) सावित्र (गायत्रीके उपदेशसे हुए)और दैक्ष (यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेसेहुए) ऐसे तीनप्रकार के जन्मको और वेदविद्या को धिक्कार है, तथा ब्रह्मचर्यव्रत को धिक्कारहै, बहुज्ञपने (बहुतकुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरन्तभावं योऽविद्ध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥४१॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि॥४३॥ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः॥ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडंबनं॥४५॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत्॥ आत्मदोषापवर्गेण यद्याञ्चा जनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४७ ॥ स एष भगवान् साक्षाद्वि-

जानने) को धिक्कार है, कुलको धिक्कार है और हमारी यज्ञमें की चातुरी को भी धिक्कार है ॥ ३९ ॥ हमजो लोकोंको उपदेश करनेवाले, गुरु और ब्राह्मण होकर भी स्वार्थ में मोहित होरहे हैं इस से यह निःसन्देह प्रतीत होता है कि–भगवान् की माया योगियोंको भी मोह में डालनेवाली है ॥ ४० ॥ अहो ! स्त्रियोंको भी जगद्गुरु श्रीकृष्णजी के समीप जानेसे हमने रोका तौभी इनके ऊपर उनकी कैसी भक्तिहै देखो–जिसने गृहनामक मृत्यु पाशको तोड़डाला है ॥ ४१ ॥ इन स्त्रियोंको, ब्राह्मणों का जैसा उपनयन आदि संस्कार नहीं हैं, गुरुकुल में वसकर वेदाध्ययन आदि नहीं है, तप नहीं है, आत्म विचार नहीं है शुचिता नहीं है, तथा शुभकारी स्नान सन्ध्यादि कर्म नहीं है ॥४२॥ तथापि योगेश्वरों के भी ईश्वर उत्तमकीर्त्ति श्रीकृष्ण भगवान् के विषैं दृढ़ भक्ति है और वहभक्ति उपनयन आदि संस्कार युक्त होनेपर भी हममें नहीं है, देखो यह कैसे आश्चर्य की बात है ! ॥ ४३ ॥ इसकारण ही साधुओं की गतिरूप उन भगवान् ने, हम अपने स्वार्थ को न जाननेवाले और घरके कामोंमें निमग्न होनेके कारण विचार करने में असमर्थ हैं ऐसा गोपों के वाक्यों से हमें सूचित करा है यह उनका कितना अनुग्रह है ? ॥ ४४ ॥ नहीं तो चार प्रकार के पुरुषार्थ को देनेवाले और स्वयं पूर्ण मनोरथ तिन श्रीकृष्णजी को आज्ञा करके हमसे उन्हें क्या करना था ? तथापि उन प्रभुका, यह अन्न माँगना आदि केवल हमारे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त मनुष्य लीला मात्रहै॥४५॥देखो लक्ष्मीभी,दूसरे (सेवा करनेवाले)ब्रह्मादिकों को त्यागकर तथा अपनी चञ्चलता गर्व आदि दोषोंको छोड़कर केवल चरण सेवाके मनोरथ से जिनकी वारम्वार सेवा करती है उनकी जो दूसरों से अन्न माँगना सो केवल लोकोंको मोह करनेवालाही है ॥४६॥ देश, काल, भिन्न २ चरुपुरोडास आदि द्रव्य मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म यह सबही जिनकी मूर्त्तिहैं॥४७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यशृणमं ह्यपि मूढो न विद्म हे ॥ ४८ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यन्मायागोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥ स वै नः आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनां ॥ अविज्ञतानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥ इतिश्रीभा० म द० पू० यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन् गोपानिंद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि

वही यह योगेश्वर साक्षात् भगवान् विष्णु, यादवों में उत्पन्न हुए हैं, ऐसा यद्यपि हम ने बहुत स्थानों पर सुना है तथापि मूर्ख होने के कारण हमें उसका ध्यान नहीं रहता है ॥ ४८ ॥ इसप्रकार अपनी निन्दा करके अब भगवद्भक्त स्त्रियों की सङ्गति से अपनी कृतार्थता कहते हैं कि-अहो ! हम इसलोक में परम धन्य हैं, क्योंकि-हमारी ऐसी स्त्रियें हैं कि-जिनकी भक्ति की शक्ति से हमारी भी श्री हरिमें निश्चल बुद्धि हुई है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर भगवान् से क्षमा माँगते हैं कि-हेप्रभो ! जिनकी बुद्धि सर्वत्र अकुण्ठित है ऐसे अन्तर्यामी तुम श्रीकृष्णभगवान् को नमस्कार हो, जिनकी माया से बुद्धि मोहित होजाने के कारण हम कर्ममार्ग में भ्रमरहे हैं ॥ ५० ॥ वही सब के कारण,सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजी, आपकी माया से मोहितचित्त होने के कारण आप के प्रभाव को न जाननेवाले हमारे अपराध को क्षमा करने के योग्य हो ॥५१॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी की अवज्ञा करनेवाले वह दीक्षित ब्राह्मण, अपने अपराध को स्मरण करके उन बलराम और श्रीकृष्णजी के दर्शन की इच्छा करते थे परन्तु कंससे भय मानकर ' अर्थात् हम दर्शन करने को जायँगे तो कंस, मेरा शत्रु विष्णु यही है ऐसा जानकर यदि कदाचित् गोकुल का नाश करदेगा तो हमारा दूसरा अपराध होजायगा ऐसा मनमें विचारकर' उन के दर्शन करनेको नहीं गये किन्तु अपने आश्रममें ही उनकी भक्ति करतेरहे।५२।इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।*।।अब आगे चौवीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजीने अनेक प्रकारके कारणोंसे इन्द्रका यज्ञ छोडकर गोवर्द्धनके यज्ञ का उत्साह चलाया, और भूमिपर ब्राह्मणों के कर्मोंके गर्वको दूर करके स्वर्गपर देवताओंमें इन्द्रको हुए मदकानाश करनेके निमित्त श्रीकृष्णजीने उसकायज्ञबन्द करदिया यहकथा वर्णन करीहै।*। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! वह दीक्षित ब्राह्मण कंसके भय से श्रीकृष्णजी का दर्शन करने को न जाकर अपने आश्रम में ही भगवान् की भक्ति करते रहे; इधर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णजीन भी उसगोकुल में वसतेहुए एकसमय इन्द्रका यज्ञ करने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नंदपुरोगमान् ॥ २ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो वै उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद् ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्तस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोरिवद्वर्ज्यं आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिःस्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नंद उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिंद्रो मेघास्तस्यात्ममूर्त्तयः ॥ तेऽभिवर्षंति भूतानां प्राणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सि-

---

निमित्त उद्योग करतेहुए गोपो को देखा ॥ १ ॥ और सर्वसाक्षी सर्वात्मा वह भगवान् श्रीकृष्णजी, इन्द्रके यज्ञके निमित्त यह उद्योग होरहाहै ऐसा जानकर भी नम्रतासे विनय के साथ नन्दआदि वृद्धगोपों से बूझने लगेकि—॥२॥ हे पितः ! तुम्हारायह बडी गड़बडी का बडाभारी कौनसा उत्सव आगया है ! सो मुझ से कहो. यदि कहोकि—यह एक प्रकार का यज्ञ है तो इसका फलक्या है ? किस देवता के निमित्त से यह कर्म होरहा है ! और कौन इस यज्ञ को करसक्ता है ! ॥ ३ ॥ हे तात ! मुझे यह सब सुनने की बडी इच्छा होरही है इसकारण सुनने की इच्छा करनेवाले मुझ से वह सब कहो ! यदि कहोकि—यह गोपनीय हैं तो, इस व्यवहार में, जो सर्वत्र आत्मदृष्टि रखनेवाले साधु हैं, जिनकी दृष्टि में अपना और पराया नहीं है और जिनके मित्र, उदासीन तथा शत्रु नहीं हैं उन साधुओंका कोई भी कर्म गोपनीय नहीं होता है यदि कहोकि—साधुओं में और हम में थोडा सा भेद है तो—विचार के काम में शत्रु की समान उदासीन को भी त्यागदेय परन्तु जो मित्र होय उस को अपनी समान ही मानना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ कोई भी काम हो मित्रों के साथ विचार करके करे, दूसरों की देखादेखी न करे, क्योंकि--यह मनुष्य, जानकर और न जानकर भी कर्म करता है तिस में जानकर करनेवाले को उस कर्मका जैसा फल मिलता है तैसा बिनाजानें करनेवाले को नहीं मिलता है ॥ ६ ॥ सो यह तुम्हारा याग करने का उद्योग मित्रों के साथ शास्त्र के विचार से कराहुआ है अथवा लोक के व्यवहार के अनुसार आगया है यह सब बूझनेवाले मुझ से विचार के साथ कहिये ॥ ७ ॥ यह सुनकर नन्दजी ने कहाकि—हे कृष्ण ! यह भगवान् इन्द्र वर्षा के स्वामी हैं, यह मेघ उन की प्रियमूर्त्ति हैं, वह मेघ सकल प्राणियोंकी तृप्ति करनेवाले और जीवनका साधन जो जल तिसकी वर्षा करने वाले हैं॥८॥इसकारण हे तातकृष्ण ! हम तथा और भी मनुष्य, उन मेघोंके पति इन्द्र की, उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफल हेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नंदस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इंद्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ ॥ १३ ॥ अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्त्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्त्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथाकर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्त्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥

की करीहुई वर्षासे उत्पन्न हुए अन्न आदि पदार्थोंके द्वारा यज्ञ करके आराधना करतेहैं॥९॥ और उस यज्ञ के होने पर शेषरहे अन्न आदि से धर्म अर्थ कामकी सिद्धि होनेके निमित्त अपनी जीविका को चलाते है;सब ही उद्योग करनेवाले पुरुषोंको इन्द्रही वर्षाके द्वाराफल का सिद्धि करने वाला है, वर्षा के विना कुछभी सिद्ध नहीं होसकता ॥ १० ॥ इसकारण वृद्ध परम्परा से होते चले आये हुए धर्मरूप इसयागका जो पुरुष, काम से लोभ से, भय से वा द्वेष से त्याग करेगा वह कदापि सुख नहीं पावेगा ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि— हेराजन् ! ऐसे नन्दजी के तथा और भी गोकुलवासी गोपों के वचन सुनकर इन्द्रको क्रोधित करने के निमित्त अर्थात् क्रोध उत्पन्न करके इन्द्रको गर्वरूप पर्वत से नीचे उतारने के निमित्त वह श्रीकृष्णजी पितानन्दजी से इसप्रकार कहनेलगे ॥ १२ ॥ श्री भगवान् ने कहा कि हेतात ! सकलप्राणी जन्मान्तर में करे हुए कर्म से उत्पन्नहोतेहैं,कर्मों से ही लीन होते हैं; सुख, दुःख, भय वा कल्याण इनसबको कर्म करकेही पाते हैं ॥ १३ ॥ आपकर्मों से कल्पित और दूसरे का कर्मों का फल देनेवाला यदि कोई ईश्वर है तो वह—जो जिसकर्म को करता है उस कोही उसकर्म का फल देता है, कर्म न करने वाले को नहीं देता है ॥ १४ ॥ इसकारण कर्म सेही फलकी सिद्धि होती है और उस को अपने अधीन माननेवाला वह इन्द्र, बकरी के गले के स्तनकी समानहै और पूर्व जन्म के संस्कार से ही मनुष्यों से होनेवाले कर्म वा उन के सुखदुःख आदि फलोंको उलटने में समर्थ नहीं है, तिस इन्द्रका यज्ञ करने से अपने २ कर्म के अनुसार फलपानेवाले लोकों को कौन लाभ है? ॥ १५ ॥ यह सकल प्राणी पुरातन संस्कारों केही अधीन है वह अपने तिस स्वभाव केही अनुसार धर्म अधर्मआदि कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, इसप्रकार देवता, असुर और मनुष्यों सहित यह सकल जगत, स्वभाव में ही रहरहा है ॥१६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विदते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्त्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम्॥२१॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यप्ययहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्योऽन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ॥ प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्वयं

तिस से स्वभाव करके उत्पन्न होनेवाले कर्म सेही यह प्राणी बडे छोटे (देवमनुष्य आदि) शरीरों को पाकर कर्मकी समाप्ति होते ही उन को त्याग देता है और शत्रु, मित्र, उदासीन, गुरु तथा ईश्वर यह सब कर्मयोग सेही होते है ॥ १७ ॥ इसकारण अपने २ पुरातन संस्कारों के अनुसार अपने २ वर्णाश्रमआदि कर्म करनेवाला पुरुष कर्म का ही सम्मान करे अथवा यह प्राणी जिस से सुख के साथ जीवित रहे वही इसका देवता है अर्थात् उसके ही उद्देश से कर्म करे ॥ १८ ॥ जो पुरुष, एक देवता का, जीवन का उपाय मानकर सेवा करता है और फिर उस को न मानकर किसी दूसरे देवता की सेवा करता है वह पुरुष उस देवता से ' जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पति को त्यागकर जार पुरुष से कल्याण नहीं पाती है तैसे ' कल्याण नही पाता है ॥ १९॥ ब्राह्मण वेदाध्ययन आदि करके अपनी वृत्ति चलावे, राजा भूमि की रक्षाकरके, वैश्य (आगे कही हुई) वार्त्तावृत्ति करके और शूद्र द्विजों की सेवा करके अपनी वृत्ति चलावे ॥ २० ॥ उस में वैश्य की जो वार्त्तावृत्त सो, खेती, व्यापार, गौओं की रक्षा और चौथा व्याज का देनलेन करना यह चार प्रकार की कहीहै; तिस हम गोपाल निरन्तर गौओंकी सेवा करके वृत्ति को चलानेवाले हैं॥२१॥ सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण क्रमसे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और लय के कारणहैं उनमें रजोगुण से स्त्रीपुरुष का सम्भोगहोकर यह नानाप्रकार का देव मनुष्य आदि जगत् उत्पन्नहुआ है ॥२२॥ रजोगुण केही प्रेरणा करेहुए मेघ, सर्वत्र नदी समुद्र आदिकोंमें भी जलकी वर्षाकरते हैं उन जलों से ही प्रजाओं की अन्नकी उत्पत्ति आदि कार्य सिद्धि होती है, इस में इन्द्र क्या करता है ? कुछ भी नहीं ॥ २३ ॥ तथापि अपना योगक्षेम चलने के निमित्त देवता की अपेक्षा है, यदि ऐसा कहो तो हे तात ! जिन की रक्षाके निमित्त इन्द्र देवता चाहिये वह हमारे नगर नहीं हैं, देश नहीं हैं, गाँव नहीं हैं और घरभी नहीं हैं फिर हम निरन्तर जङ्गलरूप घर वाले होने के कारण वन में पर्वतों पर रहनेवाले हैं ॥२४॥ इस कारण तुम जीवन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः॥ यं इंद्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः॥२५॥ पच्यंतां विविधाः पाकाः सूपाताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सदधिदोहश्च गृह्यतां ॥ २६ ॥ हूयतामग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचांडालपतितेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः॥२८॥ स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ । एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ॥ प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णंत तद्वचः॥३१॥तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥३२॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम्॥३३॥ अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥

कारणरूप गौओं का और भूमिपर के प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मणों का और कन्द मूल, जल तृण आदि के द्वारा निर्वाह चलानेवाले गोवर्द्धन पर्वत का यज्ञ आज से प्रारम्भ करो, इंद्र के यज्ञकी जो सामग्री हैं उन से ही इस यज्ञ को करो ॥ २५ ॥ खीर से आदि ले मूँगकी दालपर्यंत नानाप्रकार के स्वयम्पाक करो, मोहनभोग, पूए, जलेबी और सकल गोरसोंको लेओ ॥ २६ ॥ वेद के जाननेवाले ब्राह्मणोंसे आहवनीय आदि अग्नियोंमें घृत आदिका हवन कराओ,तुम इन ब्राह्मणों को छहों रसयुक्त अन्न देओ और धेनुसहित दक्षिणा देओ दूसरे भी श्वान, चाण्डाल, पतितपर्यंत सब दीनों को योग्यताके अनुसार अन्न आदि दो, और गौओं को कोमल तृण देकर गोवर्द्धन पर्वत को पक्वान्न आदि का बहुत सा बलि (नैवेद्य) समर्पण करो ॥ २८ ॥ और तुम आभूषण पहिनकर, भोजन करके, शरीरपर उबटना आदि लगाकर तथा उत्तम वस्त्र पहिनकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा गोवर्द्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करो ॥२९॥ हे तात ! मेरी सम्मति में तो ऐसा कर्म करना चाहिये यदि तुम्हें रुचे तो करो, यह मेरा कहा हुआ यज्ञ, गौ, ब्राह्मण, पर्वत और मैं सब को प्रिय होगा ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेराजन् ! इन्द्र का गर्व हरनेवाले कालरूप भगवान् श्रीकृष्णजीके कहेहुए वचन को सुनकर नन्द आदि गोपोंने उस को आदर के साथ स्वीकार करा ॥ ३१ ॥ और जैसा श्रीकृष्णजी ने कहा था वैसा ही सब करा अर्थात्—ब्राह्मणों से बड़े आदर के साथ पुण्याहवाचन कराकर इन्द्रयाग के निमित्त इकट्ठी करीहुई पक्वान्न आदि सामग्री से गोवर्द्धन पर्वत को बलि देकर ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा और भी सबों को अन्न देकर गौओं को यथेच्छ कोमल घास दी और ब्राह्मणोंके आशीर्वाद लेकर उन नन्द आदि गोपों ने और अलङ्कार धारण करनेवाली कृष्णके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोप्येश्च कृष्णवीर्याणि गायत्यः सद्रिजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रंभणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरिबलिमादद्वृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मनात्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ॥ हंति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवां ॥ ३७ ॥ इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नंदादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चांत-

चरित्र गाती हुई गोपियों ने सब गोधन को आगे करके बैल जुते हुए छकड़ों के ऊपर बैठकर गोवर्द्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी तो, गोपों को, गोवर्द्धन में 'यह देवता है ऐसा' विश्वास उत्पन्न करानेवाला दूसरा ही एक स्वरूप धारण करके, भव्यस्वरूप होते हुए गोवर्धन के शिखरपर रहे और उन्हों ने, मैं पर्वताभिमानी देवता हूँ ऐसा कहकर गोपों को अर्पण कराहुआ बडाभारी बलि भक्षण करा ॥ ३५ ॥ इधर श्रीकृष्ण ने गोपोंसे कहाकि—अरे ! आश्चर्य देखो—तुमने बहुतवार इन्द्र की पूजा करी परन्तु वह ऐसा मूर्त्तिमान् कभी देखने में नहीं आया; इस गोवर्द्धन पर्वत ने तो अपना प्रत्यक्षरूप दिखाकर हमारे ऊपर अनुग्रह करा और हमारा दिया हुआ बलि भक्षण करा यह पर्वत इच्छानुसार रूप धारण करके अपना तिरस्कार करने वाले वन में के मनुष्यों को सिंह व्याघ्र सर्प आदि के रूप से मारता है इस से अपने और गौओं के कल्याण के निमित्त आओ हम इस को नमस्कार करें; ऐसा कहकर गोकुलवासी सब पुरुषों के साथ उन कृष्ण ने आप ही तिस नवीन स्वरूप धारण करे हुए अपने को नमस्कार करा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजी के प्रेरणा करे हुए वह नन्द आदि गोप, गोवर्द्धन पर्वत, गौ और ब्राह्मणों का यथाविधि यज्ञ करके श्री कृष्णजी सहित गोकुलमें चलेगये॥ ३८॥इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें चतुर्विंश अध्याय समाप्त॥*॥अब आगे पचीसवें अध्यायमें गोकुल का नाश करने के निमित्त इन्द्र वर्षा करने लगा तब प्रभु श्रीकृष्णजी ने, गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर उस धाराओं की वर्षा से गोकुल की रक्षा करी यह कथा वर्णन करी है ॥*॥श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! उससमय गोपोंने, मेरी पूजा त्यागदी ऐसा जानकर, देवताओं का राजा इन्द्र, श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं उन नन्दादि गोपोंपर क्रुद्धहुआ ॥ १ ॥ और क्रुद्धहुए तथा मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारिणां ॥ इंद्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनं ॥ ३ ॥ यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नाम नौभिः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षंति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मापितात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तंभं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नंदगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबंधनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनंतः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना वर्षपुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधारा मुंचत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥

ही ईश्वर हूँ ऐसे अभिमानी तिस इन्द्र ने, प्रलयकारी साम्वर्त्तकनामक मेघोंके गण को गोकुल के नाश की आज्ञा करी और यह वाक्य भी कहाकि-॥ २ ॥ अहो ! जङ्गल में रहनेवाले गोपों की धनसम्पदा के गर्व का वैभव कैसा आश्चर्यकारी है, देखो-इन गोपों ने मर्त्य (मरणधर्मयुक्त) कृष्ण का आश्रय करके मुझ अमर देवता का तिरस्कार करा है ॥ ३ ॥ जैसे कोई अज्ञानी पुरुष, आत्मा का स्मरण करानेवाली विद्याको त्यागकर, तारने में असमर्थ नाममात्र से ही नौका की समान प्रतीत होनेवाले कर्मरूप यज्ञों से संसारसमुद्र को तरजाने की इच्छा करते हैं तैसे ही बहुत बोलनेवाले, बालक, उद्धत और अज्ञानी होकर अपने को ही पण्डित माननेवाले इस मनुष्य कृष्णका आश्रय करके गोपों ने मुझ देवता का अपमान करा है ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस सम्पत्ति से मत्तहुए और कृष्णने जिनके शरीर फुलाये हैं ऐसे गोपोंके सम्पत्ति के मदयुक्त गर्व को तुम नष्ट करदो, इनके गौ आदि पशुओं का संहार करडालो ॥ ६ ॥ भय माननेवाले उन मेघों से फिर कहा कि-मैं भी ऐरावत हाथीके ऊपर बैठकर परमपराक्रमी देवताओं के साथ नन्दकी गोकुलका नाश करने के निमित्त गोकुल में आता हूँ ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार इन्द्र के आज्ञा करेहुए और ' कहीं प्रलय नही करडालें इसकारण पहिले जिन्हें बाँध रक्खा था वह,बन्धन से छूटेहुए मेघ, नन्द की गोकुल को धाराओं की वर्षाओं से बड़ी पीडा देनेलगे ॥ ८ ॥ ॥ बिजलियों से प्रकाशित होनेवाले, वज्रपात के साथ गर्जने वाले, बडे तीव्र आवह प्रवह आदि प्रलयकारी और पवनों के प्रेरणा करेहुए वह मेघ, जलके ओलों की वर्षा करनेलगे ॥ ९ ॥ वह मेघ, एकसमान खम्भकी समान मोटी वर्षाकी धाराएँ छोडने लगे तब पानीके प्रवाहों से डूबीहूई भूमि ऊँचीनीची कुछ नहींदीखी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्त्ता गोविंदं शरणं ययुः ॥ ११ ॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्वणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयोगे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ नहि तद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव

॥ १० ॥ उस समय, गौ आदि पशु गोप और गोपियें, अतिवर्षा से, अतिवायु से, और अतिशीत से थर२काँपतेहुए गोविन्द की शरण गये ॥ ११ ॥ वर्षा से पीडिहुई और थर २ काँपनेवाली गौएँतो अपने मस्तक और बछडोंको शरीरसे ढककर भगवान् के चरणके समीप पहुँचीं ॥ १२ ॥ गोप और गोपी कहने लगीं कि—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हेप्रभो ! हे भक्तवत्सल ! जिनके नाथ तुमही हो ऐसी गौओंके कुलोंकी और हमारी, क्रुद्ध हुए देवसे तुम्हें ही रक्षा करनी उचित है ॥ १३ ॥ तब प्रार्थना करने से पहिले ही ओलोंसहित वर्षाके पडने से ताडित होनेके कारण गोकुल को अचेतनसा (वेहोशसा) हुआ जान कर भगवान् श्रीहरि ने, 'यह क्रुद्धहुए इन्द्रका कार्य है' ऐसा जाना ॥ १४ ॥ यह समझाकि—वर्षाकाल नहोतेहुए अतिभयङ्कर, बडीपवन से युक्तऔर जिसमें पत्थरही अधिकहैं ऐसीवर्षा, 'हमने भागनहीं दिया इसकारण' गोकुल के नाश के निमित्त इन्द्र कररहा है ॥ १५ ॥ अच्छा, अब इसका उपाय मैं अपनी शक्ति से उत्तम प्रकार करता हूँ और मूर्खपने से लोकों का स्वामी मैं ही हूँ ऐसा अभिमान रखनेवाले इन्द्रादिलोकपालों का श्रीमदरूप अभिमान दूर करता हूँ ॥ १६ ॥ सत्त्वगुणी वा भक्तिमान् भी देवताओं को 'हमही ईश्वर हैं ऐसा' अभिमान होना योग्य नहीं है परन्तु इससमय वह दुष्ट होगए हैं इसकारण मुझ से उनका मानभङ्ग होने पर यह उन के ऊपर अनुग्रहही होगा ॥ १७ ॥ इसकारण मैं अपनी शक्ति से, जिसका रक्षक मैं ही हूँ और जिस को मैंने अपना कहा है उस अपनी शरण में आये हुए गोकुल की रक्षा करता हूँ, अब मेरा यह ही सङ्कल्प है ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर उन श्रीकृष्णजीने, स्वाभाविक लीला में एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर जैसे छोटा सा बालक छत्रक को धारण करलेता है तैसे दाहिने हाथ पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालकः ॥ १९ ॥ अथाह भगवान् गोपान् हेऽब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्त्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि नः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथाऽवकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधारद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥ २४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशम्योपरतम् गोपान् गोवर्द्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदपायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि

धारण कर लिया ॥ १९ ॥ फिर वह भगवान् गोपों से कहने लगे कि हेमातः ! हेपितः हेगोकुलवासियों ! तुम सब अपने २ गोधन सहित सुख के साथ कुछ न घबडाकर इस पर्वत की खकोडल में घुसजाओ ॥ २० ॥ इस खकोडल में रहनेवाले तुम मेरे हाथ पर से पर्वत के नीचे गिरने की मनमें कुछ भी शङ्का न करो, अब तुम पवन और वर्षा से भी मन में भय मतमानो, क्यों कि उस से तुम्हारी रक्षा मैंने करली है ॥ २१ ॥ ऐसा कहने पर मन में विश्वास को प्राप्तहुए वह गोप, भगवान् के कहने के अनुसार अपना २ सामान गाडियों के ऊपर रखकर गोधनसहित और सेवक पुरोहित आदि सहित जैसे घिचपिच न होय तिस प्रकार पर्वत की उस खकोडल में घुसगये ॥ २२ ॥ तदनन्तर कृष्णदर्शन के आनन्द से, क्षुधा तृषा के दुःख और सुख की इच्छा को त्यागकर उन गोकुलवासी पुरुषों के देखते हुए वह श्रीकृष्णजी, पर्वत को धारण करे रहे और वह सातदिन पर्यन्त उस स्थान से हिले भी नहीं ॥ २३ ॥ कृष्ण की ऐसी सामर्थ्य देख कर अतिविस्मित, गर्वरहित और जिस के मनका विचार भङ्गहुआ है ऐसे इन्द्रने, अपने मेघों को निषेध करा ॥ २४ ॥ तब आकाश मेघरहित सूर्य के उदय से सहित हुआ और भयङ्कर पवन तथा वर्षा शान्त हुई, ऐसा देखकर गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णजीने सब गोपों से कहा कि ॥ २५ ॥ अरेगोपों ! अब पवन और वर्षा शान्त होगई, नदियों का जल भी बहुत थोडा होगया, इससे अब तुम अपनी २ स्त्रियें, गोधन और बालकों सहित इस खकोडल में से बाहर निकलो, फिर भय प्राप्त होगा ऐसा मन में किञ्चिन्मात्र भी सन्देह न करो ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह सब गोप, अपना २ सामान गाडियों पर रखकर अपने २ गोधन को लेकर स्त्री, बालक और वृद्धों सहित धीरे २ बाहर निकले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः। गोप्यश्च संस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गंधर्वपतयस्तुंबुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वी-

॥ २७ ॥ तदनन्तर भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजी ने भी सकललोकों के देखते हुए सहज में ही उस पर्वत को उसीस्थान में पहिले की समान रखदिया ॥ २८ ॥ फिर उन रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णजीको, प्रेम के वेग में भरेहुए गोकुलवासी सकल लोक, यथोचित आलिङ्गन आदि करके मिले तथा गोपियें भी स्नेहयुक्त आनन्द से दही, अक्षत और जल से पूजन करके उत्तम आशीर्वाद देनेलगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्द और बलवानो में श्रेष्ठ बलरामजी यह सब, स्नेह से व्याकुलचित्त होतेहुए श्रीकृष्णको हृदय से लगाकर आशीर्वाद देनेलगे ॥ ३० ॥ उससमय, श्रीकृष्ण जी के, इन्द्र का निग्रह करके गोकुल की रक्षा करनेपर भी स्वर्गलोक में रहनेवाले देवगण साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारण खिन्न नहीं हुए किन्तु मन में सन्तुष्ट हुए और वाणी से स्तुति करके शरीर से फूलों की वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उस समय स्वर्ग में देवताओं के बजाये हुए शंख और दुन्दुभि बजनेलगे, नारद तुम्बुरु आदि गन्धर्वों के अधिपति गाने लगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर प्रेमपूर्ण गोपों से घिरे हुए वह श्रीकृष्णजी, बलरामजी के साथ तहां से गोकुल में को चले गये; उस समय प्रेम भाव से श्रीकृष्ण को मन में प्रिय माननेवालीं गोपियें भी, उन श्रीकृष्णजी के उस गोवर्द्धन को उठाने की समान और भी चरित्रों को गाती हुईं आनन्द के साथ गोकुल में को चलीं गईं ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे छब्बीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण के अद्भुत कर्म देखकर विस्मित हुए गोपों से नन्दजी ने गर्ग ऋषि का कथन कहकर श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य वर्णन करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इस गोवर्द्धन को उठाने की समान और भी, श्रीकृष्णजी के अमानुष कर्म देखकर, उन श्रीकृष्ण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

र्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥३॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य मासस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्त्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च

प्रभाव न जानने के कारण आश्चर्य में हुए गोप, नन्दजी के पास जाकर कहने लगे कि— ॥१॥ हे नन्दजी ! इस कृष्ण बालक के यह सब ही कार्य आश्चर्यकारी हैं तिस से यह हम ग्रामीण गोपों में, अपने को अनुचित जन्म पाने को कैसे योग्य होसक्ते हैं ? ॥२॥ जो सात वर्ष की अवस्था का बालक (कोई भी बड़ा कर्म करने को असमर्थ) होकर जैसे गजराज सूँड से कमल उखाडकर धारण करके खड़ाहोजाता है तैसे एक हाथ से लीला करके गोवर्द्धन पर्वत को उखाडकर इसने कैसे धारण करा ? ॥ ३ ॥ नेत्रों को मूँदेहुए (बहुत ही छोटे) इस ने महाबलवाली पूतना का स्तन, प्राणों सहित, जैसे काल शरीर के आयु को खैंचलेता है तिसीप्रकार कैसे पीलिया ? ॥ ४ ॥ गाड़े के नीचे सोकर ऊपर को चरण करनेवाले और तीनमास की अवस्थावाले रोते हुए इस कृष्ण ने चरण के अँगूठे से ढकेला हुआ गाड़ा कैसे उलटपडा ? ॥ ५ ॥ एकवर्ष के, आँगन में बैठे हुए (चलने में भी असमर्थ) और तृणावर्त्त दैत्यके द्वारा आकाश में गये हुए इन कृष्णने, गला दबाने से घबडाए हुए उस दैत्य को कैसे मारा? ॥ ६ ॥ एकसमय माखन की चोरी करने पर क्रोध में हुई यशोदा माता ने इसे ऊखल में बाँधदिया था तब हाथ और घुटुओं से रेंगते २ अर्जुन के दो वृक्षों के मध्य में पहुँचे हुए इसने, वह अर्जुन के वृक्ष न जाने कैसे उखाड़डाले ? ॥ ७ ॥ एक समय बलराम सहित और बालकों से घिरेहुए इसने वन में बछडों को चराते हुए, अपने को चोंच से मारने के निमित्त, बगुले के वेष से आये हुए शत्रु (दैत्य) की नीचे और ऊपर की दोनों चञ्चुपुटों को हाथों से पकड़कर नजाने कैसे फाड़डाली ॥ ८ ॥ तथा अपने को मारने की इच्छा से, बछडों में बछडे के रूप से घुस आने वाले वत्सासुर को सहज में ही मारकर, उसका शरीर कैथ के वृक्षपर फैंकके उस से कैथों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलंबं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्निः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ॥ नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिको मिथः ॥ १३ ॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च

न जाने कैसे गिराया? ॥ ९ ॥ तथा बलराम सहित विचरतेहुए इस ने धेनुकासुर को और उस के बान्धवों को मारकर पकेहुए ताडके फलों से युक्त तालका वन औरों के प्रवेश करनेयोग्य निर्भय कैसे करा ? ॥ १० ॥ बल करके शोभायमान बलरामजी से प्रलम्बासुर को मरवाकर अपनेआप गोकुल के पशुओं को और गोपों को जङ्गल में की दौं की अग्नि से कैसे बचाया? ॥ ११ ॥ और अतिक्रूर विषैले कालिय सर्प को बलात्कार से दण्ड देकर, गर्वरहित हुए उसको, यमुनाके कुण्डे में से निकालकर इस कृष्ण ने, यमुना नदी निर्विष जलवाली कैसे करी ? ॥ १२ ॥ हे नन्दजी ! पशुपक्षियों सहित हम सब गोकुलवासी पुरुषोंका इस तुम्हारे पुत्र में बढ़ाहुआ प्रेम छुटना बड़ा कठिन है तैसे ही इसका भी प्रेम हमारे ऊपर स्वाभाविक ही है, सो क्या यह हम सबों का आत्मा है ? ॥ १३ ॥ हे गोकुलराज ! कहाँ सातवर्ष का बालक ! और कहाँ बडेभारी पर्वत को उठाना ! इस से ईश्वरके विनाइनकर्मों का होना कठिन है सो तुम्हारे पुत्र में हमें, यह परमेश्वर है, ऐसी शङ्का होती है॥ १४ ॥ ऐसे गोपों के वचन को सुनकर नन्दजी कहनेलगे कि—हे गोपों ! मेरा वाक्य सुनो और उससे, मेरे बालकके विषयमें जो तुम्हें शङ्का होरही है तिसको दूर करो इस पुत्र के विषय में गर्गजी ने जो तुम से कहा है वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १५ ॥ प्रत्येक युग में अवतार धारनेवाले इस तुम्हारे पुत्रका स्वेत, लाल और पीला यह तीन वर्ण थे और अब यह कृष्णता को प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥ यह श्रीमान् तुम्हारा पुत्र, पहिले एकसमय वसुदेव का पुत्रहुआ था इसकारण यह जाननेवाले सत्पुरुष इस को वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ हे नंदजी !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥ एष वः श्रेय आधास्यत् गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ २० ॥ ये एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रियाः कीर्त्याऽनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥ इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वर्षाश्मवर्षानिलैः सी-

तुम्हारे पुत्र के गुण और कर्मों के अनुसार बहुत से नाम और रूप हैं, उन को मैं जानता हूँ, साधारण पुरुष नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ यह पुत्र तुम्हें परलोक में सुखदायक होगा और इस लोक में भी तुम्हें, सकल गोपों को और गौओं को यह आनन्द देनेवाला होगा इस से तुम, जिनको दूसरा दूर न करसके ऐसे सकल दुःखों को अनायास में तर जाओगे ॥ १९ ॥ हे गोकुलपते ! पहिले भूमिपर कोई राजा नहीं रहा था तब चोरों से पीड़ित हुए और इन श्रीकृष्णजी के रक्षा करे हुए साधुओं ने, बल आदि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर अनायास में चोरों को जीत लिया था ॥ २० ॥ जो अनेकों जन्मों में पुण्य करनेवाले महाभाग पुरुष, इस के ऊपर प्रीति करते हैं उन का तिरस्कार शत्रु, जैसे विष्णु के रक्षा करे हुए देवताओं का तिरस्कार दैत्य नहीं कर सक्ते हैं तैसे नहीं करसक्ते हैं ॥ २१ ॥ इस कारण हे नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र, गुणों से सम्पत्ति से कीर्त्ति से और पराक्रम से नारायण की समान है नन्दजी कहते हैं—हे गोपों ! ऐसा गर्गजी ने मुझ से कहा है इस कारण इस के कर्मों में आश्चर्य माननेकी बात नहींहै।२२। ऐसा मुझ से कहकर गर्ग ऋषि अपने स्थान को चले गये तब से मैं वैसा ही मानता हूँ; परन्तु अब भक्तजनों के दुःख दूर करनेवाले इस को, यह साक्षात् नारायण का अंश है ऐसा मानता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार गर्गगीतरूप नन्दजी का कथन सुनकर, अचिन्त्यपराक्रमी उन श्रीकृष्णजी का प्रभाव जिन्हों ने देखा और सुना है ऐसे वह गोप, नन्दजी का और श्रीकृष्णजी का सत्कार करके आनन्दयुक्त और आश्चर्यरहित हुए ॥ २४ ॥ अब श्रीकृष्णजी की प्रीति की प्रार्थना करते हैं कि—मेरा यज्ञ बन्दकर दिया इस कारण से क्रोध करके गोकुल का नाश करने के निमित्त इन्द्र के वर्षा करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दत्पालैपशुस्त्रि आत्मैशरणं दृष्ट्वाऽनुकंप्युत्स्मयन् ॥ उत्पाट्यैककरेणैशैलमबलो लीलोच्छिलींध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० षड्विंशाततमोऽध्यायः ॥२६॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्द्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥ विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इंद्रः प्राह कृतांजलिः ॥ ३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता

लगनेपर, वज्रपात, ओलों की वर्षा और तीव्रवायु से जिस में के गोपाल, पशु और स्त्रियें दुःखित हुए हैं और जिन के रक्षक आप ही हैं ऐसे गोकुल को देखकर दयालु हुए और हँसकर गोवर्द्धन को उठाने की छटा धारण करनेवाले जिन श्रीकृष्णजी ने, एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर, जैसे छोटा सा बालक लीला में छत्रक को उठाकर धारण करता है तैसे धारण करके गोकुल की रक्षा करी वह इन्द्र का गर्व हरनेवाले और गौओं के इन्द्र (स्वामी) श्रीकृष्ण, हम वक्ता श्रोताओं के ऊपर प्रसन्न हों ॥२५॥इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में षड्विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे सत्ताईसवें अध्याय में श्रीकृष्ण का बड़ाभारी प्रभाव देखकर कामधेनु और इन्द्र ने श्रीकृष्ण का गौओं के और गोकुल के आधिपत्य में जो अभिषेक करा तिस के उत्सव का वर्णन करा है॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन्! श्रीकृष्णजी के गोवर्द्धन पर्वत को धारण करनेपर और धाराओं की वर्षा से गोकुल की रक्षा करनेपर स्वर्ग से इन्द्र और गोलोक से कामधेनु यह दोनों ही श्रीकृष्णजी के समीप आये ॥ १ ॥ उन में इन्द्र ने, आकर क्या किया सो कहते हैं कि-अपराध करने के कारण लज्जित हुए इन्द्र ने, एकान्त में श्रीकृष्णजी के समीप जाकर सूर्य की समान तेजयुक्त अपने किरीट से उन भगवान् के चरणों को स्पर्श करके नमस्कार करा ॥ २ ॥ असीमतेजयुक्त श्रीकृष्ण का गोवर्द्धन का उठाना आदि और पूतना को मारना आदि प्रभाव जिसने देखा और सुना है इस कारण 'मैं ही त्रिलोकी का राजा हूँ ऐसा' जिस का मद नष्ट होगया है वह इंद्र हाथ जोड़कर बोला॥ ३ ॥ इन्द्र ने कहा कि-हे देव! तुम्हारा स्वरूप एक, सर्वज्ञ और जहां रजोगुण और तमोगुण नाम को भी नहीं हैं ऐसा शुद्ध सतोगुणी है; तुम्हें हमारी समान दीखनेवाला यह माया का कार्यरूप अज्ञान से उत्पन्न हुआ संसार नाम मात्र को भी नहीं है ॥४॥ जब तुम्हें अज्ञान और अज्ञान का कार्यरूप देह का सम्बन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः ॥ तथापि दण्डं भगवान् बिभर्त्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥५॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदंडः ॥ हितांय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनां ॥६॥ ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वार्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥७॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षन्तुं प्रभोऽर्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नेम-

ही नहीं है तो अज्ञान के करेहुए और फिर दूसरा देह उत्पन्न होने के कारण और अज्ञानी पुरुषों का आश्रय करके रहनेवाले लोभ मोह आदि कहां से होंगे ? तथापि हे ईश्वर ! ऐश्वर्य आदि गुणों से पूर्ण तुम, धर्म की रक्षा के निमित्त और दुष्टों को दण्ड देने के निमित्त उन का मान भङ्ग करनारूप दण्ड को धारण करते हो ॥ ५ ॥ यदि कहो कि—मुझ गोप के पुत्र में तुझे दण्ड देने की शक्ति कहां से आई ?, कारण क्या है ; और मैंने दण्ड ही कौन सा धारण करा है ? तो—हे प्रभो ! तुम सर्व जगतों को उत्पन्न करनेवाले उपदेश देनेवाले गुरु और आज्ञा करनेवाले हो इस कारण तुम्हें दण्ड धारण करने का कारण है, तुम दुस्तर कालरूप हो इस कारण तुम दण्ड धारण करने को समर्थ हो; सो तुम दण्ड धारण करके, जगदीश्वरपने का अभिमान करनेवाले जो हम तिनका हित करने के निमित्त अपने लीलावतारों से क्रीड़ा करते हो; तुम्हारी लीलाही मानभङ्ग करके हमारा हित करती है ॥ ६ ॥ जो मेरी समान अज्ञानी हो कर जगदीश्वरपने का अभिमान रखते हैं वह भयके समय भी निर्भय रहनेवाले तुम्हें देख कर, तत्काल जगदीश्वरपने के अभिमान को त्यागकर गर्वरहित होतेहुए तुम्हारी भक्ति रूप मार्ग से सेवा करते हैं, इससे तुम्हारी लीला दुष्टोंको भी दण्डरूप ही है ॥ ७ ॥ इस प्रकार भगवान् के स्वरूप का और अभिप्राय का वर्णन करके अब क्षमा करनेकी प्रार्थना करता है कि—हेप्रभो ! ऐसे जगत्प्रसिद्ध तुम, वर्षा करके अपराध करनेवाले, ऐश्वर्य के मद में भरकर तुम्हारे प्रभाव को नजानने वाले और मूढ़चित्त जो मैं तिसके अपराध की क्षमा करनेको समर्थहो हे ईश्वर ! अब फिर ऐसी दुष्ट बुद्धि मुझे कभीभी प्राप्त नहोय ॥ ८ ॥ यदि कहोकि ऐसा बडा अपराध कैसे सहाजाय ? तो—हे अधोक्षज देव ! इस भूमिपर हुआ यह तुम्हारा अवतार आप भार होकर बहुत से भारों को उत्पन्न करनेवाली सेनाओं के अधिपति राजाओं का नाश करने के निमित्त और तुम्हारे चरण की सेवा करनेवाले साधुओं के कल्याण के निमित्त है इसकारण तुम,तुम्हारा सेवक होकरभी अत्यन्त अपराध क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने॥वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः॥१०॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्त्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तंभो हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगंभीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन्मखभंगोनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रियां भृशम् ॥ १५ ॥ मां मैश्वर्यश्रीमदांधो दंडपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तंभवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाहं सुरभिः कृष्णमभिषिच्य मनस्विनी ॥ स्वसुतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्ण कृष्ण म-

---

रनेवाले मेरे अपराध को क्षमाकरो ॥ ९ ॥ सर्वान्तर्यामी, परिमाण रहित, वासुदेव और यादवोंके अधिपति तुम भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार हो॥१०॥यदि कहोकि मैं क्या यादव हूँ? सोनहीं, किन्तु अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार देहको धारण करनेवाले, शुद्ध ज्ञानही जिनका स्वरूप है ऐसे सर्वरूप सबके कारण, सकल प्राणियों के आत्मा तुम को नमस्कार हो ॥ ११ ॥ अब इन्द्र अपना अपराध कहता है कि—हे भगवन्! मेरे यज्ञ को गोपोंने त्यागदिया तब अति क्रोध में भरेहुए और अभिमानी मैंने, गोकुलका नाश करने के निमित्त यह वृष्टिरूप न करने योग्य कार्य करा है ॥ १२ ॥ तथापि हे ईश्वर! तुम ने मेरे उद्योग को व्यर्थ करके और मेरे गर्वको नष्ट करके मेरे ऊपर अनुग्रह करा है, इसकारण अब मैं ईश्वर, गुरु और आत्मारूप आपकी शरण में आया हूँ ॥ १३ ॥ ऐसे इन्द्रके स्तुति करने पर भगवान् श्रीकृष्णजी, हँसते हुए मेघकी समान गम्भीरवाणी करके उससे कहनेलगे॥१४॥श्रीभगवान् ने कहाकि—हे इन्द्र! तेरे ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा करनेवाले मैंने, देवताओं के राज्य से निरन्तर अत्यन्त मत्तहुए तेरे यज्ञका भङ्ग करा है ॥ १५ ॥ मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा करता हूँ उसको सम्पत्ति से भ्रष्ट करदेता हूँ, क्योंकि—स्वामीपने के और सम्पदा के मदसे अन्ध (विवेकहीन) हुआ पुरुष दण्ड धारण करनेवाले कालयमादिरूप मुझको देखताभी नहींहै ॥ १६ ॥हेइन्द्र! तुम स्वर्गको जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो, इससेही तुम्हारा कल्याण होगा. गर्वरहित और सावधान हुए वरुण आदि तुम सब अपने२ अधिकार पर रहो ॥ १७॥ तदनन्तर सन्तुष्ट चित्तहुई कामधेनु, अपनी सन्तानरूप गौओं सहित, गोपरूप उन श्रीकृष्णजी को वन्दना करके और हे कृष्ण! तुमने हमारी भलीप्रकार रक्षा करीहै ऐसी प्रशंसा करके कहनेलगी १८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaction by eGangotri

हायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारावतुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः ॥ जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥ इन्द्रः सुरर्षिभिः सार्कं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंद इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन् पयोदुतां ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयो

कामधेनु ने कहा कि—हे कृष्ण ! कृष्ण हे अचिन्त्यशक्तियुक्त ! हे विश्व को उत्पन्न करनेवाले ! हे जगत् की मूर्त्तिरूप ! हे अच्युत ! हे सकल लोकों के नाथ ! इन्द्रके मारनेपर भी आपने हमारी रक्षाकरी है ॥ १९ ॥ हे जगत्पते ! तुम हमारे सर्वोत्तम देवता हो, तिस से गौ, ब्राह्मण, देवता तथा और जो साधु हैं उन सबका कल्याण होने के निमित्त तुमही हमारे इन्द्र हो ॥ २० ॥ यदि कहो कि—तुम्हारा इन्द्र दूसरा है तो—तिस इन्द्र के इन्द्र पने से अब भरपाया, ब्रह्मा जी के भेजेहुए हम, तुम्हें ही अपने इन्द्रपने के अधिकार में अभिषेक करते हैं. यदि कहो कि देवता इन्द्र होता है मैं मनुष्य कैसे होऊंगा ? तो हे सर्वेश्वर ! तुमने भूमि का भार दूर करने के निमित्त अवतार धारण करा है, तुम मनुष्य नहीं हो ॥ २१ ॥ श्री शुकदेव जी कहते हैं कि हे राजन् ! इस प्रकार कामधेनु ने श्री कृष्ण जी की प्रार्थना करके अपने दूध से उनका अभिषेक करा तैसेही अदिति आदि देवमाताओं के भेजेहुए इन्द्रने भी, देवता और ऋषियों के साथ, ऐरावत हाथी की सूंड से निकालेहुए आकाशगङ्गा के जलों से श्री कृष्ण जी का गौओंके अधिपतिपने में अभिषेक करके उनका गोविन्दनाम रक्खा ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस समय तहाँ आयेहुए तुम्बुरु, नारद, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण आदि देवता, तिन श्री कृष्ण जी का लोकों के पापों को नाश करनेवाला यश गानेलगे हर्ष से युक्त हुई रम्भा आदि अप्सरा नृत्य करनेलगीं ॥ २४ ॥ देवताओं में जो मुख्य देवता थे वह श्री कृष्ण जी की स्तुति करने लगे तथा नन्दनवन के पुष्पों की वर्षाओं से उनको छानेलगे, त्रिलोकी में सकल लोक परम आनन्द को प्राप्त हुए उस समय गौओं ने अपने दूध से पृथ्वी को भिगोडाला ॥ २५ ॥ नदियें सकल रसों को बहानेलगीं, वृक्ष मद टपकानेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभ्रदुर्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्ते एतानि सत्वानि कुरुनन्दन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गोविंदमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ ॥ २८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे इंद्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नंदस्तु कालिंद्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽतिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥ ३ ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयि-

हुए; धान आदि सकल,औषधि, भूमि के जोते विना ही पकनेलगीं, तैसेही पर्वत, अपने २ में गुप्तहुए रत्नों को बाहर प्रकटरूप से धारण करने लगे ॥ २६ ॥ हे तात कुरुनन्दन परीक्षित! श्री कृष्ण का गौओं के इन्द्रपद में अभिषेक करनेपर स्वभाव से ही क्रूर रहनेवाले सर्प व्याघ्र आदि सकल प्राणी भी वैररहित हुए ॥ २७ ॥ इस प्रकार उस इन्द्र ने, श्री कृष्ण जी को गौओं के और गोकुल के आधिपत्य में अभिषेक करके तदनन्तर श्री कृष्ण जीके जाने के निमित्त आज्ञा करनेपर वह इन्द्र, देवादिकों के साथ स्वर्ग को चलागया ॥ २८ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अट्ठाईशवें अध्याय में श्री कृष्ण, वरुण के घर में से नन्द जी को छुटाकर लाए और गोपों को वैकुण्ठलोक दिखाया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्री शुकदेव जी ने कहा कि—हे राजन्! एक समय एकादशी के दिन निराहार व्रत करने वाले नंद जी जनार्दन भगवान् का पूजन करके दूसरे दिन कलामात्र द्वादशी शेष रहने के कारण उतने ही समय में पारणा करने के निमित्त एकादशी की ही रात्रिमें राक्षसी वेला को न जानकर अरुणोदय* से पहिले ही स्नान करने के निमित्त यमुना के जलमें घुसे,तब उनको वरुण का सेवक असुर पकड़कर वरुण के पास लेगया ।१।२। इधर नन्दजी को न देखतेहुए सकल गोप,बडा हाहाकार करनेलगे कि—हे कृष्ण! हेराम! स्नान करने को गयेहुए नन्दजी कहीं भी नहीं दीखते हैं, यह सुनकर सर्वज्ञ और भक्तोंको अभय देनेवाले वह प्रभु श्रीकृष्णजी, नन्दजी को वरुण,दूत के द्वारा लेगया है यह जानकर उस के समीप गये ॥ ३ ॥ तब अपने पास आयेहुए श्रीकृष्णजी को देखकर उनके द-

* प्रतिदिन सूर्योदय से मध्यान्हपर्यन्त करने के सकल कर्म, अर्धकलामात्र द्वादशी होय तो मध्यरात्रि से लेकर सूर्योदय पर्यन्त करे ऐसी शास्त्र की आज्ञा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वांह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देहो अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोककल्पविकल्पना ६॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविंद नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात्स्वपितरं बंधूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नन्दस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ तेऽतौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान् वि-

शेष से आनन्द युक्त हुए तिस वरुण ने, बडी सामग्री से श्रीकृष्णजी का पूजन करके कहा ॥ ४ ॥ वरुण ने कहाकि—हे प्रभो ! आज तुम्हारा दर्शन हुआ इससे आजही मेरे देहको धारण करने की सफलता हुई है और आजही मुझे धन मिला है अर्थात् सकल रत्नोंकी खानियों का स्वामी होकर भी आज से पहिले मुझे ऐसा धन कभी भी नहीं मिलाथा, क्योंकि—तुम्हारे चरण की सेवा करनेवाले भक्तजन, जन्ममरणादिरूप संसारमार्ग के अन्त को पागये हैं ॥ ५ ॥ इसकारण जिस तुम्हारे स्वरूप में, लोक सृष्टि की नानाप्रकार की रचना करनेवाली माया सुनने में भी नहीं आती है अर्थात मानो है ही नहीं ऐसी रहती है ऐसे परमऐश्वर्यवान्, पूर्ण और सकल जीवों के नियन्ता आपको नमस्कार हो ॥ ६ ॥ हे देव ! करने योग्य कर्म और भगवद्धर्म को भी न जाननेवाला यह मेरा मूर्ख सेवक, इन तुम्हारे पिता को यहाँ लेआया है, तिस सेवक के द्वाराहुए मेरे अपराध की तुम क्षमा करने को समर्थ हो ॥ ७ ॥ और हे कृष्ण ! तुम सर्वसाक्षी होने के कारण मेरे ऊपर भी अनुग्रह करने को योग्य हो. हे पितृवत्सल गोविन्द ! इन अपने पिता (नन्दजी) को लेजाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! इसप्रकार वरुण के प्रसन्न करेहुए और उन वरुण आदि लोकपालों के भी ईश्वर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अपने पिता नन्दजी को लेकर व्रजवासी बान्धवों को हर्षित करतेहुए गोकुल में पहुँचगये ॥ ९ ॥ नन्दजी तो, कभी भी न देखाहुआ वह लोकपाल वरुण का ऐश्वर्य देखकर और उन वरुण आदिकों की श्रीकृष्ण के विषय में नम्रता देखकर विस्मय में होगये और उन्हों ने अपनी जाति के उपनन्द आदि सब गोपों से वह वरुण का ऐश्वर्य कहा ॥ १० ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उन कृष्ण को ईश्वर मानकर, उन का अचिन्त्य ऐश्वर्य देखने के निमित्त जिन की बुद्धि में उत्कण्ठा उत्पन्न हुई है ऐसे वह गोप, यह सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण, कभी भी न देखेहुए अपने ब्रह्मस्वरूप को और वैकुण्ठलोक को हमें पहुचावेंगेक्या ? अथवा दिखावेंगे क्या ? ऐसा सङ्कल्प करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥ १२ ॥ जनो वै लोके ऽस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ॥ उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥ इति संचिंत्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ७ ॥

लगे ॥ ११ ऐसा अपने भक्तों का अभिप्राय उन सर्वसाक्षी भगवान् श्रीकृष्णजी ने, आप ही जानकर, उन के सङ्कल्प की सिद्धि होनेके निमित्त कृपाकरके यह विचारा कि-॥ १२॥ इस संसार में यह लोक, देहादिकों मे अहङ्कार बुद्धि, शब्दस्पर्श आदि विषयभोगों का अभिलाष और नानाप्रकारके कर्मकरके देवता पशु पक्षी आदि उत्तम अधम योनियोंमें घूमतेहुए अपनी परमार्थगति (स्वरूप) को निःसन्देह नहीं जानतेहैं ॥ १३॥ ऐसा विचारकर उन महादयालु भगवान् श्रीकृष्णजी ने, अपना प्रकृति से पर ब्रह्मस्वरूप और वैकुण्ठनामक लोक गोपों को दिखाया ॥ १४ ॥ देहादि से आच्छादित हुए गोपों को, उसका दर्शन होना कठिन था इसकारण पहिले देहादिकों से निराला ही ब्रह्मस्वरूप दिखाया, वह ब्रह्मस्वरूप त्रिकालों रहनेवाला चैतन्यरूप, देशादि परिमाण से रहित, स्वप्रकाश और निरन्तर सिद्धया और जिसको एकाग्रचित्त तथा मनन करनेवाले ज्ञानी सत्वादि तीनों गुणोंके दूरहोनेपर देखतेहैं वह कृपाकरके दिखाया॥ १५॥ तब वह सबगोप, ब्रह्मरूप सरोवरमें पहुँचने पर तहाँही निमग्न होगये, फिर तहाँ से श्रीकृष्णजीने बाहर निकाला तब समाधिसे उठेहुए से होकर उन्होंने उस ही ब्रह्म का वैकुण्ठनामकलोक देखा, यदि कहो कि-ब्रह्ममें निमग्न हुओं को फिर वैकुण्ठलोक का देखना अघटित है ? तो-जिन श्रीकृष्णजी के निमित्त से पहिले अक्रूरजी ने भी वैकुण्ठलोक देखा ÷ था अर्थात् अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्ण को कुछ अशक्य नहीं है ॥ १६ ॥ वह नंद आदि गोप तो उस वैकुण्ठलोक को देखकर और तहां मूर्त्तिमान् वेदों से स्तुति करे हुए श्रीकृष्णजी को देखकर परम आनन्द में भरगये और फिर श्रीकृष्णजी ने तहां से बाहर करा तो निद्रा से जगेहुए की समान विस्मय में होगये ॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध पूर्वार्द्ध में अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे उन्तीसवें अध्याय में रासलीला करने के निमित्त

÷ यह वार्त्ता शुकपरीक्षित के सम्वाद से पहिले होनेके कारण यहां भूतकाल कहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥ तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिंपन्नरुणेन शन्तमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वंतमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ॥ वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥ दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद्दो-

श्रीकृष्णजी का गोपियों के साथ वार्त्तालाप और गोपियों का श्रीकृष्णजी को उत्तर देना वर्णन करके रासक्रीड़ा में गोपियों को गर्व हुआ तब श्रीकृष्णजीके अन्तर्धान होने का कौतुक वर्णन करा है और इस अध्याय से लेकर आगे के पांच अध्यायों में रासक्रीडा के महोत्सव का वर्णन करा है तिनमें ब्रह्मादिकों को जीतने से गर्व में हुए कामदेव का गर्व नष्ट करने के निमित्त लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजी गोपियोंके रासमण्डल को शोभायमान करते हुए उत्कर्ष को प्राप्त हुए यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! योगमाया का आश्रय करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी शरदऋतु के कारण जिनमें सुगन्धित पुष्प खिलरहे हैं और गोप कन्याओं से कहीहुई वह शरदऋतु की रात्रियें आगईं ऐसा देखकर क्रीड़ा करने का मन में विचारकरा ॥ १ ॥ उसी समय उन श्रीकृष्णजी की प्रीति के निमित्त, जैसे बहुत दिनों में दर्शन देनेवाला प्रियपति, विनोद के समय अपनी स्त्री का मुख, लालवर्ण के केशर से लिप्त करता है तैसे ही सब प्राणियों के ताप और ग्लानि को दूर करनेवाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा, अपनी अतिसुखकारिणी किरणरूपहाथों से उदय के रङ्ग करके, पूर्वदिशारूप स्त्री का मुखलाल२करताहुआउदय हुआ ॥२॥ तब श्रीकृष्णजी ने, लक्ष्मी के मुखकी कान्तिकी समान कान्तिवाले, नवीन केशर की समान लाल २ और कमलिनियों को प्रफुल्लित करनेवाले तिस पूर्ण चन्द्रमा को देखकर और उसकी सुखकारी किरणों से शोभायमान हुए वृन्दावन को देखकर स्त्रियोंके मनको हरनेवाला मधुर गान करा ॥ ३ ॥ उस कामदेव की वृद्धि करनेवाले गान को सुनकर, जिनके मन कृष्ण ने खैंचलिये हैं और सापत्न्यभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार जिन्हों ने अपना कृष्ण के समीप जाने का उद्योग परस्पर जताया नहीं है ऐसी वह गोकुल में की स्त्रियें, जहाँ वह श्रीकृष्ण जी थे तहाँ गान की ध्वनि के मार्गसे चलीगईं, उस समय जाने की शीघ्रतासे उनके कानों के कुण्डल हिलते थे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण जी को जतानेवाले शब्द के सुनने से श्रीकृष्ण जी की ओर को चित्त लगानेवाले पुरुषों के धर्म–अर्थ–काम के प्रतिपादन करनेवाले कर्मों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ॥ शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥ लिंपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजन्त्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥ ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्त्तत मोहिताः ॥ ८ ॥ अंतर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥९॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युतश्लेषनिर्वृत्या

की तत्काल निवृत्ति होती है, यह दिखाने के निमित्त गोपियें, आधा २ हुआ ही अपना कर्म छोड़कर चलीगईं यह वर्णन करते हैं-कितनी ही गोपियें गौओंका दूध दुहरहीं थीं, उन्हो ने आधा दूध दुहा इतनेही में श्रीकृष्ण की मुरली का शब्द सुनाई दिया सो वह श्रीकृष्ण जी को पाने में उत्कण्ठित होकर वह दूधका पात्र तहाँ ही छोड़कर चलीगईं कितनी ही गोपियें-दूध की हाँडी में के दूध को चूल्हेपर चढ़ाकर वह औटगया या नहीं सो विना देखे ही तैसे ही चलीगईं, दूसरी कितनी ही गोपियें-चूल्हे के ऊपर होतीहुई लपसी को विना उतारे तैसेही चलीगईं ॥ ५ ॥ कितनी ही पति पुत्रों को अन्न परोस रहीं थीं सो अधपरोसा ही छोड़कर चलीगईं, कितनी ही-अपने बालकों को स्तनो का दूध पिलारहीं थीं सो तैसाही छोड़कर चलीगईं, कितनीही-पतियों की सेवा कररही थीं वह अधबीच में ही छोड़कर चलीगईं, कितनी ही भोजन कररहीं थीं वह भोजन को छोड़कर चलीगईं ॥ ६ ॥ कितनी ही-शरीर को चन्दन आदि मलरही थीं कितनी ही--शरीर को उबटना लगारही थीं और दूसरी कोई नेत्रों में काजल आँजरही थीं, वह अपना काम आधा २ ही छोडकर उन श्रीकृष्ण जी के समीप को चलीगईं, कितनी ही वस्त्र आभूषण धारण कररही थीं वह उलटे ही वस्त्र पहिनकर, गले के भूषण चरणोंमें पहिनकर चरणों के भूषण गलेमें पहिनकर, नाक की नथ कानोंमें पहिनकर कानोंकी बाली नाक में पहिनकर श्रीकृष्णजी के समीप को चलीगईं ॥ ७ ॥ अब, जिनके मन श्रीकृष्णजी ने खैंचे हैं उन को विघ्न नहीं होते हैं ऐसा वर्णन करते हैं-गोविन्द के चित्त को खैंचने के कारण मोहित होकर श्रीकृष्णजी के समीपको जानेवाली वह स्त्रियें, पति, माता, पिता और भाई बान्धवों के निषेध करनेपर भी पीछे को न लौटीं किन्तु श्रीकृष्णजीके समीप को ही चलीगईं ॥ ८ ॥ उससमय कितनी ही गोपियें तो-घरमें ही थीं उन को, उन के पतिपुत्रादिकों ने, द्वारों में जंजीरताले आदि लगाकर कृष्ण के समीप जाने से रोकलिया इस कारण उन को मार्ग नहीं मिला सो वह पहिले ही श्रीकृष्ण का ध्यान करनेवाली थीं परन्तु उससमय उन्होंने नेत्र मूँदकर एकाग्रता से श्रीकृष्णजी का ध्यान करा ॥ ९ ॥ और वह अतिप्रिय श्रीकृष्णजी के दुःसह विरह से होनेवाले तीव्र ताप करके, अनेक जन्मों के इकट्ठे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबंधनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

हुए पापकर्मों का फल (दुःख) एकसाथ भोगकर शुद्धचित्त हुईं; तैसेही ध्यान से प्राप्तहुए श्रीकृष्णके आलिङ्गन के परमसुख करके अनेक जन्मों के इकट्ठेहुए पुण्य कर्मोंका फल (सुखभी) भोगकर क्षीणपुण्य हुईं इसप्रकार तत्काल जिनके पुण्यपापरूप बन्धन सर्वथा दूर होगये हैं ऐसी वह गोपियें,जारबुद्धि से भी इन परमात्मा श्रीकृष्णजीको प्राप्त होकर अपने गुणमय शरीरको त्याग सायुज्य मुक्ति को प्राप्तहुईं।१०।११।यह सुनकर राजा ने कहाकि—हे शुकदेवजी ! उन गोपियों ने, श्रीकृष्णजी को जारबुद्धि से यह केवल सुन्दरपुरुष है ऐसा ही जाना, ब्रह्मस्वरूप से नाममात्र को भी नहीं जाना; फिर श्रीकृष्णके विषैं सुन्दरता आदि गुणों की बुद्धि रखनेवाली उन गोपियोंको, तिन श्रीकृष्णजी के ध्यान से देह छूटकर सायुज्यमुक्ति कैसे प्राप्तहुई अर्थात् पतिपुत्रादिक भी वास्तव में ब्रह्मरूप हैं और उनकी सेवा से जैसे मोक्ष नहीं होती है तैसेही ब्रह्मबुद्धि न होने के कारण श्रीकृष्णजीके ध्यान से भी उनकी मोक्ष न होनी चाहिये थी, सो कैसेहुई ? ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! इसका उत्तर तुमसे मैंने पहिले ही (सातवें स्कन्ध में) कहा है; उन इन्द्रियों के नियन्ता श्रीकृष्णजी से द्वेष करनेवाला शिशुपाल भी जब उत्तमप्रकार की सिद्धि (सायुज्यमुक्ति) को प्राप्तहुआ फिर श्रीकृष्ण का प्रिय करनेवाली और उन की अत्यन्त प्रिय वह गोपियें, उनके ध्यान से सायुज्यमुक्ति को प्राप्तहुईं इस में क्या आश्चर्य है ? अर्थात् जीवों मे ब्रह्मभाव अज्ञान आदि से वेष्टित होता है इसकारण उन में ज्ञानकी आवश्यकता होती है, श्रीकृष्णजीका स्वरूप चैतन्य घन होने के कारण तहाँ ब्रह्मभाव में ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ यदि कहोकि वह देहधारी कृष्ण अज्ञान आदि से युक्त न हों यह कैसे होसक्ता है ? तो सुनो—हे राजन् ! गुणों के नियन्ता, विकारशून्य, निर्गुण और बुद्धि के अगोचर भगवान् का यह प्रकट होना, केवल मनुष्यों के मोक्षरूप कल्याणके निमित्त ही है इसकारण उन को देहधारी जीवों की समान नहीं कहाजासक्ता ॥ १४ ॥ इसकारण उन श्रीहरिके विषैं गोपियों की समान काम, शिशुपाल की समान क्रोध, कंस की समान भय, यशोदा की समान स्नेह, ज्ञानियों की समान एकता, पाण्डवों की समान मित्रता और नारदादिकों की समान नित्य भक्ति करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायांता भगवान् व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद्धेतोरागमनकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषा घोररूपा घोरसत्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ॥ यमुनाऽनिलीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ॥ क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्पायय दुह्यत

जो पुरुष हैं वह सायुज्य मुक्तिको पाते हैं॥ १५॥अब, भगवान् को यह बड़ाभार नहींहै ऐसा वर्णन करते हैं—हे राजन् ! उन योगेश्वरों के ईश्वर और कर्मकी अधीनता में होने वाले जन्म से रहित भगवान् श्रीकृष्णजी के विषैं मन लगानेवालीं गोपियें मुक्त हुईं, इसमें तुम आश्चर्य न मानो; क्योंकि—जिन श्रीकृष्णजी से यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् भी, उनकी कृपा होतेही मुक्त होजायगा ॥ १६ ॥ मुरली की ध्वनि से मोहित होकर अपने समीप आई हुई उन गोपियों को देखकर, कहने वालो में श्रेष्ठ वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनी वाणीकी छटाओं से उनको मोहित करतेहुए कहने लगे ॥ १७॥ श्रीभगवान्ने कहाकि—हे महाभाग्यवतियों ! तुम मेरे समीप आईं यह बड़ा सुन्दर हुआ, मैं तुम्हारा प्रिय कौनसा कार्य करूँ ? इतने ही में, सब गोपियें घबड़ाई हुईंसी आई हैं ऐसा देखकर भयभीत हुए से कहने लगेकि हे गोपियों ! मेरे प्रिय गोकुल का कल्याण तो है ? तुम्हारे आनेका क्या कारण है सो कहो ? ॥ १८ ॥ लज्जासे मन्द २ हँसती हुईं गोपियों को देखकर कहने लगेकि—अरी सुकुमारियों ! इसवन में स्त्रियों को रहना उचित नहीं है, इससे तुम लौटकर गोकुल को चलीजाओ; क्योंकि-यह रात्रि भयङ्कर है और इसमें व्याघ्र आदि भयङ्कर प्राणी फिरते हैं ॥ १९ ॥ और तुम्हें न देखते हुए तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता और पति तुम्हें ढूँढते होंगे इससे उन बान्धवोंको अपने न मिलने का कष्ट नदो॥ २०॥ तब वह थोड़ेसे प्रेमयुक्त कोपसे दूसरी ओर को देखने लगीं तब उनसे कहने लगेकि-तुमने, पूर्ण चन्द्रमा की किरणोंसे प्रकाशित हुए और यमुनाके जलको स्पर्शकरके आनेवाले मन्द २ पवनसे कम्पायमान होनेवाले वृक्षोंके पत्तोंसे शोभायमान दीखनेवाले और प्रफुल्लितहुए वृन्दावनको भी देखलिया ॥ २१ ॥ इस से हे सतियों ! तुम अब गोकुल में को जाओ, विलम्ब न करो, पतियों की सेवा करो, तुम्हारे बालक भूँखे होकर रो रहे होंगे उन को दूध पिलाओ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्त्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसङ्कल्पाश्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य

और गौओं के बछडे रम्भाते होंगे उनको दूध पिलाकर गौओंको दुहो॥२२॥फिर आवेशसे क्षुभित दृष्टि वालीं देखकर गोपियों से कहनेलगे—अथवा मेरे स्नेह से तुम, मेरे वश में चित्त होजाने के कारण आई होओ तो यह तुम्हें योग्य ही है; क्योंकि—मुझ में सब ही प्राणी प्रीति करते हैं ॥ २३ ॥ हे कल्याणियों ! निष्कपटभाव से पति की सेवा करना और पति के जो बन्धु आदि होयँ उन से प्रेमभाव के साथ यथायोग्य वर्त्ताव करना और बालकों का पालन करना यह स्त्रियों का उत्तम धर्म है ॥ २४ ॥ जुआ आदि खेलने वाला होने के कारण दुष्ट स्वभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी और दरिद्री भी पति को, पुण्यलोक की इच्छा करनेवालीं स्त्रियें न त्यागें,ब्रह्महत्यादि महापातकों से दूषित होय तब भी उस की दूर से ही सेवा करें, सम्पर्क न करें ॥ २५ ॥ कुलीन स्त्री को, परपुरुष से मिलने वाला जो सुख वह परलोक में स्वर्ग का और इस लोक में यश का नाश करनेवाला, तुच्छ, दुःखदायक, भयकारी और लोक में तथा स्त्रियों में भी निन्दित है ॥ २६ ॥ हे स्त्रियों ! मेरे विषैं जैसा सुनने से, देखने से,ध्यान से और मेरे गुणों को वर्णन करने से स्नेह अधिक होता है तैसा अङ्ग के संग से नहीं होता है इस कारण तुम अपने २ घर को चली जाओ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! ऐसा घरजाने के विषय का प्रिय न लगने वाला वह गोविन्द का वचन सुनकर, भगवान् के साथ क्रीडा करने का सङ्कल्प भग्न होने के कारण खिन्न होती हुई वह गोपियें, परम दुस्तर चिन्ता को प्राप्त हुईं ॥ २८ ॥ जिन को बडा दुःख है ऐसी वह गोपियें, शोक से उत्पन्न हुए गरम श्वासों के वायु से, पकीहुई तन्दूरी से जिन के अधर होठ सूख गये हैं ऐसे अपने मुख नीचे को करके पैर के अँगूठे से ' मानो पृथ्वी से अपने को भीतर समालेने की प्रार्थना करती हुईं ' भूमि को कुरेदने लगीं और नेत्रों में के काजल को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गद-गिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिंद्या आशां धृतां त्वयि चिरादरविंदनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चल-

वहानेवाले दुःख के आँसुओं से स्तनोंपर के केशर को धोती हुई केवल चित्रलिखित सी खड़ी रहीं ॥ २९ ॥ तदनन्तर रोते में जल से भरे हुए नेत्रों को पूछकर, कुछ एक कोप के आवेश से जिन की वाणी गद्गद होरही है और उन कृष्ण को पाने के निमित्त ही जिन्होंने सकल विषयों को छोड दिया है तथा उन में ही प्रेम करनेवालीं वह गोपियें अतिप्रिय होकर अप्रिय की समान भाषण करनेवाले उन श्रीकृष्णजी से कहने लगीं ॥ ३० ॥ गोपियों ने कहा कि—हे स्वच्छन्द प्रभो कृष्ण ! ऐसा निषेधरूप मर्मघाती स्पष्ट भाषण करना आप को योग्य नहीं है, किन्तु जैसे आदिपुरुष भगवान्, मोक्ष की इच्छा करनेवालों को अंगीकार करते हैं और उन की इच्छा को पूर्ण करते हैं तैसे ही सकल विषयों को त्यागकर तुम्हारे चरणतलका सेवन करनेवालीं हमें तुम अंगीकार करो, त्यागोमत ॥३१॥ हे कृष्ण ! अब पति पुत्र और उन के बन्धुओं की शुश्रूषा आदि करना यह स्त्रियों का स्वधर्म है ऐसा जो धर्म को जाननेवाले तुमने हम से कहा सो सब, तुम सब के भोक्ता ईश्वर हो इस कारण उपदेशों का विषय तुम में ही रहे अर्थात् सकल बन्धुओं में जो कुछ करना है वह सब तुम में ही हो क्योंकि—तुम सब प्राणियों के आत्मा और हितकारी होने के कारण उन को परम प्रिय हो ॥ ३२ ॥ यह ही सदाचार के द्वारा कहकर दृढ़करती हुई प्रार्थना करती हैं कि—हे कमलनयन परमेश्वर ! शास्त्र में चतुर पुरुष, अपने नित्यप्रिय, अन्तर्यामी आत्मरूप तुम्हारे विषें ही प्रीति करते हैं क्योंकि—इस लोक में संसारदुःख देनेवाले पति पुत्रादिकों से क्या करना है ? इसकारण तुमही हमारे ऊपर प्रसन्न होवो, बहुत काल से तुम्हारे में लगाई हुई तुम से मग्न होने की आशा को न तोड़ो ॥ ३३ ॥ और यह जो तुम ने कहा कि—अपने घर को लौटकर जाओ, सो हमसे यह होना भी कठिन है, क्योंकि—जो हमारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥ सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निं ॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यब्जाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टं ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दर-

चित्त, इतने समय पर्यन्त सुख से घर के कार्य में घुसरहाथा उसको अब तुमने हरलिया है? जो हमारे हाथ घर के कामों में लगेहुए थे उनको तुमने चेष्टारहित करदिया है, अब यह हमारे पाँव भी तुम्हारे चरणतल के समीप से दूसरे स्थान में एक पग भर जाने को समर्थ नहीं है फिर हम गोकुल को कैसे जायँ? और तहाँ जाकर हम करेंगी भी क्या? ॥ ३४ ॥ इससे हे कृष्ण! तुम हमें अपने अधरामृत के प्रवाह से और अपने हास्य सहित कटाक्ष से और अपने मधुर वेणुगीत से उत्पन्न हुए कामाग्नि को सींचो, अब यदि ऐसा नहीं करोगे तो-इस कामाग्नि से और विरह से होनेवाले दूसरे विरहाग्नि से हम अपने शरीरों को भस्म करके तुम्हारे ध्यान से योगियों की समान तुम्हारे चरण की समीपता को पावेंगी अर्थात् प्राण छोड़देंगी तब भी तुम्हें नहीं छोड़ेंगी ॥३५॥ यदि कहो कि-अपने पतियों के समीप जाओ वहीं तुम्हारी कामाग्नि को सींचेंगे तो-सुनो हे कमलनयन कृष्ण! जिस समय गोकुलवासी लोग जिन्हें प्रिय हैं ऐसे तुम्हारे, लक्ष्मी को भी 'सब समय नहीं' किसी समय आनन्द देनेवाले चरण को, हम ने यमुना के तटपर स्पर्शकरा था और तहाँ तुमने हमें आनन्दित करा था उसदिन से दूसरे पति के सन्मुख खडी होने की भी हम इच्छा नहीं करती हैं अर्थात्-वह तुच्छ पति हमें प्रिय नहीं लगते हैं ॥ ३६ ॥ जो लक्ष्मी, कृपा करके हमारी ओर को देखे इस निमित्त दूसरे ब्रह्मादिक देवताओं का तप आदि साधनों के द्वारा उद्योग चलरहा है वह लक्ष्मी, उन ब्रह्मादिकों का अनादर करके, तुम्हारे वक्षःस्थल में सापत्न्यभावरहित स्थानको पाकरभी, अपनी सपत्नी (सौत) तुलसी के साथ भी, बहुत से सेवकों से सेवन करेहुए तुम्हारे चरणकमल के रज की ही जैसे इच्छा करती है तैसे हम भी, निःसन्देह उस चरणरज की ही शरण आई हैं ॥३७॥ हे दुःखनाशक सुन्दरता के समुद्र! तुम्हारी सेवा करने की आशा रखनेवालीं हम, पतिपुत्रादिकों सहित अपने घरों को त्यागकर योगियों की ही समान तुम्हारे चरण के समीप में प्राप्त हुई हैं तिस से तुम्हारी सुन्दर और मन्दहास्य शोभायमान छटा को देखने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यं ॥३८॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ कास्त्र्यंग ते कलपदायतमूर्च्छितेन संमोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्यां ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ।. ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता॥ तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्त्तबंधो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणां ॥४१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्दकलिकाप्रराजमानाननचारुविग्रहः ॥ ४३ ॥ उपगीयमानो ललितं स्त्रीभिर्दत्तासनो मण्डलमध्यगो हरिः ॥ स्वपार्श्वगतैर्विरुतं तद्दिशन्तीभिरुच्चैर्जगुरुद्दाम ॥ ४४ ॥ कृष्णाय कृष्णवपुषे कृतनीडपेशलीलाकटाक्षरुचिरस्मितसूक्तिभिर्ताः ॥ तत्तद्गतिस्मितविलासवितानलीलाः प्रेम्णावलेन्द्रिय ॥ ४५ ॥ तासां तासां विकल्पेषु द्वयोर्द्वयोरिवोत्थितः ॥ कृष्णो रेमे स्वयात्मात्मा ह्यात्मारामोऽपि लीलया ॥ ४६ ॥ तासां रतिविहारेण श्रमं भगवतीनां ॥ निनाय मलयानिलः ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥ ॥ १०१ ॥ ॥ १०२ ॥ ॥ १०३ ॥ ॥ १०४ ॥ ॥ १०५ ॥ ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ ॥ १११ ॥ ॥ ११२ ॥ ॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ ॥ ११७ ॥ ॥ ११८ ॥ ॥ ११९ ॥ ॥ १२० ॥ ॥ १२१ ॥ ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ ॥ १२४ ॥ ॥ १२५ ॥ ॥ १२६ ॥ ॥ १२७ ॥ ॥ १२८ ॥ ॥ १२९ ॥ ॥ १३० ॥ ॥ १३१ ॥ ॥ १३२ ॥ ॥ १३३ ॥ ॥ १३४ ॥ ॥ १३५ ॥ ॥ १३६ ॥ ॥ १३७ ॥ ॥ १३८ ॥ ॥ १३९ ॥ ॥ १४० ॥ ॥ १४१ ॥ ॥ १४२ ॥ ॥ १४३ ॥ ॥ १४४ ॥ ॥ १४५ ॥ ॥ १४६ ॥ ॥ १४७ ॥ ॥ १४८ ॥ ॥ १४९ ॥ ॥ १५० ॥ ॥ १५१ ॥ ॥ १५२ ॥ ॥ १५३ ॥ ॥ १५४ ॥ ॥ १५५ ॥ ॥ १५६ ॥ ॥ १५७ ॥ ॥ १५८ ॥ ॥ १५९ ॥ ॥ १६० ॥ ॥ १६१ ॥ ॥ १६२ ॥ ॥ १६३ ॥ ॥ १६४ ॥ ॥ १६५ ॥ ॥ १६६ ॥ ॥ १६७ ॥ ॥ १६८ ॥ ॥ १६९ ॥ ॥ १७० ॥ ॥ १७१ ॥ ॥ १७२ ॥ ॥ १७३ ॥ ॥ १७४ ॥ ॥ १७५ ॥ ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥ ॥ १७८ ॥ ॥ १७९ ॥ ॥ १८० ॥ ॥ १८१ ॥ ॥ १८२ ॥ ॥ १८३ ॥ ॥ १८४ ॥ ॥ १८५ ॥ ॥ १८६ ॥ ॥ १८७ ॥ ॥ १८८ ॥ ॥ १८९ ॥ ॥ १९० ॥ ॥ १९१ ॥ ॥ १९२ ॥ ॥ १९३ ॥ ॥ १९४ ॥ ॥ १९५ ॥ ॥ १९६ ॥ ॥ १९७ ॥ ॥ १९८ ॥ ॥ १९९ ॥ ॥ २०० ॥ ॥ २०१ ॥ ॥ २०२ ॥ ॥ २०३ ॥ ॥ २०४ ॥ ॥ २०५ ॥ ॥ २०६ ॥ ॥ २०७ ॥ ॥ २०८ ॥ ॥ २०९ ॥ ॥ २१० ॥ ॥ २११ ॥ ॥ २१२ ॥ ॥ २१३ ॥ ॥ २१४ ॥ ॥ २१५ ॥ ॥ २१६ ॥ ॥ २१७ ॥ ॥ २१८ ॥ ॥ २१९ ॥ ॥ २२० ॥ ॥ २२१ ॥ ॥ २२२ ॥ ॥ २२३ ॥ ॥ २२४ ॥ ॥ २२५ ॥ ॥ २२६ ॥ ॥ २२७ ॥ ॥ २२८ ॥ ॥ २२९ ॥ ॥ २३० ॥ ॥ २३१ ॥ ॥ २३२ ॥ ॥ २३३ ॥ ॥ २३४ ॥ ॥ २३५ ॥ ॥ २३६ ॥ ॥ २३७ ॥ ॥ २३८ ॥ ॥ २३९ ॥ ॥ २४० ॥ ॥ २४१ ॥ ॥ २४२ ॥ ॥ २४३ ॥ ॥ २४४ ॥ ॥ २४५ ॥ ॥ २४६ ॥ ॥ २४७ ॥ ॥ २४८ ॥ ॥ २४९ ॥ ॥ २५० ॥ ॥ २५१ ॥ ॥ २५२ ॥ ॥ २५३ ॥ ॥ २५४ ॥ ॥ २५५ ॥ ॥ २५६ ॥ ॥ २५७ ॥ ॥ २५८ ॥ ॥ २५९ ॥ ॥ २६० ॥ ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ ॥ २६३ ॥ ॥ २६४ ॥ ॥ २६५ ॥ ॥ २६६ ॥ ॥ २६७ ॥ ॥ २६८ ॥ ॥ २६९ ॥ ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ ॥ २७२ ॥ ॥ २७३ ॥ ॥ २७४ ॥ ॥ २७५ ॥ ॥ २७६ ॥ ॥ २७७ ॥ ॥ २७८ ॥ ॥ २७९ ॥ ॥ २८० ॥ ॥ २८१ ॥ ॥ २८२ ॥ ॥ २८३ ॥ ॥ २८४ ॥ ॥ २८५ ॥ ॥ २८६ ॥ ॥ २८७ ॥ ॥ २८८ ॥ ॥ २८९ ॥ ॥ २९० ॥ ॥ २९१ ॥ ॥ २९२ ॥ ॥ २९३ ॥ ॥ २९४ ॥ ॥ २९५ ॥ ॥ २९६ ॥ ॥ २९७ ॥ ॥ २९८ ॥ ॥ २९९ ॥ ॥ ३०० ॥ ॥ ३०१ ॥ ॥ ३०२ ॥ ॥ ३०३ ॥ ॥ ३०४ ॥ ॥ ३०५ ॥ ॥ ३०६ ॥ ॥ ३०७ ॥ ॥ ३०८ ॥ ॥ ३०९ ॥ ॥ ३१० ॥ ॥ ३११ ॥ ॥ ३१२ ॥ ॥ ३१३ ॥ ॥ ३१४ ॥ ॥ ३१५ ॥ ॥ ३१६ ॥ ॥ ३१७ ॥ ॥ ३१८ ॥ ॥ ३१९ ॥ ॥ ३२० ॥ ॥ ३२१ ॥ ॥ ३२२ ॥ ॥ ३२३ ॥ ॥ ३२४ ॥ ॥ ३२५ ॥ ॥ ३२६ ॥ ॥ ३२७ ॥ ॥ ३२८ ॥ ॥ ३२९ ॥ ॥ ३३० ॥ ॥ ३३१ ॥ ॥ ३३२ ॥ ॥ ३३३ ॥ ॥ ३३४ ॥ ॥ ३३५ ॥ ॥ ३३६ ॥ ॥ ३३७ ॥ ॥ ३३८ ॥ ॥ ३३९ ॥ ॥ ३४० ॥ ॥ ३४१ ॥ ॥ ३४२ ॥ ॥ ३४३ ॥ ॥ ३४४ ॥ ॥ ३४५ ॥ ॥ ३४६ ॥ ॥ ३४७ ॥ ॥ ३४८ ॥ ॥ ३४९ ॥ ॥ ३५० ॥ ॥ ३५१ ॥ ॥ ३५२ ॥ ॥ ३५३ ॥ ॥ ३५४ ॥ ॥ ३५५ ॥ ॥ ३५६ ॥ ॥ ३५७ ॥ ॥ ३५८ ॥ ॥ ३५९ ॥ ॥ ३६० ॥ ॥ ३६१ ॥ ॥ ३६२ ॥ ॥ ३६३ ॥ ॥ ३६४ ॥ ॥ ३६५ ॥ ॥ ३६६ ॥ ॥ ३६७ ॥ ॥ ३६८ ॥ ॥ ३६९ ॥ ॥ ३७० ॥ ॥ ३७१ ॥ ॥ ३७२ ॥ ॥ ३७३ ॥ ॥ ३७४ ॥ ॥ ३७५ ॥ ॥ ३७६ ॥ ॥ ३७७ ॥ ॥ ३७८ ॥ ॥ ३७९ ॥ ॥ ३८० ॥ ॥ ३८१ ॥ ॥ ३८२ ॥ ॥ ३८३ ॥ ॥ ३८४ ॥ ॥ ३८५ ॥ ॥ ३८६ ॥ ॥ ३८७ ॥ ॥ ३८८ ॥ ॥ ३८९ ॥ ॥ ३९० ॥ ॥ ३९१ ॥ ॥ ३९२ ॥ ॥ ३९३ ॥ ॥ ३९४ ॥ ॥ ३९५ ॥ ॥ ३९६ ॥ ॥ ३९७ ॥ ॥ ३९८ ॥ ॥ ३९९ ॥ ॥ ४०० ॥ ॥ ४०१ ॥ ॥ ४०२ ॥ ॥ ४०३ ॥ ॥ ४०४ ॥ ॥ ४०५ ॥ ॥ ४०६ ॥ ॥ ४०७ ॥ ॥ ४०८ ॥ ॥ ४०९ ॥ ॥ ४१० ॥ ॥ ४११ ॥ ॥ ४१२ ॥ ॥ ४१३ ॥ ॥ ४१४ ॥ ॥ ४१५ ॥ ॥ ४१६ ॥ ॥ ४१७ ॥ ॥ ४१८ ॥ ॥ ४१९ ॥ ॥ ४२० ॥ ॥ ४२१ ॥ ॥ ४२२ ॥ ॥ ४२३ ॥ ॥ ४२४ ॥ ॥ ४२५ ॥ ॥ ४२६ ॥ ॥ ४२७ ॥ ॥ ४२८ ॥ ॥ ४२९ ॥ ॥ ४३० ॥ ॥ ४३१ ॥ ॥ ४३२ ॥ ॥ ४३३ ॥ ॥ ४३४ ॥ ॥ ४३५ ॥ ॥ ४३६ ॥ ॥ ४३७ ॥ ॥ ४३८ ॥ ॥ ४३९ ॥ ॥ ४४० ॥ ॥ ४४१ ॥ ॥ ४४२ ॥ ॥ ४४३ ॥ ॥ ४४४ ॥ ॥ ४४५ ॥ ॥ ४४६ ॥ ॥ ४४७ ॥ ॥ ४४८ ॥ ॥ ४४९ ॥ ॥ ४५० ॥ ॥ ४५१ ॥ ॥ ४५२ ॥ ॥ ४५३ ॥ ॥ ४५४ ॥ ॥ ४५५ ॥ ॥ ४५६ ॥ ॥ ४५७ ॥ ॥ ४५८ ॥ ॥ ४५९ ॥ ॥ ४६० ॥ ॥ ४६१ ॥ ॥ ४६२ ॥ ॥ ४६३ ॥ ॥ ४६४ ॥ ॥ ४६५ ॥ ॥ ४६६ ॥ ॥ ४६७ ॥ ॥ ४६८ ॥ ॥ ४६९ ॥ ॥ ४७० ॥ ॥ ४७१ ॥ ॥ ४७२ ॥ ॥ ४७३ ॥ ॥ ४७४ ॥ ॥ ४७५ ॥ ॥ ४७६ ॥ ॥ ४७७ ॥ ॥ ४७८ ॥ ॥ ४७९ ॥ ॥ ४८० ॥ ॥ ४८१ ॥ ॥ ४८२ ॥ ॥ ४८३ ॥ ॥ ४८४ ॥ ॥ ४८५ ॥ ॥ ४८६ ॥ ॥ ४८७ ॥ ॥ ४८८ ॥ ॥ ४८९ ॥ ॥ ४९० ॥ ॥ ४९१ ॥ ॥ ४९२ ॥ ॥ ४९३ ॥ ॥ ४९४ ॥ ॥ ४९५ ॥ ॥ ४९६ ॥ ॥ ४९७ ॥ ॥ ४९८ ॥ ॥ ४९९ ॥ ॥ ५०० ॥ ॥ ५०१ ॥ ॥ ५०२ ॥ ॥ ५०३ ॥ ॥ ५०४ ॥ ॥ ५०५ ॥ ॥ ५०६ ॥ ॥ ५०७ ॥ ॥ ५०८ ॥ ॥ ५०९ ॥ ॥ ५१० ॥ ॥ ५११ ॥ ॥ ५१२ ॥ ॥ ५१३ ॥ ॥ ५१४ ॥ ॥ ५१५ ॥ ॥ ५१६ ॥ ॥ ५१७ ॥ ॥ ५१८ ॥ ॥ ५१९ ॥ ॥ ५२० ॥ ॥ ५२१ ॥ ॥ ५२२ ॥ ॥ ५२३ ॥ ॥ ५२४ ॥ ॥ ५२५ ॥ ॥ ५२६ ॥ ॥ ५२७ ॥ ॥ ५२८ ॥ ॥ ५२९ ॥ ॥ ५३० ॥ ॥ ५३१ ॥ ॥ ५३२ ॥ ॥ ५३३ ॥ ॥ ५३४ ॥ ॥ ५३५ ॥ ॥ ५३६ ॥ ॥ ५३७ ॥ ॥ ५३८ ॥ ॥ ५३९ ॥ ॥ ५४० ॥ ॥ ५४१ ॥ ॥ ५४२ ॥ ॥ ५४३ ॥ ॥ ५४४ ॥ ॥ ५४५ ॥ ॥ ५४६ ॥ ॥ ५४७ ॥ ॥ ५४८ ॥ ॥ ५४९ ॥ ॥ ५५० ॥ ॥ ५५१ ॥ ॥ ५५२ ॥ ॥ ५५३ ॥ ॥ ५५४ ॥ ॥ ५५५ ॥ ॥ ५५६ ॥ ॥ ५५७ ॥ ॥ ५५८ ॥ ॥ ५५९ ॥ ॥ ५६० ॥ ॥ ५६१ ॥ ॥ ५६२ ॥ ॥ ५६३ ॥ ॥ ५६४ ॥ ॥ ५६५ ॥ ॥ ५६६ ॥ ॥ ५६७ ॥ ॥ ५६८ ॥ ॥ ५६९ ॥ ॥ ५७० ॥ ॥ ५७१ ॥ ॥ ५७२ ॥ ॥ ५७३ ॥ ॥ ५७४ ॥ ॥ ५७५ ॥ ॥ ५७६ ॥ ॥ ५७७ ॥ ॥ ५७८ ॥ ॥ ५७९ ॥ ॥ ५८० ॥ ॥ ५८१ ॥ ॥ ५८२ ॥ ॥ ५८३ ॥ ॥ ५८४ ॥ ॥ ५८५ ॥ ॥ ५८६ ॥ ॥ ५८७ ॥ ॥ ५८८ ॥ ॥ ५८९ ॥ ॥ ५९० ॥ ॥ ५९१ ॥ ॥ ५९२ ॥ ॥ ५९३ ॥ ॥ ५९४ ॥ ॥ ५९५ ॥ ॥ ५९६ ॥ ॥ ५९७ ॥ ॥ ५९८ ॥ ॥ ५९९ ॥ ॥ ६०० ॥ ॥ ६०१ ॥ ॥ ६०२ ॥ ॥ ६०३ ॥ ॥ ६०४ ॥ ॥ ६०५ ॥ ॥ ६०६ ॥ ॥ ६०७ ॥ ॥ ६०८ ॥ ॥ ६०९ ॥ ॥ ६१० ॥ ॥ ६११ ॥ ॥ ६१२ ॥ ॥ ६१३ ॥ ॥ ६१४ ॥ ॥ ६१५ ॥ ॥ ६१६ ॥ ॥ ६१७ ॥ ॥ ६१८ ॥ ॥ ६१९ ॥ ॥ ६२० ॥ ॥ ६२१ ॥ ॥ ६२२ ॥ ॥ ६२३ ॥ ॥ ६२४ ॥ ॥ ६२५ ॥ ॥ ६२६ ॥ ॥ ६२७ ॥ ॥ ६२८ ॥ ॥ ६२९ ॥ ॥ ६३० ॥ ॥ ६३१ ॥ ॥ ६३२ ॥ ॥ ६३३ ॥ ॥ ६३४ ॥ ॥ ६३५ ॥ ॥ ६३६ ॥ ॥ ६३७ ॥ ॥ ६३८ ॥ ॥ ६३९ ॥ ॥ ६४० ॥ ॥ ६४१ ॥ ॥ ६४२ ॥ ॥ ६४३ ॥ ॥ ६४४ ॥ ॥ ६४५ ॥ ॥ ६४६ ॥ ॥ ६४७ ॥ ॥ ६४८ ॥ ॥ ६४९ ॥ ॥ ६५० ॥ ॥ ६५१ ॥ ॥ ६५२ ॥ ॥ ६५३ ॥ ॥ ६५४ ॥ ॥ ६५५ ॥ ॥ ६५६ ॥ ॥ ६५७ ॥ ॥ ६५८ ॥ ॥ ६५९ ॥ ॥ ६६० ॥ ॥ ६६१ ॥ ॥ ६६२ ॥ ॥ ६६३ ॥ ॥ ६६४ ॥ ॥ ६६५ ॥ ॥ ६६६ ॥ ॥ ६६७ ॥ ॥ ६६८ ॥ ॥ ६६९ ॥ ॥ ६७० ॥ ॥ ६७१ ॥ ॥ ६७२ ॥ ॥ ६७३ ॥ ॥ ६७४ ॥ ॥ ६७५ ॥ ॥ ६७६ ॥ ॥ ६७७ ॥ ॥ ६७८ ॥ ॥ ६७९ ॥ ॥ ६८० ॥ ॥ ६८१ ॥ ॥ ६८२ ॥ ॥ ६८३ ॥ ॥ ६८४ ॥ ॥ ६८५ ॥ ॥ ६८६ ॥ ॥ ६८७ ॥ ॥ ६८८ ॥ ॥ ६८९ ॥ ॥ ६९० ॥ ॥ ६९१ ॥ ॥ ६९२ ॥ ॥ ६९३ ॥ ॥ ६९४ ॥ ॥ ६९५ ॥ ॥ ६९६ ॥ ॥ ६९७ ॥ ॥ ६९८ ॥ ॥ ६९९ ॥ ॥ ७०० ॥ ॥ ७०१ ॥ ॥ ७०२ ॥ ॥ ७०३ ॥ ॥ ७०४ ॥ ॥ ७०५ ॥ ॥ ७०६ ॥ ॥ ७०७ ॥ ॥ ७०८ ॥ ॥ ७०९ ॥ ॥ ७१० ॥ ॥ ७११ ॥ ॥ ७१२ ॥ ॥ ७१३ ॥ ॥ ७१४ ॥ ॥ ७१५ ॥ ॥ ७१६ ॥ ॥ ७१७ ॥ ॥ ७१८ ॥ ॥ ७१९ ॥ ॥ ७२० ॥ ॥ ७२१ ॥ ॥ ७२२ ॥ ॥ ७२३ ॥ ॥ ७२४ ॥ ॥ ७२५ ॥ ॥ ७२६ ॥ ॥ ७२७ ॥ ॥ ७२८ ॥ ॥ ७२९ ॥ ॥ ७३० ॥ ॥ ७३१ ॥ ॥ ७३२ ॥ ॥ ७३३ ॥ ॥ ७३४ ॥ ॥ ७३५ ॥ ॥ ७३६ ॥ ॥ ७३७ ॥ ॥ ७३८ ॥ ॥ ७३९ ॥ ॥ ७४० ॥ ॥ ७४१ ॥ ॥ ७४२ ॥ ॥ ७४३ ॥ ॥ ७४४ ॥ ॥ ७४५ ॥ ॥ ७४६ ॥ ॥ ७४७ ॥ ॥ ७४८ ॥ ॥ ७४९ ॥ ॥ ७५० ॥ ॥ ७५१ ॥ ॥ ७५२ ॥ ॥ ७५३ ॥ ॥ ७५४ ॥ ॥ ७५५ ॥ ॥ ७५६ ॥ ॥ ७५७ ॥ ॥ ७५८ ॥ ॥ ७५९ ॥ ॥ ७६० ॥ ॥ ७६१ ॥ ॥ ७६२ ॥ ॥ ७६३ ॥ ॥ ७६४ ॥ ॥ ७६५ ॥ ॥ ७६६ ॥ ॥ ७६७ ॥ ॥ ७६८ ॥ ॥ ७६९ ॥ ॥ ७७० ॥ ॥ ७७१ ॥ ॥ ७७२ ॥ ॥ ७७३ ॥ ॥ ७७४ ॥ ॥ ७७५ ॥ ॥ ७७६ ॥ ॥ ७७७ ॥ ॥ ७७८ ॥ ॥ ७७९ ॥ ॥ ७८० ॥ ॥ ७८१ ॥ ॥ ७८२ ॥ ॥ ७८३ ॥ ॥ ७८४ ॥ ॥ ७८५ ॥ ॥ ७८६ ॥ ॥ ७८७ ॥ ॥ ७८८ ॥ ॥ ७८९ ॥ ॥ ७९० ॥ ॥ ७९१ ॥ ॥ ७९२ ॥ ॥ ७९३ ॥ ॥ ७९४ ॥ ॥ ७९५ ॥ ॥ ७९६ ॥ ॥ ७९७ ॥ ॥ ७९८ ॥ ॥ ७९९ ॥ ॥ ८०० ॥ ॥ ८०१ ॥ ॥ ८०२ ॥ ॥ ८०३ ॥ ॥ ८०४ ॥ ॥ ८०५ ॥ ॥ ८०६ ॥ ॥ ८०७ ॥ ॥ ८०८ ॥ ॥ ८०९ ॥ ॥ ८१० ॥ ॥ ८११ ॥ ॥ ८१२ ॥ ॥ ८१३ ॥ ॥ ८१४ ॥ ॥ ८१५ ॥ ॥ ८१६ ॥ ॥ ८१७ ॥ ॥ ८१८ ॥ ॥ ८१९ ॥ ॥ ८२० ॥ ॥ ८२१ ॥ ॥ ८२२ ॥ ॥ ८२३ ॥ ॥ ८२४ ॥ ॥ ८२५ ॥ ॥ ८२६ ॥ ॥ ८२७ ॥ ॥ ८२८ ॥ ॥ ८२९ ॥ ॥ ८३० ॥ ॥ ८३१ ॥ ॥ ८३२ ॥ ॥ ८३३ ॥ ॥ ८३४ ॥ ॥ ८३५ ॥ ॥ ८३६ ॥ ॥ ८३७ ॥ ॥ ८३८ ॥ ॥ ८३९ ॥ ॥ ८४० ॥ ॥ ८४१ ॥ ॥ ८४२ ॥ ॥ ८४३ ॥ ॥ ८४४ ॥ ॥ ८४५ ॥ ॥ ८४६ ॥ ॥ ८४७ ॥ ॥ ८४८ ॥ ॥ ८४९ ॥ ॥ ८५० ॥ ॥ ८५१ ॥ ॥ ८५२ ॥ ॥ ८५३ ॥ ॥ ८५४ ॥ ॥ ८५५ ॥ ॥ ८५६ ॥ ॥ ८५७ ॥ ॥ ८५८ ॥ ॥ ८५९ ॥ ॥ ८६० ॥ ॥ ८६१ ॥ ॥ ८६२ ॥ ॥ ८६३ ॥ ॥ ८६४ ॥ ॥ ८६५ ॥ ॥ ८६६ ॥ ॥ ८६७ ॥ ॥ ८६८ ॥ ॥ ८६९ ॥ ॥ ८७० ॥ ॥ ८७१ ॥ ॥ ८७२ ॥ ॥ ८७३ ॥ ॥ ८७४ ॥ ॥ ८७५ ॥ ॥ ८७६ ॥ ॥ ८७७ ॥ ॥ ८७८ ॥ ॥ ८७९ ॥ ॥ ८८० ॥ ॥ ८८१ ॥ ॥ ८८२ ॥ ॥ ८८३ ॥ ॥ ८८४ ॥ ॥ ८८५ ॥ ॥ ८८६ ॥ ॥ ८८७ ॥ ॥ ८८८ ॥ ॥ ८८९ ॥ ॥ ८९० ॥ ॥ ८९१ ॥ ॥ ८९२ ॥ ॥ ८९३ ॥ ॥ ८९४ ॥ ॥ ८९५ ॥ ॥ ८९६ ॥ ॥ ८९७ ॥ ॥ ८९८ ॥ ॥ ८९९ ॥ ॥ ९०० ॥ ॥ ९०१ ॥ ॥ ९०२ ॥ ॥ ९०३ ॥ ॥ ९०४ ॥ ॥ ९०५ ॥ ॥ ९०६ ॥ ॥ ९०७ ॥ ॥ ९०८ ॥ ॥ ९०९ ॥ ॥ ९१० ॥ ॥ ९११ ॥ ॥ ९१२ ॥ ॥ ९१३ ॥ ॥ ९१४ ॥ ॥ ९१५ ॥ ॥ ९१६ ॥ ॥ ९१७ ॥ ॥ ९१८ ॥ ॥ ९१९ ॥ ॥ ९२० ॥ ॥ ९२१ ॥ ॥ ९२२ ॥ ॥ ९२३ ॥ ॥ ९२४ ॥ ॥ ९२५ ॥ ॥ ९२६ ॥ ॥ ९२७ ॥ ॥ ९२८ ॥ ॥ ९२९ ॥ ॥ ९३० ॥ ॥ ९३१ ॥ ॥ ९३२ ॥ ॥ ९३३ ॥ ॥ ९३४ ॥ ॥ ९३५ ॥ ॥ ९३६ ॥ ॥ ९३७ ॥ ॥ ९३८ ॥ ॥ ९३९ ॥ ॥ ९४० ॥ ॥ ९४१ ॥ ॥ ९४२ ॥ ॥ ९४३ ॥ ॥ ९४४ ॥ ॥ ९४५ ॥ ॥ ९४६ ॥ ॥ ९४७ ॥ ॥ ९४८ ॥ ॥ ९४९ ॥ ॥ ९५० ॥ ॥ ९५१ ॥ ॥ ९५२ ॥ ॥ ९५३ ॥ ॥ ९५४ ॥ ॥ ९५५ ॥ ॥ ९५६ ॥ ॥ ९५७ ॥ ॥ ९५८ ॥ ॥ ९५९ ॥ ॥ ९६० ॥ ॥ ९६१ ॥ ॥ ९६२ ॥ ॥ ९६३ ॥ ॥ ९६४ ॥ ॥ ९६५ ॥ ॥ ९६६ ॥ ॥ ९६७ ॥ ॥ ९६८ ॥ ॥ ९६९ ॥ ॥ ९७० ॥ ॥ ९७१ ॥ ॥ ९७२ ॥ ॥ ९७३ ॥ ॥ ९७४ ॥ ॥ ९७५ ॥ ॥ ९७६ ॥ ॥ ९७७ ॥ ॥ ९७८ ॥ ॥ ९७९ ॥ ॥ ९८० ॥ ॥ ९८१ ॥ ॥ ९८२ ॥ ॥ ९८३ ॥ ॥ ९८४ ॥ ॥ ९८५ ॥ ॥ ९८६ ॥ ॥ ९८७ ॥ ॥ ९८८ ॥ ॥ ९८९ ॥ ॥ ९९० ॥ ॥ ९९१ ॥ ॥ ९९२ ॥ ॥ ९९३ ॥ ॥ ९९४ ॥ ॥ ९९५ ॥ ॥ ९९६ ॥ ॥ ९९७ ॥ ॥ ९९८ ॥ ॥ ९९९ ॥ ॥ १००० ॥ ॥ १००१ ॥ ॥ १००२ ॥ ॥ १००३ ॥ ॥ १००४ ॥ ॥ १००५ ॥ ॥ १००६ ॥ ॥ १००७ ॥ ॥ १००८ ॥ ॥ १००९ ॥ ॥ १०१० ॥ ॥ १०११ ॥ ॥ १०१२ ॥ ॥ १०१३ ॥ ॥ १०१४ ॥ ॥ १०१५ ॥ ॥ १०१६ ॥ ॥ १०१७ ॥ ॥ १०१८ ॥ ॥ १०१९ ॥ ॥ १०२० ॥ ॥ १०२१ ॥ ॥ १०२२ ॥ ॥ १०२३ ॥ ॥ १०२४ ॥ ॥ १०२५ ॥ ॥ १०२६ ॥ ॥ १०२७ ॥ ॥ १०२८ ॥ ॥ १०२९ ॥ ॥ १०३० ॥ ॥ १०३१ ॥ ॥ १०३२ ॥ ॥ १०३३ ॥ ॥ १०३४ ॥ ॥ १०३५ ॥ ॥ १०३६ ॥ ॥ १०३७ ॥ ॥ १०३८ ॥ ॥ १०३९ ॥ ॥ १०४० ॥ ॥ १०४१ ॥ ॥ १०४२ ॥ ॥ १०४३ ॥ ॥ १०४४ ॥ ॥ १०४५ ॥ ॥ १०४६ ॥ ॥ १०४७ ॥ ॥ १०४८ ॥ ॥ १०४९ ॥ ॥ १०५० ॥ ॥ १०५१ ॥ ॥ १०५२ ॥ ॥ १०५३ ॥ ॥ १०५४ ॥ ॥ १०५५ ॥ ॥ १०५६ ॥ ॥ १०५७ ॥ ॥ १०५८ ॥ ॥ १०५९ ॥ ॥ १०६० ॥ ॥ १०६१ ॥ ॥ १०६२ ॥ ॥ १०६३ ॥ ॥ १०६४ ॥ ॥ १०६५ ॥ ॥ १०६६ ॥ ॥ १०६७ ॥ ॥ १०६८ ॥ ॥ १०६९ ॥ ॥ १०७० ॥ ॥ १०७१ ॥ ॥ १०७२ ॥ ॥ १०७३ ॥ ॥ १०७४ ॥ ॥ १०७५ ॥ ॥ १०७६ ॥ ॥ १०७७ ॥ ॥ १०७८ ॥ ॥ १०७९ ॥ ॥ १०८० ॥ ॥ १०८१ ॥ ॥ १०८२ ॥ ॥ १०८३ ॥ ॥ १०८४ ॥ ॥ १०८५ ॥ ॥ १०८६ ॥ ॥ १०८७ ॥ ॥ १०८८ ॥ ॥ १०८९ ॥ ॥ १०९० ॥ ॥ १०९१ ॥ ॥ १०९२ ॥ ॥ १०९३ ॥ ॥ १०९४ ॥ ॥ १०९५ ॥ ॥ १०९६ ॥ ॥ १०९७ ॥ ॥ १०९८ ॥ ॥ १०९९ ॥ ॥ ११०० ॥ ॥ ११०१ ॥ ॥ ११०२ ॥ ॥ ११०३ ॥ ॥ ११०४ ॥ ॥ ११०५ ॥ ॥ ११०६ ॥ ॥ ११०७ ॥ ॥ ११०८ ॥ ॥ ११०९ ॥ ॥ १११० ॥ ॥ ११११ ॥ ॥ १११२ ॥ ॥ ११११ ॥ ॥ ११११ ॥ ॥ ११११

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुंददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥ उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥४५॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभनर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तंभयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० भगवतो बालचरित्रवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः

मुख प्रफुल्लित हुएहैं ऐसी एकसाथ इकट्ठी हुई उन गोपियों से घिरे हुए और जिन की लीला गोपियों का मनोरथ पूर्ण करनेवाली है और जिन के उदारहास्य में तथा दाँतों में कुंद के पुष्पों की समान कान्ति झलक रही है ऐसे वह श्रीकृष्णजी, नक्षत्रों से घिरेहुए चन्द्रमा की समान शोभा को प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ स्त्रियों के समूह की रक्षा करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, जब गोपियें ऊँचे स्वर से उन का गान करनेलगीं तब आप भी ऊँचे स्वर से गान करनेलगे और पांच प्रकार के फूलों की गुथी हुई माला को धारण करके उस वृन्दावन को शोभायमान करते हुए उस में विचरनेलगे ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उन्होंने यमुना की रेती के स्थान में उन गोपियों के साथ जाकर क्रीड़ा करी. वह स्थान उस यमुना की शीतलता से आनन्ददायक और चन्द्रमा का उदय होनेपर खिलनेवाले कमलों की सुगन्ध को लानेवाले वायु से शीतल रेतीवाला होरहा था ॥४५॥ दूरवाली को पकड़ने के निमित्त भुजा फैलाना, बलात्कार से खैंचकर आलिङ्गन करना, हाथ, केश, जङ्घा, वस्त्र का बन्धन और स्तनों का स्पर्श करना, हास्य की वार्त्ता करना, नखों के अग्रभागों से नोंचना, क्रीड़ा के साथ देखना और हँसना, इसप्रकार उन व्रजसुन्दरियों के कामदेव को उद्दीपित करतेहुए श्रीकृष्णजी ने उन को क्रीड़ा कराई॥४६॥ इसप्रकार विमुक्तचित्त भगवान् श्रीकृष्णजी से मनोरथ को प्राप्तहुई उन गोपियों ने, भूतलपरकी सकल स्त्रियों में हम ही परम श्रेष्ठहैं ऐसा मानकर गर्व करा॥४७॥उनका वह सुन्दरता का मद (होश में न रहना) और गर्व देखकर ब्रह्माजी और महादेवजी को भी वश में करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, उन के गर्व का नाश करने के निमित्त और फिर उन के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त उस रेती के स्थानमें ही अन्तर्धान होगए ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ अब आगे तीसवें अध्याय में कृष्णके विरह से दुःखित हुई गोपियों ने, उन्मत्त की स-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्तास्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ॥ ३ ॥ गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु संन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नंदसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ कच्चित्कुरवकाशोकनागपुन्नागचंपकाः ॥ रामानुजो मानिनीनां गतो दर्पहरस्मि-

मान अव्यवस्थितपने से वनमें के प्रत्येक स्थानमें फिरकर श्रीकृष्णजी को ढूँढा यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजी कहतेहैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान् अचानक अन्तर्धान होगए तब उन को न देखतीहुई तिन गोकुल की स्त्रियों ने 'जैसे कामातुरहुई हथिनी गजराज को न देखतीहुई पश्चात्ताप पातीहै तैसे' पश्चात्तापकरा ॥ १ ॥ और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी की गतियोंसे प्रेमहास्यसहित विलासयुक्त कटाक्षों से, मनोहर वचनों से, क्रीड़ाओं से तथा और भी नानाप्रकार के विलासों से चित्तके आकर्षित होनेसे तन्मय हुई वह गोपियें उससमय श्रीकृष्णजी के तिन २ पूतना का स्तनपीना आदि लीलाओं का अनुकरण (नकल) करके (तैसी २ लीलाएँ करके) क्रीड़ा करने लगीं ॥ २ ॥ उन प्रिय श्रीकृष्णकी गति, हास्य, देखना और भाषण आदिकी ओरही उनका मन लगाहुआ था सो नहीं किन्तु देहभी एकता को प्राप्त होरहाथा, और कृष्णकी समान ही जिनके क्रीड़ा विलासों का प्रारम्भ होरहाथा ऐसी उन कृष्ण से एकता को प्राप्त हुई तिनकी ही प्रिय गोपियें, यह कृष्ण मैंहीहूँ, ऐसा परस्पर कहनेलगीं ॥ ३ ॥ वह एकसाथ मिलकर ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्ण का गान करती थीं और उन्मत्त की समान एकवन से दूसरे वनमें फिर तीसरे में इसप्रकार फिरती हुई श्रीकृष्णजी को ढूँढनेलगीं और उससमय आकाश की समान स्थावर जङ्गम प्राणीगात्र के भीतर और बाहर व्याप्त होकर रहनेवाले तिन पुराणपुरुष श्रीकृष्णजी का पता वृक्षों से बूझनेलगीं ॥ ४ ॥ तहाँ बड़े होनेके कारण इन्हों ने श्रीकृष्ण को देखा होयगा ऐसी आशा से वह गोपियें, पीपल आदिकों से कहने लगीं कि—हे पीपल ! हे पिलखन ! हेवड़ ! तुमने कहीं कृष्ण को देखा है क्या ? वह प्रेम युक्त हास्यविलास सहित नेत्रकटाक्षों से हमारा मन हरकर चोर की समान नजाने कहाँ चलागया है ? ॥ ५ ॥ अबबड़े होकर अपने पुष्पोंसे अनेकों के ऊपर उपकार करनेवाले वृक्षों से बूझती हैं कि—हे कुरवक ! हे अशोक ! हेनाग ! हे पुन्नाग ! हेचम्पक ! इसमार्गसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोच्युतः ॥ ७ ॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूताप्रियालपनसासनकोविदारजंब्वर्कबिल्ववकुलाम्रकदंबनीपाः ॥ येन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसंतु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्बिभर्षि ॥ अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः

जातेहुए कृष्ण तुमने देखेहैं क्या?वह मानिनीस्त्रियोंके गर्वको हरनेवाले हास्यको करनेवाले हैं अर्थात् उन्होंने अपने हास्यसे हमारे गर्वको चूर्ण२करडालाहै ॥६॥ हे गोविन्दचरणप्रिये कल्याणी तुलसि ! भौंरोंके झुण्डके साथ तुझे धारण करनेवाले श्रीकृष्ण, तूनेदेखे हैं क्या ? क्योंकि तुझे वह परम प्रियहैं इसकारण तूने देखा होगा ? ॥ ७ ॥ उनसे उत्तरनहीं मिला तब परमगुणी और नम्र होनेके कारण इन लताओं ने देखाहोगा ऐसा मन में विचारकर बूझती हैं कि -हे-मालति ! हे मल्लिके ! हे जाई ! हेजुही ! तुमने श्रीकृष्ण देखे हैं क्या ? वह फूल लेनेकी इच्छा करके हाथके स्पर्श से तुम्हें प्रसन्न करते हुए कदाचित् गयेहोंगे ॥ ८ ॥ उनसे भी उत्तर न मिलने पर फल आदिसे प्राणियों को तृप्त करनेवाले यहवृक्ष बतादेंगे इसकारण उनसे बूझतीहैं—हे चूत !हे प्रियाल ! हेपनस ! हेअसन ! हेकोविदार ! हे जामुन!हे आक ! हे विल्व!हेवकुल ! हे आम्र ! हे कदम्ब ! हे नीप!और दूसरोंके निमित्त उत्पन्न होकर यमुना के तटपर रहनेवाले और भी हे सबवृक्षों ! तुम, कृष्णने चित्त को खैंचलिया है इससे चित्तशून्य हुई हमें कृष्णकी प्राप्ति का मार्ग बताओ ॥ ९ ॥ उनसे भी उत्तर न मिलने पर, कृष्ण कहीं नहींहों परन्तु उनका पृथ्वी से कभी वियोग नहीं होता है इसकारण इससे बूझें ऐसे आशय से बूझती हैं कि—हे पृथिवी ! तैंने कौनसा तप कराहै ? जो तू श्रीकृष्णजी के चरण के स्पर्श से उत्साहयुक्त होकर और कोमल तृण आदिके रूपसे शरीरपर रोमाञ्चित होकर शोभा पारही है; यह तेरा उत्साह क्या इस समयहुए श्रीकृष्णके चरणके स्पर्शसे उत्पन्नहुआहै?अथवापहिले वामनरूप भगवान्ने अपने चरणसे तुझे नापाथा इससे हुआहै ? अथवा उनसे भी पहिलेहोनेवालेवराहरूपभगवान् के आलिङ्गन से हुआहै?तात्पर्ययहहैकि—तूनेउनको अवश्यदेखाहोगा इससेहमेंदिखा॥ १० ॥ फिर हरिणियों के डिवडिवातेहुए नेत्र देखकर उनको कृष्णका दर्शन हुआ है ऐसे अनुमान से बूझतीहैं—हे सखि हरिण की स्त्रियों ! तुम्हारी दृष्टियों को,अपने मनोहर मुख भुजा आदि अङ्गों से सुखी करनेवाले श्रीकृष्णजी, प्रिया स्त्री के साथ इस मार्गसे गये हैं क्या? क्योंकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायत्याः कृष्णायत्यापिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णाभभावनाम् ॥ रिंगयामास काप्यंघ्री कर्षती घोषनिःस्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायंत्यश्च काश्चन ॥ वत्सायंतीं हंति चान्याँ तत्रै-

यहाँ स्त्री के आलिङ्गन से उस के स्तनों के केशर से लिपीहुई उन श्रीकृष्णजी की कुन्द की कलियों की माला का सुगन्ध आरहा है ॥ ११ ॥ फिर फलों के भार से नमेहुए वृक्षों से, यह कृष्ण को देखकर नम्रहुए हैं ऐसा मानकर स्त्रीसहित उनके गतिविलासों को मनमें लातीहुई कहती हैं कि—हे वृक्षों ! दाहिने हाथ में लीला के निमित्त कमल धारण करनेवाले और जिनके पीछे तुलसी के सुगन्ध से मदान्धहुए भौंरों के झुण्ड जारहे हैं ऐसे वह श्रीकृष्ण जी, स्त्री के कन्धेपर वाम बाहु रखकर यहाँ फिरतेहुए, अपने प्रेमयुक्त कटाक्षों से तुम्हारे नमस्कार का धन्यवाद करते हैं क्या ? ॥१२॥ दूसरी गोपी कहनेलगीं कि—अरी सखियों ! इन लताओं से बूझो, इन लताओं ने अपने वृक्षरूप पतियों का आलिङ्गन करा है तथापि यह निःसन्देह फूल तोड़ने को समीप आनेवाले श्रीकृष्ण के नखों की स्पर्श करीहुई हैं क्योंकि—यह शरीरों पर काँटे आदि के रूप से रोमाञ्च धारण कररहीहैं देखो इनका कैसा अहोभाग्य है ? ॥ १३ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्ण के खोजने में अतिविव्हल और तन्मय होकर उन्मत्तों की समान भाषण करनेवालीं वह गोपियें, भगवान् की, पूतना का स्तन पीना आदि लीलाओं का अनुकरण करनेलगीं ॥ १४ ॥ पूतना की समान रूप धरनेवाली एक गोपी का कृष्ण की समान आचरण करनेवाली एक गोपी स्तन पीनेलगी; छोटे से बालक की समान आचरण करके रोनेवाली दूसरी एक गोपी ने शकट की समान बनीहुई दूसरी एक गोपी का चरण से प्रहार करा ॥ १५ ॥ एकगोपी तृणावर्त्त दैत्य की समान अपना रूप बनाकर कृष्ण की समान बालक बननेवाली दूसरी को हरकर लेगई. दूसरी एक गोपी पावटों के शब्दयुक्त अपने चरणों को खचेडतीहुई रींगनेलगी ॥ १६ ॥ दो गोपियें कृष्ण और बलराम की समानहुईं और कितनी ही गोपियें गोपों के बालकों के समान हुईं और बछडे की समान बननेवाली एक गोपी को कृष्ण की समान बननेवाली गोपिने मारडाला. तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कां तु वकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्तिनीम् ॥ वेणुं क्वणंतीं क्रीडंतीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलंत्याहापरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्रोणं विहितं मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेऽवरम् ॥ २० ॥ आरुह्यैकां पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥ २२ ॥ वद्धाऽन्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडंबनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसू-

दूसरी एक अपने को ही कृष्ण माननेवाली गोपी, बकासुर की समान बनीहुई गोपीको मारनेवाली हुई ॥ १७ ॥ जैसे कृष्ण गौओंको बुलाते थे तैसेही दूर गईहुई गौओंको बुलाकर उन कृष्ण का अनुकरण करके मुरली बजानेवाली और क्रीडाकरनेवाली गोपीकी, गोपबालाकों की समान बनीहुई और गोपियें प्रशंसा करनेलगीं ॥ १८ ॥ कृष्ण की ओर मनकी लौ लगानेवाली एक गोपी, दूसरी गोपी के कन्धेपर अपना हाथ रखकर चलतीहुई कहनेलगी कि—हे सखाओं ! मैं कृष्ण हूँ मेरा चलना देखो ॥१९॥ दूसरी एक गोपी—तुम पवन और मेघों से भय न मानो, उन से तुम्हारी रक्षाकरने का उपाय मैंने करलिया है ऐसा कहकर गोवर्द्धन पर्वत को उठाने की छटा बनाकर उसने एक हाथ से ओढने का वस्त्र फैलाकर ऊपर को उठाया ॥ २० ॥ हे राजन् ! कृष्ण की समान आचरण करनेवाली दूसरी एकगोपी कालिय सर्प की समान बनीहुई दूसरी गोपी को चरण से दबाकर और उसके मस्तकपर चढकर कहनेलगी कि—अरे दुष्टसर्प ! तू इस कुण्डे में से निकलजा, मै खलों को दण्ड देने के निमित्त उत्पन्न हुआ हूँ ॥ २१ ॥ उन गोपियों में कृष्ण की समान बननेवाली एक गोपी गोपों की समान बनीहुई दूसरी गोपियों से कहनेलगी कि—हे गोपों ! यह भयङ्कर आयाहुआ वनका अग्निदेखो और शीघ्रही अपने नेत्र मूँदो, तुमको मैं सहज में ही निर्भय करूँगा ॥२२॥ उन गोपियों में कृष्ण की समान बनी हुई एक सुकुमार गोपी को, यशोदा की समान वर्त्ताव करनेवाली दूसरी गोपी ने फूलों की माला से माखन चुराने के कारण ऊखल से बांधदिया तब भयभीत हुई उस ने, सुन्दर नेत्रों से युक्त अपना मुख हाथों से ढककर भय का अनुकरण करा ॥ २३ ॥ इस प्रकार कृष्णलीला का अनुकरण करनेवालीं और वारंवार वृन्दावन में के लता और वृक्षों से प्रश्न करनेवालीं उन गोपियों ने एक वन में पृथ्वीपर श्रीकृष्णजी के उभरे हुए चरणों के चिन्ह देखे ॥ २४ ॥ और आपस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नोर्महात्मनः । लक्ष्यंते हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छंत्योऽग्रतोबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्त्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि यातायां नन्दसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविंदांघ्र्यब्जरेणवः ॥ यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत् ॥ यैकोऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ अत्र

में कहनेलगीं कि—निःसन्देह यह उदारचित्त श्रीकृष्णजी के चरणों के चिन्ह हैं क्यों कि—यह ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश और यव आदि चिन्हों से युक्त दीखरहे हैं।२५। तदनन्तर उन चरण के चिन्हों को जहां तहां खोजनेवालीं उन गोपियों ने आगे वह श्रीकृष्णजी के चरणों के चिन्ह एक स्त्री के चरणों के चिन्हों से मिले हुए देखे और दुःखित होकर कहनेलगीं कि—॥ २६ ॥ हाथी के साथ जानेवालीं हथिनी की समान श्रीकृष्ण के साथ गई हुई और जिस के कन्धेपर हाथ रक्खा है ऐसी यह कौनसी स्त्री है?॥२७॥ कृष्ण के साथ गई हुई इस स्त्री ने ही (राधा ने ही) वास्तव में श्रीहरि का आराधन करा है क्योंकि—हम सब गोपियों को त्यागकर, जिस की आराधना से सन्तुष्ट हुए गोविन्द उस को एकान्त स्थान में लेगये हैं ॥ २८ ॥ दूसरी गोपी ने कहा कि—अरी सखियों ! अहो ! यह गोविन्द के चरणकमलों की धूलि परमधन्य है. जिन को सकल दोषों के दूर होने के निमित्त ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी देवी यह सब ही अपने मस्तकपर धारण करते हैं इसकारण इस का शरीर पर अभिषेक करने से (मलने से) हमे भी श्रीकृष्ण की प्राप्ति होयगी ॥ २९ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि— ऐसा होय परन्तु सकल गोपियों के सर्वस्व श्रीकृष्णजी को इकला ही हरकर एकान्त में उन अच्युत के अधर को भोग रही है उस के जो यह उभरे हुए चरण के चिन्ह सो हमारे मन को बड़ा ही क्षोभित कर रहे हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजी को ढूँढनेवालीं वह गोपियें, आगे केवल श्रीकृष्णजी की ही चरण रेणुओं को देखकर अत्यन्त सन्ताप पाकर कहनेलगीं कि—यहां उस स्त्री के चरण के चिन्ह नहीं दीखते हैं सो उस सुकुमारी के चरणों के तलुओं को तिनकों की नोकें छिदजाने के कारण दुःख होनेलगा होगा इस कारण उस प्रिया स्त्री को, उठाकर प्रिय श्रीकृष्ण ने निःसन्देह कन्धेपर चढाया होगा ॥३१॥ अरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रसूनावचयः प्रियाऽर्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥ ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः॥ कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैवं दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयंत्यस्ता श्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयमाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ॥ ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत

सखियों ! ऊँचे पैर के फूलों को तोड़ने के निमित्त पैरों के पञ्जों से भूमि में गढे हुए इस कारण ही आधे उभरे हुए यह श्रीकृष्णजीके चरणों के चिन्ह देखो; यहां प्रिय श्रीकृष्ण ने, उस प्रिय स्त्री के केशों में लगाने के निमित्त फूल तोड़कर उन को इकट्ठा करा है ॥ ३२ ॥ दूसरी गोपी, कृष्ण के घुटनों के मध्य में बैठी हुई स्त्री के भूमिपर उभरे हुए चिन्ह देखकर कहने लगी कि—यहां उस कामी कृष्ण ने, कामिनी स्त्री के केशों को विचूरकर चोटी बांधने आदि का काम करा है; क्योंकि उन के तोडे हुए फूल तिस स्त्री के केशोंको शोभित करें तिस रीतिसे बांधने को श्रीकृष्ण निःसन्देह यहां बैठे होंगे ॥३३॥हेराजन् ! इसप्रकार गोपियों की करी हुई भावनाके अनुसार ही आप भी सन्तुष्ट, आत्माराम और स्त्रियों के विलासों से मोहित न होनेवाले श्रीकृष्णजी ने उस स्त्री के साथ विषयासक्त पुरुषों की दीनता और स्त्रियों की दुष्टता दिखाने के निमित्त क्रीडा करी थी ॥ ३४ ॥ इस प्रकार निरर्थक भाषण करनेवालीं और उन्मत्त सी हुई वह गोपियें वन में फिर रही थीं सो और स्त्रियों को वन में छोडकर जिस गोपी को श्रीकृष्णजी एकान्त में लेगये थे उस ने भी उस समय, कामातुर हुई सकल गोपियों को छोडकर यह प्रिय श्रीकृष्ण मेरे कहने के अनुसार मेरा सेवन कर रहे हैं इस कारण मैं ही सकल स्त्रियों में श्रेष्ठ हूँ ऐसा माना ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और श्रीकृष्णजी के साथ कुछ दूरपर्यंत वन में जाकर वह गर्व में भर श्रीकृष्णजी से कहनेलगी कि—हे कृष्ण ! यहांसे आगे को मुझ से नहीं चलाजाता इस से मुझे कन्धेपर चढ़ाकर जहाँ तुम्हारा मन चाहे तहाँ लेचलो ॥ ३७ ॥ इसप्रकार स्त्रियों का उद्धतपना दिखाकर अब कामीपुरुषों की दीनता दिखाते हैं कि—उस गोपीके ऐसा कहनेपर भगवान् ने, ऐसा है तो तू कन्धेपर चढ़ जा इसप्रकार उस प्रिय स्त्रीसे कहा. अब भगवान् का अखण्डितपना वर्णन करते हैं कि—तदनन्तर उस स्त्री के कंधेपर चढने को उद्यत होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निवृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि संस्मरुः ॥ ४३ ॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पू० रासक्रीडायां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ७ ॥

पर वह श्रीकृष्ण अचानक अन्तर्धान होगये तब वह स्त्री परम दुःख को प्राप्त हुई ।३८। और कहनेलगी कि—हा नाथ ! हा रमण ! हा अतिप्रिय ! हा महापराक्रमी ! हा सखे! तुम कहां हो, कहां हो; तुम्हारे वियोग से अति दीन हुई मुझ दासी को तुम अपनी समीपता दिखाओ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार प्रिय श्रीकृष्ण के वियोग से मोहित होकर दुःखित हुई सखी को, भगवान् का मार्ग खोजनेवाली उन गोपियों ने, समीप में देखा ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस ने उन गोपियों से, श्रीकृष्ण से अपने को सन्मान प्राप्त होना और अपने दुष्ट स्वभाव के कारण (अन्तर्धान होकर अपना त्यागरूप) अपमान का प्राप्त होना कहा तब यह सुनकर उन को बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस के साथ वह गोपियें, कृष्ण को ढूंढने के निमित्त जहां तक चंद्रमा का प्रकाश पड़रहा था तहां तक बन में आगे को गईं, तदनंतर घनी झाडी की छाया से होनेवाले अन्धकार से भरे हुए उस वन को देखकर तहां से पीछे को लौटीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कृष्ण ही जिन के आत्मा हैं ऐसी उन गोपियों ने कृष्ण के न मिलनेपर भी कृष्ण की ओर को ही मन लगाकर, परस्पर कृष्ण की ही वार्त्ता करते हुए, कृष्ण की ही लीलाओं को करते हुए और कृष्ण के ही गुणों का गान करते हुए अपने घर का भी स्मरण नहीं करा ॥ ४३ ॥ किन्तु कृष्ण के आने की इच्छा करनेवालीं वह सब गोपियें एकस्थान पर इकट्ठी होकर जहाँ पहिले कृष्णके पास आईथीं उसही यमुना की रेती में फिर आकर कृष्ण का ध्यान करती हुई कृष्णकाही गान करने लगीं ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध पूर्वार्द्ध में त्रिंशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इकतीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण का दर्शन होनेके विषय में निराश होकर फिर यमुना की रेती में आईहुई गोपियों ने कृष्णकाही वारंवार गान करते हुए उनके आनेकी प्रार्थना करी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां सं-

यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ गोपियों ने कहाकि—हे प्राणप्रिय कृष्ण ! तुम्हारा जन्म होने से यह गोकुल, वैकुण्ठ से भी अधिकही उन्नतिको प्राप्त होरहा है, यहाँ तुम्हारी दासी हम गोपियें तुम्हारी प्राप्ति के निमित्त ही किसी प्रकार प्राणों को धारण करके दश दिशाओं में तुम्हें खोजती फिररही हैं इसकारण तुम हमें प्रत्यक्ष दर्शनदो ॥ १ ॥ यदि कहोकि—तुम खोजतीफिरो मैं दर्शन किसकारण दूँ ? तो-हे इच्छित वरदेनेवाले सुरतनाथ ! शरद् ऋतु में के सरोवर में उत्पन्न होकर खिलेहुए कमल के भीतर के भाग की शोभा का तिरस्कार करनेवाली तुम्हारी दृष्टि से, हम विनामूल्य की दासियों को मारते हुए तुम्हारा करा हुआ यह वध क्या इस लोक में नहीं होता है ? अर्थात् क्या शस्त्र से करा हुआ वध ही वध होता है ? क्या दृष्टि से करा हुआ वध वध नहीं होता है ? किन्तु होताही है, इसकारण दृष्टि से हरेहुए प्राणों को लौटाकर देने के निमित्त तुम हम को दीखो ॥ २ ॥ हे सर्वोत्तम ! कालिय के कुण्ड में के विषैले जल को पीने करके प्राप्त हुए मृत्यु से, अघासुर दैत्य से, इन्द्र की करी हुई वर्षा से, वायु से और बिजली गिरकर उत्पन्न हुए अग्नि से, वृषभरूपी अरिष्टासुर से, व्योमासुर से तथा दूसरे भी सब प्रकार के भयों से, कालियदमन आदि करके तुम ने वारंवार हमारी रक्षा करी है और अब क्या कारण है कि—दृष्टि से कामदेव को पठाकर हमारा वध करतेहो? ॥३॥ हे सखे ! तुम निःसन्देह यशोदा के पुत्र नहीं हो किन्तु सकल प्राणियों की बुद्धियोंके साक्षी साक्षात् परमेश्वर ही हो, यदि कहो कि—फिर मनुष्यों की समान परमात्मा कैसे दीखता है ? तहां कहती हैं कि—वही परमात्मा तुम, ब्रह्माजी के प्रार्थना करनेपर जगत् की रक्षा करने के निमित्त यादवों के कुल में अवतरे हो; इसकारण अब तुम्हे भक्तों की उपेक्षा करना अत्यंत अनुचित है इस से तुम हमे दर्शन दो ॥ ४ ॥ और तुम्हारी भक्त जो हम तिन की चार प्रार्थनाओं को पूर्ण करो, हे सुन्दर ! हे यादवों में श्रेष्ठ ! जन्ममरणरूप संसार से भयभीत होकर अपने चरणों की शरण आये हुए भक्तों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कांत कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदांबुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥ मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८ ॥ तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानम-

अभय देनेवाले, ब्रह्मादिकों के भी मनोरथ पूर्ण करनेवाले और साक्षात लक्ष्मी के भी हाथ को ग्रहण करनेवाले अपने करकमल को तुम हमारे मस्तकपर स्थापन करो ॥५॥ हे वीर ! तुम गोकुलवासियों की सकल पीडाओं को दूर करनेवाले हो और तुम्हारा हास्य भक्तों के गर्व को नष्ट करनेवाला है इस कारण हे प्राणों के सखा ! निःसन्देह तुम्हारी दासी हमें स्वीकार करो और हम स्त्रियों को अपना कमल की समान सुन्दर मुख दिखाओ ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! अनन्यभाव से नम्र हुए प्राणियों के पाप का नाश करनेवाले, गौ आदि पशुओं की रक्षा करने के निमित्त दया करके उन के पीछे चलने वाले, अतिसुन्दर होने के कारण लक्ष्मी के भी रहने के अचल स्थान और अति पराक्रमी होने के कारण कालिय सर्प के फणोंपर रक्खे हुए अपने चरणकमल को हमारे स्तनोंपर स्थापन करो और हमारे कामदेव का नाश करो ॥ ७ ॥ और हे कमलनयनवीर ! ज्ञानियों को भी प्रिय लगनेवाले और मनोहर वाक्यों से युक्त अपनी मधुरवाणी से,मोह को प्राप्त हुई हम दासियों को तुम अपना अधरामृत पिलाकर सावधान करो ॥ ८ ॥ तुम्हारे विरह से हमारा मरण तो हो ही गया था परन्तु वह मरण, तुम्हारी कथारूप अमृत पिलानेवाले पुण्यवान् पुरुषों ने इस समय पर्यन्त बचारक्खा है इस कारण तीनों तापों से तपे हुए पुरुषों को शान्त करनेवाले, ब्रह्मादिकों के स्तुति करने योग्य, काम्य कर्मों को दूर करनेवाले, सुनने मात्र से ही मङ्गलकारी और अत्यन्त शान्त तुम्हारे कथामृत को, विस्तार के साथ जो पुरुष इस भूमिपर गाते हैं वह बडे ही दाता होते हैं अर्थात् जो केवल कथारूप अमृत का दान करते हैं वह भी यदि अतिधन्य हैं तो फिर जो तुम्हें देखते हैं वह अति धन्य होंगे इसका कहना ही क्या? इससे हम प्रार्थना करती हैं कि-तुम हमें दर्शन दो ॥ ९ ॥ अब, मेरी कथा के सुनने से ही तुम सन्तुष्ट हो तो मेरे दर्शन का तुम्हें क्या करना है ? ऐसा कहो तो-हे नाथ ! तुम्हारे विलास से जिन का चित्त क्षुभित हुआ है ऐसी जो हम तिन की केवल तुम्हारी कथा को ही सुनने से तृप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ङ्गलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥ चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुंदरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥ दिनपरिक्षये नीलकुंतलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतं ॥ घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमंडनं ध्येयमापदि ॥ चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुंबितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगा-

नहीं होती है, किंतु तुम्हारी प्राप्ति ही चाहिये, क्योंकि—हे प्रिय ! ध्यानमात्र से ही मंगल कारी तुम्हारा जो अति सुन्दर मन्दहास्य, प्रेमपूर्वक नेत्र कटाक्षों से करा हुआ अवलोकन और खेलना तैसे ही हृदय को प्रिय लगनेवाले जो सङ्केत से करे हुए विनोद के भाषण यह सब, हे कपटी ! हमारे मन को क्षोभित कर रहे हैं ॥ १० ॥ अब हम तुम्हारे ऊपर अति प्रेम होने से आर्द्रचित्त होरही हैं और तुम हमारे साथ न जाने क्यों कपट करते हो यह दो श्लोकों करके वर्णन करते हैं—हे नाथ ! हे सुन्दर ! जिस समय गौओं को चरानेवाले तुम, गोकुल से बाहर जाते हो उस समय तुम्हारे कमल की समान चरण, कंकड़ी, तिनकों की नोक और कुश के अग्रभाग छिदकर क्लेश पाते होंगे इस कारण हमारा मन अस्वस्थता को प्राप्त होता है इसप्रकार हम तुम्हारे दुःख से चित्त में शङ्कित होती हैं ॥ ११ ॥ और हे वीर ! सायङ्काल के समय घुँघराले केशों में ढकाहुआ, गौओं के पैरोंसे उडी हुई घनी धूलि से अटाहुआ अपना कमलसमान मुख धारण करते हुए और हमें वारंवार दिखाते हुए तुम, हमारे मन में केवल कामदेव को ही उत्पन्न करते हो और अपना दासभाव नहीं देते हो इससे तुम बड़े कपटी हो ॥ १२ ॥ इसकारण हे रमण ! हे सन्तापहारक ! शरणागतों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले ब्रह्माजी से पूजित, पृथ्वीके भूषण, ध्यानमात्र से ही आपत्तियों को दूर करनेवाले और सेवा करतेसमय भी परम आनन्द देनेवाले अपने चरण कमल को कामका सन्ताप दूर होनेके निमित्त हमारे स्तनोंपर रक्खो॥ १३॥और हे वीर!सुरत की वृद्धि करनेवाला, शोक का नाश करनेवाला, सुन्दर शब्द करनेवाली मुरली का उत्तम प्रकार से चुम्बन कराहुआ और जिनको उस की प्राप्ति होती है तिन को सार्वभौम आदि सुखों का भी भुलानेवाला अपना अधरामृत तुम हमें अर्पण करो ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! जब तुम दिन के समय वन में फिरते हो तब तुम्हें न देखनेवाले प्राणियों को त्रुटिमात्र का समय भी युग की समान होजाता है अर्थात् उतने समयतक बडा दुःख होता है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

येते न्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितवयोषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलं ॥ त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत्ते सुजातचरणांबुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० गोपी-

जब सन्ध्या के समय तुम लौटकर आते हो तब घुँघुराले केशों से युक्त और अतिसुन्दर तुम्हारे मुख को बडे प्रेम के साथ देखनेवाले प्राणियों को, नेत्रों के पलक बनानेवाला ब्रह्मा भी मूर्ख प्रतीत होने लगता है अर्थात् दर्शन में पलक लगानेमात्र का अन्तर भी नहीं सुहाता है तात्पर्य यह कि तुम्हारे दर्शन से परमसुख होता है ॥ १५ ॥ इसकारण हे अच्युत ! गान आदि सकल गतियों की जाननेवाली हम, तुम्हारे मधुरगान से मोहित होकर अपने पति, पुत्र, कुल, भ्राता, और बान्धव इन सबों को त्यागकर तुम्हारे समीप आई हैं इस से हे धूर्त्त ! ऐसी रीतिसे आपही रात्रि के समय चलीआईहुई स्त्रियों को तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन पुरुष त्यागेगा ? ॥ १६ ॥ इसकारण कामदेव को उत्पन्न करनेवाले, तुम्हारे एकान्त में के भाषण, हास्ययुक्त मुख, प्रेमयुक्त अवलोकन और लक्ष्मी के रहने के स्थान विशाल वक्षःस्थल को देखकर हमे आप की समीपता की बडी इच्छा होती है और मन मोहित होता है ॥ १७ ॥ और हे कृष्ण ! तुम्हारा अवतार गोकुल में और वृन्दावन में रहनेवाले सकल प्राणियों के दुःखोंको दूर करनेवाला और सकल जगत् को मङ्गलरूप है इसकारण मन में तुम्हारी प्राप्ति की इच्छा करनेवालीं हमें, स्वजनों के हृदय के रोग को नष्ट करनेवाला जो अतिगुप्त औषध तिसको तुम ही जानते हो वह तुम कृपणपना न करके हमेंदो ॥ १८ ॥ इसप्रकार कहकर अतिप्रेम से व्याकुल हुईं वह गोपियें, अन्त में रोतीहुई कहनेलगीं कि— हे प्रिय ! हे सुन्दरकुल में उत्पन्नहुए ! जिस तुम्हारे सुकुमार चरणकमल को हम, अपने कठिनस्तनों के ऊपर डरतीहुई धीरे २ धारण करती थीं उस चरणकमल से ही तुम इससमय वन में फिररहे हो तो वह पदकमल, मार्ग में की कंकड़ी और कांटे आदि लगकर क्या क्लेश नहीं पाता होगा ? इसप्रकार जिनकी आयु तुम ही हो ऐसी हमारी बुद्धि अब मोहित होती है, तुम मिलोगे इस आशा से अबतक हम जीवित रहीं थीं अब आगे को आशा नहीं अतः शीघ्र ही मिलो ॥ १९ ॥ इति श्रीभद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतकृष्णस्तुतिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित्करांबुजं शौरेर्जगृहेऽजलिना मुदा ॥ काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् ॥ एका तदंघ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ॥ ५ ॥ एका भ्रुकुटिमाबद्ध्य प्रेमसंरंभविह्वला ॥ घ्नन्ती वैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् । आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदि कृत्य निमील्य

अब आगे बत्तीसवें अध्याय में, गोपियोंके विरहके प्रलापों से गद्गदचित्तहुए उनश्रीकृष्ण जीने, तहाँ प्रकट होकर उन गोपियों को सन्मान के साथ धैर्य दिया यह कथा वर्णनकरी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि-हे राजन्! श्रीकृष्ण का दर्शन करने में अतिउत्कण्ठित होकर ऐसे अनेकों प्रकार के गान करनेवालीं और नानाप्रकार के प्रलाप करती हुई वह गोपियें, अन्त में ऊँचेस्वर से रोनेलगीं ॥ १ ॥ तब उन गोपियों में जिनका मुखकमल हास्ययुक्त है ऐसे पीताम्बरधारी, फूलोंकी माला धारण करेहुए और जगत् को मोहित करनेवाला जो कामदेव तिसको भी मोहित करनेवाले श्रीकृष्णजी प्रकटहुए ॥ २ ॥ उन आये हुए प्रियतम श्रीकृष्ण जीको देखकर प्रीति से जिनके नेत्रकमल प्रफुल्लित हुएहैं ऐसी वह सब गोपियें,जैसे अचेतन शरीरमें प्राण आतेही उसके हाथ पैर आदि अङ्ग एकसाथ हिलना चलना आदि चेष्टा करने लगते हैं तैसेही उठकर एकसाथ खड़ी होगई ॥ ३ ॥ एकने बड़े आनन्द से श्रीकृष्णजी का करकमल अपने दोनोहाथों से पकड़लिया दूसरीने चन्दनका उबटना लाकर भूषित कराहुआ उनका बाहु अपने कन्धेपर रक्खा॥४॥ एक सुन्दरी ने, उनका चाबाहुआ ताम्बूल अपनी अञ्जलि में लेलिया, उनके विरहसे दुःखित हुई एक गोपीने, उनका सुकुमार चरणकमल अपने स्तनपर रखलिया ॥ ५ ॥ प्रेमयुक्त कोपके आवेश से विव्हल हुई एक गोपीतो, अपना नीचे का ओठ चबाकर और भृकुटि को तिरछी करके नेत्रों के कटाक्षों के डालने से मानो श्रीकृष्णजी को प्रहारही कररही है क्या, इसप्रकार उनकी ओरको टकटकी लगाकर देखने लगी ॥ ६ ॥ दूसरी एक गोपी अपने नेत्रोंके पलकों भी न हिलाती हुई, प्रेमके साथ देखेहुए भी उन के मुख को बार २ प्रीति के साथ देखती हुई जैसे सत्पुरुष बारम्बार उनके चरण का सेवन करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं तैसे तृप्त नहींहुई ॥ ७ ॥ किसी एकने तो—अपने नेत्रों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चं ॥ पुलकांग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दमप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः । जह्युर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥९॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः । व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥ ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुंदमंदारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबंधवे ॥ ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदि कल्पितासनः ॥

छिद्रों के द्वारा श्रीकृष्णजी को हृदय में लेजाकर और उनको आलिङ्गन करके फिरवह बाहर को न निकलजायँ इसकारण नेत्र मूँदकर, जिसके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये है ऐसी वह गोपी, आनन्द में निमग्न होकर, योगी की समान निश्चल बैठीरही ॥ ८ ॥ इसप्रकार उनसब गोपियों ने, श्रीकृष्णजी के दर्शनरूप परम उत्साह से आनन्दित होकर, उनके विरह से उत्पन्न हुए तापको, जैसे मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुष ईश्वर को पाकर संसार के तापको त्यागते हैं तैसे त्यागा ॥ ९ ॥ हे तात परीक्षित् ! श्रीकृष्ण का दर्शन आदि करके जिनका विरहजनित शोक दूर होगया है ऐसी उन गोपियोंसे घिरेहुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, प्रकृति आदि उपाधियों से युक्त अन्तर्यामी पुरुष की समान अधिक शोभा को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ तदनन्तर उन गोपियोंको अपने साथ लेकर, जहाँ प्रफुल्लित हुए कुन्द और मन्दार के वृक्षों पर से आयाहुआ सुगन्धित पवन चलने के कारण उस गन्ध के लोभी भौंरे उड़रहे हैं, जहाँ शरदऋतु के चन्द्रमाकी किरणों के समूहों से रात्रिका अन्धकार नष्टहुआ है और जहाँ यमुना नदी की हाथरूप तरङ्गों से अतिकोमल बालुका फैलीहुई है ऐसे यमुना के सुखकारी पुलिन में जाकर उन गोपियों से युक्तहुए प्रभु श्रीकृष्णजी अधिक शोभा को प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ तब, जैसे श्रुति, कर्मकाण्ड में परमेश्वर को न देखते हुए काम्य कर्मोंका प्रतिपादन करती हुई अपूर्ण मनोरथवाली सी होती हैं और वही श्रुति, ज्ञानकाण्ड में ईश्वर को देखकर उसका प्रतिपादन करती हुई पूर्ण मनोरथ होती हैं तैसेही उन भगवान् का दर्शन होनेके आनन्द से विरहजनित शोकरहित हुई वह गोपियें; मनोरथों के अन्त को प्राप्त हुई अर्थात् पूर्णमनोरथ हुई और उस दशामें ही उन्हों ने प्रेमके साथ भगवान् की सेवाकरी उन गोपियों ने स्तनोंका केशर लगेहुए अपने ओढने के वस्त्रों से सब जीवों के अन्तर्यामी उन श्रीकृष्णजी को बैठने के निमित्त आसन दिया ॥ १३ ॥ तब, सिद्धयोगियों के हृदयकमल में जिनका आसन बनाहुआ है वह ईश्वर भगवान् श्री-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चकार गोपीपरिपद्गतोऽचितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥ सभाजयित्वा तमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजंत्येके एके एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजंत्येके एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते ॥ न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥ भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा॥धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः१८भजतोऽपि न वै केचिं

कृष्णजी, गोपियों की सभा में उन ओढ़ने के वस्त्रों के आसनपर बैठे; तब उन गोपियों के प्रीति के साथ पूजन करनेपर उनको त्रिलोकी में शोभाका अद्वितीय स्थान अपना शरीर दिखातेहुए शोभित होनेलगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर हास्ययुक्त लीलाके अवलोकन से कटाक्ष फेंकनेवाली भृकुटि से युक्त वह गोपियें, मदन को प्रदीप्त करनेवाले तिन श्रीकृष्ण का 'अपनी गोद में रक्खेहुए उन के चरण और हाथों को दावने से' सत्कार करके और 'यह शरीर कितना सुन्दर और सुकुमार है' इत्यादि वचनों से उन की प्रशंसा करके; वह अन्तर्धान होगये थे इसकारण कुछएक कुपित हुई वह गोपियें, उन का अपराध उनके ही मुखसे कहलाने के निमित्त कहने लगीं कि--॥१५॥हेकृष्ण!इसजगत्में कोई पुरुष,अपनी सेवाकरनेवालोंके ही अनुकूल होकर उन की सेवाके अनुसार पलटेमें उन की सेवा करतेहैं;कितने ही पलटे में अपनी सेवा होने की अपेक्षा न करके सेवा न करनेवालों की भी सेवा करते हैं और कितने ही तो प्रत्युपकार करनेवालों की अथवा न करनेवालों की भी किंचिन्मात्र भी सेवा नहीं करते हैं सो इन तीनो में किस २ को गुण दोष का कैसा २ फल मिलता है सो तुम स्पष्टता के साथ हम से कहो ॥ १६ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेपर गोपियों के अभिप्राय को जान भगवान् कहने लगे कि—हे सखियों! जो पुरुष परस्परके उपकार की इच्छा से परस्पर की सेवा करते हैं वह केवल स्वार्थ के निमित्त ही उस उद्योग को करनेवाले हैं अर्थात् उन का वह भजन केवल स्वार्थ के निमित्त ही होता है दूसरों के निमित्त नहीं इस कारण उन में सच्चा प्रेम और उस प्रेम से होनेवाला सुख वा धर्म किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है ॥ १७ ॥ हे सुमध्यमा स्त्रियों ! और जो पुरुष, किसी प्रकार की चाहना न करके अपना कोई भी उपकार न करनेवालों की सेवा करते हैं वह दो प्रकार के होते हैं—एक दयालु(साधु) और दूसरे—जैसे माता पिता केवल स्नेह से सन्तानों की रक्षा करते हैं तैसे ही स्नेही होते हैं; इन में दयालु पुरुषों को निरपेक्ष उपदेशादि करने से निर्विवाद धर्म प्राप्त होता है और दूसरे स्नेही पुरुषों को सौहृद (प्रेम) वा उस से सुख प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्भजंत्यभजतः कृतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं मा ऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥ न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः । या माऽभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य

अब कितने ही तो - पलटे में सेवा करनेवालों की भी सेवा नहीं करते हैं फिर पलटे में न करनेवालों की कहां से करेंगे ? वह पुरुष, चार प्रकार के होते हैं-एक अपने स्वरूप में रमण करनेवाले आत्माराम, दूसरे विषयों को देखतेहुए भी पूर्णकाम होनेके कारण भोगकी इच्छा न करनेवाले, तीसरे औरों के करेहुए भी उपकार का ध्यान रखनेवाले अकृतज्ञ (मूर्ख) और चौथे गुरुद्रोही अर्थात् जो अपने ऊपर उपकार करता है वह गुरु की समान पूजनीय होता है उसका भी दुष्टचित्त होने के कारण सत्कार न करके उलटा द्रोह करनेवाले (निर्दयी) होते हैं ॥ १९ ॥ ऐसा भगवान् का वचन सुनकर, यह कृष्ण बहिर्दृष्टि होने के कारण आत्माराम नहीं है, गानके द्वारा हमें बुलानेके कारण पूर्णकाम नहीं है और चतुर होने के कारण करेहुए उपकार को न जाननेवाला (मूर्ख) भी नहीं है किन्तु अन्तके पक्षका गुरुद्रोही (निर्दयी) है ऐसा मन में विचारकर नेत्र के सङ्केतों से परस्पर गुप्तरीति से हँसनेवाली उन गोपियोंको देखकर वह श्रीकृष्णजी कहनेलगे कि—अरी सखियों ! मैं तो इनमें से कोई भी नहीं किन्तु परम कारुणिक और परममित्र हूँ, क्योंकि—मैं, मेरी सेवा करनेवाले प्राणियों को 'उन को' निरन्तर मेरा ध्यान होय इस हेतु से, सेवन नहीं करता हूँ; जैसे निर्धन पुरुष कदाचित् प्राप्तहुआ धन नष्ट होनेपर उस की चिन्ता से अत्यन्त व्याप्त होकर भूख प्यास आदि और कुछ नहीं जानता है तैसे ही मेरा भक्त भी किसीसमय मुझे प्रत्यक्ष देखकर फिर मेरे गुप्त होजानेपर मेरी चिन्तामें ही निमग्न रहकर देहका भी अनुसन्धान नहीं रखताहै किन्तु निरन्तर मेराही ध्यानकरताहै॥२०॥इसीप्रकार हे स्त्रियों ! मुझ प्राप्त करनेके निमित्त जिन तुम ने, योग्य अयोग्यका विचार, धर्म अधर्म का विचार और बान्धवोंका स्नेह यह सब त्यागकराहै तिन तुम्हारी मेरे में निश्चलवृत्ति रहे इसकारण तुम्हारा प्रेम का भाषण गुप्त रीति से सुननेवाला मैं अन्तर्धान होगया था: इससे हे प्रियसखियों ! तुम, तुम्हारा प्रिय करनेवाले मेरे ऊपर दोषदृष्टि रखने को योग्य नहीं हो ॥ २१ ॥ निष्कपटभाव से मेरी सेवा करनेवाली तुम्हारे सदाचरण का मैं अपने सदाचरण से प्रत्युपकार करने को देवताओं की आयु से भी समर्थ नहीं होऊँगा, क्योंकि—जो तुम ने कठिन से तोड़नेयोग्य गृहरूपी बेड़ियों को तोड़कर मेरी सेवा करी है तिन तुम्हारे सत्कार्य का तुम्हारे सुन्दरस्वभाव से ही प्रत्युपकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दश० पूर्वा० द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ जह्रुर्विरहजं तापं तदंगोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविंदो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्यावद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमंडलमंडितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥४॥ ततो दुंदुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गंधर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषितां ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमंडले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये म-

होय, मेरा चित्त बहुत से भक्तों के ऊपर प्रेम करनेवाला होने के कारण एकनिष्ठ नहींहै इसकारण मेरे हाथ से तुम्हारा प्रत्युपकार होना कठिन है ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में द्वात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे तैंतीसवें अध्याय में गोपियों के मण्डल में आयेहुए श्रीकृष्णजी ने, रासक्रीडा, जलक्रीडा और वनक्रीडा से उन गोपियों को आनन्दित करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् की मनोहर वाणी सुनकर उन के कर चरण आदि अङ्गों के स्पर्श से पूर्ण मनोरथहुई उन गोपियों ने, विरह से उत्पन्नहुए अपने ताप को त्यागा ॥ १ ॥ तिस यमुना की रेती में, हर्षयुक्तहुई और अपने कहने के अनुसार वर्त्ताव करनेवाली और परस्पर एक दूसरी का हाथ पकडकर खडीहुई तिन रत्नरूप स्त्रियों के साथ श्रीकृष्णजी ने, रासक्रीडा (बहुत सी स्त्रियों के साथ नाचने की एक प्रकार की नृत्य की क्रीडा) का आरम्भ करा ॥ २ ॥ मण्डल बांधकर खड़ी हुई उन दो २ गोपियों के बीच में एक २ स्वरूप से खड़े हुए, और जिन कृष्ण को सब ही स्त्रियें मेरे ही समीप खडे हैं ऐसा मानती थीं, ऐसे उन अचिन्त्यशक्ति श्रीकृष्ण जी ने, जिन के कण्ठ में गलबाहीं डाली है ऐसी गोपियों के मण्डल से शोभायमान रास के उत्सव का प्रारम्भ हुआ, सो उसी समय रास को देखने की उत्कण्ठा से व्याकुलचित्त हुए स्त्रियोंसहित देवताओं के सैंकडों विमानों से आकाश भरगया ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ उस रास के आरम्भ में देवताओं की बजाई हुई दुन्दुभि बजनेलगीं, उन की करी हुई अनेकों प्रकार के पुष्पों की बहुत सी पुष्प वर्षा नीचे गिरने लगीं और विश्वावसु आदि श्रेष्ठ गन्धर्व स्त्रियोंसहित भगवान् का निर्मल यश गाने लगे ॥५॥ श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करनेवाली तिन गोपियों के हाथों में के कङ्कणों का, पैरों में की पायलों का और कमरकी पेटीमें लगेहुए घूँघरुओंका एक साथ मिलकर बडाभारी शब्द हुआ॥६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रंथयः कृष्णवध्वो गायत्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥ उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुंदेन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रांता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चंदनालिप्तमा-

उस रासमण्डल में, जैसे सोने के दो २ दानों के बीच में नीलमणि विशेष शोभा पाता है तैसे ही सुवर्णसमान वर्णवालीं गलबाहीं डालेहुए उन दो २ गोपियों के बीच में श्यामवर्ण भगवान् श्रीकृष्णजी, अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ ७ ॥ तैसे ही पैर आगे पीछे रखना, हाथ नचाना, मन्दहास्य के साथ भृकुटियों को चलाना, कमर को लचकाना, वस्त्र और कुचों का हिलना, और कपोलोंपर वारंवार कुण्डलों का चमकना इन लक्षणोंवालीं और जिन के मुखोंपर पसीने की बिन्दु आगई हैं, केशों में और कमर की फेंटों में दृढ गांठ लगरही है और कृष्ण को गानेवालीं वह गोपियें भी, जैसे मेघमण्डल में चमकती हुई बिजली शोभापाती है तैसे कृष्ण के साथ में शोभापाने लगीं यहां अनेकों मूर्त्ति धारण करनेवाले कृष्ण मेघमण्डल की समान, वह गोपियें अनेक बिजलियों की समान, पसीने की बूंदें फुहार की समान और गाना गर्जने की समान जानना ॥ ८ ॥ उस समय नृत्य करनेवालीं, कण्ठ में से नाना प्रकार के रागों का उच्चारण करनेवालीं, श्रीकृष्ण के स्पर्श से आनन्दित हुई और कृष्ण की प्रीति को ही प्रिय माननेवालीं वह गोपियें ऊँचे स्वर से ऐसा गानेलगीं कि—उस गाने से यह जगत् भरगया ॥ ९ ॥ कोई एक गोपी, श्रीकृष्ण के साथ षड्ज आदि स्वरों का आलाप करने पर, श्रीकृष्ण के चढाये हुए आलाप में न मिलनेवाले नवीन २ ही आलाप लेनेलगी तब उस को सुनकर श्रीकृष्ण ने 'वाह वाह, वाह वाह' ऐसा कहकर उस का सत्कार करा तब उसने उस ही आलाप को ध्रुव नामक ताल के ऊपर ऊँचा चढादिया तब श्रीकृष्ण ने उस का बडाही सन्मान करा ॥ १० ॥ इस प्रकार नृत्य गान आदि के द्वारा श्रीकृष्ण से मान पाई हुई उन गोपियों का अति प्रीति से ऐसा विलासयुक्त वर्त्ताव हुआ कि—किसी एक अति सुकुमार गोपी को रासक्रीडा से थकन चढ़कर निर्बलता हुई सो उस के हाथों में के कङ्कण और केशों के जूडे में से मल्लिका के फूल गिरने लगे तब उसने अपने पास विराजमान श्रीकृष्णजी का कन्धा हाथों से कसकर पकड लिया ॥ ११ ॥ उन गोपियों में से एक गोपी ने तो—अपने कन्धेपर रक्खे हुए, जिसमें से कमलके सी सुग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्राय हृष्टरोमा चुचुंब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्॥ गण्डं गण्डे संदधत्या आदत्तांबूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांताधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रियं एकांतवल्लभम् ॥ गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायंत्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता नृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वङ्करभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥ १७ ॥ तदङ्गसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा॥ नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो

न्धु आरही है ऐसे चन्दन का लेप लगे हुए श्रीकृष्णजी के बाहु को सूँघकर शरीरपर रोमाञ्च धारण करे और उस बाहु का चुम्बन करने लगी ॥ १२ ॥ उस समय नृत्य करने से हलते हुए कुण्डलों की कान्ति से शोभायमान अपना कपोल श्रीकृष्णजी के कपोल से मिलानेवाली एक दूसरी गोपी को श्रीकृष्णजी ने अपना चबाया हुआ ताम्बूल दिया ॥ १३ ॥ जिस के पैरों में पायल और कमर की पेटी के घूँघरू बजरहे हैं ऐसी नृत्य और गान करनेवाली एक गोपी ने, अपने थकजानेपर उस थकावट को दूर करके सुख देनेवाला, पास में विराजमान श्रीकृष्णजी का करकमल अपने स्तनोंपर रक्खा॥ १४। हे राजन् ! इस प्रकार लक्ष्मी के प्रियपति श्रीकृष्णजी को कान्त पाकर, उन की भुजाओं से कण्ठ में गलबाहीं डाली हुई उन सब गोपियों ने, उन का ही गान करते २ क्रीडा करी ॥ १५ ॥ उस समय बाजे बजानेवाले और गान करनेवाले गन्धर्व किन्नर आदि रस के आवेश से मोहित होकर वह आप ही नाचने लगे तब दूसरी ही बाजे की सम्पत्ति हुई तिस को दिखाते हुए रासक्रीडा का सम्भ्रम वर्णन करते हैं कि— कानोंपर उरसेहुए कमल और घुँघराले केशों से शोभायमान कपोलों से और पसीने के बिन्दुओं से जिन गोपियो के मुखपर शोभा आरही है और जिन के केशों में से फूलों की माला नीचे गिरी पडती हैं ऐसी गोपियें, हाथों में के कङ्कण और पैरों में की पायलरूप बाजों के शब्द के साथ, भ्रमर ही जहां गवैये हैं ऐसी रास की सभा में भगवान् के साथ नृत्य करनेलगीं ॥ १६ ॥ जैसे गोपियों ने अनेकों विलास करके भगवान् के साथ क्रीडाकरी तैसेही श्रीकृष्ण ने भी, उन गोपियों के साथ, जैसे छोटासा बालक दर्पण में पडीहुई अपनी परछाहीं के साथ क्रीडा करैं तैसे हृदय से लगाना हाथों से अङ्गो को छूना, प्रेमकेसाथ देखना और भी अनेकों विलास करना तथा हास्य करना इत्यादि के द्वारा क्रीडाकरी ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उससमय उन भगवान् के अङ्ग के सङ्ग से प्राप्तहुए परम हर्ष करके जिनकी इन्द्रियें परवश हुई हैं और जिनके शरीरपर के माला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुंडलकुंतलत्विङ्गंडश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्करुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रमपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरंजितायाः ॥ गंधर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वोः श्रांतो गजी-

और भूषण गिरपडे हैं ऐसी वह गोकुल की स्त्रियें, गाँठखुलकर अस्तव्यस्तहुए अपने केशों को, पहिरेहुए वस्त्रोंको और स्तनोंपर की चंद्रियोंको पहिले की समान सहन में ठीक २ धारण करने को समर्थ नहीं हुईं ॥ १८ ॥ केवल वहगोपियें ही मोहित नहीं हुईं किन्तु—ऐसी श्रीकृष्णजी की क्रीड़ा को देखकर काम से पीडित हुईं देवताओं की स्त्रियेंभी मोहित (मूर्छित) होगईं तथा शुक्र मङ्गलादि ग्रहगणों सहित चन्द्रमा भी उस रासक्रीडा को देखकर आश्चर्य में होगया, इस से यह सूचित करा कि—आश्चर्य में हुआ चन्द्रमा जब अपनी गति को भूलगया तब,उसके पीछे के सबही ग्रह जहाँ के तहाँही रहगये, तिस से बहुत बडी रात्रि होजाने पर उस समय गोपियों ने सुखके साथ क्रीडा करी ॥ १९ ॥ और उन श्रीकृष्णजी ने, अपने स्वरूप में रमण करनेवाले आत्माराम होकर भी, पहिले कात्यायनी का व्रत करतेसमय गोपकन्याओं से कहदिया था उसीके अनुसार सबका मनोरथ पूरा होनेके निमित्त जितनी गोपस्त्रियें थीं लीलासे उतने ही अपने स्वरूप धारण करके उनके साथ क्रीडा करी ॥ २० ॥ हे राजन् ! अतिविहार करने से थकीहुईं उन गोपियों के पसीने से भीगेहुए मुखों को तिन दयालु श्रीकृष्ण ने, परमसुखदायक अपने हाथ से प्रेम के साथ पूँछा ॥ २१ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी के नखों के स्पर्श से अति हर्षको प्राप्त हुईं वह गोपियें, झलकते हुए सुवर्ण के कुण्डलों की और घुँघुराले केशों की कान्ति से कपोलों पर प्राप्तहुई परम शोभा से और अमृतसमान हास्यसहित अवलोकन से तिन जगत्पति श्रीकृष्णजी का सत्कार करती हुईं उनके पवित्रचरित्रों को गानेलगीं ॥ २२ ॥ तदनन्तर उन गोपियों सहित वह श्रीकृष्णजी, तिन गोपियों के अङ्ग के सङ्ग से मसलीहुई और उनके स्तनोंका केशर लगकर रँगी हुई अपने गलेकी माला के सम्बंध से, गंधर्वपतियों की समान गाते (झङ्कार शब्द करते) हुए भौंरे जिन के पीछे २ आरहे हैं ऐसे होते हुए, विहार करने से प्राप्तहुई थकावट को दूर करनेके निमित्त' जैसे नदीके किनारे मे टक्कर मार उसको तोड डालनेवाला गजराज' उस से होनेवाली थकावट को दूर करने के निमित्त हथनियों के साथ जल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगंधानिलजुष्टदिक्तटे ॥ चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्विरदः करेणुभिः ॥ ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरतावलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक

में घुसता है तैसे ही उन्हों ने जल में प्रवेश करा ॥२३॥ हे राजन्! हास्य करनेवाली तरुणी स्त्रियों ने, जिनके ऊपर को चारों ओरसे अत्यन्त जल उछाला है और जिनको प्रेमके साथ देखा है तथा फूलों की वर्षा करनेवाले देवताओं ने जिनकी स्तुति करी है ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, स्वयं आत्माराम होकर भी गजराज की समान लीला करते हुए जल में स्त्रियों के साथ क्रीडा करते रहे ॥ २४ ॥ फिर उन श्रीकृष्णजी ने, जल के और स्थल के पुष्पों की सुगंधि को उडानेवाले वायु से जहाँ के सबही दिशाओं में के स्थान व्याप्त होरहे हैं ऐसे यमुना के उपवन में भौंरों के और गोपियों के समूहों से घिरे हुए होकर, जैसे मद टपकाने वाला गजराज हथनियों के समूहों से घिरकर क्रीडा करता हुआ वनमें विचरे तैसे क्रीडा करते हुए विचरे ॥ २५ ॥ इसप्रकार प्रेम करनेवाली स्त्रियों के समूह में रहने वाले, सत्यसङ्कल्प और अपने में ही वीर्य को रोकनेवाले (अस्खलितवीर्य) तिन श्रीकृष्णजी ने, चन्द्रमा की किरणों करके प्रकाशयुक्तहुई और शरद् ऋतु में होनेवाले तथा काव्य में कहेहुए रसों की आश्रय उन सकल रात्रियों में इसप्रकार क्रीडा करी ॥ २६ ॥ राजाने कहा कि-हे शुकदेव जी ! धर्म की भली प्रकार स्थापन करने को और अधर्म को दूर करने को ही अपने अंशरूप बलरामजी के साथ उन जगदीश्वर भगवान् ने अवतार धारा था॥२७॥फिर हेब्रह्मन् !उपदेश करके दूसरों से धर्मकी मर्यादा को प्रवृत्तकरनेवाले, आप आचरण करके दिखानेवाले और विरोधियों का तिरस्कार करके सब प्रकारके धर्म की रक्षा करनेवाले उन श्रीकृष्णजीने ही परस्त्री का सम्भोगरूप यहबडा धर्मविरुद्धकार्य कैसे किया? यदि कहो कि-पूर्णमनोरथोंको यह अधर्म नहीं होता है तो-पूर्णकाम भी निन्दितकर्म नहीं करते हैं तब पूर्णमनोरथ श्रीकृष्णजी ने, किस अभिप्राय से यह परस्त्री सम्भोगरूप निन्दितकर्म करा? हेसदाचार! इसहमारे सन्देह को तुम काटो॥२९॥परमेश्वर को इसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्वानां तिर्यङ्मर्त्यादिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्र-

दोष नहीं है यह सिद्ध करने को सामान्यरूप से महान् पुरुषों का वर्त्ताव कहतेहुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! ब्रह्माजी, इन्द्र, चन्द्रमा, विश्वामित्र इत्यादिकों में भी धर्म मर्यादा का उल्लंघन और हठ के साथ साहस भी देखने में आता है, परन्तु वह कर्म तेजस्वी पुरुषों को 'जैसे सकल अमङ्गल पदार्थ जलानेवाले भी अग्निको वह कर्म दोषनहीं देसक्ता तैसे ही' पाप नहीं लगासक्ता ॥ ३०॥ यदि कहो कि—और भी उनका कार्य देखकर वैसा ही करेंगे तो सुनो—देहादि के पराधीन होने के कारण जो तेजस्वी नहीं हैं उन को कदापि ऐसे शास्त्रविरुद्ध कर्म को करने का मनमें भी विचार भी नहीं करना चाहिये;यदि मूर्खतासे कोई ऐसा करेगा तो वह 'जैसे रुद्रभगवान् के सिवाय दूसरा पुरुष समुद्र में के कालकूट विषको पिये तो वह नाश को प्राप्त होता है तैसे नष्ट होजायगा ॥ ३१॥ यदि कहोकि तव सदाचार का प्रमाण कैसे मानाजायगा ? तो सुनो—ज्ञान वैराग्य आदि के वेगयुक्त तेजस्वी पुरुषों का आज्ञारूप भाषण सत्य है इसकारण उन्हों ने जैसा आचरण कराहोय तैसाही आचरण करे परन्तु कहीं उन का आचरण लौकिकव्यवहार के प्रतिकूल भी होता है इसकारण बुद्धिमान् पुरुष, जो उन का आचरण उनने उपदेश से मिलता हो उतने का ही आचरण करे अर्थात् केवल महान् पुरुषों का आचरण देखकर ही वैसा न करनेलगे क्योंकि वह आचरण उन के ही स्वरूप और तेज के अनुसार है इससे महान् पुरुष जिस अपने आचरण का उपदेश दें उस को ही बुद्धिमान् स्वीकार करे ॥ ३२ ॥ यदि कहोकि—वह ऐसा साहस क्यों करते हैं ? तो सुनो—हे समर्थ राजन् ! उन निरहङ्कारी पुरुषों को धर्माचरण करने से इस लोक में वा परलोक में किसीप्रकार का फल वा सुख नहीं मिलता है और अधर्म करने से अनर्थ वा दुःख भी नहीं मिलेगा, क्योंकि—उनका कर्म केवल प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने पर्यन्त ही रहता है ॥ ३३ ॥ यह तो ईश्वर के सिवाय अन्य ज्ञानी पुरुषों की वार्त्ता हुई; इससे यह कैसे सिद्ध होसक्ता है कि—आज्ञा करके वर्त्ताव करानेयोग्य सर्प पक्षी आदि तिर्यक् योनि, और मनुष्य देवता आदि सकल प्राणियों को अपनी आज्ञा से वर्त्ताव कराने वाले श्रीकृष्ण को धर्माचरण करने से पुण्य का और अधर्माचरण से पाप का सम्बन्ध नहीं होता है ॥ ३४ ॥ जिन के चरणकमल के पराग की सेवा करके तृप्तहुए भगवद्भक्त, तैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरंति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान्दारान् व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ आनिच्छंत्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥

ही जिनके ध्यानरूप योग शक्ति से, सकल कर्मबन्धनों से छूटेहुए योगीजन और जिनकी एकताका चिन्तवन करनेवाले ज्ञानी भी किसी कर्म से बन्धन न पाकर अपनी इच्छानुसार विचरते हैं,उन अपनी इच्छा से कृष्ण अवतार धारनेवाले भगवान् को लोकविरुद्ध आचरण से कैसे बन्धन होसक्ता है ? ॥ ३५ ॥ इसप्रकार गोपियों को परस्त्री मानकर उत्तर कहा. अब सर्वान्तर्यामी भगवान् का यह परस्त्रीसेवन किसीप्रकार भी नहीं हैं ऐसा कहते हैं— जो गोपियोंके,उन के पतियों के और सबही प्राणियों के भीतर बुद्धि आदिकों के साक्षीरूप से विराजमान रहतेहैं वही भगवान् अपनी लीला से यहां देहधारी हुए हैं;जिनको देहसे दोष लगे हम तुमसे देहधारी वह नहीं हैं॥३६॥तो फिर उन पूर्णकाम भगवान्की निन्दित कर्ममें प्रवृत्ति क्योंहुई?ऐसाकहो तो सुनो पूर्णकाम भी भगवान् ने प्राणीमात्र के ऊपर अनुग्रहकरने के निमित्त मनुष्यशरीर को स्वीकार करके ऐसी क्रीड़ा करीं कि- जिनको सुनकर शृंगार रससे जिसका चित्त खिंचाहुआहै ऐसा अत्यन्त बहिर्मुख भी पुरुष (भगवद्भक्ति में) तत्परहोय ॥ ३७॥ यदि कहो कि—अब दूसरे भी आचार भ्रष्ट कोई पुरुष कहैंगे कि—हमारा भी आचरण ऐसाही है तो सुनो—गोकुल में रहनेवाली गोपियों के पतियों ने श्रीकृष्ण जी की कुछ भी निन्दा नहीं करी, क्योंकि—वह उनकी माया से मोहित होकर अपनी२ स्त्रियों को,अपने समीप ही हैं ऐसा मानते थे; ऐसा प्रभाव विनाहुए केवल कृष्ण की समान परस्त्री संभोग करनेवाले पुरुषों को पापी जानों ॥ ३८ ॥ ब्रह्ममुहूर्त्त (पौ फटने का समय) होने पर श्रीकृष्ण जी ने जिनको घर जाने की आज्ञा दी है ऐसी वह भगवान् की प्रिय गोपियें, घरजाने की इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्ट से अपने २ घरों को गईं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष, श्रद्धावान् होकर, गोकुल की स्त्रियों के साथ श्रीकृष्ण जी की इस क्रीड़ा को क्रमसे सुनेगा अथवा पढ़ेगा वह, उन श्रीकृष्ण भगवान् में उत्तम भक्ति पाकर थोड़े ही काल में जितेन्द्रिय होताहुआ, हृदय में रहकर रोग की समान अनर्थ क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपालाः जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृप तेऽम्बिकां ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा वि-

रनेवाले कामका अत्यन्त तिरस्कार करेगा ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे चौतीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने, अजगर के निगलेहुए नन्द जी को छुड़ाया और उस अजगररूपी सुदर्शन नामक विद्याधर को भी आङ्गिरस ऋषि के शाप से छुटाया तथा शङ्खचूड़ नामवाले यक्ष का वध करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि—हे राजन्! एक समय महादेव जी की यात्रा को जाने के निमित्त जिनके मन में कौतुक उत्पन्न हुआ है ऐसे नन्द आदि गोपाल, बैल जोड़ीहुई गाड़ियों पर बैठकर मथुरा से पश्चिम की ओर सरस्वती नदी के तटपर के अम्बिकावन में पहुँचे ॥ १ ॥ हे राजन्! तहाँ उन्हों ने सरस्वती नदी में स्नान करके गन्ध पुष्प आदि पूजा की सामग्रियों से भक्तों के मनोरथ पूरे करनेवाले रुद्रदेव की और अम्बिकादेवी की भक्ति के साथ पूजा करी ॥ २ ॥ और वह महादेव जी हमारे ऊपर प्रसन्न हों इस हेतु से उन सब गोपों ने, आदर के साथ गौ, सुवर्ण, वस्त्र और मधुसहित मधुर अन्न ब्राह्मणों को समर्पण करे ॥ ३ ॥ फिर वह महाभाग नन्द सुनन्द आदि गोप, केवल जलमात्र पीकर निराहार व्रत और ब्रह्मचर्य आदि नियम धारण करते हुए उस रात को उस सरस्वती के तटपर ही बसेरहे ॥ ४ ॥ उस जङ्गल में कोई एक बड़ा भारी अजगर सर्प बहुत भूखा था वह रात्रि में स्वाभाविक फिरता २ धीरे धीरे पेटके बल तहां आकर सोयेहुए नन्दजी को निगलगया ॥ ५ ॥ तब सर्प ने जिनको पैरोंकी ओर से निगल लिया है ऐसे वह नन्दजी ऐसे हाहाकार करने लगे कि—हे कृष्ण! कृष्ण! यह बड़ा भारी अजगर सर्प मुझे निगले जाता है इसकारण शरण में आयेहुए मुझ को तुम इस से छुड़ाओ ॥ ६ ॥ ऐसा उनका दीन वचन और रोना सुनकर जागकर शीघ्रतासे उठेहुए वह गोपाल, नन्द जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रांताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्हन्यमानोऽपि नामुंचत्तमुरंगमः ॥ तमस्पृष्टपदोऽभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरम् दिशः ॥ १२ ॥ ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्रहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां

को सर्प ने निगल लिया ऐसा देखकर जलतेहुए काठों से उस सर्प को मारने लगे॥७॥ जलतेहुए काठोंसे जिसका शरीर झुलसगया है ऐसे भी उस अजगर सर्पने जब नन्दजीको नहीं छोडा तब भक्तरक्षक भगवान् श्रीकृष्णजी ने तहाँ आकर सर्प को चरण से ठुकराया ॥८॥ तब वह सर्प,भगवान् के भक्तोंके मनोरथों को पूराकरनेवाले चरण के स्पर्शसे जिस के शापरूप पातक नष्ट होगए हैं ऐसा होकर सर्पशरीरको त्यागकर विद्याधरों से पूजित अपने विद्याधरस्वरूप को प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ तब सुवर्ण के पुष्पों की माला धारण करके दमकतेहुए शरीर से अपने आगे नमस्कार करके खड़ेहुए उस पुरुष को देखकर सब के मन की बात जाननेवाले भी वह श्रीकृष्णजी, गोपों में अपना ऐश्वर्य प्रकट करने के निमित्त अनजान की समान उससे बूझने लगे कि—॥ १० ॥ जो अब अद्भुत दीखने वाला तू परम शोभा से प्रकाश पारहा है सो तू कौन है ? तुझ उत्तम को पराधीनता प्राप्तहुए विना यह सर्प की योनि नहीं प्राप्तहुई है सो तुझे इस निन्दित सर्प की योनि में किसने कैसे डाला है ? सो मुझे बता ॥ ११ ॥ तब सर्प ने कहा कि—हे प्रभो! मैं सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध देवयोनि का एक विद्याधर हूँ सो मैं पहिले कान्ति से और स्वरूप की समृद्धि से युक्त हो विमान में बैठा दशों दिशाओंमें घूमाकरता था ॥ १२ ॥ सो एक समय कुरूपवान् आङ्गिरस ऋषियों को देखा और अपने रूप की सुन्दरता से गर्व में होकर उनकी हँसी करी, तब मेरे उपहास करेहुए उन ऋषियों ने, मेरे अपराध करने के कारण मुझे शाप देकर इस सर्पयोनि में पहुँचादिया था ॥ १३ ॥ उन-दयावान् ऋषियों ने मेरे ऊपर अनुग्रह करने को ही यह अजगरयोनि का शाप दिया था जिससे कि—अब तुमने मुझे चरण से स्पर्श करा और उसके प्रभाव से मैं शाप से छूट गया ॥ १४ ॥ हे सकलपापनाशक ! संसार से भय मानकर तुम्हारी शरण में आ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्ते च्युत दर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ १७ ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपायमुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥ उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्वद्धसौहृदैः ॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ॥ मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥

येहुए लोकों का पाप दूर करने वाले तुम भगवान से तुम्हारे चरण का स्पर्श होने के कारण शाप से छूटाहुआ मैं, अपने लोक को जाने की आज्ञा माँगता हूँ ॥ १५ ॥ हे भक्तपालक ! महापुरुष ! हे सर्वलोकेश्वर ! महायोगिन् ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ इस कारण मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दो ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! तुम्हारे दर्शन से मैं तत्काल ब्रह्मशाप से छूटा हूँ. इस में कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि–जिन तुम्हारे नाम को उच्चारण करनेवाला पुरुष, सकल श्रोताओं को और अपने को तत्काल पवित्र करता है, फिर तुम्हारे चरण का स्पर्श करहुआ मैं पवित्र हुआ इस में आश्चर्य ही क्या ! ॥ १७ ॥ इसप्रकार सुदर्शन नामवाला विद्याधर श्रीकृष्णजी की आज्ञालेकर और उनको प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके स्वर्ग लोक को चलागया और श्रीकृष्णजी ने नन्दजी को भी उस सर्प शरीर के मुख में से निकालकर सङ्कट से छुटाया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! गोकुलवासी गोप, चरणके स्पर्शमात्र से ही अजगर सर्प से नन्दजी का और शाप से सुदर्शन विद्याधर क छूटनारूप वह श्रीकृष्णजी का बड़ाभारी प्रभाव देखकर विस्मय में होगये और उस अम्बिकावन में करने का जो कुछ नियम था उसको समाप्त करके बड़े आदरके साथ उसही श्रीकृष्ण की प्रभाव की आपस में बातें करतेहुए तिस अम्बिकावन से फिर गोकुल को चलेआये ॥ १९ ॥ तदनन्तर एक समय श्रीकृष्णजी और महापराक्रमी बलराम यह दोनों, वन में रात्रि के समय गोकुल की स्त्रियों में आकर क्रीडा कररहे थे ॥ २० ॥ उन प्रेमकरनेवाली स्त्रियों ने भी उत्तम स्वर से जिनको गाया है ऐसे, आभूषण पहिने, शरीरपर चन्दन का लेप करे, वनमाला पहिने और निर्मल वस्त्र पहिने जिस में चन्द्रमा और तारागणों का उदय होरहा है मल्लिका की सुगन्ध से मत्तहुए भौंरे फिररहे हैं और चन्द्रमा के उदय में खिलनेवाले कमलों की सुगन्धिको उड़ानेवाले पवन से सेवन करेहुए रात्रि के प्रवेशकी प्रशंसा कररहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ॥ तौ कल्पयन्तौ युगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छितां नाविदन्नृप ॥ संसङ्कुलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् ॥ शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदागणम् ॥ क्रोशंतं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः ॥ ॥ २६ ॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ ॥ २९ ॥ तमन्वधावद्गोविंदो यत्र यत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥

थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह बलराम और कृष्ण, दूसरों को जिसका मनमें विचार करना भी कठिन है ऐसे अनेकों स्वरों का एकसाथ चढाव उतार करके आलाप करतेहुए सुननेवाले सकललोकों के मनों को और कानों को जैसे सुखदायक होय तैसे गानेलगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उनका वह गाना सुनकर मोहितहुई गोपियें,तिस मोहके होने से जिन के शरीरों पर के वस्त्र खसकगये हैं और जिन के केशोंपर की पुष्पमाला गिरपडी हैं ऐसी वह अपने देहों की सुध को भी भूलगई ॥२४॥ इसप्रकार इच्छानुसार परम मत्तहुए से वह बलराम कृष्ण क्रीडा कररहे थे सो इतने ही में शङ्खचूडनाम से प्रसिद्ध एक कुबेरका सेवक आया ॥२५ ॥ और हे राजन् ! मनमें भय की शङ्का भी न करनेवाला वह शङ्खचूड उन बलराम कृष्ण के देखतेहुए उन को कुछ न गिनकर, वहीं जिनके रक्षक हैं ऐसी चिल्लातीहुई स्त्रियों के समूह को बलात्कार से पकडकर उत्तर दिशा की ओर को चलदिया ॥ २६ ॥ तब बाघकी पकडीहुई गौएँ जैसे डकराती हैं तैसे हे राम ! हे कृष्ण ! ऐसा पुकारतीहुई और अपनी करके मानीहुई उन गोपियों को उस से छुडाने के निमित्त वह दोनो ही भ्राता दौडे ॥ २७ ॥ और गोपियोंका भय दूर करनेवाले 'डरोमत' ऐसा शब्द उच्चारण करते, हाथ में शाल के वृक्ष उखाडकर लियेहुए और बडे वेग से दौडनेवाले वह बलराम कृष्ण, वेग से शीघ्र ही गुह्यकों में अधम उस शङ्खचूड के पास जापहुँचे ॥२८॥ तब वह मूढ शङ्खचूड एक मूर्त्तिमान् मरणकाल और एक मूर्त्तिमान् मृत्यु ऐसे भयङ्कर आयेहुए उन बलराम कृष्णको देखकर डरगया और बचने की इच्छा से स्त्रियों को छोडकर भागनेलगा ॥२९॥ उससमय वह जिधर२ को भागा उधर२ को श्रीकृष्णजी भी,उस के मस्तकपर के मणि को हरने की इच्छा से दौडनेलगे; इधर बलरामजी उन स्त्रियों की रक्षाकरतेहुए तहाँ ही रहे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! फिर प्रभु श्रीकृष्णजी ने, समीप में ही उस के सामने आकर केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहार मुष्टिनैवांगं सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरं ॥ अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषितां ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शङ्खचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥ नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगा-

अपने घूँसेसे ही मस्तकपर की मणिसहित उसदुष्ट शङ्खचूड का मस्तक हरलिया ॥३१॥ इसप्रकार शंखचूड को मारकर उस के मस्तकपर का तेज से दमकताहुआ मणिलेकर श्रीकृष्णजी, बलरामजी के पास आये और उन्होंने बडी प्रीति से वह मणि, सब स्त्रियों के देखतेहुए बलरामजी को देदिया ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे पैंतीसवें अध्याय में दिनके समय श्रीकृष्णजी के वन को चलेजानेपर गोकुलमें की स्त्रियों ने दो२ श्लोकों का एक२ऐसे युग्मगीतों से दुःख में दिनबिताए यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! दिन में श्रीकृष्णजी के वन को चलेजानेपर उन में ही जिनका चित्तलगा है ऐसी वह गोपियें, कृष्णकीलीलाओं को ही उत्तमता के साथ गातीहुई बडे कष्ट से दिन बितातीथीं ॥ १ ॥ कोई गोपी दूसरी गोपियों से कहने लगीं कि—अरीगोपियों! बाईं भुजा में जिन्हों ने अपना बायाँ कपोल टेकाहै और जिन्होंने अपनी भ्रकुटिको नचाया है ऐसेवह श्रीकृष्णजी, अपने हाथकी कोमल अंगुलियों से जिसके सातोंस्वरों के छिद्रों का आश्रय करा है ऐसी अधर ओठपर रक्खी हुई वेणु को जब बजाते हैं -॥२॥ तब विमानमें अपने पतियों के साथ बैठीहुई भी सिद्धों की स्त्रियें, उस वेणुगीत को सुनकर पहिले आश्चर्य में होती हैं फिर जिन्होंने अपने चित्त कामदेवके बाणोंको अर्पण करे हैं ऐसी (कामातुर) और लज्जायुक्त होकर इतनी मोहित होती हैं कि—जिनको कामपीडा से हुई उस तलावेली में, नाडे खुलकर गिरेहुए वस्त्रों का भी भान नहीं रहता है; सो ऐसे कृष्ण का विरह हम कैसे सहें ? ॥ ३ ॥ दूसरी बोलीं कि—हे गोपियों! यह बडा आश्चर्य सुनो, जिनका हास्य हारकी समान स्वेत है और जिनके वक्षःस्थल पर बिजलीकी समान दमकती हुई लक्ष्मी स्थिर रहती है ऐसे यह नंदकुमार श्रीकृष्णजी अपने विरहसे दुःखित हुई हम सखियों को सुख देने के निमित्त जब मुरली बजाते हैं ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दंतदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तवकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडंबः ॥ कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गोः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः॥६॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदांबुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापाः ॥ ७ ॥ अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥ वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि संधितवेणुः॥१०॥ सरसि सा-

तब गोकुल में के बैल, गौएँ और वनमें के हिरनों के झुण्ड के झुण्ड, दूरसेही वेणुका शब्द सुनकर जिनका चित्त हरागया है ऐसे होते हुए, दाँतों से तोड़े हुए ग्रास विना चवाये ही मुखमें तैसेही रखकर कान खड़े करके नेत्र मूँदकर सोते हुए से और लिखेहुए चित्र की समान निश्चल होकर खड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ दूसरी गोपी कहनेलगीं कि–हे सखि ! मोरों केपरोंके, झूमके गेरु आदि धातु और कोमल पत्तोंसे मल्लोंकी समानरूप बनानेवाले बलराम और गोपों सहित वह श्रीकृष्णजी, जबकभी वेणुके शब्दसे गौओंको बुलाते हैं–॥ ६ ॥ तब उस वेणु के शब्द को सुनकर, जैसे हम (गोपियें) बहुतसा पुण्य नहोने के कारण, पवन के उड़ाकर लाएहुए उनके चरण कमल की धूलिकी इच्छा करती हुईं कुण्ठितगति (चलने की शक्तिसे रहित) होकर खड़ी रहती हैं और हमारी भुजा प्रेमसे काँपनेलगती हैं तथा हमारे नेत्रोंमें जल निश्चल रूप मे भरजाता है तैसेही नदियें भी आगेको जानेका वेग बन्द होकर रुकजाती हैं उन के जल निश्चल होजाते हैं और उनकी तरङ्गरूप भुजा प्रेमसे काँपने लगती हैं ॥ ७ ॥ दूसरी गोपी कहनेलगीं कि–अरी सखियों ! निश्चल सम्पत्ति वाले आदिपुरुष भगवान् की समान और अनुचरों ने (सेवकदेवताओं ने वा गोपों ने) जिनका पराक्रम वर्णन करा है ऐसे वनमें फिरनेवाले वह श्रीकृष्णजी, गोवर्द्धन पर्वत के चारोंओर फिरनेवाली गौओंको, जब उनके नामोंसे युक्त वेणुगीत में बुलाते हैं–॥ ८ ॥ तब हममें विष्णुका प्रकाश है ऐसा सूचित करती हुईं मानो पुष्पों से और फलों से युक्त होकर जिनकी शाखा भारसे झुकीहुई हैं और जिनके अङ्गपर प्रेम से काँटेरूपी रोमाञ्च खड़े होगयेहैं ऐसी वनमें की लता और ऐसे ही वृक्ष, अपनेमें से मदकी धारा बहातेहैं ॥९॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि–सुन्दर पुरुषों में मुख्य और वनमाला में के दिव्य गन्धवाले तुलसी के मदसे मत्तहुए भौंरों के समूहों के ऊँचस्वर से गाएहुए अनुकूल गानको आदर के साथ सुननेवाले वह श्रीकृष्ण जब वेणुको बजाने लगते हैं–॥ १० ॥ तब सरोवरों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस ऐत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यहि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्यति विश्वम् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दगन्दमनुगर्ज्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रं ॥ १३ ॥ विविधगापरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ ॥ १४ ॥ सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशिवब्रह्मगेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र

रहनेवाले सारस, राजहंस और दूसरे पक्षी, उस सुन्दर गीतसे मोहित होकर एकाग्रचित्त पनेसे श्रीकृष्णजी के समीप आकर, मौनव्रत धारण करतेहुए और सुनने में सुख मिलने से नेत्रों को मूँदतेहुए श्रीहरि की उपासना करते हैं, यह कैसा आश्चर्य है ?॥११ ॥ कोई गोपी कहनेलगीं कि–हे गोपियों ! कानों में उरसे हुए पुष्पों की मालाओं के तोड़ोंसे शोभायमान होनेवाले वह श्रीकृष्णजी, बलरामजी के साथ गोवर्द्धन पर्वत के चारोंओर की भूमि में फिरते हुए, आप हर्षयुक्त होकर जगत् को हर्षित करते हुए वेणुके शब्दसे जब वह जगत् को भरदेते हैं–॥ १२ ॥ तब पूजनीय तिन श्रीकृष्णजी को,मेरी भारी गर्जन, से असह्य होगा ऐसी मन में शङ्का करनेवाला मेघ, श्रीकृष्णजी के पास नहीं आताहै और गर्जता भी नहीं है, किन्तु दूरसे ही वेणुके शब्द के पीछे २ मन्द २ गर्जना करता है और जगत् का ताप दूर करने की तथा श्यामता आदि गुणोंकी समता होनेसे उन अपने सखा श्रीकृष्णजी के ऊपर छाया करके छत्र धारण करता हुआ पुष्पों की वर्षा करता है यहाँ मेघों की आड में रहकर देवताओं की करीहुई पुष्पों की वर्षा की ही मेघमें कल्पना करके, वह मेघ ही करता है ऐसा वर्णन करा है ॥ १३ ॥ दूसरी गोपी बडा आश्चर्य करतीहुई कहनेलगीं कि–हे पतिव्रता यशोदा ! नाना प्रकार की गोपक्रीडा में चतुर यह तेरा पुत्र श्रीकृष्ण ! पकीहुई तन्दूरी की समान अपने लाल २ अधर ओठपर वेणुको लगाकर, वेणु बजाने में अनेकों प्रकार की अपनी कल्पना की शिक्षा जिनमें हैं ऐसे निषाद, ऋषभ आदि स्वरों के आलापों के भेदों को जब बनाकर दिखाते हैं–॥ १४ ॥ तब गान का तत्त्व जाननेवाले इन्द्र, शिव और ब्रह्मादि,देवताओं के अधिपतिभी जिधर से गाने का शब्द आताहै उधरको अपनी गर्दन झुकाकर और चित्त देकर मन्द,मध्यम और अति ऊँचा इन क्रमोंसे निश्चलता करके उस गान को सुनकर उसके तत्त्व को न समझने के कारण मोह को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ हम अपने मोहित होने की तो बातही क्या कहें ? हे यशोदा ! ध्वजा, वज्र, कमल और अंकुश आदि अनेकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीरजांकुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥ कुंजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥ मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥ क्वणितवेणुरववंचितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ ॥ १९ ॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥ मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥ वंदिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ ॥ २१ ॥ वत्सलो व्रजगवां गदगेधो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्न-

प्रकार के चिन्हों से युक्त अपने चरणरूप कमल के पत्तों से गोकुलकी भूमि का गौओं के खुरों से खुदने के कारण प्राप्तहुआ दुःख दूर करतेहुए, गजराज की समान गति वाले वह कृष्ण, वेणु को वजाते हुए जब चलते हैं और विलास के साथ देखते हैं तब उन के चलने के और विलास के साथ देखने की रीति ने जिन को कामदेव का वेग दिया है और वृक्षों की समान निश्चल दशा को पहुँचादिया है ऐसी हम (गोपियें) मोहित होकर अपने पहनेहुए वस्त्र को और खुलेहुए केशोंके जूड़े को भी नहीं जानतीहैं ॥ ११ ॥ ॥ १७ ॥ गौओं की गिनती करने के निमित्त माला में पिरोये हुए मणियों को धारण करनेवाले तथा जिसका सुगन्ध प्यारा है ऐसी तुलसी की माला से शोभायमान श्रीकृष्ण किसी स्थानपर मणियों से गौओं की चारों ओर गणना करते हुए प्यारे मित्र के कन्धे पर अपनी बाहु रखकर जब वेणु को बजाते हैं—॥ १८ ॥ तब उस बजाईहुई वेणु के शब्द से जिन के चित्तों का आकर्षण हुआ है ऐसी काले हिरनों की स्त्रियें (हिरनियें), हम गोपियों की समान ही, घर द्वारों की आशा छोड़कर, मधुरता आदि गुण समूहों के समुद्ररूप श्रीकृष्णजी के चारों ओर निश्चल होकर खड़ी रहती हैं ॥ १९ ॥ दूसरी गोपियें कहने लगीं कि—अरी पवित्र यशोदा ! तेरा ढोटा, इतने ही में दूसरी कहनेलगीं कि—नन्द का पुत्र श्रीकृष्ण, वृन्दावन में क्रीड़ा करके गोपियों को आनन्द बांटने के निमित्त कुन्दके पुष्पों की मालाओं से कौतुकी वेष धारण करके सायङ्काल के समय गोप और गौओं सहित यमुना में, अपने ऊपर प्रेम करनेवाले गोपों को हर्षित करते हुए जब क्रीड़ा करते हैं—॥ २० ॥ तब चन्दन की समान सुगन्धयुक्त शीतल स्पर्श से तिन कृष्ण का सत्कार करनेवाला मन्द, पवन, अनुकूलता से चलने लगता है और उससमय स्तुति पढ़नेवालों की समान स्तुति आदि करनेवाले गन्धर्वादि उपदेवताओंके समूह बजाना, गाना और पुष्पों की वर्षासे उनकी सेवा करतेहैं ॥ २१ ॥ तदनन्तरआने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोधनमुपोह्य दिनांते गीतवेणुरनुगेडितकीर्त्तिः ॥ ॥ २२ ॥ उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥ मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपांडुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनांते ॥ मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला तु गायतीः ॥ रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडागोपिकागीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥ * ॥

वाले श्रीकृष्ण को देखकर वह गोपियें हर्ष से आपस में कहनेलगीं कि–हे सखियों ! यह देखो देवकी के उदर में से उत्पन्न हुआ कृष्णरूपी चन्द्रमा, हम सुहृदों के मनोरथपूरे करने को आरहा है, यह सब गोकुल का और गौओं का हित करनेवाला है, क्योंकि इसने गोवर्द्धन पर्वत को धारण कराथा; यह सायंकाल के समय सब गौओं को इकट्ठाकर के वेणु बजाताहुआ गोकुल में को लौटकर आनेलगता है तब मार्गमें ब्रह्मादिक देवता भी इसके चरणोंको प्रणाम करतेहैं,गो० इसकी कीर्त्ति का वर्णन करतेहैं इसके गलेमें की माला गौओंके पैरोंसे उड़ीहुई धूलिसे मैली होरही हैं;यह थकाहुआ भी अपने शरीर की कान्तिसे हमारे नेत्रोंको परमहर्षित करताहुआ आरहा है ॥२२॥२३॥ कितनी ही गोपियें,समीप में आयेहुए श्रीकृष्ण को देखकर बड़ी घबड़ाकर कहनेलगीं कि–अरी गोपियों ! जिनके नेत्र थोड़े से मदसे विह्वल होरहे हैं, जिनका मुख पकते हुए बेर की समान पाण्डुवर्ण दीख रहा है, जिन्होंने वनके पुष्पों की माला धारण करी है, जो अपने प्रेमीभक्तों का सन्मान करनेवाले हैं, जिन का चलना गजराज की समान है और जिनका मुख आनन्दयुक्त है ऐसे यह यदुपति श्रीकृष्ण, अपने सुवर्णके कुण्डलों की कांति से अपने सुकुमार कपोलों को शोभित करते हुए, जैसे दिन में लोकों को होनेवाले तापको दूर करने के निमित्त सायंकाल को चन्द्रमा उदय होता है तैसे ही गोकुल में की गौओं का और हमारा दुर्निवार विरह का ताप दूर करते हुए अत्यन्त समीप को आरहे हैं देखो ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! इस प्रकार जिनका निश्चयात्मक और सङ्कल्प विकल्पात्मक मन श्रीकृष्ण के विषें लौलीन होरहा है ऐसी उत्साह में भरीहुई गोपियें दिन के समय में भी विवाह के दुःख से ही कृष्णलीलाओं को गातीहुई अपने चित्त को आनन्दित करती थीं ॥ २६॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे छत्तीसवें अध्याय में, श्रीकृष्ण ने अरिष्टासुर को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कंपयन् खुरविक्षतां ॥ १ ॥ रंभमाणः खरतरं पदा चैं विलिखन्महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥ किंचित् किंचित् शकृन्मुंचन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनांगं निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३॥ पतंत्येकालतो गर्भाः स्रंवंति स्म भयेन वै ॥ निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृंगमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्द शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६॥ मा भैष्टेति गिरा-श्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्गर्द त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥

गारा और कंस ने नारद जी के मुखसे, बलराम और श्रीकृष्ण यह वसुदेव के पुत्र हैं ऐसा जानकर,उनको मथुरा से लाने की अक्रूर को आज्ञा करी यह कथा वर्णन करी है * श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन्! इस प्रकार देव गन्धर्व आदिकों के करेहुए गान, नृत्य, बाजावजाना और पुष्पों की वर्षा आदि क साथ आयेहुए श्रीकृष्ण को देखकर गोकुल में बड़ा उत्साह होनेलगा तब, उसको न सहनेवाला, जिसका कन्धे का पुट्ठा और शरीर बहुत बड़ा है ऐसा एक बैल के आकार का अरिष्ट नामवाला दैत्य अपने खुरों से खोदीहुई भूमि को कम्पायमान करताहुआ गोकुल में आ पहुँचा ॥ १ ॥ वह लोकों को कठोर लगनेवाला बैल की जातिका शब्द करताहुआ, पैरों से भूमि को खोदताहुआ, पूँछ ऊपरको उठाकर सींगो की नोकों से नदी के किनारों को खोदेडालता और थोड़ा२ गोबर करताहुआ, मूत्र करताहुआ नेत्रों को फाड़ेहुए गोकुल में को आया था; हे राजन्! जिस के भयङ्कर शब्द से गौओं के और स्त्रियों क गर्भों का स्राव ÷ और पात अकाल में ही होनेलगा, जिसके कन्धे पै के पुट्टेपर 'मानो यह पर्वत ही है ऐसा समझकर' मेघ बैठते थे ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस भयङ्कर सींगोंवाले वृषभ को देखकर गोपी और गोप बहुतही डरे; हे राजन्! सब पशु भी उसको देखकर भय के कारण गोकुल को छोड़कर भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर वह गोप आदि सब ही हे कृष्ण! हे कृष्ण! रक्षाकरो, ऐसा कहतेहुए गोविन्द की शरण गये तब भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भय से व्याकुल हुए उस गोकुल को देखकर—॥ ६ ॥ तुम मत डरो, ऐसी वाणी से गोपों को धीरज बँधाकर उस वृषभासुर को अपने सामने बुलाया और कहा कि—अरे मन्दबुद्धि दुष्ट! गोपालों को और गौओं को भय देने से तुझे क्या फल मि-

÷" आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात् " अर्थात् चार महीने के भीतर गर्भ गिरे तो उसको गर्भस्राव और पांचवें या छठे महीने गिरे तो उसको गर्भपात कहते हैं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनां ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिंद्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृंगयोस्तं च अष्टादशपदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान् गजं प्रतिगजो यथा ॥ ११ ॥ सोपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥ आपतत् स्विन्नसर्वांगो निःश्वसन् क्रोधमूर्छितः ॥ १२ ॥ तमापतन्तं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीड्यामास यथाऽद्रिमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निलेगा ? ॥ ७ ॥ क्योंकि—तेरी समान दुर्बुद्धि दुष्टों के बलसहित गर्व का नाश करने वाला मैं हूँ, तू मेरे समीप आ; ऐसा कहकर वह श्रीकृष्णजी, हाथों की हथेलियों से भुजदण्डों को ठोककर तिस अरिष्टासुर को कोपयुक्त करतेहुए ॥८॥ सखा के कन्धेपर सर्प के शरीर की समान सुकुमार अपना हाथ फैलाकर श्रीहरि खडे होगये, इस प्रकार कोपित करने के कारण क्रोध में भराहुआ और जिसके नेत्र निश्चल एवं रुधिर की समान लाल२ हैं और जिसने अपने सींगों की नोकें आगे को करली हैं जिसकी ऊपर को जातीहुई पूंछ से मेघ तित्तर वित्तर होगए हैं ऐसा वह अरिष्टासुर, अपने खुरों से भूमि को खोदताहुआ श्रीकृष्णकी ओर को तिरछी दृष्टि से देखकर वेग के साथ इन्द्र के छोडेहुए वज्र की समान श्रीकृष्ण के ऊपर को दौडकर आया ॥ ९ ॥ १० ॥ तब उन भगवान् ने, उस के सींगों को पकडकर जैसे गजराज दूसरे हाथी को पीछेको ढकेल देताहै तैसे उसको अठारह पैर पीछे को ढकेल दिया॥ ११॥उससमय भगवान्के पीछे को ढकेलनेके कारण भूमिपर पडाहुआ वह अरिष्टासुर,फिर उठकर,जिस के शरीर मेंसे पसीना छूट निकला है और जिसको बडा क्रोध आयाहै ऐसा वह कृष्णके शरीरपर को झपटनेलगा ॥१२॥ तब श्रीकृष्णजीने,ऊपरको आनेवाले तिस अरिष्टासुर को सींगोंके स्थान में पकड़कर भूमिपर गिराकर चरण से दबाकर जैसे गीलेवस्त्र को पैरसे दबाकर हाथसे अमेठते हैं और उस में का जल निचोड़कर बाहर निकालते हैं तैसेही,उसको अमेठकर उसके रोमों के छिद्रों में को रुधिर बाहर निकाला और उसका सींग उखाड़कर उसमेंही उसके ऊपर प्रहार करा तब वह भूमिपर गिरकर—॥ १३ ॥ मुखमें से रुधिर की वमन करता हुआ, गोबर तथा मूत्र करताहुआ और अपने पैरोंको तडफडाताहुआ, नेत्र फिराकर बडी कष्टदशा को प्राप्तहुआ और अन्त में मृत्यु के घरको पहुँचा, तब सब देवताओं ने, श्रीकृष्णजी के ऊपर फूलों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्ऋतेरथं क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥ एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ ॥ १५ ॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन विभ्यता ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ १७ ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः ॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ १८ ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ १९ ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥२०॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ अमात्यान् हस्तिपांश्चैवसमाहूयाह भोजराट्॥२१॥भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकाः॥नंदव्रजे किलासाते सुता-

वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करी ॥ १४ ॥ इसप्रकार वृषभासुर को मारकर गोपों से स्तुति करेहुए और गोपियों के नेत्रों के मूर्त्तिमान् उत्सवरूप वह श्रीकृष्णजी बलराम जी के साथ गोकुल में को चलेगये ॥ १५ ॥ इसप्रकार अद्भुतकर्म करनेवाले श्रीकृष्णजी ने अरिष्टासुर को मारडाला तब,जिनका दर्शन देवताओं की समान है ऐसे भगवान् नारद ऋषि मथुरा में कंससे मिलकर कहने लगे कि–॥१६॥ हे कंस ! देवकी के आठवें गर्भके नाम से प्रसिद्ध तेरे हाथ से छूटकर गईहुई जो कन्या थी वह,यशोदा की कन्या थी और जो यशोदा का पुत्र कहकर प्रसिद्ध है वह कृष्णदेवकी का आठवां पुत्रहै और रोहिणी कापुत्र जोबलराम वह देवकीका सातवाँ पुत्र है,यह दोनों वसुदेव के पुत्र हैं,और उनको, तुझ से भय माननेवाले वसुदेवजीने अपने मित्र नन्दजी के यहाँ गुप्तरूप से रखदिया है;और उनबलराम कृष्णने ही तेरे पूतना आदि दैत्य मारे हैं ॥१७॥ ऐसा नारदजी का भाषण सुनकर जिसकी इन्द्रियें खलबला गईहैं ऐसे उस भोजपति कंसने,वसुदेवजीको मारनेके निमित्त हाथमें तीखी धारकी तलवार उठाई ॥ १८॥ तब वसुदेवजीको मारडालेगा तो–यह सुनकर, बलरामकृष्ण गोकुल मेंसे भागजायँगे,फिर उन शत्रुओंका वध तेरे हाथ से नहीं होसकेगा.इसकारण तू शीघ्रता से वसुदेवजी का बन्धन करके उन अपने शत्रुओं के मारने का उपाय कर, ऐसी सम्मति देनेवाले नारदजीने उस कंसको रोका,तब वसुदेवके पुत्र बलरामकृष्ण मेरे मृत्युरूप हैं ऐसा जानकर उस कंसने, लोहेकी बेडियों से देवकीसहित वसुदेवजी को बाँधलिया ॥ १९ ॥ फिर नारद ऋषि के चलेजाने पर कंसने, केशी दैत्य को बुलवाकर, हे केशिन ! तू गोकुल में जाकर बलराम कृष्ण का वधकर ऐसी आज्ञा देकर उसको गोकुल में भेजदिया ॥ २० ॥ तदनन्तर वह भोजराज कंस, मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशलक आदि मल्लों को, महावतों को और मंत्रियों को बुलवाकर कहने लगाकि- ॥२१॥ अरे ! रे ! वीरों ! हे चाणूर ! हेमुष्टिक !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वानकदुंदुभेः॥२२॥रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया॥२३॥मंचाः क्रियंतां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रताः॥पौरा जानपदाः सर्वे पश्यंतु स्वैरसंयुगम्॥२४॥महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयतां॥द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसंतु पशून्मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुगंवं ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनं ॥ यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतौ वानकदुंदुभेः ॥

तुम यह मेरा आज्ञारूप भाषण सुनो ! नन्द की गोकुल में निःसन्देह वसुदेव क पुत्र बलराम कृष्ण हैं, उनसे निःसन्देह मेरी मृत्यु होगी, ऐसा आकाशवाणी ने कहा है इसकारण यहाँ आयेहुए उनका तुम (चाणूर और मुष्टिक से) मल्ललीला करके मरवा डलवाओ ॥ २२ ॥ २३ ॥ अरे सेवकों ! मल्लोंका युद्ध होने के स्थान के चारों ओर एक से एक सटाहुआ इसप्रकार बैठने के निमित्त ऊँचेऊँचे मचान बनवाओ, जिससे कि पुरवासी और देशवासी सब पुरुष उनके ऊपर बैठकर यथेच्छ मल्लयुद्ध को देखें ॥२४॥ हे कल्याणकारक महावत ! तू कुवलयापीड नामवाले हाथी को, रङ्गमण्डप के द्वारपर लेजाकर खडारह, उस से आनेवाले मेरे शत्रु जो रामकृष्ण उनको मरवादेना ॥२५॥ अरे शिवभक्तों ! अब आनेवाली चतुर्दशी तिथि के दिन तुम, शैवशास्त्र में कही हुई विधि के अनुसार धनुषयज्ञ का (धनुष में शिव जी का आवाहन करके पूजन करने के यज्ञ का) आरम्भ करो और उसमें भक्तों का मनोरथ पूरा करनेवाले उन शिव जी को प्रसन्न करने के निमित्त पवित्र पशुओं का वध करो ॥ २६ ॥ इस प्रकार उपाय करने के निमित्त पुरुषों को आज्ञा देकर, अपने कार्य के सिद्धान्त को जानने वाले वह कंस, यादवों में श्रेष्ठ अक्रूर जी को बुलवाकर, उनके सन्मान के निमित्त अपने हाथ से उनका हाथ पकडकर, बडा आनन्द दिखाताहुआ उन से कहने लगा कि—॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूरजी ! तुम मेरा मित्रभाव का कार्य करो; क्योंकि—इन भोज और वृष्णि नामक सकल देशों में आदर के साथ मेरा उत्तम हित करनेवाला तुमसे दूसरा कोई नहीं है ॥ २८ ॥ इस से हे मेरा प्रिय कार्य करनेवाले अक्रूर जी ! जैसे अवस्था में बडे भी इन्द्र ने, अवस्था में छोटे भी वामनरूप भगवान् का आश्रय करके, बलिराजा की छीनी हुई भी त्रिलोकी की सम्पदा को फिर पालिया था तैसेही, मैंने भी अपना बडाभारी कार्य साधने के लिये तुम्हारा आश्रय करा है ॥ २९ ॥ इस कारण तुम, नन्दजीकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

आसाते तांविहानेन रथेनानय गौ चिरम् ॥ ३० ॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्दैवैर्कुंठसंश्रयैः ॥ तांवानय समं गौपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातयेद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् तद्बंधून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शंबरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन्मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥

गोकुल में जाओ और तहाँ वसुदेवजी के पुत्र बलराम कृष्ण हैं उनको इस मेरे रथ के ऊपर बैठाकर लिवालाओ; इस काम में विलम्ब मत करो ॥ ३० ॥ विष्णु भगवान् का आश्रय करनेवाले देवताओं ने, उन बलराम कृष्ण से मेरी मृत्यु होयगी ऐसा निश्चय कररक्खा है; इस कारण उनको मारडालने का मेरा अभिप्राय गुप्त रखकर ' धनुषयज्ञ देखने के निमित्त, तुम दूध दही आदि भेट लेकर राजा की आज्ञा से चलो ऐसा कहकर ' नन्द आदि गोपों सहित उन बलराम कृष्ण को यहाँ लिवालाओ ॥ ३१ ॥ तब यहाँ आयेहुए उनको मैं, मृत्युसमान कुवलयापीड हाथी से मरवादूँगा, यदि कदाचित् उस से वह छूटगये तो वज्रकी समान दृढ़ शरीरवाले चाणूर मुष्टिक आदि मल्लों से मरवादूँगा ॥ ३२ ॥ उनके मरण को प्राप्त होजानेपर शोक से तप्तहुए उनके वसुदेव आदि बान्धवों को और वृष्णि, भोज तथा दाशार्हों को मैं ही मारडालूंगा ॥ ३३ ॥ फिर बूढे होकर भी राज्य की इच्छा करनेवाले उग्रसेन पिता को तथा उनके भ्राता देवक को और जो दूसरे मेरे शत्रु हैं तिन सबों को मारडालूंगा ॥ ३४ ॥ हे मित्र ! फिर यह पृथिवी शत्रुरहित होजायगी; क्योंकि—जरासन्ध राजा ससुर होने के कारण मेरा पूजनीय ही है, द्विविद नामक वानर मेरा मित्र है; शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर इन्होंने मेरी ही मित्रता करी है. इस से अब उन जरासन्ध आदिकों की सहायता से मैं देवताओं का पक्ष करनेवाले सकल राजाओं को मारकर पृथ्वी का राज्य करूंगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह मेरे मनकी बात जानकर तुम, धनुषयज्ञ देखने के निमित्त और मथुरा नगरी की शोभा देखने के निमित्त राजा ने तुम्हें बुलाया है ऐसा कहकर ! शीघ्र ही उन बालक बलराम कृष्ण को लिवालाओ ॥ ३७ ॥ अक्रूर जी ने कहा कि हे महाराज ! आपका यह विचार आपकी मृत्यु को हटानेवाला होने से बडा सुन्दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनं ॥ ३८ ॥ मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मंत्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथोऽक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ॥ सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कंपयन् ॥२॥ तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्घोलविघूर्णितांबुदम् ॥ आत्मानमाजौ

है, तथापि मनुष्य को, किसी भी कार्य में आग्रह न करके फलकी सिद्धि वा असिद्धि के विषय में मनकी समता रखना चाहिये, क्योंकि-फल उत्पन्न करनेवाला दैव (ईश्वर) है ॥३८॥ यह प्राणी, दैव के उलटे करेहुए भी मनोरथों को करके उन की सिद्धि के लिये परमयत्न करता है परन्तु उन मनोरथों की सिद्धि होगई तो हर्ष से नहीं तो शोकसे युक्त होता है; ऐसा व्यवहार है तथापि मैं सेवक होनेके कारण तुम्हारी आज्ञा को पूरा करता हूँ अर्थात् रामकृष्ण को लेने के निमित्त गोकुल में जाता हूँ ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार वह कंस, अक्रूरजी से कहकर फिर सब मंत्रियों को विदाकरके अपने राजमन्दिर में चलागया, इधर अक्रूरजी भी अपने घर को चलेगये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में षट्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे सैंतीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने केशी दैत्य का प्राणान्त करदिया तब नारद जी ने आगे को होनेवाले काम की सूचना करके उन श्रीकृष्णजी की स्तुतिकरी फिर क्रीड़ा करनेवाले श्रीकृष्णजीने, व्योमासुर का वध करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि-हे राजन् ! कंस का भेजाहुआ केशी दैत्य तो, बड़े घोड़े का स्वरूप धारण करके गरदनपर के केशों की झपेट से इधर उधर को उड़ायेहुए मेघोंसे और देवताओं के विमानों से आकाश को घचाघच करताहुआ और खुरों से पृथ्वी को खोदताहुआ, जिस का वेग मन के वेगकी समान तीव्र है, जिस ने अपने हिनहिनाहट के शब्दों से सकल जगत् को भयभीत करदिया है ॥ १ ॥ जिस के नेत्र विशाल हैं, जिसके मुख का जावडा भयङ्कर है, जिसका कण्ठ पुष्ट है, जो बडेभारी काले मेघमण्डलकी समान बडा है, जिसका चित्त दुष्ट है, वह केशी दैत्य कंस का हित करने की इच्छा करके भूमि को डगमगाताहुआ नन्द जी की गोकुल में पहुँचा ॥ २ ॥ तब अपनी गोकुल को घोडेकीसी हिनहिनाहट से भय देनेवाले और पूँछ के बालों से मेघों को तित्तर बित्तर करदेनेवाले और युद्ध के निमित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेंद्रवत् ॥ ३ ॥ स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदच्युतार्पण ॥ जघान पद्भ्यामरविंदलोचनं दुरासदश्चंडजवो दुरत्ययः ॥ ४ ॥ तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतांतरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ५ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् ॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ६ ॥ दंता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथामयः संवृद्ध उपेक्षितः ॥ ७ ॥ समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥ ८ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं

अपने को (कृष्णको) खोजतेहुए उस केशी दैत्यको, आगे बढ़कर उन भगवान् श्रीकृष्णजीने, अपने सन्मुख बुलाया, तब उस दैत्य ने, सिंहकी समान बडीभारी गर्जनाकरी ॥३॥ और दूसरे जिसका तिरस्कार न करसकें तथा जिसके आगे भी न आसकें ऐसा वह बडे वेगवाला दैत्य,तिनकोदेखकर मानोमुख से आकाशको पिये ही जाताहै! ऐसाहोताहुआ, अपना मुख फैलाकर श्रीकृष्णजी के ऊपर को दौडा और उसने अपने पीछेके पैरों से उन कमलनयन श्रीकृष्ण के ऊपर प्रहार करा ॥ ४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजीने, उसके प्रहार (वार) को बचाकर, और अपने को मारने के निमित्त क्रोध से फैलाएहुए उसके चरणों को पकडकर घर २ घुमाडाला और चार सौ हाथ की दूरीपर तिरस्कार के साथ फेंकदिया और जैसे गरुड, सहज में ही सर्प को फैंककर निर्भयपने से रहता है तैसे ही वह श्रीकृष्णजी निर्भय खडेरहे ॥ ५ ॥ इसप्रकार भगवान् ने जिसको फेंकदिया है ऐसावह केशी दैत्य, पहिले मूर्छित होगया और फिर सावधान होकर उठा तथा क्रोध से अपना मुख फैलाकर वेग के साथ श्रीकृष्णजी को निगलडालने के निमित्त उनके ऊपरको दौडा तब उन श्रीकृष्णजी ने भी हँसते हँसते ही उस के मुख में अपने बायें हाथ को, ' जैसे चुहे को पकडने के निमित्त उस के भट्टे में सपेरा साँपको घुसाता है तैसे ' घुसेड दिया ॥ ६ ॥ तब, जैसे तपायेहुए लोहे के टुकडे से छुएहुए दाँत गिरपडते हैं तैसे ही भगवान् के हाथसे छुएहुए उस केशी दैत्य के सब दाँत गिरपडे और उसके शरीर में घुसाहुआ भगवान् का हाथ, जैसे औषध सेवन न करने से जलोदर आदि रोग बढ़ता है तैसे बढ़नेलगा ॥ ७ ॥ उससमय अत्यन्त ही बढ़तेहुए श्रीकृष्णजी के हाथ से जिसका प्राण घुटनेलगा है, शरीर पर पसीना छूटनिकला है और जिसके नेत्र फिरगये हैं ऐसा वह केशी दैत्य, पैरों को फैकताहुआ और लीद करताहुआ मरकर भूमिपर गिरपडा ॥ ८ ॥ तब प्राणहीनहुए उस केशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयं त्रहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ९ ॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमाक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावासः सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ ११ ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसां ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ १२ ॥ आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया संसृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १३ ॥ स त्वं भूभरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १४॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्ति स्म दिवौकसः ॥१५॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १६ ॥ तस्यानु शंखयवनमुर-

दैत्य के, पकेहुए फूट के फल की समान जहाँ तहाँ फटे हुए शरीर में से उन महापराक्रमी श्रीकृष्णजीने, अपना हाथ निकाललिया. तब बिना उद्योग केही शत्रुको मारनेवाले और गर्व न करनेवाले उन श्रीकृष्णजीके ऊपर विस्मय में हुए देवताओं ने फूलों की वर्षा करके उनकी स्तुति करी ॥९॥ हेराजन्! तदनन्तर एकसमय, भगवान् के भक्तों में अति श्रेष्ठ नारद ऋषि प्रशंसा के योग्य कर्म करनेवाले उन श्रीकृष्णजीके समीपएकान्त में आकरकहनेलगे कि—१० हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अपरिच्छिन्नस्वरूप ! हे योगेश ! हे जगदीश्वर ! हे वासुदेव ! हे जगन्निवास ! हे यादवों में श्रेष्ठ ! हे प्रभो ! तुम पृथ्वी के भाररूप दैत्योंका संहारकरने के निमित्त भूमि पर अवतरे हो, इसकारण उस अवतारके योग्य कार्य करके जगत्की रक्षा करो, हे कृष्ण! जैसे अग्नि काठ में गुप्तरूप से रहता है तैसेही एक तुमही सकल प्राणियों की बुद्धियों के भीतर रहनेवाले, आत्मा साक्षी, महापुरुष, ईश्वरहो; इसकारण पराधीन जीवों की, तुम्हारी प्रेरणाके बिना किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होसक्ती है, तुम स्वतन्त्रहो, इसकारण तुम्हें साधन की आवश्यकता नहीं है, तुमने आपही अपनी मायाशक्ति के द्वारा सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों को उत्पन्न करा है और उन गुणों के द्वारा, तुम सत्यसङ्कल्प ईश्वर, इस जगत् को उत्पन्न करते हो वही तुम अवतारों के रूप में प्रकट हुए दैत्य, प्रमथ और राक्षसों का नाश करने के निमित्त और धर्ममर्यादा की रक्षा करने के निमित्त प्रकट हुए हो ॥११ ॥ १२॥ १३ ॥ १४ ॥ इस घोड़े का रूप धारण करनेवाले दैत्य को तुमने लीलासे ही मारादिया है, इससे सबों का कल्याण हुआ है, जिसके शब्दमात्र से भयभीत हुए देवता, स्वर्गलोक को छोडकरभाग जाते थे ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! आजही यहां अक्रूर आवेंगे, कल तुम मथुरा को जाओगे और परसों को चाणूर, मुष्टिक तथा दूसरे भी मल्ल, कुवलयापीड हाथी और कंस इन को मारोगे, सो मैं देखूंगा ॥ १६ ॥ फिर पञ्चजन का पुत्र, शङ्खासुर, कालयवन, मुर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिंद्रस्य च पराजयम् ॥१७॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं पापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ ॥ १८ ॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १९ ॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दन्तवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ २० ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्त्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २१ ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २२ ॥ विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम्॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २३ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वतां ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः

दैत्य और नरकासुर का वध, पारिजात वृक्षका लाना, इन्द्रको हराना ॥ १७ ॥ और पराक्रम दिखाना, यह जिसके मूल्य आदि हैं ऐसी राजकन्याओं का विवाह और हे जगत्पते ! द्वारका में वसते समय, ब्राह्मण की गौका हरण करने के कारण घिरघटयोनि को प्राप्त हुए राजा नृगको उस पापसे छुटाना, जाम्बवती सहित स्यमन्तक मणि को फेरकर लाना, मरण को प्राप्तहुए ब्राह्मण के पुत्र को महाकालपुर से लौटाकर लादेना ॥ १८ ॥ १९ ॥ पौंड्रक का वध, काशीपुरी का जलाना, दन्तवक्र का वध और धर्म राजके राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध ॥ २० ॥ यह तथा और भी, द्वारका में वसनेवाले तुम, भूमिपर कवियों के गाने योग्य जो दूसरे चरित्र करोगे वह सब मैं देखूंगा ॥ २१ ॥ फिर भूमि का भार दूर करने की इच्छा करनेवाले तुम, अर्जुन के सारथी होकर जो अक्षौहिणियों गिनती की सेनाओं का संहाररूप कर्म करोगे वहभी मैं देखूंगा ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! केवल शुद्धज्ञानमूर्त्ति,अपनी परमानन्दस्वरूप दशा में ही सकल मनोरथपूर्ण हुए,सत्यसङ्कल्प और चैतन्यशक्ति से रचाहुआ मायाका कार्यरूप संसारप्रवाह जिन से सदा हटा हुआ है ऐसे परमैश्वर्यवान् तुम भगवान् की मैं शरण आया हूँ ॥ २३ ॥ ईश्वर, स्वतन्त्र, अपने वश में रहनेवाली माया से महत्तत्त्वादि सबप्रकार के विषयों की कल्पना करनेवाले परन्तु इससमय क्रीडा के निमित्त मनुज शरीर धारने वाले, यादव, वृष्णि और सात्वतों में आगे गिननेयोग्य तुम भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजी के दर्शनसे आनन्दयुक्त हुए वह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ नारद ऋषि,यादवपति श्रीकृष्णजी को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २५ ॥ भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २६ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयन्तोद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २७ ॥ तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २८ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २९ ॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्ते नीतं नीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ ३० ॥ तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सतां ॥ गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३१ ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरींद्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ध्रहणातुरः ॥३२॥ तं निगृह्यात्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३३॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सु-

नमस्कार करके जाने के निमित्त उनके आज्ञा देनेपर चलेगये ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णजी भी, युद्ध में केशिदैत्य को मारकर गोकुलको सुखी करते हुए प्रसन्न हुये गोपालोंके साथ पशुओं की रक्षा करनेलगे ॥२६॥ एकसमय वह बलरामकृष्ण आदि गोपाल,गोवर्द्धनपर्वत के चारों ओर गौओं को चरातेहुए कहीं चोर कहीं रक्षक होकर,चुराकर छुपाने का खेल खेलनेलगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उन गोपों में कितने ही चोरहुए और कितनेही (बलराम कृष्ण आदि) उन के रक्षक हुए और कितने ही मेंढे बने उनमें चोर मेंढोंको चुराकर छुपाकर रक्खें और रखवाले उन को ढूंढकर लावें, ऐसे सब गोपाल निर्भयहोकर खेलनेलगे ॥ २८ ॥ तब मयासुर का पुत्र बडा मायावी व्योमासुर, गोपालों का वेष धारकर आप चोरबना और बारम्बार मेंढे बने गोपालों को लेजानेलगा ॥ २९ ॥ वह महादैत्य, लेलेजाकर गोपालों को पर्वत की गुफा में रखकर उसका द्वार शिला से ढक देताथा; ऐसा होते २ अन्त में मेंढे बने हुए गोपाल पांच चारही शेष रहगये ॥३०॥ तब सत्पुरुषों को आश्रय देनेवाले श्रीकृष्णजी ने, उसके तिस कर्म को जानकर, गोपों को लेजानेवाले तिस व्योमासुर को, जैसे सिंह बलसे भेड़िये को पकड़ता है तैसे एकाएकी पकडलिया ॥ ३१ ॥ तब उस बलवान् दैत्यने, गोपके स्वरूप को त्यागकर महापर्वत की समान अपना स्वरूप धारण करलिया और अपने को छुटाने के निमित्तबडा उद्योगकरा, परन्तु श्रीकृष्णजी के पकड लेनेके कारण व्याकुल हुआ वह अपने छुटाने को समर्थ नहीं हुआ ॥ ३२ ॥ भगवान् ने उसको दोनों हाथों से पकडकर भूमिपर पटकदिया और आकाशमें खडेहुए सकल देवताओंके देखते हुए,जैसे यज्ञके पशुको मारतेहैं तैसे श्वास घोटकर घूंसोंसे मारडाला ॥ ३३ ॥ फिर जिस शिलासे उसने गुफाका द्वार बन्द कराथा वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रैर्गोपैः प्रविवेशं स्वगोकुलं ॥ ३४॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मथुरायां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलं॥१॥गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यब्जलोचने॥भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयत् ॥२॥ किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः॥ किं वाऽथाप्यपात्रेऽहतेदत्तं यद्रक्षयाम्यद्य केशवः॥ ३ ॥ ममैतद्दुर्लभं मन्ये उत्तमश्लोकदर्शनं ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः॥४॥ मे वं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनं ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामंगलं नष्टं

शिला, फोडकर अलगकरी तथा गोपों को उस सङ्कट में से छुटाकर, देवता और गोपों के स्तुति करेहुए वह श्रीकृष्णजी, अपनी गोकुल में को चलेगये॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब अडतीसवें अध्याय में अक्रूरजी जैसा ध्यान करतेहुए गोकुल में गये तैसेही बलराम कृष्णने उनको घर लेजाकर उनका सत्कार करा यहकथा तथा चतुर्दशी के दिन होनेवाले धनुषयज्ञ को देखने के निमित्त एकादशी के दिन बलराम कृष्ण को लानेके निमित्त अक्रूरजी को कंसकी आज्ञा हुई, द्वादशी के दिन प्रातःकाल केशिदैत्य का वध हुआ, फिर नारदऋषि श्रीकृष्णजी की स्तुति करके चलेगये तब तीसरे पहर को व्योमासुर का वधहुआ और सायङ्काल को अक्रूरजी गोकुल में पहुँचे ऐसा कथाका क्रम वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हेराजन्! परम बुद्धिमान् वह अक्रूरजी भी, जिस रात्रि में कंसने आज्ञादीथी उस रात्रिको मथुरा में रह कर प्रातःकाल के समय रथपर बैठकर नन्दराजा की गोकुल को जानेके निमित्त चलदिये।१। वह महाभाग अक्रूरजी, मार्ग में जातेहुए, कमलनेत्र भगवान् के विषैं परम भक्तिको प्राप्त हो मनमें ऐसा विचार करनेलगे ॥ २ ॥ कि—मैंने ऐसा कल्याणकारक कौनसा कर्म (यज्ञआदि) कराथा ? वा कौनसा परम तप (व्रत उपवास आदि) कराथा अथवा सत्पात्र ब्राह्मण को कौनसा दान दियाथा ? कि—जिसके कारण से आज मुझे भगवान् का दर्शन होयगा ॥ ३ ॥ मुझेतो ऐसा प्रतीत होता है कि -शूद्रकी जाति में उत्पन्न होनेवाले पुरुष को जैसे वेदका पढ़ना आदि दुर्लभ है तैसेही विषयों में फँसेहुए मुझको उत्तमकीर्त्ति भगवान् का दर्शन होना दुर्लभ है ॥ ४ ॥ अथवा ऐसा नहींतो मुझ अधम को भी भगवान् का दर्शन होयगाही; क्योंकि—जैसे नदी के प्रवाह से बहते हुए तिनुके काठआदि पदार्थों में से एकादपदार्थ, किसी समय तरकर पार लगही जाता है तैसेही कालरूप नदीके प्रवाह के बहाएहुए जीवोंमें से भी कोई एकादजीव तरकर कर्मके बल से पार लगही जाता है ॥ ५ ॥ इसकारण आज इस गोकुल में जाने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फलंवा श्रेव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपंकजं ॥ ६ ॥ कंसो वताऽद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽध्रि पद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन्यन्नखमंडलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्रोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥ ८ ॥ द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकंजलोचनं ॥ मुखं मुकुंदस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति वै मृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं न न स्यात्फलमंजसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः ॥ स्वमायया तस्मिन रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलामीवहभिः

ध्यान होनेसेही मेरे पाप निःसन्देह नष्ट होगए हैं और मेरा जन्म सफल हुआ है.ऐसा निश्चय होता है,क्योंकि-आजमैं,योगियों के ध्यान करने योग्य भगवान् के चरणकमल को नमस्कार करूँगा ॥६॥ अहो! भगवान् के भक्तों से वैर करनेवाले भी कंस ने आज मेरे ऊपर बडाही अनुग्रह करा है, क्योंकि-जिसका भेजाहुआ मैं अवतार धारण करनेवाले श्रीहरि के चरणकमल को देखूंगा; हृदय में ध्यान करेहुए जिस चरणकमल के नखों की कान्ति से, पहिले के ध्यान करनेवाले अम्बरीष आदि भक्त,दुस्तरभी संसाररूप अन्धकार को तरगये हैं ॥ ७ ॥ और जिस चरणकमल की,ब्रह्मा महादेव आदि देवता,लक्ष्मी देवी और भक्तों सहित ऋषिपूजा करते हैं, इससे जो परमैश्वर्यरूप, परम सौभाग्यरूप और परमपुरुषार्थ रूप है प्रेमी भक्तों को अति सुलभ है ॥ ८ ॥ अक्रूरजी और मनोरथ करतेहैं कि-हरिण,मुझे दाहिनी ओर छोडकर जारहे हैं इससे मैं आज भगवान् का मुख देखूंगा इस में सन्देह नहीं है-जिस मुख में सुन्दरकपोल और नासिका शोभायमान हैं, जिसमें लालकमल की समान नेत्र हैं हास्य के साथ चितवन है और जो घुंघुराले केशोंसे लिपटाहुआ है ॥ ९ ॥ और पृथ्वी का भार दूर करने को अपनी इच्छा से मनुष्य की सी लीला धारण करने वाले और परमसुन्दरता के आश्रय ऐसे विष्णुभगवान् का यदि मुझ को दर्शन होयगा तो क्या सहज में ही मेरे नेत्रों की सफलता नहीं होयगी ? किन्तु होयगी ही ॥ १० ॥ जो ईश्वर, अपने देखनेमात्र से ही कार्यों को नष्ट करनेवाले उत्पन्न करनेवाले होकरभी अहङ्कार रहित हैं और अपने तेजसे (सच्चिदानन्दस्वरूप के साक्षात्कार से) अज्ञानभेद और भ्रम (जो आत्मा नहीं हैं उन वस्तुओं का आत्मा मानना) से रहित हैं तथापि वह ईश्वर अपने वश में रहनेवाली मायाके द्वारा केवल अवलोकनमात्र से ही, प्राण, इन्द्रियें और बुद्धि सहित अपने में रचेहुए जीवों के साथ वृन्दावन में और गोपियों के घरों में लीलासे क्रीड़ा करतेहुए, कर्म करनेवाले कीसमान और आसक्तहुए से प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमंगलैर्वाचोविमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ॥ प्राणीन्त शुंभन्ति पुनन्ति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥१२॥ स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितेन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥ तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकांतं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणां ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशि-

जिन भगवान् की सब लोकों के पापों का नाश करनेवाली और महामङ्गलरूप भक्तवत्सलता आदि गुणों करके, गोवर्धन को उठाना आदिकर्मों करके तथा बलराम कृष्ण आदि जन्मों से मिलीहुई अर्थात् उन गुण आदिकों का वर्णन करनेवाली कथारूप वाणियें, कहनेवाले सुननेवाले आदि सबों के जन्म को सार्थक करती हैं, सज्जनोंकी सभाओं को शोभायमान करती हैं और जगत् को पवित्र करती हैं, तथा जो वाणी, भगवान् के गुणों के वर्णन से रहित हैं वह, पदों की सुन्दरता आदि अलङ्कारोंसे शोभायमान होयँ तोभी, वस्त्र आदि से शोभायमान शवों (मुरदों) की समान हैं ऐसा सज्जन मानते हैं १२ वही भगवान् ईश्वर, निःसन्देह अपने रचेहुए वर्णाश्रम धर्मों की मर्यादा का पालन करनेवाले इन्द्रादिलोकों को सुख देने के निमित्त यादवों के कुलमें श्रीकृष्णरूप से अवतारधारण करके यश फैलाते हुए गोकुलमें रहते हैं, जिनके सब का मङ्गल करनेवाले यशको देवता गाते हैं ॥ १३ ॥ सत्पुरुषों के गुरु और गतिरूप, त्रिलोकी में सुन्दर, नेत्रवालोंको परम आनन्द देनेवाले और लक्ष्मी के भी प्रियस्थान ऐसे स्वरूप को धारण करनेवाले तिन श्रीकृष्ण भगवान् को आज मैं निःसन्देह देखूँगा; क्योंकि—आज मुझे उषःकाल (पौफटनेका समय) शुभसूचक शकुनोंका दिखानेवाला हुआ है ॥ १४ ॥ भगवान् का दर्शन होने के अनन्तर तत्काल रथसे नीचे उतरकर मैं, तिन प्रधान पुरुष बलराम और श्रीकृष्णजी के चरणों को, कि—जिन का योगियों ने भी साक्षात् दर्शन होने के निमित्त केवल बुद्धि से ध्यान करा है उनको साक्षात् नमस्कार करूँगा और उनके साथ में रहनेवाले उनके सखा गोपोंको भी नमस्कार करूँगा ॥ १५ ॥ और उस समय चरणतल में नमस्कार करके पड़ेहुए मेरे मस्तकपर वह प्रभु श्रीकृष्णजी, अपना करकमल रक्खेंगे जो करकमल कालरूप सर्प के वेगसे अत्यन्त भय पानेवाले और शरण जानेवाले मनुष्यों को अभय देनेवाला है ॥ १६ ॥ जिस करकमल पर इन्द्रने तथा राजा बलि ने पूजन और दानका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कस्तथा बलिश्चापे जगत्त्रयेंद्रतां ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगंधिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ यो तर्वहि श्रेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता संस्मितमार्द्रया दृशा ॥ संपश्यतश्चस्तसमस्तकिल्बिषो बोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जितां ॥ ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ मां ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्धांगसंगं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्यरुश्रवाः ॥ तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽ-

---

जल समर्पण करके त्रिलोकी का इन्द्रपद पाया है और सौगन्धिक नामक कमलकी समान सुगन्धवाले जिस करकमल ने, अपने स्पर्श से रासक्रीड़ा में गोकुल की स्त्रियों का श्रम दूर करा है, यह कितना आश्चर्य है ! ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं कंस का भेजा हुआ उसका दूत हूँ तथापि भगवान् श्रीकृष्णजी, मेरे ऊपर यह शत्रुके पक्ष का है ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि—वह सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी होने के कारण अपने निर्मल ज्ञानचक्षु से मेरे मनके बाहरकी और भीतर की सब चेष्टाओं को जानते हैं; क्योंकि—मैं यद्यपि बाहर से कंस का पक्ष करता हूँ परन्तु भीतरसे उनकाही पक्ष करता हूँ यह उनको विदित है ॥ १८ ॥ और भी यदि वह भगवान्, चरणके समीप में एकाग्रता से हाथ जोड़कर खड़े हुए मेरी ओरको अपने हास्यसहित कृपामृत से गीलीहुई दृष्टि से देखेंगे तो, तत्काल मैं, सकल पापों से और पुनर्जन्म आदि आशङ्काओं से छूटकर परम आनन्द पाऊँगा ॥ १९ ॥ और दर्शन होने के अनन्तर वह भगवान्, यदि अपनी भुजाओं को लम्बाकरके उन से 'जिसका भगवान् के सिवाय दूसरा कोई भी इष्टदेव नहीं है ऐसे' अति स्नेही मुझ सम्बन्धी को आलिङ्गन करेंगे, तो उसी समय मेरा देह अति पवित्र होयगा और उस आलिङ्गन से देह का कर्मरूप बन्धन भी शिथिल होजायगा ॥ २० ॥ तदनन्तर भगवान् के साथ आलिङ्गन पायेहुए और नमस्कार करके हाथ जोड़े खड़ेहुए मुझे, वह महाकीर्तिमान् श्रीकृष्णजी, हे काकाअक्रूर! इत्यादि सम्बोधन करके वार्त्तालाप करनेलगेंगे तो मेरे जन्म की सफलता होयगी. सब के पूजनीय भगवान् ने, जिसका कुछभी आदर नहीं करा तिस पुरुष के जन्म को धिक्कार हो ॥ २१ ॥ यद्यपि उन भगवान् को कोई भी पुरुष प्रिय नहीं है, अप्रिय नहीं है, अत्यन्त मित्र नहीं है, द्वेष करनेयोग्य नहीं है और उदासीन भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुपो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥ किंवाग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्ववन्धुषु । २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥ देहं भृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिंगदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे

नहीं है तथापि जैसे कल्पवृक्ष अपना आश्रय करनेवालों को ही फल देता है औरोंको नहीं देता है तैसे ही वह परमात्मा, भक्तों का ही मनोरथ पूर्ण करनेवाले होते हैं औरों का मनोरथ पूर्ण करनेवाले नहीं ॥ २२ ॥ यादवों में श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजी के बड़े भ्राता बलरामजी भी हर्षयुक्त होकर, नमस्कार करनेवाले मुझे, हृदय से लगावेंगे और उससमय जो मैं अञ्जलि करूँगा सो मेरी अञ्जलि को ही पकड़कर घर में लिवाजायँगे और तहां अर्घ्य पाद्य आदि से मेरा सत्कार करके तदनन्तर मुझ से, कंस ने जो उनके मातापिता आदि बान्धवों को दुःख दिये हैं सो बूझेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! इसप्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी, मार्ग में श्रीकृष्णजी का चिन्तवन करतेहुए, रथ में बैठकर गोकुल में पहुँचे उसी समय सूर्यनारायण भी अस्ताचल को पहुँच गये ॥ २४ ॥ उससमय तिन अक्रूरजी ने, जिन के चरण की रेणु को, सकल लोकपालों ने, अपने किरीटों में धारण करा है तिन श्रीकृष्णजी के, पृथ्वी के आभूषणरूप और कमल, यव, अङ्कुश आदि चिन्हों से शोभित, धूलि में उमड़ेहुए चरणों के चिन्ह देखे ॥ २५ ॥ तब उन चरणों के चिन्हों के दर्शन से होनेवाले आनन्द करके अत्यन्त व्याकुल हुए, प्रेमके कारण जिन के शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं और आनन्द से प्राप्तहुए आँसुओं के कारण जिनके नेत्र भरगये हैं ऐसे वह अक्रूरजी, अहो ! यह श्रीकृष्णजी के चरणों की रज ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ है ऐसामन में विचार, रथ से नीचे कूदकर उस चरणरज में लोटनेलगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! कंसकी आज्ञा होने से लेकर यहाँ पर्यन्त जो यह श्रीहरि के चिन्हों के दर्शन आदि के द्वारा होनेवाला अक्रूरजी का प्रकार (ढंग) वर्णन करा, इतनाही यह पुरुषार्थ, देहधारी प्राणियों को गुरु के उपदेश से, पाखण्डीपना, भय और शोक को त्यागकर, श्री हरि की मूर्त्तियों के दर्शन श्रवण आदि से प्राप्त होनेयोग्य है इस से अन्य और कुछ प्राप्त होने योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन अक्रूरजी ने, श्रीकृष्ण और बलराम को देखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोदोहनं गतौ पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामल-श्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुंदरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिन्हितैरंघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोश-स्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगन्धानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा-राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मरकतः शैलो रौप्यश्च कनका-चितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपांते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य र-

---

वह बलराम कृष्ण—गौओं का दूध दुहने के स्थान में गयेहुए थे; पीला और नीला पीताम्बर धारण करनेवाले, शरद् ऋतु में के कमल की समान नेत्रवाले, ॥२८॥ ग्यारहवर्षकी अवस्थावाले श्याम और श्वेतवर्ण लक्ष्मी के आश्रयस्थान पुष्ट और लम्बी भुजावाले सुमुख अत्यन्तही सुन्दर,हाथी के पाठेकी समान चाल चलनेवाले,॥२९॥ध्वजा,वज्र अंकुश और कमल की रेखाओंवाले अपने चरणों से गोकुल को शोभायमान करनेवाले, उदार-चित्त, कृपाकी छटा और हास्ययुक्त अवलोकन करनेवाले, ॥ ३० ॥ वर्णन करनेवाले और सुननेवाले पुरुषों को इच्छित फल देनेवाली मनोहर क्रीड़ा करनेवाले, रत्न आदिकी और वनके पुष्पों की माला धारण करनेवाले, शरीरको सुगन्दयुक्त चन्दन वा लेपन करे हुए, स्नान करे, निर्मल वस्त्र पहिने, ॥ ३१ ॥ प्रधान पुरुष, सृष्टि से पहिले भी होने वाले, जगत् के कारण, जगत् के पालक, जगत् की रक्षा करने के निमित्त मूर्त्ति के भेद से बलराम और कृष्ण अवतार धारण करनेवाले ॥ ३२ ॥ तथा हे राजन्! अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले, और जैसे सुवर्ण से मँढ़ेहुए मरकत मणि का और चाँदी का ऐसे दो पर्वत दीखें तैसे दीखते थे ॥ ३३ ॥ उस समय स्नेह से विव्हल हुए वह अक्रूर जी, शीघ्रता के साथ रथ से नीचे उतरकर बलराम और श्री कृष्ण जी के चरणों के समीप में दण्डे की समान पड़गये ॥ ३४ ॥ हे राजन्! भगवान् के दरशन से होनेवाले आनन्द के कारण आयेहुए आँसुओं से जिनके नेत्र भरगये हैं और जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए हैं ऐसे वह अक्रूर जी कण्ठ गद्गद होजाने के कारण, मैं अक्रूर नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहने को भी समर्थ नहीं हुए ॥ ३५ ॥ उस समय शरणागतवत्सल भगवान् ने भी हमें छिपाने को यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थांगांकितपाणिना ॥ परिरेभेभ्युपाकृष्य प्रीतिः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥३७॥ पृष्ट्वाऽथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥३८॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नंदः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशंत्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नंदेन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभागवते महा-

अक्रूर आये हैं, ऐसा जानकर, सन्तुष्ट हो, हम में कंस को मारने की शक्ति है ऐसा दिखाते हुए ही मानों, चक्र के चिन्ह से चिन्हित अपने हाथसे उन को समीप में को उठाकर दृढ़ता के साथ हृदय से लगाया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उदारचित्त बलरामजी भी, नमस्कार करनेवाले उन अक्रूरजी को आलिङ्गन देकर अपने हाथ से उनके जोड़ेहुए हाथों को पकड़कर श्रीकृष्णजी के साथ उनको घर में लेगये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कुशलप्रश्न करके और श्रेष्ठ आसन देकर विधि के साथ अक्रूरजी के चरण धोये और मधुपर्क से पूजाकरी ॥ ३८ ॥ फिर बड़े आदर के साथ प्रभु बलरामजी ने, उन अतिथि अक्रूरजी के सन्तोष के निमित्त गौ समर्पण करके और चरणों की सेवा आदि से उनकी थकावट दूरकरके बड़ी प्रीति के साथ उनको शुद्ध और छहों रसों का भोजन कराया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर भोजन करेहुए उनको फिर, परमधर्मज्ञ उन बलरामजी ने, ताम्बूल, चन्दन आदि का लेपन और सुगन्धित पुष्पों की माला देकर परम सन्तुष्ट करा ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार करेहुए उन अक्रूरजी से नन्दराजा ने बूझा कि हे यादवों में श्रेष्ठ अक्रूर ! अतिक्रूर कंस के जीवित रहते ' जैसे बधिकही जिनका रक्षक है ऐसी भेडों को सुख मिलने का तो नामही क्या किन्तु बचना भी कठिन होता है तैसेही ' तुम कैसे जीवित रहते हो ? अर्थात् जिनका जीवित रहना भी दुर्लभ है उनसे दूसरा कुशलप्रश्न तो क्या कियाजाय ? ॥ ४१ ॥ केवल प्राणों की तृप्ति करने वाले जिस दुष्ट कंस ने, विलाप करनेवाली अपनी बहिनके छोटे २ बालकों की भी हिंसा करी, उसकी प्रजा होकर रहनेवाले तुम्हारी क्या कुशल बूझें ? ॥ ४२ ॥ इस प्रकार पहिले अक्रूरजी ने जिनको कुशल बूझी है ऐसे नन्द जी ने मधुर वाणी से जिनका भली प्रकार सत्कार करा है ऐसे अक्रूरजी ने, मार्ग में के सकल परिश्रम (थकावट आदि)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे अक्रूरागमनं नाम अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
श्रीशुक उवाच सुखोपविष्टः पथि के रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान्स चकार ह ॥१॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने॥ तथापि तत्परा राजन् नहि वाञ्छन्ति किंचन॥२॥सायंतनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥ अहो अस्मद्भूर्द्वयोरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम् ॥ सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागम-

को त्यागा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे उनतालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी मथुरा को जानेलगे तब गोपियों ने जो भाषण करा तिसका और यमुना में अक्रूरजी ने जो विष्णुलोक देखा तिसका वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! तदनन्तर पलँगपर सुखसे बैठेहुए और बलराम श्रीकृष्णजी के द्वारा बहुत आदर सत्कार करेहुए उन अक्रूर जी के, उन्हों ने मार्ग में जितने मनोरथ करे थे वह सब परिपूर्ण करे ॥ १ ॥ हे राजन्! लक्ष्मीपति भगवान् के प्रसन्न होनेपर, कौन पदार्थ दुर्लभ है ? तथापि जो भगवान् के भक्त हैं वह किसी पदार्थ की भी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २ ॥ तब देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी ने, सायङ्काल के भोजन आदि से निवटने पर स्वस्थता के साथ उन अक्रूर जी से, 'कंस का यादवों के साथ कैसा वर्त्ताव है ? यह तथा और भी जो कुछ बूझना था सो सब' बूझा ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे तात ! हे सौम्य ! तुम्हारा यहाँ आना निर्विघ्नता के साथ तो हुआ है ? क्योंकि—ऐसाही हमारा इच्छित है, तुम्हारा कल्याण हो, हमारे मित्रों का, ज्ञातिवालों का और बान्धवों का दुःख रहित आरोग्य तो है ? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजी ! इस समय ऐसा बूझना भी मुझे योग्य नहीं है, क्योंकि—नाममात्र का हमारा मामा परन्तु वास्तव में हमारे कुल का रोगरूप जो कंस तिस के वृद्धि को प्राप्त होनेपर, अपनी ज्ञातिवालों का और उनके बालबच्चों की क्या कुशल बूझें ? ॥ ५ ॥ यह बड़े दुःख की बात है कि—हमारे निमित्त से पूजनीय माता पिता देवकी वसुदेव को अत्यन्त दुःख हुआ, देखो हमारे निमित्त से उनके पुत्रों की मृत्यु हुई और वह कारागार (जेलखाने) में पड़े ॥ ६ ॥ हे प्रिय अक्रूरजी ! मुझे, तुम अपनों के दर्शन की, 'तहां के लोकों का वृतान्त जानने के निमित्त' बहुत दिनों से इच्छा थी सो आज दर्शन हुआ है, इससे मुझे बड़ा आनंद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः॥ वैरानुबंधं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुंदुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥ ॥ १० ॥ गोपान् समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यान्ति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम्॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लो-

---

प्राप्त हुआ इसकारण हे तात! तुम्हारे आने का क्या कारण है सो विस्तार से कहो? ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! इसप्रकार भगवान् के प्रश्नकरने पर अक्रूरजी ने,यादवों के ऊपर जो कंस वैरभाव रखता था और वसुदेवजी को मारडालनेका उद्योग करना आदि सब वर्णन करा ॥ ८ ॥ जो धनुषयज्ञ देखने का उसका कपट का सन्देशा था और जिस निमित्त (चाणूर आदिकों से मरवाने के निमित्त भेट सहित लिवा लाने को) अपने से दूतका काम करने को कहकर कंसने भेजाथा और जो नारदजीने वसुदेवजी से इनका (श्रीकृष्ण का) जन्म होना कंस से कहाथा सो सब उन अक्रूर जी ने श्रीकृष्णजी को वर्णन कर सुनाया ॥ ९ ॥ ऐसा अक्रूरजी का कथन, शत्रुरूप वीरों को मारनेवाले वह श्रीकृष्ण और बलराम सुनकर हँसे और 'अपने को मारने का कंस का अभिप्राय गुप्त रखकर' धनुषयज्ञ देखने को हमें राजाने बुलवाया है ऐसा नंद राजा से निवेदन करा ॥ १० ॥ तब उन नन्दगोपने भी अपने गोकुल में व्रजकी रक्षा करने में नियुक्त करेहुए प्रधान के द्वारा ढँढोरा पिटवाकर सब गोपों को यह सूचना देदी कि—हे गोपों! तुम सब, राजा कंस को भेट (नजराना) देने के निमित्त दही दूध आदि सब प्रकार का गोरस और सैंतकर रक्खेहुए उत्तम पदार्थों को लेलो, छकड़ों में बैलजोतो कल प्रातःकाल हम सब मथुरापुरी को जायँगे,कंसराजा को गोरस समर्पण करेंगे,होनेवाला बड़ाभारी धनुषयज्ञ का उत्सव देखेंगे, यह उत्सव देखने को सब देशों के लोक चले आरहे हैं ॥११ ॥१२॥ तब कृष्णही जिनका जीवन हैं ऐसी गोपियें, बलरामकृष्ण को मथुरा नगरी में लिवा जाने के निमित्त गोकुल में अक्रूर आया है ऐसा समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखित हुईं ॥ १३ ॥ कितनी ही गोपियों की तो—मुखकी कान्ति उससमाचार को सुनकर उत्पन्नहुए हृदयके तापसे प्रखरहुए श्वासोंके पवनों से मलीन होगईं कितनी ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रंथयश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरंत्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदि स्पृशश्चित्रपदाः गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिंतयन्त्यो मुकुन्दस्य लीलाविरहकातराः ॥ समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुंतलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमीक्ष्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्ग-

गोपियों के दुःख से दुर्बल होने के कारण पहिरेहुए वस्त्र और हाथों में के कंकण निकल कर गिरनेलगे और चोटी के बन्धन खुलकर उन में के फूल खसकने लगे ॥ १४ ॥ उन भगवान् के निरन्तर ध्यान से,दूसरी कितनी ही गोपियों की,चित्त की सकल वृत्तियें हटकर, जैसे मुक्तहुए पुरुषों को अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती है तैसे उन गोपियों को शरीर की भी सुध न रही ॥ १५ ॥ दूसरी कितनीही गोपियें, प्रेमयुक्त हास्यकी प्रेरणा करीहुई मनोहर और चित्रविचित्र पदों से युक्त श्रीकृष्णकी बातोंको स्मरणकरके मोहको प्राप्त होगईं ॥ १६ ॥ उससमय श्रीकृष्णकी अति सुन्दरगति, रासक्रीड़ा आदि चेष्टा, प्रेमयुक्त हास्यके साथ देखना, शोक दूर करनेवाली चौल की बातें और परमउदार गोवर्द्धन को उठाना आदि चरित्रों का चिंतवन करनेवाली,यह सब बातें अब छूटजांयगी इससे डरीहुई, विरहसे व्याकुल हुईं, श्रीकृष्णजी की ओर को चित्त लगानेवालीं और नेत्रों में से दुःख के आँसू बहानेवालीं कितनी ही गोपियें, ठट्टके ठट्ट इकट्ठी होकर कहने लगीं ॥ १७ ॥ १८ ॥ गोपियों ने कहा कि—अरे ब्रह्मा! तुझे किसी अंश में भी दया नहीं है, क्योंकि तू सकल प्राणियों को मित्रभावसे और स्नेह से इकट्ठा करके सुखका भोग प्राप्त होने से पहिले ही उनका परस्पर वियोग करडालता है, इससे यह तेरी लीला छोटे बालक के खेल की समान निरर्थक है ॥ १९ ॥ जो तू, काले घुंघुराले केशोंसे ढका हुआ, सुन्दर कपोल और ऊंची नासिका से युक्त तथा शोक दूर करने वाले गूढ़ हास्य से सुन्दर भगवान् का मुख कमल, हमें दिखाकर फिर उसको हमारी दृष्टि से अलग करता है इस कारण तेरा कर्म बड़ा निंदित है ॥ २० ॥ तू जो अपने ही दियेहुये हमारे चक्षुको, विना कुछ विचारे मूर्ख की समान छीनता है इससे तू बड़ाक्रूर है, यदि कहे कि तुम्हारा चक्षुतो अक्रूर हरकर लिये जाता है मुझे दोष क्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ ने नंदसूनुः क्षणभंगसौहृदः संमीक्षते नः स्वकृतातुरा वत ॥ विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान्पतींस्तदास्य मद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवं ॥ याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपांगोत्कलितस्मितासवं ॥ २३ ॥ तासां मुकुंदो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुव तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णिसात्वतां ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणा-

देती हो ? तो सुन—जो क्रूर न होय वह अक्रूर होता है वह कभी भी ऐसा नहीं होसक्ता, इसकारण इस अक्रूरनाम से निःसन्देह तू ही यहां आया है ; यदि कहे कि मैं कृष्ण को लियेजाता हूँ तुम्हारे चक्षु को नहीं तो सुन—जिस तेरे दियेहुए चक्षु से श्रीकृष्णके नेत्र मुख आदि चाहें जिस एक अंगपर भी, तेरी सब सृष्टि की चतुराई हम देखती थीं, उन श्रीकृष्ण का वियोग होनेपर दूसरी कोई वस्तु भी देखनेयोग्य न होने के कारण, इन्होंने मेरी सब चतुराई का रहस्य जानलिया ऐसे क्रोध से तू कृष्ण का वियोग करके हमें अन्धा करदेता है ॥ २१ ॥ फिर आपस में ही कहने लगीं कि—अरी ! श्रीकृष्णही एक क्षण में स्नेह को तोड़नेवाले और नवीन २ स्त्रियों को प्रियमाननेवाले हैं, देखो—हम घर, स्वजन, पुत्र और पति इन सब को त्यागकर साक्षात् उन की ही दासी बननेको गईं और उनके करेहुएही मन्दहास्य आदि से परवश हुईं, ऐसा होतेहुए भी अब यह कृष्ण हमारी ओर को देखते भी नहीं हैं ॥ २२ ॥ मथुरानगरी में की स्त्रियों को यह आनेवाली रात्रि बड़ी सुप्रभात (सुखसूचक शकुन होनेवाले प्रातःकाल से युक्त) होयगी और उन के मनोरथ भी निःसन्देह सत्य होंगे, क्योंकि—वह पुरवासिनी स्त्रियें, नगरी में प्रवेशकरनेवाले श्रीकृष्णके कटाक्ष देखने से बढेहुए हास्यरस से युक्त मुख को आदर के साथ देखेंगीं ॥ २३ ॥ यदि कहोकि—दो तीन दिन ऐसा होय, परन्तु फिर हमारे स्नेह के खेंचेहुए और नन्द आदिकों के पीछे को लौटाएहुए वह कृष्ण फिर गोकुल को आजायँगे ? तो हे गोपियों सुनो—यह श्रीकृष्ण यद्यपि आप धीरजवान् हैं और नन्दादिकों की आज्ञा में भी हैं तथापि उन नगरकी स्त्रियों की मधुर (शहत) समान मीठे और मञ्जुल वातों से चित्त के खिचने से और उनके लज्जायुक्त हास्यों से तथा सुन्दर विलासों से उनमें ही आसक्त होजायँगे फिर ग्राम में रहनेवालीं (चतुराई रहित) हमारी ओर को कैसे आवेंगे ? अर्थात् नहीं आवेंगे ॥ २४ ॥ और अब हमारे उत्साह का सेवन करनेवाले दूसरे ही होंगे, क्योंकि आज उस मथुरापुरी में, लक्ष्मी के पति और सुन्दरता आदि गुणों के आश्रय ऐसे देवकी के पुत्र को जो देखेंगे उन—दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि और सात्वत आदि यादवों की और मार्ग में जानेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पदं द्रक्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतं ॥ २५ ॥ नैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबांधवाः ॥ मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्द्धदुस्त्यजादैवेन विध्वंसितदीनचेतसां ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरंभणरासगोष्ठ्याम् ॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तं ॥ २९ ॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन्

तिन श्रीकृष्णजी को देखनेवाले और लोकोंकी भी दृष्टियों को आज अवश्य परम ही आनन्द प्राप्त होयगा ॥ २५ ॥ अब बडबडातीहुई अक्रूरजी से कहती हैं कि–ऐसा दुष्टकर्म करनेवाले निर्दयी पुरुष का, 'अक्रूर' यह श्रेष्ठनाम ही योग्य नहीं है, क्योंकि–यह तो बडा ही क्रूर है, देखो–जो यह अक्रूर,अत्यन्त दुःखित हुई हमें विना समझाये ही, प्राणोंकी अपेक्षा भी अतिप्रिय श्रीकृष्णको, जहाँ हमारी दृष्टि न पडेंगे ऐसे स्थान में लिवाये जाता है ॥ २६ ॥ अरे ! यह कठोरचित्त श्रीकृष्ण जाने के निमित्त रथपर बैठे हैं और उनके पीछे यह मदोन्मत्त गोप भी छकडोंपर बैठकर जाने की शीघ्रता कररहे हैं, भला इन का अन्याय देखकर उपनन्द आदि वृद्धगोप भी तो नहीं रोकते हैं, इससे प्रतीत होता है कि–हमारा दैवही प्रतिकूल होकर यह ऐसे कार्य कररहा है यदि हमारा दैव अनुकूल होताता इन में से एकाद को तो कुछ विघ्न होता अथवा अचानक वज्रही टूटपडता अथवा और ही कुछ अनिष्ट होजाता,सो कुछ भी नहीं होता है इसकारण जब दैवही प्रतिकूल है तो हमारे जीवन को भी धिक्कार है ॥ २७ ॥ अब साहस करने का निश्चय करती हैं कि–हम सब एकत्र इकट्ठी होकर कृष्णके समीप जाकर मथुराजाने को उन्हें निषेध करआवें; यदि कहो कि ऐसा करनेसे वृद्ध पुरुषों को कोप होयगा तो सुनो–आधेपल को भी जिसका त्यागना कठिनहै ऐसे कृष्णके संगसे प्रारब्धवश वियोग होने के कारण दीनचित्त हुई हमारा,कुल के वृद्ध पुरुष और बान्धव क्या करेंगे ? इसदशा को पहुँचीहुई हमेंतो इससमय मृत्यु का भी भयनहींहै॥२८॥ हे गोपियों ! जिन कृष्ण की, स्नेह के साथ होनेवाले सुन्दर हास्य,मनोहर भाषण, लीला केसाथ कटाक्ष से देखना और आलिङ्गन से युक्त रासक्रीड़ारूप सभा में, हमने बहुतसीरात्रियें एक क्षणकी समान बिताई हैं ऐसे इन श्रीकृष्ण केविना अब दुःसहविरहदुःख को कैसे सहें ? वहतो सहन करना बड़ा कठिन है ॥२९॥ दुःख सहना दूर रहो परन्तु हमार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं कणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदतीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथं ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जन्त नंदाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुंभान् गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवतः कांक्षत्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सांत्वयामास संप्रैमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निवृत्तोर्विदविनिव-

जीवितरहना भी काठनहै ऐसावर्णन करतेहैं कि जो श्रीकृष्णप्रातिदिनसायङ्कालकेसमय, बलराम के साथ गोपोंसे घिरेहुए और गौओं के खुरों से उड़ीहुई धूलिसे जिन के कण्ठकी माला और घुंघुरालेकेश मलिन होरहे हैं ऐसे होकर गोकुल में प्रवेश करतेहैं और मुरली बजातेहुए मन्द मुसकुरान के साथ हमारे चित्तको हरते हैं उन कृष्ण के विना अबहम जीवित भी कैसे रहें? ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इसप्रकार कहती हुई, जिनके चित्त श्रीकृष्ण के विषैं अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं और आगे को होनेवाले श्रीकृष्णजी के विरह से घबडाईहुई वह सब गोपियें, लज्जाको त्यागकर बडे ऊँचे स्वर से हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! इसप्रकार पुकार पुकार कर रोनेलगीं ॥ ३१ ॥ इसप्रकार स्त्रियोंके रोतेहुए, सूर्योदय होनेपर स्नान सन्ध्या आदि नित्यकर्म से निवटेहुए तिन अक्रूरजीने; जिस के भीतर बलराम कृष्ण बैठे हैं ऐसा रथ मथुरा की ओर को हाँकदिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राजाकंस के देनेयोग्य बहुतसीभेट (नजराने) और गोरस से मुँहपर्यन्त भरेहुए कलश लेकर नन्द आदि गोप, अपनी अपनी गाडियों पर बैठकर उसरथके पीछे चलदिये ॥ ३३ ॥ उस समय सबहीं गोपियें, तिन प्रिय श्रीकृष्णजी के पीछे चलने लगीं तब, उन्होंने रथमें से पीछे को फिरकर देखने के कारण वह कुछ एक आनन्द को प्राप्तहुईं और अपने को लौटजाने के विषय में भगवान् की आज्ञा होनेकी बाट देखती हुई तहांही खडीरहीं ॥ ३४ ॥ तब यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ने, अपने मथुरा को जानेके कारण अत्यन्त दुःख को प्राप्तहुई उन गोपियों को देखकर 'मैं शीघ्रही आऊँगा' ऐसा दूतसे कहलाकर भेजेहुए प्रेमयुक्त भाषणों से उनको समझाया ॥ ३५ ॥ तब जिन्होंने अपने मन श्रीकृष्णजी के साथ भेजदिये हैं ऐसी वह गोपियें, जबतक श्रीकृष्णजी के रथकी ध्वजा दीखती रही और तदनन्तर जबतक उस रथसे उडीहुई धूलि दीखती रही तबतक जैसे चित्र में बनाईहुई स्त्रियें निश्चल रहती हैं तैसे निश्चल रहकर-॥ ३६ ॥ तदनन्तर दूरगये हुए श्रीकृष्ण के पीछेको फिरने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्त्तने ॥ विशोकाः अहनी निर्युगायंत्यः प्रियंचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिंदीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षखण्डमुपव्रज्य संरामो रथमाविशत् ॥३९॥ अक्रूरस्तावुपागम्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम्॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिहागतावानकदुंदुभिः ॥ तर्हि स्वित्स्यदने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहर्निशं॥ सिद्धचरणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्यो-

में निराश हुई वह गोपियें, तहाँसे पीछे को लौटीं और प्रिय कृष्ण के चरित्रों को गाकर शोक रहित होती हुई एक २ रात्रि और एक २ दिनको बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इधर बलराम और अक्रूरजी सहित वह श्रीकृष्णजी भी, वायुकी समान वेगवाले रथके द्वारा पापोंका नाश करनेवाली यमुना के तटपर पहुँचे ॥ ३८ ॥ तहाँ वृक्षोंकीझाडी में रथको खडा करके उसकेऊपर से बलरामसहित श्रीकृष्णजी नीचे उतरे और उस यमुना के निर्मल तथा इन्द्रनीलमणि की समान श्यामवर्ण जलसे हाथपैर और मुखको धोकर तथा जल पीकर फिर वृक्षों की झाडी में आकर वह बलरामसहित श्रीकृष्णजी रथपर बैठगये ॥३९॥ तब, जिनको शत्रुसे शङ्का हुई है ऐसे अक्रूरजी भी, बलराम कृष्ण को रथपर बैठाकर फिर उनसे आज्ञा लेकर मध्यान्ह का कृत्य करने के निमित्त यमुना के गम्भीर जल में घुसे और तहाँ उन्हों ने विधिपूर्वक स्नान करने का प्रारम्भ करा ॥ ४० ॥ और उस जल में डुबकी मारकर सनातन ब्रह्मरूप प्रणवादि मंत्र का जप करनेलगे, उससमय उन अक्रूरजी ने तहाँ एकस्थान में को बलराम कृष्ण कोभी देखा ॥ ४१ ॥ तब वह अक्रूरजी वह रथपर बैठेहुए वसुदेव के पुत्र यहाँ कहां से आये ? यदि रथपर से उतरकर यहाँ आयेहोंगे तो रथपर नहीं होंगे, ऐसी तर्कना करके उन्हों ने ऊपर को मस्तक उठाकर रथकी ओर को देखा ४२ सो तहाँ वह पहिले की समान बैठे हैं ऐसा उनकी दृष्टि पडातब जलमेंजो मुझे दर्शन हुआ वह झूँठाहै वा सच्चा, इसका निश्चय करनेके निमित्त अक्रूरजीने फिरजलमें डुबकी लगाई ॥ ४३ ॥ सो तहांभी फिर उन्हों ने, शिर झुकाएहुए सिद्ध, चारण, गंधर्व और असुर जिनकी स्तुति कररहे हैं, सहस्र मस्तकोंवाले, महस्र फणों के ऊपर किरीट धारण करनेवाले, देदीप्यमान, काले वस्त्र धारण करनेवाले, कमल के कंद (भसींड)की समान श्वेतवर्ण और जैसे चांदीका कैलाश पर्वत सुवर्ण के शिखरों से शोभायमान होता है तैसे फणों के ऊपर के कि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रूनसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरं ॥४७॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरस्थलश्रियं ॥ कंबुकंठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरं ॥४८॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितं ॥ चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतं ॥ ४९ ॥ तुंगगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतं ॥ नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजं ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुंडलैः ॥५१॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरं ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनं ॥ ५२ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥५३॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलया ऊर्ज्जया ॥ विद्यया ऽविद्यया शक्त्या

रीटों से शोभायमान होनेवाले शेषजी को देखा ॥४४॥४५॥ उनके कुण्डलाकार करेहुए आधे शरीरपर शयन करेहुए मेघ की समान श्यामवर्ण, पीला रेशमी पीताम्बर पहिने चारभुजा वाले, शान्त, कमल के पत्र की समान कुछएक लालनेत्रवाले ४६ ।सुन्दर और प्रसन्नमुख, सुंदर हास्यके साथ देखनेवाले, सुन्दर भ्रुकुटि, ऊँची नासिका, सुंदरकान, मनोहर कपोल और लाल२ अधरओठ वाले॥४७॥ घुटनोपर्यंत लम्बी और पुष्ट भुजा, ऊँचे कंधेवाले और वक्षःस्थलपर लक्ष्मी को धारण करेहुए, शङ्ख की समान तीन रेखाओं से युक्त कण्ठ, गहरीनाभि और त्रिवलीयुक्त पीपल के पत्ते की समान पेटवाले॥ ४८ ॥ विस्तारवाले कमर के पीछे के भाग से और हाथी की सूंड की समान सुन्दर दोनो ऊरु से युक्त, सुन्दर दोनो जानुओं से और मनोहर दोनों जङ्घाओं से युक्त ॥ ४९ ॥ थोड़ीसी ऊँची जो एड़ी और लाल २ जो नखों का समूह उसकी कान्ति से युक्त, नवीन अंगुलि और अंगूठे ही मानों जिनमें पखडी हैं ऐसे चरणकमलों से युक्त ॥ ५० ॥ बहुत मोल के रत्नों के समूहों से जडेहुए किरीट, कडे, तोडे, बाजूबन्द, कमर की जंजीर, यज्ञोपवीत, हार, नूपुर, और कुण्डलों से प्रकाशवान दाहिने हाथ में कमल धारण करे और शेष तीन हाथों में शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह, कण्ठ में कौस्तुभमणि और वनमाला पहिने ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तथा निर्मलचित्त नन्द सुनन्द आदि पार्षदों करके 'अपने स्वामी हैं' इस बुद्धि से, सनकादि ऋषियों करके ब्रह्मबुद्धि से, ब्रह्मा रुद्र आदि देवेश्वरों करके महेश्वर बुद्धि से, मरीचि आदि श्रेष्ठ नौ ब्राह्मणों करके प्रजापतिबुद्धि से और प्रल्हाद, नारद, वसु आदि उत्तम भगवद्भक्तों करके 'भगवान् हैं' ऐसी बुद्धि से अर्थात् सब भक्तों से भिन्न २ अभिप्रायों करके स्तुति करेहुए ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मायया च निषेवितं ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालंब्य सात्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिपुटः शनैः ॥५७॥ इ० भा० म० द० पू० अक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययं ॥ यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥१॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इंद्रियाणि ॥ सर्वेंद्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽगभूताः ॥ २ ॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपं ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरं ॥ साध्यात्मं साधिभूतं

इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, और माया इन बारह शक्तियों करके सेवा करेहुए ॥ ५५ ॥ ऐसे देव को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, उत्तम भक्तिमान्, जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए हैं और प्रीति की अधिकता से गद्गदचित्त होकर आनन्द के आँसुओं से नेत्र भरआये हैं ऐसे वह अक्रूर जी, धीरे २ धीरज का आश्रय करके, मस्तक से भगवान् को नमस्कार कर और हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त होतेहुए गद्गद हुई वाणी से उन भगवान की स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवत के पूर्वार्ध में एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे चालीसवें अध्याय में अक्रूर जी ने, यह श्रीकृष्ण ब्रह्मादिकों के भी ईश्वर हैं ऐसा जान भक्ति के साथ नमस्कार करके उनकी सगुण निर्गुण भेदों से स्तुति करी, ऐसी कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ अक्रूर जी ने कहा कि—हे कृष्ण! सब कारणों के कारण, आदि, पुरुष और अविनाशी ऐसे तुम नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ; जिन तुम्हारी नाभि में से प्रकटहुए कमलकोश में से ब्रह्माजी उत्पन्नहुए हैं और फिर उन ब्रह्माजी से यह सृष्टिरूप सकल लोक प्रकटहुआ है ॥ १ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, माया, पुरुष, मन, इन्द्रियें, विषय और देवता यह जितने जगत् के कारण हैं सो सब ही तुम्हारी श्री मूर्त्तिसे उत्पन्नहुएहैं ॥२॥ यह मायादिक सबही पदार्थ, सबके आत्मा जो तुम तिनके स्वरूप को नहीं जानतेहैं, क्योंकि—यह प्रत्यक्ष आदि कारणोंसे जड़रूपसे ग्रहण करेगयेहैं. अब यह पदार्थ, जड़होने के कारण मुझे न जानो परन्तु इन सबों को और अपने को भी जाननेवाला जो जीव वह तो मुझे जानता होगा, ऐसा कहो तो—उत्तम कोटि का जीव (ब्रह्मा) भी, मायाके गुणों से बँधाहुआ होनेके कारण, तिन गुणों से भी पर ऐसे तुम्हारे स्वरूप को नहीं जानता है फिर दूसरा जीव कहांसे जानेगा? अर्थात् कभी नहीं जानसक्ता ॥ ३ ॥ अब यदि कोईनहीं जानसक्ता तो जीवोंका संसार से छुटकारा कैसे होयगा ऐसा कहोगे तो—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजंति ज्ञानविग्रहं ॥ ६ ॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकम् ॥७॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशन्ति सर्वतः सिंधुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः

साक्षात् अगोचर भी तुम्हारा किसी मार्ग से भजन करनेवालों को तुम प्राप्त होते हो, ऐसा वर्णन करते हैं—योगसाधन करनेवाले कितने ही योगी, साक्षात् महापुरुष और अन्तर्यामी ईश्वररूप तुम्हारी आराधना करते हैं दूसरे कितने ही आत्मज्ञानी पुरुष, शरीर के नेत्र हृदय आदि अङ्गों के, सकल प्राणीमात्र के और सकल देवताओं के साक्षी ऐसे तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ४ ॥ कितने ही यज्ञ आदि करनेवाले ब्राह्मण, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में विस्तार के साथ कहीहुई यज्ञ करने की रीतियों के द्वारा इन्द्र. वरुण आदि अनेकों देवताओं के नामोंसे तुम्हाराही पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ कितने ही ज्ञानीपुरुष, सकल कर्मोंको त्यागकर और शान्तभाव का आश्रय करके समाधि के द्वारा तुम ज्ञानमूर्त्तिकी ही आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ दूसरे जो पञ्चरात्र में कहीहुई विधि से वैष्णवदीक्षा के संस्कार को प्राप्त हुएहैं वह तुम्हारे स्वरूप करके अपने आत्माका चिन्तवन करते हुए, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत मूर्त्तिवाले और नारायणरूप से एक मूर्त्तिवाले ऐसे तुम्हारी उपासना करते हैं ॥७॥ हे भगवन्! दूसरे कितने ही उपासक, शिवजी के कहेहुए पाशुपतआदि मार्ग से और अनेकों आचार्यों के कहेहुए उनमें के नानाप्रकार के भेदों से, शिवरूप तुम्हारी ही उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हेप्रभो! जोकोई दूसरे क्षुद्र देवताओं के भक्त हैं वहभी, यद्यपि तिन २ देवताओं में परमेश्वरबुद्धि रखनेवाले हों तथापि वह सबही सकल देवताओं के अन्तर्यामी तुम परमेश्वरकी ही उपासना करते हैं ॥ ९ ॥ हेप्रभो! जैसे पर्वतों में से उत्पन्नहुई नदियें, मेघोंके जलसे भरते ही चारोंओर से समुद्र में ही प्रवेश करतीहैं, तैसेही नाना प्रकार के भजन करने के मार्गभी, तिन२ देवताओं के द्वारा अन्त में तुम्हारीही प्राप्ति करादेने वाले होते हैं ॥ १० ॥ क्योंकि—सत्त्व, रज और तम, यह तुम्हारी शक्तिरूप प्रकृति के गुण हैं अतः तिनमें ही प्रकृतिकार्योपाधिक ब्रह्मादि स्थावर पर्यन्त सकल जीव, अपनी उपाधि के द्वारा ओतप्रोत हैं, वह गुण प्रकृति में तथा वह प्रकृति तुममें प्रविष्ट हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥११॥ तुभ्यं नमस्ते ऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्ययाकृतः प्रवर्तते देववृतिर्षगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं ते ऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वष्टपव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ॥ यथा जले सञ्जिहते जलौकसोऽप्युदुंबरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय

रही है इसकारण क्रमसे सबही तुम्हारे विषैं प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥ यदि मुझेभी तुम्हारे कथनानुसार प्रकृति का सम्बन्ध है तो प्रकृति के कार्यरूप जीवों में और मुझमें अन्तरही क्यारहा? यदि ऐसा कहोतो हे प्रभो! तुम्हारी बुद्धि गुणोंमें लिप्त नहींहोती है, तुमसबों के आत्मा और सबोंकी बुद्धियों के साक्षी हो, ऐसे तुम्हें, तुम्हारी प्राप्ति होने के निमित्त मेरा नमस्कार हो, अविद्या का कराहुआ यह संसार तो-देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि देहाभिमानी जीवोंको ही प्राप्त होताहै तुम्हें नहीं प्राप्तहोताहै इसकारण उनजीवोंमें और तुम में बड़ा अन्तरहै॥ १२॥हेदेव! जो यह अग्निहै सो तुम्हारा मुखहै, सात पातालों सहित भूमि यह-तुम्हारे कमरपर्यन्त चरण हैं, सूर्य, चक्षु, आकाश नाभि और दिशा कान, सत्यलोक, मस्तक, यह इन्द्रादिक देवता तुम्हारे बाहु, समुद्र. कोख, वायु-- प्राण तथा बल कल्पित है ॥ १३ ॥ वृक्ष और औषधि-तुम्हारे रोम, मेघ-तुम्हारे मस्तक पर के केश, पर्वत तुम परमेश्वर के नख और हाड़ हैं, रात्रि और दिन-तुम्हारा पलक लगाना और खोलना है ब्रह्माजी-तुम्हारी गुह्य इन्द्रिय हैं और वर्षा-तुम्हारा वीर्य है, ऐसा सबों ने माना है ॥ १४॥ इतना ही नहीं किन्तु-बहुत से जीवोंसे भरेहुए यह लोकपालों सहित लोक, अविनाशी और केवल मनसे ग्रहण करने योग्य तुम पुरुषरूप के विषैं कल्पित हैं और वह-जैसे मच्छी आदि जलके जीव जितना स्थान मिलता है उस में विचरते हैं [illegible] स्वरूप के वृक्षपर असंख्य फल होते हैं और उनमें परस्पर की बातकी करेगयेहैं. अब यह हल्लों भुनगे रहते हैं तैसेही एकही तुम्हारे विषैं अनन्त [illegible] भी जाननेवाला भीतर लोकों में परस्पर की बात भी न जाननेवाले अनन्त जीव [illegible] ब्रह्मा) भी, इस लोक में क्रीड़ा करने के निमित्त तुम, जो २ मत्स्यादि रूप धारण करते हैं [illegible] नहीं द्वारा, आध्यात्मिक आदि दुःखों को नाश करनेवाले तुम्हारे यश को जो जीव आनन्दके साथ गाते हैं वह तरजाते हैं ॥१६॥सत्यव्रत राजा की रक्षा और वेदोंका उद्धारकरने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्त्तये ॥ ॥ १८ ॥ नमस्ते ऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥ भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहं ॥ द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाबुधो जलं हित्वा

निमित्त मत्स्यरूप धारण करके प्रलयकाल के समुद्र में विचरनेवाले तुम्हें नमस्कार हो; मधुकैटभनामक दैत्यों को मारने के निमित्त हयग्रीव अवतार धारण करनेवाले तुम्हें नमस्कार हो ॥ १७ ॥ मन्दराचल पर्वत को धारण करनेवाले महाकूर्मरूपी तुम्हें नमस्कार हो; पृथ्वी का उद्धार करने के निमित्त क्रीड़ा करनेवाले वराहावताररूप तुम्हें नमस्कार हो। ॥ १८ ॥ हे साधुपुरुषों का भय हरनेवाले देव ! अद्भुत नृसिंहमूर्त्ति धारण करनेवाले तुम्हें नमस्कार हो; त्रिलोकी को व्याप्त करडालनेवाले वामनरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ १९ ॥ घमण्डी क्षत्रियकुलरूप वन को काटनेवाले भृगुकुल के अधिपति तुम परशुराम को नमस्कार हो, रावण का नाश करनेवाले तुम रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार हो ॥ २० ॥ भक्तों का पालन करनेवाले, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूह मूर्त्ति धारण करनेवाले तुम श्रीकृष्ण को वारम्वार नमस्कार हो ॥ २१ ॥ दैत्य और दानवों को मोहित करनेवाले परन्तु वास्तव में शुद्धरूप तुम बुद्ध मूर्त्ति को नमस्कार हो, म्लेच्छरूप क्षत्रियों का संहार करनेवाले कल्किरूप तुम्हें नमस्कार हो ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह सबही जीवलोक तुम्हारी माया से मोहित होरहा है इस कारण तुच्छ देहादिकों में, मैं और मेरा ऐसा अभिमान रखकर कर्ममार्ग में घूमता रहता है ॥ २३ ॥ केवल लोक ही भ्रमण करता रहता हो ऐसा नहीं किंतु, हे विभो ! मैं भी स्वप्नसमान–देह, पुत्र, घर, स्त्री, धन और स्वजनो में मूर्खता से सत्यता की बुद्धि रखकर भ्रमण कररहा हूँ अर्थात् आसक्त होरहा हूँ ॥ २४ ॥ अनित्य कर्मों के फलको नित्य माननेवाला, अनात्मरूप देह को आत्मा माननेवाला और दुःखरूप घर आदि को सुखरूप माननेवाला, सुखदुःखादि द्वन्द्वों में मग्न रहनेवाला, और अज्ञान से भराहुआ मैं, अपने परमप्रेम के स्थान तुम्हें नहीं जानता हूँ ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष, जलसे ही उत्पन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः । अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः । रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनाया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहर-

हुए शैवाल और तिनुकों से ढकेहुए सच्चे जलको छोड़कर, केवल प्रतीत ही होनेवाले मृगतृष्णा के जलकी ओर को दौड़ता है तैसे ही मैं, परमानन्दरूप तुमसे पराङ्मुख होकर मृगतृष्णा के जलकी समान असत् विषयों में आसक्त होरहा हूँ ॥ २६ ॥ ऐसा कृपण बुद्धि हुआ मैं, काम और कर्मों से क्षोभ को प्राप्तहुये और अतिबली इन्द्रियों से तिन २ विषयों की ओर को खैंचेहुए अपने मनको वश में करने को समर्थ नहीं होता हूँ ।२७। हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! ऐसा मैं, विषयासक्त पुरुषों को जिसका पाना कठिन है ऐसे तुम्हारे चरण की शरण आया हूँ, सो यह तुम्हारी शरण जाना भी तुम्हारे अनुग्रह सेही हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ, यदि कहो कि–ऐसा साधुओं के समागम से होजाता है तो सो भी–जब इस जीवके संसार की समाप्ति होने का समय तुम्हारी कृपा से आता है तबही साधुओं की सेवा से तुम्हारे विषैं बुद्धि लगती है, तुम्हारी कृपा के विना साधुओं का समागम नहीं मिलता है और साधु समागम के विना तुम्हारे विषैं बुद्धि नहीं लगती है और ऐसा हुए विना मुक्ति भी कभी नहीं प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ ऐसा कहकर पैरों में पड़ते हुए नमस्कार करते हैं–सकल ज्ञानों के कारण, अपरोक्ष ज्ञानस्वरूप,सकल जीवों को सुख दुःखादि देनेवाले काल-कर्म–स्वभाव आदि के ऊपर भी आज्ञा चलानेवाले, अनन्त शक्ति, तुम परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप को नमस्कार हो ॥ २९ ॥सकल प्राणियों के निवासस्थान तुम वासुदेव को नमस्कार हो, विषयों को ग्रहण करनेवालीं सकल इंद्रियों के प्रवर्त्तक तुम्हें नमस्कार हो, हे प्रभो! शरण आयेहुए मेरी तुम रक्षा करो ॥३०॥ इति श्रीद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ *॥अत्र आगे इकतालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने मथुरा नगरी में प्रवेश करतेहुए रजक का वध करा और तन्तुवायक (दरजी) तथा सुदामा माली के ऊपर प्रसन्न होकर इन दोनों को वरदान दिये यह कथा वर्णन करीहै* श्रीशुकदेव जी ने कहा कि–हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् ने अपना चतुर्भुज स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोऽपि चातिहितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥३॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम्॥ ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा नोदयामास स्यन्दनं गांदिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चादधुः ॥ ७ ॥ तावद्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं ज-

दिखाकर उन अक्रूर जी के स्तुति करतेहुए, जैसे लोकों को नाटक दिखानेवाला नट, देखनेवाले लोकों के प्रशंसा करतेहुए अपने नाट्य को समेट लेता है तैसेही फिर वह अपना स्वरूप समेटलिया ॥ १ ॥ वह अक्रूर जी भी, भगवान् को अन्तर्द्धान हुआ देखकर तत्काल जल में से बाहर निकले और अपना मध्यान्ह काल का सब कर्म निवटाकर विस्मय में होतेहुए रथके समीप आये ॥ २ ॥ उनसे श्रीकृष्णजी ने पूछा कि—हे अक्रूर! इस समय तुम्हें भूमिपर, आकाश में वा जल में कोई आश्चर्यकारक वस्तु दृष्टि पड़ी क्या तुम्हारी आकृति से तो—कोई आश्चर्य देखा है ऐसा हमें अनुमान होता है ॥ ३ ॥ अक्रूर जी ने कहा कि—हे कृष्ण! इस भूमिपर क्या, आकाश में क्या और जल में क्या जितने चमत्कार हैं वह सब, विश्वरूप तुम में भरेहुए हैं, फिर तुम्हें देखनेवाले मैंने कौनसा आश्चर्य नहीं देखा अर्थात् सबही आश्चर्य देखलिये हैं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मस्वरूप कृष्ण! जिन तुम्हारे विषैं सबही आश्चर्य भरेहुएहैं ऐसे तुम परमात्मा को देखनेवाला मैं भूमिपर आकाश में वा जलमें तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन आश्चर्य देखा है अर्थात् तुमही आश्चर्य रूप दृष्टि पड़े हो ॥ ५ ॥ ऐसा उत्तर कहकर उन अक्रूरजी ने रथ हाँका और दुपहर ढलनेपर राम कृष्ण को लेकर मथुरा के समीप जाकर पहुँचे ॥ ६॥ हेराजन्! उससमय मार्ग में जहां तहां इकट्ठे हुए ग्राम के पुरुष, तिन वसुदेव जी के पुत्र बलराम कृष्ण को देखकर, अपनी दृष्टि पीछे लौटाने को समर्थ नहीं हुए अर्थात् उनको देखते ही रहे ॥७॥ अक्रूरजी को स्नान संध्या आदि करने में विलम्ब लगाथा इसकारण बलराम कृष्णके जानेसे पहिलेही आगे गये हुए व्रजवासी नन्दादि गोप, मथुरा के समीपके बागमें पहुँचकर तहां बलराम कृष्णकी बाट देखरहे थे ॥ ८ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णजी, उनके समीप जाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान् प्रविशताग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहागतमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रीलोकांश्छुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्यातास्सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोस्तु ते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये

पहुँचे तब अपने हाथसे अक्रूरजी का हाथ पकड़कर हँसतेहुए से तिन नम्र अक्रूरजी से कहने लगे कि-॥ ९ ॥ हे तात अक्रूरजी ! हमें ले आये यह समाचार कंससे कहने के निमित्त आगे नगरी में जाओ, रथसहित तुम जाओ और कंससे यह समाचार कहकर तत्काल अपने घरको जाओ, क्योंकि-हमारे नगरीमें प्रवेश करनेके समय कुछ झगडा होजाना सम्भवहै इस कारण हम अब अपना असबाब आदि उतारकर विश्राम लेकर फिर मथुरा नगरी की शोभा देखेंगे ॥ १० ॥ अक्रूर जी ने कहाकि-हेप्रभो ! तुमदोनों से रहित मैं इकलाही मथुरा में प्रवेश करने की इच्छा नहीं करता हूँ, हे नाथ ! हे भक्तवत्सल ! तुम मुझ अपने भक्त को त्याग करने का मन में विचार नकरो ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! हे परममित्र ! बलराम, गोपाल और मित्रों के साथ तुम हमारे घरचलो, हम सब इकट्ठे होकर जायँगे, तुम हमें सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणरज से मुझ गृहस्थाश्रमी के घरको पवित्र करो, जिस तुम्हारे चरण को धोने के जल (गङ्गाजल) से तर्पण करेहुए पितर, अग्नि और देवता क्षण२ में तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारे दोनों चरणों को धोकर राजाबलि, परमकीर्त्तिके विषय में योग्य और गुणोंसे बडा हुआ तथा उस ने इससमय सुतलमें और आगे को स्वर्ग में अतुल ऐश्वर्य पाया है और उस ने निष्कामभक्तों की तुम्हारे स्वरूप की प्राप्तिरूप उत्तमगति भी पाईहै ॥ १४ ॥ तुम्हारे चरण को धोनेसे पवित्रहुए जलोंने, तीनों लोकों को पवित्र कराहै, क्योंकि जिन जलों को, शिवजी धारण करते हैं और जिन के स्पर्शमात्र से सगर राजा के पुत्र स्वर्ग को चलेगए हैं ॥ १५ ॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! हे यदुवंशोत्तम ! हे उत्तमकीर्त्ते ! हे नारायण ! तुम्हें नमस्कार हो ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि-हे अक्रूरजी ! मैं पहिले यादवकुल से वैर करनेवाले कंस को मारकर फिर बलराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान् कृष्णः संकर्षणान्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥ ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ ॥ २१ ॥ जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृंतरंभाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतैर्द्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वय-

सहित तुम्हारे घर आऊंगा और तुम्हारा ही क्या किन्तु सब ही सुहृदों का प्रिय करूंगा॥ १७॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् के कहेहुए अक्रूरजी, कुछ खिन्न से होकर, नगरी में को चलेगये और बलराम कृष्ण को लिवालाया ऐसा, कंस से कहकर वह अपने घरको चलेगये ॥ १८ ॥ तदनन्तर मथुरा नगरी को देखने की इच्छा करने वाले गोपों से घिरेहुए और बलरामसहित उन श्रीकृष्णजी ने, तीसरे पहरके समय मथुरा में प्रवेश करके वह नगरी देखी ॥ १९ ॥ जिस नगरी में स्फटिकमणियों के नगर के द्वार और घरों के द्वार थे, सुवर्ण के बडे २ किवाड़ और चौखट थीं, तांबे और लोहे के अन्न आदि रखने के कोठे थे, जो चारों ओर खाइयों के होनेसे भीतर प्रवेश करनेको अशक्य और दूर के बागों तथा समीप के बगीचों से अति शोभायमान थी ॥ २० ॥ जो सुवर्ण के चौराहे, साहूकारों के घर और घरोंके योग्य बगीचों से तथा कारीगरों की दुकानों और घरों से शोभायमान थी ; जो वैदूर्यमणी, हीरे, स्फटिक, नीलम, मूँगे और पुखराजों से बनायेहुए घरों के छज्जोंपर, वेदियोंपर, झरोखोंपर और बैठकों पर बैठेहुए कबूतरों के मोरों के शब्दों से गुञ्जार रही थी ; जिस में राजमार्ग (आम सड़कें), बाजारों में की गलियें, और मार्ग तथा चौक झाड़े बुहारे हुए थे और जहां तहां फूल, अंकुर तथा अक्षत बिखरे हुए थे ॥ २१ ॥२२॥ तिस नगरी में प्रत्येक घरके द्वारों के दोनों ओर तंदुल के ऊपर दही और चन्दन से सींचेहुए जल के भरे घट स्थापन करेहुए थे, उन घड़ों के चारों ओर फूलों की माला और गले में दमकती हुई रेशमी वस्त्र की पट्टियें, मुख में आम आदि के पल्लव उनके ऊपर पात्र में दीपों की पंक्तियें, फिर बहुत से फलों से युक्त केले और सुपारी के खड़ेहुए वृक्ष तथा टांगीहुई ध्वजा और बांधीहुई बन्दनवारें थीं॥ २३॥ हे राजन् ! इसप्रकार की तिस नगरी में अपने मित्रों के साथ राजमार्ग में को जानेवाले तिन बलराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपरार्धं लोचनम् ॥२५॥ अश्नन्त्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपंत्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽपहाय मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः ॥ जहार मत्तद्विरदेंद्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवं ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनन्दमूर्त्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिंदमाधिम् ॥२८॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः॥

कृष्ण को देखने के निमित्त उत्कण्ठित होकर शीघ्रता में भरीहुई नगरकी स्त्रियें अपनेघरों में से निकलकर तिन बलराम कृष्णके सन्मुख आईं और जो घरों में से बाहर जाने के योग्य नहीं थीं वह कुल की स्त्रियें, अपने२ घरों की अटारियों पर चढ़गईं ॥२४॥कितनी ही स्त्रियों ने भड़मड़ी में पैरों के गहने हाथों में और हाथों के गहने पैरों में पहिनकर, पहिरने का वस्त्र ओढ़कर और ओढ़ने का वस्त्र पहिनकर तैसे ही चलीगईं, कितनियों ही ने, कुण्डल और कङ्कन आदि जो दो २ भूषण कान और हाथ आदि में धारण करने के थे उनमें से एक २ भूलकर एक२ को ही धारण करके चलीगईं,कोई दोनों कानों में के कर्णफूल एकही कान में और दोनों पैरों में की पायजेबें एकही पैर में पहिनकर चलीगईं कितनी ही एक नेत्र में काजल आंजकर दूसरे में विना आंजे ही चली गईं ॥२५॥ कितनी ही भोजन कररहीं थीं वह भोजन को छोड़कर तैसे ही चलीगईं, कितनियों ही के शरीर को सखियों ने तेल मला था वह स्नान करे विना तैसे ही चलीगईं, कितनी ही सोरही थीं वह 'भगवान् आये ऐसा' मार्ग में के लोगों का कलकलाहट का शब्द सुनकर गड़बड़ी में तैसे ही उठकर चलीगईं, कितनी ही माताएं—बालकों को दूध पिलारहीं थीं वह बालकों को छोड़कर तैसे ही चलीगईं ॥ २६ ॥ उससमय मतवाले हाथी की समान चलनेवाले तिन कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णजी ने, अपनी प्रौढ़ लीलाओं से, हास्यों से, चितवनों से और लक्ष्मी को भी आनन्द देनेवाले शरीर से उनकी दृष्टियों को आनन्द देकर उनके मनों को खैंचलिया ॥ २७ ॥ हे कामादि शत्रुओंको जीतनेवाले राजन्! वह स्त्रियें कृष्णके गुण वारम्वार सुनने के कारण पहिले ही श्रीकृष्ण के विषैं चित्त लगाएहुए थीं, अब वह कृष्ण को प्रत्यक्ष देखकर उनकी चितवन से और हास्यरूप अमृतके छिड़कने से सत्कार करीहुई होकर अपने खुलेहुए नेत्ररूप द्वार से अन्तःकरण में प्रवेश कराए हुए उन आनन्दमूर्त्ति श्रीकृष्ण को आलिंगन करके, और शरीरपर रोमाञ्च धारण करके पहिले उन के न मिलने के कारण जो मन में अनन्त दुःख था उस को त्यागा ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा वलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ सांक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ यातशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा॥ बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायात्पातयत्

उससमय जो स्त्रियें महलों की अटारियों पर चढीहुई थीं वह,श्रीकृष्णजी को देखकर आनन्द से प्रफुल्लित मुखकमलवालीं होगईं और उन्हों ने ढेरों पुष्प लाकर बलराम कृष्णके ऊपर फूलों की वर्षा करी ॥२९॥ उससमय हर्ष को प्राप्तहुए ब्राह्मणों ने, मार्ग मेंजहां तहां तिलक करने के निमित्त दही और अक्षत, चरण धोने के निमित्त जल के पात्र,पूजन करने को पुष्पों की माला, चन्दन, मिष्टान्न और फल आदि लेकर उन बलराम कृष्ण की पूजा करी ॥ ३० ॥ उससमय नगर की स्त्रियें आपस में कहने लगीं कि—अहो ! जो गोपियें, मनुष्यलोक को परम आनन्द देनेवाले इन बलराम कृष्णको क्षण २ में देखती हैं उन्होंने पहिले जन्मों में कौनसा बडाभारी तपकरा होगा ? ॥ ३१ ॥ इसप्रकार लोकों के वातचीत करतेहुए श्रीकृष्णजी ने, मार्गमें आतेहुए,वस्त्र धोनेवाले और वस्त्रों को रँगनेवाले भी एक रजक को देखा और उस के पास धुलेहुए अति उत्तम वस्त्र थे वह मांगे ॥ ३२ ॥ कहा कि—हे रजक ! वस्त्रादि करके सत्कार करनेयोग्य हमें तू यह योग्य वस्त्र दे, निःसन्देह देनेवाले तेरा परम कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ इसप्रकार सब पदार्थों से सबदेश में और सब काल में परिपूर्ण उन भगवान् ने जिस से याचना करी है ऐसा वह कंस का सेवक मदोन्मत्त रजक क्रोध में होकर निन्दा करताहुआ कहने लगा कि— ॥ ३४ ॥ अरे उद्धतपुरुषों ! तुम जो राजा के पहिनने के वस्त्र मांगते हो सो अरे ! पर्वतोंपर और वनो में फिरनेवाले तुम ने आजपर्यन्त कभी ऐसे उत्तमवस्त्र पहिने भी हैं ? ॥ ३५ ॥ अरे मूर्खो ! यहां से तुम दूसरे स्थान को चलेजाओ और अब आगे को तुम्हें जीवित रहने की इच्छा होय तो तुम अब ऐसे बढ़िया वस्त्र किसी से भी न मांगना, क्योंकि—राजा के जो हरकारे हैं वह निःसन्देह तुमसे उद्धतपुरुषों को बाँध के डालदेते हैं, मार डालते हैं और उनके पास के सब पदार्थ लूटलेते हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार अट्टसट्ट बातें करनेवाले उस रजक (धोबी) का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥३७॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चेलैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्थार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परं ॥

शिर उन क्रोध में हुए देवकीपुत्र श्रीकृष्णजी ने, अपने नखों से ही देह से अलग करके भूमिपर गिरादिया ॥ ३७ ॥ तब उस रजक के सब सेवक वस्त्रों की गठरियों को तहां ही छोड़कर सब मार्गों में को भागनेलगे, फिर श्रीकृष्णजी ने वह वस्त्र लेलिये ॥ ३८ ॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने और बलराम जी ने, अपने को अच्छे लगनेवाले पीले और नीले वस्त्र पहिनकर कितने ही वस्त्र गोपों को दिये, जो शेष रहे सो भूमि में डालकर तहां से आगे को चलदिये ॥ ३९ ॥ आगे एक प्रेमी तन्तुवाय (दरजी) ने, चित्रविचित्र वर्ण के वस्त्रों के बनाएहुए भूषणों से तिन बलराम कृष्णके यथायोग्य वेष की रचना करदी ॥ ४० ॥ तब जैसे किसी उत्सव में आभूषण पहिनेहुए स्वेत और कृष्ण वर्ण के दो हाथी शोभा पाते हैं तैसे, नानाप्रकार के वस्त्र के बने आभूषणों से भूषितहुए वह बलराम कृष्ण अत्यन्त शोभायमान होनेलगे ॥ ४१ ॥ तब उस तन्तुवाय (दरजी) के ऊपर प्रसन्नहुए भगवान्ने, उस को,देह छूटने के अनन्तर अपनी समानरूपता (सारूप्यमुक्ति) देनेका सङ्कल्प करा और इस लोक में (जबतक जीवित रहे तबतक) उस को उत्तम सम्पत्ति, शरीर का बल ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और इन्द्रियों की पटुता (यथोचित कार्य करनेकी उत्तम शक्ति) दी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर वह बलराम कृष्ण सुदामानामक माली के घर गये, उन को देखते ही वह शीघ्रतासे उठा और उस ने भूमिपर मस्तक नमाकर नमस्कार करा ॥ ४३ ॥ और उनको आसन देकर, पाद्य अर्पण करके तदनन्तर गोपोंसहित उन भगवान् की माला, ताम्बूल, चन्दन का लेपन तथा और भी पूजन की सामग्रियें अर्पण करके पूजा करी ॥ ४४ ॥ और कहने लगाकि—हे प्रभो ! तुम मेरे घर आये तिससे मेरे ऊपर पितर, देवता और ऋषि प्रसन्न हुए हैं, तुमने मेरा कुल पवित्र करा इस कारण आज मेरा जन्म सफल हुआ है ॥ ४५ ॥ तुम निःसन्देह सकल जगत के परमकारण हो और साधुओं का पालन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवतीर्णावि-हांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ नहि वां विषमादृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजतां भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तत्रा-ज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वां ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नि-युज्यते ॥४८॥ इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैः सुगंधैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥४९॥ ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां परां ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीं ॥ बलमायुर्यशः कांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥५२॥ इतिश्रीभागवते म० द० पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नाम एकचत्वा-रिंशोऽध्यायः ॥४१॥ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनां ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वरानना पप्रच्छ यांतीं

करने के निमित्त तथा उनकी उन्नति करने के निमित्त मूर्त्तिभेद से इस लोक में अवतरे हो ॥४६॥ तुम जगत् के आत्मा, सब के मित्र, सब प्राणियों पर समानदृष्टि रखनेवाले और अपनी भक्ति करनेवालोंका सेवन करनेवाले हो,तुम्हारी कहीं भी भेददृष्टि नहीं है ॥४७॥ तुम जगत् के ईश्वर, मुझ दास को आज्ञा करो कि–तुम्हारा मैं कौनसा दासकार्य करूँ ? क्योंकि–तुम अपना कहकर स्वीकार करेहुए पुरुष को जो आज्ञा करते हो सो तुम्हारा उसके ऊपर बड़ाही अनुग्रह होता है ऐसा समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! ऐसी प्रार्थना करके और एकाएकी श्रीकृष्णजी का अभिप्राय जानकर प्रसन्नचित्तहुए तिस सुदामा माली ने, सुगन्धित फूलों की गूंथीहुई माला तिन कृष्ण बलराम आदि स-कल गोपों को अर्पण करी ॥ ४९ ॥ तब उन मालाओं से गोपोंसहित भूषित और प्र-सन्नचित्तहुए उन वरद मूर्त्ति बलराम कृष्ण ने, नम्रहुए तिस सुदामा माली को, इच्छित वर मांगने की आज्ञा दी ॥ ५० ॥ सुदामा माली ने भी उन सर्वात्मा श्रीकृष्णजी में अचलभक्ति, उनके भक्तों में मित्रता और सकल प्राणीमात्र के ऊपर परमदया यह वरदान मांगलिये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उसके मांगेहुए वरदानों को देकर तथा उसके विना माँगे भी, वंश की वृद्धियुक्त सम्पदा, बल, आयु, यश और कान्ति यह देकर वह श्रीकृष्णजी बलरामसहित तहां से आगे को गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ आगे बयालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने कुब्जा को सूधाकरा, धनुष तोड़ा और उसके रक्षकों का वध करा तथा कंस के कुशकुन देखना और रंगभूमिका उत्साह यह कथा वर्णन करी हैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! तदनन्तर राजमार्ग में को जातेहुए वह श्रीकृष्ण जी, हाथ में चन्दन आदि के लेपन का पात्र लेकर, जानेवाली सुन्दरमुखी परन्तु तीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रहसन् रसप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोरुवितदु हानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥२॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुंदर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यत्तमस्तर्हि दधाति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥ ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेनरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥ ५ ॥ प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥६॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥८॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवं ॥

स्थान में टेढ़ी एक कुब्जा नामवाली तरुण स्त्री को देखकर हँसे और उसको सुख देते हुए ऐसा कहनेलगे ॥ १ ॥ हे श्रेष्ठ ऊरुवाली ! इस नगरी में तू किस की कौन है ? और यह शरीर को लगाने का लेपन तू किस के निमित्त लियेजारही है ? हे सुन्दरि ! यह हम से सत्य कह, तू किसी के भी निमित्त लेपन क्यों न लियेजाती हो परन्तु यह उत्तम लेपन तू हमें दे, ऐसा करेगी तो शीघ्र ही तेरा कल्याण होगा ॥ २ ॥ कुब्जा ने कहा कि हे सुन्दर ! मैं त्रिवक्रा+नामवाली कंस की, अंग को लेपन लगाने के काम में उस की मानीहुई दासी हूँ; मेरे कुब्जा (कुबड़ी) होने के कारण निर्बलता से धीरे२ महीन पिसाहुआ चन्दन कंस को बहुत अच्छा लगता है; इस चन्दन के योग्य तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन है ? ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर भगवान् के रूप, सुकुमारता, रसिकता, हास्य, वार्त्तालाप और चितवन से चित्तमें मोहितहुई तिस कुब्जा ने, तिन बलराम कृष्ण को वह गाढ़ा २ चन्दन का लेपन दिया ॥ ४ ॥ तदनन्तर बलराम कृष्ण के श्वेत और श्यामवर्ण से अन्य (लाल और पीले) वर्णोंसे अति शोभायमान और नाभिके ऊपर शरीरपर लगाएहुए उस लेपन से रँगेहुए वह बलराम कृष्ण शोभा पानेलगे ॥५॥ तब प्रसन्न हुए भगवान् ने, अपने दर्शन का फल दिखाने के निमित्त तीन स्थान में टेढी तिस सुन्दरमुखी कुब्जा को सूधा करने का मन में विचार करा ॥ ६ ॥ और अपने दोनों पैरों से उस के पैरों के पंजे दबाकर दो अंगुल ऊपर को उठाएहुए अपने हाथ से उस की ठोडी को पकड़कर उस का देह ऊपर को उठाया ॥७॥ तब वह कुब्जा श्रीकृष्णजी के स्पर्श करने से ही सीधेहुए शरीरवाली और जिसके नितम्ब तथा स्तन स्थूल हैं ऐसी, स्त्रियों में उत्तम स्त्री हुई ॥ ८ ॥ और रूप गुण तथा उदारता से युक्त और कामातुर होकर वह

+ कण्ठ, वक्षःस्थल और कमर इन तीन स्थानों में टेढी होने के कारण उस का त्रिवक्रा नाम था ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधितार्थोऽगृहाणां नः पांथानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासःकबरवलयोल्लेखमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैंद्रमिवाद्भुतं ॥१५॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुरादद्दे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यतां ॥ नृणां विकृष्य प्रबभंज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः

कुब्जा हँसती हुई, श्रीकृष्णजी के ओढने के वस्त्रको पकडकर कहने लगी कि– ॥९॥ हे वीर ! आओ घरको चलें, तुमें यहाँ त्यागने को मेरा उत्साह नहीं होता है, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारे निमित्त काम से क्षुभितचित्त हुई मेरे ऊपर तुम ससन्न होओ ॥१०॥ ऐसे उस कुब्जा स्त्री के प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णजी बलरामजी के देखतेहुए, गोपों के मुख की ओर को देख कर मुसकुराये और उस से कहनेलगे ॥ ११ ॥ कि–हे सुन्दर भ्रुकुटिवाली स्त्री ! मुझे कुछ कार्य करना है उसको करने के अनन्तर, पुरुषों के मनका सन्ताप दूर करनेवाले तेरे घरआऊँगा; क्योंकि–हम वटोही पुरुषों को तेरा ही बड़ा आश्रय है ॥१२॥ इसप्रकार की मधुर वाणी से उसको छोड़कर, आगेको बलरामजी के साथ जानेवाले तिन श्रीकृष्णजी की, मार्गमें बड़े २ साहूकारों ने, अनेक प्रकार की भेट, ताम्बूल, माला और चन्दन आदिका लेपन अर्पण करके पूजाकरी ॥ १३ ॥ उन भगवान् के दर्शन से उत्पन्न हुआ जो मदन तिसके क्षोभसे स्त्रियोंकीतो ऐसीदशा होगई कि–उनको अपने शरीरकी खुले हुए वस्त्रकी, केशपाशकी, और कङ्कनोंकी भी सुध नहीं रही; वह केवल चित्रोंकी समान निश्चल होकर खड़ी होगईं ॥ १४ ॥ फिर भगवान् ने, पुरवासियों से धनुष का स्थान बूझते २ धनुषयज्ञ की शाला में जाकर, तहाँ इन्द्र के धनुष की समान अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ वह बहुतसे पुरुषों से रक्षा कराहुआ, पूजन कराहुआ और सुवर्ण के आभूषण आदिकी समृद्धि से युक्त था, उसको देखकर उसके रखवालों के निषेध करनेपर भी श्रीकृष्णजी ने बलात्कार से (जबरदस्ती) वह धनुष उठालिया ॥ १६ ॥ और महापराक्रमी उन श्रीकृष्णजी ने, बाएं हाथसे सहज में उठाया हुआ वह धनुष, ठीक करके, सब लोकों के देखते हुए एक निमेष में ही खेंचकर, जैसे मदान्ध हुआ हाथी ईख (गन्ने) के दण्डे को तोड़ डालता है तैसे, बीचमें से तोड़डाला ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ॥ ग्रहीतुंकामा आवव्रुर्ग्रहीतां बद्ध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्दृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः ॥ तेजः प्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुरांच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽस्यनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्तांघ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तु धनुषो भंगं र-

तब उस टूटतेहुए धनुष के शब्द ने आकाश, स्वर्ग, भूमि और सब दिशाओं को भरदिया, उस शब्द को सुनकर कंसको बडा भय हुआ ॥१८॥ तब उस धनुषके जो रखवाले थे उन्हों ने अपने अनुचरोंसहित क्रोध में भरकर और शस्त्र धारण करके बलराम कृष्णको पकडने की इच्छा करते हुए और पकडो, मारो ऐसा कहते हुए उनको चारों ओर से घेर लिया ॥ १९ ॥ उस समय मारने की इच्छा करनेवाले उन धनुष के रखवालों को देखकर, क्रुद्ध हुए बलराम कृष्ण ने, धनुष के टुकडे लेकर उनको मारडाला ॥ २० ॥ उससमय कंस की भेजीहुई सेनाको भी मारकर, वह बलराम कृष्ण उस धनुषयज्ञ की शालामें से बाहर निकले और नगरमें की सम्पत्तिको देखकर हर्षित हो निर्भयपने से नगरमें फिरनेलगे॥२१॥ उन बलराम कृष्ण का वह धनुष को तोडना आदि आश्चर्यकारी कर्म सुनकर और तेज, प्रौढता तथा सुन्दरता देखकर पुरवासी लोगोंने समझा कि-यह कोई देवताओंमें श्रेष्ठहैं॥२२॥ इसप्रकार अपनी इच्छानुसार उनको नगर में फिरते २ सूर्य अस्त होगया, तब गोपों से घिरेहुए वह बलराम कृष्ण, नगर में से अपने ठहरने के स्थान को लौटकर आये ॥२३॥ श्रीकृष्णजी के गोकुल में से जातेसमय उनके विरह से व्याकुलहुई गोपियों ने, अब मथुरावासी लोगोंके सब मनोरथ पूरे होंगे ऐसा जो कथन करा था सो सब तहां श्रीकृष्णजी के शरीर की शोभा देखनेवाले लोगों के सत्यहुए, क्योंकि-जो श्रीकृष्णजी का शरीर, लक्ष्मी ने भी अपनी सेवा करनेवाले ब्रह्मादि अन्य देवताओंको त्यागकर अपना आश्रय मानकर स्वीकार करा है ॥ २४ ॥ इधर बलरामजी ने हाथ पैर धोकर दूध पूरी आदि अन्न का भोजन करा और कंस का कर्त्तव्य जानकर उस रात में सुखसे शयन करा२५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षिणां स्ववलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्याचष्ट भयधा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनं ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चोद्धृत्य समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवं ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः

इधर वह दुष्टबुद्धि कंस तो—धनुष का टूटना, धनुष के रखवालों का माराजाना और अपनी सेना का नाश करना उन बलराम-कृष्ण का केवल खेल होगया ऐसा सुनकर डरगया और उस सारी रातभर उस को नींद नहीं आई और उसने स्वप्नमें तथा जागते में मृत्यु के सूचक बहुतसे अपशकुन देखे ॥ २६ ॥ २७ ॥ दर्पण में वा जल में अपनी परछाही में अपना शिर नहीं दीखना, चन्द्रमा-दीपक आदि और नेत्रों के मध्य में अंगुलि आदि कुछ रुकावट न होने पर भी उन चन्द्रमा-दीपक आदि के दो २ रूप दीखना ॥ २८ ॥ परछाही में चलनी के से छेद दीखना, कान को बन्द करने पर जो घुं घुं शब्द सुनाई देता है उस को प्राणघोष कहते हैं उस का, कान बन्द करने पर सुनाई न देना, वृक्षों में सुवर्ण की समान पीला वर्ण दीखना, धूलि वा कीच आदि में उभरेहुए अपने चरणों के चिन्ह न दीखना, यह कुशकुन उस कंस ने जागते हुए ही देखा॥२९॥ और उस ने स्वप्न में प्रेत के साथ आलिंगन करना, गदहे पर चढ़कर जाना, विष खाना और जपा के फूलों की माला पहिनकर शरीर को तेल लगाकर नङ्गे होकर इकले ही जाना यह कुशकुन देखे ॥ ३० ॥ ऐसे ही और भी स्वप्न में तथा जागते में मरण के सूचक कुशकुन देखकर मरण से भयभीत हुऐ उस कंस को चिन्ता से नींद नहीं आई ॥ ३१ ॥ बड़े कष्ट से उस रात के बीतजाने पर जब जल में से सूर्य का उदय हुआ तब उस दिन भी उस कंस ने मल्लों की क्रीड़ारूप (कुश्ती का) बड़ा उत्साह कराया ॥ ३२ ॥ कंस के सेवक, मल्लयुद्ध होने के स्थान रङ्गमण्डप को झाड़ बुहार कर फूलों की माला आदि से शोभायमान करने लगे, देखनेवालों के बैठने के बड़े २ आसन माला, पताका, वस्त्र, बन्दनवार आदि से भूषितहुए ॥ ३३ ॥ और उन के ऊपर पुरवासी तथा देशवासी ब्राह्मण क्षत्रिय आदि लोग आकर बैठे और स्थान२ पर बिछाए हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ३४ ॥ कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमंच उपाविशत् ॥ मंडलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ता सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एवं च ॥ ते आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नंदगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मंचे आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥ मल्लदुंदुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽवष्टभ्येदमब्रवीत् ॥ २ ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिला

सिंहासनों पर राजेलोग भी सुखसे आकर बैठे ॥ ३४ ॥ राजाकंस तो अपने मंत्रियों की मण्डली के साथ माण्डलिक राजाओं के मध्य में, कुशकुन देखने के कारण हृदय में कांपता हुआ मुख्य सिंहासन पर आकर बैठा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जिस में मल्लों की ताल सब की अपेक्षा अधिक सुनाई आती है ऐसे अनेकों बाजे बजने लगे तब बड़े २ मल्ल अपने २ सिखानेवाले आचार्यों (उस्तादों) के साथ सजेहुए, बड़े गर्व के साथ उस मण्डप में आने लगे ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल आदि मल्ल सुंदर बाजों का शब्द सुनकर उस मल्लभूमि में (अखाड़े में) आने लगे ॥ ३७ ॥ तथा कंस के बुलाएहुए नन्दगोपादि गोप भी, लाईहुई भेंटें (नजराने) कंस को अर्पण करके एक मचान पर बैठ गये॥३८॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥ अब आगे तिताळीसवें अध्याय में बलराम कृष्णने कुवलयापीड़ हाथी को मारकर रङ्गमण्डप में प्रवेश करा और फिर श्रीकृष्णजी की चाणूर के साथ बातचीत हुई यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! नन्दादिकों के रङ्गमण्डप में चलेजाने पर 'हमने, धनुष तोड़ना और धनुष के रखवालों का वध करना आदि कर्म करके अपना ऐश्वर्य सूचित करा तब भी, यह कंस हमारे माता-पिता को नहीं छोड़ता है और हमारे भी मारने की इच्छा करता है इस कारण अब इस मामा का भी वध करने पर हमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं लगेगा, ऐसा पहिले दिन ही जिन्हों ने अपने अपराध का परिहार करलिया है वह 'बलराम-कृष्ण, शौच से निवट मुख धोकर, मल्लों की तालों का और दुन्दभियों का शब्द सुनकर मल्लयुद्ध देखने के निमित्त चलदिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी, रङ्गमण्डपके द्वार के सामने आये सो उसी समय तहां आयाहुआ कुवलयापीड नामक हाथी, महावत ने अपने ऊपर को बड़े वेग से चलाया है ऐसा देखा ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्ण जी ने, कमर बांधकर और बिखरेहुए घुंघुराले केशों को पीछे को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत्संकुद्धरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करींद्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ करादगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे मृगृह्यातिबलं धनुषः पंचविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ स पर्यावर्त्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ॥ ९ ॥ ततोभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवत्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं

करके मेघ की गर्जना की समान गम्भीर वाणी में तिस महावत से कहा कि—॥ ३ ॥अरे महावत ! अरे महावत ! हमें मार्ग दे मार्ग में से एक ओर को हो, विलम्ब न कर, तू मार्ग नहीं देगा तो आज ही तुझे यम के घर पहुंचादूंगा ॥ ४ ॥ ऐसे ललकारने पर क्रुद्धहुए तिस महावत ने, अंकुश आदि मारकर कोपित कराहुआ और अन्त करनेवाला मृत्यु; तिस मृत्यु का निमित्त काल तथा तिस मृत्यु का प्रेरक यम इन तीनों का काम एकसाथ करनेवाले तिस कुवलयापीड़ हाथी को श्रीकृष्ण को मारने के निमित्त उन के ऊपर को लपकाया फिर उस हाथी ने बड़े वेग से श्रीकृष्णजी के सामने जाकर अपनी सूँड से उन को पकड़लिया तब वह श्रीकृष्णजी भी उस सूँड में से नीचे गिरकर उस हाथी के शरीर पर घूँसा मारकर उस के पैरोंमें छुपगये ॥६॥ तब श्रीकृष्ण के नदीखने के कारण अत्यन्त क्रोध में हुए नाक से सूंघकर छुपीहुई वस्तु ढूँढनेवाले तिस हाथी ने, अपनी सूँड से श्रीकृष्णजी को ढूँढकर पकड लिया. फिर वह श्रीकृष्णजी, बलात्कार से (जबरदस्ती) उस की सूँड में से छूटकर पीछे की ओर को गये ॥ ७ ॥ और उन्हों ने अतिबलवान् भी हाथी की पूँछ को पकड़कर, जैसे गरुड़ सर्प को पकडकर खैंचता है तैसे सहज में ही लीला से पचीस धनुष (१०० हाथ) पीछे को खैंचा ॥८॥ फिर वह श्रीकृष्णजी, पूंछ पकडनेवाले अपने को पकडने के निमित्त जोवह हाथी दाहिनी ओर को लौटा सो उस को बाईं ओर को खैंचतेहुए और जो वह बाईं ओर को लौटा तो उस को बलात्कार से (जबरदस्ती) दाहिनी ओर को घुमाते थे, इसप्रकार बाईं दाईं ओरको घुमाएहुए तिस हाथी के साथ, जैसे पूँछ पकडकर फिरायेहुए गौ के बछडे के साथ छोटासा बालक घूमता है तैसे घूमनेलगे ॥ ९॥ फिर भगवान् ने उस हाथी की पूँछ को छोडकर उस के सामने आ, अपने हाथ का उस के ऊपर प्रहार करा और उसके चारों ओर को दौडते में पग २ पर उसको अपना स्पर्श करनेदिया, नीचे बैठकर उठकर अपनी दौडने की चातुरी से उस को वारंवार भूमि पर ढकेलकर गिराया ॥ १० ॥ तदनन्तर वह भगवान्, दौडने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ॥ दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ॥ असन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिंदुभिरङ्कितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ १७ ॥

लीला से हाथी को धोखा देने के निमित्त भूमिपर गिरकर, तत्काल उस को न दीखतेहुए उठ कर एकओर को होगए; तब क्रोध में भरेहुए उस हाथी ने, श्रीकृष्ण भूमि पर गिरपडे ऐसा जानकर उस भूमिपर आकर दाँतों का प्रहार करा ॥ ११ ॥ तब अपना पराक्रम निरर्थक होने पर अतिक्रोध में भराहुआ और तिस पर भी महावत के अंकुश मारने से खिसिआया हुआ वह हाथी वेगसे श्रीकृष्ण के ऊपर को झपटा ॥ १२ ॥ मधुसूदन भगवान् ने उस हाथी को आतेहुए देखकर उस की सूंड हाथ से पकडली और उस को भूमि पर पटकदिया ॥ १३ ॥ और गिरायेहुए उस के शरीर को चरण से दबाकर, जैसे सिंह हाथी को दबाकर उस का दाँत उखाडता है तैसे सहज में ही लीला से उस का दाँत उखाडकर उस दाँत से ही उस हाथी को और महावत को मारडाला ॥ १४ ॥ फिर मरेहुए हाथी को छोडकर हाथ में दाँत लियेहुए वह भगवान् रङ्गमण्डप में को चलदिये, उससमय कंधे पर हाथी का दाँत रखनेवाले तथा जिन के शरीर पर चारोंओर रुधिर की बूँदें छिडकीहुई हैं और जिनके मुखकमल पर पसीने की बूँदें छारही हैं ऐसे वह श्रीकृष्ण शोभायमान होनेलगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उन इकले श्रीकृष्णजी ने ही रङ्गमण्डप में प्रवेश नहीं किया किन्तु-कितने ही गोपों से घिरेहुए वह दोनों भ्राता बलराम कृष्ण, हाथीके दाँतरूप श्रेष्ठ आयुधों को धारण करके रङ्गमण्डप में घुसे ॥ १६ ॥ उस समय मानो शृङ्गारादि सब रसोंकी मूर्त्तिही हैं ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्ण जी, मण्डप में के सकल लोकों को हरएक की इच्छा के अनुसार भिन्न २ रूप के प्रतीत हुए ऐसा वर्णन करते हैं कि-चाणूर मुष्टिक आदि मल्लों को वज्र की समान (रौद्ररसरूप), मनुष्यों को राजा की समान (अद्भुतरसरूप), स्त्रियों को मूर्त्तिमान् कामदेव की समान (शृङ्गाररसरूप) नन्दादि गोपों को स्वजन की समान (हास्यरसरूप) दुष्ट राजाओं को दण्ड देनेवाले की समान (वीररसरूप), देवकी वसुदेव को बालक की समान (करुणारसरूप), कंस को मृत्यु की समान (भयानकरसरूप) उन का प्रभाव न जाननेवाले अनजान पुरुषों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगंबरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागररात्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥ एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥ २४ ॥ पूतनाऽनेन नीताऽतं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये

को परमपराक्रम करनेवाले की समान (वीभत्सरसरूप) योगियों को परम तत्व की समान (शान्तरसरूप) और यादवों को परम देवता की समान (भक्तिरसरूप) प्रतीतहुए वह श्रीकृष्णजी बलरामजी के साथ रङ्गमण्डप में गये ॥ १७॥ हे राजन्! कुवलयापीड हाथी मारा गया और उन बलराम कृष्ण को भी जीतना कठिन है ऐसा देखकर उस समय धैर्यवान् भी वह कंस अत्यन्त भयभीत होगया ॥ १८ ॥ तब विचित्र वेष, आभूषण, माला और उत्तम वस्त्र धारण करके रङ्गमंडप में आयेहुए वह महा पराक्रमी बलराम कृष्ण अपनी कान्ति से देखनेवाले लोकों के चित्तों को खैंचतेहुए जैसे सभा में उत्तम वेष धारण करनेवाले नट शोभा पाते हैं तैसे शोभा पानेलगे ॥ १९ ॥ हे राजन्! उन दोनों उत्तम पुरुषों को देखकर, मञ्चानों पर बैठेहुए नगरवासी और देशवासी पुरुष, उत्तम हर्ष के वेग से जिन के नेत्र और मुख प्रफुल्लित हुए हैं ऐसे होकर अपने नेत्रों से उन के मुख को आदर के साथ पीतेहुए भी तृप्त नहीं हुए ॥ २० ॥ वह पुरुष, नेत्रों से मानो रामकृष्ण की मूर्त्तियों को पी ही रहे हैं, मानों जिव्हा से चाट ही रहे हैं, नासिका के नथुनों से मानो सूँघ ही रहे हैं और भुजाओं से मानो आलिङ्गन ही कररहे हैं ऐसे दीखनेलगे ॥ २१ ॥ और वह पुरुष, दृष्टि पडेहुए, सुन्दरता आदि गुण, प्रेमयुक्त हास्य आदि मधुरता और प्रौढ़पने से उन के पराक्रम का स्मरण करायेहुए से होकर देखीहुई और सुनीहुई उन की लीलाओं का परस्पर वर्णन करनेलगे ॥ २२ ॥ कहनेलगे कि—यह बलरामकृष्ण, साक्षात् श्रीहरि नारायण के अंश हैं और यहाँ वसुदेव के घर अवताररूप से प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥ यह श्रीकृष्ण, देवकी के विषैं उत्पन्न हुए हैं और इन को वसुदेवजी ने गोकुल में लेजाकर रखदिया; सो इतने समयपर्यन्त दूसरे किसी के जानने में न आकर नन्द के घर बढ़ते रहे ॥ २४ ॥ इन्हों ने ही पूतना राक्षसी मारी है; और चक्रवात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलं ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखं ॥ पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वदंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ॥ प्रलंबो निहतो येन वत्सको ''ये बकादयः। ३०॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हे नंदसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विंदंति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडंतश्चारयंति गाः ॥ ३४ ॥

दैत्य भी मारा है; यमलार्जुन वृक्ष गिराये हैं; शंखचूड, केशी, धेनुक, और तैसे ही दूसरे भी बहुत से दैत्य मारे हैं॥ २५ ॥ इन्हों ने ही गोपोंसहित गौएँ वन की दौंसे बचाई हैं; कालिय सर्प का दमन करा और इन्द्रको भी गर्वरहित करा है ॥ २६ ॥ इन कृष्ण ने, सातदिन पर्यन्त एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को धारण करके वर्षा, पवन और विजुली से गोकुल की रक्षा करी है ॥ २७ ॥ नित्य आनन्दयुक्त और सहास चितवनवाले इन के मुख को देखनेवाली गोपियें, विनापरिश्रम ही अनेकप्रकार के तापों को तरगई हैं ॥२८॥ इन का रक्षा कराहुआ यह यदुराजा का वंश, बहुत प्रसिद्ध होकर, सम्पत्ति, कीर्त्ति और बडाई को पावेगा ॥ २९ ॥ और यह कमलनेत्र तथा परम सुन्दरतायुक्त बलरामजी, इन श्रीकृष्ण के ही बडे भ्राता हैं; इन्हों ने प्रलम्बासुर, वत्सासुर और जो बक आदि दैत्य तिन को मारा है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! इसप्रकार लोकों के आपस में भाषण करतेहुए, और बाजे के बजतेहुए, उस लोकों के भाषण को सहन न करनेवाला चाणूर नामवाला मल्ल, कृष्ण और बलराम को पुकारकर यह वाक्य कहनेलगा कि—॥३१॥ हे नन्दपुत्र कृष्ण! हे राम! तुम दोनों ही वीरपुरुषों के माननीय और मल्लयुद्ध में (कुश्ती लडने में) चतुर हो, ऐसा सुनकर तुम्हारा मल्लयुद्ध देखने की इच्छा करनेवाले इन राजा-कंस ने तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥ मन से, कर्म से और वाणी से राजा का प्रिय करनेवाली प्रजा, राजा से पुरस्कार (इनाम) आदि पाकर कल्याण पाती हैं और वह प्रजा राजाकी इच्छा के प्रतिकूल वर्त्ताव करें तो राजा से बन्धन और मरण आदि उलटा फल भी पाती हैं ॥ ३३ ॥ यदि कहो कि—हम मल्लयुद्ध में प्रवीण नहीं है तो—बत्सों का पालन करनेवाले गोपों के बालक और गौ चरानेवाले गोप, आनन्दयुक्त होकर नित्य मल्लयुद्ध से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदंति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तैर्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोभीष्टं मन्यमानोभिनंद्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बालो वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितं ॥ भवान्नियुद्धं मांधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥*॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसंकल्पो

क्रीडा करतेहुए ही बछडे और गौओं को चराते हैं ऐसा लोक में प्रसिद्ध है इसकारण तुम मल्लयुद्ध में प्रवीण हो इस में सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ इस से तुम और हम मिलकर राजा के प्रिय मल्लयुद्ध को करें; राजा के प्रसन्न होनेपर हमारे ऊपर सब लोक प्रसन्न होंगे, क्योंकि—राजा सर्वभूतमय है ॥ ३५ ॥ ऐसे यह चाणूर का वचन सुनकर, मल्लयुद्ध हमें मान्य है ऐसा समझकर श्रीकृष्णजी ने उस कहने का सत्कार करा और तिस स्थान तथा तिस काल के योग्य वचन कहा कि—॥ ३६ ॥ जंगल में रहनेवाले हम और नगर में रहने वाले तुम सब, इन राजा कंस की प्रजा हैं और निरन्तर इन का प्रिय करते हैं, इसकारण यह हमें जो आज्ञा करेंगे वह हमारे ऊपर परम अनुग्रह ही है ॥ ३७ ॥ तथापि हम बालक हैं इसकारण हमारी समान बलवाले बालकों के साथ ही क्रीडा (कुश्ती) होना चाहिये, अधिकबली मल्लों के साथ नहीं; ऐसा होने से ही यथायोग्य मल्लयुद्ध होयगा और मल्लों की सभा में बैठनेवाले सभासदों को भी अधर्म का स्पर्श नहीं होयगा ॥ ३८ ॥ यह सुनकर चाणूर फिर कहनेलगा कि—कृष्ण ! जब तू ने हजार हाथी के बलवाला हाथी सहज में लीला से ही मारडाला तब तू बालक वा किशोर नहीं है और बलराम भी बालक वा किशोर नहीं है किन्तु बलवानों में श्रेष्ठ है इस कारण तुम्हारे साथ बलवान् मल्लों को ही युद्ध करना चाहिये, इस में कुछ भी अन्याय नहीं है; इसकारण तू मेरे ऊपर अपना पराक्रम चला और मुष्टिक बलरामके साथ युद्धकरेगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे चौवालीस वें अध्याय में बलराम कृष्ण का कराहुआ मल्लों का और कंस का मर्दन, कंस की स्त्रियों को समझाना और माता पिता का दर्शन करना वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योऽन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्च अन्योऽन्यं प्रत्यरुन्धतां ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलयुद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन् सानुकंपा वरूथशः ॥ ॥ ६ ॥ महानयं वतार्धर्म एषां राजसभासदां ॥ ये बलाबलयुद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वांगौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ ॥ क्व चातिसुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥८॥धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भ-

इस प्रकार चाणूरादिकों के वध का निश्चय करनेवाले भगवान् मधुसूदन श्रीकृष्ण जी, चाणूर के साथ युद्ध करने को सम्हले तथा बलराम जी भी मुष्टिक के साथ युद्ध करने को उद्यत हुए ॥ १ ॥ तब वह कृष्ण-चाणूर और बल-मुष्टिक,हाथों से हाथों को पकडकर और पैरों से पैरों में अलवेटें डालकर एक दूसरे को जीतने के निमित्त बलात्कार से एक दूसरे को खेंचनेलगे ॥ २॥ अपनी दोनों कलाइयों से दूसरे की दोनों कलाइयों को घुटनोंसे घुटनोंको मस्तक से मस्तकको और छातीसे छातीको परस्परमें प्रहारकरनेलगे ३ हाथमें पकड कर चारों ओर को घुमाना,दूर को फेकदेना,भुजाओं से जकडलेना,नीचे गिराना,दूसरे को पीछे छोडकर आप आगे जाना, इन रीतियों से वह कृष्ण-चाणूर और बलराम मुष्टिक परस्पर युद्ध करनेलगे ॥४॥ पैर और रानों को एकस्थानमें करके पडेहुए को ऊपर उठाना, हाथों से उठाकर लेनाना, गले में चिपटेहुए को दूर को ढकेलदेना, और हाथपैरों को एकत्र करके गाँठलेना, इस प्रकार जय मिलने की इच्छा करनेवाले वह दोनों एक दूसरों के शरीरको क्लेश देनेलगे॥५॥हे राजन्! उस समय समूह के समूह जमकर खडीहुई और श्रीकृष्ण के ऊपर दयालु हुई सब स्त्रियें, एक ओर बलवान् और दूसरी ओर बलहीन ऐसे उस युद्ध को देखकर परस्पर कहनेलगीं कि-॥ ६ ॥ इस राजा के सभासदों का यह बडा अधर्म है, जिन सभासदों ने कम और अधिक बलों से युक्त होतेहुए इस युद्ध को राजा देखेगा तो निषेध करेगा, इस का कुछ ध्यान न करके, वह सभासद तिस युद्ध को राजा के देखते हुए आप भी देखने की इच्छा कररहे हैं ॥ ७ ॥ जिनके सब अंग वज्र की समान कठोर हैं ऐसे यह मेरुपर्वत की समान बडे चाणूर और मुष्टिक मल्ल कहां ! और अतिसुकुमार अङ्गोंवाले तथा युवावस्था को भी न प्राप्तहुए बलराम कृष्ण कहाँ ॥ ८ ॥ इसकारण इस सभा के हाथ से यह धर्म का उल्लंघन निःस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेत् ॥ यत्रार्धर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्प्रज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजं ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमताम्रलोचनं ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हासस्मरभशोभितं ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांऽचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरापमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥१४॥गा दोहनेऽवहनने

न्देह होगा, जिस सभा में अधर्म होता है तहाँ चतुर पुरुष को कभी न बसना चाहिये ॥ ९ ॥ सभासदों के दोष को जाननेवाले पुरुष को पहिले तो सभा में ही नहीं जाना चाहिये, क्योंकि वह पुरुष यदि सभासदों के दोष को जानकर भी नहीं बोलेगा अथवा सभासदों के प्रसन्न करने को धर्म के प्रतिकूल बोलेगा अथवा बूझने पर भी मैं नहीं जानता ऐसा कहेगा तो उस को पाप लगेगा॥१०॥दूसरी कहने लगीं कि-शत्रु के चारों-ओर दौड़नेवाले श्रीकृष्ण का मुखकमल, 'जैसे जल की बूंदों से भरी कमल की कली दीखती है तैसे' परिश्रम के पसीने से व्याप्त हुआ दीखरहा है देखो! ॥ ११ ॥ दूसरी बोलीं कि—अहो! थोड़े लाल हुये नेत्रोंवाला, मुष्टिक के ऊपर क्रोधित हुए परन्तु हास्य के कारण शोभायमान दीखनेवाला वह बलराम का मुख, तुम्हारी दृष्टि में नहीं पड़रहा है क्या? ॥१२॥दूसरी कहने लगीं कि—इस सभा को धिक्कार हो,जिस सभा में इन श्रीकृष्ण का तिरस्कार होता है;गोकुल की भूमि धन्य है,जहाँ महादेव और लक्ष्मी ने भी जिन के चरणों का पूजन करा है; ऐसे यह श्रीकृष्ण जी मनुष्यशरीर से छिपेहुए साक्षात् पुराणपुरुष होकर भी, वन में नानाप्रकार के रंगो के फूल धारण करके बलरामसहित गौओं की रक्षा करतेहुये, मुरली बजातेहुए और नानाप्रकार की क्रीड़ा करतेहुए फिरते हैं ॥ १३ ॥ यह बड़े दुःख की बात है कि—हमने बहुत ही थोड़ा पुण्य करा है इसकारण इन कृष्ण की दुःखदशा के समय हमें इन का दर्शन हुआ, अहो! उन गोपियों ने, न जाने पूर्व जन्मों में कौन पुण्य करा होगा? कि—जिस के प्रभाव से इन कृष्ण के—जिस की समान और जिस से अधिक किसी की भी सुन्दरता नहीं है ऐसे सुन्दरता के सार,स्वयंसिद्ध,यश, लक्ष्मी और ऐश्वर्य के एकान्तस्थान, पुण्यवानों के विना दूसरों को देखने को भी दुर्लभ और प्रतिदिन नवीन की समान प्रतीत होनेवाले स्वरूप को, नेत्रों से मानो पीही रही हैं ऐसे परम आसक्ति के साथ देखती हैं ॥ १४ ॥ जो गोपियें, गौओं का दूध दुहते समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मथनोपलेपप्रेंखेखनार्भरुदितोक्षणेमार्जनादौ ॥ गायंति चैनमनुरक्तधियो ऽश्रुकंठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजान् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबला पथि भूरिपुण्याः पश्यंति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हंतुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोर्बुधौ बलं ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानांगो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यवाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाहोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥

घान आदि कूटते समय, दही को मथते में; लीपते मे, सोतेहुए बालकों के झूले को झोटा देते में, रोतेहुए बालकों को चुपाते में और बुहारी देते में चित्त में प्रेमयुक्त और गद्गदकण्ठ होकर इन कृष्ण का गान करती हैं वह घर के सब काम करते हुए भी कृष्ण की ओर चित्त लगानेवाली गोकुल की स्त्रियें धन्य हैं ॥ १५ ॥ जो गोपियें, गोपों के साथ प्रातःकाल के समय वन को जानेवाले और सायंकाल को मुरली बजातेहुए गोकुल में को आनेवाले जिन श्रीकृष्ण की मुरली के शब्द को सुनकर घरों में से शीघ्रता के साथ बाहर निकलकर मार्ग में इन श्रीकृष्ण के दयादृष्टियुक्त और मन्दहासमहित मुख को देखती हैं वह परमपुण्यवती हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! इसप्रकार स्त्रियों के बातें करतेहुए, भक्तों के दुःख दूर करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, मन में शत्रु का वध करने का विचार करा ॥ १७ ॥ तब, भयसहित उन स्त्रियों की बातों को सुनकर, पुत्रों के बल को न जाननेवाले देवकी-वसुदेव, पुत्रों के स्नेह के कारण होनेवाले शोक से व्याकुल होकर दुःख को प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ इसप्रकार, जैसे कृष्ण-चाणूर परस्पर नानाप्रकार की घुमाना आदि युद्ध की रीतियों से युद्ध करते थे तैसे ही बलराम-मुष्टिक भी परस्पर युद्ध करते थे ॥ १९ ॥ तब वज्र के लगने की समान असह्य जो भगवान् के अङ्गों के प्रहार तिन से जिस के अङ्ग चूर २ होगए हैं ऐसा वह चाणूर बारम्बार घबड़ाने लगा ॥ २० ॥ उस समय क्रोध में भरेहुए और श्येन (बाज) पक्षी की समान वेगवाले उस चाणूर ने अपने दोनों हाथों के घूंसे बनाकर एक साथ कुलाँच मारी और वासुदेव भगवान् के वक्षःस्थल पर प्रहार करा ॥ २१ ॥ इसप्रकार उस के ताड़न करने पर भी उस के प्रहार से वह श्रीकृष्णजी, जैसे फूलों की माला से ताड़ना कराहुआ हाथी, हिलता भी नहीं है तैसे ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताकल्पकेशस्त्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तेनैव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः॥२८॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ धृतनूपुरौ॥२९॥ जनाः प्रजह्रुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु म-

हिले भी नहीं, किन्तु उन्हों ने शीघ्रता से उस चाणूर की भुजाओं को पकडकर बहुत देर पर्यन्त घर २ घुमाया फिर उस घुमाने से ही क्षीणायु हुए तिस को भूमि पर पटक दिया तब वह चाणूर, शरीर पर के भूषण और केश अस्तव्यस्त होकर, जैसे गौडदेश में ध्वजा पताकाओं से भूषित एक पुरुष के आकार का बडाभारी झंडा खडा करते हैं वह किसी कारण से एकाएकी गिरपडता है तैसे भूमि पर गिरपडा ॥ २२ ॥ २३ ॥ तिसीप्रकार मुष्टिक मल्ल भी,जिस ने अपने घूँसे से पहिले बलरामजी को ताडन करा था उस को,उन ही बली बलरामजी ने हाथ के चपेटे से ताडना करा तब वह अत्यन्त पीडित और कम्पित होकर मुख में से रुधिर की वमन करताहुआ, जैसे प्रचण्डवायु से उखाडाहुआ, वृक्ष गिरता है तैसे भूमि पर प्राणहीन होकर गिरपडा ॥२४॥ २५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर शरीर पर को आयेहुए कूटनामक मल्ल को, योधाओं में श्रेष्ठ तिन बलरामजी ने, तिरस्कार के साथ सहज लीला में बाएँ हाथ के घूंसे से मारकर गिरादिया ॥२६॥ उससमय श्रीकृष्ण जी की लातों के प्रहार से शलनामक मल्ल का मस्तक फूलगया और तोशल मल्ल के श्रीकृष्ण जी ने, चीरकर दो टुकड़े करदिये, इसप्रकार वह दोनों ही मल्ल मरकर गिरपडे ॥ २७ ॥ इस प्रकार चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, और तोशलक इन मुख्य मल्लों के मरण को प्राप्त होने पर शेष रहे हुए सब मल्ल अपने प्राण बचाने की इच्छा से भाग गए ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह बलराम–कृष्ण, समान अवस्थावाले गोपों को तिस अखाड़े में बुलाकर, उन के हाथ पकड़े और उन को खैंचकर तथा आलिङ्गन आदि करके, जो बाजे बजरहे थे उन की ताल के साथ नृत्य आदि करके नूपुरों का शब्द करते हुए उन के साथ मल्लयुद्ध की क्रीड़ा करने लगे ॥ २९ ॥ उस समय एक कंस को छोड़कर और जो ब्राह्मणादि सब सज्जन पुरुष तहां थे वह, 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' ऐसा कहते हुए उन राम कृष्ण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छ्लवयेषु विद्रुतेषु च भोजराट्॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह॥ ॥ ३१ ॥ निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिं ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाशु सत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थायं जगृहे सोऽसिचर्मणी॥३५॥ तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ॥ संगृह्य हीदुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुङ्गमंचात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥ तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः॥ हा हेति शब्दः सुमहांस्तदोऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेंद्र ॥३८॥ स नित्यदो

तिस कर्म से हर्ष को प्राप्त हुए॥ ३० ॥ इसप्रकार मल्लों में मुख्य जो चाणूर मुष्टिक आदि उन के मरण को प्राप्त होने पर जब शेष मल्ल भागगए तब, भोजराज कंस ने, बजाने को आज्ञा करे हुए अपने बाजों को बन्द कराकर अपने सेवकों से यह वाक्य कहा कि-॥३१॥ इन दुराचारी बलराम-कृष्ण को नगर से बाहर निकालदो; गोपों का धन छीन लो, मेरे वैरियों को छुपा रखनेवाले दुष्टबुद्धि नन्द को बाँधलो ॥ ३२ ॥ तथा पुत्रों को चुराकर दूसरे स्थान में रखने के कारण अतिदुष्ट और दुर्बुद्धि इस वसुदेव को, तुम शीघ्र ही मारडालो तथा शत्रुओं के पक्षपाती पिता उग्रसेन को भी अनुचरों-सहित मारडालो ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कंस बड़बड़ानेलगा तब, अत्यन्त क्रोध में भरेहुए अविनाशी वह श्रीकृष्णजी, लघिमा सिद्धि के बल से कुलाँच मारकर शीघ्रता से तिस ऊँचे मचान के ऊपर जा चढ़े ॥ ३४ ॥ उन चढ़नेवाले अपने मृत्युरूप श्रीकृष्णजी को देखकर उस धैर्यवान् कंस ने, आसनपर से शीघ्र ही उठकर हाथ में ढाल और तलवार उठाई ॥ ३५ ॥ उससमय असह्य और उग्रतेजवाले उन श्रीकृष्णजी ने, हाथ में तलवार लेकर दाहीं ओर, वाहीं ओर और ऊपर आकाश में श्येन (बाज) पक्षी की समान शीघ्रता से घूमनेवाले उस कंस को, जैसे गरुड़ बलात्कार से (जबरदस्ती) सर्प को पकड़ता है तैसे पकड़लिया ॥ ३६ ॥ तब पकड़ने से ही जिस का किरीट एक ओर को जा पड़ा है ऐसे उस कंस को केशों के स्थान में पकड़कर, उस ऊँचे मचानपर से नीचे रंग मंडप में गिरा दिया और उस के ऊपर सकल जगत् के आश्रय और स्वतन्त्र वह भगवान् चढ़बैठे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने, मरण को प्राप्तहुए कंस को, सब लोकों के देखतेहुए भूमिपर, जैसे सिंह हाथी को खेंचता है तैसे खेंचा; हे राजन्! उससमय सब लोकों का उच्चारण कराहुआ बड़ाभारी हाहाकार शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

द्विग्रधियाँ तमीश्वरं पिबन्नदन्वा विचरन्स्वपन् श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतस्त-देव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंक-न्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथा-ऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुदुभयो व्योम्नि ब्रह्मशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीत्या शंशंसुर्नेनृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिंग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥४४॥ हानाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृ-हप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वै-यमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोह-मुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक्को लभेत शम् ॥ ४७ ।

हुआ ॥ ३८ ॥ वह कंस प्रतिदिन आठों पहर भय से भरीहुई बुद्धि से, उन ही चक्रधारी ईश्वर को, खाते में, पीते में, बोलते में, चलते में, सोते में और श्वास लेते में अपने सामने खड़ा देखता था इसकारण अन्त में उन के ही दुर्लभ स्वरूप को प्राप्तहुआ ॥ ३९ ॥ उस कंस के, कङ्क, न्यग्रोध, आदि आठ छोटे भ्राता थे वह अतिक्रुद्ध होकर, भ्राता कंस से उऋण होने के निमित्त श्रीकृष्णजी के ऊपर को दौड़े॥४०॥तब तैसे ही अतिवेग से युद्ध करने को उद्यत होकर आयेहुए उन कंस के भ्राताओं को, बलरामजी ने तहाँ का ही एक परिघ उठाकर उस से, जैसे सिंह पशुओं को मारता है तैसे मारडाला॥ ४१ ॥ उससमय स्वर्गलोक में देवताओं के बजाएहुए नगाड़े बजनेलगे तथा ब्रह्मा-महादेव-आदि ईश्वरकी विभू-तियें, प्रीति से श्रीकृष्ण के ऊपर फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करनेलगे और अप्सरा नृत्य करनेलगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! उन कंस आदिकों की स्त्रियें, अपने पतियों के मरण से दुःखित होकर अपने शिर पीटतीहुई और नेत्रों में से दुःख के आँसू बहातीहुई तहाँ पहुँचीं ॥ ४३ ॥ और वीर शय्यापर सोयेहुए अपने पतियों को आलिंगन करके शोक करनेवालीं वह स्त्रियें, वारंवार दुःख के आंसू बहातीहुई ऊंचे स्वर से विलाप करनेलगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हा दयालो ! हा अनाथवत्सल ! तुम मरण को प्राप्तहुए तिस से हम, घर और पुत्रोंसहित मरीहुई सी होगई हैं ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम पति के विना जैसे हम उत्साह और मंगलरहित हुई हैं तैसे ही यह मथुरा नगरी भी उत्साह और मङ्गलरहित होकर शोभाहीन होगई है ॥ ४६ ॥ हे प्राणप्रिय ! तुमने निरपराधी प्राणियों से बड़ा भयङ्कर द्रोह करा था तिससे ही ऐसी दशा को पहुँचे हो; प्राणिमात्र का द्रोह करनेवाला कोई भी पुरुष क्या सुख पावेगा ? ॥४७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववंदाते शिरसा स्पृश्य पादयोः ॥ ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥ इतिश्रीभा० म० द०पू० कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः॥मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीं॥१॥उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः॥प्रश्रयावनतः प्रीणन्नंब तातेति सादरं॥२॥ नास्मत्तो युवयो-

यह श्रीकृष्ण, सकल प्राणीमात्र को उत्पन्न करनेवाले, उनका नाशकरनेवाले और रक्षा करनेवाले हैं, उन से द्रोह करनेवाला पुरुष कहीं भी सुख से वृद्धि नहीं पावेगा ॥ ४८॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि हे राजन्! इसप्रकार कहतीहुई उन राजरानियों को, लोकों का पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने धीरज बँधाकर, फिर,मरण को प्राप्त हुए तिन कंसादिकों की जो मरण के अनन्तर की क्रिया कहीं हैं सो सब करवाई ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उन बलराम-कृष्ण ने, देवकी माता और वसुदेव पिता को बन्धन से छुटा उन के चरणों पर मस्तक रखकर वन्दना करी ॥ ५० ॥ तब उन देवकी-वसुदेव ने, वन्दना करनेवाले उन बलराम-कृष्ण पुत्रों को, पुत्र की भ्रान्ति छोड़ यह जगदीश्वर हैं ऐसा माना और उन को आलिङ्गन नहीं करा किन्तु शङ्कायुक्त होकर उन के आगे वह दोनों हाथ जोडकर खडे हुए ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे पैंतालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने देवकी, वसुदेव और नन्द आदि गोपों को समझाकर, उग्रसेन को राज्याभिषेक करा. तथा गुरु के घर वास करके सब विद्याओं को पढ़कर फिर मथुरा में आगमन करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! पुरुषोत्तम भगवान् ने, देवकी, वसुदेव को, अपने में पुत्रबुद्धि होने से प्राप्त होनेवाले सांसारिक परमसुख के भोग से पहिले ही, हम दोनो सर्वेश्वर हैं ऐसा ज्ञान होगया यह देखकर, और मेरे प्रसन्न होनेपर क्या ज्ञान इन को दुर्लभ होगा? किन्तु नहीं, हाँ मेरे में पुत्रभाव से प्रेम ही दुर्लभ है, ऐसा जानकर, अभी इन को ज्ञान न हो इसकारण सकल प्राणियों को मोहित करनेवाली अपनी माया उनके ऊपर फैलाई ॥ १ ॥ बलरामसहित वह यादवों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी, मोहितहुए उन देवकी-वसुदेव के समीप जाकर, विनय से नम्र होकर बडे आदर के साथ—हेमातः! हेतात! ऐसा सम्बोधन करके कहनेलगे कि— ॥ २ ॥ हे तात! तुम दोनों, हम पुत्रों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तात नित्योत्कंठितयोरपि ॥ बाल्यपौगंडकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्थविदन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयंति हि ॥६॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतम् शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽविभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतंत्रयोः ॥ अंकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच॥ इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतु-

निमित्त निरन्तर उत्कण्ठित रहे तथापि तुम्हे हम से बालकपन, पौगण्ड और किशोर अवस्थाओं में प्राप्त होनेवाले सुख किञ्चिन्मात्र भी प्राप्त नहीं हुए ॥ ३ ॥ केवल तुम्हारे ही सुख की हानि नहीं हुई किन्तु हम प्रारब्धहीनों का भी तुम्हारे समीप वास नहीं हुआ; तिसकारण माता-पिता के घर रहनेवाले और उन के लालन-पालन करेहुए बालक, जो आनन्द पाते हैं सो तुम से हमें नहीं मिले ॥ ४ ॥ और तुम्हारी शुश्रूषा नहीं बनसकी इसकारण हमारे धर्म की हानि भी हुई है, क्योंकि-सकल पुरुषार्थों को प्राप्त करानेवाला शरीर जिन्हों ने उत्पन्न करा और पोषा है उन माता-पिताओं का ऋण चुकाना इस मनुष्य के हाथ से सौ वर्ष की आयु होने से भी नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ तिसपर जो पुत्र, समर्थ होकर भी अपने शरीर से और धन से तिन माता-पिताओं की अन्न-वस्त्रादि से आजीविका नहीं चलाता है तिस पुत्र को परलोक में यम के दूत उस का अपना ही मांस खवाते हैं ॥ ६ ॥ और जो पुत्र, समर्थ होकर बूढ़े माता-पिता की, पतिव्रता स्त्री की, बालक पुत्रों की, गुरु की, ब्राह्मणों की और शरणागतों की रक्षा नहीं करता है वह जीताहुआ ही मरे के समान है ॥७॥ इसकारण तुम दोनों का सत्कार न करनेवाले हमारे, यह ग्यारह वर्ष के दिन वृथा ही बीते, इस का कारण यह है कि– आजपर्यन्त हम, कंस से नित्य चित्त में घबडाए हुए रहने के कारण तुम्हारी रक्षा करने को समर्थ नहीं हुए ॥ ८॥ हे पितः! हे मातः! दुष्टबुद्धि कंस के दुःख दिये हुए और कारागार में बन्द करके रक्खेहुए तुम्हारी सेवा करने के समय में भी सेवा न करनेवाले हमारे अपराध की अब तुम 'माता पिता होने के कारण' क्षमा करो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन्! माया से मनुष्यरूप परन्तु जगत् के अन्तर्यामी श्रीकृष्णजी की ऐसी वाणी से मोहितहुए वह देवकी–वसुदेव, तिन बलराम-कृष्ण को गोद में बैठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुदम् ॥ १० ॥ सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किंचिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरंत्यवनतः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥ सर्वान् स्वज्ञातिसंबंधान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यंधकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ । कृष्णसङ्कर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनांबुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसो-

कर और छाती से लगाकर आनन्दित हुए ॥ १० ॥ और उससमय हे राजन् ! आँसुओं की धाराओं से उन को भिगोनेवाले, उन की माया से मोहितहुए, स्नेहरूप फांसी से बँधेहुए और गद्गदकण्ठ हुए तिन देवकी—वसुदेव ने, कुछ भी नहीं कहा ॥ ११ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णजी ने देवकी—वसुदेव को समझाकर, फिर मातामह (नाना) उग्रसेन का यादवों की मुख्य गद्दी पर अभिषेक करा ॥ १२ ॥ और उन से कहा कि—हे महाराज ! आप हम सेवकों को और सब प्रजाओं को आज्ञा करने को समर्थ हो, यदि कहो कि तू ही प्रजाओं को आज्ञा कर तो सुनो-ययाति राजा के शाप से यदुवंशियों को राजा के आसन पर बैठना नहीं चाहिये, और तुम यादव हो तथापि मेरी आज्ञा से दोष नहीं है ॥ १३ ॥ यदि कहो कि मुझे ऐसी शक्ति नहीं है तो-सुनो-मुझ सेवक के आपकी सेवा करते हुए, देवता आदिक भी नम्र होकर तुम्हें पूजा समर्पण करेंगे फिर और राजे तो रहे ही क्या ? ॥ १४ ॥ तदनन्तर, उन विश्वकर्त्ता भगवान् ने, कंस के भय से व्याकुल होकर चारों दिशाओं में को भागकर गएहुए अपने—यादव, वृष्णि, अन्धक, मधु, दशार्ह और कुकुर आदि सब जातिवालों को और सम्बन्धियों को तिन२ दिशाओं से बुलाकर परदेश में बसने के कारण दुर्बलहुए उन को धीरज बँधाकर, सत्कार करके और वस्त्र-पात्र-द्रव्य आदि के दान से सन्तुष्ट करके उन को अपने २ घरों में बसादिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ तब कृष्ण और बलराम की भुजाओं के बल से शत्रुओं से रक्षाकरेहुए, और बलराम-कृष्ण के ही प्रताप से दुःख दूर होकर पूर्णमनोरथहुए वह यादव, कृतार्थ होतेहुए अपने २ घरों में मग्न रहनेलगे ॥ १७ ॥ उस मथुरा में रहनेवाले वृद्धपुरुष भी नित्य आनन्द में भरेहुए शोभायुक्त और दयायुक्त हास्यसहित अवलोकन से युक्त श्रीकृष्णजी के मुखकमल को प्रतिदिन देखने के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखांबुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेंद्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥ एवं सांत्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः ॥ वासोलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥२४॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥ अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिं ॥२६॥ तेभ्यो दादक्षिणां गावो रुक्ममाल्यः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः

श्रीकृष्णजी के मुखकमल के अमृत का वारंवार सेवनकरतेहुए तरुण की समान अतिबलवान् और पराक्रमी हुए ॥१८॥१९॥ हे राजन्! तदनन्तर देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण जी और बलरामजी यह दोनों नन्दजी के समीप आये और उन को आलिङ्गन करके कहनेलगे॥२०॥ हे तात! प्रेम करनेवाले तुम दोनों ने,अपने देह से भी अत्यन्त अधिक हमारा पोषण और लाड़ करा है और यह कोई आश्चर्य नहीं है,क्योंकि-लोक में माता पिताओं का पुत्रों के ऊपर अपने शरीर से भी अधिक प्रेम होता है, ऐसा प्रसिद्ध है ॥२१॥ और तुम देवकी-वसुदेव के पुत्र हो; हमारे नहीं हो ऐसा तुम कदापि न कहो, क्योंकि-पोषण करने में और रक्षा करने में असमर्थ माता पिताओं के त्यागेहुए हम छोटे २ पुत्रों का जो तुमने (नन्द यशोदा ने) अपने पुत्रों की समान पालन करा है इस से तुम निःसन्देह हमारे माता-पिता हो॥२२॥ हे नन्दजी! अब तुम सब गोप गोकुल को चलो; हम भी यहाँ रहनेवाले अपने सब सुहृदों को सुखी करके फिर हमारे स्नेह के कारण दुःखित हुए तुम ज्ञातियों को देखने के निमित्त आवेंगे ॥ २३ ॥ इसप्रकार व्रजवासी गोपोंसहित नन्दजी को, भगवान् श्रीकृष्ण जी ने समझाया फिर वस्त्र आभूषण और सोने चाँदी आदि के पात्र देकर उन का बड़े आदर से सत्कार करा ॥ २४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्ण जी के कहने पर वह नन्दराजा स्नेह से विव्हल हुए और उन बलराम-कृष्ण को आलिङ्गन करके आँसुओं से नेत्रों को भरतेहुए गोपोंसहित गोकुल को चलेगये ॥ २५ ॥ हे राजन्! फिर वसुदेवजी ने, अपने पुरोहित गर्गाचार्य से और ब्राह्मणों से विधिपूर्वक बलराम-कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया॥२६॥और उन ब्राह्मणों की पूजा करके उन उत्तम अलङ्कृत ब्राह्मणों को दक्षिणा और सुवर्णके फूलोंकी माला पहिनेहुए,उत्तमभूषित और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों की झूलें ओढ़ेहुए बछड़ोंसहित गौएं दान दीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चा-ददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः॥३०॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दांतौ गुरौ वृत्तिमनिंदिताम् ॥ ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्सांगोपनिषदो गुरुः ॥३३॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्त्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ॥ गुरुद-

॥२७॥तैसे ही तिन महा बुद्धिमान् वसुदेवजी ने, बलराम-कृष्ण के जन्मनक्षत्र के समय जो गौएं मन से सङ्कल्प कर के दी थीं;परन्तु कंस ने अधर्म से छीन लीं थीं,उन का भी स्मरण कर के दान करा ॥ २८ ॥ इसप्रकार उपनयन संस्कार को प्राप्त होकर द्विजत्व को प्राप्त हुए और उत्तम नियम धारण करनेवाले उन बलराम, कृष्ण ने, यदुकुल के आचार्य गर्ग ऋषि से ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करा ॥ २९ ॥ यद्यपि वह दोनों ही जगदीश्वर,सकल विद्याओं के उत्पत्तिस्थान और सर्वज्ञ थे तथापि वह मनुष्य की चेष्टाओं से अपने स्वतः सिद्ध निर्मल ज्ञान को गुप्त रखते थे इसकारण लोकों को शिक्षा देने के निमित्त वह विद्या सीखने को गुरु के घर बसने की इच्छा कर के, काशगोत्र में उत्पन्न हुए, अवन्ती नगरी में रहनेवाले सान्दीपनि नामवाले गुरु के पास गये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उचित रीति से गुरु के समीप जाकर इन्द्रियों को वश में करके रहनेवाले और गुरु के भी आदर करे हुए वह, गुरु की उत्तम सेवा कैसे करे इस की, और लोकों को शिक्षा देतेहुए, देवताओं की समान भक्ति के साथ गुरु की सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ तब निष्कपट स्नेह करने वाले उन की सेवा से उन के ऊपर प्रसन्न हुए, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उन सान्दीपनि गुरु ने, बलराम-कृष्ण को,शिक्षा,कल्प (सूत्र) व्याकरण आदि वेदों के छःअङ्ग और ईश,केन,कठ, प्रश्न आदि दश उपनिषदों सहित ऋग्वेदादि चारों वेद पढ़ाए ॥ ३३ ॥ मंत्रों के और देवताओं के ज्ञानसहित धनुर्वेद, मनु आदि धर्मशास्त्र तथा मीमांसा आदि न्यायमार्ग, तर्क विद्या और सन्धि आदि छः प्रकार की राजनीति पढ़ाई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! श्रेष्ठ मनुष्यों में भी श्रेष्ठ और सकल विद्याओं के प्रवर्त्तक तिन बलराम कृष्ण ने, गुरु के एक वार ही उपदेश करने पर उतने ही में वह वेदादि सब सीखकर पढ़लिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उन दोनों जितेन्द्रियों ने, चौसठ अहोरात्र (रातदिन) में गान करना, बाजेबजाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नपि मानुषीं मतिं ॥ संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिंधुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयतां ॥ योऽसाविहैत्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽभकम् ॥ तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत् ॥ ४१ ॥ ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ ४२ ॥ शङ्खनिह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युप-

---

आदि चौंसठ कला सीखलीं और इच्छानुसार गुरुदक्षिणा मांगने को गुरु से प्रार्थना करी ॥३६॥तब हेराजन् ! उन सांदीपनि ब्राह्मण ने,उन बलराम-कृष्ण की वह अद्भुत महिमा और मनुष्यों में असम्भव प्रतीत होनेवाली बुद्धि देखकर अपनी स्त्री से सम्मति करी तब प्रभास क्षेत्र में समुद्र में डूब कर मरण को प्राप्त हुआ अपना पुत्र लाकर देने की गुरुदक्षिणा मांगी ॥ ३७ ॥ तब, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर अपार–पराक्रमी महारथी वह दोनो बलराम–कृष्ण, रथ में बैठकर प्रभासक्षेत्र पर पहुँचे और तहां समुद्र के तटपर जा कर क्षणभर बैठेरहे; तब यह परमेश्वर हैं, ऐसा उस समुद्र ने जानकर, मनुष्य के रूप में पूजा की सामग्री लेकर उन के समीप आकर उन की पूजा करी ॥ ३८ ॥ उससमय भगवान् उस से कहने लगे कि-हे समुद्र ! यहां बड़ी तरङ्ग से जो तू ने बालक डुबालिया है वह हमारे गुरु का पुत्र है; इसकारण तू शीघ्र ही लादे ॥ ३९ ॥ समुद्र ने कहा–हे देव कृष्ण ! उस गुरु के पुत्र को मैंने हरण नहीं करा है, किन्तु मेरे जल में रहनेवाला और शङ्ख का रूप धारण करनेवाला एक पंचजन नामवाला बड़ाभारी दैत्य असुर है निःसन्देह तुम्हारे गुरु के पुत्र को वह लाया है ; यह सुनकर उन सर्वसमर्थ श्रीकृष्णजी ने, शीघ्र ही जल में प्रवेश कर के उस को मार पेट फाडकर देखने लगे तो श्रीकृष्णजी ने वहां गुरु का पुत्र नहीं देखा, फिर उस पंचजन के शरीर से उत्पन्न हुए पांचजन्य नामक शंख को लेकर वह रथपर बैठ के लौट आये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर उन श्रीकृष्णजी ने, बलराम के साथ यमराज की प्रिय संयमनी नामक नगरी में जाकर शंख बजाया ॥ ४२ ॥ तब शंख का शब्द सुनकर प्रजाओं को वश में रखनेवाले तिस यम ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृंहिताम् ॥ ४३ ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीला-मनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरु पुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्वा स्वगुरवे भूयो वृणी-ष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्मद्विधगुरोः कामो नामावशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ की-र्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरु-णैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥४९॥ समनंदन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यंत्यो बहूहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥ इ०भा० म० द०पू० पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥ श्रीशुक उवाच

भक्ति के साथ बडी भारी पूजा करी ॥ ४३ ॥ और वह नम्र होकर सकल प्राणियों के अन्तर्यामी तिन श्रीकृष्णजी से कहने लगा कि—लीला के निमित्त मनुष्य का शरीर धारण करनेवाले हे विष्णो ! तुम्हारा कौनसा काम करें सो कहो ? ॥ ४४ ॥ श्री-भगवान् ने कहा कि—हे महाराज यम ! अपने कर्म से बन्धन को प्राप्तहुए गुरुपुत्र को, तु-म्हारे दूत यहाँ ले आये हैं, उस को तुम मेरी आज्ञा मान, लाकर मुझे देदो; मेरी आज्ञा से लाकर देनेवाले तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर बहुत अच्छा, ऐसा कह-कर तिन यमराज के लाकर दियेहुए गुरुपुत्र को लेकर आयेहुए तिन बलराम-कृष्ण ने, वह अपने गुरु को समर्पण करा और फिर दूसरा वर मांगो, यह प्रार्थना करी ॥ ४६ ॥ तब गुरु ने कहा कि—हे बेटा कृष्ण ! तुम दोनों ने मुझे उत्तम प्रकार की गुरु दक्षिणा दी है, तुमसमान पुरुषों का गुरु होकर मेरे मनोरथों में से कौनसा शेष रहसक्ता है ? अर्थात् कोई नहीं रहसक्ता, इसकारण अब मुझे कुछ मांगने की इच्छा नहीं है ॥ ४७ ॥ हे वीरों ! अब तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी कीर्त्ति लोकों को पवित्र करनेवाली है और तुम्हारे पढेहुए वेद इस लोक में तथा परलोक में सफल हों ॥ ४८ ॥ हे तात राजन् ! इसप्रकार गुरु के आज्ञा करने पर वह बलराम कृष्ण, वायु की समान वेग और मेघ की समान शब्दवाले रथ में बैठकर अपने नगर में पहुँचे ॥ ४९ ॥ तब बहुत काल से बलराम-कृष्ण को न दे-खनेवालीं सब प्रजाएं, उन को देखकर, जैसे जिन का धन खोयागया हो ऐसे पुरुष उस धन के फिर मिलजाने पर आनन्दित होते हैं तैसे ही अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे छयालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने, उद्धव जी को गोकुल में भेजकर उन की वाणी से नन्द-यशोदा का शोक दूर कराया, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ॥ ग्रहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥३॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयि ता प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरंत्योऽङ्ग विमुह्यंति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥ धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ॥ प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम्

कहाकि—हे राजन् ! वृष्णियों के वंशधरों में श्रेष्ठ, साक्षात् बृहस्पतिजी के शिष्य, अतिश्रेष्ठ बुद्धिवाले और श्रीकृष्णजी के परमप्यारे मित्र उद्धवनामवाले एक मुख्य मंत्री थे ॥ १ ॥ शरणागतों के दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने, एक समय एकान्त में अपने हाथ से उन अनन्यभक्त प्रिय उद्धव जी का हाथ पकड़कर, कहा कि—॥ २ ॥ हे सौम्य उद्धव ! तुम गोकुल में जाओ और हमारे माता-पिता (यशोदा नन्द) को हमारे वियोग से दुःख होरहा है उस को दूर करके हर्ष उत्पन्न करो तथा गोपियों के भी मेरे वियोग से उत्पन्न हुए मन के दुःख को मेरा सन्देशा कहकर दूरकरो ॥ ३॥ गोपियों को विशेष सन्देशा कहने का कारण यह है कि—वह गोपियें, मुझ में मन लगानेवालीं, मेरे निमित्त ही प्राण धारण करनेवालीं, और मेरी प्राप्ति होने के निमित्त ही पति-पुत्रादिकों का त्याग करनेवालीं होकर दयावान् और मन से मुझे प्राप्त होरही हैं; जो पुरुष, मेरे निमित्त इस लोक में प्राप्त होनेवाले सुखों का और उन के साधनों का त्याग कर रहते हैं उन का मैं पालन करता हूँ और उन को सुख देता हूँ ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! प्यारे पदार्थों से भी अत्यन्त प्यारा लगनेवाला मैं दूर रहता हूँ इसकारण वह गोकुल में की स्त्रियें मेरा स्मरण करके विरह के कारण होनेवाली मेरी उत्कण्ठा से विव्हल होकर मोहित होजाती हैं ॥ ५ ॥ और प्रायः वह मेरी प्यारी ग्वालिनियें, मेरे गोकुल से मथुरा को आते समय 'मैं शीघ्र ही लौट कर आऊंगा ऐसा जो' मैंने कहदिया था तिस से मेरे ऊपर अपना अन्तर्यामी आत्मा रखकर बड़ी कठिनता से प्राणों को धारण कररही हैं, तात्पर्य यह है कि—उन का आत्मा यदि उन के देह में होता तो वह विरह के ताप से भस्म ही होगया होता, परन्तु उन का वह आत्मा मुझ में होने के कारण वह किसीप्रकार जीवन धारण कररही हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! इसप्रकार कहकर भगवान् के सत्कार करेहुए वह उद्धव जी अपने स्वामी श्रीकृष्णजी का 'तुम्हारा और मेरा वियोग कभी नहीं होसक्ता'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ७ ॥ प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितोऽर्थेऽभियुद्ध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावंतीभिश्च वत्साभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः । गोदोहशब्दाभिरवेवेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥ गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमं ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मखण्डैश्च मण्डितम् ॥१३॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ॥

ऐसा सन्देशा मस्तक पर धारकर रथ में बैठ नन्दजी की गोकुल को चलेगये ॥ ७ ॥ वह श्रीमान् उद्धवजी सूर्यास्त होने के समय, आगे २ गोकुल में को जानेवाले पशुओं के खुरों की रजों से जिन का रथ ढकगया है ऐसे होकर नन्दजी की गोकुल में पहुंचे ॥८॥ वह गोकुल, गर्भधारण के समय को प्राप्त हुई गौओं के निमित्त परस्पर युद्ध करने वाले मदोन्मत्त बैलों के रम्भाहट शब्दों से युक्त और ऐनों के भार से युक्त ऐसी अपने २ बछड़ों की ओर को दौड़नेवाली दूध देती हुई गौओं से भूषित था ॥ ९ ॥ तथा जिधर तिधर को कुलाचें मारनेवाले स्वेतवर्ण के बछड़ों से शोभायमान और गौओं के दूध दुहने के शब्दों के साथ 'बछडे को छोड,मत छोड,उस को लेजा.वहसा पात्र दे, यह ले इत्यादि' गोपों के शब्दों से और मुरलियों की गुञ्जार से शोभित था ॥ १० ॥ बलराम-कृष्ण के पापनाशक-कर्मों को गानेवालीं और उत्तम आभूषण पहिननेवालीं गोपियों तथा गोपों से अत्यन्त शोभायमान था ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितर और देवताओं की पूजा जहाँ होती है ऐसे गोपों के घरों से और नहाँ तहाँ स्थित धूप तथा दीपकों से युक्त था ॥ १२ ॥ और वह गोकुल-हंस, कारण्डव, नलकाक आदि से व्याप्त, ऐसे कमलों के समूहों से शोभायमान सरोवरों के तटों पर रहनेवाले पक्षियों के और भ्रमरों के शब्दों से युक्त ऐसे खिलेहुए वनों से चारों ओर भूषित था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णजी के प्यारे सेवक उद्धवजी आये हैं ऐसा सुनकर प्रसन्न हुए नन्दजी ने,सन्मुख जाकर उन्हें छाती से लगा वासुदेवबुद्धि से (यह कृष्ण ही आये हैं ऐसी बुद्धि से) उन का सत्कार करा ॥ १४ ॥ तदनन्तर खीर आदि उत्तम अन्न का भोजन करके, पलङ्ग के ऊपर गद्दे के बिछौने पर सुख से बैठे हुए और चरण दबाने आदि से श्रमरहित हुए उन उद्धवजी से नन्दजी ने बूझा कि ॥१५॥ हे मित्र ! हे महाभाग उद्धव !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविंदः स्वजनान् सकृदीक्षितुम्॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलाऽपांगनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चांगं सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥२१॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मतां ॥२२॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥

हम गोकुलवासियों के सखा वसुदेवजी बन्धन से छूटकर बान्धव और मित्रोंसहित अपने पुत्रादिकों के साथ सुख से तो रहते हैं? ॥ १६ ॥ पापी कंस अपने ही पाप से छोटे भ्राताओंसहित और चाणूर आदि मल्लोंसहित मरण को प्राप्त हुआ, यह वार्ता बड़े ही आनन्द की हुई; क्योंकि-वह धर्मात्मा और साधु यादवों से निरन्तर द्वेष रखता था ॥१७ ॥ और श्रीकृष्ण कभी भी हम सुहृदों का, माता यशोदा, सखा गोप, आप ही जिस के रक्षक हैं ऐसी गोकुल,गौएं, वृन्दावन और गोवर्द्धन पर्वत का स्मरण करते हैं क्या? ॥ १८ ॥ भला, श्रीकृष्णजी, स्वजनों को देखने के निमित्त एक बार भी इधर को आवेंगे क्या? आवें तो सुन्दर नासिका और मन्दहाससहित चितवनवाले उन के मुख को हम देखें । १९ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी के करे हुए उपकारों का स्मरण आदि करके परमआनन्द में भरकर कहने लगे कि-हे उद्धव! महात्मा श्रीकृष्ण ने वन की दौं, आँधीसहित वर्षा, अरिष्टासुर और अघासुर इन से तथा दूसरे भी अनेकों दुस्तर मृत्युसमान सङ्कटों से हमारी रक्षा करी है ॥२०॥ हे मित्र! श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन को उठाना आदि चरित्र, लीलायुक्त कटाक्षों के साथ अवलोकन, हास्य और वार्त्तालापों का स्मरण करतेहुए हमारे सब ही कार्य शिथिल होगये हैं ॥ २१ ॥ केवल शिथिल ही नहीं हुए हैं किन्तु कितने ही दिनों से कुछ भी हुए ही नहीं हैं.क्योंकि—जिस में कालियदमन आदि क्रीडा करी थीं ऐसी यमुना नदी, श्रीकृष्ण के चरणों के चिन्हों से भूषित गोवर्द्धन पर्वत, वन में के स्थान और उनके क्रीडा करने के स्थानों को देखते में हमारा मन निरन्तर कृष्णरूप होजाता है॥२२॥ मैं तो गर्गाचार्यजी के गम्भीर अर्थयुक्त भाषण से ऐसा मानता हूँ कि-बलराम और कृष्ण यह दोनों, देवताओं में श्रेष्ठ (वासुदेव और सङ्कर्षण) हैं और देवताओं का,दैत्यों का वध आदि कार्य करने को भूतल पर अवतरे हैं ॥ २३ ॥ अहो ! जिन्हों ने, दश सहस्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवधिष्टां लीलयैव पेशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यदभिवभराट् ॥ बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलंबो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्त्तबकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥२६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशाते इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशु-

हाथियों की समान बलवाले कंस को गजराज को, चाणूर और मुष्टिक नामवाले महाबली मल्लों को, जैसे छोटा भी सिंह बडे भी हाथी आदि पशुओं को मारडालताहै तैसे मारडाला॥२४॥तैसे ही जिन कृष्ण ने तीनताड, (२००हाथ) लम्बे और अत्यन्त दृढ़ धनुष को जैसे हाथी लाठी को तोडडालता है तैसे तोडडाला और सात दिनपर्यन्त एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को धारण करा ॥ २५ ॥ तैसे ही गोकुल में दैत्य दैत्यों को जीतनेवाले—प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, तृणावर्त्त और बकासुर आदि दैत्यों को सहज में लीला से ही मारडाला ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्णजी का वारंवार स्मरण करके श्रीकृष्णजी के विषैं प्रेमबुद्धि रखनेवाले नन्दजी, प्रेम के प्रवाह से व्याकुल होकर, कंठ रुकजाने से चुपरहे आगे को कुछ नहीं कहसके ॥ २७ ॥ तब नन्द राजा के वर्णन करेहुए चरित्रों को सुननेवाली यशोदा तो, जिस के स्तनों में से दूध टपकरहा है ऐसी होकर नेत्रों में से टप २ दुःख के आँसू बहानेलगी ॥ २८ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णजी के विषैं तिन नन्द—यशोदा की परमप्रीति देखकर, बडे हर्ष के साथ उद्धवजी नन्दजी से कहने लगे॥२९॥ उद्धवजी ने कहा कि-हे सन्मान करनेवाले नन्द! तुम दोनो निःसन्देह इस लोक में के सकल प्राणियों में परम प्रशंसा करने के योग्य हो, जिन तुम ने सकल जगत् के गुरु नारायणरूप श्रीकृष्णजी के विषैं ऐसी प्रेमयुक्त बुद्धि लगाई है ॥३०॥ क्योंकि-यह बलराम—कृष्ण, दोनों ही सकल जगत् के पुरुष और प्रधानरूप बीज कारण हैं, और यही सकल प्राणियों में प्रवेश करके तिन प्राणियों के और तिन २ उपाधियों करके भिन्न २ प्रतीत होने वाले जीवों के नियन्ता पुराणपुरुष हैं ॥ ३१ ॥ हे नन्दजी! जिन में कोई भी प्राणी, प्राणान्त के समय क्षणमात्र को भी अपना शुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्धम् ॥ निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमूर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किंवाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रंगमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वतां ॥ यदाहवः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ॥ अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियोऽवास्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्य-

करा हुआ मन स्थापन करके और उस के द्वारा कर्मवासनाओं का त्याग कर के ब्रह्ममय और सूर्य की समान प्रकाशवान् होता हुआ तत्काल परमगति पाता है. उन सब के आत्मा, कारण और भूमि का भार हरने के निमित्त मनुष्यावतार धारण करनेवाले परिपूर्ण नारायण के विषैं तुम दोनों भक्ति करते हो फिर अब तुम्हें और कौनसा शुभकर्म करना शेष रहा? ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वह भक्तों के पति भगवान् श्रीकृष्णजी, थोडे ही समय में गोकुल को आवेंगे और तुम माता-पिताओं का दर्शन आदि मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥३४॥ सकल यादवों के शत्रु कंस को रंगमंडप में मारकर तदनन्तर, श्रीकृष्णजी ने तुम्हारे समीप आने को जो तुम से कहादिया है कि–'तुम गोकुल को चलो; हम यादवों को सुख देकर फिर आवेंगे' उस को सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ हे महाभागो! तुम खेद न करो, हमारे समीप में ही कृष्ण हैं ऐसा देखो, वहसब प्राणियों के हृदयों में रहते हैं परन्तु जैसे काठ में का अग्नि, काठ को मथना आदि उपायों के विना नहीं दीखता है ऐसे ही सर्वत्र रहनेवाले भी वह भगवान् भक्ति के विना नहीं मिलते हैं ॥ ३६ ॥ अहङ्काररहित और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले इन परमेश्वर को कोई प्रिय नहीं है, कोई अप्रिय भी नहीं है, कोई उत्तम नहीं है और कोई अधम वा विषम भी नहीं है ॥ ३७ ॥ इन के माता नहीं है, पिता नहीं है स्त्री नहीं है और पुत्रादि भी नहीं है, कोई अपना नहीं है और कोई पराया भी नहीं है, इन के देह नहीं है, जन्म नहीं है, और कर्म भी नहीं है; तथापि वह भगवान्, इस लोक में साधुओं की रक्षा करने के निमित्त और क्रीडा करने के निमित्त सात्त्विक, राजस और तामस ऐसी देव–तिर्यक्–मनुष्य आदि योनियों में अवतार धारते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वह वास्तव में निर्गुण होकर भी अपनी क्रीडा के साधनरूप से सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेति हन्त्यजः ॥ ४० ॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्त्तरि तत्रात्मा कर्त्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्यमंथन् ॥ ४४ ॥ तां दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः ॥ चलन्नितंबस्तनहारकुण्डलत्विष्यत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मंथनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशामममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये व्रजद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति चाब्रुवन्

स्वीकार करते हैं और जन्मरहित तथा क्रीड़ारहित होकर भी अपनी इच्छा से क्रीड़ा करने लगते हैं तब गुणों से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे आप ही चारोंओर को, घर २ घूमनेवाले मनुष्य को, घूमती हुई दृष्टि से, पृथ्वी चक्कर बाँधेहुए घूमरही है ऐसा प्रतीत होता है तैसे ही जब चित्त कर्म करने लगता है तब तिस में अहङ्कार की बुद्धि से भ्रम को प्राप्तहुए पुरुष का आत्मा भी कर्मों के वश में हुआसा प्रतीत होता है ॥ ४१ ॥ यह भगवान् हरि श्रीकृष्णजी, तुम दोनों के ही पुत्र हों ऐसा नहीं है किन्तु सर्वों के ही पुत्र, आत्मा, पिता और माता वह ईश्वर ही हैं ॥ ४२ ॥ देखने में वा सुनने में आनेवाला, जो भूत, भविष्य, वर्त्तमान, स्थावर, जङ्गम, छोटा वा बड़ा कोई भी पदार्थ उच्चारण करने में आता है वह भगवान् के विना कुछ भी नहीं है किन्तु वह भगवान् ही सर्व रूप और सर्वों के परमार्थरूप हैं ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! इसप्रकार उन उद्धव और नन्दजी को आपस में वार्त्तालाप करते हुए, वह सारी रात वीतगई, तब गोपियें, उठकर दीपक जलाकर, घरों को झाड़बुहारकर और चन्दनादि से उन को पूजित करके दही मथनेलगीं ॥ ४४ ॥ तब जिन के मथने की डोरी को खैंचनेवाले हाथोंमें कङ्कण और पहुँची हैं, जिन के नितम्ब, स्तन और हार हलरहे हैं, जिन के कपोल कुण्डलों से चमक रहेहैं और जिन्हों ने मुखपर लाली लियेहुए केशर लगाया है ऐसी वह गोपियें दीपक के तेज से, दमकनेवाले तागड़ी आदि के ऊपर जड़ेहुए रत्नों से शोभायमान होनेलगीं ॥ ४५ ॥ तब श्रीकृष्णजी का यश ऊँचे स्वर से गानेवालीं गोपियों का, दही मथने के शब्द से मिला हुआ वह बड़ाभारी शब्द स्वर्गपर्यन्त जा पहुँचा, जिस शब्द से सकल दिशाओं के पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भगवान् सूर्य का उदय होनेपर, गोकुल की स्त्रियोंने, नन्दजी के द्वार के आगे सुवर्ण का रथ देखकर वह; यह रथ किस का है ऐसा कहनेलगीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किंवा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नंदशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनं ॥ पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मितः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदांबुजाश्रयं ॥२॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुप-

॥ ४७ ॥ वह क्रोध के साथ कहनेलगीं कि—अहो! जो कमलनयन श्रीकृष्ण को मथुरा को लेगया था वह कंस का कार्य साधनेवाला अक्रूर तो कहीं नहीं आया है? ॥ ४८ ॥ कंस को मरवाकर फिर काहे को आवेगा? ऐसा सन्देह करके परस्पर कहनेलगीं कि—करेहुए कार्य से प्रसन्न हुए अपने स्वामी (कंस) का प्रेतकर्म, अब हमें लेजाकर साधेगा क्या? अर्थात् हमारे मांस के पिण्ड बनाकर उस को देगा क्या? ऐसे वह स्त्रियें कहरही थीं, इतने ही में यमुना पर स्नान संध्या आदि कर्म समाप्त करके उद्धव जी तहाँ आगए ॥४९॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे सैंतालीसवें अध्याय में, उद्धवजी ने श्रीकृष्णजी की आज्ञा के अनुसार गोकुल की गोपियों से श्रीकृष्ण का सन्देशा कहकर तत्त्व का बोध कराया फिर नंदादि सबों की आज्ञा लेकर मथुरा को लौट आये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! जिन की भुजा घुटनोपर्यन्त लम्बी हैं, जिनके नेत्र नवीन कमल की समान सुन्दर हैं, जिन्हों ने पीताम्बर और कमलों की माला धारण करी है, जिन का मुखकमल शोभायमान है और जिन के कुण्डल मणियों से जड़े दमक रहे हैं ऐसे उन श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी को देखकर. पवित्रहास्य करनेवालीं गोकुल की सब स्त्रियें, स्त्रियों को अत्यन्त ही मनोहर दीखनेवाला और श्रीकृष्ण की समान ही पीताम्बर आदि वेष तथा आभूषण धारण करनेवाला यह किस का कौन है? कौन से देश से यहां आया है? ऐसा तर्क करनेवालीं तथा उनको जानने के निमित्त उत्कंठित हुई वह सब गोपियें, उत्तमकीर्त्ति भगवान् के चरणकमल का आश्रय करनेवाले उन उद्धवजी के चारोंओर जमकर खड़ी होगईं॥ १ ॥ २ ॥ फिर, श्रीकृष्ण का संदेशा लेकर आया है, ऐसा जानकर गोपियों ने उन को एकान्त में बुलाया और लज्जा तथा हास्य के साथ अवलोकन और मधुरभाषण आदि से उन का सत्कार करके आसनपर बैठायेहुए उन को न-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्टिमासैने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतं ॥ भत्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडंबनं ॥ पुंभिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनस्त्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निःस्वं त्यजंति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणं ॥ ७ ॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहं ॥ दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा

नस्कार करा और नम्रता के साथ बूझनेलगीं कि-॥ ३ ॥ हम तुम्हें, 'तुम श्रीकृष्ण के सेवक यहाँ आये हो ऐसा' जानती हैं. श्रीकृष्ण ने अपने माता पिता का (नन्द यशोदाका) प्रिय करने की इच्छा से तुम्हें यहाँ भेजा होगा! ॥ ४ ॥ क्योंकि-माता पिता आदि बान्धवों के स्नेह का सम्बन्ध छोड़देना, मुनि और ऋषियों को भी कठिन है, नहीं तो कंस को मारकर राज पानेवाले उन श्रीकृष्ण को गोकुल में स्मरण करनेयोग्य हम कुछ भी नहीं देखती हैं ॥ ५ ॥ बान्धवों को छोड़कर दूसरों के ऊपर जो प्रीति होती है वह केवल अपना कार्य साधने की समाप्तितक ही होती है और वह प्रीति मित्रता का अनुकरणमात्र(नकल) होती है, सच्ची नहीं होती है; वह मैत्री-जैसे पुरुषों की स्त्रियों में कामदेव के कारण होती है वह कामदेव की निवृत्ति होते ही दूर होजाती है अथवा जैसे भौंरों की फूलोंपर उन के पराग के कारण करीहुई मित्रता,पराग दूर होते ही दूर होजाती है तैसे ही समझना चाहिये ॥ ६ ॥ जैसे वेश्या निर्धनहुए पुरुष को त्याग देती हैं, वा प्रजा पालन पोषण आदि करने में असमर्थ हुए राजा को, जैसे विद्या पढ़ेहुए शिष्य गुरु को, जैसे ऋत्विज् दक्षिणा देचुकनेवाले यजमान को, जैसे पक्षी फलहीन हुए वृक्ष को, जैसे अतिथि भोजन करने के अनन्तर गृहस्थी के घर को और जैसे हिरन वन की दौं से जलतेहुए जंगल को त्यागदेते हैं तैसे ही जारपुरुष, प्रीति से रतहुई स्त्री को भोग होने पर तत्काल ही त्यागदेते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहाकि-हे राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्णजी के दूत वह उद्धवजी, गोकुल में गये तब लोकव्यवहार को छोड़कर श्रीकृष्ण की ओर शरीर,वाणी और मन लगानेवाली वह गोपियें, प्यारे श्रीकृष्ण के किशोर और बाल अवस्था में करेहुए कर्मों को वारंवार स्मरण कर २ के गातीहुई और निर्लज्जता के साथ रोतीहुई उद्धवजी से बूझने लगीं कि-॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्युवाच ॥ मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ॥ बहुतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२॥ सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥१३॥ किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपट रुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ॥ चरण-

॥ १० ॥ उन में से कोई एक गोपी, श्रीकृष्ण के समागम का ध्यान करते में एक भौंरे को देखकर उस के ऊपर, यह श्रीकृष्णजी ने हमारी प्रसन्नता करने को दूत भेजा है ऐसी कल्पना करके इसप्रकार कहने लगी ॥ ११ ॥ गोपी ने कहा कि—अरे भौंरे! अरे कपटी के मित्र! तू हमारे चरणों को स्पर्श करके नमस्कार से हमारी प्रार्थना मत कर, तेरी मूछें, सौत के स्तनों से मसलीहुई भगवान् की वनमाला के केशर से रंगी हुई हैं, जिन का तू ऐसा (मूंछें रंगाहुआ) दूत है वह यादवपति श्रीकृष्णजी, यादवों की सभा में निन्दा होने के योग्य उन मानवती नगरवासिनी स्त्रियों की ही प्रसन्नता करें ॥ १२ ॥ जैसे तू दुष्टचित्त है तैसे ही तेरे स्वामी श्रीकृष्ण भी हैं; जैसे तू फूलों की सुगन्ध लेकर तत्काल ही उन को त्यागदेता है तैसे ही श्रीकृष्णजी ने भी मोहित करनेवाला अपना अधरामृत एकवार ही पिलाकर हमें तत्काल त्यागदिया है, अहो! लक्ष्मी तो उन कृतघ्नी के चरणकमल की सेवा न जाने कैसे करती है? मेरी समझ में तो उत्तमकीर्त्ति भगवान् की वनावटी बातों से ही उस लक्ष्मी का मन आकर्षित होगया है परन्तु हम उस लक्ष्मी की समान अनजान नहीं हैं ॥१३॥ तदनन्तर अनेकों प्रकार के गुञ्जारशब्द कर नेवाले उस भौंरे को, यह हमारी प्रसन्नता के निमित्त कृष्ण का गान कर रहा है ऐसा मानकर कहने लगी कि—अरे भौंरे! तू यहां हम वनचरी स्त्रियों के आगे तिन पुराणपुरुष यादवपति श्रीकृष्णजी का अधिक गान काहे के निमित्त करता है? इससमय श्रीकृष्णजी की जो सखियें हैं उन के आगे ही उन की कथा का गानकर क्योंकि-जिन का कामज्वर श्रीकृष्ण ने शान्त करा है, वह श्रीकृष्णजी की प्रिय स्त्रियें ही तुझे जो चाहेगा सो देंगी ॥ १४ ॥ हे मातः! ऐसा न कहो, तुम्हें स्मरण करके कामदेव से विह्वल हुए श्रीकृष्ण ने, तुम्हें प्रसन्न करने को मुझे यहां भेजा है ऐसा कहे तो—अरे कपटी भौंरे! सुन्दर हास्य युक्त भौं चलानेवाले उन श्रीकृष्ण को स्वर्ग, भूमि और पाताल में जितनी स्त्रियें हैं उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रज उपासते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः॥१५॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्ते ऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ॥ स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्न्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिव कपीन्द्रं विध्यसि त्वं लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानां ॥ बलिमपि बलिमत्वाऽवेष्टयत् ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वंद्वधर्माविनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुंबं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह वि-

में से भला कौनसी दुर्लभ है ? अर्थात् कोई दुर्लभ नहीं है; अरे ! लक्ष्मी भी जिन के चरणरज की सेवा करती है उन के यहां हमारी कौन गिनती है ? तथापि तू श्रीकृष्ण के पास जाकर यह कहना कि-दीन पर दया करनेवाले पुरुष को ही बड़ा यशस्वी कहते हैं ॥ १५ ॥ तदनन्तर पैरों पर बैठने को आये हुए उस भौंरे को, यह कृष्ण के समीप से हमारे समीप क्षमा कराने को आया है ऐसा समझकर कहने लगी कि-अरे भौंरे ! तू मेरे पैरों पर मस्तक न रख, कृष्ण के पास से सीखकर आयेहुए और दूतकर्मों से तथा प्रियकारी वचनों से दूसरे की प्रार्थना करने में चतुर बनेहुए तेरे सब कपट को मैं जानती हूँ, कृष्ण की समान तू भी विश्वास करने के योग्य नहीं है; यदि कहे कि तू इतना तिरस्कार करती है भला उन कृष्ण ने तेरा ऐसा कौनसा अपराध करा है ? तो सुन-उन कृतघ्नी श्रीकृष्ण ने, उन के निमित्त ही जिन्हों ने पुत्र,स्त्री और स्वर्ग आदि परलोक का त्यागकरा है ऐसी हमें त्याग दिया;यह अपराध करा है फिर अब उन के साथ मिलकर क्या करना है ! ॥ १६ ॥ और कृष्ण के पहिले के कर्म मन में लाकर मैं उन से बहुत ही डरती हूँ, जिन्हो ने, रामावतार में व्याध की समान क्रूरपना स्वीकार कर के वालि को मारा और सीता के वश में होकर जिस ने कामातुरदशा में आई हुई सूपनखा के नाक-कान काट कर उस को कुरूप कर दिया तथा उस से भी पहिले वामनावतार में, जैसे काक किसी वस्तु को थोड़ासा खाकर भी फिर उस को नीचे गिरादेता है तैसे ही जिन्हों ने राजाबलि से पूजा ग्रहण करके भी उस को वरुण के पाशों से बांधा ऐसे कृष्ण से मेल रखकर अब हम मरपाईं; यदि कहै कि ऐसा है तो फिर निरन्तर उन के ही गीत क्यों गाती हो ? तो-सुन-उन की कथारूप अर्थ को त्यागना तो बड़ा कठिन है ॥ १७ ॥और उन की कथा भी धर्म-अर्थ-कामरूप लता को उखाड़कर फेंकदेनेवाली है, यद्यपि ऐसा हम जानती हैं तथापि उस के त्यागने की हम में शक्ति नहीं है, क्या करें ! जिस भगवान् के चरित्ररूप कर्णामृत के एक कण का एकवार भी सेवन कर ने से जिन के राग द्वेष आदि नष्ट हो गए हैं ऐसे बहुत से पुरुष होकर भी न हुएसे होकर दुःखित हुए अपने घर में के स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब को तत्काल त्यागकर आप भी भोगरहित होतेहुए पक्षियों की समान पेट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हंगा भिक्षुचर्यां चरंति ॥ १८ ॥ वंयमृतंमिवं जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकेरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ दृष्टुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमंत्रिन् भण्यतामन्यवार्त्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुंधे मानमानीयोऽसि मेऽङ्गा॥ नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं संततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥२१॥

भरने के निमित्त भीख मांगते फिरते हैं अर्थात् जिन की कथा को एकवार भी सुनने से रागद्वेष आदि दोषरहित होने के कारण संसारी जीवों की समान नाश को न प्राप्त होनेवाले कितने ही परमहंस योगी, तुच्छ घरोंसहित कुटुम्ब को तत्काल त्यागकर सकल सङ्गरहित होते हुए परमहंस धर्म का आचारण करते हैं इसकारण श्रीकृष्णकी कथारूपअर्थ परमपुरुषार्थरूप होने से छूटना कठिन है ॥१८॥ अच्छा जब तुम ऐसी चतुर हो तो—पहिले श्रीकृष्ण के साथ मित्रता करके उन के वश में कैसे होगई थीं? यदि ऐसा कहे तो सुन-जैसे काले हिरन की भोली हिरनियें, व्याधे का मधुर गान सुनकर उस को सत्य मानती हुई उस के समीपजाकर वाणों से विंधते ही दुःख को भोगती हैं; तैसे ही हम अनजान स्त्रियें उन ही कपटी श्रीकृष्ण के 'मैंने कभी भी मिथ्याभाषण नहीं करा इत्यादि' वार्त्तालाप को सत्यमानती हुई, उन श्रीकृष्ण नखोंके स्पर्शसे अत्यन्त वृद्धि को प्राप्तहुए कामदेव की पीड़ा से युक्त होकर वारंवार इस दुःख को देखचुकी हैं. इस से हे दूत ! स्मरण करनेमात्र से ही मन में क्षोभ उत्पन्न करनेवाली उनकृष्ण की कथा को रहने दे, तू और कोई दूसरी ही कथा वर्णन कर॥१९॥ दूरजाकर फिर लौटकर आये हुए उस भौंरे से कहनेलगी कि—हे प्राणसखा के मित्र! श्रीकृष्ण का भेजाहुआ तू फिर आया है क्या ? हे दूत ! तू मेरा पूजनीय है, तुझे क्या चाहिये ? जो चाहिये सो मांगले यदि कहै कि—मैं तुम्हे कृष्ण के समीप लेजाऊँगा तो सुन—जिन के समागम को छोड़ना परम कठिन है उन श्रीकृष्ण के समीप, यहाँ रहनेवालीं हमें तू कैसे लेजायगा ? यदि कहे कि—लेजाने में कौन कठिनता है तो सुन—हे सौम्य ! जिन के वक्षःस्थल में ही लक्ष्मी नामक स्त्री निरन्तर वास करती है उन की हमें कौन आवश्यकता है ? ॥ २० ॥ उस के कुछ गुप्त भाषण करने पर वह गोपी उस से फिर कहनेलगी कि—हे सौम्य ! मैं तुझ से यह बूझती हूँ कि—नन्दराजा के पुत्र श्रीकृष्ण, यज्ञोपवीत होनेपर विद्या सीखने को गुरु के घर गये थे, वह तहाँ से आकर अब मथुरा में आनन्द तो हैं ? और वह यशोदा—नन्दसहित अपना घर का और बान्धव गोपों का स्मरण करते हैं क्या ? वह कभी हम दासिओं की बातचीत करते हैं क्या ? कभी अगर की समान सुगन्धयुक्त अपना हाथ हमारे मस्तक पर रक्खेंगे क्या ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सांत्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥२५॥ दिष्ट्या पुत्रान्पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥२७॥ श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुरहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाहं च मनःप्राणभूतेंद्रियगुणात्मना ॥ २९ ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्यनुपालये॥

॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजी के दर्शन के विषय में उत्कंठित हुई उन गोपियों को देखकर वह उद्धवजी, प्रिय श्रीकृष्ण के सन्देशों से उन को समझाते हुए ऐसा कहनेलगे ॥ २२ ॥ उद्धवजी ने कहा कि-अरी गोपियों ! तुम कृतार्थ हो और सब लोकों की पूजनीय हो, क्योंकि--जिन तुम्हारा मन, भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण के विषैं ऐसा अर्पित और स्थिर होरहाहै॥२३॥दान,व्रत,तप,होम,गंत्रादिकों का जप,वेदपाठ इन्द्रिओं को वश में करना तथा नानाप्रकार के दूसरे भी कल्याण के साधनों से श्रीकृष्णजी के विषैं भक्ति ही साधीजाती है ॥ २४ ॥ हे गोपियों ! तुम ने उत्तमश्लोक भगवान् के विषैं जो प्रेमलक्षण एकान्त भक्ति प्राप्त करी, यह बड़ी ही सुन्दर वार्त्ता हुई, क्योंकि-यह भक्ति मनन करनेवाले ऋषियों को भी परम दुर्लभ है ॥ २५ ॥ और तुमने, अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन तथा घरद्वार को छोड़कर जो श्रीकृष्ण नामक परमपुरुष को स्वीकार करा, यह भी बड़ी सुन्दर वार्त्ता हुई॥२६॥हे महाभागों ! तुम्हें विरह से भगवान्श्रीकृष्णके विषैं जो प्रेमलक्षण एकान्त भक्ति प्राप्त हुई, सो तुमने मुझे सहज में ही दिखादी, ऐसा करके तुमने मेरे ऊपर भी बड़ा अनुग्रह करा है अर्थात् उसको देखकर मैंभी कृतार्थ हुआहूँ ॥२७॥ इस से हे कल्याणियों ! मैं श्रीकृष्ण का गुप्तकार्य करनेवाला दूतहूँ, सो मैं उन प्रिय श्रीकृष्ण का तुम्हें सुख देनेवाला जो सन्देशा कहने को ल्याहूँ उस को अब कहता हूँ सुनो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् ने तुम से यह कहा है कि-तुम्हारा और मेरा किसी भी देश मे वा किसी भी काल में वियोग कुछ भी नहीं है क्योंकि-मैं सब का आत्मा हूँ, जैसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथवी यह पञ्चमहाभूत स्थावर जंगमरूप सब पदार्थों में रहते हैं तैसे ही मैं भी, मन, प्राण, भूत, इन्द्रियें और गुणों के अधिष्ठानरूप से सबों में व्यापरहा हूँ ॥ २९ ॥ और मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्ममायाऽनुभावेन भूतेंद्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेंद्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुंध्याद्रियाणि विनिद्रः सत्यपद्यत॥३२॥एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रांता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्त्ते प्रियो दृशां ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्त्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥ ३५ ॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरा-

अपनी माया के प्रभाव से अपने ही स्वरूप में, भूत, इन्द्रिय और गुण इन के रूप से आप ही अपने को उत्पन्न करता हूँ, संहार करता हूँ और पालन करता हूँ॥ ३० ॥ क्योंकि—आत्मा शुद्ध और गुणों में न मिलाहुआ होने के कारण गुणों से भिन्न ज्ञानरूप है, वह-माया के कार्य मन की सुषुप्ति स्वप्न और जागृतरूप वृत्तियों के कारण विश्व--तैजस-प्राज्ञरूपों से प्रतीत होता है स्वयं प्रतीत नहीं होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जगाहुआ पुरुष, स्वप्न में देखेहुए पदार्थ मिथ्या हैं ऐसा मानता है तैसे ही ज्ञानीपुरुष, जिन को मिथ्या मानते हैं तिन शब्दादि विषयों का जिस मन से चिन्तवन होता है और चिन्तवन होते में जिस मन से इंद्रियों को और इंद्रिययुक्त देह को अध्यास से वह सब इंद्रियादि मैं ही हूँ ऐसा प्राणी मानता है, उस मन का निरोध (वश में करना) आलस्य को छोड़कर करना चाहिये ॥ ३२ ॥ वेद (वेद में कहेहुए साधनों का समूह) अष्टांग योग, विचारवान् पुरुषों का आत्मानात्मविवेक, संन्यास, स्वधर्म, इंद्रियों को जीतना और सत्य यह सब ही रीतियें, जैसे सब नदियें अन्त को समुद्र में ही जाकर मिलजाती हैं तैसे ही ' मन को वश में कर ने में ही समाप्ति पाती हैं अर्थात् अन्त का फल सब का मन को वश में करना ही है ॥ ३३ ॥ अब, हे कृष्ण ! तुम और भक्तों की समान हमें भी आत्मज्ञान का उपदेश देकर लालच में लाते हो क्या ? हम तो सबों में सुन्दर और सब गुणों के समूह से भूषित जो तुम तिन के विरह को नहीं सहसक्ती हैं, ऐसा कहो तो अरी गोपियों ! तुम्हारा परम प्यारा मैं, जो तुम्हारी दृष्टि से दूर रहता हूँ उस का कारण यह है—कि—तुम्हें वारम्वार मेरा ध्यान होय और तुम अपना मन मुझ में ही लगाए रहो ॥ ३४ ॥ जैसे स्त्रियों का तथा और भी प्रेमियों का मन, परदेश में रहनेवाले पति और मित्रादिकों में पहुँचकर निश्चलभाव से लगा रहता है तैसे, समीप (नेत्रों के सामने) आने पर निश्चल नहीं रहता है ॥ ३५ ॥ इसकारण तुम, सकल व्यपारों से छुटाहुआ अपना मन, पूर्णरीति से मेरे विषैं स्थिर करके प्रतिक्षण मेरा ही चिन्तवन करो तब शीघ्र ही मेरे स्वरूप को प्राप्त हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो मामुद्दिश्य चिरोषिताः ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्या प्रैलब्धसर्वार्थः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३७ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविंदः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैः कथांतरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा

जाओगी ॥ ३६ ॥ इस मेरे कहने को केवल मधुरसा प्रतीत होनेवाला ही न समझो, क्योंकि—हे कल्याणियों ! इस वृन्दावन में रात्रि के समय क्रीड़ा करनेवाले मेरे साथ जो रासक्रीड़ा नहीं करसकीं वह पतियों के रोकलेने के कारण गोकुल में रहीहुई गोपियें, मेरी लीलाओं का चिन्तवन करके ही मेरे स्वरूप को प्राप्त होगई हैं इसकारण तुम भी मेरे चिन्तवन से ही निःसन्देह मेरे स्वरूप को प्राप्त होजाओगी ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजी का कहाहुआ सन्देशा सुनकर जिन को कृष्ण की लीलाओं का स्मरण आया है ऐसी वह तृप्त हुई गोपियें, उद्धवजी से कहनेलगीं ॥ ३८ ॥ गोपियों ने कहा कि—हे उद्धवजी ! यादवों को दुःख देनेवाला कृष्ण का शत्रु कंस, अपने भ्राताओंसहित जो मरण को प्राप्त हुआ तिस से हमें बड़ा आनन्द प्राप्तहुआ और पहिले की समान धन आदि सकल सम्पत्तियों को प्राप्त हुए वसुदेव आदि अपने सम्बन्धियों के साथ श्रीकृष्णजी अब आनन्दमङ्गल हैं यह वार्त्ता भी बड़े आनन्द की हुई ॥ ३९ ॥ अच्छा हे सौम्य उद्धवजी ! हम तुम से यह बूझती हैं कि—हमारे पहिले स्नेह युक्त और लज्जासहित हास्य से तथा उदार चितवन से सत्कार करेहुए भगवान् श्रीकृष्ण जी, हमारे ऊपर करनेयोग्य प्रीति,इससमय मथुरा की स्त्रियों के ऊपर करते हैं क्या?४० दूसरी कहने लगी कि-अरी यह क्या बूझो हो ! रतिसुख के सकल प्रकारों को जाननेवाले उत्तम स्त्रियों के प्रिय और तिन उत्तम स्त्रियों करके अपने भाषणों से तथा नानाप्रकार के विलासों से सत्कार करेहुए वह श्रीकृष्ण, उन में भला क्यों न आसक्त होंगे ? ॥ ४१ ॥ फिर और गोपी कहने लगीं कि—इस चिन्ता से हमें क्या करना है ? हे साधो ! पुरवासिनी स्त्रियों की सभा में यथेष्ट क्रीड़ा करने की वार्त्ता चलने पर वह श्रीकृष्ण, हम भोली ग्वालिनियों का कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ ४२ ॥ दूसरी कहनेलगी कि-गोकुल में रहते समय, चन्द्रमा का उदय होनेपर खिलनेवाले कमल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथाभिर्वृदावने कुमुदकुन्दशशांकरम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेंद्रो वनमंबुदैः ॥४४॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेंद्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ॥ श्रीपतेराप्तकामस्य "क्रियेतार्थः" कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो

कुन्द के पुष्प और चन्द्रमा के कारण सुन्दर प्रतीत होनेवाले वृन्दावन में चरणों में के नूपुरों की झनकारयुक्त रास की सभा में हम स्त्रियों के साथ भगवान् ने, जिन रात्रियों में क्रीड़ा करीथी और हमने उन की मनोहर कथाओं की स्तुति करी उन रात्रियों को कृष्ण कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ ४३ ॥ जैसे इन्द्र मेघों में से वर्षा करके सूखेहुए वन को सजीव करता है तैसे ही अपने मुख हाथ आदि अङ्गों के दर्शन स्पर्श आदि से, अपनी विरहाग्नि से तपीहुई हमें सजीव करतेहुए वह श्रीकृष्ण अब इस गोकुल में कभी आवेंगे क्या ? ॥ ४४ ॥ दूसरी बोलीकि—कृष्ण यहाँ क्यों आवेंगे ? पहिले वेवश होने के कारण वह यहाँ रहते थे, अब उन्हों ने राज्य पालिया, शत्रुओं का संहार करलिया, अब वह राजाओं की कन्याओं को वरकर स्त्रियों से युक्त और पिता-पुत्र आदि सकल सुहृदों से घिरेहुए हैं ॥ ४५ ॥ तब कितनी ही गोपियें तो परमार्थ वर्णन करती हुई कहनेलगीं कि—लक्ष्मी के पति पूर्णमनोरथ और निरन्तर पूर्णरूप तिन महात्मा भगवान् का जङ्गल में रहने वालीं हम से वा राजकन्याओं से कौनसा काम सधेगा ? ॥ ४६ ॥ जारकर्म करनेवाली पिङ्गलानामक वेश्या ने भी ऐसा कहाहै कि-आशा न करना ही परमसुख है और आशा करना ही परम दुःखहै,देखो—यह वात हम जानती हैं तथापि इन कृष्ण में हमारी दुर्निवार आशा लगरही है ॥४७॥ इस का कारण यह है कि—उन उत्तमश्लोक भगवान् की एकान्त में की वार्त्ता को छोड़देने को कौनपुरुष समर्थ होगा ? अर्थात् कोई नहीं होसक्ता; देखो वह भगवान् लक्ष्मी की कुछ भी इच्छा नहीं करते हैं तथापि उन के वक्षःस्थलरूप अङ्ग से वह लक्ष्मी कभी भी अलग नहीं होती है॥ ४८॥और कृष्ण का विस्मरण होजाय तो हमें कुछ भी दुःख न हो परन्तु वह विस्मरण ही तो नहीं होता है; क्योंकि हे प्रभो उद्धव ! बलरामसहित श्रीकृष्णजी के सेवन करेहुए और सुन्दरतारूप सम्पत्ति के आश्रय स्थान ऐसे श्रीकृष्णजी के चरणों से चिन्हित हुए यह-नदी, पर्वत और वन के स्थान तथा गौ और मुरली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥४९॥ पुनः पुनः स्मारयन्ति नंदगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः॥५०॥गत्या ललितयोदारहासलीलाऽवलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥५२॥ श्रीशुक उवाच॥ ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥५३॥ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावंत्यहानि नंदस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्त्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ताः नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंद एव

के शब्द वारंवार हमें उन नन्दकुमार का स्मरण कराते हैं इसकारण उन कृष्ण को भूलने की हम में शक्ति नहीं हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णजी का सुन्दर चलना, उदारहास्य, लीला के साथ देखना और मधुर बोलना इनसे बुद्धि के खिचने के कारण हम भला उनको कैसे भूलें? ॥ ५१ ॥ ऐसा कहकर भगवान् के विरह से होनेवाले दुःख के दूर करने को भगवान् ही समर्थ हैं ऐसा निश्चय करके कहने लगीं कि-हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे दुःखनाशक! हे गोविन्द! दुःख के समुद्र में डूबेहुए इस गोकुल का तुम ही उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन्! तदनन्तर उन से उद्धवजी ने फिर पहिले कहाहुआ ही श्रीकृष्णजी का सन्देशा कहा तब, यह श्रीकृष्ण हमारा आत्मा हैं ऐसा जानकर, विरह से उत्पन्न हुआ सन्ताप जिन का दूर होगया है ऐसी उन गोपियों ने, उद्धवजी की गुरुबुद्धि से पूजा करी ॥ ५३ ॥ फिर वह उद्धवजी गोपियों का शोक दूर करने के निमित्त कितने ही महीनेपर्यन्त गोकुल में रहे, तबतक उन्हों ने कृष्ण की लीलायुक्त कथाओं का गान करके सकल गोकुल को आनन्दित करा ॥ ५४ ॥ वह उद्धवजी जितने दिनों नन्दजी की गोकुल में रहे थे, गोकुलवासियों के उतने दिन, श्रीकृष्णजी की कथाके कारण क्षण की समान होगए ॥ ५५ ॥ उन भगवद्भक्त उद्धवजी ने, नदी, वन, पर्वत, पर्वतों की गुफा और फूलेहुए वृक्षों को देखकर तहां २ कृष्ण की लीलाओं के प्रश्न करके गोकुलवासी लोकों को कृष्ण का स्मरण कराकर आप भी आनन्द का अनुभव करा॥५६॥ पहिले कहने के अनुसार कृष्ण के विषैं मन का लय होने के कारण गोपियों को विह्वलता प्राप्त हुई देखकर परमप्रसन्न हुए वह उद्धव जी, उन गोपियों को नमस्कार करतेहुए उन की बड़ाई का इसप्रकार गान करनेलगे ॥ ५७ ॥ कि-अहो! इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियों ने ही अपने जन्म की सफलता करली है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥ केमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥ नायं श्रियोऽङ्ग उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनां ॥ यो दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥ या वै श्रिया-

क्योंकि यह गोपियें सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णजी के विषैं ही परमप्रेम करनेवाली हुई हैं; जिस परमप्रेम को संसार से डरनेवाले मुमुक्ष, मुक्त और हम भी चाहते हैं-क्योंकि-भगवान् की कथा में प्रेम रखनेवाले प्राणी की अपेक्षा ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होने से, गायत्री के उपदेश से और यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करने से प्राप्त होनेवाले शौक्र, सावित्र और याज्ञिक नामवाले तीनों प्रकार के जन्मों में अथवा ब्रह्मा के जन्म में भी कौन विशेषता है? अर्थात् किसी भी जाति का हो भगवान् की भक्ति करनेवाला ही श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥ और ईश्वर की प्रसन्नता होना ही बड़ाई का कारण है और वह प्रसन्नता तो जाति, आचार वा ज्ञान से नहीं होती है किन्तु केवल भजन से ही होती है; देखो जंगल में फिरनेवाली और व्यभिचार के दोष से दूषित हुई वह ग्वालिनियें कहाँ? और परमात्मा श्रीकृष्ण में जड़ाहुआ यह निश्चल प्रेम कहाँ? इस से ऐसा सिद्ध होता है कि-जैसे अमृत, सेवन करनेपर वह अपना प्रभाव न जाननेवाले भी प्राणी को अमर करता है तैसे ही सब कुछ करने को समर्थ प्रभु ईश्वर भी, अपना निरन्तर भजन करनेवाले अज्ञानी पुरुषों का आप ही कल्याण करते हैं अर्थात् उन को सर्वोत्तम फल देते हैं ॥ ५९ ॥ और यह गोपियों के ऊपर हुआ भगवान् का अनुग्रह तो अत्यन्त ही अपूर्व है, क्योंकि-रासक्रीड़ा में इन श्रीकृष्ण के भुजदण्डों से कण्ठ में आलिङ्गन होनेके कारण पूर्णमनोरथ हुई इन गोपियों को जो यह भगवान् का, प्रसाद मिला है सो, कमल की समान सुगन्ध और कान्तिवाली उर्वशी आदि अप्सराओं को भी नहीं मिला, अधिक तो क्या परन्तु, वक्षःस्थल में अनन्यभाव से रमण करनेवाली लक्ष्मी को भी प्राप्त नहीं हुआ, फिर दूसरी स्त्रियें नहीं पासक्तीं इस का तो कहना ही क्या? ॥ ६० ॥ अहो! उन गोपियों का भाग्य तो रहने दो, परन्तु मेरी उन प्रभु से यह प्रार्थना है कि-इन गोपियों के चरणों की रेणुको सेवन करनेवाली वृन्दावन में उत्पन्न हुई लता और औषधियों में से कोई मैं होऊँ, क्योंकि-जिन गोपियों ने, जिनका त्यागना कठिन है ऐसे अपने स्वजन और धर्ममार्ग को त्यागकर, श्रुतियों को भी जिस का मिलना दुर्लभ है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽर्चितमजादिभिराप्तिकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्यां ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥ वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च ॥ गोपानामंत्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मंगलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं संभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसां ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

ऐसा श्रीकृष्णजी की प्राप्ति का मार्ग स्वीकार करा है अर्थात् भगवत्परायण हुई हैं और जिन्होंने लक्ष्मी का भी पूजन कराहुआ तथा ब्रह्माजी का और पूर्णमनोरथ योगेश्वरों का भी अपने हृदय में चिन्तवन कराहुआ जो भगवान् का चरणकमल उस को रासमण्डल में अपने स्तनों पर रखकर और उस को आलिङ्गन करके अपना ताप दूरकरलिया है।६१।६२॥ जिन गोपियों का भगवान् की कथाओं का गाना, त्रिलोकी को पवित्र करता है उन नन्द के गोकुल में की स्त्रियों के चरणरेणु को मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेव जीने कहाकि—हे राजन्! तदनन्तर वह उद्धवजी, गोपियों की, यशोदा की, नन्दजी की, और गोपों की आज्ञा लेकर मथुरा के जाने को रथपर बैठे।६४।तब उनको जाने को उद्यत हुआ देखकर, नन्द आदि सकल गोप, बलरामकृष्ण के अर्पण करने के निमित्त नानाप्रकार की भेंट हाथ में लेकर बड़े प्रेमके साथ नेत्रों में से आँसू बहाते हुए कहनेलगे कि—॥ ६५ ॥ हे उद्धव तुम हमारे कृष्णतत्त्व को उपदेश करनेवाले गुरु हो इसकारण तुम से हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि हमारे मन की वृत्ति निरन्तर श्रीकृष्ण के चरणकमल का आश्रय करने वाली हों, हमारी वाणियें कृष्ण के नामों का उच्चारण करनेवाली हों और हमारा शरीर कृष्णको नमस्कार आदि करने में प्रवृत्त हो॥६६॥ईश्वर की इच्छा से कर्मवश देव मनुष्यादि किसी भी योनियों में भ्रमण करें परन्तु हमारे अन्य जन्मों में वा इस जन्म में करेहुए मङ्गल कारक कर्मों के वा दान के प्रभाव से कृष्णरूप ईश्वर में हमारी प्रीति हो ॥ ६७ ॥ हेराजन्! ऐसे श्रीकृष्णजी की भक्ति से गोकुलवासी लोकों के पूजा करेहुए वह उद्धवजी, फिर श्रीकृष्णजी की रक्षाकरी हुई मथुरा नगरी को लौटगए ॥ ६८ ॥ फिर श्रीकृष्ण, वसुदेव, बलराम और उग्रसेन को यथायोग्य नमस्कार करके उन्होंने, उनसे गोकुलवासी पुरुषों की भक्ति के आधिक्य का वर्णन करा और नन्द आदि की दीहुई सब भेंट अर्पण करी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इ० भा० म० द० पू० उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ १ ॥ महार्हपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितं ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपि मंडितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्सहसोत्थिता ॥ संभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखीभिरर्च्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिवीक्ष्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलास्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकण-

॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में सप्तचत्वारिंशअध्यायसमाप्त ॥ * ॥

अब आगे अड़तालीसवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने कुब्जा के साथ क्रीडा करी और अक्रूरजी के घर जाकर उन को हस्तिनापुर भेजा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तदनन्तर सर्वात्मा और सर्वदर्शी उन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, कामतप्त हुई कुब्जा का कामसन्ताप जानकर, उस का प्रिय करने के निमित्त उस के घर गमन करा ॥ १ ॥ वह उस का घर—बहुत मूल्य के पात्र आदिकों से युक्त, कामशास्त्र में कहेहुए कामोद्दीपक पदार्थों से बढ़ाहुआ और मोतियों की माला-ध्वजा-कपड़छत-शय्या-कोमल आसन अगर के धूप-मणियों के दीपक-फूलों की माला और चन्दन के लेप आदि से शोभित था ॥ २ ॥ घर आनेवाले उन श्रीकृष्णजी को देखते ही घबड़ाई हुई वह कुब्जा, आसनपर से उठकर, सखियों के साथ यथायोग्य रीति से सन्मुखजाकर उसने श्रीकृष्णजीकी, उत्तमप्रकारसे आसन, पाद्यआदि सामग्री समर्पणकरके पूजाकरी ॥ ३ ॥ तैसे ही उद्धवजी का भी उस ने उत्तम प्रकार से पूजन करा सो वह आसन को स्पर्श कर के भूमिपर ही बैठगये, तदनन्तर लोकरीति का वर्त्ताव करनेवाले श्रीकृष्णजी ने भी, नवीन (जिस के ऊपर पहिले किसी ने भी शयन नहीं करा ऐसे) बहुत मूल्य के पलँगपर प्रवेशकरा ॥ ४ ॥ तब वह कुब्जा भी स्नान करना, अङ्ग को उबटन लगाना, उत्तम वस्त्र पहिरना, भूषण और माला धारण करना, ताम्बूल और अमृत की समान मधुर मदकारी वस्तु का सेवन करना इत्यादि प्रकारों से भगवान् के साथ क्रीडा करने को अपने शरीर को सम्हालकर, लज्जायुक्त मन्द हास्य और विलास के साथ देखतीहुई श्रीकृष्णजी के समीप आई ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी के नवीन समागम के कारण लज्जा से स्वयं समीप आने में लज्जायुक्त हुई तिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया॥६॥ साऽनंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रत्यनंतचरणेन रुजो मृजन्ती ॥ दोर्भ्यां स्तनांतरगतं परिरभ्य कांतमानंदमूर्त्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोप्यतामिहे प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं ते वुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै कामवरं दत्वा मानयित्वा च मानदः ॥ सं-होद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः॥किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२॥

कुब्जा को श्रीकृष्णजी ने अपने समीप बुलाकर उस के कङ्कणों से भूषित हाथ को पकड कर शय्यापर बैठाया और उस के साथ क्रीडा करी, चन्दन का लेपन करने के सिवाय जिस का दूसरा कोई भी पुण्य नहीं था, उस कुब्जा का देखो कितना भाग्य है ! ॥ ६ ॥ तदनन्तर अनन्तशक्ति श्रीकृष्णजी के चरणों की सुगन्ध ही सूँघती है मानो, ऐसी तिस कुब्जा ने, मदन से तप्तहुए अपने स्तन, वक्षःस्थल और नेत्रों में उन के चरणों को रख कर तिस से अपने स्तनादि की कामपीडा दूर कर के, स्तनों के मध्यभाग में प्राप्तहुए उन आनन्दमूर्त्ति अतिप्रिय श्रीकृष्णजी के भुजाओं से आलिङ्गन कर के अपना बहुत दिनों का ताप दूर करा ॥ ७ ॥ अहो ! इसप्रकार चन्दन का लेपन अर्पण करने से ही उन दुष्प्राप्य भी, मोक्ष के स्वामी श्रीकृष्णजी को पाकर भाग्यहीन भी वह कुब्जा उन से यह याचना करनेलगी कि–॥ ८ ॥ हे अतिप्रिय कमलनयन ! तुम्हारा सङ्ग छोडने को मैं उत्साह नहीं कर सक्ती हूँ इसकारण कुछ दिनोपर्यन्त तुम मेरे साथ क्रीडा करो और इस मेरे घर में ही रहो ॥९॥ इसप्रकार याचना करेहुए भक्तों का सन्मान करनेवाले वह सर्वेश्वर श्रीकृष्णजी,उस को इच्छित वर देकर और कुछ दिनों पर्यंत उस के घर रहकर, वस्त्र भूषण आदि देने से उसका मनोरथ पूराकरके फिर उद्धवजी के साथ सकल सम्पदायुक्त अपने घरको लौटआये ॥ १० ॥ उस कुब्जा की तो बात ही क्या ? परन्तु और भी जो कोई पुरुष, भक्ति के बिना सहस्रों उपायों से भी आराधनाकरने में कठिन और ब्रह्मादिकों के भी ईश्वर तिन सर्वेश्वर विष्णुभगवान् की आराधना करके उन से मिथ्याभूत और तुच्छ विषय सुख को मांगता है उस को कुबुद्धि समझना चाहिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर एकदिन अक्रूरजी को हस्तिनापुर में भेजने के निमित्त और अक्रूरजी का भी प्रिय करने के निमित्त वह श्रीकृष्णजी बलराम और उद्धवजी के साथ अक्रूरजी के घर गये ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स तान्नरवरश्रेष्ठानारादीक्ष्य स्वबांधवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥१३॥ ननाम कृष्णं रामं च सं तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥१४॥ पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप ॥ अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गंधस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसानम्य पादावंकगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम्॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ॥१७॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना ॥ एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः

तब श्रेष्ठमनुष्यों में भी श्रेष्ठ आयेहुए अपने २ बान्धवरूप बलरामकृष्णको दूरसेही देखकर हर्ष युक्तहुए उन अक्रूरजी ने, बड़ी शीघ्रता से उठकर उन को आलिङ्गन करा और उन केआने का धन्यवाद करके उन बलराम कृष्ण को प्रणाम करा,तदनन्तर उन तीनों ने भी पलटे में उन अक्रूरजी को अभिवन्दन करा तब उन अक्रूरजी ने आसनपर बैठाएहुए उन की विधिपूर्वक पूजा करी ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उन के चरणों की धोवन का जल मस्तक पर धारण करनेवाले, उन अक्रूरजी ने उन का, अर्घ्य आदि सामग्री, दिव्य वस्त्र, माला और उत्तम भूषणों से पूजन करके तथा मस्तक से नमस्कार करके गोदी में रक्खे हुए उन के चरण की सेवा करनेवाले और नम्रतायुक्त वह अक्रूरजी, कृष्ण–बलराम से कहने लगे कि–॥ १५ ॥ १६ ॥ तुम ने मल्ल आदिकोंसहित पापी कंस को मारा यह बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई.यह तुम्हारा कुल, तुम ने अपार दुःख से बाहर निकाला इसकारण वृद्धि को प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ तुम जगत् के कारण और जगन्मय प्रकृति–पुरुषरूप हो, तुम्हारे सिवाय दूसरा कारण वा कार्य कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मस्वरूप !अपनी रजोगुण आदि शक्तियों से आप ही उत्पन्न करेहुए इस जगत् में तुम कारणरूप से होने के कारण प्रविष्ट न होकर भी प्रवेश करेहुए से प्रतीत होकर,देखने में और सुनने में आने वाले पदार्थों के स्वरूप से नानाप्रकार के भासते हो ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारण, रूपान्तर से अपने ही प्रकट होने के स्थान चराचर प्राणीमात्र में कारणरूप से पहिले हो कर भी तदनन्तर प्रविष्टहुएसे होकर कार्यरूप से अनेकप्रकार के भासते हैं तैसे, ही स्वतन्त्र आत्मा तुम, आप ही कारण हुए सकल भूतभौतिक कार्यों में तिस २ स्वरूप से भासते हो ॥ २० ॥ तुम ही अपनी शक्तिरूप रजःसत्त्वतमोगुणों से जगत् की उत्पत्ति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदात्मनः स्यात् ॥ अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्त्ति ॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञामपुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यैः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्त्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज यां प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं स-

स्थिति, संहार करते हो तथापि उन गुणों से और कर्मों से बँधते नहीं हो, क्योंकि- ज्ञानरूप तुम में बन्धन की कारण होनेवाली अविद्या कहां है ? ॥ २१ ॥ तुम्हें बन्धन होने की शङ्का भी नहीं यह तो अलग रहा परन्तु अविद्योपाधिक जीवात्मा को भी वास्तव में जन्म और जन्म के कारण भेदभाव यह दोनों किंचिन्मात्र भी नहीं हैं, क्योंकि—देहादिक उपाधियों का किसी भी प्रकार से निरूपण करने में नहीं आता, अब बन्धन नहीं है ऐसा कहनेवाला तू मोक्ष को स्वीकार करता है क्या ? ऐसा कहो तो सुनो—बन्धन के बिना मोक्ष कैसा ? तब क्या बन्धन प्राप्त होना ही चाहिये ? ऐसा कहो तो सुनो—आप को अविद्या न होने के कारण बन्धन वा मोक्ष दोनों ही नहीं हैं; यदि कहो कि-तूने तो मुझे ऊखल में बँधाहुआ सुना है और यमुना के कुण्ड में से मुक्त होते हुए भी देखा है फिर बंध मोक्ष नहीं हैं ऐसा क्यों कहता है यदि ऐसा कहो तो सुनो—हमारी समझ में तुम्हें बन्ध-मोक्ष हैं ऐसा प्रतीत होता है परन्तु वह केवल हमारा अज्ञान ही है ॥ २२ ॥ तो मेरे अवतार और चरित्र सब ही कल्पित हैं क्या ? नहीं २ वह तो तुम्हारी लीला है, क्योंकि—जगत के हित के निमित्त तुम्हारा कहाहुआ जो यह पुरातन वेदमार्ग है सो जब २ दुष्ट पाखंड मार्गों से पीडित होता है तब २ तुम अपना शुद्ध सतोगुणी अवतार धारण करते हो॥२३॥ हे प्रभो ! वही तुम अब दैत्यों के अंशभूत कंसादि राजाओं की सैंकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं के वध से भूमि का भार दूर करने के निमित्त और यादवकुल के यश को फैलाने के निमित्त इस भूलोक में वसुदेवजी के घर अपने अंशभूत बलरामजी के साथ अवतरे हो ॥ २४ ॥ हे अधोक्षज ईश्वर ! जो तुम पंचमहायज्ञ के देवता, पितर, भूत और राजाओं के रूप से बने हो और जिन के चरण को धोने का जल (गङ्गा) त्रिलोकी को पवित्र करता है ऐसे जगद्गुरु तुम ने जिन में प्रवेश करा है वह हमारे घर आज तपोवनों से भी अधिक भाग्यवान् हैं अर्थात् अत्यन्त पवित्र हुए हैं ॥ २५ ॥ अब मेरा मनोरथ पूराहुआ ऐसा संतोष मानते हुए कहते हैं कि—हे प्रभो ! भक्तप्रिय, सत्यवक्ता, सर्वों के हितकर्त्ता और भक्तों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीर्यांद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान् ददाति सुहृदो भजतो-ऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिंध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायां ॥२७॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शना-

की करीहुई भक्ति को जाननेवाले तुम्हें छोड़कर बुद्धिमान् पुरुष दूसरे किस की शरण जायगा ? क्योंकि–तुम, भक्ति करनेवाले भक्त को उस की इच्छानुसार सब ही पुरुषार्थ देते हो, अधिक तो क्या परन्तु तुम अपने को भी उन के वश में करते हो, ऐसा करने का कारण यह है कि–तुम्हारी उन्नति अवनति कुछ नहीं होती है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! सनकादिक योगेश्वरों को और इन्द्रादिक देवेश्वरों को भी जिन के स्वरूप का ज्ञान दुर्लभ है ऐसे तुम, मुझ अविवेकी के घर प्रत्यक्ष आकर प्राप्त हुए हो, इसकारण मुझे बड़ा आनन्द हुआ; अब, पुत्र, स्त्री, धन, माता–पिता, घर और देह आदि के ऊपर मेरी यह मोहपाशरूप तुम्हारी माया है तिस को तुम शीघ्र नष्ट करो ॥ २७ ॥ इसप्रकार भक्त अक्रूरजी के पूजा करेहुए और स्तुति करेहुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मन्दहास्य के साथ वार्त्तालापों से अक्रूरजी को मोहित करते हुए से कहनेलगे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–तुम हमारे निरन्तर हित करनेवाले और काका होने के कारण हमारे प्रशंसा करने योग्य हो, हम तो तुम्हारे बालक हैं इसकारण तुम करके, शत्रु आदिकों से रक्षा करने को, पोषण करने को और दया करने को योग्य हैं ॥ २९ ॥ तुम्हारी समान महाभाग जो अत्युत्तम पुरुष हैं वही कल्याण की इच्छा करनेवाले मनुष्यों के सेवा करनेयोग्य हैं यदि कहो कि–मनुष्यों को तो देवताओं की सेवा करना प्रसिद्ध है तो सुनो–देवता स्वार्थी होने के कारण साधु नहीं हैं, साधु तो केवल दूसरों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले ही हैं, परमार्थदृष्टि से देखाजाय तो साधु ही यथार्थ देवता हैं उनकी ही सेवा करे ॥ ३० ॥ तो क्या पाषाण आदि की मूर्त्तियों के अधिष्ठात्री देवता ही नहीं हैं ? यदि ऐसा कहो तो सुनो-जलमय तीर्थ नहीं ऐसा नहीं है और मृत्तिकापाषाणमय देवता नहीं ऐसाभी नहीं है निःसन्देह वह तीर्थ तथा वह देवता हैं परन्तु उनमें और साधुओं में बड़ा अन्तर है–वह तीर्थ और वह देवता तो बहुत समयपर्यन्त सेवा करने से पवित्र करते हैं और साधुपुरुष दर्शनमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान श्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छ स्वं त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषु राजांऽविकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्त्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधुषु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वं भवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द० पू० अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ॥ ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथां ॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमं ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गोदिनीसुतः ॥ संपृष्ट-

से ही पवित्र करदेते हैं ॥ ३१ ॥ सो तुम वैसे साधु और हमारे सब ही सुहृदों में श्रेष्ठ हो; इसकारण पाण्डवों का कल्याण करने की इच्छा से उन का वृत्तान्त जानने के निमित्त तुम हस्तिनापुर को होआओ ॥ ३२ ॥ पिता (राजापंडु) के मरण को प्राप्त होने पर वह युधिष्ठिर आदि बालक, राजा धृतराष्ट्र के अपने हस्तिनापुर में लायेहुए तहाँ अपनी कुन्ती माता के साथ अतिदुःख से रहते हैं ऐसा हमने सुना है ॥ ३३ ॥ क्योंकि—वह धृतराष्ट्र अन्धा, कृपणबुद्धि और अपने दुर्योधन आदि कुपुत्रों के वश में होनेके कारण उन पाण्डवों में अपने पुत्रोंकासा ठीक वर्त्ताव नहीं रखता है ॥ २४ ॥ इसकारण तुम हस्तिनापुर में जाकर इससमय उस धृतराष्ट्र का पाण्डवों के विषय में वर्त्ताव उत्तम रीति का है वा दुष्टभाव का है यह जानकर चलेआओ तब समझकर जैसे उन सुहृदों को सुख मिलेगा सो कियाजायगा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वह भगवान् ईश्वर श्रीकृष्णजी अक्रूरजी को आज्ञा देकर फिर उद्धव और बलरामजी के साथ अपने घर को चलेगये ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे उनञ्चासवें अध्याय में अक्रूरजी हस्तिनापुर को जाकर धृतराष्ट्र की अपने भ्राता के पुत्रों में भेदबुद्धि है ऐसा देखकर फिर मथुरापुरी में लौटकर आगये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! तदनन्तर वह अक्रूरजी, कुरुकुल में श्रेष्ठ राजाओं के यशों से अर्थात् उन के बनवाये हुए देवताओं के और ब्राह्मणों के गृहादिकों से चिन्हित तिस हस्तिनापुर में जाकर, तहां धृतराष्ट्र, भीष्मजी, विदुर और कुन्ती से मिले ॥ १ ॥ तैसे ही बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डव और दूसरे भी सुहृदों से यथायोग्य रीति से मिलकर तिन बान्धवों ने अपने बन्धुओं का (यादवों का) कुशलक्षेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तैः सुहृद्भिर्त्तो स्वयं चोपृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्यालसारस्य खलच्छन्दानुवर्त्तिनः ॥ ४ ॥ तेजओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न संहृद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कुन्ती च धार्त्तराष्ट्रैर्यद्रदानाद्यपशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवा स्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वस्रेयान् स्मरति रामश्चांबुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीं ॥ ११ ॥ नान्य-

बूझा तब उन अक्रूरजी ने भी उन से आरोग्य आदि कुशलक्षेम बूझा ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस हस्तिनापुर में वह अक्रूरजी, धृतराष्ट्र का वर्त्ताव जानने की इच्छा से कई मास पर्यन्त रहे; क्योंकि—वह धृतराष्ट्र, दुष्टपुत्रवाला, मन्दबुद्धि और कर्ण आदि दुष्टों की इच्छानुसार वर्त्ताव करनेवाला था ॥ ४ ॥ अक्रूर जो तहाँ बहुत दिनो पर्यन्त रहे सो तहाँ-पाण्डवों की शत्रुओं को जीतने की शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति, शरीर का बल, शूरता और नम्रता आदि उत्तम गुणों को तथा उन के ऊपर जो प्रजा का प्रेम था तिस को न सहनेवाले दुर्योधनादिकों ने जो विष देना आदि दुष्ट कर्म करा था और उन के मन में जो लाख के स्थान में बन्द करके मारडालने का विचार था सो सब ही उन अक्रूरजी से कुन्ती ने और विदुर जी ने स्पष्टरूप से कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस कहने से पहिले का कुन्ती का यह वृत्तान्त है कि—मेरे भ्राता अक्रूर आये हैं ऐसा सुनकर कुन्ती, उन के समीप गई और अपनी जन्मभूमि का स्मरण करती हुई नेत्रों में दुःख के आँसू भरकर कहनेलगी कि—॥ ७ ॥ हे सौम्य अक्रूर ! मेरी माता, पिता, भ्राता, बहिन, भाई के पुत्र, कुल की स्त्रियें और सखियें यह सब मुझे स्मरण करती हैं क्या ? ॥ ८ ॥ तथा भक्तों के ऊपर दया करनेवाले और शरण जाने योग्य मेरे भ्राताके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण और कमलनेत्र बलराम, यह दोनो, अपनी बुआ के पुत्र धर्मराज आदि का स्मरण करैं हैं क्या ? ॥ ९ ॥ मैं तो, जैसे भेड़ियों में पड़ीहुई हिरनी शोकाकुल होती है तैसे इन शत्रुओं में पड़ीहुई शोक में डूबी रहती हूँ ; इसकारण वह श्रीकृष्ण, मुझे और इन पिताहीनहुए बालकों को धीरज बँधावेंगे क्या ? ॥ १० ॥ इस प्रकार अक्रूरजी से कहकर, प्रेम के वेग से भगवान् मेरे समीप ही हैं ऐसा मानकर उन की प्रार्थना करती है कि—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे जगदात्मन् ! हे जगत्पालक ! हे गोविन्द ! बालकोंसहित क्लेश पानेवाली और तुम्हारी शरण में आईहुई मेरी तुम रक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्तं पदांभोजात्पश्यामि शरणं नृणां ॥ त्रिभ्यंतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सांत्वयामासतुः कुंतीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच ॥ भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धन ॥ भ्रातर्युपरते पांडौ बन्धुनासंनमास्थितः १७॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रंजयन् ॥ वर्त्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्त्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्त्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चोत्पत्तसंवासः क-

करो ॥ ११ ॥ हे प्रभो! मृत्युसंसार से डरनेवाले प्राणियों को मोक्ष देनेवाले तुम ईश्वर के चरणकमल के सिवाय दूसरा रक्षा करनेवाला कोई भी मैं नहीं देखती हूँ ॥ १२ ॥ इसकारण धर्ममूर्त्ति, अपरिच्छिन्नरूपी, जीवों के सखा, अणिमादि सम्पत्तियुक्त और ज्ञानात्मा तुम कृष्ण को नमस्कार करतीहुई मैं शरण आई हूँ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इसप्रकार स्वजनों का और जगदीश्वर कृष्ण का स्मरण करके उन के वियोग आदि से दुःखित हुई वह तुम्हारी परदादी कुन्ती, अन्त में रुदन करने लगी॥१४॥ तब उस कुन्ती की समान ही जिन का दुःख और सुख है ऐसे अक्रूरजी और महायशस्वी विदुरजी इन दोनो ने,तेरे और माद्रीके यह पुत्र-धर्म,वायु,इंद्र और अश्विनीकुमारोंसे उत्पन्न हुए हैं सो महापराक्रमी हैं इसकारण तू कुछ खेद मत कर, ऐसा कहकर उस कुन्ती को समझाया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन अक्रूरजी ने, मथुरा को जाते समय, भीष्म आदि बन्धुओं की सभा में बैठेहुए और अपने पुत्रों के ऊपर ही प्रेम बुद्धि रखकर पाण्डवों में भेदबुद्धि रखनेवाले उन राजा धृतराष्ट्र के समीप जाकर, उन से कृष्ण बलराम आदि बान्धवों ने जो प्रेम के साथ कह दिया था सो कहसुनाया ॥ १६ ॥ अक्रूरजी ने कहा कि-हे कौरवों की कीर्त्ति बढ़ानेवाले विचित्रवीर्यनन्दन! धृतराष्ट्र! तुम पाण्डुराजा के (भ्राता के) मरण को प्राप्त होने पर पुत्रों के विद्यमान होते हुए भी इस सिंहासन पर बैठे हो ॥ १७ ॥ सो तुम, धर्म से पृथ्वी का पालन करते हुए और अपनी सुशीलता से प्रजाओं को आनन्दित करतेहुए, पण्डु के पुत्र और अपने पुत्रों में समानभाव से वर्त्ताव रक्खोगे तो कल्याण और कीर्त्ति पाओगे ॥ १८ ॥ नहीं तो (इस के विपरीत वर्त्ताव करोगे तो) इस लोक में मनुष्य तुम्हारी निन्दा करेंगे और परलोक में नरक को जाओगे इसकारण तुम पाण्डव के और अपने पुत्रों में एक समान वर्त्ताव रक्खो ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिंचित्केनचित्सह ॥ राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलौनीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति योनधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिन्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्ममविमुखस्तमः ॥ ॥ २४ ॥ तस्माल्लोकेमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्यायमात्मनात्मानं समः शांतो भव प्रभो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथा वदति क-

यदि कहो कि-अपने पुत्रों के ऊपर और दूसरे के पुत्रों के ऊपर समानभाव कैसे हो सक्ता है ? तो सुनो-हे राजन् ! इस लोक में किसी भी जीवात्मा का किसी भी पुत्र आदि के साथ निरन्तर एक स्थान पर सहवास नहीं होसक्ता ; अपने इस परमप्यारे देहके साथ भी 'निरन्तर सहवास' नहीं रहसक्ता, फिर स्त्रीपुत्रादिकों के साथ रहने का तो पता ही क्या ? ॥ २० ॥ देखो यह जीव इकला ही जन्म लेता है, स्त्री पुत्रादिकों के साथ जन्म नहीं लेता है, और इकला ही मरता है, स्त्री पुत्रादिकों के साथ नहीं मरता है; तैसे ही पुण्य का फल सुख इकला ही भोगता है और पाप का फल दुःख भी इकला ही भोगता है ॥२१॥ और जिससमय स्त्रीपुत्रादि इसके साथ होते हैं उससमय भी, विचार करनेपर,वह स्त्री-पुत्र-आदि शत्रु ही हैं ;क्योंकि-वह हम पोषण करनेयोग्य हैं ऐसा बहाना दिखाकर इसमूढ़बुद्धि पुरुषका अधर्मसे पायाहुआ धन,जैसे मच्छके जीवित रहने के साधन जल को उस के स्त्री-पुत्रादि हरलेते हैं तैसे ही हरलेते हैं ॥ २२ ॥ और यह अपने हैं ऐसा मानकर,जिन का अधर्म करके पोषण करताहै ऐसे यहप्राण,धन और पुत्र स्त्री आदि भी पूर्णमनोरथ न हुए तिस को, (मरण को प्राप्त होने पर वा जीवितदशा में ही) छोड़कर चले जाते हैं ॥ २३ ॥ फिर स्वार्थ के विषय में मूढ़, अपने धर्म से भ्रष्ट और मनोरथ पूर्ण होने से पहिले ही स्त्री-पुत्रादिकों का त्यागाहुआ वह पुरुष, आप ही उन के पोषण के निमित्त करेहुए पापमात्र को लेकर अन्धतामिस्र आदि नरकों में जाता है ॥ २४ ॥ इसकारण हे प्रभो राजन् ! यह पुत्रादिकों के ऊपर आसक्ति होना अनर्थ का कारण है, इसकारण धन-पुत्रादिसहित यह लोक, स्वप्न माया वा मनोरथ की समान अनित्य है ऐसा देखकर अपनी बुद्धि से ही अपने मन को वश में करके तुम शान्त और सब में समानभाव रखनेवाले रहो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र ने कहा कि—हे दानपते अक्रूरजी !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ल्याणीं वाचं दानपते भवान ॥ तथाऽनया नं तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥ ॥ २६ ॥ तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि नं स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावतराय यो वतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे पू० एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ * ॥ * ॥

तुम जो कल्याणकारी वचन कहते हो उन तुम्हारे वचनों से, जैसे मरनेवाला प्राणी, अमृत भोजन करके भी तृप्त नहीं होता है तैसे ही मैं भी तृप्त नहीं होता हूँ अर्थात् तुम्हारे इस कथन को पर्याप्त नहीं मानता हूँ ॥ २६ ॥ तथापि हे सौम्य! यह तुम्हारी मधुर और हितकारक वाणी पुत्रों के प्रेम से भेदभावयुक्त होकर चञ्चल हुए मेरे हृदय में, जैसे स्फटिकमय सुदामा पर्वत पर चमकनेवाली बिजली स्थिर नहीं रहती है किन्तु तत्काल नष्ट होजाती है तैसे ही स्थिर न होकर व्यर्थ होती है ॥ २७ ॥ अच्छा ऐसा जानतेहुए भी तुझे ऐसा मोह क्यों होरहा है? यदि ऐसा कहो तो सुनो-ईश्वर के मन में जो करना होगा उस के पलटने को कौन पुरुष समर्थ होसक्ता है ? कोई नहीं; जो ईश्वर भूमि का भार उतारने के निमित्त यदु के कुल में श्रीकृष्णरूप से अवतरे हैं ॥ २८ ॥ जो अपनी अतर्क्य माया से इस सकल जगत् को उत्पन्न करके उस में अन्तर्यामिरूप से प्रविष्ट होतेहुए सकल प्राणियों को कर्म और उन कर्मों के भिन्नभिन्न फल देते हैं और समझने में न आनेवाली अपनी क्रीड़ा से ही उत्पन्न हुए संसारचक्र को फिराते हैं तिन परमेश्वर को नमस्कार हो ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार उन अक्रूरजी ने, राजा धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानकर पाण्डवों के मथुरा को जानेकी आज्ञा देनेपर फिर मथुरापुरी को गमन करा ॥ ३० ॥ हे राजन्! तदनन्तर जिसके निमित्त (धृतराष्ट्र का वर्त्ताव जानने के निमित्त) भगवान् ने स्वयं उन अक्रूरजी को भेजा था वह पाण्डवों के विषय में धृतराष्ट्र का विष देना आदि सब वृत्तान्त, उन्हों ने बलरामकृष्ण से कहा ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में एकोनपंचाश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दशमस्कन्धे पूर्वार्धं समाप्तिमगमत् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ दशमस्कन्धोत्तरार्द्धप्रारम्भः

श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्त्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः॥

॥ ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ अब आगे पंचासवें अध्याय में, जरासन्ध के भय से ही मानो श्रीकृष्णजी ने समुद्र में द्वारका नगरी बनवाकर उस में अपने सब यादवों को पहुँचादिया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीकृष्णजी ने पूतना केशी आदि कपटी दैत्यों को कपट से अनायास में ही जीतलिया,वह सब वृत्तान्त पूर्वार्द्ध में कहकर अब अपने को धर्मात्मा कहने वाले जरासन्ध को धर्म से ही जीता यह कथा वर्णन करने के निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे भरतकुल में श्रेष्ठ राजन्! अस्ति और प्राप्तिःनामवाली कंस की दो स्त्रियें थीं, वह पति (कंस) के मरण को प्राप्त होने पर दुःख से पीड़ित हो पिता (जरासन्ध) के घर चलीगईं ॥ १ ॥ और दुःखित हुई उन दोनो ने, अपना पिता मगध देश का राजा जो जरासन्ध उस को अपने विधवा होने का कारण (कृष्ण चरित्र) आदि से अन्तपर्यन्त कह सुनाया ॥२॥ हे राजन्! उस ने तिस अप्रिय वार्त्ता को सुनकर, कंस के विषय में शोक और श्रीकृष्ण के विषय में क्रोध के आवेश से युक्त होकर, पृथ्वी को यादवों से रहित करने का बड़ाभारी उद्योग करा ॥ ३ ॥ उद्योग से मिलीहुई बीस अक्षौहिणी और अपनी तीन अक्षौहिणी इसप्रकार सब तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर उस ने यादवों की राजधानी जो मथुरा तिस को चारों ओर से घेरालिया॥४॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने, मर्यादा को लांघनेवाले समुद्र की समान जिधर तिधर को फैली हुई उस की सेना को देखकर और उस के नगर को घेरलेने के कारण भयभीत हुए अपने कुटुम्बियों को देखकर—॥ ५ ॥ भूमि का भार उतारने को मनुष्य हुए तिन भगवान् श्रीहरि ने, इस देश में और इस काल में उचित मेरे अवतार का क्या प्रयोजन है?अर्थात् इस सेना का वध करके जरासन्ध को छोड़दूँ अथवा जरासन्ध को मारकर सेना को अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितं ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजां ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ॥ मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संश्रियते मया ॥ विरामार्थाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविंदे आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारम-

हाथ में करलूँ अथवा जरासन्धसहित सब सेना को मारडालूँ इस विषय का चिन्तवन करके निश्चय करा कि-॥ ६ ॥ पृथ्वी का भाररूप इस सेना का ही वध करूँगा, क्योंकि जरासन्ध, अपने अधीन सब राजाओं के सिपाही, घोड़े, रथ और हाथियों की तेईस अक्षौहिणी सेना को इकट्ठा करके यहां लाया है; जरासन्ध को तो मारूँ नहीं, छोड़ दूँ तो वह फिर दुष्टों की सेना इकट्ठी करने का उद्योग करेगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ इस निमित्त ही अर्थात्-भूमि को भार हरने के निमित्त, साधुओं की रक्षा करने के निमित्त तथा दुष्टों का वध करने के निमित्त मैंने यह अवतार धारण करा है॥ ९॥ केवल यही अवतार धारण नहीं करा है किन्तु और भी शरीर (अवतार) धर्म की रक्षा के निमित्त और किसी समय वृद्धि को प्राप्तहुए अधर्म को दूर करने के निमित्त मुझे धारण करनेपड़ते हैं ॥१०॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी के विचार करते हुए उसीसमय सारथीसहित और ध्वजा-कवच आदि सामग्रीसहित, सूर्यकी समान तेजवाले दो रथ आकाश में से नीचे उतरकर बलराम कृष्ण के समीप आपहुँचे ॥११॥ तथा पुरातन के चक्र-गदा आदि दिव्य शस्त्र अकस्मात् उनरथों के साथ ही स्वयं तहाँ आपहुँचे, तब उन को देखकर श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजी से कहनेलगे ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि-हे आर्य प्रभो! तुम जिन के रक्षक हो उन यादवों को, जरासन्ध ने अपनी सेना से घेरलिया है इस से यह कैसा दुःख आपड़ा हैं; देखो यह तुम्हारे निमित्त रथ आया है तथा तुम्हें प्रिय लगनेवाले यह हल-मूसल आदि आयुध भी आये हैं ॥ १३ ॥ इस से इस रथपर बैठकर इस सेना को मारडालो, और अपने यादवों का सङ्कट से उद्धार करो इस निमित्त ही हमदोनों का जन्म होकर वह दुष्टोंका दमन करके साधुओं को सुख देनेवाला है ॥ १४ ॥ सो यह तेईस अक्षौहिणी सेनारूप भूमि का भार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाकुरु ॥ एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभृत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युद्ध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थंते दर्शयंत्येव पौरुषं ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसावृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्याग्नीलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिन्हितौ रथावलक्ष्यमाणौ हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः

दूर करो, इसप्रकार परस्पर सम्मति करके वह बलराम—कृष्ण कवच धारण कर रथ पर चढे और शङ्खचक्र आदि अपने आयुधों से युक्त तथा थोड़ीसी चतुरङ्ग सेना को चारोंओर लेकर उस मथुरा नगरी से बाहर निकले तब जिनका दारुक नामवाला सारथी है ऐसे श्रीकृष्णजी ने, नगर से बाहर निकलते ही पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस शंख के शब्द से जरासन्ध की सेना के हृदय में भय के मारे कपकपी उत्पन्न होगई, तब उन बलराम-कृष्ण को देखकर जरासन्ध कहनेलगा कि—हे कृष्ण ! हे पुरुषाधम ! तुझ इकले बालक के साथ मैं लज्जा के कारण युद्ध करने की इच्छा नहीं करता हूँ, हे मन्दबुद्धे ! हे मामा का वध करनेवाले ! स्वजनों को केवल प्रेम से ही रक्षा करनेयोग्य तेरे साथ मैं युद्ध करता ही नहीं इसकारण तू पीछे को लौटजा ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसा कृष्ण से कहकर बलरामजी से कहने लगा कि—हे राम ! तुझे यदि मेरे साथ युद्ध करने की श्रद्धा होय तो युद्ध कर परन्तु धीरज धर, मेरे बाणों से छिन्न-भिन्न हुए शरीर को त्यागकर स्वर्ग को जा अथवा बलवान् होय तो मेरा वध कर ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि - हे राजन् ! शूर पुरुष अपनी प्रशंसा नहीं करते हैं किन्तु स्तुति का कारण अपना पराक्रम ही दिखाते हैं; तू जो सन्निपात वाय आये हुए पुरुष की समान आतुर होरहा है तिससे यह तेरा अपनी प्रशंसा का भाषण हम नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हेराजन् ! इसप्रकार कहेहुए उस जरासन्ध ने, सेना, रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथियों के साथ आयेहुए उन बलराम-कृष्ण के समीप में आकर अपनी बलवती बड़ीभारी सेना के समूह से उन को, जैसे वायु, मेघ और धूलि से सूर्य और अग्नि को ढकदेता है तैसे ढकदिया ॥ २१ ॥ उससमय नगर में की ऊपर की अटारी महल और बाहर के द्वारों पर बैठीहुई स्त्रियें, युद्ध की भूमि में गरुड़ध्वज और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचा मुहुः शिलीमुखोत्पुल्व-णवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुराऽर्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्त-मम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुंचन् शितबाणपूगान् ॥ निघ्नन् रथान्कुंजरवाजिपत्तीन्निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकु-म्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूत-नायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवा-जिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगा-युधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परं ॥ वि-

तालध्वज इन चिन्हों से युक्त बलराम-कृष्ण के रथों को न देखने के कारण शोक से व्याप्त होकर मूर्छित होगई ॥२२॥ तब श्रीकृष्णजी ने, शत्रुकी सेनारूप मेघों की वारंवार होने-वाली बाणरूप अतिभयानक वर्षा से पीड़ित हुई अपनी सेना को देखकर, देवदैत्यों करके श्रेष्ठ मानकर सन्मान करेहुए अपने शार्ङ्ग नामवाले श्रेष्ठ धनुष का टङ्कार शब्द करा ॥ २३॥ तदनन्तर तरकस में से बाणों को लेतेहुए और उनको रोदेपर चढ़ातेहुए तथा रोदेको खेंचकर उन तीखे बाणों के समूह को छोड़तेहुए और उन बाणों से, रथ, हाथी, घोडे, तथा पैदलों को मारतेहुए श्रीकृष्णजी ने, जैसे जलतेहुए काठ को घुमाने पर वह चक्राकार होजाता है तैसे उस धनुष को एकसमान अपने हाथ में घुमाया ॥ २४ ॥ उससमय गण्डस्थल कट-कर गिरेहुए अनेकों हाथी. और बाणों से गरदन कटेहुए अनेकों घोड़े मरकर गिरपड़े, तथा जिन के घोड़े, ध्वजा, सारथी और स्वामी नष्ट होगए हैं ऐसे अनेकों रथ छिन्न-भिन्न होकर गिरपड़े तथा जिन की भुजा, जंघा और कंठ कटगए हैं ऐसे अनेकों सिपाही मरकर गिर गये ॥ २५ ॥ उस समय भगवान् के बाणों से कटेहुए जो सिपाही. हाथी और घोड़े उनके शरीरों में से निकलेहुए रुधिर की सैकड़ों नदियें बहनेलगीं कि-जिन में कटी हुई भुजा ही सर्प और पुरुषों के मस्तक ही कछुए हैं जो मरण को प्राप्तहुए हाथीरूप द्वीपों (टापुओं) से और घोड़ेरूप नाकों से भरीहुई हैं ॥ २६ ॥ जिन में कटेहुए हाथ और जंघा ही मत्स्य और मनुष्यों के केश ही सिवार है. जो धनुषरूप तरङ्गों से और आयुधरूप गुल्मों से भरीहुई तथा चक्ररूप भँवरों से भयङ्कर हैं, जिन में महामणियों के समूह ही पाषाण और भूषण ही बालु हैं ॥ २७ ॥ जो डरपोकों को भय देनेवाली और वीरों को परस्पर हर्ष उत्पन्न करनेवाली हैं, ऐसी नदी बहने लगीं; इसप्रकार श्रीकृष्णजी का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान् संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥ बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेंद्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथोऽपि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ वद्ध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥ हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपे-

कराहुआ सेना का नाश कहकर अब बलरामजी ने जो किया सो कहते हैं—जिन का शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला प्रभाव अपरिमित है ऐसे और दुर्मद शत्रुओं को मूसल से कुचलडालनेवाले उन बलरामजी ने भी, अन्तपाररहित और समुद्र की समान प्रवेश करने को अशक्य तिस भयंकर जरासन्ध की रक्षा करीहुई सेना नाश को प्राप्त करदी; हे राजन्! इस प्रकार जो बलराम कृष्ण के कर्म कहे सो उन जगदीश्वर का खेल ही था, उन्होने पराक्रम नहीं किया था॥२८॥२९॥और यह आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि-जो अनन्तगुण भगवान्, अपने सङ्कल्पमात्र से ही त्रिलोकी की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं उन का शत्रु की सेना को दमनकरना आश्चर्य नहीं है तथापि मनुष्य का अनुकरण (नकल) करनेवाले उन का यह कर्म आश्चर्य की समान वर्णन करा है ॥३०॥ तदनन्तर जिस की सेना मारीगई है और जिस का प्राणमात्र शेष रहा है ऐसे तिस रथ हीन हुए महाबली जरासन्ध को, बलरामजी ने, जैसे सिंह सिंह को पकड़ता है तैसे पराक्रम से पकड़लिया ॥ ३१ ॥ और जिस ने पहिले बहुत से शत्रु मारे हैं तिस महाबली जरासन्ध को बलरामजी, बरुण की पाशों से और मनुष्यों की पाशों से बांधने लगे तब, श्रीकृष्णजी ने, उस के द्वारा दुष्टदमनरूप कार्य करने की इच्छा से उस को बाँधने का निषेध करादिया ॥ ३२ ॥ तब बलराम-कृष्ण का छोड़ाहुआ और वीरों का माननीय वह जरासन्ध, लज्जित हुआ और तप करने का सङ्कल्प करके वन में को जानेलगा तब मार्ग में शिशुपाल आदि राजाओं ने, धर्मोपदेश के शब्दों से युक्त, नीति के तथा 'तुच्छ यादवों से तुझ बलवान् का यह तिरस्कार केवल कर्मवश हुआ है इसकारण तू लज्जित न हो ऐसे' लौकिक उपदेशयुक्त वाक्यों से समझाकर उस को रोका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार सब सेनाओं के मरण को प्राप्त होने पर भगवान् का उपेक्षा कराहुआ वह राजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णा-रिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधबंदिभिः ॥ ३७ ॥ शङ्खदुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० । आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥ अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमे संग्राम आगामि तदन्तरा ॥ नारदप्रेषितो

जरासन्ध, खिन्न होकर मगध देशों को लौटगया ॥ ३५ ॥ इधर जिन की सेना के घाव भी नहीं आया है और जिन्हों ने अनायास में ही शत्रु की सेनारूप समुद्र का पार पाया है ऐसे उन श्रीकृष्णजी को भी, देवताओं ने 'बहुत अच्छा किया बहुत अच्छा किया' ऐसा धन्यवाद देकर उन को फूलों से छादिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर दुःखरहित और प्रसन्नचित्त होकर सन्मुख आयेहुए मथुरावासी लोकों से मिलकर सूत, मागध और बन्दियों ने जिन के यश को गाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी,नगरी में को चल दिये ॥ ३७ ॥ उन प्रभु के नगरी में प्रवेश करतेसमय, शंख, दुंदुभि, नौबत, डंके, वीणा, मुरली, मृदङ्ग आदि अनेकों बाजे बजने लगे ॥ ३८ ॥ वह नगरी—चंदन आदि के जिस के मार्ग छिड़के गये हैं ऐसी, हर्ष को प्राप्त हुए प्राणियों से युक्त, पताका आदि से अलङ्कृत, वेदध्वनि से गुञ्जारती हुई और उत्सवों के कारण जिस में वन्दनवार बँधे हैं ऐसी थी ॥ ३९ ॥ स्त्रियों ने, फूल, दही, अक्षत और दुर्वांकुर आदि की जिन के ऊपर वर्षा करी है ऐसे और जिन के नेत्र प्रीति से प्रफुल्लित होरहे हैं ऐसे नगर के पुरुषों करके बड़े प्रेम के साथ देखे हुए वह श्रीकृष्णजी तिस नगरी में को गये ॥४०॥ तहां उन प्रभु ने, युद्धभूमि में पड़ेहुए वीरों का भूषणरूप जो असंख्यात धन लाये थे सो सब राजा उग्रसेन को समर्पण करा ॥ ४१ ॥ इसप्रकार तेईस२ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा जरासन्ध ने, श्रीकृष्णजी के रक्षा करेहुए यादवों के साथ सत्रह वार युद्ध करा ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण के तेज से युक्त तिन यादवों ने, वह उस जरासन्ध की सब सेना मारडाली; इसी प्रकार अपनी सकल सेना के मरण को प्राप्त होने पर बलराम कृष्ण का उपेक्षा करा-हुआ वह राजा जरासन्ध अपने नगर को लौट आया ॥ ४३ ॥ फिर अठारहवाँ संग्राम होनेवाला था सो तिस से पहिले ही नारदजी का भेजाहुआ कालयवन नामवाला वीर, मथुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत॥४४॥रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः॥नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिंतयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां दृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुंधेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागंता जरासुतः ॥ बन्धून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम्॥ तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाऽद्भुतमचीकरत्॥५०॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्॥रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितं।५१।सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम्॥हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः।५२।

के समीप आपहुँचा, तब उस को मथुरा के पुरुषों ने देखा॥४४॥ वह मनुष्यलोक में, जिस की बराबर का दूसरा योधा है ही नहीं ऐसा था; उस ने नारदजी से, मेरी बराबर के योधा यादव हैं ऐसा सुनकर उन के साथ युद्ध करने के निमित्त तीन करोड म्लेच्छों के साथ मथुरापुरी के समीप आकर उस ने तिस को चारोंओर से घेरलिया ॥ ४५ ॥ तिस कालयवन को देखकर बलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी सम्मति करनेलगे कि-अहो ! यादवों को दोनों ओर से (कालयवन से और जरासन्ध से) बडा ही दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ आज तो यह महाबली कालयवन हमें रोकरहा है और आज, कल, वा परसों जरासन्ध भी आपहुँचेगा ॥४७॥ इस कालयवन के साथ हम दोनों के युद्ध करने में लगजाने पर यदि जरासन्ध आगया तो वह बलवान् होने के कारण हमारे बान्धवों को मारडालेगा अथवा अपने नगर में लेजायगा॥४८॥इसकारण जहां मनुष्य न जासकें ऐसे समुद्र में एक किला और उस में एक नगर बनवाकर तहाँ ज्ञातिबान्धवों को रखकर इस यवन को मारेंगे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार भगवान् ने, बलरामजी के साथ सम्मति करके समुद्र में किला और उस में सकल आश्चर्यों से युक्त बारह योजन लम्बा द्वारका नामवाला नगर विश्वकर्मा से बनवाया ॥ ५० ॥ जिस नगर में विश्वकर्मा के ज्ञान को सूचित करनेवाला क्रियाकौशल दीखरहा है, और जिस के प्रत्येक घरकी अगली ओर राजमार्ग (आमसड़क) पीछे की ओर गलियें, दोनों ओर आँगन है, उन के भीतर कोठे, उन के भी भीतर सुवर्ण के घर, उन के ऊपर चौबारे, उन के ऊपर सोने के कलश ऐसी बहुतसी मंजिलों के बनाने की यथोचित रीति के अनुसार बने हुए थे ॥ ५१ ॥ जिन में कल्पवृक्ष और कल्पलता हैं ऐसे बागों से और चित्रविचित्र वाटिकाओं से युक्त था, जिस के शिखर सुवर्ण के हैं ऐसे अति ऊँचे स्फटिकमणियों के चौबारे और बाहरी द्वारों से बनाहुआ था ॥ ५२ ॥ चाँदी और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजतैरकूटैः काञ्चनैर्गुरुभिरलंकृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हेम्नैर्महामरकतस्थलैः॥५३॥ वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वैश्मभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चाध्यास्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥ ५७ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः सगनुमंत्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे दुर्गनिवेशनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जि-

पीतल की बनीहुई, सुवर्ण के शिखरों से भूषित बड़सालऔर अन्न के भण्डारों से युक्त था, तथा पद्मरागमणि के शिखरों से और बहुमूल्य मरकतमणि की भूमियों से युक्त ऐसे सुवर्ण के मन्दिरों से युक्त था ॥५३॥ जहाँ तहां नगर में और घरों में बनाएहुए देवमन्दिरों से और चन्द्रशालाओं से युक्त था और ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोकों से भराहुआ और यादवश्रेष्ठों के राजमन्दिरों से अतिशोभायमान था ॥ ५४ ॥ उस नगर में श्रीकृष्णजी को महेन्द्र ने, सुधर्मा नामवाली सभा पारिजातक कल्पवृक्ष यह दोनों भेज दिये जिस सुधर्मा सभा में बैठा हुआ मनुष्य, भूख, प्यास, शोक, मोह आदि मनुष्य के धर्मों से युक्त नहीं होता है । ५५ ॥ वरुण ने जिन का एक कर्ण श्यामवर्ण है ऐसे सब शरीर में श्वेतवर्ण और मन की समान वेगवाले घोडे भेजदिये तथा लोकपालक कुबेर ने पद्म महापद्म आदि आठ निधि भेजदिये,दूसरे भी लोकपालों ने अपने२ ऐश्वर्य भेजदिये ॥ ५६ ॥ हे राजन्! श्रीहरि के भूमिपर आकर प्राप्त होने पर सब माण्डलिक राजाओं ने और सिद्ध आदि देवताओं ने भी, भगवान् ने जो २ ऐश्वर्य अपने को दिये थे वह २ सब अपने २ अधिकार की निश्चल सिद्धि होने के निमित्त तिन श्रीहरि को अर्पण करे ॥ ५७ ॥ तिस द्वारका में श्रीहरि ने 'जैसे कालयवन की और सकल लोकोंकी समझ में न आवे तैसे योगशक्ति से' सब को लेजाकर और 'तुम यहाँ रहकर प्रजा की रक्षाकरो मैं कालयवन को मारने के निमित्त धावा करता हूँ ऐसी बलरामजी के साथ सम्मति करके कमलों की माला धारण करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, कोई आयुध धारण न करतेहुए नगर के द्वार से बाहर निकले ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में पंचासवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इक्यावनवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी ने, मुचुकुन्द की दृष्टि से कालयवन का प्राणान्त करवाया, तदनन्तर मुचुकुन्द के स्तुति करने पर उस के ऊपर अनुग्रह करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हानमि-वोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययं—मिति पुमान् श्रीवत्सलांछनः ॥ चतुर्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनां ॥६॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७ ॥ पलायन यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम्॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय

नगर के द्वार से बाहर निकलेहुए तिन श्रीकृष्णजी को कालयवन ने देखा; वह श्रीकृष्णजी ऐसे थे कि—उदय होतेहुए चन्द्रमा की समान देखने में परमसुन्दर श्यामवर्ण, पीला रेशमी पीताम्बर पहिरे हुए ॥ १ ॥ वक्षःस्थल में श्रीवत्सलाञ्छन से युक्त,जिन का कण्ठ देदीप्यमान कौस्तुभमणि से शोभित है. जिन की चारों भुजा पुष्ट और रानोपर्यन्त लम्बी हैं, जिन के नेत्र नवीन कमल की समान कुछ २ लाल हैं ॥ २ ॥ नित्य आनन्दयुक्त, शोभायुक्त सुन्दर कपोलोंवाले, और शुद्धहास्ययुक्त तथा जिस में मकराकृति कुण्डल दमक रहेहैं ऐसे मुख कमल को धारण करनेवाले ॥ ३ ॥ ऐसे श्रीकृष्णजी को देखकर नारदजी के कहे हुए लक्षणों से पुराणपुरुष, श्रीवत्सलाञ्छन, चतुर्भुज, कमलनयन, वनमाली और अतिसुन्दर ऐसे यह ही वासुदेव होसक्ते हैं, दूसरा कोई नहीं होसक्ता, परन्तु यह विना शस्त्र के ही पैदल आरहे हैं इसकारण मैं भी विना शस्त्र के ही पैरों से चलनेवाला होकर इन के साथ युद्ध करूँगा॥४।५॥ऐसा निश्चय करके वह कालयवन,अपनी ओरको पीठकरके भागनेवाले, योगियों कोभी दुर्लभ तिन श्रीकृष्णजी को पकडने के निमित्त उन के पीछे २ दौडनेलगा॥६॥ तब हर एक पग पर अपने को हाथ में आयाहुआ सा दिखानेवाले श्रीहरि, उस यवनों के स्वामी को दूर एक पर्वत की गुफा में लेगए ॥ ७॥ उस समय, यदुकुल में उत्पन्न हुए तुम्हें यह भागना उचित नहीं है, ऐसी निन्दा करतेहुए पीछे २ भागनेवाले परन्तु जिस के कर्म क्षीण नहीं हुए हैं ऐसे उस कालयवन को श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं हुई ॥ ८ ॥ इस प्रकार कालयवन के निन्दा करने पर भी उन भगवान् श्रीकृष्णने, उस से मुचुकुन्द को जगवाने के निमित्त और मुचुकुन्द की दृष्टि से उस को भस्म कराने के निमित्त पर्वत की गुहा में प्रवेशकरा, उस कालयवन ने भी तिस पर्वत की गुफा में घुसकर तहाँ सोयेहुए दूसरे किसी एक पुरुष को देखा ॥ ९ ॥ और यह वासुदेव मुझे इतनी दूर लाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसाद्भवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किं वीर्य एव च ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥ ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १४ ॥ स याचितः सुरगणैरिंद्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकंटकं ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमंत्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना संति

यहां साधुपुरुष की समान सोरहा है, ऐसी बुद्धि से उस सोयेहुए पुरुष को ही वासुदेव मानकर उस मूढ़ने, अपने पैर की ठोकर से ताड़ना करा ॥ १० ॥ वह बहुत समय पर्यन्त सोयाहुआ पुरुष ठोकर लगने से जगकर उठबैठा और धीरे धीरे अपने नेत्र उघाड़कर सब दिशाओं में को देखनेलगा सो उसने अपने समीप एकओर खड़ेहुए तिस कालयवन को देखा ॥ ११ ॥ हे राजन्! इतने ही में वह कालयवन, निद्राभङ्ग होने के कारण क्रोध में हुए उस पुरुष की दृष्टि पड़ने से प्रदीप्त हुए उस के देह में के अग्नि से ही जलकर तत्काल भस्म होगया ॥ १२ ॥ राजा ने कहा कि—हे ब्रह्मन्! उस पुरुष का नाम क्या था? वह किस के कुल का था? किस का पुत्र था? और कैसे पराक्रमवाला था कि-जिस ने दृष्टिमात्र से ही कालयवन को भस्म करदिया और वह पुरुष, किस कारण से गुहा में घुसकर सोरहा था? ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! वह इक्ष्वाकुराजा के कुल में उत्पन्न हुआ, मान्धाता का पुत्र, गुणों से बड़ा, ब्राह्मणों का भक्त और धर्मयुद्ध करनेवाला मुचुकुन्द इस नाम से प्रसिद्ध था ॥ १४ ॥ पहिले दैत्यों से भय मानेहुए इन्द्रादिक देवगणों ने, अपनी रक्षा के निमित्त उस की प्रार्थना करी तब उस ने बहुत कालपर्यन्त उन की रक्षा करी थी ॥१५॥ तदनन्तर उन को स्वर्ग की रक्षा करनेवाले सेनापति स्वामिकार्त्तिकेय मिलगये तब उन्होंने, मुचुकुन्द से कहा कि—हे राजन्! हमारी रक्षारूप कष्ट से अब तुम विश्राम लो ॥१६॥ हे वीर! मनुष्यलोक में के अपने शत्रुसहित राज्य को छोड़कर केवल हमारी रक्षा करनेवाले तुम्हारे सब ही विषयभोग छूटगये हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्र, स्त्री, जाति, अमात्य मंत्री और तुम्हारे राज्य करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालितः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ "निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः ॥ २१ ॥ यः कश्चिन्मम निद्रायां भङ्गं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा" ॥ अंशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया२२॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्कामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मी भवतु तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुंदाय धीमते ॥ २४ ॥ तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससं ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणी-

समय की सकलप्रजा काल से चलायमान होने के कारण अब नहीं रही हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! यह काल, सब बलवानो में भी बलवान् है और अविनाशी भगवान् ईश्वर है, वह क्रीडा करते समय, जैसे पशुओं की रक्षा करनेवाला पुरुष; पशुओं को इधर उधर लेजाता है तैसे ही प्रजाओं को इधर उधर करता रहताहै॥१९॥हेराजन्! तुम्हारा कल्याण हो,तुम अब एक मोक्ष के सिवाय जो इच्छा हो वह वरदान हम से मांगलो ;मोक्ष देनेवाले एक अविनाशी भगवान् ही हैं दूसरा कोई नहीं है ॥ २० ॥ इसप्रकार देवताओं के कहेहुए वह महायशस्वी राजा मुचुकुन्द,देवताओं को वन्दना करके,बहुत दिनोपर्यन्त जागने के कारण श्रम को प्राप्त होगए थे इसकारण उन्होंने देवताओं से निद्रा ही मांग ली ॥२१॥ कहा कि—हे श्रेष्ठ देवताओं ! जो कोई पुरुष, मेरी निद्रा का भङ्ग करे वह तत्काल भस्म हो, ऐसा वर मांगा तब उससमय देवताओं ने कहा कि—जो तुम्हें न जाननेवाला पुरुष, तुम्हारे अपने आप उठने से पहिले तुम्हें जगावेगा उस की ओर को तुम्हारे देखते ही वह तत्काल भस्मरूप होजायगा; ऐसा वर मिलनेपर वह मुचुकुन्द, तिस गुहा में घुसकर देवताओं की दीहुई निद्रा से सोरहे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसप्रकार यवन के भस्म होजाने पर, भक्तपालक भगवान् श्रीकृष्णजी ने, उस बुद्धिमान् मुचुकुन्द को अपना स्वरूप दिखाया ॥ २४ ॥ तब मुचुकुन्द ने मेघ की समान श्यामवर्ण, पीला रेशमी पीताम्बर पहिने, वक्षःस्थल पर दक्षिणावर्त्त रोमरेखा में सुवर्ण की रेखा की समान चिन्ह से युक्त,देदीप्यमान कौस्तुभमणि से विराजमान ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, अनेकों वर्ण के फूलों की बनाई हुई माला से शोभायमान, जिन का मुख सुन्दर और प्रसन्न है, जिनके कानों में मकराकृति कुण्डल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेंद्रोदारविक्रमम् ॥ ॥ २७॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेंद्रो वा लोकपालोपरोपि वा ॥ ३० ॥ मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वांतं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ ३१ ॥ शृणुष्वतामव्यलीकमस्माकं नरपुंगव॥ स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३२ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ॥ मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३३ ॥ चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयापहृतेंद्रियः ॥ शयेऽस्मिन्निर्जने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनन्तरं

झलकरहे हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्यलोक के देखने योग्य हैं, जिन का मन्दहास्य और चितवन प्रेमयुक्त है, जिन की अवस्था तरुण और अतिमनोहर है, जो मत्त गजराज की समान गति से और उदार पराक्रम से युक्त हैं और जो अपने तेज के कारण दूसरे से तिरस्कार पाने को अशक्य हैं ऐसे उन श्रीकृष्णजी को देखकर, 'यह अतितेजस्वी कौन है?' ऐसी शंका से युक्त और उन के तेज से चौंधाएहुए से वह महाबुद्धिमान् राजा मुचुकुन्द, धीरे२ बूझनेलगे॥२७॥२८॥ मुचुकुन्द ने कहा॥कि—यहां आयेहुए तुम कौन हो? इस वन में तिसपर भी पर्वत के प्रवेश करने को अशक्य स्थान में तिस में भी अनेकों काँटों से भरेहुए प्रदेश में, कमलके पत्र की समान कोमल चरणों से तुम कौन विचररहे हो? ॥२९॥तुम तेजस्वी पुरुषों के मूर्त्तिमान् तेज ही हो क्या? अथवा भगवान् अग्नि हो? वा सूर्य,चन्द्रमा,इन्द्र किंवा कोई दूसरे लोकपाल हो? ॥ ३० ॥ जो तुम, अपनी कान्ति से 'जैसे दिन अन्धकार का नाश करता है तैसे 'पर्वत की गुहा में के अन्धकार का नाश कररहे हो तिस से इन्द्रादि देवताओं में भी श्रेष्ठ जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवता तिन तीनो में भी पुरुषोत्तम विष्णुभगवान् तुम ही हो, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ३१ ॥ हे पुरुषोत्तम! सुनने की इच्छा करनेवाले हमें निष्कपटभाव से अपना जन्म, कर्म और गोत्र यदि कहने योग्य हो तो कहिये? ॥ ३२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! हम तो इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए क्षत्रिय हैं; तिन में भी हे प्रभो! मैं मुचुकुन्द नामवाला राजा यौवनाश्व का पुत्र हूँ ॥३३॥ सो मैं, देवताओं की प्रार्थना से उन की रक्षा करतेसमय बहुत कालपर्यंत होनेवाले जागरण से श्रम को प्राप्तहुआ और मेरी इन्द्रियें निद्रा से व्याकुल होगईं इसकारण इस एकान्त स्थान में अपनी इच्छानुसार सोरहा था; अब किसी ने मुझे उठाया है ॥ ३४ ॥ जिस किसी ने मुझे उठाया वह भी अपने ही पाप से भस्मरूप हो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग मानिनीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३६ ॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ॥ न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयाऽपि हि ॥ ३८ ॥ कश्चिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः । गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिंचेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४१ ॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ॥ वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माँ ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥

गया है; तदनन्तर शत्रु का नाश करनेवाले और श्रीमान् तुम मेरी दृष्टि पड़े हो ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! हम तो सहन न होनेवाले तुम्हारे तेज से, चकित होकर बहुत समयपर्यन्त तुम्हारी ओर को देखनेको भी समर्थ नहीं होते हैं तथापि मेरीसमान देहधारियोंके तुम सेवन करनेयोग्य हो ॥ ३६ ॥ इसप्रकार उस राजा मुचुकुन्द के सत्कारपूर्वक प्रश्न करने पर, वह भक्तपालक भगवान् हँसकर, मेघ की गर्जना की समान गम्भीरवाणी करके उस राजा से कहनेलगे ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे राजन् ! मेरे जन्म, कर्म और नाम सहस्रों हैं सो वह अनन्त होने के कारण मुझ से भी नहीं गिनेजासक्ते ॥ ३८ ॥ कदाचित् कोई सूक्ष्मदर्शी पुरुष बहुत से जन्मों में पृथ्वी के रजों के कणोंकी भी गणना करलेय परन्तु वह भी मेरे गुणकर्म नाम और जन्मों की गणना कभी भी नहीं करसकेगा ॥ ३९ ॥ बड़े २ ऋषि भी भूत, भविष्य और वर्त्तमान काल के मेरे जन्मों का और कर्मों का क्रमसे वर्णन करतेहुए अभीतक वह अन्त को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ तथापि हेराजन् ! इससमय के अपने जन्म आदि तुझ से कहता हूँ उनको तू मुझ से सुन; धर्म की रक्षा करनेके निमित्त और पृथ्वी के भाररूपहुये असुरों का नाश करने के निमित्त ब्रह्माजी ने पहिले मेरी प्रार्थना करी थी इसकारण मैं यदुकुल में वसुदेवजी के घर अवतीर्ण हुआ हूँ, मैं वसुदेव का पुत्र हूँ इस से मुझे 'वासुदेव' कहते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ कंसरूप से उत्पन्न हुआ कालनेमिनामक असुर मैंने मारा है तथा धार्मिक पुरुषों से द्वेष करनेवाले प्रलम्ब बकासुर आदि दैत्य भी मारे हैं; हे राजन् ! यह कालयवन तेरी तीक्ष्णदृष्टि के निमित्त से मैंने ही भस्म करडाला है ॥ ४३ ॥ सो मैं, तेरे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त इस गुहा में आया हूँ, पहिले बहुत वार तूने मुझ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं तस्याहं भक्तवत्सलः । ४४ ॥ वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्ना जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥४६॥ मुचुकुंद उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीययाऽऽत्मन्यदनेकधर्मिणि ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वंचितः ॥ ४७ ॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविंदं न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य

भक्तवत्सल की आराधना करी थी इसकारण हे राजर्षे ! तू मुझ से इच्छित वर माँगले; मैं तुझे सब विषय देता हूँ, क्योंकि मेरी शरण आयाहुआ कोई भी जन, फिर शोक करने के योग्य नहीं होता है अर्थात् औरों के दियेहुए वरदानों के नष्ट होनेपर जैसे शोक करता है तैसे मेरी शरण आयाहुआ पुरुष शोक नहीं करता है. क्योंकि—मेरे दियेहुए वरदान अक्षय होते हैं॥४४॥४५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—इसप्रकार श्रीभगवान् के कहने पर; उस कहने से ही ' अट्ठाईसवें युग में भगवान् वसुदेव के घर अवतार धारण करेंगे ऐसे वृद्धगर्ग के कहने का जिस को स्मरण आया है ऐसा वह मुचुकुन्द, उन श्रीकृष्ण को, यह नारायणदेव हैं ऐसा जानकर, हर्ष से भरगया और उन को नमस्कार करके कहनेलगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्द ने कहा कि—हे ईश्वर ! स्त्री और पुरुष इनदोनों प्रकार का ही यह जन, तुम्हारी माया से मोहित होरहा है इसकारण यह संसार में सत्यता की दृष्टि रखकर, परमार्थस्वरूप तुम्हारी सेवा नहीं करता है; किन्तु परस्पर धोखा खाकर सुखकी इच्छा से दुःखों को ही उत्पन्न करनेवाले घरों में आसक्त होता है॥ ४७॥ विषयसुख तो सूकरादि योनियों में भी मिलसक्ता है, भगवान् की सेवा मनुष्यजन्म के सिवाय नहीं होसक्ती इसकारण मनुष्यजन्म प्राप्त होने पर जो तुम्हारी भक्ति नहीं करता है वह अतिमूढ़ है ऐसा वर्णन करते हैं—हे पवित्र ! तुम्हारे अनुग्रह से अनायास में सकल अङ्गयुक्त और इस भरतखण्डरूप कर्मभूमि में दुर्लभ इस मनुष्यशरीर के प्राप्त होने पर जो पुरुष, तुम्हारे चरणारविन्द का भजन नहीं करता है वह विषयसुखों में आसक्तचित्त होकर, जैसे पशु तृण के लोभ से अन्धेरिये कुए में जापड़ता है तैसे ही घररूप अन्धेरिये कुए में पडता है ॥ ४८ ॥ यह केवल लोकों की गति है ऐसा ही नहीं किन्तु मेरी भी तैसी ही गति है ऐसा वर्णन करते हैं हे अजित ! मरणधर्म युक्त देह में आत्मबुद्धि रखनेवाला, भूपति, राजसम्पदा से मदान्ध और पुत्र, स्त्री, भण्डार घर तथा भूमि के विषैं अपार चिन्ता से आसक्त हुए मेरा यह (आजपर्यन्त का) समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुरंतचिंतया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसंनिभे निरूढमानो नरदेव ईत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वागणयन्न सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिंतया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥५१॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५२॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५३ ॥ करोति कर्माणि तपःसु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्व-

निष्फल बीत गया ॥४९॥ अब अपना मदोन्मत्तपना कहते हैं कि—घडे और भीत (दीवार) की समान दीखनेवाले तथा जड़ इस शरीर में 'मैं राजा हूँ' ऐसा अभिमान रखनेवाला मैं, कालरूप तुम्हारी ओर को कुछ ध्यान न देकर, रथ, हाथी, घोडे और पैदलों की सेना के स्वामियों से युक्त होकर भूमि पर विचरता हुआ, अत्यन्त दुष्टमद से युक्त हुआ हूँ इसकारण मेरा समय निष्फल गया ॥ ५० ॥ यह २ कार्य ऐसे २ करना चाहिये, इसप्रकार की चिन्ता से अत्यन्त मत्त हुआ, विषयों में 'अमुक पदार्थ न जाने कब मिलेगा ऐसी' आशा रखनेवाला और कदाचित् वह विषय प्राप्त हुआ तो उस में अति तृष्णायुक्त हुए प्राणी को, सावधान रहनेवाले कालरूप तुम जैसे अपने भट्ट में अन्न इकट्ठा करनेवाले मूषक को क्षुधा से, जावड़ों को चाटनेवाला सर्प, अकस्मात् निगलजाता है तैसे ही एकाएकी आक्रमण करते हो ॥ ५१ ॥ और कालरूप तुम्हारा जकड़ाहुआ शरीर, ऐसा होता है कि—पहिले जीवित अवस्था में सुवर्ण के भूषणों से भूषित रथों में अथवा मदोन्मत्त हाथियों के ऊपर बैठकर फिरतेहुए जिस शरीर को 'राजा' यह नाम प्राप्त था वही शरीर, अटल कालरूप तुम्हारे आक्रमण करनेपर श्वान काक आदि ने भक्षण करलिया तो विष्ठा, उन्होंने भक्षण न करा तो कीड़े और जलादिया गया तो भस्म इन नामों को पाता है ॥५२॥ और मरण से पहिले ही दिङ्मण्डल को जीतकर जिस का किसी के साथ भी युद्ध नहीं है ऐसा और सिंहासन पै बैठने पर जिस के समता वाले पहिले राजे वन्दना करते हैं ऐसा भी वह पुरुष, हे ईश्वर ! मैथुन ही जिस में सुख है ऐसी स्त्रियों के मन्दिरों में स्त्रियों से वानर की समान जिधर तिधर को नचायाजाता है ॥ ५३ ॥ और उस राज्य पर स्थित होने के समय भी उन राजादिशरीर को धारण करनेवाला वह पुरुष, फिर भी जन्मान्तर में मैं इन्द्र होऊँ अथवा ऐसा ही चक्रवर्त्ती राजा होऊँ ऐसी भोग की प्रबल इच्छा धारण करके, उन इन्द्रपद आदि को प्राप्त करने के निमित्त विषयभोग छोड़देता है और भूमि में सोना ब्रह्मचर्य व्रत धारना आदि तप के साधनों में स्थित होकर, चक्रवर्त्तीपद आदि के साधनरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ॥ सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५५ ॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरकर्चया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबंधनम् ॥ ५७ ॥ तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्वगुणानुबन्धनाः ॥ निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तिस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषपदमित्रोऽलब्धशांतिः कथञ्चित् ॥ शरणद समुपेत-

कर्मों को करता है, इसप्रकार सुख भोगने को समर्थ नहीं होता है ॥५४॥ इसप्रकार आठ श्लोकों में भगवान् से विमुख रहनेवाले पुरुषोंके संसार को स्पष्टरूपसे कहकर अब भक्ति करके उस संसार के दूर होने का क्रम कहते हैं कि—हे अच्युत ! संसार पानेवाले जन के बन्धन का जब तुम्हारे अनुग्रह से नाश होनेका समय आता है,तब ही उस को तुम्हारे भक्तोंका समागम होता है और जब साधुसमागम होता है तब ही उन के उपदेश आदि से साधुओं को प्राप्त होनेयोग्य और कार्यकारणों के नियन्ता तुम्हारे विषैं उस की प्रेमरूप भक्ति उत्पन्न होती है और फिर वह मुक्त होजाता है ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! मुझे तो साधुसमागम के पहिले अनायास में ही जो राज्य आदि सम्बन्ध का विछोह हुआ सो तुमने मेरे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह करा है, ऐसा मैं मानता हूँ; क्योंकि-जिस राज्य के सम्बन्ध से विलग होने के निमित्त, इकले ही विचरतेहुए तप करने के निमित्त वन में जाने की इच्छा करनेवाले और विचारवान् चक्रवर्त्ती राजे भी तुम से प्रार्थना करते हैं ॥ ५६ ॥ इसप्रकार विषयसेवन का और भगवत्सेवा का मार्ग कहकर अब, यह जो कहा था कि—वर मांगले तिस का उत्तर राजा कहता है कि—हे विभो ! हे हरे ! अभिमान से छूटेहुए भी पुरुषों के प्रार्थना करनेयोग्य, तुम्हारी चरणसेवा से दूसरे वर की मैं इच्छा नहीं करता हूँ, क्योंकि-मोक्ष देनेवाले तुम्हें प्रसन्न करके, भला कौनसा विवेकी पुरुष, तुम से अपने को बन्धन में डालनेवाले विषयभोग को मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ तिस से हे ईश्वर ! रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण से प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य आदि, शत्रुमारण आदि और धर्म आदि सकल विषयों का त्याग कर के, ज्ञानस्वरूप, निर्गुण, निरंजन और अद्वय तुम परम ईश्वर की मैं शरण आया हूँ ॥ ५८ ॥ अरे ! पहिले विषयों को भोग, मोक्ष तो हाथ में ही है, इस प्रकार फिर वरदान का लोभ देनेवाले श्रीकृष्णजी का चरण पकड़कर राजा प्रार्थना करता है कि-हे शरण देनेवाले परमात्मन् ईश्वर ! इस संसार में कर्मफलरूप पापों से पीड़ित,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ६१ ॥ युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेवं नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥ इतिश्रीभागवते म० द० उ० मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥

उन पापों की वासनारूप तापों से तपाहुआ और जिस के इंद्रियरूप छः शत्रु निराश नहीं हुए हैं ऐसा मैं किसीप्रकार दैवयोग से, सत्य–अभय और शोकरहित तुम्हारे चरणकमल की शरण आया हूँ इसकारण तिस आपत्तियों से घिरे हुए मेरी तुम संसारदुःख से रक्षा करो ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे सार्वभौम! हे महाराज! मेरे वरदानों से लोभयुक्त करने पर भी जो तेरी बुद्धि, विषयों से नहीं खिची तिस से तेरी बुद्धि राग लोभ आदि मलरहित होकर परमार्थ का दर्शन करने के विषय में योग्य होगई है॥६०॥ मैंने जो तुझे वरदानों का लोभ दिया सो–' लोक में भक्तों की बुद्धि विषयों में आसक्त नहीं होती है ' यह दिखाने के निमित्त ही ऐसा किया था, ऐसा जान; क्योंकि–मेरे में अनन्यभक्ति करनेवाले पुरुषों की बुद्धि, विषयभोग प्राप्त होने पर भी, मुझे छोड़कर उन विषयों में आसक्त नहीं होती है ॥ ६१ ॥ और हे राजन्! प्राणायाम आदि से रोकने का यत्न करनेवाले भी अभक्तों का मन, वासनाओं के नाश को प्राप्तहुआ न होने के कारण फिर उठकर विषयों की ओर को झुकताहुआ देखने में आता है ॥ ६२ ॥ तेरी तो मुझ में सदा अनन्यभक्ति है इसकारण तू अपना चित्त मेरे विषैं स्थापन करके अपनी इच्छानुसार पृथ्वी पर विचर ॥ ६३ ॥ तू राज्य पर था उस समय तू ने,लोकों की रक्षा के उपयोगी न होनेवाले मृगया (शिकार) आदि से प्राणियों का वध करा है इसकारण अब तपस्या के द्वारा, जितेन्द्रिय और मेरा ही आश्रय करनेवाला होकर तिस पाप का नाश कर ॥ ६४ ॥ हे राजन्! तू, अब ऐसा करेगा तो अगले जन्म में सकल प्राणियों का परममित्र श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर परमानन्दरूप मुझ को प्राप्त होजायगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकपंचाश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे बावनवें अध्याय में मानो जरासन्ध के भय से ही भागनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात्॥१॥स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वंद्वसहः शांतस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनरावव्रज्य पुरीं यवनवेष्टितां ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चोच्चावचोदितैः ॥ आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ बिलोक्य वेगं रभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्र-

ने, द्वारका में आकर फिर सुदेव ब्राह्मण के वर्णन करेहुए रुक्मिणी के सन्देशे को स्वीकार करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि इसप्रकार इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए उस मुचुकुन्द राजा के ऊपर श्रीकृष्णजी ने अनुग्रह करा तब वह राजा,श्रीकृष्णजी को प्रदक्षिणा और नमस्कार करके गुहा के द्वारमें से बाहर निकला॥१॥ फिर वह छोटे २ उत्पन्न हुए मनुष्य, पशु, लता और वृक्षों को देख कलियुग को आया जानकर तप करने के निमित्त उत्तर दिशा की ओर को चलागया ॥ २ ॥ तप करने में श्रद्धावान्, धैर्यवान्, किसी में भी आसक्ति न रखनेवाला और संशयरहित वह राजा, श्रीकृष्णजी के विषैं अपने मन को स्थिर करके गन्धमादन पर्वत पर को चलागया ॥ ३ ॥ तहां भी वह बदरिकाश्रम में नरनारायण के स्थान को पहुँचकर, सुख दुःख, सरदी गरमी आदि सकल द्वन्द्वों को सहकर और काम-क्रोध आदि से रहित होकर तप करके श्रीहरि की आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्णजी, यवनों की घेरीहुई मथुरा नगरी में फिर आकर, म्लेच्छो की सकल सेना को मारकर, उन का भूषण आदि धन द्वारका पुरी को लेजाने के निमित्त उद्यत हुए॥५॥ सो श्रीकृष्णजी के आज्ञा करेहुए मनुष्य और उन मनुष्यों ने जिनकी पीठपर गोंदें लादी हैं ऐसे बैल, धन को लेजानेलगे तब ही, तेईस अक्षौहिणी सेना का स्वामी जरासन्ध, आगया ॥ ६ ॥ उससमय हे राजन्! शत्रुकी सेना का अत्यन्त वेग देखकर, मनुष्यलीला करनेवाले वह बलराम-कृष्ण,अति शीघ्रता से भागनेलगे ॥७॥ और लियेजातेहुए यवन सेना के बहुत से धन को भी तहां ही छोड़कर, वह वास्तव में निर्भय थे तथापि डरपोकों से भी अधिक भय मानकर कमलपत्र की समान अपने चरणों से बहुत योजन पर्यन्त भागते चलेगये ॥ ८ ॥ ईश्वर के प्रमाण (अमर्याद प्रभाव) को न जाननेवाला जरासन्ध भी, उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रांतौ तुंगमारुहतां गिरिम् ॥ प्रावर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृपाद्दाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटाद्द्वौ ॥ दशैकयोजनोत्तुंगान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ ॥ १३ ॥ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४ ॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुतां ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिरान-

को भागतेहुए देखकर, हास्य करता उन को पकडने के निमित्त रथों की सेनासहित उन के पीछे भागनेलगा ॥ ९ ॥ वह बलरामकृष्ण, दूरपर्यन्त भागकर थकगये और ग्यारह योजन ऊँचे एक प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ़गये, जिस पर्वत पर भगवान् इन्द्र बारहों महीने वर्षा करते हैं ॥ १० ॥ हेराजन् ! तब जरासन्ध ने, वह पर्वत पर दुबकरहे ऐसा जानकर उनको ढूँढतेहुए भी उन के दुबकने का स्थान न मिलने के कारण उन को जलाने के निमित्त पर्वत को चारोंओर काठों से घेरदिया और अग्नि लगाकर पर्वत को भस्म करदिया ॥ ११ ॥ उस समय जिसका तट जलने लगा है ऐसे ग्यारह योजन ऊँचे उस पर्वतपर से, बलराम-कृष्ण, वेग के साथ कूदकर, जरासन्ध के घेरेहुए स्थान के परलीओर भूमिपर नीचे उतरे ॥ १२ ॥ हेराजन् ! तब सेनासहित शत्रु जरासन्ध के न देखेहुए वह बलराम-कृष्ण, समुद्र ही जिस की खाई है ऐसी अपनी द्वारका नगरी में फिर आगये ॥ १३ ॥ वह जरासन्ध भी व्यर्थ ही 'बलराम-कृष्ण भस्म होगये, ऐसा मानता हुआ, अपनी बडी भारी सेना को लेकर मगधदेशों को लौटगया ॥ १४ ॥ अब श्रीकृष्णजी का विवाह वर्णनकरने के निमित्त नवमस्कन्ध में कहेहुए बलदेवजी के विवाह का स्मरण कराते हैं—आनर्तदेशों के स्वामी श्रीमान् राजा रैवत ने, ब्रह्माजी की आज्ञा से अपनी रेवती नामवाली कन्या बलदेवजी को अर्पण करी, ऐसा पहिले नवम स्कन्ध में तुम से कहा है ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी सब लोगों के देखतेहुए, शिशुपाल का पक्षपात करके आयेहुए शाल्व आदि राजाओं का तिरस्कार करके, विदर्भदेश में उत्पन्न हुई लक्ष्मी की कला जो भीष्मक राजा की रुक्मिणी नामवाली कन्या उस को, जैसे गरुड़जी ने देवताओं का तिरस्कार करके अमृत का हरण करा था तैसे हरण करलिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजा ने कहा कि—हे भगवन् ! राजा भीष्मक की रुक्मिणी नामवाली सुमुखी कन्या को, श्रीकृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामः कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिं ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४ ॥ बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यमनन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिन्त्यासद्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ २६ ॥

भगवान् ने युद्ध में हरण करने की राक्षसविधि से वरा ऐसा मैंने सुना है ॥ १८ ॥ सो हे सर्वज्ञ! जैसे श्रीकृष्णजी ने जरासन्ध शाल्व आदिकों को जीतकर रुक्मिणी का हरण करा हो वह महापराक्रमी श्रीकृष्णजी का चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ इसकारण वह मुझ से कहिये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! सुनने और पढ़नेवालों को पवित्र करनेवाली, कानों को मधुर लगनेवाली, लोकों के पापों को दूर करनेवाली और क्षण २ में आश्चर्य की समान प्रतीत होकर नई २ सी प्रतीत होनेवाली तिन श्रीकृष्णजी की कथाओं को सुनने के सार को जाननेवाला भला कौनसा श्रोता तृप्त होगा? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! विदर्भदेशों का स्वामी, गुणों से बड़ा एक भीष्मक नामवाला राजा था, उस के पाँच पुत्र और सर्वाङ्गसुन्दरी एक कन्या थी ॥ २१ ॥ उन के नाम-सब में बडा तो रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली और इन की बहिन श्रेष्ठगुणवती रुक्मिणी, यह थे ॥ २२ ॥ उस रुक्मिणी ने, अपने घर आयेहुए लोकों के वर्णन करेहुए श्रीकृष्णजी के सुन्दरता, पराक्रम, गम्भीरता, उदारता आदि गुण और सम्पत्ति को सुनकर, उन श्रीकृष्णजीको ही अपनेयोग्य पति माना ॥ २३ ॥ इधर द्वारका में श्रीकृष्णजी ने भी, अपने घर आयेहुए लोकों के मुख से, उस रुक्मिणी को बुद्धि, लक्षण, उदारता, स्वरूप और सुशीलता का आश्रय सुनकर और यही अपनेयोग्य स्त्री है ऐसा मानकर उस को वरने का मन में विचार करा ॥ २४ ॥ ऐसा होनेपर और दूसरे भ्राताओं के तिस रुक्मिणी को श्रीकृष्णजीके अर्थ देने की इच्छा करनेपर भी हे राजन्! उन को निवारण (मना) करके रुक्मी ने, उस को, शिशुपाल के अर्थ देने का निश्चय करा ॥ २५ ॥ यह भ्राता का निश्चय जानकर, जिस के श्यामवर्ण नेत्रों के कोये हैं ऐसी तिस रुक्मिणी ने, चित्त में अत्यन्त दुःखित होकर श्रीकृष्णजी को पाने के उपाय का विचार करा और तहाँ आयेहुए किसी एक सुशील ब्राह्मण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेतेसर्वांगविज्वरः ॥ ३२ ॥ विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥

को पत्र देकर, उस को शीघ्रता से श्रीकृष्णजी को लिवालाने के निमित्त भेजा ॥ २६ ॥ तदनन्तर, उस ब्राह्मण ने द्वारका में पहुँचकर तहाँ द्वारपालों के भीतर भवन में प्रवेश कराने पर, सुवर्ण के सिंहासनपर बैठेहुए जगत् के कारण पुराणपुरुष श्रीकृष्णजी को देखा॥२७॥ इधर ब्राह्मणों के हितकारी श्रीकृष्णदेव ने, उस ब्राह्मण को देखते ही अपने आसन पर से नीचे उतरकर,उस ब्राह्मण को तिस आसन पर बैठाया और जैसे देवता अपनी (श्रीकृष्ण जी की) पूजा करते हैं तैसे पूजा करी ॥२८॥ उस के मार्ग में के परिश्रम को दूर करने के निमित्त थोड़ीदेर विश्राम लेकर भोजन करने के अनन्तर एकान्त स्थान में सुख पूर्वक आसन पर बैठेहुए उस ब्राह्मण के पास भक्तपालक श्रीकृष्णजी ने जाकर अपने हाथ से उस के चरण को धीरे २ दबातेहुए स्वस्थता के साथ पूछा कि— ॥ २९ ॥ हे द्विजवर श्रेष्ठ ! सन्तुष्टचित्त तुम्हारा वृद्ध पुरुषों का माननीय धर्म,अनायास में निरन्तर चला तो जाता है ? वह मुझे परम प्रिय है॥३०॥जब विना यत्न के ही प्राप्तहुए देह धारण की पूर्त्ति के योग्य धान्य आदि से सन्तुष्ट रहनेवाला ब्राह्मण, अपने वर्णाश्रमधर्म से भ्रष्ट न होकर उत्तम रीति से वर्त्ताव करनेलगता है तब ही उस का वह सन्तोष के साथ आचरण कराहुआ धर्म, उस के सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाला होता है ॥ ३१ ॥ इन्द्र होकर भी यदि असन्तोषी होय तो वह इस लोक से तिस लोक में और तिस लोक से अन्य लोक में सुख की प्राप्ति के निमित्त फिरताहुआ एक स्थान में स्वस्थता के साथ नहीं रहता है और यदि सन्तुष्ट होय तो वह, भोजन वस्त्र आदि की पूर्त्ति के योग्य धन आदि से रहित होय तो भी वाणी हाथ आदि अंगों में तापरहित होताहुआ सुख से रहता है ॥ ३२ ॥ इसकारण दैववश पायेहुए अन्न-वस्त्रादि से सन्तुष्ट, साधु (आचारवान्), प्राणीमात्र के मित्र, निरभिमानी और शान्त ब्राह्मणों को मैं वारम्वार अपना मस्तक नमा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान् भुवनसुंदर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यं ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृ-

कर नमस्कार करता हूँ ॥३३॥इस से हे ब्राह्मण! तुम्हारी राजा से तो कुशल है? जिस राजा के देश में रक्षा करीहुई प्रजा सुख से रहतीं हैं वह राजा मुझे प्रिय होता है॥३४॥ इसकारण जिस स्थान से जिस कार्य की इच्छा कर के, दुर्गम समुद्र को तरकर इस द्वारका नगरी में तुम आये हो, वह गुप्त न होय तो हम से सब कहो और हम तुम्हारा कौनसा कार्य करें सो कहो ॥ ३५ ॥ इसप्रकार लीला करने के निमित्त मनुष्यावतार धारण करनेवाले तिन परमेश्वर श्रीकृष्णजी ने, जिस से बूझनेयोग्य प्रयोजन बूझा है ऐसे तिस ब्राह्मण ने, तिन श्रीकृष्णजी से, बन्धुओं के मन में रुक्मिणी तुम्हें देने की है और बड़े भ्राता रुक्मीने शिशुपाल को देने का निश्चय करा है इत्यादि सब वर्णन करा ॥ ३६ ॥ (रुक्मिण्या स्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम् ॥ मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिन्हामदर्शयत् ॥ अर्थात्—रुक्मिणी की अपनेआप एकान्त में लिखकर दीहुई पत्रिका, उस ब्राह्मण ने उत्तम वस्त्र की थैली में से बाहर निकाली और रुक्मिणी ने जिस के ऊपर प्रेम की मुद्रा (मोहर) लगाई है ऐसी वह पत्रिका श्रीकृष्णजी को दिखाई फिर वह ब्राह्मण ही श्रीकृष्णजी की आज्ञा से पत्रिका को वांचता है) रुक्मिणी कहती है कि—हे त्रिभुवन में सुन्दर अच्युत! सुननेवाले पुरुषों के कानों के छिद्रों में को होकर हृदयके भीतर प्रवेश कर के आध्यात्मिक आदि तापों को दूर करनेवाले तुम्हारे गुणों को सुनकर तथा नेत्र वाले पुरुषों के नेत्रों को देखने योग्य सकल विषयों का लाभ करा देनेवाले तुम्हारे स्वरूप को सुनकर निर्लज्ज हुआ मेरा चित्त तुम्हारे विषैं आसक्त हुआ है ॥ ३७ ॥ यदि कहो कि—तुम कुलीन कन्या को ऐसा उद्धतपना योग्य नहीं है तो सुनो—यह सन्देह मन में न लाओ क्योंकि—हे मुक्तिदातः! मनुष्यश्रेष्ठ! कुलीन, गुणों कर के उदार धीरजवती कौनसी कन्या, सत्कुल में जन्म, सुंदरस्वभाव, सुंदररूप, चौदह विद्या और चौंसठकला, तरुणाई, धन का सञ्चय और तेज कर के अनूपम तथा मनुष्यलोक के मन को आनन्द देने वाले तुम्हें, विवाह के योग्य समय में पतिरूप से न वरेगी?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिंह नरलोकमनोभिरामं ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आ-राद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्च-नादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां रा-क्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बंधूंस्त्वा-मुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नवधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्यांघ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महांतो वांछन्त्यु-

अर्थात् सब ही वरेंगी ॥ ३८ ॥ इसकारण हे विभो ! मैंने तुम्हें पति वर लिया है और अपना आत्मा भी तुम्हें अर्पण करदिया है इसकारण तुम यहां आकर मुझे अपनी भार्या करके लेजाओ, हे कमलनयन ! जैसे सिंह के भाग को शृगाल (गीदड़) स्पर्श नहीं करता है तैसे ही तुम वीर का भाग जो मैं तिस को शिशुपाल शीघ्र आकर स्पर्श न करे !, तुम नहीं आये अथवा विलम्ब लगा तौ–तैसा होना सम्भव है ॥ ३९ ॥ मैंने, जन्मान्तर में पूर्त्त (बावडी कुआ आदि),इष्ट (अग्निहोत्र आदि), दान (सुवर्णदानआदि) नियम (तीर्थयात्रा आदि) और व्रत (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि) इन करके तथा देवता ब्राह्मण, गुरु आदि की पूजा आदि करके, ब्रह्मादिकों के नियन्ता भगवान् की यदि यथा शक्ति आराधना करी हो तो उस से प्रसन्न हुए वह भगवान् श्रीकृष्ण ही आकर मेरा पाणिग्रहण करें, दूसरे शिशुपाल आदि न करें ॥ ४० ॥ यदि कहोकि--तेरे बान्धवों ने तू शिशुपाल को देदी है फिर हम तहाँ आकर क्या करेंगे ? तो सुनो–हे अजित ! दूसरे दिन विवाह होनेपर तुम एकदिन पहिले गुप्तरूप से विदर्भ देशों में आकर फिर सेनापतियों से घिर कर और शिशुपाल जरासन्ध आदि राजाओं की सेनाओं का तिरस्कार करके बलात्कार कर के (जबरदस्ती) राक्षसविधि से, पराक्रम दिखाना ही जिस का मूल्य है ऐसी मुझ को वरकर लेजाओ ॥ ४१ ॥ यदि कहो कि–रणवास में रहनेवाली तुझ को हरने में तेरे बन्धुओं का वध करने का अवसर आजायगा, उन को विना मारे तुझे कैसे वरूँगा तो सुनो–इस कुल में विवाह से पहिलेदिन कुलदेवी के दर्शन की बड़ी भारी यात्रा है, जिस यात्रा में नवीन वधू नगर के बाहर की गिरिजा देवी का दर्शन करने के निमित्त जाती है, सो अम्बिका के मंदिर में से ही मेरा हरण करना सुलभ है॥ ४२ ॥ इसप्रकार अपने को स्वीकार करने की भगवान् से प्रार्थना करके,ऐसा नहीं हुआ तो अपना निश्चय कहती है कि–हे कमलनेत्र ! महादेव तथा उन की समान दूसरे ब्रह्मादिक भी अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यब्जाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते म० द० उ० रुक्मिणीउद्वाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्पर्यागतवत्यंगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमे-

अज्ञान के दूर करने के निमित्त जिस, तुम्हारे चरणरज के कणों से स्नान करने की इच्छा करते हैं ऐसे तुम्हारा, स्वीकारकरना रूप प्रसाद में नहीं पाऊँगी तो, उपवास आदि व्रतों से देह को सुखाकार व्याकुलहुए प्राणों को त्यागदूँगी, ऐसा ही वारम्वार करूँगी तव किसी जन्म में तो तुम्हारा प्रसाद होगा ही ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—हे यादवों में श्रेष्ठ ! ऐसा यह रुक्मिणी का गुप्त सन्देशा मैं लाया हूँ, इस विषय में अब तुम्हें जो कुछ करना होय उस का विचार करके शीघ्र करो ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में द्विपञ्चाशत् अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे तरेपनवें अध्याय में, अद्भुतलीला धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी ने, विदर्भदेश में जाकर, सब शत्रुओं के देखतेहुए, बलात्कार से रुक्मिणी का हरण करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! उन श्रीकृष्णजी ने, रुक्मिणी का सन्देशा सुनकर, अहने हाथ से उस ब्राह्मण का हाथ पकडकर हँसते २ कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जैसे वह विदर्भकुमारी व्याकुलचित्त होरही है तैसे ही मुझे भी व्याकुल होने के कारण रात्रि में निद्रा भी नहीं आती है, क्योंकि—मेरे द्वेष से ही रुक्मी ने मेरे विवाह का निषेध करा है, यह मैं तुम्हारे विना कहे भी जानता हूँ ॥ २ ॥ इसकारण राजाओं में अधम उन शिशुपाल आदिकों का युद्ध में तिरस्कार करके जिस को मैं ही पतिरूप से माननीय हूँ उस सर्वाङ्गसुन्दरी रुक्मिणी को मैं, जैसे वायु जलतेहुए काठ में से अग्नि की ज्वाला को हरण करता है तैसे हरण करूँगा ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर फिर उन श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी के विवाह का नक्षत्र परसों के दिन की रात्रि है ऐसा, जानकर, हे दारुक ! शीघ्रही रथ में घोड़े जोड़कर ले आ, ऐसा सारथी से कहा ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घपुष्पबलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीयं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥६॥ राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥८॥ स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च वि-

वह दारुक भी, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़ों से जुताहुआ रथ श्रीकृष्णजी के समीप लाकर हाथ जोडकर आगे खड़ा होगया ॥ ५ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने, उस ब्राह्मण को रथ पर बैठाकर और आप भी चढ़कर शीघ्र चलनेवाले उन घोडों के द्वारा आनर्त्तदेशों से चलकर एक रात्रि में ही विदर्भदेशों में गमन करा ॥ ६ ॥ इधर विदर्भदेशों का स्वामी, पुत्र के स्नेह से उस की इच्छा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला वह राजा भीष्मक, अपनी कन्या रुक्मिणी शिशुपाल को देने के निमित्त, नगर को सजवाना और देवताओं की पूजा प्रारम्भ कराना आदि कार्यों को करनेलगा ॥ ७ ॥ उस समय, जिस में, झाड़ेहुए और छिड़केहुए मार्ग, गली और चौहाटे हैं ऐसा वह नगर, चित्रविचित्र ध्वजाओं में बाँधीहुई पताकाओं करके और स्थान २ पर बाँधीहुई वन्दनवारों करके उत्तम रीति से सजायागया था ॥ ८ ॥ तथा माला, गन्ध, पुष्प, भूषण और स्वच्छ वस्त्रों से भूषित स्त्रीपुरुषों करके सेवन कराहुआ और अगर से सुगन्धित हुए स्थानों से युक्त था ॥ ९ ॥ हे राजन्! राजा भीष्मक ने, पितर देवता और ब्राह्मणों का विधिपूर्वक पूजन करके तैसे ही ब्राह्मणों को उत्तम प्रकार से भोजन करवाकर उन ब्राह्मणों से कन्या का पुण्याहवाचन करवाया ॥ १० ॥ तैसे ही विवाहसूत्र (कँगना) बाँधकर जिस का मंगल करा है और जिस को उत्तम प्रकार से स्नान करवाया है ऐसी उस सुन्दर दाँतोंवाली कन्या को कोरे वस्त्र उढाकर और दूसरे पहिराकर उत्तम गहनों से भूषित करा ॥ ११ ॥ और उससमय उस को श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने, सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद के मंत्रों से अभिमंत्रण कराहुआ भस्म लगाकर उस कन्या की रक्षाविधि करी. अथर्ववेद में के शान्तिकल्प को जाननेवाले पुरोहित ने, प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति के निमित्त अग्नि में ग्रहयाग करा ॥ १२ ॥ उस समय शास्त्र में कही हुई रीतियों को जाननेवालों में श्रेष्ठ तिस राजा भीष्मक ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुतांय वै ॥ कारयांमास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ । मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यंदनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्रो विदूरथः॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुभूर्भुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हंतुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता साधं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मक-

ब्राह्मणों को, सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र और गुड़ मिलेहुए तिल तथा गौओं का दान दिया ॥१३॥ ऐसे ही चेदिदेशों का स्वामी जो दमघोष नामक राजा तिस ने अपना पुत्र जो शिशुपाल तिस के भी विवाह के विषय में उचित जो कर्म सो सब मंत्र जाननेवाले ब्राह्मणों से करवाये ॥१४ ॥ तदनन्तर सुवर्ण के फूलों की माला धारण करनेवाले और जिनके मद टपक रहा है ऐसे हाथियों के समूहों से, रथों से, पैदलों से और घुड़सवारों से भरी हुई सेनाओं से घिराहुआ वह शिशुपाल, अपने नगर से कुण्डिनपुर को चलदिया ॥ १५ ॥ फिर उस को अपने नगर के समीप आयाहुआ सुनकर विदर्भ देशों के स्वामी राजा भीष्मक ने, उस शिशुपाल की अगवानी में जाकर और उस की सीमान्त पूजा करके, वरके ठहरने के योग्य जो दूसरा स्थान नियत कररक्खा था उस में ठहरवाया ॥ १६ ॥ उस कुण्डिनपुर में शिशुपाल के पक्षपाती, बलराम-कृष्ण से द्वेष करनेवाले-शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि सहस्रों राजे, 'यदि बलराम आदि यादवों से युक्त श्रीकृष्ण,आकर कन्या का हरण करेगा तो हम सब मिलकर उस के साथ युद्ध करेंगे' ऐसा मन में निश्चय करके सावधानी के साथ अपनी २ सकल सेना और वाहनो से युक्त हो, शिशुपाल को कन्या दिलवाने के निमित्त आये थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इधर द्वारका में भगवान् बलरामजी ने, शत्रु का पक्ष करनेवाले राजाओं का यह उद्योग सुनकर, तथा सहायकों के विना इकले ही श्रीकृष्ण को कन्या हरण करने के निमित्त गयाहुआ सुनकर और तहाँ श्रीकृष्ण का और तिन राजाओं का कलह होगा मन में ऐसा सन्देह करके, भ्राता श्रीकृष्णजी के ऊपर जो स्नेह तिस से व्याप्त होतेहुए वह हाथी, घोडे, रथ और पैदलों से युक्त बडीभारी सेना के साथ कुण्डिनपुर को चल दिये ॥ २० ॥ २१ ॥ इधर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः ॥ मत्यांपत्तिगर्पश्यंती द्विजस्याचिंतयत्तदा। ॥ २२ ॥ अहो त्रियामांतरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नांगच्छत्यरविंदाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥ एवं चिंतयती बाला गोविंदहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविंदागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रा-

जिस का कटिस्थान सुन्दर है ऐसी रुक्मिणी सूर्योदय से पहिले ही श्रीहरि के आने की इच्छा करती हुई, अभी तक ब्राह्मण का लौटकर आना क्यों नहीं हुआ ऐसा जानकर उस समय मन में चिन्ता करने लगी कि— ॥ २२ ॥ अहो! मुझ मन्दभागिनी का विवाह होने के मध्य में एक ही रात्रि रही है, अब भी भगवान् श्रीकृष्णजी क्यों नहीं आये इस का क्या कारण है? सो मैं नहीं जानती हूँ ॥ २३ ॥ और मेरा सन्देशा लेकर गयाहुआ वह ब्राह्मण भी अभी नहीं आया; इस से यह अनुमान होता है कि— स्तुतियोग्य स्वरूपवाले उन भगवान् ने, पहिले इधर आने का उद्योग करा था इसकारण उस ब्राह्मण को भी लौटाकर नहीं भेजा. फिर प्रस्थान के समय श्रीकृष्णजी ने मेरा कोई उद्धतपने का दोष मन में विचारकर मेरा पाणिग्रहण करने को आगमन नहीं किया है और ब्राह्मण को लौटा दिया होगा इसकारण उस को भी आने में विलम्ब लगा है ॥२४॥ ऐसी भाग्यहीन मेरे विधाता और महादेव भी अनुकूल (कार्यसाधक) नहीं हैं तथा हिमालय की कन्या पतिव्रता रुद्राणी गौरीदेवी भी मेरे प्रतिकूल हुई है ॥२५॥वह बाला रुक्मिणी इसप्रकार चिन्ता कररही थी और अब भी श्रीकृष्णजी के आने का समय नहीं हुआ ऐसा मानकर, जिसका चित्त गोविन्द ने हर लिया है ऐसी हो दुःख के आंसुओं से भरेहुए नेत्रोंको मूँदकर बैठगई॥२६॥हे राजन्! इसप्रकार गोविन्दके आने की बाट देखनेवाली तिस रुक्मिणी को शुभ सूचना देनेवाले बाईं भुजा और बायां नेत्र यह उस के अङ्ग फड़कने लगे ॥२७॥ फिर, श्री कृष्णजी नें,मैं आगया ऐसी रुक्मिणी को सूचना दो,यह कहकर भेजेहुए तिस ही श्रेष्ठ ब्राह्मण ने,रणवास में रहनेवाली तिस रुक्मिणी देवी को देखा॥२८॥तब वह रुक्मिणी, जिस के शरीर की दशा घबड़ाई हुई न होकर शान्त है ऐसे हर्षयुक्त मुखवाले तिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि च ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य

ब्राह्मण को देखकर, भगवत्परायण और कार्य सिद्ध करनेवाले दूत के लक्षण जाननेवाली पवित्र हास्ययुक्त वह, ' कार्य करके आये ? ' ऐसा कहकर बूझनेलगी ॥ २९ ॥ तब उस रुक्मिणी को तिस ब्राह्मण ने ' श्रीकृष्ण आगये हैं ' ऐसी सूचना (खबर) दी और उस के समीप श्रीकृष्णजी की प्रशंसा भी करी, तथा रुक्मिणी को लेजाने के विषय में, ' युद्ध में दुष्ट राजाओं को जीतकर उस को मैं लाता हूँ ऐसा ' जो भगवान् ने सत्य कहा था वह भी तिस ब्राह्मण ने सुनाया ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णजी आये हैं ऐसा जानकर जिस का मन हर्षयुक्त हुआ है ऐसी तिस रुक्मिणी के, परमानन्दरूप श्रीकृष्णजी को लाकर समर्पण करनेवाले इस ब्राह्मण को क्या भेट दूँ ? ऐसा विचार करते हुए इसकार्य के बदले में नमस्कार के सिवाय यदि सर्वस्व देदूँ तो भी वह पूरा न होकर कम ही है ऐसा देखतीहुई उस ने तिस समय उसे केवल नमस्कार ही करा और फिर बहुतसा द्रव्य भी दिया ॥ ३१ ॥ उससमय, मेरी कन्या का विवाह देखने को उत्कण्ठित हुए बलराम-कृष्ण आये हैं ऐसा सुनकर राजा भीष्मक, गाजेबाजे और पूजा की सामग्रीसहित उन की अगवानी को गया ॥ ३२ ॥ फिर, उस भीष्मक ने उन को मधुपर्क नवीन बढ़िया वस्त्र और प्रिय उत्तम २ वस्तुओं की भेट अर्पण करके; वह बुद्धिमान् था इस कारण, श्रीकृष्ण निःसन्देह कन्या को वरने के निमित्त ही आये हैं ऐसा जानकर उसने, वरपूजा की विधि से उन का पूजन करा और सेनासहित तथा सेवकादिकों सहित तिन बलराम-कृष्ण को, भोग की सामग्री आदि सम्पदा से युक्त, ठहरने का स्थान निवेदन करके उन का उत्तम रीति से सत्कार करा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार और भी सब आयेहुए राजाओं को उन का जैसा पराक्रम, जैसी अवस्था, जैसा बल और जैसा ऐश्वर्य था उस के अनुसार सकल भोग अर्पण कर के राजा भीष्मक ने उन का सत्कार करा ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी आगये हैं ऐसा सुनकर उस विदर्भपुर में के लोगों ने जिधर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चान्तःपुरात्सागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चानुध्यायती सम्यङ् मुकुन्दचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गंधवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥ ४२ ॥ गायंतश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवंदिनः॥४३॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शांता प्रविवेशांबिकां

तिधर से श्रीकृष्णजी के समीप आकर अपने नेत्ररूप अञ्जुलियों से, उन के मुखकमल के अमृत को पिया ॥ ३६ ॥ और आपस में ही ऐसा कहने लगे कि—इन श्रीकृष्णजी की स्त्री होने को तो रुक्मिणी ही योग्य है, दूसरी कोई नहीं; और रुक्मिणी के भी,प्रशंसनीय शरीरवाले यह श्रीकृष्णजी ही पति होने के योग्य हैं ॥ ३९ ॥ इस से हमारा जन्मान्तर में कराहुआ यदि कुछ पुण्य होय तो उस से यह त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीकृष्ण जी, प्रसन्न होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें और रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें ॥ ३८॥ इसप्रकार प्रेम के अंश से बँधे हुए पुरवासी लोक कहनेलगे, इधर वह कन्या, रणवास में से शूर पुरुषों से रक्षा करी हुई अम्बिका देवी के मठ में जाने को चलदी॥ ३९॥ वह उत्तम प्रकार से श्रीकृष्णजी के चरणकमल का वारम्वार ध्यान करती हुई पैदल चलकर ही भवानी देवी के चरणपल्लव देखने के निमित्त चली ॥ ४० ॥ वह मौनव्रत धारण करनेवाली और धाइयों से तथा सखियों से घिरीहुई थी, कवच (वख्तर) धारण करनेवाले और शस्त्र ऊपर को उठाकर धारण करनेवाले शूर योधाओं से रक्षाकरी हुई थी ॥ ४१ ॥ उससमय मृदङ्ग, शंख, पणव, डंके, और दुन्दुभि नामवाले वाजे वजने लगे. नानाप्रकार की पूजा की सामग्री. पक्वान्न आदि नैवेद्य, और फलों के थाल भरकर लेजानेवालीं सहस्रों श्रेष्ठ स्त्रियें;माला, गन्ध, वस्त्र और भूषणों से सजीहुई ब्राह्मणों की स्त्रियें, गानेवाले गवैये और वाजे वजानेवाले वजवैये तथा स्तुति आदिकरनेवाले सूत, मागध और वन्दी यह सब, उसकन्या को चारों ओर से घेरकर चलदिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वह रुक्मिणी, देवी के मन्दिर के समीप पहुँची तहाँ उसने करचरणकमलों को धोकर और जल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकांऽतिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञां विप्रयोषितः ॥ भवानीं वंदयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम्॥४५॥नमस्ये त्वांबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवां॥भूयात्पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदतां।४६।अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रग्भाल्यभूषणैः॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक्॥४७॥विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपताम्बूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः॥४८॥तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ॥ श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलेशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिंबफलाधरद्युतिशोणायमानद्विज-

का आचमन करके पवित्र तथा शान्त हो अम्बिका देवी के समीप गई ॥ ४४ ॥ उस समय अवस्था में वृद्ध और देवी के पूजन की रीति को जानने वाली, सौभाग्यवती पुरोहित के घरकी स्त्रियों ने, महादेवजी की अर्द्धाङ्गिनी भवानी देवी को तिस रुक्मिणी से दण्डवत करवाई ॥ ४५ ॥ उससमय रुक्मिणी को अपनेआप इसप्रकार मंत्र का अर्थ स्फुरण हुआ कि—हे अम्बिके ! अपनी गणेश आदि सन्तानयुक्त और मङ्गलरूप तुझे मैं वारंवार नमस्कार करती हूँ; भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पति हों, इस विषय में तू अनुग्रह कर ॥ ४६ ॥ इसप्रकार नमस्कारपूर्वक वर की प्रार्थना करके फिर शुद्ध जल, गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, फूलों की माला, पुष्प, भूषण, नानाप्रकार के नैवेद्य और अन्य भी नारियल आदि पूजाकी सामग्री तथा आरती आदि भिन्न २ पदार्थ समर्पण करके रुक्मिणी ने देवी का पूजन करा ॥ ४७ ॥ तिनही पदार्थों से तथा लवण, पुए, ताम्बूल, कंठसूत्र, फल और ईख (गन्ने) से युक्त वायने समर्पण करके सौभाग्यवती ब्राह्मणों की स्त्रियों का पूजन करा ॥ ४८ ॥ फिर, उन स्त्रियों ने तिस रुक्मिणीको, देवी का नैवेद्य आदि प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये—रुक्मिणीने, देवी को और उन सौभाग्यवतियों को नमस्कार करके तिस नैवेद्य आदि के प्रसादको ग्रहण करा ४९ ॥ तदनन्तर मौनव्रत को त्यागकर रत्नजड़ी अंगूठियों से शोभायमान अपने हाथ से सखी का हाथ पकड़कर वह रुक्मिणी, तिस अम्बिका के मठ में से बाहर निकली ॥ ५० ॥ तब उस को देखकर तहां आयेहुए वह यशस्वी वीर, तिस रुक्मिणी के दर्शन से उत्पन्न हुए कामदेव से पीड़ित होकर मोह को प्राप्त होगये; मानो देव(भगवान्)की माया ही है ऐसी वीरों को मोह उत्पन्न करनेवाली, जिस की कटि (कमर) पतलीहै, जिस का मुख कानो में के कुण्डलों से अतिशोभायमान है, जिस को रजोदर्शन का समय नहीं प्राप्तहुआहै, जिस की कमर में रत्नजडी मेखला है, जिस के तरुणाई के सूचक स्तन-प्रकटहुए हैं जिस के नेत्र घुँघुराले केशों से शंका मानकर ही मानो चंचल होरहेहैं॥५१॥जिस का हास्य पवित्र है, जिसके दाँत-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुन्दकुड्मलां ॥ पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ॥ ५३ ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभां ॥ ॥ ५४ ॥ सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्दृशऽच्युतं सा ॥ ५५ ॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षतां ॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान्यशऽ आत्तधन्विनां गोपै-

पकीहुई तन्दूरी की समान अधर ओठ की कान्ति से लाल २ होकर कुन्दकी कलीकी समान दमक रहे हैं, जो राजहंस की समान चलनेवाली है और शब्द करनेवाले शोभायुक्त नूपुरों की कान्ति से शोभायमान चरणों से चलरही हैं ऐसी तिस रुक्मिणी को देखकर वह वीर मोहित होगये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ वह केवल मोहित ही नहीं हुए किन्तु सवारियों पर से नीचे भी गिरपड़े ऐसा वर्णन करते हैं कि—तहां आयेहुए श्रीहरि को जाने के मिष से अपनी शोभा दिखानेवाली तिस रुक्मिणी को देखकर, हाथी, रथ और घोड़ों के ऊपर चढ़ेहुए वह जरासन्ध आदि राजे, उस के सुखदायक हास्य से और लज्जा युक्त चितवन से जिन के चित्त आकर्षित हुए हैं ऐसे मूर्छित होकर भूमिपर गिरपड़े ॥ ५४ ॥ इसप्रकार वह रुक्मिणी भगवान् कब मिलेंगे ऐसी वाट देखती हुई, कमल की कलियों की समान अपने चरण धीरे २ धरतीहुई और दाहिने हाथ के नखों से अपने बिखरे केश पीछे को सम्हाल कर, आयेहुए राजाओं की ओर को लज्जा से देखनेवाली उस ने, अकस्मात श्रीकृष्णजी को देखा और उन के रथ की ओर जाने को उद्यत हुई ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णजी ने, रथपर चढ़ने को इच्छा करनेवाली तिस राजकन्या को, शिशुपाल आदि सब शत्रुओं के देखते हुए, रथ खड़ा कर के उस को हाथ पकड़ाकर अपने गरुड़ध्वज आदि चिन्ह युक्त रथपर को खैंचलिया और सकल राजगण्डली को कुछ न गिनकर, जिन में बलराम अग्रणी हैं ऐसे यादवों के साथ, जैसे सिंह गीदड़ों के समूह में से अपने भाग को निर्भयपने से धीरे २ उठाकर लेजाता है तैसे ही श्रीकृष्णजी धीरे २ लेकर चलदिये ॥ ५६ ॥ तब दुरभिमान धारण करनेवाले और जरासन्ध के अधीन रहनेवाले शत्रुओं ने, कन्या हरण के द्वारा अपना तिरस्कार और अपने यश का नाश हुआ मानकर उस को सहन नहीं करा और चिल्लाने लगे कि—अहो! कैसा आश्चर्य है जो हम धनुषधारियों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति० भा० म० द० उ० रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रांता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापततो आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ ॥ विनंक्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हस्तिरथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊ-

भी यश, जैसे सिंहों का यश हिरन हरलें तैसे गोपों ने हरलिया ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे चौअनवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी ने शत्रु के पक्षपाती राजाओं को जीतकर और रुक्मी को विरूप करके द्वारका में रुक्मिणी का पाणिग्रहण करा यह कथा वर्णन करीहै ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! ऐसा भाषण करनेवाले वह सब राजे, अत्यन्त क्रोध में भरगये और कवच पहिनकर, धनुष धारण करके तथा अपने २ वाहनों पर चढ़कर अपनी २ सेनाओं को चारों ओरलेकर श्रीकृष्णजी के पीछे भागनेलगे ॥ १ ॥ तदनन्तर हे राजन्! वह शत्रु पीछे से आरहे हैं ऐसा देखकर यादवसेना के अभिपति, अपने २ धनुषों का टङ्कार शब्द करके उन के सन्मुख खड़ेहुए ॥ २ ॥ तब युद्ध में चतुर वह जरासन्ध आदि वीर, घोड़े की पीठपर हाथी के कंधेपर और रथ के आगेके भाग में बैठकर जैसे मेघ पर्वतपर जल की धारा छोड़ते हैं तैसे बाणों की वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ तब कोमलचित्त वह रुक्मिणी, पति (श्रीकृष्णजी) की सेना, बाणों की वर्षाओं से ढकगई ऐसा देखकर जिसके नेत्र भय से विह्वल हुए हैं ऐसी होकर लज्जा के साथ उन श्रीकृष्णजी के मुख की ओर को देखने लगी ॥ ४ ॥ तब भगवान् ने हँसकर कहा कि—हे सुन्दरनयने! तू भय न कर, तेरी सेना में के पुरुषों से शत्रुओं की यह सेना अब ही नाश को प्राप्त होजायँगी ॥ ५ ॥ सो इतने ही में जरासन्ध आदि के उस पराक्रम को न सहनेवाले गदसङ्कर्षण आदि वीर, अपने बाणों से उन के घोड़े, हाथी और रथों का संहार करने लगे ॥ ६ ॥ उस समय रथियों के घोड़ों के सवारों के और महावतों के कुण्डलकिरीटोंसहित तथा पगड़ी आदि शिर के वेष्टनोंसहित करोड़ों मस्तक बाणों से कटकर गिरने लगे ॥ ७ ॥ तरवार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रथोंऽघ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥ हन्यमानबलानीका दृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरःसराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरं ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ ॥ १० ॥ भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठां देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया॥ एवमीश्वरतन्त्रोयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सेवे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवं प्र-

गदा और धनुषों सहित हाथ, हाथों के पंजे, जंघा और पैर कटकर गिरपडे; तथा घोडे, खिच्चर, हाथी, ऊँट, गदहे और वीरों के मस्तक कट २ कर गिरनेलगे ॥ ८ ॥ उस समय जय की इच्छा करनेवाले यादवों ने, जिन की सेना का समूह मारडाला है ऐसे वह जरासन्ध आदि राजे युद्ध को पीठ देकर भागगये ॥ ९ ॥ वह राजे, मानो स्त्री ही हरी गई है इसकारण व्याकुल हुए, तेजरहित, उत्साहशून्य और जिस का मुख सूखगया है ऐसे शिशुपाल के पास जाकर कहने लगे कि– ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! अपना विवाह रुकजाने से प्राप्त हुए इस खेद को तुम त्यागो, क्योंकि– हेराजन्! सुख और दुःख प्राणियों में स्थिररूप से कभी भीदेखने में नहीं आता है ॥ ११ ॥ जैसे काठ की पुतली नचानेवाले की इच्छा के अनुसार नाचती है तैसे ही ईश्वर के अधीन हुआ यह जीव भी अपने सुख दुःख की खटपट करता है सो परवश होने के कारण सुख पाने का यत्न करता हुआ भी कभी दुःख पाता है ॥ १२ ॥ जरासन्ध ने कहा कि–सत्रहवार युद्ध में तेईस २ अक्षौहिणी सेना को साथ में लेकर युद्ध करनेवाला भी मैं श्रीकृष्ण से तिरस्कार को प्राप्त हुआ परन्तु अगला अठारहवां एक युद्ध मैंने जीता है अर्थात् उस समय श्रीकृष्ण को मैंने भगाया है ॥ १३ ॥ तो भी (हार वा जीत होने पर भी) परमेश्वर के प्रेरणा करेहुए काल से सकल जगत् को उलट पुलट कराहुआ जानकर मैं कभी भी शोक वा हर्ष नहीं करता हूँ; इस समय वीरों के जो समूहों के समूह तिन के अधिपति भी हम सब, थोड़ीसी सेनावाले श्रीकृष्ण के रक्षा करेहुए यादवों से तिरस्कार को प्राप्त हुए हैं॥१५॥ सो शत्रुओंने, समय अपने अनुकूल होने पर इससमय हमें जीतलिया है परन्तु जब समय हमारे अनुकूल होगा तो हम भी इन को जीतडालेंगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरं ॥ हतशेषाः पुनस्ते ऽपि यय्युः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजां ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ नोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविंद तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य

॥ १६ ॥ इसप्रकार जरासन्ध आदि मित्रों ने समझाया तब शिशुपाल, मरने से शेष रहेहुए अपने सेवक आदिकों के साथ नगर में को चलाआया और युद्ध में शेष रहेहुए वह जरासन्ध आदि राजे भी फिर अपने २ नगर को लौटगये ॥ १७ ॥ इधर, बलवान और कृष्ण से द्वेष करनेवाला रुक्मी तो अपनी बहिन को श्रीकृष्णजी का राक्षसविधि से हरण करना न सहताहुआ एक अक्षौहिणी सेना अपने चारों ओर लेकर श्रीकृष्णजी के पीछे उन को जीतने को दौड़ा ॥ १८ ॥ तिस दौडने से पहिले रुक्मिणी का हरण सह्य न होने के कारण अतिक्रोध में भरे, कवच पहिरे और धनुष धारण करेहुए तिस महाबली रुक्मी ने, सब राजाओं के सुनतेहुए यह प्रतिज्ञा करी कि-- ॥ १९ ॥ हे राजाओं! मैं युद्ध में श्रीकृष्ण को मारेविना और अपनी छोटी बहिन रुक्मिणी को पीछे को लौटाकर लायेविना, अपने कुण्डिनपुर में ही नहीं घुसूँगा, यह तुम से सत्य कहता हूँ ॥ २० ॥ ऐसा कहकर वह रथपर बैठा और शीघ्रता में भराहुआ सारथी से कहने लगा कि—जहां श्रीकृष्ण है तहां को शीघ्र ही घोडे हांक जिस से कि उस कृष्ण के साथ मेरा युद्ध हो ॥ २१ ॥ आज मैं तीखे बाणों से, जिस ने मेरी बहिन का बलात्कार से हरण करा है तिस दुष्टबुद्धि * गोपाल + की (कृष्ण की) वीरता का मद ढाऊँगा ॥ २२ ॥ ऐसी बडबड करनेवाला, दुष्टबुद्धि और तिन श्रीकृष्ण के बल आदि की इयत्ता (हद्द) को न जाननेवाला वह रुक्मी, एकही रथ से श्रीकृष्णजी के पीछे भागताहुआ 'खडारह २' ऐसा कहकर उन गोविन्द को पुकारनेलगा ॥ २३ ॥ उस ने

* वास्तविक अर्थ यह है कि-दुष्टों के ऊपर जिस की बुद्धि उत्तम (दयायुक्त) है ।
\+ गो कहिये वेदवाणी तिस का पालक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः॥आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन॥२४॥कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मंदं मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुंच दारिकाम् ॥ संयन्कृष्णो धनुश्छित्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम्॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पंचभिः२७॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव पावकं ॥ ३० ॥ तस्य चापततः

अपने अतिदृढ धनुष को खेंचकर उसपर वाण चढ़ा तीन वाणों से श्रीकृष्णजी के ऊपर प्रहार करा और वह कहनेलगा कि—हे यादवों के कुलपांसन * (कुलदूषण) तू मेरे आगे क्षणभर को खडा रह ॥ २४ ॥ हे मन्द ! + जैसे ध्वांक्ष × (कौआ) यज्ञ में होम के द्रव्य को लेजाता है तैसे मेरी बहिन को चुराकर तू कहां को चलदिया ? तुझ कपटयुद्ध करनेवाले और मायावी का गर्व मैं अब ढाये देता हूँ ॥ २५ ॥ जबतक मेरे वाणों से ताड़ित होकर भूमि पर मरकर नहीं गिरे तब तक कन्या रुक्मिणी को तू छोडदे; तब तो श्रीकृष्णजी ने भी हँसकर उस का धनुष तोडकर उस रुक्मी को छः वाणों से वेधडाला ॥ २६ ॥ आठ वाणों से चार घोडे मारे, दो वाणों से सारथी को मारा और तीन वाणों से ध्वजा तोडी तब उस रुक्मी ने दूसरा धनुष लेकर पाँच वाणों से श्रीकृष्णजी को वेधा ॥ २७ ॥ तब पाँच वाणों से ताड़न करेहुए भी उन श्रीकृष्णजी ने, उस धनुष को भी काटदिया, तब उस ने फिर दूसरा धनुष लिया उस को भी श्रीकृष्णजी ने काटडाला ॥ २८ ॥ फिर उस रुक्मी ने श्रीकृष्ण को मारने के निमित्त-परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तरवार, शक्ति, तोमर आदि जो २ शस्त्रग्रहण करे उन २ सब को तत्काल श्रीकृष्णजी ने काटडाला ॥२९॥ फिर क्रोध में भराहुआ वह रुक्मी, रथ से नीचे कुलाँच मारकर और हाथ में तरवार लेकर श्रीकृष्णजी को मारने के निमित्त उन के ऊपर को, जैसे पतंग कीडा अग्नि का नाश करने के निमित्त उस के ऊपर को, दौडता है तैसे दौड़ा ॥३०॥ तब दौडकर आनेवाले

* यहां कुलप और असन दो पद हैं सो कुलप कहिये कुल की रक्षा करनेवाला और असन कहिये शत्रुओं का घात करनेवाला ऐसा अर्थ करना । + हे स्थिर ऐसा अर्थ करना । × यहां अध्वांक्षवत् ऐसा पद निकालकर उस का अर्थ इन्द्र की समान, यह करना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ छित्त्वासिमादाय निधिं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्तुः रुरोच करुणं सती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तयोपरिवासविकंपितांगया शुचोवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४ ॥ चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं समश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितं ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सु-

रुक्मी की तरवार के और ढाल के तिल २ की समान टुकड़े करके वह श्रीकृष्णजी, अपने हाथ में तीखी तलवार लेकर उस रुक्मी के मारने को उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ तब अपने भ्राता के मारेजाने का उद्योग देखकर भय से विह्वल हुई वह सती रुक्मिणी, पति के चरणों पर पडकर बड़ी करुणा के साथ कहनेलगी कि– ॥ ३२ ॥ हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयस्वरूप ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! हे कल्याण ! और हे महापराक्रमी ! तुम मेरे भ्राता को मारने को योग्य नहीं हो अर्थात् इस के प्राणों की मुझे भिक्षा दो ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! इस प्रकार कहकर अत्यन्त भय से जिस के हाथ पैर आदि अंग थर २ काँपरहे हैं, जिस का मुख शोक से सूखाजाता है, जिस का कण्ठ भर आया है और विह्वल होने के कारण नमस्कार करतेसमय जिस के कण्ठ में की सुवर्ण के फूलों की माला नीचे निकलपडी है ऐसी तिस रुक्मिणी ने जिन के चरण पकडलिये हैं ऐसे वह श्रीकृष्णजी उस रुक्मी को मारने से रुके ॥ ३४ ॥ तदनन्तर खोटा कर्म करनेवाले तिस रुक्मी को श्रीकृष्णजी ने, उस के ही वस्त्र से बाँधकर, कहीं कहीं दाढ़ी मूछें और केश शेष रहें ऐसी रीति से उस ही तलवार से मुंडन करके उस को कुरूप करदिया ; इतने ही में हाथी घोडे आदिकों से अद्भुत तिस शत्रु की सेना को, वीरयादवों ने, जैसे हाथी कमलिनियों को मसले तैसे मसलडाला ॥ ३५ ॥ और उन्होंने कृष्ण के पास आकर तहाँ कुरूप करने के कारण मृतकसमान हुए तिस रुक्मी को देखा ; और बलरामजी ने भी बाँधेहुए और तिस प्रकार मुंडन करने से मृतसमान हुए तिस रुक्मी को देखकर बन्धन से छुटाया और वह प्रभु दयालु भगवान् बलराम श्रीकृष्णजी से बोले कि– ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! रुक्मी की दाढ़ी मूछ और केश जो मूँडे सो यह अच्छा कार्य नहीं करा ; क्योंकि-ऐसा करना हम को बडा निन्दनीय है और सम्बन्धी पुरुषों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्वसूयेथा भ्रातुर्वै रूप्यचितया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ वधुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदां ॥ यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृद्दुदासीन इति देहात्मगानिनां ॥ ४३ ॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनां ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥ देहे आ-

दाढ़ीमूछ तथा केश मूँडकर जो कुरूप करना सो उन का वध करने की समान ही है ॥ ३७ ॥ ऐसा कहकर रुक्मिणी को समझाते हैं कि—हे सुशीला रुक्मिणी! भ्राता का रूप कुरूप हुआ ऐसा मन में विचारकर तू हमारे ऊपर दोष न लगा, क्योंकि—पुरुष को दुःख वा सुख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है किन्तु वह पुरुष ही अपने करेहुए कर्मों से ही सुख दुःखों को भोगता है ॥ ३८ ॥ फिर श्रीकृष्णजी से कहनेलगे कि -वधकरने के योग्य दोष करनेवाला भी बन्धु, अपने बन्धु से वध पाने के योग्य नहीं होता है किन्तु वह छोड़देने के ही योग्य होता है; क्योंकि—अपने करेहुए दोष से ही जो मृतकसमान होगया उस को फिर मारे ही क्या? छिःछिः उस को मारने से केवल अपजस ही होता है ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणी से कहनेलगे कि-जिस धर्म से युद्ध में भाई भी अपने भाई को मारता है तिस कारण यह क्षत्रियों का धर्म ब्रह्माजी ने अतिदारुण रचा है इस से उस में हमारा कौन अपराध है? अर्थात् कोई अपराध नहीं हैं ॥ ४० ॥ फिर श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि—हे कृष्ण! सम्पदा के घमण्ड से अन्धा (विवेकहीन) हुआ प्राणीमात्र, राज्य के, भूमिके, द्रव्य के, स्त्री के, प्रतिष्ठा के, तेज के अथवा और भी किसी वस्तु के निमित्त से अपने बंधुओं का तिरस्कार करते हैं परन्तु हमें वैसा करना योग्य नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणी से बोले कि—सकल प्राणियों का अहित (बुरा) करनेवाले अपने भ्राता का जो तू अनजान पुरुष की समान निरन्तर कल्याण चाहती है सो यह तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, क्योंकि—इस में उन बन्धु आदिकों का ही अमङ्गल है ॥ ४२ ॥ क्योंकि देह ही आत्मा है ऐसा अभिमान रखनेवाले पुरुषों को, मित्र, शत्रु और उदासीन इसप्रकार का बुद्धि का मोह होरहा है सो भगवान् की माया का रचाहुआ है ॥ ४३ ॥ अर्थात् सब ही प्राणियों का आत्मा एक और देह आदि से अलग है तथा उस को, वह माया से मूढ़ हुए पुरुष, शत्रु मित्रादिभाव से शत्रु-मित्र आदि नाना प्रकार का मानते हैं. जैसे अज्ञानी पुरुष जल में प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रमा आदिकों के तेज को अथवा घट मठ आदिकों में के आकाश को नाना प्रकार का मानते हैं तैसे ही ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्यंतवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्च सतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्त्वसिद्धेर्द्रष्टृपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रियां नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेंदोर्दृष्टिर्द्रष्टुरिहास्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथामोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य

आत्मस्वरूप में अविद्या से कल्पना कराहुआ यह अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप आदि अन्तवाला देहाभिमान ही, संसाररहित भी प्राणी को संसार में डालता है अर्थात् उस का शुद्धस्वरूप प्रतीति में न आताहुआसा होजाता है ॥ ४५ ॥ हे पतिव्रते ! सद्भावरहित दूसरे अधिभूतादिकों से आत्मा का संयोग वा वियोगकुछ भी नहीं है,उन भूतइन्द्रियादिकों की उत्पत्ति और प्रकाश का कारण आत्मा ही होने से जैसे-प्रकाश्य और प्रकाशक रूप से प्रसिद्ध भी चक्षुइन्द्रियादि की और रूप की प्रसिद्धि सूर्य से ही होती है और उस इन्द्रिय को तथा रूप को राजसत्व होने से उन का परस्पर अभेद होता है तैसे ही प्रकाश्य और प्रकाशकभाव से परस्पर प्रसिद्ध भी देहइन्द्रियादिकों का प्रकाश चैतन्य के अधीन है और वह देह इन्द्रियादि चैतन्य के कार्य होने के कारण तिस चैतन्य के विना उन का असत्व है॥४६॥ अब आत्मा को देह का सम्बन्ध न होने के कारण जन्म आदिक भी नहीं हैं ऐसा कहने के निमित्त,यह जन्मादिक देह के धर्म हैं ऐसा वर्णन करते हैं कि-यह जन्म आदि विकार देह के ही हैं, देह में स्थित रहनेवाले भी आत्मा के नहीं हैं;फिर मैं उत्पन्न हुआ, मैं बालक हूँ, इसप्रकार आत्मा में जन्म आदि की प्रतीति कैसे होती है ? ऐसा कहेतो सुन-देह का जन्मादि होने से ही ऐसा होता है,जैसे कलाओं की उत्पत्ति वृद्धि आदि से ही चन्द्रमा के जन्म आदि का व्यवहार होता है परन्तु वह पृथक् जन्म आदि चन्द्रमा के नहीं हैं तैसे ही देह के जन्म आदि से आत्मा के जन्मादि का भी व्यवहार होता है परन्तु वह जन्मादि उस आत्मा को वास्तव में नहीं प्राप्त होते हैं तैसे ही इस जीवात्मा का मरण भी जैसे-अमावास्या के दिन चन्द्रमा की कलाओं का नाश होनेपर चन्द्रमका ही क्षय हुआ ऐसा कहते हैं तिसी प्रकार देह का नाश होने पर जीवात्मा का ही नाश हुआ ऐसा कहते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है॥४७॥जैसे सोयाहुआ पुरुष देहादि सम्बन्धरूप अर्थ के न होनेपर भी देहादिरूपी भोक्ता बनेहुए अपने को, शब्दादि विषयों का और फलका भोगरूप अनुभव लेता है तैसे ही अज्ञानी जीवात्मा जन्मादिरूप संसार को पाता है ॥ ४८ ॥ इसकारण हे पवित्र हास्यवाली रुक्मिणि ! अपने को सुखानेवाले और विशेष करके मोह उत्पन्न करने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

स्वस्था भव शुचिस्मिते ४९ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेणप्रतिबोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हृतवलप्रभः ॥ स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः । ५१ । अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीं ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥ तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ॥ अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ परिवेष्टुपुपाजह्रुर्वरयोषित्रवाससः ॥ ५५ ॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितैन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांबररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वारयुपक्लृप्तमंगलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः । ५६ । सिक्तमार्गा म-

वाले इस अज्ञानमूलक शोक को तत्त्वज्ञान से दूर करके तू स्वस्थचित्त हो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् इसप्रकार भगवान् बलरामजी की समझाई हुई तिस सुकुमाराङ्गी रुक्मिणी ने, रुक्मी को विरूप करने के कारण से होनेवाले शोक का त्याग करा और विचाररूप बुद्धि से अपने मन को समझा लिया ॥ ५० ॥ ऐसा सुननेवाले भी रुक्मी का अज्ञान दूर नहीं हुआ यह दिखाते हुए कहते हैं कि—श्रीकृष्ण आदि शत्रुओं ने जिसकी सेना और तेज को नष्ट करडाला है जिस के प्राणमात्र शेष रहे हैं ऐसा वश में करके छोड़ा हुआ वह रुक्मी, अपने मनोरथ की पूर्णता को न पाताहुआ श्रीकृष्णजी की करीहुई अपनी कुरूपदशा को स्मरण करता 'दुर्मति कृष्ण को विनामारे और रुक्मिणी को लौटाकर विना लाये कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूँगा ऐसी करीहुई अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के निमित्त' नहीं विरूप कियागया था क्रोधित होकर तहाँ ही रहा इसकारण फिर तहाँ भोजकट नामवाला बड़ाभारी नगर बसा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे राजन् भगवान् श्रीकृष्ण ने इसप्रकार युद्ध में राजाओं को जीतकर और भीष्मककी कन्या जो रुक्मिणी तिस को अपनी द्वारका नगरी में लाकर विधिपूर्वक उस के साथ विवाह करलिया ।५३॥ उसदिन हेराजन्! उस द्वारका में यादवपति श्रीकृष्ण से विना प्रयोजन के ही प्रेम करनेवाले लोकों के घरघर बड़ाभारी उत्साह हुआ ॥ ५४ ॥ उससमय निर्मल मणिजटित कुण्डल धारण करके आनन्द युक्त हुए पुरुष और स्त्रियें, विचित्र वस्त्र पहिरनेवाले उन वरवधू को, विवाह के समय देनेयोग्य आभूषण आदि भेट समर्पण करनेलगे ॥ ५५ ॥ तब वह द्वारका नगरी खड़ी करीहुई ऊँची ध्वजाओं से अनेकों रङ्गों के फूल वस्त्र और रत्नोंकी बनी वन्दनवारों से और हरएक घर के द्वारपर स्थापन करेहुए मङ्गलकारी खीलें—दूर्वांकुर—फूल—भरेहुए घड़े—अगर की धूप और दीपकों से शोभित होनेलगी ॥ ५६ ॥ तैसे ही जिसमें मार्ग छिड़के हुए हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दंच्युद्भिराहूतमेघ्रभूभुजाम् ॥ गैजैर्द्वास्सु परामृष्टरंभापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुंतयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात्परिधावतां ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः॥५९॥द्वारकायामभूद्राजन् महोमोदः पुरौकसां॥रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिं ॥ ६० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राक्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥२॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा लोकमनिर्दशं । स विदित्वात्मनः

ऐसी वह नगरी, उत्सव देखने को बुलायेहुए अतिप्रिय राजाओं के मद टपकानेवाले हाथियों से और द्वारोंपर खड़े करेहुए केलों के खंभों से और पूगीफलों से भूषित हुई थी ॥ ५७ ॥ उस नगरी में चाव से जिधर तिधर दौडतेहुए बन्धुओं में कुरु सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यादव और कुन्ति परस्पर मिलकर आनन्द को प्राप्त हुए ॥५८॥ जहां तहां देशों में सूत मागध और बन्दियों के गायेहुए इस रुक्मिणी के हरणरूप भगवान् के चरित्र को सुनकर राजे और राजकन्याएं परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥५९॥ हे राजन्! उस द्वारका में लक्ष्मी का अवताररूप तिस रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण को देखकर पुरवासियों को बडा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में चतुःपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे पचपनवे अध्याय में श्रीकृष्णजी से प्रद्युम्न के उत्पन्न होने पर उन को शम्बरासुर ने चुरालिया, फिर उन्हों ने तिस शम्बरासुर को मारकर स्त्रीसहित द्वारका में आगमन करा तथा शम्बरासुर के प्रद्युम्न को लेजाने के कारण हुई जो हानि तथा फिर उन के आने से हुआ जो लाभ इत्यादि के द्वारा श्रीकृष्णजी ने, कुटुम्बियों को सन्तान आदि से सुखदुःखादि कैसे प्राप्त होते हैं सो दिखाया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! चित्त से उत्पन्न होने के कारण और सृष्टि का कारण होने से वासुदेव का अंश जो काम वह, पहिले जन्म में महादेवजी के क्रोध से भस्म होगया था सो वही फिर देह प्राप्त होने के निमित्त तिन वासुदेव श्रीकृष्ण के अन्तरात्मा में प्रविष्ट होकर रहा ॥ १ ॥ वह ही काम, श्रीकृष्णजी के वीर्य में स्थित होता हुआ रुक्मिणी के गर्भ में उत्पन्न होकर प्रद्युम्न इस नाम से प्रसिद्ध हुआ. वह सुन्दरता, आकार और भाषण आदि सब गुणों में श्रीकृष्णजी की समान ही था ॥ २ ॥ तब, कामदेव के शत्रुरूप से प्रसिद्ध शम्बरासुर ने उस प्रद्युम्न को 'यह मेरा शत्रु कामदेव है ऐसा' नारदजी के मुख से सुनकर गुप्तरूप से उस बालक को दश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शंबराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनं ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् । नारदोऽकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनं ॥ ६ ॥ सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कृष्णो रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षतीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं नरलोकसुंदरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरंग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कृष्णमातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमति-

दिन का होने से पहिलेही चुरालिया और समुद्र में डालकर वह शम्बरासुर अपने घर को चला गया ॥ ३ ॥ उस बालक को किसी एक बलवान् मत्स्य ने निगललिया, फिर मत्स्य मारकर जीविका चलानेवाले कहारों ने दूसरे मत्स्यों के साथ बडेभारी जाल से उस मत्स्य को भी फांसकर पकडलिया ॥ ४ ॥ फिर उन कहारों ने वह बडाभारी मत्स्य शम्बरासुर को भेटरूप से अर्पण करा, फिर रसोइयों ने उस अद्भुत मत्स्य को रसोई के घर में लेजाकर अपने शस्त्र से चीरा ॥ ५ ॥ तब उस के उदर में अद्भुत बालक देखकर उन्होंने वह मायावती को सौंपदिया. तब यह बालक कौन है ? ऐसा मन में सन्देह करनेवाली उस मायावती को, तिस बालक का कामदेवस्वरूप होना, श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के विषैं उत्पन्न होना, शम्बरासुर का उस को चुराना और मत्स्य के उदर में जाना यह सब कहसुनाया ॥ ६ ॥ वह मायावती निःसन्देह कामदेव की रतिनामवाली स्त्री थी और रुद्रभगवान् के क्रोध से जिस का देहभस्म होगया है ऐसे अपने पति का शरीर उत्पन्न होने की बाट देखनेवाली पतिव्रता थी ॥ ७ ॥ उस को शम्बरासुर ने रसोई करने के काम में लगाया था उस ने नारदजी से वह बालक कामदेव है ऐसा जानकर उस में स्नेह करा ॥ ८ ॥ फिर थोडे ही समय में वह श्रीकृष्ण का पुत्र तरुण अवस्था को प्राप्त हुआ और अपने सुन्दरता आदि गुणों से अपनी ओर को देखनेवालीं स्त्रियों को अत्यन्त मोहित करनेलगा ॥ ९ ॥ तब हे राजन् ! जिस के नेत्र कमल के पत्र की समान विशाल हैं, जिस की भुजा जानुपर्यन्त लम्बी हैं और जो मनुष्यलोक में सुन्दर है ऐसे तिस अपने पति को लज्जायुक्त हास्य से, कटाक्षयुक्त तिरछी दृष्टि से देखनेवाली वह मायावती नामवाली रति, सुरत के अभिप्रायों से उन का सेवन करनेलगी ॥ १० ॥ तब वह भगवान् कृष्णपुत्र, उस से कहने लगे कि–हे मातः ! तेरी बुद्धि उलटी दीखती है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शंबरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं ते ऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥ एष त्वाऽनिर्दशं सिंधावक्षिपच्छंबरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥ स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम् ॥ १७ ॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः ॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरं ॥ १९ ॥ तामापतन्तीं

अर्थात् तू इससमय अपना माता का धर्म त्यागकर कामातुर स्त्री की समान वर्त्ताव करती है, यह क्या ? ॥ ११ ॥ तब रति ने कहा कि—तुम नारायण (श्रीकृष्ण) के पुत्र हो और शम्बरासुर उन के घर से तुम्हें ले आया है; हे प्रभो ! मैं तुम्हारी अधिकार से प्राप्त स्त्री रति हूँ और तुम मेरे पति कामदेव हो ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! इस शम्बर दैत्य ने,तुम्हें जन्म लेकर दशदिन का होने से पहिले ही लेजाकर समुद्र में डालदिया था; तहां तुम्हें एक मत्स्य ने निगललिया और मत्स्य को कहारों ने मारकर यहां शम्बरासुर को भेट में लाकर दिया था; उस के पेट में से तुम यहाँ आये हो ॥ १३ ॥ इसकारण सैंकड़ों माया जाननेवाले और तिरस्कार करने को कठिन इस अपने दुर्जय शत्रु को, अपनी मोहन आदि मायाओं से मोहित करके मारडालो ॥ १४ । इस में कुछ विलम्ब न करो, क्योंकि—तुम्हारी माता रुक्मिणी, पुत्र नष्ट होजाने के कारण दीन और पुत्र स्नेह से व्याकुल होकर,बछड़ा नष्ट होने से शोकातुर हुई गौ की समान और कुररी की समान डकरातीहुई रोरही है ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर उस मायावती ने, महापराक्रमी भी तिस प्रद्युम्न को शत्रुकी सकल मायाओं का नाश करनेवाली अपनी महामाया नामवाली विद्या दी ॥ १६ ॥ तब वह प्रद्युम्न भी शम्बरासुर के समीप जाकर,जिन का सहना कठिन है ऐसे तिरस्कार के वचनो से उस को ललकारकर कलह उत्पन्न करतेहुए युद्ध करने के निमित्त उस से कहनेलगे ॥ १७ ॥ उससमय दुर्वचनो से निन्दा कराहुआ वह शम्बरासुर, पांव से दबायेहुए सर्प की समान क्रोध से नेत्र लाल२ करके और हाथ में गदा लेकर युद्ध करने के निमित्त घर में से बाहर निकला ॥ १८ ॥ और वेग से गदा घुमाकर महात्मा प्रद्युम्न को मारने के निमित्त वह उस के ऊपर को फेंकी और वज्रपात होनेपर जैसे बड़ाभारी शब्द होता है तैसे उसने बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥ स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शितां ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीं ॥ २२ ॥ ततो गौह्यक-गांधर्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥ प्रयुक्ता शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ शंबरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्रु वो-जसाहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्य-यांवरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरं राजन्ललनाशत-संकुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलद-श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्यु-

जोर से गर्जना करी ॥ १९ ॥ भगवान् प्रद्युम्न ने भी आतीहुई तिस गदा का, अपनी गदा से चूरा करके हे राजन्! क्रोध में भरेहुए उन्हों ने शम्बरासुर को मारने के निमित्त अपनी गदा फेंकी ॥ २० ॥ उस शम्बरासुर ने भी मयासुर की उपदेश करीहुई अन्तर्धान होजानारूप विद्या का आश्रय करके, आकाश में स्थित हो, प्रद्युम्न के ऊपर शस्त्रों की वर्षा करी ॥ २१ ॥ तब शस्त्रों की वर्षा से पीड़ा को प्राप्तहुए भी वह रुक्मिणी के पुत्र महारथी प्रद्युम्न, सकल दैत्यमायाओं का नाश करनेवाली अपनी सत्वगुणी महाविद्या का प्रयोग करनेलगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर फिर उस दैत्य ने, गुह्यकों की, गन्धर्वों की, पिशाचों की, सर्पों की और राक्षसों की सैंकड़ों माया प्रद्युम्नजी के ऊपर चलाई, सो उन कृष्णपुत्र प्रद्युम्नजी ने, उन सब मायाओं का नाश करा ॥ २३ ॥ फिर उन प्रद्युम्नजी ने, तीखी तलवार उठाकर उस से, जिस में लाल २ दाढ़ीमूंछें हैं ऐसा वह किरीटसहित और कुंडलोंसहित शम्बरासुर का शिर, बलात्कार से काटडाला ॥ २४ ॥ तब स्तुति करनेवाले देवताओं करके पुष्पांजलियों से छायेहुए उन प्रद्युम्न पति को लेकर, आकाशमार्ग में अपनेआप जानेवाली और दूसरे को भी लेजानेवाली वह मायावती स्त्री आकाशमार्ग से द्वारका में लेगई ॥ २५ ॥ तब हे राजन्! मानो बिजलीसहित काला मेघ ही आकाश में से नीचे उतरा क्या? ऐसे वह प्रद्युम्न, स्त्रीसहित नीचे उतरकर सैंकड़ों उत्तम स्त्रियों से भरेहुए श्रीकृष्णजी के श्रेष्ठ रणवास में चलेगये ॥ २६ ॥ तब उन मेघ की समान श्यामवर्ण, पीले जरी के रेशमी वस्त्र धारण करनेवाले, आजानुबाहु, आरक्तनेत्र, मन्दहास्ययुक्त, सुन्दरमुख और जिन का मुखकमल काले घुंघुराले केश स्वरूप भौंरों से उत्तम शोभायमान है ऐसे उन प्रद्युम्न को देखकर, यह श्रीकृष्ण ही हैं ऐसा मानकर लज्जित हुई स्त्रियें, जहाँ तहाँ ओट में को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥ एवं गीर्मिसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्यानकदुंदुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शंबराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णांतःपुरयोषितः ॥ अभ्यनंदन्बहूनब्दानष्टं मृतमिवागतं ॥ ३७ ॥

होने लगीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह स्त्रियें, धीरे २ श्रीकृष्णजी की अपेक्षा कुछ भेद से अर्थात् इन में श्रीवत्स कौस्तुभ आदि नहीं हैं इसकारण यह कृष्ण नहीं हैं ऐसा निश्चय करके हर्षयुक्त और विस्मित होतीहुई श्रेष्ठ स्त्रीसहित आयेहुए उन प्रद्युम्न के समीप आईं ॥ २९ ॥ फिर उन के देखने पर तिस रणवास में, नीले कटाक्ष और मधुर भाषणवाली रुक्मिणी, स्नेह से स्तनो में धार छुटने के कारण अपने पुत्र का स्मरण करनेलगी ॥ ३० ॥ और कहने लगी कि—यह कमलनयन मनुष्यों में श्रेष्ठ नजाने कौन है? किस का पुत्र है? कौनसी माता ने इस को अपने उदर में धारण करा है? और इस को मिली हुई यह स्त्री भी कौन है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी जो पुत्र, सोवर के घर में से किसी के चुराकर लेजाने के कारण नष्ट होगया है वह यदि कहीं जीवित होयगा तो इस के समान ही अवस्था और रूप में होगा! ॥ ३२ ॥ इस ने, सूरत, अंग, चाल, स्वर, हँसना और चितवन से श्रीकृष्णजी की समानता नजाने कैसे पाई है? ॥३३॥ निःसन्देह जो बालक मैंने गर्भ में धारण करा था यह वही होगा और इस में मेरा प्रेम बढ़ता है तथा मेरी बाईं भुजा भी फड़करही है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार रुक्मिणी के तर्क करतेहुए, देवकी वसुदेव के साथ पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णजी भी तहाँ आपहुँचे ॥ ३५ ॥ तब, प्रद्युम्न को शम्बरासुर लेगया था इत्यादि वृत्तान्त को जानतेहुए भी वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मौन ही रहे; उसी समय आयेहुए नारदजी ने, प्रद्युम्न को शम्बरासुर लेगया था इत्यादि सब वृत्तान्त उन वसुदेवादिकों से कहा ॥३६॥ वह नारदजीका कहा हुआ बडा भारी आश्चर्य सुनकर श्रीकृष्णजी के रणवास में की स्त्रियें, बहुत वर्षों का नष्टहुआ होने से मानो मरण को प्राप्त होकर ही फिर मिला ऐसे प्रद्युम्न को देखकर आनन्द को प्राप्त हुईं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च यथुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति होचुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रह रूढभावाः ॥ चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिंबबिंबे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इतिश्रीभागवते म० दशमस्कंधे उ० पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमंतकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषं ॥ स्यमंतकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसी

॥ ३७ ॥ और देवकी, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी और स्त्रियें यह सब, तिन प्रद्युम्नरतिरूप दम्पती को आलिङ्गन करके आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ३८ ॥ द्वारकावासियों ने, नष्टहुए प्रद्युम्न फिर आगये हैं ऐसा समाचार सुनकर, अहो ! जैसे कोई मरण को प्राप्त होकर फिर आजाय तैसे प्रद्युम्नआये यह बडे आनन्द की वार्त्ताहुई ऐसा भाषणकरा ॥ ३९ ॥ स्वरूप से सब प्रकार श्रीकृष्णजी की समान जिस प्रद्युम्न में यह ही मेरे भर्त्ता हैं ऐसी बारम्बार भावना करनेवाली उन की माता (श्रीकृष्णजी की स्त्री) भी एकान्त में उन के सेवन को मन में विचारती थीं अथवा कामातुर हुई अर्थात् कामातुर होकर एकान्त में दुबक जाती थीं; ऐसा जो हुआ सो कुछ स्मरणमात्र से ही क्षोभ उत्पन्न करनेवाले और तिसपर भी जीकृष्णजी की श्रीमूर्त्ति के प्रतिबिम्ब * (पुत्र) प्रत्यक्ष दीखनेवाले उन कामरूप प्रद्युम्न में निःसन्देह आश्चर्य नहीं है; जब उन की माता की यह दशा हुई तो और स्त्रियें उन को देखकर मोहित होंगी इस का तो कहनाही क्या ? ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे छप्पनवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी, अपने ऊपर मिथ्यादोष लगने पर उस को दूर करने के निमित्त जाम्बवन्त से स्यमन्तक मणि लाये और उसी अवसर में श्रीकृष्णजी को जाम्बवान् की जाम्बवती नामवाली कन्या और सत्राजित की कन्या सत्यभामा यह दो स्त्रियें प्राप्त हुई यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! श्रीकृष्ण का अपराध करनेवाले सत्राजित ने, उस अपराध की शान्ति के निमित्त आप ही उद्योग करके स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्णजी को अर्पण करी ॥ १ ॥ राजा ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! सत्राजित् ने श्रीकृष्णजी का कौनसा अपराध करा था ? उस को स्यमन्तकमणि कहां से मिली थी ? और उस ने किस कारण से श्रीकृष्णजी को कन्या दी

* बिम्ब की समान ही प्रतिबिम्ब में बुद्धि होती है इस में कुछ सन्देह नहीं है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥ ३ ॥ स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्कितः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविंदाक्ष गोविंद यदुनन्दन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छंति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्याबुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्य-

सो मुझ से कहो ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—सत्राजित् ने वन में जाकर सूर्य की भक्ति करी, तिस से उस के पूज्य और स्वामी भी वह सूर्य उस के मित्र की समान होगये. उन सूर्य ने तिस सत्राजित् की भक्ति से प्रसन्न और उस के ऊपर स्नेहयुक्त होकर उस को स्यमन्तक नामवाली एक मणि दी ॥ ३ ॥ तब हे राजन्! वह सत्राजित् तिसमणि को कण्ठ में धारण करके, उस के तेज से सूर्य की समान प्रकाशवान् होने के कारण कोई भी 'यहसत्राजित् हैं ऐसा' नहीं जानता था इसप्रकार द्वारका में गया॥४॥उस सत्राजित् को द्वारकावासियों ने दूर से ही देखकर दृष्टि चौंधाजाने से यह सूर्य है ऐसी शङ्का करी और फाँसो से खेलतेहुए श्रीकृष्ण भगवान् के पास जाकर कहने लगे कि- ॥५॥ हे नारायण ! हे शंख-चक्र-गदाधर ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविन्द ! हे यादवों के आनन्दकारक ! तुम्हें नमस्कार हो ॥ ६ ॥ हे जगत्पते ! तुम्हें देखने की इच्छा करनेवाला यह तीखी किरणोंवाला सूर्य, अपनी किरणों के समूह से मनुष्यों के नेत्रों को चौंधाताहुआ आरहा है ॥ ७ ॥ यह कुछ असम्भव नहीं है, क्योंकि—निःसन्देह ब्रह्मादिक श्रेष्ठदेवता भी त्रिलोकी में तुम्हारे मार्ग को ढूँढते हैं इसकारण इससमय यादवों में मनुष्यावतार धारण करनेवाले तुम्हें जानकर हे प्रभो ! सूर्य तुम्हारे दर्शन करने को आरहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! वह आनेवाला कौन है इस तत्त्व को न जाननेवाले अनजान पुरुषों का वह कथन सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि—यह सूर्य नहीं है किन्तु स्यमन्तकमणि से प्रकाशवान् होनेवाला सत्राजित् है ॥ ९ ॥ इधर सत्राजित् ने कौतुक से, जहां वन्दनवार बाँधना आदि मङ्गल करे हैं ऐसे शोभायमान करेहुए अपने घरमें प्रवेश करके ब्राह्मण से उस मणि की देवमन्दिर में स्थापना करवाई ॥ १० ॥ हे राजन् ! वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभोः ॥ न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाच्चाञ्चाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशन् जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे

मणि प्रतिदिन सोने के आठभार÷ उत्पन्न करता था और जहाँ पूजा कराहुआ वह मणिहो तहाँ दुर्भिक्ष (महँगी), महामारी, ग्रहपीड़ा, सर्प का भय, मनका दुःख रोग और मायावैदैत्य आदि दुःखों के कारण, नहीं रहते हैं ॥ ११ ॥ एक समय श्रीकृष्णजी ने, ऐसीप्रभावशाली मणि राजा के पास होनी चाहिये ऐसा मनमें विचारकर, राजा उग्रसेन के निमित्त सत्राजित से उस मणि की प्रार्थना करी तब, उस द्रव्य के लोभी ने, भगवान् की आज्ञा टलती है इसका मन में विचार न करके मणि नहीं दिया; इस से यह सूचित करा कि—भगवान् को विना अर्पण करे स्वयं ही भोगीहुई सकल अनिष्टों को दूर करनेवाली भी वस्तु अनिष्ट का कारण होती है ॥ १२ ॥ यह ही दिखाने के निमित्त कहते हैं कि—बड़ी कान्तिवाले तिस मणि को, एकसमय सत्राजित् का भ्राता जो प्रसेन था वह अपने कंठ में बाँध घोड़ेपर बैठ के वन में मृगया (शिकार) करने को गया ॥ १३ ॥ तब एक सिंह ने घोड़ेसहित उस प्रसेन को मारकर मणि लेली, सो वह उस मणि को लिये पर्वतपर फिर रहा था तब उस मणि की इच्छा करनेवाले जाम्बवान् ने उस सिंह को मारडाला ॥ १४ ॥ उस जाम्बवान् ने भी अपने रहने के स्थान पर्वत की गुफा में उस मणि को अपने कुमार के खेलने का खिलोना कर दिया; इधर सत्राजित्. अपने भ्राता को न देखताहुआ दुःखित होकर कहने लगा कि— ॥ १५ ॥ मेरा भ्राता प्रसेन कंठ में मणि धारण करके वन में गया था, उस को प्रायः मणि के लोभ से श्रीकृष्ण ने ही मारा है, क्योंकि—पहिले श्रीकृष्णजी के मणि को मांगने पर वह मैं ने नहीं दी थी इसकारण उन को यह अवसर मिला है, इसप्रकार का कथन सुनकर द्वारका-

÷ भारकी तोल- 'चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुंजं गुञ्जान् पञ्च पणं पणान्। अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम् ॥ तुलां पलशतं प्राहुर्भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥' अर्थात्—चार जौ की एक गुंजा, पाँच गुंजाका एक पण, आठ पण का एक धरण, आठ धरण का एक कर्ष, चार कर्ष का एकपल, सौ पल की एक तुला और बीस तुला का एक भार होता है ऐसे आठ भार कई मन हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णेऽजपन् जनाः ॥१६॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ गाढं प्रसेन-पदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥ ऋक्षरजाबिलं भीमेमन्धेन तमसा वृतं॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥ तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बाल-क्रीडनकं कृतं ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः ॥ ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥ द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तद्दष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रमहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबन्धनः ॥ क्षीणसत्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥

वासी पुरुष भी, एक दूसरे के कान में धीरे २ यही कहने लगे ॥१६॥ फिर भगवान् ने भी वह वचन सुनकर, अपने ऊपर लगाहुआ अपजस दूर करने के निमित्त नगरवासी लोगों के साथ प्रसेन के मार्ग का पता लगाने के निमित्त वन में गमन करा ॥ १७॥ तब वन में सिंह के मारेहुए प्रसेन को और घोडे को देखकर उस सिंह को भी पर्वत के ऊपर जाम्बवान् का माराहुआ सब लोकों ने देखा ॥ १८ ॥ फिर भट्ट के द्वार के बाहर सब लोगों को खडा करके, इकले ही भगवान् अन्धकार से भरीहुई और भयङ्कर तिस जाम्बवान् की गुफा में चलेगये ॥ १९ ॥ और उस बिल में बालक का खिलोना कराहुआ स्यमन्तक नामवाला श्रेष्ठ मणि देखकर उस को छीनने की इच्छा से उस बालक के समीप जाकर खड़े होगये ॥ २० ॥ तब, पहिले कभी भी न देखेहुए मनुष्यरूप श्रीकृष्ण को देखकर उस बालक की माता भयभीत हुई सी चिल्लाई; उसको सुनकर क्रोध में भराहुआ जाम्बवान् तहां आया ॥ २१ ॥ भगवान् का प्रभाव न जाननेवाले तिस जाम्बवान् ने उन को साधारण पुरुष मानकर और क्रुद्ध होकर पहिले (रामावतार में) अपने स्वामी होनेवाले तिन श्रीकृष्ण भगवान् के साथ ही युद्ध करा ॥ २२ ॥ परस्पर जीतने की इच्छा करनेवाले उन दोनों का, उस मणि के निमित्त गदा आदि आयुधों से, पत्थरों से भुजाओं से और वज्रपात की समान कठोर परस्पर घूँसों के प्रहारों से अतिभयानक द्वन्द्वयुद्ध हुआ वह युद्ध, जैसे मांस के निमित्त दो बाज पक्षियों का होता है तैसे रातदिन बराबर अट्ठाईस दिनतक एक समान होतारहा ॥ २३ ॥ २४ ॥ तब, श्रीकृष्णजी के घूँसे लगने से जिस के हाथ पैर आदि अङ्ग और शरीर के जोड़ चूरा २ होगए हैं, जिस का धीरज और बल क्षीण होगया है और जिस के शरीर में से पसीना छूट निकला है ऐसा वह जाम्बवान्, लोकों में यह मुझ से अधिक बलवान् नजाने कौन है ? ऐसा मानकर आश्चर्य में हो तिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः परः आत्मा तथात्मनां ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः ॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ॥ कृपया परया भक्त्या प्रेमगम्भीरया गिरा ॥ ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिहाप्राप्तावयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा ॥ अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णजी से बोला कि—॥ २५ ॥ सकल प्राणियों का जो प्राण तिस में जो इन्द्रियबल, अन्तःकरणबल और शरीरबल सो सब तुम ही हो, ऐसा मुझे प्रतीत होता है; क्योंकि—विष्णु, पुराणपुरुष, पराक्रमी और सबों के नियन्ता तुम ही हो ॥ २६ ॥ तुम ही विश्वस्रष्टा ब्रह्मादिकों के निमित्त हो और महत्तत्त्व आदि रचनेयोग्य पदार्थों के उपादान कारणभी तुम ही हो;नाश करनेवाले सब के नियन्ता काल तैसे ही सकलजीवों के परमात्मा तुम हो॥२७॥ तुम जो इसप्रकार के हो तिस से मेरे इष्टदेवता अर्थात् जिन के कुछएक भड़केहुए क्रोध से फेंकेहुए कटाक्षों करके जिसमें नाके और बडे २ मच्छ खलबलागये हैं ऐसे समुद्र ने लङ्का में जाने को मार्ग दिया तब भी उस के ऊपर जिन तुमने अपना यशोरूप सेतु बाँधा और लङ्का भस्म करडाली और जिन के बाणों से कटेहुए रावण के शिर भूमि पर गिरे वह रामचन्द्र तुम हो ऐसा मैं जानता हूँ ॥ २८ ॥ हे महाराज! इसप्रकार अपना स्वरूप जिस ने जाना है ऐसे तिस जाम्बवान् को, देवकीपुत्र भगवान् कमलनेत्र श्रीकृष्ण पहिले उस की पीडा दूर करने के निमित्त सुखदायक अपने हाथ से स्पर्श करके, परमकृपालु होतेहुए मेघ की गर्जना की समान गम्भीरवाणी से कहने लगे कि-- ॥२९॥ ॥ ३० ॥ हे रिच्छराज! हम बहुत से यादव, इस स्यमन्तकमणि के निमित्त बिलके द्वार के समीप आये हैं,उन में से,अपने को लगाहुआ मिथ्या दोष इस मणि के द्वारा दूर करने के निमित्त मैं यहा आया हूँ ॥ ३१ ॥ ऐसे कहने पर हर्ष में भरेहुए तिस जाम्बवान् ने, भगवान् का पूजन करने के निमित्त मणि के साथ अपनी जाम्बवती नामक कन्या श्रीकृष्णजी को अर्पण करी ॥३२॥ इधर बिलके बाहर रहेहुए पुरुष बारह दिनपर्यन्त बाट देखकर भी, बिल में गयेहुए श्रीकृष्णजी लौटकर नहीं आये ऐसा देखकर दुःखित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् विलोक्य कृष्णमनिर्गतं ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृत्वा पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वोऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं

होतेहुए अपनी द्वारकानगरी में को चलेगये ॥३३॥ उन के मुख से, आज भी श्रीकृष्ण बिल से बाहर नहीं आये ऐसा सुनकर, देवकी, देवी रुक्मिणी, वसुदेवजी, मित्रगण और सब यादव शोक करनेलगे ॥ ३४ ॥ और दुःख को प्राप्तहुए वह द्वारकावासी पुरुष, सत्राजित् को दुर्वाक्य कहकर शाप देतेहुए श्रीकृष्ण की प्राप्ति के निमित्त भगवान् की शक्तिरूप चन्द्रभागा नामवाली दुर्गादेवी की स्तोत्र नमस्कार और महापूजा आदि से आराधना करनेलगे ॥ ३५ ॥ उन आराधना करनेवाले द्वारकावासी पुरुषों को, देवी ने प्रसन्न होकर, यह आशीर्वाद दिया कि तुम शीघ्र ही कृष्ण को देखोगे! सो उसी समय स्यमन्तक मणि को पायेहुए और सबों को हर्षित करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, जाम्बवतीसहित द्वारका में आगये ॥ ३६ ॥ उस समय, द्वारकावासी सब लोग, जैसे लोक में मरेहुए बन्धु को फिर पाकर आनन्दयुक्त होते हैं तैसे स्त्रीसहित आयेहुए और जिन के कण्ठ में स्यमन्तकमणि है ऐसे श्रीकृष्णजी से मिलकर, बडे उत्साहयुक्तहुए ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी ने, सभा में उग्रसेन राजा के सामने उस सत्राजित् को बुलवाकर और उस से उस मणि के पाने का वृत्तान्त कहकर वह मणि समर्पण करदी ॥ ३८ ॥ तब वह सत्राजित् भी, श्रीकृष्णजी को मिथ्या दोष लगाने के कारण लज्जित होकर नीचे को मुख करेहुए पश्चात्ताप करताहुआ उस सभा में से मणि लेकर अपने घर को चलागया॥३९॥तदनन्तर बलवान् श्रीकृष्णजी के साथ विरोध होजाने से व्याकुल हुआ वह सत्राजित्, उस अपने करेहुए अपराध का चिन्तवन करताहुआ तथा, अब मैं अपने अपराध को कैसे दूर करूं? श्रीकृष्ण मेरे ऊपर कैसे प्रसन्न होंगे?क्या करने से मेरा कल्याण होगा?आगे पीछे का विचार न करनेवाले, कृपण, मन्दबुद्धि और धन का लोभ करने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभां ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥ इ० भा० म० दशमस्कन्धे उ० षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥ ७॥ श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ॥ कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्धैतदन्तरं

वाला जो मैं तिस की जिसप्रकार लोग निन्दा न करें ऐसा कौनसा उपायकरूं ? ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ऐसा विचारकर उस ने यह निश्चय करा कि–मैं उन श्रीकृष्णजी को, स्त्रियों में रत्नरूप अपनी कन्या देता हूँ और फिर दहेज में वह मणि भी देता हूँ; यह ही विरोध के शांत होने का उत्तम उपाय है; ऐसा करेविना उस विरोध की शांति नहीं होगी ॥४२ ॥ इस प्रकार बुद्धि से निश्चय करके उस सत्राजित् ने, शुभलक्षणोंवाली अपनी कन्या सत्यभामा और स्यमन्तक मणि, आपही उद्योग करके श्रीकृष्णजी को दीं ॥ ४३ ॥ कृतवर्मा, शतधन्वा आदि बहुतसों की याचना करीहुई और श्रेष्ठस्वभाव, सुन्दरता, उदारतारूप गुणों से युक्त तिस सत्यभामा को भगवान् ने विवाह की विधि से वरलिया ॥ ४४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजी सत्राजित् से बोले कि–हम मणि को नहीं लेंगे, तुम सूर्य के भक्तहो इसकारण यह मणि अपने पासही रहने दो; तुम्हारे पुत्रहीन होने के कारण पीछे से धन आदि के अधिकारी हम ही हैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षट्पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे सत्तावनवे अध्याय में, शतधन्वा के वध से फिर प्राप्तहुआ अपयश, श्रीकृष्णजी ने, अक्रूरजी की लाईहुई मणि के द्वारा दूर करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ अब सत्राजित् के, श्रीकृष्ण की आज्ञा भङ्गकरने का फल स्पष्ट कहने के निमित्त श्री शुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन्! एससमय पाण्डव, लाखाघर में से विदुरजी के रक्खे हुए बिल (सुरङ्ग) के द्वार से बाहर निकलगये, भस्म नहीं हुए; यह वृत्तान्त जाननेवाले भी श्रीकृष्णजी, लोकों के मुख से पाण्डवों का और कुन्ती का लाखाघर में भस्म होना सुनकर, कुल के योग्य (खबर सुधलाना) व्यवहार के निमित्त कुरुदेश में के हस्तिनापुर को बलरामजी के साथ गये ॥ १ ॥ तहां भीष्मजी कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्य से मिलकर उन के ही दुःख की समान जिन को दुःख हुआ है ऐसे वह बलराम कृष्ण, उन से कहनेलगे कि–यह बड़े दुःख की बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by.eGangotri

राजन् शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदतीनामनाथवत् ॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ॥ व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरं ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हंतुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत

हुई ॥ २ ॥ हे राजन् ! इधर द्वारका में इससमय यहां कृष्ण नहीं हैं इस से सत्राजित का वध सहजमें ही किया जासकता है ऐसा अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनो शतधन्वा से कहनेलगे कि-तू सत्राजित् से मणि क्यों नहीं छीन लेता है ? ॥ ३॥ जिस सत्राजित् ने हम को कन्यारत्न देने की प्रतिज्ञा करके फिर हमारा अनादर कर वह कन्या श्रीकृष्णजी को देदी; वह सत्राजित् अपने प्रसेन भ्राता की समान मरण को क्यों न प्राप्त हो ? अर्थात् उस को मारडालो ॥ ४ ॥ इसप्रकार उन अक्रूर और कृतवर्मा के वहकाये हुए तिस क्षीणायु, पापी, दुष्ट शतधन्वा ने, मणि के लोभ से तिस सोते हुए सत्राजित् को मारडाला ॥ ५॥ उस ने, जैसे वधिक पशुओं को मारता है तैसे सोते हुए सत्राजित को मारकर,उस की स्त्रियों के रोते हुए और अनाथ की समान विलाप करतेहुए, वह स्यमन्तकमणि को लेकर चलागया ॥६॥ उससमय सत्यभामा भी,मरे पिता को शतधन्वा ने मारडाला ऐसा देखकर शोक से व्याप्त और वारम्वार मूर्छा को प्राप्त होती हुई, हे तात ! हे तात ! मैं मारीगई ऐसा कह २ कर विलाप करनेलगी ॥७॥ तदनन्तर मरेहुए पिता को तेल के कुंड में रखकर वह सत्यभामा हस्तिनापुर को चलीगई और दुःखित हुई तिस ने, सर्वज्ञ भी श्रीकृष्ण से अपने पिता के मारेजाने का समाचार कहा ॥८॥ हे राजन् ! तिस सत्राजित् के मरण को सुनकर ईश्वर होकरभी वह बलराम कृष्ण मनुष्यलीला के अनुसार नेत्रों में जलभरकर 'अहो क्या कहें हमें बड़ा दुःख प्राप्तहुआ ऐसा कहकर विलाप करनेलगे ॥९॥ फिर सत्यभामा के साथ बलरामजीसहित श्रीकृष्णजी,तिस हस्तिनापुर से द्वारका को आकर, शतधन्वा से मणि छीनने के निमित्त तिस के मारने को उद्यत हुए ॥ १० ॥ उस शतधन्वा ने भी अपने मारने के विषय में श्रीकृष्णजी का उद्योग जानकर, प्राणों की रक्षा करने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्द्विजनगाधरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोपीतो यद्द्वेषाज्जितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुद्ध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ ॥ १४ ॥ यः इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिता जया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलीध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वैराजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्या-

इच्छा से कृतवर्मा से सहायता करने के विषय में प्रार्थना करी तब वह कृतवर्मा कहनेलगा कि–॥ ११ ॥ मैं ईश्वररूप बलराम-कृष्ण के प्रतिकूल कार्य नहीं करूँगा, क्योंकि उन का अपराध करनेवाला भला कौनसा पुरुष, कल्याण पाने के योग्य होगा ? ॥ १२ ॥ जिन कृष्ण के द्वेष से सेवक और बांधवोंसहित कंस, राज्यसम्पदा से भ्रष्ट होकर नाश को प्राप्त हुआ, तैसे ही जरासन्ध भी सत्रहवार युद्ध में से रथहीन होकर (शरीरमात्र शेषरहकर) चलागया ॥ १३ ॥ इसप्रकार कृतवर्मा के सहायता करने का निषेध करने पर उस शतधन्वा ने अक्रूरजी से सहायता देने के विषय में याचना करी तब वह कहने लगे कि–ईश्वररूप बलराम कृष्ण के बल को जाननेवाला कौनसा पुरुष भला उन के साथ विरोध करेगा ? ॥ १४ ॥ जो भगवान् लीला में संकल्पमात्र से ही इस जगत् को उत्पन्न करते हैं, पालते हैं और संहार करते हैं; उन की चेष्टा को उन की माया से मोहित हुए विश्व के रचनेवाले ब्रह्मादिक भी नहीं जानते हैं ॥ १५ ॥ सातवर्ष के बालक थे तब ही जिन्हों ने एक ही हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़कर छत्रक की समान सहज में ही हाथपर रखलिया ॥ १६ ॥ उन अद्भुतकर्म करनेवाले, अनन्त, सर्वकारण, निर्विकार, आत्मरूप, भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ इसप्रकार उन अक्रूरजी का भी निराश कराहुआ वह शतधन्वा तिस महामणि को तिन अक्रूरजी के पास ही रखकर, एकदिन में सौ योजन जाने वाले घोड़ेपर चढ़कर भागगया ॥ १८ ॥ उससमय हे राजन् ! बलराम कृष्ण भी अपने गरुड़ध्वज रथपर बैठकर बड़े वेग से चलनेवाले घोडों के द्वारा श्वसुर को मारनेवाले तिस शतधन्वा के पीछे चलदिये ॥ १९ ॥ सौ योजन ही जानेवाला होने के कारण, उसके आगे जाने को असमर्थ और मिथिलानगरी के बाग में गिरपडनेवाले घोडे को छोड़कर अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्धावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवद्दर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५ ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ २६ ॥ केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रियां बन्धोर्हतस्य वै ॥ साकं

भयभीत हुआ वह शतधन्वा पैदल ही भागनेलगा तब श्रीकृष्णजी भी क्रोध से उसके पीछे होलिये ॥ २० ॥ तब पैदल चलनेवाले भगवान्, पैदल भागनेवाले उस शतधन्वा का मस्तक तीखी धारवाले चक्र से काटकर उस के पहिरे और ओढ़ेहुए वस्त्र में मणि को ढूँढनेलगे अर्थात् अक्रूरजी के पास मणि है यह सर्वज्ञ होने के कारण जानते थे तथापि बलरामजी को वंचन करने के निमित्त उन्होंने ढूँढा ॥ २१ ॥ तब जिन को मणि नहीं मिली ऐसे वह श्रीकृष्णजी, बलरामजी के पास जाकर कहने लगे कि—मैंने शतधन्वा को व्यर्थ ही मारा, उस के पास स्यमन्तक मणि नहीं है ॥ २२ ॥ फिर बलरामजी ने, यह सर्वज्ञ कृष्ण का इसप्रकार करना मुझे धोखा देने के निमित्त है ऐसा जानकर क्रोध को गुप्त रखकर श्रीकृष्णजी से कहा कि—शतधन्वा ने वह मणि किसी के पास रखदी है सो ढूँढने के निमित्त तुम द्वारका को चलो ॥ २३ ॥ मैं तो, अपने अत्यन्त प्रियमित्र राजा जनक को देखने की इच्छा करता हूँ; हे राजन्! इसप्रकार बलरामजी ने श्रीकृष्णजी से कहकर मिथिला नगरी में प्रवेशकरा ॥ २४ ॥ उन बलरामजी को देखकर प्रसन्नचित्तहुए राजा जनक ने, शीघ्रता से उठकर पूजा करने के योग्य तिन बलरामजी की पाद्य, अर्घ्य, माला, चन्दन आदि सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजा करी ॥ २५ ॥ फिर प्रीतियुक्त और उदारचित्त उन राजा जनक के सत्कार करेहुए वह बलरामजी, उस मिथिला नगरी में कई वर्षपर्यन्त रहे तब अवसर मिलने के कारण उन बलरामजी से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने गदायुद्ध सीखलिया ॥ २६ ॥ इधर सत्यभामा का प्रिय करने वाले उन प्रभु श्रीकृष्णजी ने द्वारका में आकर सत्यभामा से कहाकि—हमने शतधन्वा को मारडाला परन्तु उस के पास मणि नहीं मिली ॥ २७ ॥ फिर उन श्रीकृष्णजी ने, जोजो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुहृद्भिर्भगवान्याः याः स्युः सांपरायिकाः॥२८॥अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसां ॥ शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यगोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र हि ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥

क्रिया मरण को प्राप्त हुए का परलोक में हितकारक होती हैं वह २ सब अपने श्वसुर सत्राजित् की क्रियाएँ उस के सुहृदों से करवाई ॥ २८ ॥ अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों, शतधन्वा का वध सुनकर, उन्हों न प्राण लेने में शतधन्वा को उकसाया था इसकारण भय से अतिडरकर द्वारका से दूसरे स्थान को भागगये ॥ २९ ॥ फिर वाराणसी (बनारस) में,मणि को हाथ में करेहुए अक्रूरजी,दानपति नाम से प्रसिद्ध होकर सुवर्ण की वेदियें बनाकर बड़े २ यज्ञों से भगवान् का आराधन करते थे, सो यह समाचार पाकर लोग कानोंकान ही कहनेलगे कि-श्रीकृष्णजी ने ही अक्रूरजी को बनारस भेजदिया है और सत्यभामा बलराम कोभी यही विश्वास होगया तब लोकापवाद को दूर करने के निमित्त भगवान् ने अक्रूरजी को बुलवाकर वह वृत्तान्त ललकार कर बूझा ; भगवान् का यह मत गुप्त रखकर कितने ही ऋषि, अक्रूरजी को बुलानेका दूसरा ही कारण वर्णन करते हैं उन के मत का दूषण करने निमित्त अनुवाद करते हैं कि-अक्रूरजी के द्वारका में से निकलकर चले जाने के कारण द्वारकावासी लोकों को दुःख प्राप्तहुए, शरीर के व्याघ्रभय आदि, मनके चिन्ता आदि, दैवी अवर्षा आदि और भौतिक सर्प का डसलेना आदि तापों को वारंवार भोगने लगे ॥ ३० ॥ इस मत का दूषण करते हैं कि-हे राजन् ! मैंने जो पहिले श्रीकृष्णजी का माहात्म्य कहा उस को भूलकर कितने ही इसप्रकार का उपदेश करते हैं; उस द्वारका में श्रीकृष्णजी का निवास होतेहुए केवल अक्रूरजी के चलेजाने से दुःखों का दर्शन कैसे होसक्ता था ? अर्थात् भगवान् की इच्छा के विना तहाँ दुःखों का आना कदापि नहीं होसक्ता था ॥ ३१ ॥ फिर उनके मतका ही वर्णन करते हैं कि-पूर्वकाल में काशिदेशों में इन्द्र ने वर्षा नहीं करी तब काशिदेशों के स्वामी ने, तहाँ आयेहुए श्वफल्क को अपनी गान्दिनी नामवाली कन्या दी तिस के अनन्तर काशिदेशों में इन्द्र वर्षा करनेलगा ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ तिस श्वफल्क के पुत्र यह अक्रूरजी भी उस श्वफल्क की समान ही प्रभाव शाली थे इसकारण वह जहाँ २ वास करते हैं तहाँ २ इन्द्र वर्षा करता है और शरीर के दुःख आदि तथा महामारी आदि उपद्रव भी नहीं होते हैं इसकारण अक्रूरजी के परदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाऽभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमंतको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्दुहितृदौहित्रसुताः ॥ दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किंतु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शांतिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्ते ऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धैः स्वफल्कतनयो मणिं ॥ आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ॥ ४० ॥ स्यमंतकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रंज आत्मनः ॥ विमृज्य मणिना भूय-

चलेजाने से ही ऐसे उत्पात होते हैं ॥३३॥ इसप्रकार की अक्रूरजी की महिमा वर्णन करनेवाले वृद्धहोने के अभिमानी, पुरुषों के वाक्य सुनकर—ऐसा ठीक है परन्तु इतनाही कारण नहीं है किन्तु मणि चलागया यह भी कारण है ऐसा समझकर दूतों से अक्रूरजी को बुलवाकर श्रीकृष्णजी उन से कहनेलगे ॥ ३४ ॥ अर्थात् आयेहुए अक्रूरजी की पहिले पूजा करके तथा और नानाप्रकार की प्रिय बातें कहकर, सर्वज्ञ होने के कारण अक्रूरजी के चित्तकोजाननेवाले भगवान् इन, महाभागको मेरेदियेहुएभी मणिकीचाहनानहींहैक्योंकि—मेरेबुलवानेपर यहमणिसहित ही चलेआयेहैं ऐसा जानकर हँसतेहुए कहनेलगे कि—॥३५॥ हे दानपते! शतधन्वा का रक्खाहुआ सुन्दर स्यमन्तक मणि तुम्हारे पास है सो हमें पहिले से ही मालूम है ॥ ३६ ॥ सत्राजित् के पुत्रहीन होने के कारण उसकी कन्या (सत्यभामा) के पुत्र, सत्राजित् को तिलोदक और पिण्डदान देकर और जो कुछ ऋण होय उसको चुकाकर शेष रहेहुए धन को ग्रहण करनेवाले हैं ॥ ३७ ॥ सो वह मणि उन के लेनेका है तथापि दूसरे पुरुषों को उसे वर्त्ताव में लाना कठिन है इसकारण आचारवान् तुम अपने पास ही रहने दो; परन्तु बलरामजी मणि के विषय में मेरे ऊपर विश्वास नहीं रखते हैं अर्थात् मन में समझते हैं कि—इसने ही मणि छुपालिया है ॥ ३८ ॥ इससे हे महाभाग! तुम मणि दिखाओ और बन्धुओं के चित्त को शान्त करो; मणि नहीं है ऐसा न कहो, क्योंकि—सुवर्ण की वेदी बनायेहुए यज्ञ तुम्हारे निरन्तर प्रारम्भ होरहे हैं इस कारण तुम्हारे पास ही मणि होने का अनुमान होता है ॥३९॥ इसप्रकार साम (समझाने) की रीतियों से समझायेहुए अक्रूरजी ने, वस्त्र में लपेटकर रक्खाहुआ सूर्य की समान कान्तिमान् वह श्रीकृष्णजी को दिया ॥४०॥ तब प्रभु श्रीकृष्णजी ने, बलराम आदि बान्धवों को मणिदिखलाकर उस मणि के द्वारा अपने को लगाहुआ मिथ्यादोष दूरकरके फिर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तंस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिं ॥ ४२ ॥ इति० भा० म० द० उ० स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तं मार्गतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अंगसंगहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता ॥ नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥ तथैव सा-

इस मणि को व्यवहार में लाना दूसरों को अशक्य है इस मिष से, अक्रूरजी को ही फिर देदिया ॥ ४१ ॥ जो पुरुष, भगवान् ईश्वर विष्णु के प्रभाव से युक्त पापों का नाश करनेवाले और पुण्यदायक इस आख्यान को पढ़ता है, सुनता है तथा स्मरण करता है वह पुरुष, अपनी दुष्कीर्त्ति तथा दुष्कीर्त्ति के कारण पाप को दूर करके मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अट्ठावनवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा इन पांच स्त्रियों के साथ विवाह करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! एकसमय, नष्ट होगए ऐसा सुनेहुए परन्तु फिर द्रुपद के घर सबों के देखेहुए पाण्डवों को देखने के निमित्त श्रीमान् श्रीकृष्णजी ने, सात्यकि आदि यादवों के साथ इन्द्रप्रस्थ (देहली) को गमन करा ॥ १ ॥ तब वह शूर पाण्डव, तिन आयेहुए सर्वनियन्ता श्रीकृष्णजी को देखकर, जैसे मूर्छित हुई इन्द्रियें, प्राण अपान आदि पांच प्रकार के भेदवाले मुख्य प्राण के आजाने पर एकसाथ चेष्टायुक्त होजाती हैं तैसे ही एकसाथ उठकर खड़े होगए ॥ २ ॥ और उन धर्मराज आदिकों ने, श्रीकृष्णजी को आलिङ्गन करके और उन के अङ्ग के संग से पापरहित होकर उन के प्रेमयुक्त मन्दहास्यवाले मुख को देखा और आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ उससमय श्रीकृष्णजी ने बड़े धर्मराज और भीमसेन के चरणों को वन्दना करके समान अवस्थावाले अर्जुन को हृदय से लगाया तदनन्तर छोटे नकुल सहदेव ने उन श्रीकृष्णजी को प्रणाम करा ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह श्रीकृष्णजी उत्तम सिंहासनपर बैठे तब पाँच की स्त्री होकर भी अनिन्दित और तब ही विवाह होकर आने के कारण कुछएक लज्जित हुई द्रौपदी ने धीरे २ श्रीकृष्णजी के समीप आकर उन को वन्दना करी ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः॥६॥पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरंभितः ॥आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषा पितृष्वसारं परिपृष्टबांधवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ॥ स्मरंती तान्बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥ तदैव कुशलं नोभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथाऽपि स्मरतां शश्वत् क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं नु आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसां ॥ ११ ॥ इति वै वार्षिकान्मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानन्दमिंद्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो वा-

जैसे पाण्डवों ने श्रीकृष्णजी की पूजा करी तैसे ही सात्यकि ने भी पूजा करके उन को प्रणाम करा फिर वह भी आसन पर बैठा तैसे हीं और भी यादव पाण्डवों से पूजित होतेहुए श्रीकृष्णजी के चारों ओर बैठे ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने कुन्ती के पास जाकर उस को प्रणाम करा तब अतिस्नेह से जिस के नेत्र जल से भर आये हैं ऐसी तिस कुन्ती ने, श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर वसुदेव आदि बाँधवों का कुशल बूझा और श्रीकृष्णजी ने भी पुत्रवधूसहित तिस पिता की बहिन (बुआकुन्ती) से कुशल बूझा तब– ॥ ७ ॥ प्रेम के कारण जो व्याकुलता तिस से जिस का कण्ठ गद्गद होगया है और जिस के नेत्रों में दुःख के आंसू आगये हैं ऐसी वह कुन्ती, पहिले भोगेहुए बहुतसे क्लेशों को स्मरण करतीहुई, भक्तों के क्लेश दूर करने के निमित्त अपना स्वरूप दिखानेवाले तिन श्रीकृष्णजी से कहने लगी कि– ॥ ८ ॥ हे कृष्ण! जब हम बन्धुओं का स्मरण करनेवाले तुम ने, हमारा वृत्तान्त जानने के निमित्त, मेरे भ्राता अक्रूर को भेजा था तब ही हमारा कुशल होगया, तथा तुम ने भी हम अनाथों को सनाथ करा है ॥ ९ ॥ हे कृष्ण! जगत् के मित्र और आत्मा तुम को 'यह अपना है और यह पराया है इसप्रकार की' भ्रान्ति नहीं है तथापि स्मरण करनेवाले भक्तों के हृदय में तुम निरन्तर रहकर उन के क्लेशों का नाश करते हो ॥ १० ॥ धर्मराज ने कहा कि–हे सर्वेश्वर! योगेश्वरों को भी कठिनता से दर्शन देनेवाले तुम जो, हम विषयासक्त पुरुषों के दृष्टिगोचर हुए हो सो हमने कौन पुण्य करा था, यह मैं नहीं जानता ॥ ११ ॥ इसप्रकार धर्मराज ने जिनकी स्तुति पूजा आदि करके प्रार्थना करी है ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, इन्द्रप्रस्थ में रहनेवाले लोकों के नेत्रों को आनन्द देतेहुए चारमास पर्यन्त सुखके साथ तहां रहे॥१२॥एकसमयशत्रुओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरध्वजम् ॥ गांडीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ सोऽकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं प्रविवेशत्परवीरहा ॥१४॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान् रुरून् ॥ शरभान् गवयान् खड्गान्हरिणान् शशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननां ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमां ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिंद्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुना-

का नाश करनेवाले अर्जुनने श्रीकृष्णजी के साथ, जिस की ध्वजा पर हनुमानजी की मूर्त्ति है ऐसे रथपर बैठकर, गाण्डीव नामक धनुष, जिसमें कभी बाण कम नहीं होते ऐसे तरकस लेकर और कवच पहिनकर मृगया (शिकार) करने को, बहुतसे अजगर और हिरनों से भरेहुए भयङ्कर वन में गमन करा ॥ १३ ॥ १४ ॥ और तिस वन में बाणों से बाघ, सूकर, महिष, काले हिरन, शरभ, गवय, गैंडे, हरिण, खरगोश, और सेई इन का वध करा ॥१५॥ उन में से श्राद्ध आदि कर्म के योग्य कितने ही मृग, पर्व युक्त अष्टकाश्राद्ध आदि कर्म आने पर धर्मराज के पास सेवकों से पहुँचवा दिये फिर पियास से व्याकुल और थकेहुए अर्जुन यमुनाके तटपरगये॥१६॥तहाँ उन महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन ने, यमुना में स्नान करके और उस का निर्मलजल पीकर उस यमुनाके तटपर विचरतीहुई सुन्दरस्वरूपवाली एक कन्या देखी ॥ १७ ॥ तब सखा श्रीकृष्णजी के भेजे हुए अर्जुन ने, जिस की जंघा सुन्दर हैं, जिस के दांत उत्तम हैं और जिस का मुख सुन्दर है ऐसी उस श्रेष्ठ स्त्री के समीप जाकर बूझा कि– ॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि! तू कौन है? किस की है? तू यहाँ कहाँ से आई है? और यहां आकर तू क्या करने की इच्छा कर रही है? मैं तो तुझे पति की इच्छा करनेवाली है ऐसा समझता हूँ इस से हे शोभने! तू यह सब मुझे बता ॥ १९ ॥ कालिन्दी बोली कि–मैं सूर्यदेव की कन्या हूँ, इच्छित वर देनेवाले श्रेष्ठ विष्णु भगवान् मुझे वर मिलें ऐसी इच्छा करके यहाँ परम तप करती रहती हूँ ॥ २० ॥ हे वीर! अर्जुन! लक्ष्मी के भी आश्रयस्थान तिन विष्णुभगवान् से दूसरे पति को मैं नहीं वरूंगी; वह अनाथों के आश्रय मुकुन्द भगवान् ही मेरे ऊपर प्रसन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदत्र्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवेदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि तां ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ । सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान् श्वेतान् रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्तुर्लग्न ऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विंदानुविंदावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे

हों॥२१॥कालिन्दी नाम से प्रसिद्ध मैं,जब श्रीकृष्णजी का दर्शन नहीं होगा तब तक के लिये इस यमुना के जलमें पिता(सूर्यदेव)के रचना करेहुए घरमें बसती हूँ॥२२॥फिर अर्जुन ने श्रीकृष्णजीके पास आकर जैसे कालिन्दी ने कहा था तैसे ही वह वृत्तान्त श्रीकृष्णजी से कहदिया,वहँ श्रीकृष्णजी भी, मेरी प्राप्ति के निमित्त यह तप कररही है ऐसा पहिले से ही जाननेके कारण उस को रथपर बैठालकर हस्तिनापुर में धर्मराज के समीप लाये ॥२३॥ हमारे रहने को नगर नहीं है सो बनवाओ ऐसी पाण्डवों ने जब श्रीकृष्णजी की प्रार्थना करी तब उन पाण्डवों के रहने के निमित्त विश्वकर्मा से, परम आश्चर्यकारी और नानाप्रकार की शिल्परचनाओं से शोभायमान नगर उत्पन्न करवाया ॥ २४ ॥ और तहाँ अपने पाण्डवों का प्रिय करने की इच्छा से रहनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, एक समय अर्जुन को धनुष आदि प्राप्त कराने के निमित्त तथा अग्नि को इन्द्र का खाण्डवनामक वन देने के निमित्त अर्जुन के सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे राजन्! फिर खाण्डव वन को जलानेवाला वह अग्नि प्रसन्न हुआ और उसने अर्जुन को विजयी रथ, गाण्डीव धनुष, स्वेत घोड़े, अक्षय तर्कस और जिस को शस्त्रधारी न वेधसकें ऐसा कवचदिया । २६ ॥ और उससमय खाण्डव वन को जलानेवाले अग्नि से जिसकी रक्षाकरी है ऐसे मयासुर ने भी अर्जुन को एक बड़ी भारी सभा रचकर दी. जिस सभा मे दुर्योधन को जल में स्थल की बुद्धि और स्थलमें जल की बुद्धिरूप दृष्टि का भ्रम होता था ॥ २७ ॥ फिर तिस अर्जुन ने, आज्ञा दी और युधिष्ठिर आदि सुहृदों ने भी स्वीकार करलिया तब वह श्रीकृष्णजी,सात्यकि आदि यादवों के साथ फिर द्वारका को आगये ॥ २८ ॥ फिर विवाह के योग्य ऋतु और नक्षत्र के होने पर ग्रहबलादियुक्त मुहूर्त्त में यादवों को परममङ्गलकारी परमानन्द उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णजी ने, तिस कालिन्दी के साथ विवाह करलिया ॥ २९ ॥ अवन्तीदेश के राजे विन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वँभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधतां ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविंदां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यतां ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजाऽतिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥ न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान्सुदुर्धर्षान् वीरगंधासहान् खलान् ॥३३॥ तां श्रुत्वा वृषजित्तलभ्यां भगवान्सात्वतां पतिः ॥ जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणापूजयत्प्रतिनंदितः ॥ ३५ ॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरंजजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः कॉले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अचि-

और अनुविन्द दुर्योधन के वश में रहते थे इसकारण उस की ही संमति से कार्य करते थे, उन्हों ने स्वयम्वर में श्रीकृष्णजी को वरने के निमित्त उद्यत हुई अपनी बहिन को निषेध करा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! पिता की बहिन राजाधिदेवी की कन्या तिस मित्रविन्दा को सब राजाओं के देखतेहुए ही बलात्कार से श्रीकृष्णजी ने हरलिया ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! कोसल देशों का स्वामी, अयोध्या में रहनेवाला नग्नजित् नामवाला परमधर्मात्मा राजा था, उस के ही नाम से नाग्नजिती नाम से प्रसिद्ध, कान्तियुक्त सत्या नामवाली उस की कन्या थी ॥ ३२ ॥ उस को वरने के विषय में, तीखे सींगोंवाले, वीरों की गन्ध को भी न सहनेवाले, मरखने और जिन को वश में करना कठिन था ऐसे सात मत्त वृषभों को जीतेविना कोई भी राजे (कन्या लेजाने को) समर्थ नहीं हुए ॥ ३३ ॥ तब उन वृषभों को जीतनेवाले पुरुष को ही वह कन्या मिलेगी ऐसा सुनकर, यादवों के पति श्रीकृष्णजी, बड़ीभारी सेना को साथ लेकर कोसलदेशों के विषै तिस अयोध्या नगरी में गये ॥३४॥ तब वह कोसलपति राजा नग्नजित् तिन श्रीकृष्णजी को आया हुआ देखकर उठकर भगवानी को सामने गया और आसन पाद्य आदि बड़ाभारी सामग्री से उन का पूजन करके, आप का शुभागमन हुआ इत्यादि वाणी से भी उन का सत्कार करा ॥ ३५ ॥ तब राजकन्या ने उन आयेहुए अपने मनमाने लक्ष्मीपति वर को देखकर, उन की इच्छा करी और कहने लगी कि–यदि मैंने व्रतादि नियमों से इन का मन में चिन्तवन करा होय तो यह मेरे पति होयँ और मनोरथों को सफल करें ॥ ३६॥ जिन के चरण कमल की धूलि, लक्ष्मी, शिव और लोकपालों सहित ब्रह्माजी मस्तकपर धारण करते हैं वह अपनी करीहुई मर्यादा की रक्षा करने की इच्छा से, धर्म का लोप होनेके समय लीलावतार धारण करनेवाले भगवान् ईश्वर, मेरे ऊपर कैसे प्रसन्न होंगे ? वह केवल कृपा करके ही मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेंद्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथाऽपि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कोन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर ईहासितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किन्त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४३ ॥ यदीमे निगृहीता स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ४४॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥ ४५॥ बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान् हतौजसः ॥ व्यकर्ष-

स्वीकार करें ॥३७॥ इधर पूजा करेहुए तिन भगवान् से राजा नग्नजित् कहने लगा कि-हे नारायण ! हे जगत्पते ! आत्मानन्द से ही परिपूर्ण ऐसे तुम्हारा, छोटासा मैं कौनसा कार्य करूँ ? अर्थात् किस कार्य से तुम्हारी प्रसन्नता होगी सो आज्ञा करिये ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! उससमय जिन्हों ने आसन आदि ग्रहण करा है ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, हर्षयुक्त होकर मेघ की गर्जना की समान गम्भीर वाणी में मन्दहास्य के साथ कहने लगे कि-॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! अपने धर्म से वर्त्ताव करनेवाले क्षत्रिय को, याचना करना, यद्यपि कवियों ने लोक और शास्त्र से निषेध करा है तथापि तुम्हारा बन्धुत्व से स्नेह होय इस इच्छा से तुम्हारी कन्या की हम तुम्हारे समीप याचना करते हैं ॥४०॥ राजाने कहा कि-हे नाथ ! तुम से अधिक उत्तम इस लोक में कन्या का इच्छित दूसरा वर कौन है ? गुणों के एक ही स्थान जिन तुम्हारे वक्षःस्थल में लक्ष्मी निरन्तर वास करती है ॥ ४१ ॥ परन्तु हे यादवश्रेष्ठ ! बड़े को कन्या देय ऐसा उचित है इसकारण कन्या को तैसा वर प्राप्त होने की इच्छा से, पुरुषों के बल आदि की परीक्षा होने के निमित्त हमने पहिले एक प्रतिज्ञा करली है ॥ ४२ ॥ हे वीर ! यह सात वृषभ विना सिखायेहुए और दूसरों के वश में न होनेवाले हैं; इन्होंने तो बहुतसे राजपुत्रों का तिरस्कार करा है और उन के अंग घायल करडाले हैं ॥ ४३ ॥ इस से हे यदुनन्दन ! यदि तुम इन को वश में करके नाथ डाल दो तो हे लक्ष्मीपते ! तुम ही मेरी कन्या के माननीय वर हो॥४४॥ ऐसी प्रतिज्ञा सुन दुपट्टा कमर से बाँधकर तिन प्रभु श्रीकृष्णजी ने, लीला से ही, अपने सातस्वरूप करके उन सात वृषभों के एकसाथ नाथ डालदी ॥ ४५ ॥ और जिन का बल नष्ट तथा घमण्ड दूर हुआ है ऐसे उन वृषभों को रस्सों से बाँधकर, उन बँधेहुओं को श्रीकृ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ल्लीलया वर्द्धान्वालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिं ॥ लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नेरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दश धेनुसहस्राणि पारिवर्हमदाद्विभुः॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससां ॥ ५० ॥ नव नागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ।५१। दंपती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥ ५२॥ श्रुत्वैतद्धुरुधुर्भूपा नयंतं पथि कन्यकां ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ॥५३॥ तानस्यतः शरव्रातान्धनुषि कृतदर्जुनः ॥ गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिवर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनाम्

ष्णजी ने, जैसे काठ के वैलों को वालक खैंचते है तैसे खैंचा ॥ ४६ ॥ फिर आश्चर्ययुक्त और प्रसन्नचित्तहुए तिस नग्नजित् राजा ने, श्रीकृष्णजी को अपनी कन्या समर्पण करी; तव अपने योग्य तिस सत्या को भगवान् श्रीकृष्णजीने विवाह की रीति से स्वीकार करा ॥४७॥ उससमय राजरानियें भी, कन्या को प्रियपति श्रीकृष्णजी प्राप्तहुए ऐसा देखकर परमानन्द को प्राप्तहुइ और उससमय वड़ा भारी उत्साह हुआ॥४८॥शंख नगाड़े और चौघड़े वजनेलगे, गान सहित वाजों का प्रारम्भ हुआ, ब्राह्मणों को आशीर्वाद प्रारम्भ हुए, नगर में के पुरुष और स्त्रियों ने आनन्दयुक्त होकर वस्त्र, माला और आभूषण धारण करे ॥ ४९ ॥ उस समय देने को समर्थ तिस राजा नग्नजित् ने, दश सहस्र गौएं दहेज में दीं, तैसे ही जिनके कण्ठ में कठले पडे हैं और जिन्हों ने वहुमूल्य के वस्त्र पहिने हैं ऐसी तीन सहस्र दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौ सहस्र हाथी और उन के सौगुणे (नौ लाख) रथ, उन के सौ गुणे (नौ करोड) घोडे और उन के सौ गुणे (नौ पद्म) सेवक दिये ॥ ५१ ॥ फिर जिस का हृदय स्नेह से आर्द्र हुआ है ऐसे उस कोसलदेशों के स्वामी राजा नग्नजित् ने, उस सत्या और श्रीकृष्ण इन दोनों को, रथपर वैठाकर वडी सेना के साथ विदा करके भेजदिया ॥ ५२ ॥ यह श्रीकृष्णजी की यात्रा सुनकर, यादवों के और उन सात वृषभों के पहिले पराजय करेहुए तथा उस पराजय को और श्रीकृष्णजी के उस कन्या के वरने को न सहनेवाले कितने ही राजाओं ने कन्या को लेकर जानेवाले श्रीकृष्णजी को मार्ग में घेरलिया ॥ ५३ ॥ तव वाणों के समूह छोडतेहुए उन राजाओं को, श्रीकृष्णजी ने प्रिय करनेवाले गाण्डीवधारी अर्जुन से तीखे वाण छुडवाकर जर्जर (वेहाल) करके जैसे साधारण हिरनों को सिंह भगाता है तैसे भगादिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर यादवश्रेष्ठ भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युतां ॥ स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्या-श्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥ निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः १। श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रेण हृतछत्रेण हृतकुंडलबंधुना ॥ हृतामरादिस्थानेन ज्ञापितो

श्रीकृष्णजी, श्वसुर के दियेहुए उस सब दहेज को लेकर उस सत्या के सहित द्वारका में में आ,आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्त्ति नामवाली जो पिता की बहिन उस की केकयदेशों में उत्पन्नहुई भद्रा नामवाली कन्या थी, उस को उसके संतर्दन आदि बांधवों के देनेपर श्रीकृष्णजी ने वरलिया ॥ ५६ ॥ हे राजन्! जैसे ही मद्रदेश के स्वामीकी शुभलक्षणों से युक्त लक्ष्णा नामवाली कन्याभी, जैसे इंद्रादि देवताओं का तिरस्कार करके गरुडजी ने सुधा (अमृत) हरण करी थी तैसे ही इकल हो श्रीकृष्णजी ने, स्वयंवर में सब राजाओं का तिरस्कार करके हरण करी ॥५७॥ इसप्रकार रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा इन आठ पटरानियों का विवाह कहकर अब और भी स्त्रियों का विवाह कहते हैं कि-हे राजन्! और भी ऐसी ही श्रीकृष्णजी की नरकासुर को मारकर उस के बन्दीघर में से तिन श्रीकृष्णजी की ही लाईहुई सहस्रों सुन्दर स्त्रियें थीं ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे उनसठवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने, भौमासुर को मारकर उस की लाकर रक्खीहुई सहस्रों कन्या वरीं और स्वर्ग से पारिजातक वृक्ष लाये, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ राजा ने कहा कि-जिस भौमासुर ने, वह स्त्रियें रोककर रक्खीं थीं उस भौमासुर को भगवान् ने जिसकारण से और जिसप्रकार मारा हो वह शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णजी का चरित्र मुझ से कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन्! पहिले भौमासुर ने, वरुण का छत्र, इन्द्र की माता अदिति के कुण्डल और मेरुपर्वत के ऊपर का इन्द्र का मणिपर्वत नामवाला स्थान यह सब बलात्कार से छीन लिये थे इसकारण वह भौमासुर का दुष्ट वर्त्ताव सत्यभामा के घर आकर भगवान् से इन्द्र ने कहा तब उस सत्यभामा को कौतुक दिखाने के निमित्त श्रीकृष्णजी ने उसके साथ*

* भौमासुर भूमि का पुत्र था, और तेरी आज्ञा से ही तेरे पुत्र को मारूँगा ऐसा वरदान देदिया था, उस के सत्य करने के निमित्त सत्यभामा भी भूमि का अंश थी इसकारण उस को साथ लेकर श्रीकृष्णजी ने गमन करा, अथवा नारदजी का लायाहुआ पारिजात का फूल रुक्मिणी को देनेपर रूठीहुई सत्यभामा को समझाने के निमित्त श्रीकृष्णजी ने कहा कि-तुझे पारिजातक वृक्ष ही लायेदेता हूँ सो पारिजातक वृक्ष भी लाने के निमित्त उस को साथ लेगये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भौमचेष्टितम् ॥ सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥ गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वतः आवृतम् ॥ ३ ॥ गदया निर्विभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथाऽसिना ॥ ४ ॥ शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनां ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्विभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानलरोचिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पंचभिः ॥ सरोदसी सर्वदिशोऽथ खं महानापूरयन्नंडकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुंचत ९॥

गरुड़जी के ऊपर बैठकर भौमासुर के प्राग्ज्योतिष नामवाले नगर पर चढ़ाई करी ॥ २ ॥ गरुडजी के ऊपर बैठकर जाने का कारण यह था कि— वह नगर सब ओर के पर्वतों के दुर्गों (किलों) से,शस्त्रों के किलों से और जल,अग्नि तथा वायु के कारण प्रवेश करने को कठिनथा और आनेवाले शत्रुओं को खेंचनेवाले तथा जिन का काटना कठिन है ऐसे सहस्रों पाशों से चारों ओर घिराहुआ था ॥ ३ ॥ भगवान् ने तहाँ जाकर गदा से पर्वतों का चूरा २ करदिया,बाण छोड़कर शस्त्रों के किले को तोड़डाला,चक्रसे अग्नि, जल और वायु को नष्टप्राय करदिया तथा तरवार से मुर दैत्य का पाश तोड़डाला ॥ ४ ॥ शंख के नाद से प्रवेश करते में रोकनेवाले यंत्रों को और मुरदैत्य आदि शूरों के हृदयोंको विदीर्ण करा और उन गदाधारी श्रीकृष्णजी ने, बड़ीभारी गदा से छारदीवारी को तोड़ डाला ॥ ५ ॥ उससमय प्रलयकाल के वज्रपात के शब्द की समान भयङ्कर उस पाञ्चजन्य शंख के शब्द को सुनकर,गढ़हे में के जल में सोयाहुआ पाँच शिरवाला वह मुरदैत्य तहाँ से उठा॥६॥और प्रलयकाल के सूर्याग्नि की समान कान्तिमान् भयङ्कर और कठिनता से देखने योग्य तिस दैत्य ने, त्रिशूल उठाकर अपने पांच मुखों से मानो त्रिलोकी को निगलेही लेता है ऐसे अपने मुखों को फैलाकर, जैसे सर्प गरुड़ को मारने के निमित्त दौड़ता है तैसे उन श्रीकृष्णजी के मारने को दौडा ॥ ७ ॥ और उस ने अपने त्रिशूल को घर २ घुमाकर वेग के साथ गरुड़जी के ऊपर फेंका और अपने पांचों मुखों से गर्जकर तिस शब्द के द्वारा स्वर्ग, भूमि, आकाश और सब दिशाओं को भरकर ब्रह्मकटाह को भी व्याप्तकरदिया ॥ ८ ॥ वह त्रिशूल गरुड़जी के मारने के निमित्त आरहा है ऐसा देखकर श्रीकृष्णजी ने, दो बाणों से उस के तीन टुकड़े करडाले और उस मुरदैत्य के भी पाँचों मुखोंमें पाँच बाणों से प्रहार करा तब तिस मुरदैत्य ने भी क्रोध से श्रीकृष्णजी के ऊपर गदा छोडी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्विभिदे सहस्रधा॥उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपातांभसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोद्रिरिवेन्द्रतेजसा॥तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥ ॥ १२ ॥ प्रायुंजतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजितेरुषोल्बणाः॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोभिर्भवनैर्निराक्रमत् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्तडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधांश्च सर्वे युगपत्स्म

॥ ९ ॥ युद्ध में वह उस मुरदैत्य की गदा के आनेपर श्रीकृष्णजी ने अपनी गदा से उस के सहस्रों टुकडे करडाले फिर भुजा फैलाकर सामने को भागकर आनेवाले उस मुरदैत्य के पाँचों ही शिर श्रीकृष्णजी ने लीला करके चक्र से काटगिराये ॥ १० ॥ तब शिर कटजाने के कारण प्राणहीन हुआ वह मुरदैत्य, जैसे इन्द्र के वज्र से जिस के शिखर टूटगये हैं ऐसा पर्वत भूमिपर गिर पड़ता है तैसे ही गढ़हे में के जल में गिरपडा फिर उस के सात पुत्र पिता के वध से दुःखित और बदला लेने के निमित्त क्रोध युक्त होकर युद्ध करने को उद्यत हुए ॥ ११ ॥ उन के नाम—ताम्र, अन्तरिक्ष, पवन्, विभावसु, वसु, नभस्वान्, और सातवां अरुण यह थे, वह भौमासुर के आज्ञादियेहुए, आयुध लेकर युद्ध में पीठ नामक सेनापति को आगे करके नगर से निकले ॥ १२ ॥ उन भयानकों ने संमुख आकर श्रीकृष्णजी के ऊपर बाण, तरवार, गदा, शक्ति, रिष्टि और शूल यह आयुध छोडे तब अमोघपराक्रमी श्रीकृष्णजी ने, अपने बाणों से उन के शस्त्रों के समूहों को काटकर तिलकी समान टुकडे २ करदिये ॥ १३ ॥ और मस्तक, जंघा, हाथ, पैर, तथा जिनके कवच तोडडाले हैं ऐसे उन पीठ आदि दैत्यों को यमलोक भेजदिया तब मेरे सेनापति श्रीकृष्णजी के चक्र से और बाणों से मरण को प्राप्त होगये ऐसा देखकर, इस दशा को न सहनेवाला भूमि का पुत्र नरकासुर, गण्डस्थल में से मद टपकानेवाले और ऐरावत के कुलमें उत्पन्न हुए हाथियों को साथ में लेकर युद्ध करने को चला ॥ १४ ॥ तब उस भौमासुर ने, जैसे सूर्य के ऊपर बिजलीसहित काला मेघदीखे तैसेगरुडजी के ऊपर सत्यभामा सहितबैठेहुए श्रीकृष्णजी को देखकर उनके ऊपर शतघ्नी नामवाली शक्ति छोडी, तैसे ही उस भौमासुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधविग्रहं चकार तर्ह्येव हतांश्चकुञ्जरम् ॥ ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्त्तो नरको युध्ययुद्ध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ ॥१९॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥ शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे विनतोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं

के योधाओं ने भी अपने २ आयुधों से श्रीकृष्णजी के ऊपर एकसाथ प्रहार करा ॥ १५ ॥ उससमय भगवान् श्रीकृष्णजी ने, चित्रविचित्र परोंवाले तीखे वाणों से उस भौमासुरकी सेना को, जिस के भुजा, जंघा, कंठ, और देह कटगये हैं तथा जिस में हाथी और घोड़े मरण को प्राप्त हुए हैं ऐसी करा ॥ १६ ॥ हे राजन्! उस सेना के मारेजाने से पहिले ही जिन योधाओं ने शस्त्र अस्त्र छोड़दिये थे वह, श्रीकृष्णजी ने, तीन २ तीखेवाणों से एक २ इसप्रकार सब ही काटडाले अर्थात् उन के छोड़े हुए शस्त्र अस्त्रों के आकर पहुँचने से पहिले ही उस सब सेना को मारकर फिर वह शस्त्र अस्त्र, एक २ के ऊपर तीन २ वाण छोड़कर काटडाले यह आश्चर्य है ॥ १७ ॥ वह भगवान्, अपने पङ्खों से हाथियों को मारनेवाले गरुड़जी के ऊपर स्थित थे सो उस युद्ध के समय गरुडजी ने, अपनी चोंच पंख और नखों से प्रहार करा तो कितने ही हाथी, अतिपीडित होने के कारण नगर में को भागगये; उससमय इकला नरकासुर ही रणभूमि में युद्ध करनेलगा; तिस भौमासुर ने, गरुडजी ने पीडित करके मेरी सेना को भगादिया है ऐसा देखकर जिसशक्ति से वज्र को भी पीछे को लौटादिया था उस शक्ति से गरुडजी के ऊपर प्रहार करा उस से ताडन करेहुए वह गरुडजी, जैसे माला से ताडना कराहुआ हाथी हिलता भी नहीं है तैसे हिले भी नहीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ इसप्रकार गरुडजी के ऊपर जिस का उद्योग व्यर्थ हुआ है तिस भौमासुर ने श्रीकृष्णजी को मारने के निमित्त त्रिशूल हाथ में लिया, उस का प्रहार करने से पहिले ही श्रीहरी ने, तीखी धारवाले वज्र से हाथीपर बैठे हुए तिस नरकासुर का शिर काट दिया ॥ २१ ॥ तब कुण्डलों सहित, सुन्दर किरीट और भूषणों से युक्त दमकताहुआ वह नरकासुर का शिर, भूमिपर गिरने पर शोभित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुज्ज्वलत् ॥ हा हेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजांबूनदरत्नभास्वरे ॥ सवैजयन्त्या वनमालयाऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिं ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्रांजलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥ अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ परावरात्मन् भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय वि-

होनेलगा, उससमय नरकासुर के सम्बन्धी पुरुषों ने, हाहाकार शब्द का उच्चारण करा, ऋषियों ने 'साधु साधु' इस शब्द का उच्चारण करा; श्रेष्ठ देवता तो श्रीकृष्णजी के ऊपर फूलों की वर्षा करते हुए स्तुति करनेलगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर नरकासुर की माता मूर्त्ति धारिणी भूमि ने श्रीकृष्णजी के समीप आकर उन को, रत्न मिले उत्तम फूलों से गुथी हुई वनमाला सहित,तपाएहुए सुवर्ण पर कुन्दन करके बैठाएहुए रत्नों से दमकतेहुए अदिति के कुण्डल,वरुण का छत्र और मेरु पर्वत पर के मणिपर्वतरूप स्थान का अधिकार यह सब अर्पण करे ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! हाथ जोडकर मस्तक नमायेहुए वह भूमि,भक्ति से एकाग्र हुई बुद्धि करके,ब्रह्मादिकों से पूजित तिन श्रीकृष्णजी की स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥ भूमि ने कहा कि-हे देवदेवेश ! हे शंखचक्रगदाधर ! तुम्हें नमस्कार हो, हे परमात्मन् भक्तों की इच्छा के अनुसार स्वरूप धारण करनेवाले तुम्हें नमस्कारहो ॥ २५ ॥ अब जिस मंत्र से पहिले कुन्ती के ऊपर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए थे तिस मंत्र से नमस्कार करती है-जिन की नाभि में जगत् का कारणरूप कमल है उन को नमस्कार हो, जिन के कण्ठ में सत्कीर्त्तिमय कमलों की माला है उन को नमस्कार हो,जिन के नेत्रकमल की समान ताप को शान्त करनेवाले हैं तिन को नमस्कार हो, जिन के चरणकमल की समान सुख से सेवन करने योग्य हैं ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ २६ ॥ परम ऐश्वर्य से युक्त, सकल प्राणियों के आश्रय और व्यापक तुम कारण को नमस्कार हो, जगद्रूप, सर्व कार्यों से पहिले ही विद्यमान, जगत् की कारण जो माया तिस के भी कारण और पूर्णज्ञानरूप तुम कारण को नमस्कार हो ॥ २७ ॥ स्वयं जन्मरहित होकर भी जगत् को उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्मरूप और अनन्तशक्ति तुम कारण को नमस्कार हो. हे स्थावर जङ्गमों के उत्पन्न करनेवाले ! हे पृथिवी आदि पंचभूतों को उत्पन्न करनेवाले ! हे परमात्मन् तुम्हें नमस्कार हो ॥ २८ ॥ जगत् की उत्पत्ति आदि के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भविष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः॥तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्रविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसा-

जो गुण, तिन का कारण जो प्रधान (प्रकृति) तिस का क्षोभित करनेवाला जो पुरुष और तहाँ निमित्त काल प्रसिद्ध है मैं इस में कौन हूँ? ऐसा कहो तो हे प्रभो! जगत्पते! तुम ही सृष्टि करने की इच्छा करते हो तब सृष्टि करने में उन्मुख हुए रजोगुण को धारण करते हो अर्थात् रजोगुणप्रधान ब्रह्मारूप होकर सृष्टि को उत्पन्न करते हो तथा जगत् का नाश करने में उत्कट तमोगुण को धारण करते हो तब तमोगुणप्रधान रुद्ररूप होकर संहार करते हो तैसे ही जगत् का पालन करने के निमित्त उत्कट सत्वगुण को स्वीकार करते हो तब सत्वगुणप्रधान विष्णुआदिरूप होकर पालन करते हो. इतना करके भी तुम उन गुणों से लिप्त नहीं होते हो. तैसे ही तुम काल, प्रधान और पुरुषरूप होकर भी वास्तव में उन से पृथक् ही हो॥ २९॥ हे भगवन्! मैं भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द-स्पर्श रूप-रस-गन्ध, इन्द्रियों के देवता, मन, चक्षु आदि इन्द्रियें, अहङ्कार और महत्तत्त्व (बुद्धि) इसप्रकार का जो चराचर जगत्, अद्वितीय ब्रह्मरूप तुम्हारे विषैं प्रतीत होता है सो यह प्राणियों का भ्रम (बुद्धिमोह ही) है ॥३०॥ हे शरणागतों के दुःखों का नाश करनेवाले! यह भगदत्त नामवाला तिस भौमासुर का पुत्र,मैंने तुम्हारे चरणों में डाला है परन्तु यह भय मानरहा है इसकारण तुम इस की रक्षा करो और सकल दोषों को दूर करनेवाला अपना करकमल इस के मस्तक पर स्थापन करो ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि--हे राजन्! इसप्रकार भक्ति से नम्र हुई भूमि की वाणियों से प्रार्थना करेहुए भगवान् श्रीकृष्णजी भगदत्त को अभय देकर सकल भोगसम्पदाओं से युक्त तिस भौमासुर के घर में प्रवेश करा ॥ ३२ ॥ तहां पराक्रम करके, भौमासुर की राजाओं के यहां से और देवता सिद्ध आदिकों के यहां से लाई हुई सोलह सहस्र एक सौ कन्या थीं उन को भगवान् ने देखा ॥ ३३ ॥ तब दैव ने अपने समीप पहुँचायेहुए और घर में आयेहुए मनुष्यश्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजी को देखकर अत्यन्त मोहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धीता तदनुमोदतां ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्रोहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोवराः ॥ नरयानैर्महाकोशान रथांश्वान् द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दंतांस्तरस्विनः ॥ पांडुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्वाऽदित्यै च कुंडले ॥ पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च संप्रियः ॥ ३८ ॥ नोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमरास्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ ययाचे आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महान्नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यतां ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त्त एकस्मिन्नाना-

हुई उन स्त्रियों ने, अतिप्रिय तिन पति को मन से वर लिया ॥ ३४ ॥ यह मेरे निमित्त पति हों, ऐसी मेरी इच्छा को ब्रह्माजी सत्य करें; ऐसे अभिप्राय से तिन सब कन्याओं ने श्रीकृष्णजी में अपना हृदय स्थापन करा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर स्नान करीहुई और स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवालीं उन कन्याओं को भगवान् ने पालकियों में बिठवाकर द्वारका को भेज दिया ॥ ३६ ॥ और श्रीकृष्णजी ने, जिन के चार २ दाँत हैं और जो अतिवेगवान् स्वेतवर्ण के चार दांतवाले और ऐरावत के वंश में उत्पन्नहुए हैं ऐसे चौंसठ हाथी भेजे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर जीकृष्णजी ने, इन्द्र के घर जाकर अदिति को कुण्डल दिये तब इन्द्राणी सहित इन्द्र ने, सत्यभामा सहित तिन श्रीकृष्णजी की पूजा करी ॥ ३८ ॥ फिर लौटकर आते में सत्यभामा के स्मरण दिलाने पर श्रीकृष्णजी ने तहाँ के पारिजातक नामवाले वृक्ष को उखाडकर गरुड़जी के ऊपर रख लिया और इन्द्रसहित सकलदेवताओं को जीतकर वह वृक्ष द्वारका में लाये ॥ ३९ ॥ सत्यभामा के मन्दिर के समीप के बाग को अतिशोभा देनेवाला वह पारिजातक वृक्ष उस बाग में ही लगादिया, उस की सुगन्ध के मद के लोभी भौंरे स्वर्ग से उस के पीछे २ ही द्वारका में आये ॥ ४० ॥ 'इन्द्रसहित सब देवताओं को जीतकर' ऐसा जो कहा तिस से इन्द्र का और श्रीकृष्णजी का संग्राम होना प्रतीत होता है, सो अपना मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णजी के साथ इन्द्र का संग्राम कैसे होगया? इसशंका को दूर करने के निमित्त कहते हैं कि—जिस इन्द्र ने पहिले अपना मस्तक नमाकर किरीट के अग्रभागों से चरणों को स्पर्श करके भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले तिन श्रीकृष्णजी की प्रार्थना करी पीछे अपना कार्यसिद्ध होजाने पर वही इन्द्र इन दुःसाध्य कर्म करनेवाले स्वामी के साथ विरोध करता है; अहो! देवताओं को भी ऐसा बडा क्रोध! तब तो धनवान्पने को धिक्कार है ॥ ४१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौरेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोव्ययः ॥४२॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्कृष्णिरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदोऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यं ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभा० म० दश० उ० पारिजातहरणनरकवधो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच॥ कदाचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥ पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन स-

फिर द्वारका में जाने के अनन्तर एक ही महूर्त्त में, जितनी (१६१००) जो स्त्रियें थीं उतने ही घरों में उतने ही रूप धारण करनेवाले और उतने ही देवकी आदि बान्धवों से युक्त श्रीकृष्णजी ने उन स्त्रियों के साथ विधिपूर्वक विवाह करलिया ॥ ४२ ॥ भोग के पदार्थों की सम्पदा से जिन के समान वा जिन से अधिक उत्तम दूसरे किसी के भी घर नहीं हैं ऐसी उन सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के घरों में निरन्तर रहनेवाले, अतर्क्य कार्य करनेवाले और निजानन्द से परिपूर्ण वह श्रीकृष्णजी, जैसे कोई साधारण पुरुष, गृहस्थ धर्मों को करताहुआ स्त्रियों से रमण करता है तैसे लक्ष्मी की अंशरूप तिन स्त्रियों के साथ रमण करने लगे ॥४३॥ इसप्रकार, ब्रह्मादिक देवता भी जिन की प्राप्ति होनेका मार्ग नहीं जानते हैं वह लक्ष्मी पति श्रीकृष्णजी, विवाह के सम्बन्ध से पति प्राप्त होनेपर प्रेमहास्यसहित चितवन के साथ जो नया २ समागम तिस में जो विनोद के भाषण उन में जिन को लज्जाप्राप्त होरही है ऐसी वह स्त्रियें, निरन्तर बढ़नेवाली प्रीति से उनका सेवन करनेलगीं॥४४॥ जिनकी सैकड़ों दासियें हैं ऐसी वह स्त्रियें, बाहर से आयेहुए श्रीकृष्णजी को देखकर सन्मुखजाना आसनदेना, अर्घ्य आदि से पूजन करना, चरण धोना, ताम्बूल देना, चरणों की सेवा करके श्रम दूर करना, चँवर पंखे आदि से वायु करना, गन्ध पुष्प आदि अर्पण करना, केशों को सुगन्धित तेल लगाकर कढ़ना, शय्या स्नान का जल और भक्ष्यभोज्य के पदार्थ समर्पण करना इत्यादि प्रकारों से उन प्रभु पतिका आपही दासकार्य करती थीं ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवत् के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकोनषष्टितम अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे साठवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने प्रेम के कलह में विनोद के वाक्यों से रुक्मिणी को क्रोधित करके फिर उस को समझाया यह कथा वर्णन करी हैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते है कि—हे राजन् ! एकसमयमन्दिर में अपने पलँग पर सुख से बैठेहुए जगद्गुरु श्रीकृष्ण पति की, सखियों से घिरीहुई रुक्मिणी पंखे से पवन करके सेवा करनेलगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतेल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥२॥ तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामाभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजैराजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यंके कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिं ६ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं कणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽगुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रांतगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितंबधृतया च पराध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरू-

॥ १ ॥ अब उस रुक्मिणी का श्रीकृष्णजी के विषें परम प्रेम कहने के निमित्त सत्य स्वरूप का स्मरण कराते हैं कि—जो ईश्वर लीलामात्र से इस जगत् को उत्पन्न करता है, पालन करता है और संहार करता है वही आप जन्म रहित होकर भी अपनी रची धर्म मर्यादा की रक्षा करनेके निमित्त यादवों में उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ वह श्रीकृष्णजी का मन्दिर चमकीले मोतियों के गुच्छे लगीहुई झालरों की कपडछत्त से सोभायमान और रत्नमय दीपकों से प्रकाशवान् था ॥ ३ ॥ मल्लिका की मालाओं से तथा और भी अनेकों प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से युक्त और भ्रमरों के झुण्ड से गुञ्जार रहा था; झरोखों के छिद्रों में को भीतर आईहुई चन्द्रमा की स्वच्छ किरणों से शोभायमान था ॥ ४ ॥ आरामबाग में शोभायमान पारिजातक वृक्ष से आयेहुए सुगन्धकारी वायुसे तैसे ही झरोखों में को बाहर जानेवाले भीतर के अगर के धुओं से शोभायमान था ॥ ५ ॥ हे राजन्! ऐसे उन प्रसिद्ध घरके भीतर पलँगपर बिछायेहुए दूध के झागों की समान कोमल और स्वेत उत्तम गद्दी पर आनन्द से बैठेहुए जगत् के नियन्ता पति की रुक्मिणी सेवा करने लगी ॥ ६ ॥ अपनी सखी के हाथ में से रत्नजडे दण्डेवाली चौंरी लेकर तिस से जगत्पालक अपने पति की पवन करके सेवा करनेलगी ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजी के समीप में जिस के हाथ के पहुँचे में कङ्कण, रत्नजडी मुद्रिका और चँवरी है, जिस के चरणों में मणिमय पायलों की झनकार होरही है और जो आप ही अत्यन्त प्रकाशवान् होरही है ऐसी वह रुक्मिणी, मणिजडे नूपरों से और मोहरों के कण्ठों से ढकेहुए स्तनों पर लगेहुए केसर से लाल २ हुए हारकी कान्ती से और कमर में धारण करीहुई बहुत मूल्य की मेखला से विशेष शोभायमान् होनेलगी ॥ ८ ॥ जो लक्ष्मी ही मनुष्यावतार धारण करनेवाले भगवान् के योग्य अपना स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परूँपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराव-भाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सितां भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो वृष्टयेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषां ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः ॥ तस्मात्प्रायेण नाढ्यार्था मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

धारण करती है; जो कभी भी भगवान् से वियोग को नहीं प्राप्त होती और पीठ पर बिखरेहुए केश, दोनों ओर कानों में मकराकृति-कुण्डल आगे कण्ठ में धारण करेहुए पचलड़ा आदि आभूषण, इसप्रकार चारों ओर से शोभायमान, जिस के मुख पर मन्द-हास्यरूप अमृत विलास कररहा है ऐसी उस मूर्त्तिधारिणी लक्ष्मी को देखकर प्रसन्नहुए भगवान् श्रीकृष्णजी कुछ हँसकर बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् कहनेलगे कि—हे राजपुत्रि ! लोकपालों की समान ऐश्वर्यों से युक्त महापराक्रमी, धनवान् और सुन्दरता, उदारता तथा बल से उत्तम होने के कारण वरनेयोग्य राजाओं ने पहिले तेरी इच्छा करी है और तेरे भ्राता तथा पिता ने भी उन को ही तू देदी है इसकारण याचना करनेवाले और कामदेव से दुर्मदहुए (कामातुर पुरुष, स्त्रियों के सकल मनोरथों को पूर्ण करते हैं) और अपनेआप आयेहुए उन शिशुपाल आदि राजाओं को छोडकर हम अयोग्यों को भला तैने काहे को वरा ? ॥ १० ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटीवाली ! हम तो प्रायः जरासन्ध आदि राजाओं से डरनेवाले, समुद्र की शरण गयेहुए (समुद्र के टापू में रहनेवाले) बलवान् राजाओं से वैर बाँधलेनेवाले और ययाति के शाप से राज्य के अधिकार से रहित हैं ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! जिन का आचार स्पष्ट रीति से समझ में नहीं आता ऐसे और स्त्रियों की इच्छा के अनुसार वर्ताव न करनेवाले पुरुषों के मार्ग को प्राप्तहुई स्त्रियें प्रायः क्लेश पाती हैं ॥ १३ ॥ हम निरन्तर धन आदि सम्पदारहित और दरिद्री पुरुषों को प्रिय अथवा दरिद्री पुरुषों से प्रेम रखनेवाले हैं इसकारण हे सुमध्यमे ! धनादि सम्पदायुक्त पुरुष, प्रायः मेरी सेवा नहीं करते हैं, यह निश्चय है ॥ १४ ॥ जिन दोनों पुरुषों का परस्पर के योग्य जाति, कुल, ऐश्वर्य, स्वरूप, सुन्दरता और धनकी प्राप्ति यह समान होते हैं उन का ही परस्पर विवाह और मित्रता योग्य होते हैं; उत्तम और अधमों के परस्पर विवाह और मित्रता कभी भी योग्य नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ हे रुक्मिणि !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभं ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासंधदन्तवक्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहृतताऽसतां ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्यास्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तर्हि पप्र उपारमत् ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ॥ आसिञ्चती कुंकुमरूषितौ स्तनौ त-

इस कहीहुई हमारी अयोग्यता को न जानकर दूर का विचार न करनेवाली तूने, नारदादि भिक्षुकों से व्यर्थ स्तुति करेहुए परन्तु गुणहीन हमें व्यर्थ वरलिया है ॥ १६ ॥ इसकारण अब भी, जिस का सेवन करके इसलोक में और परलोक में तू अपने इच्छित पदार्थों को पावेगी तिस अपने योग्य किसी क्षत्रिय को स्वीकार कर ॥ १७ ॥ यदि कहे कि—तुम मुझे क्यों लाये थे ? तो सुन-शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजे, तथा तेरा बड़ा भ्राता रुक्मी यह सब मुझसे द्वेष करते हैं ॥ १८ ॥ इसकारण पराक्रम से मदान्ध और घमण्डी उन शिशुपाल आदिकों का गर्व दूर करने के निमित्त, दुष्टों का तेज हरनेवाला मैं तुझे लाया हूँ ॥ १९ ॥ परन्तु हम, निजानन्द का अनुभव मिलने से पूर्णमनोरथ होने के कारण स्त्री, पुत्र और सम्पत्तियों की इच्छा नहीं करते हैं; किन्तु जैसे उत्तम दीपक की ज्योति केवल प्रकाश करके साक्षीमात्र होती है तैसे ही हम साक्षिमात्र होकर सकल क्रियाओं से रहित तथा देह और घरों में भी निरन्तर आसक्तिरहित रहते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-इसप्रकार वियोग न होने के कारण, मैं ही प्रिय स्त्री हूँ ऐसा मानकर घमण्ड में हुई तिस रुक्मिणी से, उस का गर्व दूर करनेवाले भगवान् ऐसा कहकर मौन होगये ॥ २१ ॥ ब्रह्मादिकों के पालक अपने पति के इसप्रकार के पहिले कभी भी न सुनेहुए तिस अप्रिय वचन को सुनकर 'भगवान् मुझे त्यागदेंगे' ऐसी चिन्ता से डरीहुई इसकारण हो जिस के हृदय में कंपकंपी उत्पन्न हुई है और रोनेवाली वह रुक्मिणी देवी उससमय अपार चिन्ता को प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ अब चिंता के लक्षण कहते हैं कि—उससमय, जिस की कान्ति नखों के कारण लाली लियेहुए है ऐसे अपने कमलसमान परमकोमल चरण से (बायें चरण के अँगूठे से) भूमि को कुरेदनेवाली तथा काजल से कालेहुए दुःख के आँसुओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन् रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्नन्यविप्लवां सतीं ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणां ॥ त्वद्वचः श्रोतुकां-

से केशर लगेहुए स्तनो को सींचनेवाली और अतिदुःख से जिस का कण्ठ रुकगया है ऐसी वह रुक्मिणी, नीचे को मुख करके मौन होरही ॥ २३ ॥ तब अप्रिय भाषण को सुनने से होनेवाले अतिदुःख, त्यागने की संभावना से उत्पन्न हुए भय और अब आगे को कैसे होयगी! ऐसे प्राप्तहुए शोक के कारण जिसकी बुद्धि नष्टहुई है ऐसी तिस रुक्मिणी के, उससमय के दुःख से होनेवाली दुर्बलता के कारण जिसमें से कङ्कन नीचे निकलपड़ा है ऐसे हाथमें से चँवरी गिरपड़ी और विकलबुद्धिहुई तिस का शरीर भी एकाएकी मूर्छित होकर, जैसे पवन का उखाडा हुआ केले का खंभ गिरपडता है तैसेही केशों का जूड़ा खुलने के कारण उसमें के केश अस्तव्यस्त होकर भूमिपर गिरपडा ॥ २४ ॥ तब उस गिरने को, और विनोद (चौल) की गम्भीरता को न जाननेवाली रुक्मिणी का अपने में प्रेमबन्धन देखकर करुणायुक्त हुए तिन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, उसके ऊपर कृपाकरी ॥ २५ ॥ उस को उठाना, आलिङ्गन करना, और मुख पूछनाआदि कार्य एकसाथ करने के निमित्त चतुर्भुज रूपहुए भगवान् श्रीकृष्णजीने, शीघ्रता से पलङ्गपर से नीचे उतरकर पडीहुई उस को उठाया और उसके केशों को बांधकर कमल की समान कोमल हाथ से उसका मुख पूछा ॥ २६ ॥ तदनन्तर आँसुओं की बूंदों से शोभायमान उस के नेत्र पोंछकर तथा शोक के आंसुओं से भीगे हुए उस के स्तनों को पोंछकर, बाहु से उस को आलिंगन करके हे राजन्! समझाने का उपाय जाननेवाले तिन भक्तपालक प्रभु श्रीकृष्णजी ने, हास्य की बातों से चित्त में भ्रम को तथा दीनदशा को प्राप्तहुई और हास्य करने के अयोग्य तिस दूसरे का ध्यान न करनेवाली पतिव्रता रुक्मिणी को कृपा करके समझाया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे रुक्मिणि! तू मेरे ऊपर, 'विना कारण दुःख दिया ऐसा' दोष न लगा, क्योंकि—तू मेरे ही आश्रय से रहनेवाली है ऐसा मैं जानता हूँ तथापि हे सुन्दरि! मेरी बातों से रूठीहुई तू क्या कहेगी, तिस को सुनने की इच्छा करनेवाले मैंने हास्य में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥ मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापांगं सुंदरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनां ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ वभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षंती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविंदविलोचनाह यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥३४॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमांतः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा ॥ नित्यं क-

यह ऐसा भाषण करा है, सत्य नहीं ॥२९॥ और जहां तेरा अधर ओठ प्रेम के कोप से फड़करहा है, जहां तेरे तिरछी दृष्टि से युक्त और लाल २ हुए नेत्र हैं तथा जहां सुन्दर (तिरछा) भ्रुकुटि का तट है ऐसा तेरा मुख देखने के निमित्त मैंने यह भाषण करा है ॥ ३० ॥ यदि कहे कि—कलह में क्या कौतुक वा सुख है ? तो -हे डरपोक स्त्रि ! स्त्री के साथ हास्य चौल के भाषणों से समय विताना ही दुःखरूप घर में रहनेवाले गृहस्थों को परमलाभ (सुखरूप फल देनेवाला) है शेष सब दुःख ही है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् की समझाई हुई उस रुक्मिणी ने, यह भगवान् का विनोद से कराहुआ भाषण है ऐसा जानकर, 'मुझे पति जाने त्याग देंगे क्या !' ऐसे हृदय के भय को त्याग दिया ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! फिर लज्जा युक्त हास्य के कारण सुन्दर प्रेमयुक्त कटाक्ष से भगवान् के ऐश्वर्य युक्त मुख को देखनेवाली वह रुक्मिणी, पुरुषों में श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजी से कहने लगी ॥ ३३ ॥ तिस में श्रीकृष्णजी ने जो कहा था कि—समानभावराहित हमें तू ने क्यों वरा ? सो समानता न होना ठीक ही है ऐसा दिखाने को कहती है कि—हे कमलनेत्र ! व्यापक और ऐश्वर्य आदि गुणों से परिपूर्ण तुम्हारे समान मैं नहीं हूँ ऐसा जो तुम ने कहा सो सर्वथा सत्य है, देखो—निजानन्दस्वरूप में रमण करनेवाले वैराग्य आदि गुणों से पूर्ण और ब्रह्मादिकों के नियन्ता तुम कहां ? और सत्वरजतमोगुण का स्वभाववाली और सकाम पुरुषों से आराधना करीहुई मैं कहां ? अर्थात् तुम में और मुझ में बहुतही अन्तर है ॥ ३४ ॥ अब, 'राजाओं से डरने वाले और समुद्र की शरण गयेहुए हैं' ऐसा जो कहा तिस के विषय में कहती है कि—हे उरुक्रम ! (अपने चरण से त्रिलोकी को व्याप्त करनेवाले), शब्दादि गुणही, प्रकाश पानेवाले होने के कारण 'राजे हुए उन से भयभीत होने के कारण ही मानो समुद्र की समान् अथाह हृदय के भीतर चैतन्यघनरूप आत्मा तुम शयन करते हो (निश्चलता कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिंद्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽधम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरंदजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवोहितमीश्वरस्य भूयस्तवोहितमथो अनु ये भवंतम् ॥ ३६ ॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरंत्यजाद्याः॥ न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽतकमाढ्यतांधाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजंति

के प्रकाश पाते हो). अब, बलवान् पुरुषों के साथ वैर बांधलेनेवाले हम हैं ' ऐसा जो कहा सो भी सत्य ही है; क्योंकि–बहिर्मुख हुई इन्द्रियों के समूह के साथ अथवा जिनकी इन्द्रियों का समूह विषयों में आसक्त है तिन के साथ तुम सदा कलह करनेवाले हो अर्थात् उन में तुम्हारी प्रीति नहीं होती है, अब, ' हम राज्यासन को त्यागे हुए हैं' ऐसा जो कहा सो भी योग्य ही है, क्योंकि–राजा का आसन अविवेकयुक्त होने के कारण गाढ़ अन्धकारयुक्त ही है उस को तुम्हारे सेवकों ने ही त्यागदिया है तो फिर तुमने त्यागदिया इस का तो कहना ही क्या? ३५ अब,' जिन का मार्ग स्पष्ट नहीं और लोकमार्ग के अनुसार वर्त्ताव न करनेवाले' ऐसा जो कहा सो भी ठीक ही है, क्योंकि–तुम्हारे चरणकमल के मकरन्द का (परमानन्दरूपरस का) सेवन करनेवाले मुनियों का भी मार्ग स्पष्टरूप से समझमें नहीं आता है और वह मनुष्य के आकारवाले पशुओं को वास्तव में तर्कना करने को भी अशक्य है इस कारण तुम्हारा मार्ग स्पष्ट नहीं समझाजाता इस का तो कहना ही क्या ? और हे व्यापक ! जो तुम्हारे अनुगामी (भक्त) पुरुष हैं उन का ही करना अलौकिक सा है फिर तुम ईश्वर का करना अलौकिक है उस का क्या कहना ? ॥३६॥ अब, 'हमारे निष्किञ्चन (दरिद्री) होने और निर्धनों को प्रियलगनेवाले होने अथवा निर्धनों से प्रेम रखनेवाले होने के कारण धनी पुरुष हमारी सेवा नहीं करते हैं ' ऐसा जो कहा तिस का परिहार करती है कि–हे प्रभो ! जिन से कुछ दुर्लभ नहीं ऐसे तुम निष्किञ्चन (सकल ऐश्वर्यवान्) हो, क्योंकि–दूसरों से पूजित होनेवाले ब्रह्मादिक भी जिन तुम्हें पूजा अर्पण करते हैं ऐसे तुम परमेश्वर में दूसरे दरिद्रीपने का निष्किञ्चनपना बन ही नहीं सकता. दूसरों से पूजा ग्रहण करनेवाले ब्रह्मादिक लोकेश्वरों को तुम प्रिय हो और वह भी तुम्हें प्रिय हैं. धनादि सम्पदा के अभिमान से अन्धे (विवेकहीन) हुए पुरुष, आयु हरनेवाले कालरूप तुम्हें नहीं जानते हैं इसकारण वह केवल अपने प्राणमात्र की ही तृप्ति करते हैं तुम्हारी सेवा नहीं करते हैं ॥३७॥ अब, ' जिन दोनो का समान बल होता है ' इत्यादि से कहेहुए अयोग्यपने का परिहार करती है कि–तुम धर्म आदि सकल पुरुषार्थमय और परमानन्दरूप हो, तुम्हारी प्राप्ति होने की इच्छा से श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष, सबप्रकार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥३८॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥३९॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥ यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽगवैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् । राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदन्ति ते न पदवीं त इहास्थिताः किं

व्यवहारों का त्याग करते हैं. हे विभो! उन विवेकी पुरुषों को ही तुम्हारा सेव्यसेवकभावरूप सम्बन्ध प्यारा है; पुरुष और स्त्री मिलकर परस्पर रमण करनेवाले और उस से प्राप्तहुए सुखदुःखों से व्याकुल होनेवाले तिन स्त्री-पुरुषों को तुम्हारा सम्बन्ध प्यारा नहीं लगता है ॥३८॥ 'नारदादि भिक्षुकों से व्यर्थ स्तुति करेहुए' ऐसा जो कहा तिस का परिहार करती है कि—जिन्हों ने प्राणियों को पीडा देनारूप दण्ड त्याग दिया है ऐसे मुनियों ने जिन का प्रभाव वर्णन करा है ऐसे तुम सकल जगत् के आत्मा और भक्तों को आत्मस्वरूप देनेवाले हो, ऐसा जानकर ही मैंने तुम्हें वरा है, इस के द्वारा 'तू ने दूरदृष्टि न रखकर मुझे वरा है, ऐसा जो कहा था तिस का भी परिहार करा. अब, जो मैंने तुम्हें वरा है सो तो—तुम्हारी भ्रुकुटि के चलानेमात्र से उत्पन्नहुए काल के वेग से जिन के विषय भोग नष्ट हो जाते हैं तिन ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिकों का भी त्याग करके तुम्हें जानकर ही वरा है फिर दूसरे तुच्छ पुरुषों को त्यागकर वरा इस का तो कहना ही क्या? ॥३९॥ इसप्रकार अपने अज्ञान का परिहार करके अब दूसरे पुरुषों के वर्णन से प्रदीप्तहुए कोप के आवेश से भगवान् के ऊपर ही अज्ञान की स्थापना करती है कि—हे गदाग्रज! हे ईश्वर! जैसे सिंह महिषादि पशुओं को भगाकर अपना भाग हरण करलेता है तैसे ही जिन तुमने शार्ङ्गधनुष के शब्द से ही जरासन्ध आदि राजाओं को भगाकर अपना भागरूप मेरा हरण करा है ऐसे तुम्हारा, 'तिन राजाओं के भय से समुद्र की शरण गया, इसप्रकार का जो कहना सो केवल जाड्य (अनन्वित) है अर्थात् ऐसा नहीं होसक्ता ॥ ४० ॥ अब, और भी दूसरा जो—'जिन का मार्ग स्पष्ट नहीं है ऐसे पुरुषों की अनुगामिनी स्त्रियें दुःख पाती हैं' ऐसा जो कहा सो भी ठीक नहीं है ऐसा वर्णन करती है कि—हे कमलनेत्र! जिन तुम्हारी प्राप्ति की इच्छा से अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति, और गय आदि राजाओं के शिखामणि, जिस में एक ही स्वामी है ऐसे अपने राज्य को त्यागकर तुम्हें पाने का साधन जो तुम्हारी आराधना तिस को करने के निमित्त वन में चलेगये, वह तुम्हारे मार्ग का आश्रय करनेवाले राजे, इस संसार में और पुरुषों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ४१ ॥ कोऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्रेय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गं ॥ लक्ष्म्यालयं त्वेविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वाऽनुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कांतमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदम-

की समान क्लेश पाते हैं क्या? क्लेश नहीं पाते किन्तु तुम्हारे स्वरूप को ही प्राप्तहुए हैं॥४१॥ अब, 'अपने योग्य दूसरा पति वर' ऐसा जो कहा था तिस का उत्तर कहती है कि— अपने भले बुरे का विचार करने में कुशल और मरणधर्म से युक्त ऐसी स्वयंवर करनेवाली भला कौनसी चतुर स्त्री तुम्हारे, जन समूह को मोक्ष देनेवाले, लक्ष्मी के स्थान और सत्पुरुषों करके वर्णन करेहुए चरणकमल का सुगन्ध लेकर (एकवार चरणकमल का प्रभाव सुनकर) और फिर उस का अनादर करके, जिस को निरन्तर अधिक ही भय है ऐसे तुम से अन्य पुरुष का सेवन करेगी? कोई नहीं करेगी ॥ ४२ ॥ इसकारण जगत् के अधिपति सब के आत्मा और इस लोक में तथा परलोक में सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले तुम योग्य वर को मैंने वरा है इसकारण संसार की निवृत्ति करनेवाले तुम, भक्त को आत्मस्वरूपी करते हो ऐसे तुम भगवान् का चरण देवता तिर्यक् आदि जन्मों के द्वारा भ्रमतीहुई मुझे सेवन करनेयोग्य होकर आश्रय हो ॥ ४३ ॥ अब, राजाओं के जो बहुतसे गुण कहे थे उन के विषय में ईर्षा से शाप देतीहुई और अंगूठा मोडतीहुई कहती है कि—हे अच्युत! हे शत्रुनाशक! महादेवजी और ब्रह्माजी करके अनेकों सभाओं में वर्णन करी हुई तुम्हारी कथा जिस के कानों के मार्ग में कुछ भी न पहुँची हो ऐसे भाग्यहीन स्त्री के, तुमने जिन के गुण वर्णन करके कहा है ऐसे पति स्त्रियों के घरों में गर्दभों की समान उन का बोझा उठानेवाले, वृषभों की समान सदा क्लेश पानेवाले, श्वानों की समान तिरस्कार पानेवाले और घर आदि की रक्षा करने में तत्पर, बिलारों की समान कृपण और हिंसक तथा सेवकों की समान किंकर राजे पति हों; मेरे वरने के योग्य तो वह नहीं हैं ॥ ४४ ॥ जिस स्त्रीने, तुम्हारे चरणकमल के मकरन्द का सुगन्ध कभी ग्रहण नहीं करा है अर्थात् तुम्हारे चरण का माहात्म्य कथा में कुछ भी नहीं सुना है वह ही स्त्री, यह पुरुष सुन्दर है ऐसा मानकर अत्यन्त मोहित होतीहुई, बाहर के त्वचा, दाढी मूछ, रोम, नख और केशों से ढकेहुए और भीतर मांस, हड्डी, रुधिर, कीड़े, विष्टा, कफ, पित और वात से भरेहुए ऐसे जीवित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वंबुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदुह नः परमाऽनुकंपा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अंबायां इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता ॥ मयोदितं यदन्यथेत्थं सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ५० ॥ उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मे-

ही मृतक (मुरदे) की समान पुरुष को सेवन करती है ॥ ४५ ॥ ' अब, हम उदासीन हैं ' इत्यादि जो कहा तिस का उत्तर कहती है कि—हे कमलनयन ! निजानन्दस्वरूप में रमण करने के कारण मुझ में आसक्तदृष्टि न रखनेवाले भी तुम्हारे चरण में मुझे प्रीति प्राप्त हो. यदि कहो कि उस प्रीति से तुझे कौन लाभ होगा ? तो सुनो—जिससमय इस जगत् की वृद्धि के निमित्त रजोगुण की उत्कण्ठा को स्वीकार करनेवाले तुम मेरी ओर (माया की ओर) को देखते हो वह तुम्हारा देखना ही हम सब शक्तियों के ऊपर तुम्हारी परम कृपा है ॥४६॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी के सब कथन का उलटा व्याख्यान करके प्रसन्न चित्त होती हुई सम्मति का उपदेश करती हुई कहती है कि—हे मधुसूदन ! तुम्हारा कथन मिथ्या है ऐसा मैं नहीं मानती हूँ क्योंकि—इसलोक मे जैसी काशीराज की अम्बा, अम्बालिका और अम्बिका इन नामोंवाली तीन कन्याओं में अम्बा की बाल्यावस्था में ही शाल्व राजा में प्रीति होगई थी तैसे प्रायः किसी ही कन्या को किसी ही पुरुष में प्रीति उत्पन्नहोती है ॥ ४७ ॥ तैसे ही जिसका विवाह होगया है ऐसी भी जारिणी का मन नवीन २ पुरुष की ओर को जाता है ऐसा व्यवहार होतेहुए विवेकी पुरुष जारिणी स्त्री को स्वीकार न करे, जारिणी का पोषण करनेवाला पुरुष इसलोक से और परलोक से भ्रष्ट होता है अर्थात् उस को कहीं भी सुख नहीं होता है ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे साध्वि ! हे राजकन्ये ! यह तेरा भाषण ही सुनने की इच्छा करनेवाले मैंने तेरा उपहास करा है, मेरे भाषण का जो तैने व्याख्यान करा है सो सब ठीक ही है ॥ ४९ ॥ हे भामिनि ! हे कल्याणि ! ' विषयवासना छूटने के निमित्त तुम्हारे चरण मेरी शरण हों तुम्हारे चरण में मेरी प्रीति हो ' इत्यादि जो २ मनोरथ मुझ से प्राप्त होने की इच्छा करती है सो सब ही अनन्यभक्त तुझ सब काल में हैं ही इसकारण उनकी तुझे प्रार्थना करना पड़े और मुझे वह देना पड़ें ऐसा नहीं है ॥ ५० ॥ हे दोषरहित रुक्मिणी ! मेरे वाक्यों के द्वारा चलायमान करीहुई तेरी बुद्धि जो मेरे में न्यूनता देखकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजन्ति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मा नोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछन्ति ये संपद एव तत्पतिं ॥ ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्ममेयं त्वया कृतोऽनुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्करोऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभरायं निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ मामान्नृपानवगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जि-

दूसरे स्थानपर को कुछ भी चलायमान नहींहुई तिससे मुझ पतिपर तेरा परम प्रेम और पातिव्रत्य मैंने देखा है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार उसकी अनन्यभक्ति की प्रशंसा करके अब उस को ही दृढ़ करने के निमित्त सकाम भक्तोंकी निन्दा करते हैं कि—जो पुरुष विषयों की कामना करतेहुए, पञ्चाग्निसाधन आदि तप के द्वारा और एकादशी आदि व्रतोंके द्वारा मोक्ष देनेवाले भी मेरी,स्त्री पुरुषों के मिलकर भोग करनेयोग्य सुख के निमित्त सेवा करते हैं उन को मेरी माया से मोहितहुआ जानो ॥ ५२ ॥ क्योंकि—हे भामिनि ! जिस मुझ से मोक्ष और सम्पत्ति प्राप्त होती हैं तिस मोक्ष और सम्पत्तियों के पति मुझ को प्रसन्न करके जो केवल सम्पत्ति ही प्राप्त होने की इच्छा करते हैं मेरी प्राप्ति की इच्छा नहीं करते हैं वह मन्दभाग्य ही होते हैं, जो मनुष्यों के विषय, नरकसमान श्वान शूकर आदि योनियों में भी सुलभ हैं वह ही, यदि मोक्ष के साधन मेरे भजन का अधिकारवाले पुरुष इच्छा करें तो उन पुरुषों को विषयात्मा होने के कारण नरक भी श्रेष्ठ प्रतीत होगा इसकारण आप ही अपना अनर्थ करनेवाले वह पुरुष मन्दभाग्य होते हैं ॥५३॥ इस से हे घर की स्वामिनि! तू ने जो मेरी वारंवार निष्काम सेवा करी है यह बहुत अच्छा हुआ, इस से मुझ को बडी प्रसन्नता हुई. इस निष्काम सेवा को खल पुरुष दुःख झेलकर भी नहीं करसक्ते और दुष्ट वासना धारण करनेवाली केवल इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त तत्पर रहनेवाली और दूसरों को धोखा देनेवाली स्त्री को तो अत्यन्त ही दुष्कर है॥५४॥ मेरे ऊपर निष्काम प्रेम करके वर्त्ताव करनेवाली बहुतसी स्त्री हैं परन्तु तेरी समान स्त्रीको मैं कहीं भी नहीं देखता हूँ ऐसा कहकर उस की भक्ति की प्रशंसा करते हैं कि—हे मानिनि ! जिस तू ने, अपने विवाह के समय अपने को वरने के निमित्त आयेहुए राजाओं का तिरस्कार करके जिसकी श्रेष्ठ कथा सुनी हैं ऐसे मेरे पास गुप्त सन्देशा पहुँचानेवाला ब्राह्मण भेजा ऐसी तेरी समान प्रेमवती दूसरी स्त्री इस गृहस्थाश्रम में मैं नहीं देखता हूँ ॥ ५५ ॥ और युद्ध में मेरे जीतेहुए रुक्मी भ्राता का कुरूप करना, तथा अनिरुद्ध के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्यां ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदं मगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवान् जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडंबयन् ॥ ५८ ॥ तथाऽन्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान् धर्मान्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत

विवाहोत्सव के समय द्यूतसभा में हुआ उस का वध, इस से उत्पन्नहुए दुःख को हमारे साथ से वियोग होने के भय के कारण तू ने सहन करा है, उस के विषय में तू ने कोई कठोर भाषण नहीं करा इस सहनशीलता से तू ने बलराम आदि हम सबों को वश में करा है ॥ ५६ ॥ और मेरी प्राप्ति के निमित्त, निश्चय कराहुआ संदेशा कहकर तू ने मेरे पास दूत भेजा है और करेहुए संकेतपर्यन्त मेरे प्राप्त न होने पर इस जगत् को शून्य मानकर, दूसरे किसी के भी योग्य नहीं ऐसे इस अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा करती हूँ, ऐसा जो निश्चय करा यह तेरा कृत्य तुझ में ही रहे हम तो उस के उत्तर दाता होने को असमर्थ हैं और केवल वह तुझ को सूचित करके हर्षही उत्पन्न करतेहैं॥५७॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—इसप्रकार उपहास की वार्त्ता कहकर अपने स्वरूप में मग्न रहने वाले भी तिन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, मनुष्य लोक के अनुसार वर्त्ताव करनेवाली, लक्ष्मी का अवतार जो रुक्मिणी तिस के साथ क्रीड़ा करी ॥ ५८ ॥ इसीप्रकार दूसरी भी स्त्रियों के घरों में उतने ही रूप धारण करके रहनेवाले सब लोकों के गुरु श्रीहरि ने, गृहस्थाश्रमी की समान, गृहस्थाश्रम के योग्य धर्मों का आचरण करतेहुए तिन स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करी ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षष्टितम अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगे इकसठवें अध्याय में श्रीकृष्णजी की पुत्र पौत्र आदि सन्तान कही है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! पहिले कहीहुई तिन श्रीकृष्णजी की रुक्मिणीआदि स्त्रियों में से प्रत्येक के स्वरूपसुन्दरतादि सब सम्पदा से श्रीकृष्णजी की ही समान दश२ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उन प्रत्येक स्त्रियों ने, अपने २ घर में से कभी भी दूसरे स्थान को न जाकर सर्वदा घर में ही रहनेवाले और सम्भोग आदि में तत्पर श्रीकृष्णजी को देखकर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्वं 'स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥२॥ चार्वञ्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयां ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयानुरागहासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणबीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यं ॥ ६ ॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते" ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्य-

अपना २ शरीर ही श्रीकृष्णजी को अत्यन्त प्यारा माना, क्योंकि—वह स्त्रियें इस तत्त्वको नहीं जानती थीं कि—श्रीकृष्णजी आत्माराम हैं ॥ २ ॥ भगवान् का कमल की कली की समान सुन्दर जो मुख, लम्बी भुजा और विशाल नेत्र, प्रेम के साथ हास्यरसयुक्त देखना और मनोहर भाषणों से अत्यन्त मोहितहुई वह स्त्रियें, अपने अनेकों विलासों से, तिन निजानन्दपूर्ण श्रीकृष्णजी का मन वश में करने को समर्थ नहीं हुईं ॥ ३ ॥ गुप्त हास्य के साथ कटाक्षोंके द्वारा देखनेसे सूचित हुआ जो अभिप्राय तिससे मन हरनेवाले भ्रुकुटिमण्डल करके फेंकेहुए और सुरत की सम्मतियों में चतुर तथा कामशास्त्र में प्रसिद्ध अनेकों प्रकार के कामदेव के बाणों से जिन का मन चलायमान करने को सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियें भी समर्थ नहीं हुईं॥४॥इसप्रकार, ब्रह्मादिक देवता भी जिन की प्राप्ति होने का मार्ग नहीं जानते हैं वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी रूप, पति के प्राप्त होने पर निरन्तर बढीहुई प्रीति से तिन स्त्रियों ने, जिस में प्रेमपूर्वक हास्य, देखना, और नवीन समागम में उत्सुकता यह मुख्य हैं ऐसे अनेकों विलासों का यद्यपि सेवन करा तथापि उन का मन वश में करने को समर्थ नहीं हुईं ॥ ५ ॥ सैंकडों दासियों से युक्त भी वह स्त्रियें, बाहर से आयेहुए श्रीकृष्ण जी को देखकर सन्मुख जाना, आसन देना, अर्घ्यदान आदि करके पूजाकरना, चरण धुलाना, ताम्बूल देना, चरणों की सेवा आदि करके थकावट दूर करना, चौंरी पंखे आदिसे पवन करना, गन्ध पुष्प आदि देना, केशों को सुगन्धित तेल लगाकर काढ़ना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थ अर्पण करना इत्यादि प्रकारों से वह अपने आप प्रभु पति का दास कार्य करती थीं ॥ ६ ॥ दश २ पुत्रवालीं श्रीकृष्णजी की उन सब स्त्रियों में पहिले कहीहुई रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों के प्रद्युम्न आदि पुत्र मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजी के रुक्मिणी के विषें प्रद्युम्न है मुख्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वान ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥ भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥ १० ॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ॥ जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चंद्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ॥ आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविंदात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ॥ जयः सुभद्रो भद्रायां वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया

जिन में ऐसे चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, तैसे ही चारुचन्द्र, विचारु और दशवाँ चारु ऐसे पराक्रमी पुत्र हुए; वह शूरता आदि गुणों में पिता (श्रीकृष्णजी) की समान थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु तैसे ही भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु तैसे ही आठवाँ अतिभानु,— ॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश सत्यभामा के पुत्र हुए, शाम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय- चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड़ और क्रतु यह दश जाम्बवती के पुत्र हुए. यह शाम्ब आदि दश भी पराक्रम आदि करके पिता के मान्य थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और तेन से युक्त कुन्ति यह दश नाग्नजिति (सत्या) के पुत्र हुए ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास, और सब में छोटा सोमक यह दश कालिन्दी के पुत्र हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज, और अपराजित यह दश लक्ष्मणा के पुत्र हुए ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि, और क्षुधि यह दश मित्रविन्दा के पुत्र हुए ॥ १६ ॥ संग्रामजित् बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश भद्रा के पुत्र हुए ॥ १७ ॥ दीप्तिमान् और ताम्रतप्त इत्यादि दश रोहिणी के पुत्र हुए, इसी प्रकार और भी सब स्त्रियों के पुत्र हुए, हे राजन्! प्रद्युम्न से रुक्मवती स्त्री के विषैं महाबली अनिरुद्ध नामवाला पुत्र हुआ, वह रुक्मवती भोजकट नामक नगर में रहनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ २० ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यंति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोऽंगयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥

रुक्मी की कन्या थी; दूसरे भी श्रीकृष्णजी के पुत्रों की सैंकड़ों स्त्रियों के विषैं करोड़ों पुत्र और पौत्र हुए; क्योंकि—जब श्रीकृष्णजी के पुत्रों की माता ही सोलह सहस्र एकसौ आठ थीं तो फिर उन की सन्तान बहुतसी होंगी इस का तो कहना ही क्या ? ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ राजा ने कहा कि—हे शुकदेवजी ! तिस रुक्मी ने, शत्रु (श्रीकृष्ण) के पुत्र को (प्रद्युम्न को) अपनी कन्या कैसे दी ? क्योंकि—उस रुक्मी के साथ होनेवाले युद्ध में श्रीकृष्णजी का तिरस्कार कराहुआ वह रुक्मी,उन श्रीकृष्णजी को मारने का अवसर देखता था, इसकारण उस से कन्या मिलना असम्भव था इसप्रकार परस्पर द्वेष करनेवाले उन श्रीकृष्ण और रुक्मी के यहां का परस्पर विवाह सम्बन्ध कैसे हुआ ? यह मुझे सुनाओ ॥ २० ॥ आप से योगी, आगे को होनेवाले, पीछे बीतेहुए और वर्त्तमान काल में इन्द्रियों से नदीखनेवाले दूर के और मध्य में भीत आदि व्यवधानवाली सकल वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखते हैं, इसकारण ऐसा कुछ नहीं है जिस को तुम न जानते होओ अतःकहिये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! उस रुक्मवती ने स्वयम्वर में साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेव ही ऐसे प्रद्युम्न को जब वरलिया तब तहां कन्या मिलने के लोभ से आये हुए और बलात्कार से (जबरदस्ती) कन्या को छीनलेने के निमित्त युद्ध करने को उद्यत हुए सब ही राजाओं को, तिस इकले रथी प्रद्युम्न ने जीतकर उस को हरण करा २२ उससमय यद्यपि रुक्मी, श्रीकृष्णजी का अपमान कराहुआ और उन के वैर को वारंवार स्मरण करनेवाला था तथापि अपनी बहिन रुक्मिणी का प्रिय करते हुए उस ने, बहिन के पुत्र प्रद्युम्न को कन्या दी ॥ २३ ॥ अब, श्रीकृष्णजी की सब ही स्त्रियों के एक २ कन्या हुई और उन के विवाह हुए यह सूचित करने के निमित्त बड़ी कन्या का विवाह कहते हैं—हे राजन् ! कृतवर्मा के बली नामवाले पुत्र ने, नेत्रादि की सुन्दरतायुक्त चारु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यदादृषेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ॥पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः॥२६॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिंगप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षैः रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणं॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः प्राहसद्बलम्॥दन्तान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥ ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णात् गलहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव

मती नामवाली रुक्मिणी की कन्या को वरा॥२४॥फिर उस रुक्मी ने, 'शत्रु का अन्न भक्षण न करे और शत्रु को भोजन न करावे' इत्यादि रीति से लोकविरुद्ध,शत्रु के साथ विवाह सम्बन्धरूप अधर्मको जाननेवाले भी और श्रीकृष्णजीके साथ वैरभाव रखते हुए भी अपनी बहिन रुक्मिणी का प्रिय करने की इच्छा से स्नेह रूप पाशी में बँधकर, अपनी कन्या के पुत्र और श्रीकृष्णजी के पोते अनिरुद्ध को ही रोचना नामवाली अपनी पोती दी ॥२५॥ अब उस लोकविरुद्ध कार्य करने का फल कहने के निमित्त कहते हैं कि--हे राजन्! वह अनिरुद्ध के विवाह का उत्सवरूप निमित्त प्राप्त होने पर, रुक्मिणी, बलराम, श्रीकृष्ण, साम्ब, प्रद्युम्न आदि पुरुष भोजकट नामवाले नगर में गये थे ॥ २६ ॥ उस विवाह के उत्सव का प्रारम्भ होने पर उस उत्सव में जो कालिङ्ग आदि राजे आये थे, वह घमण्ड में भरकर एक दिन रुक्मी से कहनेलगे कि—तेरे मन में यदि यादवों को जीतने की है तो तू द्यूत (जुए) के साधन फासों से बलराम को जीत ॥ २७ ॥ क्योंकि-हे राजन्! यह बलराम द्यूत की चतुराई को नहीं जानते हैं तो भी इन को द्यूत खेलने का बडाभारी व्यसन है, ऐसा राजाओं के कहने पर रुक्मी ने बलरामजी को बुलवाकर उन के साथ फासों से खेलने लगा ॥२८॥ उस जुए में पहिले बलरामजी ने, सुवर्ण की सौ मुद्राओं का, तदनन्तर सहस्र मुद्राओं का, फिर दश सहस्र मुद्राओं का पण (दांव) लगाया; वह तीनों संख्या का पण (दांव), रुक्मी ने चतुराई से फाँसे फेंककर जीतलिया तब कालिङ्ग राजा ने अपने दांत दिखाकर बलरामजी की बहुत ठट्ठा मारकर हँसी करी, उस हँसने को बलरामजी ने सहन नहीं करा ॥२९॥ फिर रुक्मी ने, सुवर्ण की लाख मुद्राओं का दांव लगाया।तिससमय वह दांव बलरामजीने जीत लिया तब कपट का आश्रय करनेवाले तिस रुक्मी ने,कहा कि—यह दाँव मैंने ही जीता है और उस दांव के धन को लेलिया ३०॥ तब,धनसे परिपूर्ण और स्वभाव से ही लाल२नेत्रवाले उन बलरामजीने,जैसे समुद्र पूर्णिमा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लेहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान् रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मया त्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालनोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो वाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ॥ ३६ ॥ कालिंगराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दंतानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥ अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिण्या बलयो राजन्स्नेहभंगभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनि-

दिन उभर उठता है तैसे ही झूठा वचन सुनने पर क्रोधमें भरकर क्रोध के आवेश से दशकरोड़ सुवर्ण की मुद्राओं का पण लगाया ॥ ३१ ॥ वह भी दाँव फाँसे धर्म से डालते २ बलरामजी ने ही जीता, तब कपट का आश्रय करनेवाले रुक्मी ने, यह धन मैंने ही जीता है, इस विषय में यह समीप बैठेहुए कालिंग आदि राजे साक्षी देंगे, ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई कि—यह दाँव फाँसे डालने के धर्म से बलरामजी ने ही जीता है, रुक्मी तो वचनमात्र से ही 'मैंने जीता है ऐसा' मिथ्या वचन कहरहा है ॥ ३३ ॥ तिस आकाशवाणी का अनादर करके, मृत्युकाल का प्रेरणा कराहुआ और कालिंगआदि दुष्ट राजाओं का लगसाया हुआ वह रुक्मी, उन बलरामजी का हास्य करताहुआ कहनेलगा कि—॥ ३४ ॥ तुम फाँसों से जुआ खेलने में चतुर न होकर जङ्गल में रहनेवाले गोपाल हो ; मुझसे राजे ही फाँसों से क्रीड़ा और वाणों से युद्ध करते हैं, तुम से पशुओं के रखवाले नहीं करते हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे वचनों से रुक्मी के बिरस्कार करेहुए और कालिंग आदि राजाओं के हास्य करेहुए उन बलरामजी ने क्रोध में भरकर, एक लोहे का दण्डा उठा उस से तिस माङ्गलिक सभा में ही उस रुक्मी का वधकरा ॥ ३६ ॥ और जो दाँत निकालकर बलराम के ऊपर हँसा था उस, शीघ्रता से भागनेवाले कालिंग राजा को दशवें पगपर ही पकड़कर क्रोधमें भरेहुए बलरामजी ने उस के दाँततोड़ गिराये॥३७॥और भी जो रुक्मी के पक्ष के राजे थे उनको भी बलरामजी ने तिस ही परिघ से ताडनाकरा तब जिन की भुजा, जङ्घा और मस्तक छिन्नभिन्न होगये हैं ऐसे वह रुधिर में भीगकर और भयभीतहोकर भागगये॥३८॥ हे राजन् ! इसप्रकार बलरामजी के, साले रुक्मी का वध करने पर श्रीकृष्णजी ने, रुक्मिणी और बलरामजी के स्नेह का भङ्ग होने के भय से भला वा बुरा कुछ नहीं कहा अर्थात् अच्छा कहने से रुक्मिणी को बुरा लगेगा और बुरा कहूँगा तो बलरामजी को बुरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीं ॥ रामादयो भोजकटा-
दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति० भा० म० द० उ०
अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ राजोवाच ॥
बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्धोरं हरिशङ्करयोर्महत् ॥
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः
पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥
॥ २ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धी-
मांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ॥
तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवे-

लगेगा इसकारण कुछ भी नहीं कहा ॥ ३९ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी का आश्रय वाले, और जिन का अनिरुद्ध का विवाह तथा शत्रु का वध आदि कार्य सिद्ध हुआ है ऐसे उन बलराम आदि सब यादवों ने, नई वरीहुई चारुमती नामवाली स्त्रीसहित अनिरुद्ध को श्रेष्ठ रथ में बैठालकर तिस भोजकट नामक नगर से द्वारका को चलेगये॥४०॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकषष्टितम अध्याय समाप्त॥ * ॥अब आगे वासठवें अध्याय में सहस्रभुजावाले वाणासुर ने, अपनी कन्या के साथ रमण करनेवाले अनिरुद्ध को बन्धन में रक्खा यह कथा वर्णन करी हैं ॥ * ॥राजा ने कहा कि हे महा योगिन्! यादवों में श्रेष्ठ अनिरुद्ध ने,वाणासुर की ऊषा नामवाली कन्या को वरा, इस के विषय में श्रीहरि और श्रीशङ्कर का परस्पर भयङ्कर युद्ध हुआ यह हमने सुना है सो सब चरित्र विस्तार के साथ कहने को तुम समर्थ हो इसकारण कहने की कृपा करिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! जिसने वामनरूप धारण करनेवाले श्री हरि को भूमि का दान दिया तिस महात्मा राजा बलि का सौ पुत्रों में बड़ा वाणासुर नामवाला पुत्र था ॥ २॥ बलि का औरस + पुत्र वह वाणासुर, निरन्तर शिव की भक्ति में तत्पर, लोकों में सन्मान पाने के योग्य, अति उदारचित्त, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाला और श्रीशङ्कर की उपासना का दृढ़ व्रत धारण करनेवाला था ॥ ३ ॥ वह पहिले शोणितपुर नामवाले नगर में राज्य करता था, उस को श्रीमहादेवजी से वर प्राप्त होने के कारण, लोक में आराधना करने के योग्य सब देवता भी उस के किंकर की समान होकर रहते थे, क्योंकि-सहस्र भुजा होने के कारण जिसने एक समय, शिवजी के ताण्डव नृत्य करते में अपनी सहस्र भुजाओं से एकसाथ बहुत से बाजे बजाकर

+ दत्तक, पालन कराहुआ बिकते में मोल लियाहुआ इत्यादि पुत्र होते हैं,उनकी शंका न हो इस निमित्त यहाँ 'औरस' शब्द कहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेणच्छंदयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाहं गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदांबुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्ते ऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वं गृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं धीः ॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिं ॥ कन्याऽलभत कान्तेन

उन को प्रसन्न करा ॥ ४ ॥ तब सकल भूतों के स्वामी, शरण जानेयोग्य और भक्तवत्सल तिन भगवान् शङ्कर ने, उस से कहा कि—इच्छित वर मांग तब, उस ने उन श्रीशङ्कर से 'तुम निरन्तर मेरी नगरी की रक्षा करते रहो' ऐसा वर मांगलिया और उन्हों ने भी वह उस को दिया ॥ ५ ॥ एकसमय पराक्रम से दुमर्द हुए तिस बाणासुर ने, अपने समीप में विद्यमान तिन शङ्कर के चरणकमल को सूर्य की समान वर्ण के अपने किरीट से स्पर्श करके कहा कि—॥६॥ हे महादेव ! सकल प्राणिमात्र के गुरु और अपूर्णमनोरथ पुरुषों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षरूप तुम ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥ तुमने वरदानरूप से जो मुझे सहस्र भुजा दी हैं वह केवल मुझे भार (बोझा) रूप ही हुई हैं, क्योंकि सहस्र भुजा धारण करना युद्ध के निमित्त हैं और उस युद्ध के विषय में तो तुम्हारे सिवाय दूसरा मेरे साथ युद्ध करनेवाला और बल में मेरी समान योधा त्रिलोकीभर में मुझे नहीं मिला है ॥ ८ ॥ हे आद्य परमेश्वर ! युद्ध करने की इच्छा करनेवाला मैं, खुजली से भरीहुई बाहुओं से पर्वतों का चूरा करते २ दिग्गजों के समीप गया था, परन्तु मुझे देखते ही भयभीतहुए वह भी दूर को भागगये ॥ ९ ॥ यह बाणासुर का भाषण सुनकर क्रुद्धहुए भगवान् शङ्कर कहने लगे कि—अरे मूढ़ ! जब तेरी ध्वजा अपने आप टूटपडेगी तब तेरे गर्व का नाश करनेवाले मेरी समान योधा के साथ तेरा युद्ध होयगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार श्रीशङ्कर के कहने पर वह कुबुद्धि (बाणासुर) हर्षयुक्त होकर, महादेवजी के कहेहुए मेरे पराक्रम का नाश करनेवाले ध्वज का टूटना कब होयगा ऐसी बाट देखताहुआ अपने घरमें को चलागया ॥ ११ ॥ उस की ऊषा नामवाली कन्या थी, उस को, विवाह होने से पहिले ही, जिस को कभी भी न देखा था न सुनाथा ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रागदृष्टश्रुतेर्न च ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यन्ती कांसि कान्तेति वादिनी ॥ संखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडितो भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मन्त्री कुंभांडश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥ तमहं मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथाऽलिखत् ॥ १९ ॥ मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुंदुभिं ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य ल-

सुन्दर अनिरुद्ध के स थ स्वप्न में रतिसुख का लाभ हुआ॥१२॥फिर वह ऊषा,उस स्वप्न में अनिरुद्ध को न देखतीहुई विव्हल होकर, हे कान्त! तुम कहाँ गये ? ऐसा कहतीहुई सखियों के मध्य में जागकर उठखड़ीहुई और अत्यन्त लज्जित हुई ॥ १३ ॥ बाणासुर का कुंभाण्ड नामवाला मंत्री था और उस की चित्रलेखा नामवाली कन्या ऊषा की सखी थी, वह आश्चर्य से युक्त होकर उस अपनी सखी से बूझनेलगी कि—॥ १४ ॥ हे सुभ्रु ! हे राजकुमारी ! तेरा पाणिग्रहण करनेवाला पति मैंने अभीतक नहीं देखा, ऐसा होनेपर भी तू यहाँ 'हे कान्त' ऐसा कहकर किस को ढूँढती है ? और तेरा मनोरथ कैसा है?॥१५॥ तब ऊषा ने कहा कि—हे सखि चित्रलेखे ! मैंने स्वप्न में श्यामवर्ण कमल नयन, पीताम्बरधारी, पराक्रम से शोभायमान भुजाओं से युक्त और स्त्रियों के मन को अतिप्रिय लगनेवाला कोई एक पुरुष देखा ॥ १६ ॥ वह मुझे अधर का अमृत एकवार पिलाकर फिर उस की इच्छा करनेवाली मुझ को विरहसमुद्र में धक्का देकर न जाने कहां चलागया है ? उस सुन्दर पति की मैं खोज कररही हूँ॥ १७ ॥ तब चित्रलेखा ने कहा कि—हे सखि ! ऊषे ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, परन्तु वह पुरुष त्रिलोकी में होना चाहिये; तो मैं उस पुरुष को तेरे समीप ले आऊँगी, मैं चित्र खैंचती हूँ, उन में तूने स्वप्न में देखाहुआ,तेरे मन को हरनेवाला पुरुष कौनसा है सो मुझे तू उसको बतादे; सो जान काम सिद्ध होगया ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर उसने देवता, गन्धर्व,सिद्ध,चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर,यक्ष और मनुष्य इन सबों के साक्षात् चित्र बनाए ॥ १९ ॥ और उसने मनुष्यों में यादवों के, उन में शूरों के, वसुदेव के और बलराम-कृष्ण के चित्र बनाए और प्रद्युम्न का चित्र बनाते ही उस को देखकर, यह श्वसुर हैं इस दृष्टि से ऊषा लज्जित हुई ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसा-वसावित्याह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालितां ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ या च तं सुंदरवरं विलोक्य मुदिताननां ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयाऽर्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयापहृतेंद्रियः ॥२६॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रतां ॥ हेतुभिर्लक्षयांचक्रुरापीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥ भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया

तदनन्तर लिखेहुए अनिरुद्ध को देखकर, हे राजन्! तिस ऊषा ने लज्जा से नीचे को मुख करलिया और प्रेम से मुख को हास्ययुक्त करके कहा कि—जो मैं ने स्वप्न में देखा था वह यही है ॥२१॥ हे राजन्! चित्रलेखा ने, ऊषा के बतायेहुए उस को श्रीकृष्ण का पौत्र (पोता-नाती) जान लिया और वह योगिनी बनकर उस को लाने के निमित्त आकाशमार्ग से श्रीकृष्णजी की रक्षा करीहुई द्वारका को चलीगई ॥२२॥ तहाँ सुन्दर पलँग पर सोयेहुए अनिरुद्ध को योगसिद्धि के प्रभाव से लेकर फिर शोणित नगर में आगई और उस ने ऊषा सखी को उस का प्रियपति दिखाया ॥ २३ ॥ उस ऊषा ने भी अतिसुन्दर तिस अनिरुद्ध को देख हर्षितमुखी होकर, जिस को कोई देख भी न सके ऐसे अपने घर में-उस के साथ क्रीडा करनेलगी ॥ २४ ॥ नित्य जिस का स्नेह बढ़रहा है ऐसी तिस ऊषा ने, उस को कन्याभवन में गुप्त रखकर अमोलक वस्त्र, माला, सुगन्ध का लेपन, धूप, दीप, आसन, नानाप्रकार के सरबत, पक्वान्नों के भोजन और अनेकों प्रकार के भक्ष्य अर्पण करके मधुरभाषण के साथ शुश्रूषा से उस का सत्कार करा तब मोहितचित्तहुए तिस अनिरुद्ध ने, मुझे यहाँ बहुत से दिन बीत गये, यह कुछ न जाना ॥ २५ ॥ २६ ॥ अनिरुद्ध करके तिसप्रकार गुप्तरूप से भोगीहुई, अत्यन्त प्रसन्न हुई और छुपाने को कठिन ऐसे गर्भधारण आदि हेतुओं से, पुरुष का सम्पर्क जिस में नहीं ऐसा कन्यापन का व्रत जिसका नष्ट होगया है ऐसी तिस ऊषा को द्वारपालों ने देखा ॥ २७ ॥ और उन्होंने वह समाचार राजा बाणासुर को सुनाया कि—हे राजन्! तुम्हारी अविवाहिता कन्या का कुल को दूषण लगानेवाला परपुरुष का सम्भोगरूप दुराचरण हमारे देखने में आया है ॥ २८ ॥ हे राजन्! दूसरे किसी स्थान पर भी न जाती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकाऽगारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥३०॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुंदरं श्यामं पिशंगांबरमंबुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुंडलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥३१॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रियया ऽभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैर्नीकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथांऽतको दण्डधरो जिघांसया ॥३३॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गतो निर्भिन्नमूर्द्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तं नागपाशैर्बलिनंदनो बली बद्धं स्वसैन्यं कुपितो बबंध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला

हुई और घर में जिस की सावधानी के साथ हमने रक्षा करी है तथा परपुरुष को देखने को भी कठिन ऐसी तुम्हारी कन्या का परपुरुष से दुराचरण कैसे हुआ सो हम नहीं जानते ॥२९॥ जिसने पुत्री का दुराचरण सुना है ऐसा परमदुःखित हुआ वह बाणासुर तिस स्थान से शीघ्रता के साथ कन्या के घर में जाकर तहाँ उस ने अनिरुद्ध को देखा ॥ ३० ॥ वह काम का अवताररूप प्रद्युम्न का पुत्र, सकल भुवन में एकही सुन्दर, श्यामवर्ण पीताम्बरधारी कमलनयन, बलयुक्त भुजाओंवाला, कुण्डल और केशों की कान्ति से तथा मन्दहास्ययुक्त अवलोकन से जिस का मुख शोभायमान है ऐसा, सौभाग्य के चिन्ह और बहुमूल्य के आभूषण आदि धारण करके सब प्रकार से दमकती हुई तिस प्रिया ऊषा के साथ पासों से क्रीड़ा करनेवाला, अङ्ग सङ्ग के समय उस के स्तनों का केशर लगी मल्लिका के फूलों की बड़ी भारी माला वक्षःस्थल पर धारण करनेवाला ऐसे उस ऊषा के सामने बैठेहुए तिस अनिरुद्ध को देखकर वह बाणासुर विस्मय में होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब शस्त्र ऊपर को उठाकर धारण करनेवाले वीरों से घिरेहुए अपने समीप को आनेवाले तिस बाणासुर को देखकर, उस अनिरुद्ध ने, लोहे का एक मोटासा परिघ लेकर मारने की इच्छा से, जैसे दण्ड धारण करनेवाला यम खडा रहता है तैसे उस के सामने खडा रहा ॥ ३३ ॥ और पकडने की इच्छा से अपने चारोंओर आनेवाले उन शस्त्रधारी वीरों को जैसे सूकरों का राजा, अपने पकडने को आनेवाले कुत्तों को मारता है तैसे ताडना करनेलगा तब ताडित हुए और मस्तक, जङ्घा तथा बाहु टूटेहुए वह वीर, उस घर में से बाहर निकलकर अपने प्राण लेकर भागगये ॥३४॥ तब कोप में भरेहुए तिस महाबली बाणासुर ने, अपनी सेना को मारने वाले उस अनिरुद्ध को नागपाशों से बाँधलिया तब बँधेहुए अनिरुद्ध को देखकर शोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिपीत् ॥ ३५ ॥ इति भा० म० द० उ० अनिरुद्धबंधो नाम द्विषष्टितमोध्यायः ॥ ६२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यंतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां च भारत ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचतां १॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषा विष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशङ्करयो राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ सांबस्य

और खेद से विव्हल हुई ऊषा, नेत्रों में आँसू लाकर रोनेलगी ॥३५॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में द्विषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे तरेसठवें अध्याय में बाणासुर और यादवों के युद्ध में बाणासुर की भुजाओं को काटनेवाले श्रीकृष्णजी की, ज्वर ने और श्रीरुद्र ने स्तुति करी यह कथा कही है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! इधर द्वारका में अनिरुद्ध को न देखनेवाले और निरन्तर उस का शोक करनेवाले उस के बान्धवों को (यादवों को) आषाढ़, श्रावण भादों और आश्विन यह चारमास वीतगए ॥ १ ॥ फिर, नारदजी से, बाणासुर के बांधेहुए तिस अनिरुद्ध का समाचार और उस का युद्धादिरूप कर्म(चित्रलेखा का उस को शोणितपुर में लेजाना, उस का ऊषा के साथ क्रीड़ा करना और ऊषा का गर्भवती होना आदि) सुनकर उस को छुटाकर लाने के निमित्त, बलराम और कृष्ण जिन में मुख्य हैं और कृष्ण ही जिन के देवता हैं ऐसे प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब,सारण,नंद, उपनन्द और भद्र आदि यादव बारह अक्षौहिणी सेना साथ लेकर शोणित नामक नगर की ओर को गये और उन श्रेष्ठ यादवों ने, बाहर से सब दिशाओं में उस बाणासुर की नगरी को घेरलिया ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब शत्रुओं के तोड़ेहुए बगीचे और फोड़ेहुए बुरजों से, अटारियों से और नगर के द्वारों से विध्वंस हुए अपने नगर को देखकर क्रोध में भराहुआ वह बाणासुर, बारह ही अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करने के निमित्त नगर से बाहर निकला ॥ ५ ॥ बाणासुर की सहायता करने को, स्कन्द आदि पुत्रोंसहित, और प्रमथ आदि गणोंसहित रुद्रभगवान्, नन्दिकेश्वर के ऊपर बैठकर बलराम-कृष्ण के साथ युद्ध करनेलगे ॥ ६ ॥ उस समय श्रीकृष्ण का और रुद्रभगवान् का आश्चर्यकारी,देखनेवालों के शरीरों पर रोमाञ्च खड़े करनेवाला और निरन्तर शस्त्र चलने के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शंकरानुचरान् शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥१०॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मयः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितं ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघ्नेनासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कंदः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समंततः ॥ अस्राग्विमुंचन् गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुंभांडः कूपकर्णश्च पेतुर्मुसलोदितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिं ॥ १७ ॥

भयङ्करयुद्ध हुआ तैसे ही प्रद्युम्न और स्कन्द का, कुम्भाण्ड और कूपकर्ण नामवाले बाणासुर के दो मंत्रियों का बलराम के साथ युद्धहुआ,साम्ब का बाणासुर के पुत्र के साथऔर सात्यकि का बाणासुर के साथ युद्धहुआ ॥ ७॥८॥ उससमय देवताओं के स्वामी ब्रह्मादिक, ऋषि,सिद्धचारण,गन्धर्व,अप्सरा और यक्ष यह सब ही विमानोंमें बैठकर तिसयुद्धको देखने के निमित्त आये ॥ ९ ॥ तब श्रीकृष्णजी के, शार्ङ्गधनुष में से, छोड़ेहुए तीखी नोक वाले बाणों से भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, राक्षस, वेताल, विनायक, प्रेत, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस नामवाले शिवजी के सेवकों को भगादिया॥१०।११॥ तब पिनाकपाणी शङ्कर ने,शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णजी के ऊपर नानाप्रकार के अस्त्र छोडे तब, विस्मय न माननेवाले श्रीकृष्णजी ने प्रत्यस्त्रों से अर्थात् उन अस्त्रों को, उन के प्रतिकूल अस्त्रों से शांतकरा ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्र के ऊपर ब्रह्मास्त्र, वाय्वस्त्र के ऊपर पर्वतास्त्र, अग्नयस्त्र के ऊपर पर्जन्यास्त्र, और पाशुपतास्त्र के ऊपर नारायणास्त्र छोड़ा ॥ १३ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने जृम्भणास्त्र छोड़कर शिवजी को जंभाई लेते हुए बैठने योग्य मोहित करके, खड्ग, गदा और बाणों से बाणासुर की सेना का संहार करा ॥ १३ ॥ इधर स्कन्द (स्वामि कार्त्तिकेय), प्रद्युम्न के बाणों के समूहों करके चारोंओर से पीड़ित हुए तब,अपने हाथ पैर आदि अंगों से रुधिर टपकाते हुए अपने वाहन (सवारी) मोर के ऊपर चढ़कर युद्ध भूमि से भागगये ॥१५॥ बलरामजी के मूसल से ताड़ना करेहुए कुंभाण्ड और कूपकर्ण यह दोनों ही मंत्री गण को प्राप्त होगये तब मारेगये हैं स्वामी जिस के ऐसी उन की सेना सब ओर को भागनेलगी ॥१६॥ इसप्रकार अपनी सेना को जिधर तिधर को भागतेहुए देखकर अतिक्रोध में भराहुआ बाणासुर,समरभूमि में से अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनूंष्याकृष्ण युगपद्बाणः पंचशतानि वै ॥ एकैकस्मिन् शरौ द्वौ द्वौ संदधे रण-दुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ त्रिद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥ माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रं ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशान्तम् ॥

साथ युद्ध करनेवाले सात्यकि को छोड़कर श्रीकृष्णजी के शरीरपर को दौड़नलगा ॥१७॥ और युद्ध करनेमें अति घमण्डी उस बाणासुर ने,एकसाथ अपने पांचसौ हाथों से, पांचसौ धनुष लेकर,दूसरे पांचसौ हाथों से प्रत्येक धनुषपर दो २इसप्रकार सहस्र बाण चढ़ाये॥१८॥ उन बाणों को छोड़ने से पहिले ही श्रीकृष्णजी ने, वह सब धनुष तोड़डाले और सारथि, रथ तथा घोड़ों को मारकर जय का शंख बजाया ॥ १९ ॥ उससमय, बाणासुर की जो कोटरा नामवाली माता थी वह उस पुत्र के प्राणों की रक्षा करने की इच्छा से अपने केशों के जूडे को खोलकर और नंगी होकर श्रीकृष्णजी के सामने खडी होगई ॥ २० ॥ तब श्रीकृष्णजी ने,उस नंगी स्त्री को न देख दूसरी ओर को मुख फेरलिया सो इतने ही में रथहीन हुआ और जिस का धनुष टूटगया है ऐसा वह बाणासुर अपने शोणितनगर में को चलागया ॥२१॥ इधर श्रीकृष्णजी ने, शिवजी के भूतगणों को भगादिया तब, तीन मस्तक और तीन चरणवाला माहेश्वर ज्वर, अपने ताप से दशों दिशाओं को जलताहुआ युद्ध करने के निमित्त श्रीकृष्णजी के ऊपर को दौड़कर आया ॥२२॥ फिर नारायणदेव (श्रीकृष्ण जी) ने, उस को देखकर उस के ऊपर अपना शीतज्वर छोडा तब माहेश्वर और वैष्णव दोनो ज्वर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ उन में वैष्णव ज्वर करके बलात्कार से पीडित करा हुआ माहेश्वर ज्वर, बडा विलाप करताहुआ, जब श्रीकृष्णजी से दूसरा अभय देनेवाला स्थान नहीं मिला तब भयभीत और रक्षा की इच्छा करनेवाला वह (माहेश्वर ज्वर) हाथ जोडकर श्रीकृष्णजी की स्तुति करनेलगा ॥२४॥ वह अपने आप को ही परम शक्तिमान् मानकर श्रीकृष्णजी को ताप देने के निमित्त प्रवृत्त होनेपर जब आपही ताप को प्राप्त हुआ तो उन श्रीकृष्णजी को परमेश्वर जानकर स्तुति करताहुआ कहनेलगा ज्वर ने कहा कि--हे प्रभो ! ब्रह्मादिकों के नियन्ता, सकल प्राणीमात्र को अन्तर्यामीरूप से प्रकाश कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २५ ॥ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः॥ तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधून्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्व-

नेवाले, शुद्ध, चैतन्यघन, अनन्तशक्ति तुम परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ; जगत् की उत्पत्ति-स्थित-संहार के विषय में कारण और वेदोंने तात्पर्यवृत्ति से जिन को प्रकाशित करा है ऐसे सकल क्रियाओं से रहित जो ब्रह्म सो तुम ही हो ॥ २५ ॥ अब, जितने साकार पदार्थ हैं उन में हम पराक्रम चलाते हैं परन्तु निराकार तुम्हारे विषें किसी की भी प्रभुता नहीं चलती किन्तु तुम ही सब के प्रभु हो ऐसे स्पष्ट करताहुआ स्तुति करता है कि–गुणों का क्षोभ करनेवाला काल, उस का निमित्त कर्म, वही फल देने को उद्यत होकर प्रकट होने पर दैव, उस का संस्कार जो स्वभाव, उस से युक्त होने के कारण सुख और दुःखों का भोक्ता जीव, शब्दादि सूक्ष्मभूतरूप द्रव्य, शरीर, प्राण, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियें और पञ्चमहाभूत मिलकर सोलह प्रकार का विकार, उन पृथिवी आदिकों का समूहरूप लिङ्गशरीर और तिस लिङ्गशरीर का बीज अङ्कुर की समान प्रवाह अर्थात् जैसे बीज से अङ्कुर उत्पन्न होता है और अङ्कुर से फिर बीज उत्पन्न होता है तैसेही देह से कर्म और कर्म से फिर देह होता है, यह सब प्रकार की तुम्हारी माया ही है तिस माया का निषेध (तिरस्कार) जिस स्वरूप में बनसक्ता है ऐसे तुम परमात्मा की मैं शरण आया हूँ ॥ २६ ॥ यदि कहो कि–मुझ देवकीपुत्र की ऐसी सामर्थ्य कहाँ से होसक्ती है तो सुनो–सकल उपाधियों से रहित भी तुम, जैसे लीला करके धारण करेहुए मत्स्य आदि अनेकों प्रकार के अवतारों से देवताओं का पालन करते हो, उन के निमित्त ही वर्णाश्रमधर्म की रक्षा करते हो और उन के निमित्त ही उन धर्मों का आचरण करनेवाले साधुओं की और उस का अङ्ग होने के कारण, धर्ममार्ग को छोड हिंसामार्ग का अवलम्बन करनेवाले दैत्य आदिकों का संहार करते हो, इसीप्रकार यह भी तुम्हारा अवतार भूमि का भार दूर करने के निमित्त है, तुम किसी के पुत्र नहीं हो ॥ २७ ॥ हे प्रभो! प्रथम शान्त और पीछे से असह्य प्रतीत होनेवाले, तुम्हारे तेजःस्वरूप अतिभयङ्कर ज्वर से मैं सन्ताप को प्राप्त होरहा हूँ, हे भगवन्! प्राणियों को तबतक ही ताप होते हैं कि–जबतक वह आशाओं में बँधेहुए तुम्हारे चरणतल को सेवन नहीं करते हैं ॥२८॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे तीन शिरवाले ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, मेरे ज्वर से जो तुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राद्धैयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥ तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ॥ भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत॥३३॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी । चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो

भय प्राप्त होरहा है सो दूर हो, और जो कोई हम दोनों के (तेरे और मेरे) इस सम्वाद को स्मरण करें उन को तुझ से भय न हो ॥ २९ ॥ इसप्रकार भगवान् का कहाहुआ वह माहेश्वर ज्वर अच्युत भगवान् श्रीकृष्णजी को मस्तक नमा प्रणाम करके तहां से चला गया; इधर बाणासुर रथपर चढकर युद्ध करने की इच्छा करताहुआ जनार्दन श्रीकृष्ण भगवान् के समीप पहुँचा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तदनन्तर परम क्रोध में भराहुआ सहस्रों भुजाओं में नानाप्रकार के शस्त्र धारण करेहुए वह बाणासुर चक्रधारी श्रीकृष्णजी के ऊपर बाणों को छोड़नेलगा ॥ ३१ ॥ निरन्तर अस्त्रों को छोडतेहुए तिस बाणासुर की भुजाओं को भगवान् ने चक्र से वनस्पति (वृक्ष) की शाखाओं की समान काटडाला ॥ ३२ ॥ इसप्रकार बाणासुर के बाहु काटडालने पर, भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शंकर, समीप जाकर उन चक्रधारी श्रीकृष्णजी से ऐसा कहने लगे ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र भगवान् ने कहा कि हे श्रीकृष्ण ! तुम्हें न जानकर यह तुम्हारे साथ युद्ध करता है, यह कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—जो शब्दरूप वेद में वाणी का अगोचर वर्णन करा हुआ और सूर्य आदि का प्रकाशक ब्रह्म है वह ही तुम हो; जिन तुम को शुद्धचित्त हुए पुरुष, आकाश की समान व्याप्त होकर रहनेवाले और सर्वदोषरहित देखते हैं ॥३४॥अब,तुम निर्गुण का ज्ञान तो अलग रहे परन्तु तुम्हारे लीला से स्वीकार करेहुए इस ब्रह्माण्ड देह का भी ज्ञान नहीं होता है ऐसा कहने के निमित्त विराट्स्वरूप की स्तुति करते हैं कि—जिन तुम्हारी नाभि आकाश है, मुख अग्नि है, वीर्य जल है,मस्तक स्वर्ग है,कान दिशा हैं, चरण भूमि है, मन चन्द्रमा है, दृष्टि सूर्य है,अहङ्कार मैं शिव हूँ, पेट समुद्र है और बाहु इन्द्र है ॥ ३५ ॥ जिनके रोम ओषधि हैं, केश मेघ हैं, बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भगवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८ ॥ यथैव सूर्यः पिहितः स्वछायया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति। एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ३९ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु॥ उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे॥४०॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः॥४१॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमी-

ब्रह्माजी हैं, शिश्न प्रजापति हैं, और जिन का हृदय धर्म है, ऐसे तुम सब लोकों करके वर्णन करेहुए विराट्रूप हो ॥३६॥ अब, सात विलस्त के देहवाले मेरे नाभि आदि अंग आकाश आदिरूप कैसे होसक्ते हैं? ऐसा कहो तो—हे अच्युतस्वरूप! यह तुम्हारा श्रीकृष्णावतार, धर्म की रक्षा करने के निमित्त, जगत् के कल्याण के निमित्त, जगत् की उन्नति के निमित्त, और हमारे ऊपर भी अनुग्रह करने के निमित्त हुआ है; क्योंकि—हम सब ही लोकपाल, तुम हमारी रक्षा करो तब ही भूलोकादि भुवनो की रक्षा करते हैं, नहीं तो स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ ३७ ॥ स्वतन्त्र ईश्वर तो तुम ही हो, क्योंकि—तुम ही एक जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओंवाले जीवों के प्रकृतिभूत पुरुष, शुद्ध, स्वप्रकाशज्ञानरूप, अद्वितीय, सब के कारण और वास्तव में कारणरहित ईश्वर हो. तथापि सब विषयों का प्रकाश होने के निमित्त अपनी माया से देव-तिर्यक्-मनुष्य आदि स्वरूपवाले प्रतीत होते हो ॥ ३८ ॥ तो क्या फिर मैं संसारी हूँ ऐसा कहते हो? नहीं नहीं हे व्यापक! जैसे सूर्य अपनी मेघरूप छाया से लोकदृष्टि में ढकाहुआसा दीखता है परन्तु वह उस मेघ को और मेघ की आड़ में हुए घटादि पदार्थों को प्रकाशित करता है, इसीप्रकार जीवों को ढकनेवाले कार्यरूप अहङ्कार से जीवों की दृष्टि में आच्छादित हुएसे दीखनेवाले भी तुम, स्वप्रकाश होने के कारण उन देह इन्द्रियादि गुणों को और उन गुणों से युक्त जीवों को प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ जिन तुम्हारी माया से मोहित बुद्धिहुए पुरुष, पुत्र स्त्री, घर आदिकों में आसक्त होकर दुःखसागर के विषैं कभी तो देवता आदि योनियों में और कभी स्थावर आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥ इस से, कर्मों के अध्यक्ष जो तुम तिन तुम्हारा दियाहुआ यह मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर भी, रात-दिन विषयों में आसक्त हुआ जो पुरुष, तुम्हारे चरण की सेवा नहीं करता है वह अपने को ही धोखा देनेवाला होने के कारण शोचनीय है ॥ ४१ ॥ क्योंकि-जो मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वरम्॥विषयेंद्रियार्थार्थं विषमक्ष्यमृतं त्वजन्॥४२। अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः॥सर्वात्मनां प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरं॥४३।तं त्वां जगत्स्थित्युदयांतहेतुं समं प्रशांतं सुहृदात्मदैवं ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥ अंगं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तमुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रतृणा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भाराय तं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यत्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो

तुम से भिन्न पुत्रादि विषयों के निमित्त, आत्मा प्रिय तुम प्रभु को त्याग देता है (सेवा नहीं करता है) उस पुरुष को ऐसा समझना चाहिये जैसे अमृत को छोडकर विष खाता है ॥४२॥इसकारण मैं, ब्रह्माजी, अन्यदेवता और शुद्धचित्त हुए सब ऋषि, यह सब ही हम, अपने आत्मा अतिप्रिय तुम ईश्वर की सबप्रकार शरणहैं ॥४३॥ और संसार का नाश होने के निमित्त, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण, सबों में समान, अत्यन्त शान्त, समानादि भेदरहित, एक, जगत् के और जीवों के अधिष्ठान, बुद्धि के प्रेरणा करनेवाले, सर्वात्मा और ईश्वर ऐसे आप की ही सेवा करते हैं ॥ ४४ ॥ इसप्रकार आप ही भक्ति रहने की प्रार्थना करके अब अपने भक्त (बाणासुर) का कल्याण होने की इच्छा करते हैं—यह बाणासुर मेरा सेवक होने के कारण मुझे प्रिय और प्रेम करनेवाला है इसकारण हे देव ! मैंने इस को अभय दिया है, सो जैसे तुमने प्रह्लाद के ऊपर अनुग्रह करा है तैसे ही इसके ऊपर भी तुम अपना अनुग्रह करो अर्थात् इस को मैंने जो अभयवचन दिया है सो सत्य करो ॥ ४५ ॥ इसप्रकार प्रार्थना करनेपर प्रसन्नहुए श्रीभगवान् कहनेलगे कि—हे भगवन् ! (शङ्कर) मुझ से जो तुमने कहा सो तैसे ही तुम्हारा प्रिय कार्य मैं करता हूँ. अबबाहु काटीं यह भी, ' निश्चय मुझसमान के साथ तेरा घमण्ड दूर करनेवाला युद्ध होयगा ऐसा ' जो कहा था उस का ही मैंने, तिसीप्रकार उत्तमता से समर्थन करा है इस में तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ राजा बलि मेरा भक्त था इसकारण उस के पुत्र इस असुर को, मुझे भी मारना उचित नहीं हैं, क्योंकि—मैंने प्रह्लाद को यह वरदान दिया था कि—तेरे वंश के पुरुषों का वध नहीं करूँगा॥ ४७॥दर्प दूर करने के निमित्त मैंने इस की भुजा काटी हैं और पृथ्वी का भाररूप जो बहुतसी सेना थी उस को भी मैंने मारडाला है॥४८॥ अब इस की चार भुजा शेष रही हैं सो अजर अमर होंगी ;तैसे ही यहदैत्य होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥ स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ विवेश शंखानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥५३॥ इति श्रीभा०म०द०उ०त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥१॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतं ।२। कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रु-

भी जो तुम्हें प्रियहुआ है इसकारण यह तुम्हारे पार्षदों में मुख्य होगा और कहीं भी जिस को भय नहीं ऐसा (निर्भय) होयगा ॥ ४९ ॥ इसप्रकार भगवान् के वचन से अभय प्राप्त होनेपर, वह बाणासुर, मस्तक से श्रीकृष्णजी को नमस्कार करके, ऊषा स्त्री सहित अनिरुद्ध को रथपर बैठालकर तहाँ लाया ॥ ५० ॥ फिर श्रीरुद्रभगवान् ने द्वारका में जाने के निमित्त जिन को अनुमति दीहै ऐसे श्रीकृष्णजी, दहेज में दीहुई एकअक्षौहिणी सेना को चारोंओर लेकर और उत्तम वस्त्र आदिकों से भूषित तिस स्त्रीसहित अनिरुद्ध को आगे करके चलदिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर द्वारका में के पुरुषों ने, मित्र और ब्राह्मणों के साथ सन्मुख आकर जिन का सत्कार करा है ऐसे तिन श्रीकृष्णजी ने, शंख, नगाड़े दुन्दुभि आदि बाजों के शब्द के साथ, बन्दनवारों सहित झंडियों से शोभायमान और जिस में मार्ग और आँगनों को छिड़कागया है ऐसी उस अपनी द्वारका राजधानी में प्रवेश करा ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजी के विजय का और शङ्कर भगवान् के साथ हुए युद्ध का जो पुरुष प्रातःकाल के समय उठकर स्मरण करेगा, शत्रुओं से उस की पराजय कभी भी नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्री मद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में त्रिसष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इस चौंसठवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने राजा नृग को पाप से छुटाया, और घमंडी राजाओं को ब्राह्मणों का धन हरने का दोष वर्णन करके शिक्षाकरी, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि- हेराजन् ! एक समय प्रद्युम्न, चारु, भानु, गदआदि यादवकुमार क्रीडा करने के निमित्त वगीचे में गये ॥ १ ॥ और उस वगीचे में बहुत समयतक क्रीडा करके पियास से घबडाए हुए उन्हों ने जल को ढूँढतेहुए, एक जलहीन कुए में रहनेवाला एक अद्भुत प्राणी देखा ॥२॥ उस पर्वत की समान बडे विरवट को देखकर विस्मितचित्त और कृपायुक्तहुए वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्ते कृपयान्वितैः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्वध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेनतत् करेण सलीलया ॥ ५ ॥ स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कुकलासरूपम् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्गद्युतालंकरणांबरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विदित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्त्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ का-

कुमार, उस को कुए में से बाहर निकालने का उद्योग करनेलगे ॥ ३ ॥ वह बालक कुए में पड़ेहुए घिरघट को चमडे की और सूतकी डोरियोंसे बाँधकर बाहर को निकालने लगे परन्तु उस को कुए में से बाहर निकालने को वह समर्थ नहीं हुए तब उस को बाहर निकालने के विषय में उत्कंठितहुए तिन बालकों ने वह समाचार श्रीकृष्णजी को सुनाया ॥ ४ ॥ तब विश्वपालक वह भगवान् श्रीकृष्णजी, तहाँ आये और उस को देखकर उन्हों ने बायें हाथ से ही अनायास में कुए से बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥ तब उत्तमश्लोक भगवान् के हाथ से स्पर्श कराहुआ वह प्राणी, तत्काल घिरघट के स्वरूप को त्यागकर, जिस का वर्ण तपायेहुए सुवर्ण की समान सुन्दर है, जो अद्भुत आभूषण वस्त्र और माला धारण करेहुए है ऐसा देवतारूप होगया ॥ ६ ॥ उस का घिरघट का जन्म होने के कारण को जाननेवाले भी श्रीकृष्णजी ने उस को लोक में प्रसिद्ध करने के निमित्त उस से बूझा कि—हे महाभाग ! अतिसुन्दर स्वरूप तू कौन है ? मैं तो तुझे श्रेष्ठ देवता समझता हूँ ॥ ७ ॥ हे कल्याणमूर्त्ते ! इस घिरघट की योनि को प्राप्त न होने योग्य भी तू इस दशाको किस कर्म से प्राप्तहुआ है ? तथा पहिले तू कौन था ? यह सब तेरे मुख से सुनने की इच्छा करनेवाले हमें, यदि तुझे हम से कहने के योग्य प्रतीत होता होय तो तू अपना वृत्तान्त हम से कथन कर ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार अनन्तमूर्त्ति श्रीकृष्णजी से प्रश्न कराहुआ वह राजा नृग, सूर्य की समान वर्ण के किरीट को धारण करेहुए अपने मस्तक से श्रीकृष्णजी को नमस्कार करके कहनेलगा कि ॥ ९ ॥ राजा नृग ने कहा कि—हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकु राजा का पुत्र नृग नामवाला राजा हूँ, दान करनेवाले पुरुषों का वृत्तान्त चलतेसमय, मेरी वार्त्ता भी आप के कानों में कभी तो पहुँची होगी ! ॥ १० ॥ हे नाथ ! सकल प्राणियों की बुद्धियों के साक्षी और जिन का ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥ यावन्त्यः सिकता भूमेर्या-वन्त्यो दिवि तारकाः ॥ यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृंगीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः संवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहं ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुंबेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः । १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राहो नृगो मे दत्तेति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवद-

ऐसे तुम को न समझाहुआ क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं है तथापि आपने बूझा इसकारण मैं आप के प्रश्न का उत्तर कहता हूँ ॥ ११ ॥ भूमि में जितने बालू के कण हैं, अथवा आकाश में जितने तारे हैं अथवा वर्षा होते समय जितनी जल की धारा गिरती हैं उतनी ही गौऐ मैंने दान दीहैं ॥ १२ ॥ वह गौएँ, बहुतसा दूध देनेवालीं, पहलौन व्याहीहुईं, सुन्दर स्वभाव और सुन्दर रूपवालीं, बहुतसा घी उत्पन्न होने के गुण से युक्त, कपिलवर्ण, सींगो में सुवर्ण से मंढीहुईं, न्याय से पाईहुईं, चांदी से खुर मंढीहुईं, झूलें, सुवर्ण के फूलों की माला और भूषण धारण करेहुए बछडों सहित मैंने दी हैं ॥ १३ ॥ और वह भी तो वैराग्य आदि गुणों से तथा शान्ति आदि स्वभावों से युक्त, कुटुम्बवत्सल, सदाचार, तपस्या से प्रसिद्ध शिष्यों को वेद पढ़ाने में अति उदार, समचित्त तरुण और अलङ्कारों से पूजित श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दी हैं ॥ १४ ॥ केवल गौ ही नहीं दी हैं किन्तु भूमि, सुवर्ण, घर, घोडे, हाथी, दासियों सहित कन्या, तिलों के पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, पात्र और रथ भी दिये हैं, अग्निष्टोम आदि यज्ञ किये, बावडी, कुए, तालाव, और देवमन्दिर भी बनवाये तैसे ही अन्न के सत्र भी लगाए हैं ॥ १५ ॥ ऐसा होते २ मुझे एक यह सङ्कट प्राप्त हुआ कि—प्रतिग्रह न लेनेवाले किसी एक ब्राह्मण की गौ, जहाँ बँधी थी उस स्थान से बछडे सहित खुलकर मेरी गौओं में आमिली और वह, यह ब्राह्मण की है ऐसा न जाननेवाले मैंने दूसरे ब्राह्मण को देदी ॥ १६ ॥ उस दीहुई गौ को ब्राह्मण के लेजाते में उस के स्वामी ने देखकर उस ब्राह्मण से कहा कि—यह गौ मेरी है और उस दानरूप से गौ को लेजानेवाले ब्राह्मण ने भी कहा कि—यह गौ मेरी है और मुझे अब ही राजा नृग ने दी है ॥ १७ ॥ इसप्रकार परस्पर विवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानौ गामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान् दाताऽपहर्त्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषां प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवतावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ॥ समुद्धरत मां कृच्छ्रात्पतितं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्वामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ ॥ २२ ॥ पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उतोहो नृपते शुभम् ॥ नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुङ्क्ष इति प्राह पतेः

करनेवाले और स्वार्थसाधक (मेरे मुख से निर्णय होजाने पर गौ को लेजाने को उत्कण्ठित) वह दोनों ही ब्राह्मण, मेरे समीप आकर मुझ से कहनेलगे, उन में से प्रतिग्रह लेनेवाले ने कहा कि–हे राजन्! तुम ने अभी मुझे यह गौ दी है इसकारण यह मेरी है, ऐसा होतेहुए यह ब्राह्मण मेरी है ऐसा कहता है. गौ के स्वामी ने कहा कि–'यह गौ मेरी है ऐसा लोक में प्रसिद्ध है,वह तुम ने अपहार करके ब्राह्मण को दी है ; उन दोनों का भाषण सुनकर मैं व्याकुल हुआ ॥ १८ ॥ और दूसरे की गौ दूसरे को देना यह अपहार कहाता है; अब जिस की तिस को दिलवाऊँ तो प्रतिग्रह लेनेवाले से अपहार होता है,इस प्रकार दोनों ओर से धर्मसङ्कट में पड़ेहुए मैंने उन दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना करी कि–दूसरी उत्तम लाख गौएँ तुम दोनों में से एक को देता हूँ, वह यह गौ दूसरे को (स्वामी दान लेनेवाले को अथवा दान लेनेवाला स्वामी को) देदेय ॥ १९ ॥ तुम दोनों, न जाननेवाले मुझ सेवक के ऊपर अनुग्रह करो. गौ के अपहाररूप दोष से अमङ्गलरूप नरक में पड़नेवाले मेरा, इस परिवर्त्तन में लाख गौ लेनेरूप अनुग्रह से उद्धार करो ॥२०॥ तब गौ का स्वामी कहनेलगा कि–हे राजन् ! तुम लाख गौ देने को समर्थ हो तथापि गौ का बेचना निषिद्ध है इसकारण मैं बदले में दीहुई तुम्हारी लाख गौओं की भी इच्छा नहीं करता हूँ ऐसा कहकर वह अपनी गौ लेकर चलागया और प्रतिग्राही (दान लेनेवाला) भी, 'हे राजन् ! लक्ष तो क्या परन्तु तिस के ऊपर यदि और भी दशसहस्र गौएँ देय तो भी इस गौके विना मैं उन की इच्छा नहीं रखता हूँ ' ऐसा कहकर वह भी चलागया ॥ २१ ॥ धर्म में इतना अन्तर पड़ने के कारण मरण को प्राप्त होनेपर मुझे यमके दूत यमलोक में लेगये: हे देवदेव ! हे जगत्पते ! तहाँ मुझसे यम ने बूझा कि–॥ २२ ॥ हे राजन् ! पहिले तू क्या पाप का फल भोगेगा ? अथवा पुण्यकर्मों का फल भोगता है ? तेरे दानपुण्यों का, धर्मपुण्यों का और स्वर्गादिलोक प्राप्ति के प्रकाशित होनेवाले पुण्यफलों का मैं अन्त नहीं देखता हूँ ॥ २३ ॥ तब मैंने कहा कि-हे धर्मराज ! मैं पहिले पापकर्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्ति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश इह यस्य भवाऽपवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविंद पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि गतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २९ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहे-

का फल भोगता हूँ तब उन यमराज ने कहा कि—जा तू नीच योनि में, हे प्रभो! इतने ही में नीचयोनि में जानेवाले अपने को मैंने घिरघटरूप देखा॥२४॥ हे केशव! ब्राह्मणों का भक्त, दानशूर, तुम्हारा दास और तुम्हारे दर्शन से ही पापरहित हुआ ऐसे मेरी स्मरणशक्ति अब भी नष्ट नहीं हुई है ॥ २५ ॥ अब दुर्घट श्रीकृष्णजी के दर्शन से विस्मित होकर अपने भाग्य की प्रशंसा करता है कि—हे विभो! जो तुम, योगेश्वरों को भी उपनिषद्रूप दृष्टि से, निर्मल हृदय में केवल ध्यान करने के योग्य ऐसे साक्षात् अधोक्षज परमात्मा हो ऐसे तुम, अनेकों व्यसनो से अन्धबुद्धिहुए मेरी दृष्टि के सामने किस भाग्य के उदय से हुए हो? क्योंकि—इस संसार में जिन पुरुषों के संसार की समाप्ति होय उन को ही तुम प्रत्यक्ष दर्शन देते हो औरों को नहीं॥२६॥ अब भक्ति के वशीभूत होकर बहुतसे सम्बोधन देतेहुए कहतेहैं कि-हेदेवदेव! हेजगन्नाथ! हे गोविन्द! हेपुरुषोत्तम! हे नारायण! हे हृषीकेश! हे पुण्यकीर्त्ते! हे अच्युत! हेअविनाशिस्वरूप हे प्रभो! हे कृष्ण! अब स्वर्गलोक को जानेवाले मुझ को जाने की आज्ञा दीजिये, कर्म के वश में होकर कहीं भी होनेवाले मेरा चित्त तुम्हारे चरण ही जिसका विषय (स्मरण करने के योग्य आश्रय) हैं ऐसा हो ॥ २७ ॥ २८ ॥ जाते में नमस्कार करता है कि—जिन के द्वारा सर्व जगत् की उत्पत्ति हुई है, जो कर्त्ता होकर भी निर्विकार हैं, जिन की मायानामक शक्ति अनन्त है, जो सकल प्राणियों के आश्रय हैं और जो इष्टापूर्त्त × आदि कर्मों का फल देनेवाले हैं ऐसे तुम कृष्ण (सदानन्दरूप ; को नमस्कार हो ॥ २९ ॥ इसप्रकार कहकर उन श्रीकृष्णजी की प्रदक्षिणा करके अपने मस्तक से उन के चरणों को स्पर्श करतेहुए नमस्कार करके, उन के आज्ञा देनेपर सकल मनुष्यों के देखतेहुए वह आयेहुए

× इस से यह जताया कि-परमानन्दरूप तुम्हें छोड़कर जाने की इच्छा करनेवाला भी मैं, तुम्हारे दियेहुए कर्मफल को भोगने जाता हूँ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्पश्यंतां नृणां ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनां ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषं ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्यांधा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यंते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णंति यावतः पांसून् क्रंदतामश्रुबिंदवः ॥ विप्राणां हृतवृ-

श्रेष्ठ विमान में चढा ॥ ३० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों के हितकारी देव, धर्मात्मा, भगवान् श्रीकृष्णजी, राजाओं को शिक्षा देतेहुए तहाँ आयेहुए लोकों से कहनेलगे कि–॥३१॥ अरे लोगों ! क्या आश्चर्य कहूँ ! थोड़े से भी ब्राह्मण के धन का भोग करनेपर वह ब्रह्मधन, अग्नि की समान तेजस्वी पुरुष से भी किसीप्रकार जीर्ण (हजम) करने में नहीं आता फिर हम समर्थ हैं ऐसा व्यर्थ अभिमान रखनेवाले राजाओं से जीर्ण (हजम) कियाजायगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ३२ ॥ मैं तो, जिस के दूर करने का उपाय है ऐसे लोकों को जलानेवाले हालाहल नामक विषको भी विष नहीं मानता हूँ; किन्तु ब्राह्मणों के धन को ही विष मानता हूँ; क्योंकि–जिस को हटाने का उपाय है ही नहीं ॥ ३३ ॥ अब विष और अग्निसे भी ब्राह्मण का धन भयङ्कर है ऐसा कहते हैं–विष एक भक्षण करनेवाले को ही मारडालता है, दूसरों को नहीं मारता है, अग्नि जलों से शान्त होजाता है, कदाचित् वह वन आदि को जला भी डाले तो उस की मूल (जड़ें) शेष रहजाती हैं परन्तु ब्राह्मण के धनरूप अरणिकाठ से उत्पन्नहुआ अग्नि तो कुल को समूल भस्म करडालता है ॥ ३४ ॥ धरोहड़ रक्खेहुए ब्राह्मण का धन, स्वामी की आज्ञा के विना भोगनेपर वह तीन पुरुषपर्यंत कुल को अधोगति में पहुँचाता है, और बल से हठ करके भोगाहुआ द्रव्य हरण करनेवाले के पहिले दश और आगे के दश तथा इक्कीसवां आप, इतनों को अधोगति में पहुँचाता है ॥ ३५ ॥ इसकारण राज्यलक्ष्मी से अन्धेहुए जो मूर्ख राजे, नरक में पहुँचानेवाले, ब्राह्मण के धन की इच्छा करते है वह यह नहीं देखते कि–हमारा नरकपात होगा ॥ ३६ ॥ वेदों का दान, (पढ़ाना) करनेवाले, कुटुम्बवत्सल और आजीवका का हरण होने से रोनेवाले ब्राह्मणों के नेत्रों में से गिरीहुई आँसुओं की बूंदें जितनी पृथिवी की धूलि के कणों को भिगोती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्तीनां वदान्यानां कुटुंबिनां ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दा-निरंकुशाः ॥ कुंभीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां पर-दत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥३९॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्भुक्त्वाऽल्पायुषो नृपाः॥पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्यु-द्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैवं द्रुह्यत मामकाः ॥ घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥ यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौ-रिव ॥४३॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुंदो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमंदिरम् ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ०

हैं उतने वर्षोंतक उन ब्राह्मणों की आजीविका छीननेवाले निरंकुश राजे तथा उस राज-कुल का आश्रय करनेवाले मंत्री आदि कुंभीपाक नरक में क्लेशों को भोगते हैं ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ अपनी दीहुई वा दूसरे की दीहुई ब्राह्मण की आजीविका का जो पुरुष हरण करता है वह, साठ सहस्र वर्षोंतक विष्टा में कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ इसकारण मुझ को ब्राह्मण का द्रव्य हरण करने की इच्छा कभी नहो, जिस धन की इच्छा करनेवाले पुरुष, थोड़ी आयुवाले, और राज्य से भ्रष्ट होजाते हैं तथा मरण के अनन्तर वह दूसरोंको भय देनेवाले सर्प होते हैं॥४०॥इस से हे लोगों ! तुम मेरे हो इसकारण तुम से कहता हूँ सुनो-अपराध करनेवाले, बहुत शाप आदि देनेवाले अथवा किसी अवसर पर ताड़ना भी कर-नेवाले ब्राह्मणों से तुम कभी भी द्रोह न करो; किन्तु उन को नित्य नमस्कार ही करो ॥ ४१ ॥ जैसे मैं प्रातःकाल मध्यान्ह और सायंकाल के समय तथा और दूसरे किसी भी समय एकाग्रचित्त से ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ तैसे ही तुम भी नमस्कार करो, इसप्रकार जो नहीं करेगा वह मुझ से दण्ड पावेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण का धन हरनेपर वह धन उस हरनेवाले को नरक में डालता है, यह केवल भय दिखाना ही नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष है देखो- उस ब्राह्मण की गौ,न जाननेवाले भी इस महादानी राजा नृग के, अधो-योनि में पड़ने का कारण हुई फिर जानबूझकर हरण कराहुआ ब्राह्मण का धन, उस हरण करनेवाले के अधःपात का कारण होगा इस का तो कहना ही क्या ! ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सब लोकों को पवित्र करनेवाले और मुक्ति देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी, द्वारका-वासी लोकों को धर्म का रहस्य सुनाकर फिर अपने स्थान को चलेगये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कंठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनंदितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः इत्यारोप्यांकमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवादितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रांतं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बांधवा राम सर्वे कुशलमासते ॥ कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ८

पैंसठवें अध्याय में, गोकुल को आयेहुए बलरामजी ने, गोपियों के साथ क्रीड़ा करतेहुए यमुना नदी का आकर्षण करा यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि— हे राजन्! एकसमय, नन्द आदि बान्धवों को देखने की इच्छा करनेवाले और उन में प्रेम करनेवाले भगवान् बलरामजी, रथपर बैठकर नन्दजी की गोकुल को गये ॥ १ ॥ तब बहुत कालपर्यन्त दर्शन आदि की इच्छा करनेवाले गोपोंने और गोपियोंने उन को हृदय से लगाया और उन बलरामजी ने यशोदा और नन्द इन दोनों माता पिताओं को प्रणाम करा तब उन्होंने आशीर्वाद देकर इन का अभिनन्दन करा ॥ २ ॥ कि—हे बलराम! तुम जगदीश्वर हो इस से श्रीकृष्ण सहित तुम चिरकालपर्यन्त हमारी रक्षा करो, ऐसा कहकर उन यशोदा नन्द ने, उन को गोदी में बैठाकर हृदय से लगाकर आनन्द के आँसुओं से भिगोदिया ॥ ३ ॥ फिर उन्होंने वृद्ध गोपों को भी यथाविधि प्रणाम करा तब छोटी अवस्थावाले गोपों ने उन को प्रणाम करा; फिर जैसी अपनी अवस्था, मित्रभाव और सम्बंध था उस के अनुसार वह सब गोपों से, हास्य, हाथ पकड़ना इत्यादि से मिलकर सुख से आसन पर बैठ श्रमरहित होने पर उन के चारों ओर आकर बैठेहुए, उन के कुशल बूझेहुए और कमलदलनयन श्रीकृष्णजी की प्राप्ति के निमित्त सकल विषयों का त्याग करनेवाले सब गोप उन से प्रेम के कारण गद्गदहुई वाणी से यादवों का कुशल बूझनेलगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम! वसुदेव आदि हमारे सब बान्धव आनन्द तो हैं? और हेराम! अब स्त्री और पुत्रोंसे युक्त हुए तुम, कभी हमारा स्मरण करते हो क्या? ॥ ७ ॥ दुराचारी कंस मरण को प्राप्त हुआ यह बड़े आनन्द की वार्त्ता हुई और हमारे वसुदेव आदि मित्रजन भी उस के उपद्रव से छूटे यहभी अच्छा हुआ तथा कालयवन को और जरासन्ध आदि शत्रुओं को मारकर तथा जीतकर तुम द्वारकारूप किले में जाकर रहे यह भी बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामं संदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्री-जनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बन्धूनिपितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थे जहिम दाशार्ह-दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौ-हृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृ-ह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य दुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णन्ति वै चित्रक-थस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वंगं

अच्छा हुआ ॥ ८ ॥ उस समय बलरामजी के प्रेम के साथ देखने से आदर को प्राप्तहुई गोपियें,आनन्द के साथ हँसती हुई उन से बूझने लगीं कि—अब नगर में की स्त्रियों को प्रेम करनेवाले वह श्रीकृष्ण, द्वारका में सुख से तो रहते हैं ? ॥ ९ ॥ और वह अपने गोप बान्धवों का, पिता नन्दजी का और माता यशोदा का भी कभी स्मरण करते हैं क्या ? और वह अपनी माता को देखने के निमित्त एकाधवार आवेंगे क्या ? और वह महापराक्रमी श्रीकृष्णजी, हमारी,तत्पर होकर करीहुई सेवा का कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ १० ॥ हे दाशार्ह प्रभो ! त्यागने को कठिन ऐसे माता, पिता, भ्राता, पति, पुत्र, बहिन आदि स्व-जनों को,जिनकी प्रीति के लिये हमने त्यागदिया था वह हमें तत्काल त्यागकर, प्रेमबन्धन को अत्यन्त तोड़कर चलेगये, यदि कहोकि-तुमने जातेसमय उन को रोक क्योंनहींलिया तो सुनो—'मैं तुम्हारे उपकार का पलटा करने को कभी समर्थ नहीं होऊँगा' इत्यादि उन मनो हर भाषणों का स्त्रियें भला कैसे विश्वास न करें ? किन्तु विश्वास करना ही पड़ताहै सो उन्हो ने हमें विश्वास देकर धोखा दिया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि—हम तो चित्त ठिकाने न होने के कारण चतुर नहीं है परन्तु अब नगर की चतुर स्त्रियें, चञ्चल प्रेमयुक्त और कृतघ्नी उन कृष्ण की बातों को विश्वास से कैसे ग्रहण करती होंगी ? दूसरी कहने लगीं कि—हमारी समान ही उनकी चित्रविचित्र कथाओं के सुनने से मोहित होकर और उन के सुन्दर हास्ययुक्त अवलोकन से उद्दीपित हुए कामदेव के वश में होकर उन की बातों को ग्रहण करलेती होंगी इस में सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ दूसरी कहने लगीं कि—अरी गोपियों ! उन कृष्ण की कथा से हमें कौन फल प्राप्त होता है ? उन के स्मरण से केवल दुःखही बढ़ता है, इस से दूसरे की कथा वर्णन करो और उनका हमारे विना समय बीतता है तो उन के विना हमारा भी बीतही जाता है परन्तु विशेषता इतनी है कि—उन का सुख से बीतता है और हमारा दुःखसे ॥ १४ ॥ इसप्रकार कहनेवालीं और उन श्री-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः ॥ सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चोवास तासीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनितोभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीवो मदविह्वललोचनः २१॥ स्रग्व्येककुंडलो मत्तो वैजयंत्या च मालया ॥ विभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निर्जं वाक्य-

कृष्ण के–हास्य, भाषण, सुन्दर अवलोकन, चलना और प्रेमयुक्त आलिङ्गन का स्मरण करती हुई वह स्त्रियें रोनेलगीं ॥ १५ ॥ उससमय नाना प्रकार की समझाने की रीतियों में चतुर तिन भगवान् बलरामजी ने, मनोहर और विश्वासकारी श्रीकृष्ण के सन्देश कहकर उन गोपियों को समझाया ॥ १६ ॥ तदनन्तर वह भगवान् बलरामजी, रात्रि में श्रीकृष्ण जी के साथ हुई रासक्रीड़ाके समय जो छोटी थीं और जो उत्पन्न नहीं हुई थीं ऐसी गोपियोंको रतिसुख देतेहुए चैत्र और वैशाख इन दो महीनेपर्यन्त तिस गोकुल में रहे ॥ १७ ॥ तब, पूर्णचन्द्रमा की किरणों से प्रकाशवान और चन्द्रमा के उदय होने पर खिलनेवाली कमलिनियों के सुगन्धयुक्त वायु से सेवन करीहुई यमुना के तट की वाटिका में स्त्रियों से घिरेहुए उन बलरामजी ने क्रीडा करी ॥१८॥ बलरामजी की सेवा करने के निमित्त वरुण की भेजी हुई, अमृत के साथ उत्पन्न हुई वारुणी नामक मदिरा, वृक्षों की खोकलों में से नीचे को टपककर अपनी गन्ध से उस सब वन को सुगन्धित करनेलगी ॥ १९ ॥ तब वायु ने अपनी घ्राणइन्द्रिय (नासिका) के समीप पहुँचाएहुए मधुधारा के उस सुगन्ध को ग्रहण करके बलरामजी ने तहाँ जाकर स्त्रियों के साथ उस मदिरा का पान करा ॥ २० ॥ और देवगन्धर्वादिकों ने जिनका चरित्र गाया है ऐसे मत्त और मद से जिनके नेत्र विव्हल हुए हैं ऐसे वह बलरामजी, स्त्रियों के साथ क्रीडा करतेहुए वन में विचरने लगे ॥२१॥ कण्ठ में पुष्पों की माला और एक ही कान में कुण्डल धारण करनेवाले, स्वभाव से ही मत्त की समान दीखनेवाले, नौरंग से जडी और पैरों पर्यन्त लटकती हुई वैजयन्ती नामवाली माला से शोभायमान, पसीनारूप तुषार के कणों से भूषित और हास्ययुक्त मुखकमल को धारण करनेवाले वह प्रभु बलरामजी, जहाँ आप थे तहाँ ही क्रीडा करने के निमित्त यमुनानदी को बुलानेलगे, तब यह मत्त हैं ऐसा जानकर, अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मया हृता ॥ नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥ एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवान्मामजानतीं ॥ मोक्तुमर्हति विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ ॥ २७ ॥ ततो व्यमुंचद्यमुनां याचितो भगवान् बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो महेंद्र इव वारणः ॥ ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन् यमुना कृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं

वाक्य का अनादर करके तहाँ न आनेवाली यमुना को उन्होंने कोप में भरकर, हल की नोक से खैंचलिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ और कहनेलगे कि—अरी दुष्टे! मेरे बुलाने पर भी जो मेरा अनादर करके तू नहीं आती है तिस से तू जैसे मेरी इच्छानुसार जायगी तैसे तुझे हल की नोक से सैकडों प्रवाहों से लेजाऊँगा ॥२४॥ हे राजन्! इसप्रकार ललकारने के कारण डरकर चकित हुई वह यमुनानदी, देवतारूप से चरणों में गिरकर उन बलरामजी से ऐसा कहनेलगी ॥ २५ ॥ कि—हे राम! हे राम! हे महाबाहो! मैं तुम्हारे पराक्रम को भूलगई हूँ; हे जगत्पते! जिन तुम्हारे सहस्र मस्तकों में से एक मस्तकने ही यह पृथ्वी धारण करी है ॥ २६ ॥ हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! हे भक्तवत्सल! तुम भगवान् की परमसामर्थ्य को न जाननेवाली परन्तु अब शरण आईहुई मुझ को 'अज्ञान से करेहुए अपराध को सहकर' तुम छोडदेने की कृपा करो ॥ २७ ॥ इसप्रकार प्रार्थना करेहुए उन भगवान् बलरामजी ने यमुना को छोडदिया फिर उन्होंने स्त्रियों के साथ उस के जल में घुसकर, जैसे गजराज हथिनियों के साथ क्रीडा करता है तैसे, क्रीडा करी ॥ २८ ॥ यथेष्ट क्रीडा करके जल से बाहर निकलनेवाले उन बलरामजी को, नीलवर्ण के वस्त्र, बहुत मूल्य के भूषण और सुवर्ण के कमलों की माला यह साक्षात् लक्ष्मी ने तहाँ प्रकट होकर दिये ॥२९॥ तब नीले वस्त्र पहनकर और नीले कमलों की माला गले में डालकर दूसरे भी आभूषणों से शोभायमान और चन्दनादि का लेपन लगायेहुए वह बलरामजी इन्द्र के ऐरावत हाथी की समान शोभायमान होने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन्! अनन्तपराक्रमी बलरामजी की सामर्थ्य को प्रकट करनेवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥ एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषितां ॥ ३२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥ ७॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेनं आत्मानमच्युतं ॥२॥ दूतं च प्राहिणोन्मंदः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥ यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि

वह यमुनानदी अब भी हल से खोदेहुए मार्ग में को बहती हुई निःसन्देह दीखती है ॥३१॥ इसप्रकार गोकुल की स्त्रियों के विलासों से जिन का चित्त, रतिक्रीड़ा में तत्परहुआ है ऐसे गोकुल में क्रीड़ा करनेवाले तिन बलरामजी को चैत्र और वैशाख इन दो महीनोंकी सब रात्रियें एक रात्रि की समान बीतगईं ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे छासठवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने, काशी में जाकर पौंड्रक का और उस के मित्र काशिराजा का वध करा फिर सुदर्शन के द्वार वध आदि चरित हुआ यह कथा वर्णन करी है। * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इसप्रकार बलरामजी के नन्दजी की गोकुल में जानेपर इधर द्वारका में, करूषदेशोंके स्वामी अज्ञानी राजा पौंड्रक ने, वासुदेव मैं हूँ ऐसा मानकर श्रीकृष्णजीके पास दूत भेजा ॥१॥ इसको ही स्पष्टरूप से कहते हैं कि–जगत् का पालन करनेवाला भगवान् वासुदेव तूही प्रकट हुआ हैं इसप्रकार अज्ञानी पुरुषों के प्रशंसा करेहुए तिस पौंड्रक ने, मैं ऐश्वर्यादिगुणपूर्ण भगवान् वासुदेव हूँ ऐसा माना ॥ २ ॥ और जैसे किसी अज्ञानी बालक को खेलते में दूसरे बालक राजा बनालेते हैं तब वह अपने को ही राजा मानता है तिसी प्रकार मैं ही वासुदेव हूँ ऐसा माननेवाले उस मंदबुद्धि पौंड्रक ने, जिनका माहात्म्य विदित नहीं है ऐसे श्रीकृष्णजी के पास द्वारका में दूत भेजा ॥ ३ ॥ वह दूत द्वारका में जाकर, सुधर्मासभा में बैठेहुए कमलदलनयन प्रभु श्रीकृष्णजी से पौंड्रक का सन्देशा कहनेलगा ॥ ४ ॥ पौंड्रक का वचन दूत कहता है कि–भगवान् वासुदेव एक मैं ही हूँ और प्राणियों के ऊपर दया करने के निमित्त उत्तीर्ण हुआ हूँ, दूसरा कोई वासुदेव नहीं है; तू तो झूँठा वासुदेव नाम धारण करता है; इसकारण तू इस नाम का त्याग कर ॥ ५ ॥ और हे कृष्ण ! तू मूढता से जो मेरे शंख चक्र आदि चिन्ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौंड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥७॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनां ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौंड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वन-

धारण करता है उन को त्यागकर मेरी शरण आ, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करनेको उद्यत (तयार) हो ॥६॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! मन्दभाग्य पौंड्रक के दूत का कहा हुआ वह दुर्वचन सुनकर, उससमय सभा में बैठेहुए उग्रसेन आदि सभ्य बडे शब्द के साथ हँसनेलगे ॥ ७ । फिर सभा में बहुत देरपर्यन्त उस पौंड्रक का हास्य होते रहने पर भगवान् श्रीकृष्णजी ने दूत से कहा कि—तू पौंड्रक से मेरा वाक्य इसप्रकार कहना कि—हे मूर्ख ! जिन धारण करेहुए बनावटी चिन्हों से तू अपनी प्रशंसा करता है वह चिन्ह मैं तुझ से छुटवाता हूँ अथवा वह मैं अपने चक्रादि चिन्ह युद्ध में तेरे ऊपर और तू जिनके साथ अपनी प्रशंसा करता है उन चिन्हों के ऊपर छोडता हूँ ॥ ८ ॥ मेरी शरण आ, ऐसा जो कहा तिसका उत्तर यह है कि—अरे मूढ ! जिस मुख से तू ऐसी बड २ करता है, सो तू मेरे हाथ से मारेजाने पर उस मुख को फैलाकर, कंक गिद्ध और बट नामवाले पक्षियों से घिराहुआ जब रणभूमि में शयन करेगा तब तहाँ फिर नेवाले श्वानादिकों की शरण में जायगा अर्थात् वह तुझे तोड२ कर खायँगे ॥ ९ ॥ इसप्रकार भगवान् के कहेहुए निन्दा के वचनों को सुनकर वह दूत अपने स्वामी पौंड्रक के पास गया और वह सब वृत्तान्त सुनाया उस समय वह राजा पौंड्रक अपने मित्र की काशी नामकनगरी में था इसकारण श्रीकृष्णजी ने भी रथ में बैठकर उस काशीनगरी पर चढ़ाई करी ॥ १० ॥ महारथी पौंड्रक भी, श्रीकृष्णजी का युद्ध करने का उद्योग देखकर दो अक्षौहिणी सेना साथ में लेकर युद्ध करने के निमित्त शीघ्र ही नगर में से बाहर निकला ॥ ११ ॥ हे राजन् ! काशिराजा उस पौंड्रक का मित्र था इसकारण वह उस का ससायक होने के निमित्त अपनी तीन अक्षौहिणी सेना के साथ उस की सहायता करने को गया तब श्रीकृष्णजी ने पौंड्रक को देखा ॥ १२ ॥ शंख, चक्र, खड्ग, शार्ङ्ग और श्रीवत्स आदि चिन्होंसे प्रतीत होनेवाला, कौस्तुभमणि धारणकरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसाने गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यं वेषं कृत्रिममास्थितं ॥ यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्रहरन्नरयो हरिं ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यंदनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं यथा युगांते हुतभुक् पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखंडितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥ अथाह पौंड्रकं शौरिर्भो भो पौंड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येभिधानं मे यत्त्वयाज्ञप्तं मृषा धृतं ॥ व्रजामि शरणं तद्यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वाशितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेंद्रो

हुए, वनमाला से भूषित, रेशमी पीताम्बर पहिने, वनावटी गरुड़ पर चढ हुए, अमूल्य किरीट तथा और भी आभूषणों को धारण करनेवाला तथा जिस के कानों में मकराकार कुण्डल झलक रहे हैं ऐसा था ॥ १३ ॥ १४ ॥ और जैसे नृत्य के स्थान में राजा आदि का वेष धारण करनेवाला नट होता है तैसेही, वनावटी, अपनी समान वेष धारण करनेवाले उस पौंड्रक को देखकर श्रीकृष्णजी ने बहुत ही हास्य करा ॥ १५ ॥ तदनन्तर वह शत्रु शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और वाणों से श्रीकृष्णजी के ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी ने तो, हाथी, रथ, घोडे और पैदलों से युक्त उन पौंड्रक और काशिराज की सेना को, गदा, खड्ग, चक्र और वाणों से, जैसे प्रलयकाल में अग्नि जरायुज आदि चार प्रकार के प्राणियों को पीडित करता है तैसेही पीडित करके मारडाला ॥ १७ ॥ उससमय चक्र से चूरा करडाले हुए रथ, घोडे, हाथी, सिपाही, गर्दभ और ऊँटों से भरहुआ वह युद्ध का स्थान, शूर पुरुषों को हर्षित करताहुआ, प्रलय काल के भयङ्कर श्रीरुद्रभगवान् के क्रीडास्थान की समान शोभा पानेलगा ॥ १८ ॥ फिर श्रीकृष्णजी पौंड्रक से कहनेलगे कि—अरे रे ! पौंड्रक ! 'जो हमारे चिन्ह धारण करता है उन को त्यागदे ऐसा' जो तूने दूतके द्वारामुझ से कहलाकर भेजा था वह अस्त्र तेरा वध करनेके निमित्त आज तेरे ऊपर छोडता हूँ ॥ १९ ॥ और अरेमूर्ख ! वासुदेव जो मेरा नाम मिथ्याही तू धारण करता है तिस को मैं तुझ से छुटवाता हूँ और यदि युद्धकी इच्छा नहीं होयगी अर्थात् युद्धसे भय मानूंगा तो अब तेरी शरण आऊँगा ॥ २० ॥ इसप्रकार भाषण से उसको धिक्कार करके, श्रीकृष्णजीने उस पौंड्रकको तीखे वाणोंसे रथहीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा गिरेः[10] ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिरः उत्कृत्य पत्रिभिः[2] ॥ न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ बिभ्राणश्च हरेः राजन्सरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशेरिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबांधवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनोऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्वरं ॥ पितृहंतृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्नि

करदिया और जैसे इन्द्रवज्र से पर्वतके शिखरतोडताहै तैसेचक्रसे उनकेमस्तककाटडाले२१। तैसे ही उस का मित्र जो काशिराजा था उसका शिर बाणों से शरीर पर से काटकर उस को, जैसे पवन कमलों की कलियों को तोड़कर दूर लेजाकर डालदेता है तैसे ही काशीनगरी में लेजाकर डालदिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार काशिराजासहित पौंड्रक को मारकर, जिन की कथारूप अमृत को सिद्धों ने गाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी द्वारका को लौटगये॥ २३॥ हे राजन्! फिर वैरबुद्धि से, भी करेहुए भगवान् के ध्यान से जिस के कर्मवासनारूप बन्धन नष्ट होगये हैं ऐसा वह पौंड्रक, श्रीहरि की समान रूप धारण करके अन्त में तन्मय होगया ॥२४॥ इधर काशी में राजा के द्वार के समीप कुण्डलोंसहित पडाहुआ वह मस्तक देखकर सबलोग, पहिले 'यह क्या है' ऐसा कहकर तदनन्तर कुण्डलसहित मस्तक है, ऐसा जानकर 'किस का मस्तक है ऐसा,सन्देह करनेलगे ॥२५॥ फिर काशिपतिराजा का ही यह मस्तक है ऐसा निश्चय करके, उस की स्त्रियें, पुत्र, भ्राता और पुरवासी लोग, हे राजन्! हे नाथ! हे नाथ! तुम्हारे मरण को प्राप्त होने से तुम्हारे अनुयायी हम सब भी मरण को प्राप्तहुएसे होगये हैं, ऐसा कहतेहुए रोनेलगे ॥२६॥ उस काशिराजा का सुदक्षिण नामवाला पुत्र था, उस ने पिता की अन्तक्रिया करके, अपने पिता को मारनेवाले श्रीकृष्णजी को मारकर मैं पिता के ऋण से छूटूंगा ऐसा, अपनी बुद्धि से निश्चय करके, उपाध्याय के साथ वह अतिउदार सुदक्षिण, चित्त की एकाग्रता के साथ अविमुक्तक्षेत्र में श्रीरुद्रभगवान् की आराधना करनेलगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ तदनन्तर भगवान् रुद्र ने प्रसन्न होकर उस से कहा कि—वर मांग,तब उस सुदक्षिणने, अपना इच्छित, पिता को मारनेवाले के वध का उपायरूप वरदान मांगलिया ॥ २९ ॥ तब श्रीरुद्र ने कहा कि—तू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिचर ब्राह्मणैः समृत्विजम् ॥ अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्नृप ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्राग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन् सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ॥ त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यविता स्म्यहम् ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणों के साथ, शत्रु को मारने के निमित्त कहीहुई विधि से अपने में हवन करनेवाले की इच्छा के अनुसार वर्ताव करनेवाले दक्षिणाग्नि की आराधना कर, तब वह अग्नि, ब्राह्मणों की भक्ति न करनेवाले पुरुष के ऊपर चालयाजायगा तो मेरे प्रमथगणों से युक्त होकर तेरे संकल्प को पूरा करेगा (इस से ब्राह्मणों के भक्त श्रीकृष्णजी क ऊपर चलावेगा तो निरर्थक होगा यह सूचित करा) इसप्रकार आज्ञा कराहुआ वह सुदक्षिण, अभिचारकर्म (मारण का विधान) करताहुआ, भोजन आदि का नियम धारण करके अग्नि की आराधना करनेलगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तदनन्तर कुण्ड में से अतिभयानक अग्नि उत्पन्न हुआ, जिस की शिखा और दाढ़ी-मूछ तपेहुए तांबे की समान हैं, जिस के नेत्र अंगारे उगलनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ जिस का मुख दाढों से और उग्र भ्रुकुटिदण्डों से क्रूर दीखरहा है, जो अपनी जिव्हा से नीचे के और ऊपर के ओठों के जावड़ों को चाटरहा है और जो नंगा होकर हाथ में तीन नोकवाले त्रिशूल को घुमारहा है ॥ ३३ ॥ ऐसा वह अभिचार का अग्नि भूत प्रमथ आदि गणों से घिरकर दशों दिशाओं को जलाताहुआ ताल के वृक्ष की समान अपने चरणों से भूमण्डल को कँपाता कँपाता द्वारका पर चढ़कर गया ॥ ३४ ॥ उस आनेवाले अभिचार के अग्नि को देखकर द्वारकावासी पुरुष, वन को जलाने पर जैसे हिरन डरकर भागजाते हैं तैसे ही सब भागगये ॥ ३५ ॥ और सभा में फांसों से क्रीडा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी से, भय से घबडाएहुए वह द्वारकावासी पुरुष, हे त्रिलोकीनाथ ! इस द्वारकानगरी को जलातेहुए आनेवाले इस अग्नि से तुम हमारी रक्षाकरो, रक्षाकरो ऐसी प्रार्थना करनेलगे ॥ ३६ ॥ वह पुरुषों की व्याकुलता सुनकर तैसेही तिन अपने भक्तों का दुःख देखकर, रक्षा करनेवाले वह भगवान्, हँसकर कहने लगेकि—तुम कुछ भय न मानो मैं तुम्हारी रक्षा करनेवाला हूँ ॥ ३७ ॥ फिर सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वस्यांतर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥ तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विक्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥ चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालां ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभा० म० दश० उ० पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ राजोवाच ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि

जगत् के भीतर और बाहर के भाग को प्रत्यक्ष देखनेवाले उन प्रभु श्रीकृष्णजी ने, उस को माहेश्वरी कृत्या जानकर, उस कृत्यारूप अग्नि का नाश करने के निमित्त अपने समीप में वर्त्तमान सुदर्शनचक्र को आज्ञा करी ॥ ३८ ॥ तब करोडों सूर्य की समान देदीप्यमान प्रलयकाल के अग्नि की समान जाज्वल्यमान और अपने तेज से आकाश दिशा, स्वर्ग और भूमि को प्रकाशित करनेवाला वह सुदर्शन नामवाला विष्णु भगवान् का चक्र,तिस अग्नि को पीडित करनेलगा ॥३९॥ तब हे राजन्! वह कृत्यारूप अग्नि, श्रीकृष्णजी के चक्र के तेज से ताडितहोने के कारण मुखमर्दन होनेपर पीछे को लौटा और सुदक्षिण के आपही उत्पन्न करेहुए उस अभिचाररूप अग्नि ने वाराणसी में आकर, ऋत्विज् और अन्य लोकोंसहित तिस सुदक्षिण को जलाडाला ॥ ४० ॥ और उस कृत्या अग्नि के पीछे२वाराणसी में आयाहुआ वह विष्णुभगवान् का सुदर्शन चक्र,मचान,सभा, घर, बाजार, नगरद्वार और उन के ऊपर के शिखर तथा अन्न भरने के कोठे इन से भरीहुई और धन के भण्डार,हाथीखाने,घुडशाल, रथशाला और अन्नशालाओं से युक्त उस सब वाराणसी को जलाकर फिर वह विष्णु भगवान् का सुदर्शनचक्र, उदारचरित्र उन श्रीकृष्णजी के समीप आगया॥४१॥४२॥जो पुरुष, यह उत्तमश्लोक भगवान् का पराक्रम, एकाग्रचित्त होकर श्रोताओं को सुनावेगा अथवा आप सुनेगा वह सकलपापों से छूट जायगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षट्षष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे सड़सठवें अध्याय में बलरामजी ने रैवतक पर्वत पर जाकर तहाँ मद से स्त्रियों के साथ यथेष्ट क्रीडा करतेहुए,द्विविद नामवाले दुष्ट वानर का वध करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीकृष्णचरित्र सुनकर फिर रामचरित्र सुनने के निमित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैंदस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्यः सोऽर्पचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवं॥ पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ॥ आनर्तान्सुतरामेवं यत्रास्तेऽमित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलं ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत्॥ ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वेतानिकान् खलः ॥ ६ ॥ पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निक्षिप्य चाप्यथाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तं-

राजा ने कहा कि–हे शुकदेवजी ! जिनका प्रमाण (अन्दाज) न होसके ऐसे अनन्त और अद्भुतकर्म करनेवाले बलरामजी का चरित्र सुनने की मैं फिर इच्छा करता हूँ, सो सबकुछ करने को समर्थ बलरामजी ने, जो और कर्म करे हों वह मुझ से कहो ॥१॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! द्विविद नामवाला कोई एक वानर था, वह नरकासुर का मित्र (अर्थात् श्रीकृष्णजी का वैरी), सुग्रीव का मंत्री, मैंद वानर का भ्राता और स्वयं पराक्रमी था ॥ २ ॥ वह द्विविद वानर, मरण को प्राप्तहुए अपने नरकासुर मित्र का ऋण दूर करने के निमित्त, देशों का नाश होजाय तिसप्रकार अग्नि लगाकर, नगर, गाँव, खान, ग्वालों की मँडइयें इन सबों को जलानेलगा ॥ ३ ॥ एक समय वह द्विविद वानर, शिलाएँ उखाडकर उन से देशों का चूरा करता था उसी बीच में जहां नरकासुर को मारनेवाले श्रीकृष्णजी रहते थे उस द्वारका के समीप के आनर्त्तदेशों में आकर उन को तो विशेषरूप से चूरा करनेलगा ॥ ४ ॥ दश सहस्र हाथी के बलवाला वह वानर, कभी तो समुद्र में घुसकर अपनी भुजाओं से उस के जल को उछालकर उस से समुद्र के तटपर के देशों को डुबाता था ॥ ५ ॥ वह दुष्टात्मा वानर, बडे २ ऋषियों के आश्रमों में के वृक्षों को उखाड़कर, उन के यज्ञ के आहवनीय आदि अग्नि में मूत्र विष्टा करके दूषित करता था ॥६॥ वह दुष्ट वानर पर्वत की गुहाओं में, पुरुष और स्त्रियों को डालकर उन गुहाओं के मुख, शिलाओं से, ऐसे बन्द करदेता था जैसे भृङ्गीनामवाला कीडा किसीकीडे को अपने भट्ट में डालकर उसका मुख बन्द करदेता है॥७॥इसप्रकार देशों को पीडा देनेवाला और कुलीन स्त्रियों को दूषित करनेवाला वह द्विविदवानर, बलरामजी के करेहुए मधुरगान को सुनकर रैवतक पर्वत पर गया॥ ८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगं ९॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ बिभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणं ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धाष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रियं विजेहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ तां हेलयामास कापेर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः॥१३॥ तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिरा-कलशं कपिः ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ॥ १४ ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ १५ ॥ तं तस्यावितथं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य

तिस रैवतक के बगीचे में यादवों के अधिपति बलरामजी को उस ने देखा, वह बलरामजी कमलों की माला धारण करनेवाले,तथा जिन के सकल अंग देखनेयोग्य हैं ऐसे और स्त्रियों के समूह में प्रवेश करेहुए, वारुणी मदिरा पीकर गानकरनेवाले, मदिरा के मद से विव्हलनेत्रवाले और मदोन्मत्त हाथी की समान अपने शरीर से प्रकाशवान् थे ॥ ९ ॥ १० ॥ वह दुष्ट वानर वृक्षों के ऊपर चढ़कर वृक्षों को हिलाता हिलाता आप ही, बलरामजी और स्त्रियों की दृष्टि के सामने पडताहुआ वानर जाति का किलकिल शब्द करनेलगा ॥ ११ ॥ उस वानर का उद्धतपना देखकर, स्वभाव से ही चञ्चल और जिनका हास्य प्यारा है तथा जिनको बलदेवजी का आश्रय है ऐसी वह तरुणी स्त्रियें, हास्य करनेलगीं ॥१२॥ तब वह द्विविद वानर, बलरामजी के देखतेहुए उन का अनादर करके भ्रुकुटि चलाना, शरीर पर को झपटकर जाना, दाँत दिखाना इत्यादि करके उन को अपनी गुदा दिखाताहुआ तिन स्त्रियों का तिरस्कार करनेलगा ॥ १३ ॥ तब प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ तिन बलरामजी ने, क्रोध में भरकर उस के एक पत्थर फेंककर मारा तब उस धूर्त्त वानर ने भी, बलरामजी को क्रोध दिलाने के निमित्त उन के फेंकेहुए पत्थर को बचाकर उन के मद्य के कलश को लेकर भागगया और उन का तिरस्कार करा ॥ १४ ॥ तदनन्तर तिस उद्धत वानर ने, वह कलश फोडकर स्त्रियों के वस्त्र खेंचकर फाड़डाले ; इस प्रकार मद से ज्ञानहीन हुए तिस वानर ने, बलरामजी को तुच्छ मानकर ऐसा अपराध करा ॥ १५ ॥ उस वानर का वह दुष्टपना और उस के दुःखित करेहुए देशों को देखकर क्रोध में भरेहुए बलरामजी ने उस शत्रु को मारने के निमित्त हल और मूसल उठाया ॥ १६ ॥ तब उस महापराक्रमी द्विविद ने भी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाणिनाँ ॥ अभ्येत्य तरसा तेन वलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतंतमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्देनाहनच्च तं ॥ ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं वलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ २१ ॥ एवं युद्ध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २२ ॥ ततोऽमुंचच्छिलावर्षं वलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः २३ ॥ स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ ॥ २४ ॥ यादवेंद्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २५ ॥ चकम्पे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः ॥

हाथ से साल का वृक्ष उखाडकर वेग से आ, उस शाल के वृक्ष से बलरामजी के मस्तक पर प्रहार करा ॥ १७ ॥ मस्तक पर गिरनेवाले उस शाल के वृक्ष को, पर्वत की समान निश्चल तिन बलरामजी ने, हाथ से पकडलिया, और तिन बलवान् सङ्कर्षण ने, सुनन्द नामवाले मूसल से उस के ऊपर प्रहार करा ॥ १८ ॥ उस समय मूसल की चोट से जिस का मस्तक फटगया है ऐसा वह वानर, मस्तक में से बहनेवाली रुधिर की धारा से, जैसे लाल २ गेरुआ बहतेहुए प्रवाह से पर्वत शोभा पाता है तैसे शोभायमान होनेलगा ; तदनन्तर उस प्रहार को कुछ न गिनकर क्रोध में भरेहुए तिस वानर ने फिर दूसरा शाल का वृक्ष उखाडकर और उस के पत्ते अलग करके उस से बडे वेग के साथ बलरामजी के ऊपर प्रहार करा, उस शाल के वृक्ष के भी बलरामजी ने सैकडों टुकडे करडाले ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर उस वानर ने, दूसरे शाल के वृक्ष से क्रोध में भरकर बलरामजी के ऊपर प्रहार करा, उस के भी बलरामजी ने सैंकडों टुकडे करडाले ॥ २१ ॥ इसप्रकार भगवान् बलरामजीके साथ युद्ध करनेवाले तिस वानर ने, वारंवार शाल के वृक्ष फेंके और वह टुकडे २ होगये तब सब वृक्षों को उखाडकर वह वन वृक्षहीन करदिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर क्रोध में भराहुआ वह वानर, बलरामजी के ऊपर पत्थरों की वर्षा करनेलगा. वह सब पत्थरों की वर्षा, मूसलरूप शस्त्र धारण करनेवाले तिन बलरामजी ने, अनायास में ही चूरा २ करडाली ॥ २३ ॥ तब उस वानरराज ने शाल के वृक्ष की समान मोटे अपने हाथों के घूंसे बनाकर, बलरामजी के समीप जा उन दोनों घूँसों का उन के वक्षःस्थल पर प्रहार करा ॥ २४ ॥ बलरामजी ने भी मूसल और हल को छोडकर अपने हाथों से उस वानर के कंठ और भुजाओ के पुट्ठों पर प्रहार करा तब वह वानर रुधिर की वमन करताहुआ भूमिपर गिरकर मरगया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! गिरनेवाले तिस वानर से, पानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २६ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ॥ सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २७ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवान् जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥ इतिश्रीभागवते म० द० उ० द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः६७

श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जांबवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीं ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव ससंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ सावमारेभिरे बद्धुं

से मरेहुए बिलोंसहित और वृक्षोंसहित वह रैवतक पर्वत, जैसेपवनसे जलमें नौका कम्पायमान होती है तैसे, कम्पायमान हुआ ॥ २६ ॥ तब बलरामजी के ऊपर फूलों की वर्षा करनेवाले सिद्ध और ऋषीश्वरों का, आकाश में यथायोग्य जयजयकार शब्द, नमोनमः शब्द और बहुत अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ इसप्रकार का शब्द होनेलगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार जगत् का नाश करनेवाले द्विविद वानर का वध करके जनों से स्तुति करेहुए वह भगवान् बलरामजी, अपनी द्वारकानगरी में को चलेगये ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अढ़सठवें अध्याय में कौरवों ने युद्ध में कृष्णपुत्र साम्ब को घेरलिया तब उस को छुटाने के लिये बलरामजी ने, हस्तिनापुर का आकर्षण करा यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ बलरामजी का दूसरा चरित्र वर्णन करने के निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! शत्रुओं को जीतनेवाले जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने, स्वयम्बर में दुर्योधन की लक्ष्मणा नामवाली कन्या का हरण करा ॥ १ ॥ तब भीष्म आदि कौरव क्रोध में भरकर कहनेलगे कि—वह बालक साम्ब उद्धत है, जिसने हमें तुच्छ समझकर इच्छा न करनेवाली कन्या का बलात्कार से हरण करा है ॥ २ ॥ इसकारण इस उद्धत साम्ब को बाँधलें, उग्रसेन आदि यादव हमारा क्या करेंगे? यदि वह क्रोध भी करें तो हमारा कुछ नहीं करसक्ते, क्योंकि जो हमारे पराक्रम से बढ़ेहुए और हमारी दीहुई सम्पत्ति को भोगते हैं वह कोई राजे नहीं हैं ॥ ३ ॥ अब, यदि कदाचित्, हम ने साम्ब को बाँधरक्खा है यह सुनकर वह यादव युद्ध करने को यहाँ आवेंगे तो घमण्ड नष्ट होने पर, प्राणायाम आदि करके वश में करीहुई इन्द्रियों की समान शान्त होजायँगे ॥ ४ ॥ ऐसा निश्चय करके कर्ण, शल, भूरि, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह भीष्मजी के सम्मति देने पर उन भीष्मजी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ गृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः॥६॥तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽप-विद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ॥ नामृष्यत्तदचिंत्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन् षड्रथा-न्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तं तु ते विरथं च-क्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्र-त्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सांत्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान्

छहोंजने साम्ब को बाँधने के निमित्त उद्यत हुए ॥५॥ तब उस महारथी साम्ब ने, अपने पीछे दौड़नेवाले उन धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदिकों को देखा और, सुन्दर धनुष लेकर वह सिंह की समान इकला ही खड़ारहा ॥ ६ ॥ अब जिन में कर्ण मुख्य है ऐसे, क्रुद्ध हुए और उस को पकडने की इच्छा करनेवाले, तथा उस से 'खडा रह, खडा रह' ऐसा कहनेवाले वह धनुषधारी छहों वीर, उस के समीप आये और उन्होंने बाणों से उस को छादिया ॥ ७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! कौरवों ने चारोंओर से जिस के ऊपर प्रहार करे हैं परन्तु अचिन्त्यपराक्रमी भगवान् के पुत्र साम्ब ने, वह उन का ताडन, जैसे तुच्छ मृगों से ताड़ना कराहुआ सिंह उस ताडना को सहन नहीं करता है तैसे सहन नहीं करा ॥ ८ ॥ किन्तु उस वीर ने सुन्दर धनुष का टंकारशब्द करके उन सब कर्ण आदि छहों रथियों को एक साथ निराले निराले छः छः बाण मारकर प्रत्येक को वेधडाला ॥ ९ ॥ वह छः २ बाण इसप्रकार मारे कि—प्रत्येक रथी के चार २ घोडों को चार २ बाणों से, एक २ सारथिको एक २ बाण से, और एक २ रथी को एक २ बाण से वेधा तब बडेभारी धनुषधारी भी कर्ण आदिकों ने साम्ब के उस कर्म की प्रशंसा करी ॥ १० ॥ उन कर्ण आदिकों ने तो सब ने ही मिलकर तिस इकले साम्ब को रथहीन करा, वह इसप्रकार कि—चार ने चार घोडे मारे, एक ने सारथि को मारा और छठे ने धनुष तोडा ॥ ११ ॥ इसप्रकार युद्ध में उस साम्ब को अतिकठिनता से रथहीन करके और बाँधकर जय को प्राप्तहुए वह कौरव, तिस कुमार को और अपने दुर्योधन की कन्या को लेकर हस्तिनापुर में चलेगये ॥ १२ ॥ इधर द्वारका में नारदजी के वाक्य से वह साम्ब का बन्धनरूप वृत्तान्त सुनकर बडे क्रोध में भरेहुए और राजा उग्रसेन के आज्ञा करेहुए यादवों ने, कौरवों के साथ युद्ध करने का उद्योग करा ॥ १३ ॥ तब कौरवों में और यादवों में कलह न होय ऐसी इच्छा करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्णिपुंगवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभियेयुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥ तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २१ ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्वः आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥

और कलह के मल को दूर करनेवाले बलरामजी ने, युद्ध करने के निमित्त जाने को उद्यत हुए तिन वीर यादवों को समझाकर, शुक्र आदि ग्रहों से युक्त चन्द्रमा की समान ब्राह्मण और कुलवृद्ध मंत्रियोंसहित वह बलरामजी, सूर्य की समान दमकतेहुए रथ में बैठकर हस्तिनापुर को गये ॥ १४ ॥ १५ ॥ और शत्रु के नगर में प्रवेश न करे, इस नीति के अनुसार हस्तिनापुर के समीप जाकर बाहर के बगीचे में ठहरगये और उन्होंने कौरवों का अभिप्राय जानने की इच्छा से धृतराष्ट्र के पास उद्धवजी को भेजा ॥ १६ ॥ तब उन उद्धवजी ने, सभा में जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म,द्रोण, बाह्लिक और दुर्योधन को यथाविधि प्रणाम करके कहा कि—तुम्हारे बगीचे में बलरामजी आयेहुए हैं ॥ १७ ॥ उससमय, परममित्र बलरामजी आये हैं यह सुनकर आनन्द को प्राप्तहुए उन भीष्म आदिकों ने, पहिले उन उद्धवजीका अर्घ्य पाद्य आदि से पूजन सत्कार करके फिर हाथ में मंगलकारक भेट (नजराना) लेकर वह सब ही बलरामजी के समीप गए ॥ १८ ॥ तदनन्तर अपनी अवस्था और सम्बन्ध आदि योग्यता के अनुसार तिन बलरामजी से मिल भेंटकर उन को गौ और पूजन की सामग्री अर्पण करी, उन में जो उन के बल का प्रभाव जाननेवाले थे उन्होंने बलरामजी को मस्तक से नमस्कार करा ॥ १९ ॥ तदनन्तर बलरामजी ने और उन्होंने परस्पर कुशल मङ्गल बूझा और सब बान्धव आनन्द हैं ऐसा सुनने के अनन्तर बलरामजी ने दीनतारहित होकर ऐसा भाषण करा कि—॥ २० ॥ सब राजाओं के स्वामी और समर्थ उग्रसेन राजा ने, तुम को जो आज्ञा करी है सो तुम एकाग्रचित्त होकर मुझ से सुनकर शीघ्र ही उस के अनुसार वर्त्ताव करो ॥ २१ ॥ जो तुम बहुतसों ने मिलकर, धर्मयुद्ध करनेवाले इकले साम्ब को, अधर्म से जीतकर बाँध लिया है सो वह तुम्हारा अपराध मैंने, हम—तुम बान्धवों में एकता रहे इस इच्छा से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥ चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पांडुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया॥२६॥ अलं यदूनां नरदेवलांछनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतं ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा बत।२७।कथमिंद्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः॥ अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥ श्रीशुक उवाच॥ जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरवर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥

सहलिया है किन्तु अब शीघ्र ही उस साम्ब को लाकर समर्पण करो ॥२२॥ इसप्रकार पराक्रम उत्साह और शरीर की सामर्थ्य से उच्छृंखल और अपनी ईश्वरीय शक्ति के योग्य बलरामजी का भाषण सुनकर, उस भाषण से अत्यन्त क्रोध में भरेहुए कौरव कहने लगे कि–॥ २३ ॥ अहो! जिस को दूर करना कठिन है ऐसी कालगति से यह कैसा बडा आश्चर्य हुआ है कि–इससमय चर्मपादुका (जूती) किरीट करके सेवन करेहुए मस्तक पर चढने की इच्छा करती है अर्थात् चर्मपादुका की समान यह यादव, किरीट से शोभायमान मस्तक की समान जो हम तिन को आज्ञा करते हैं यह बडे आश्चर्य की बात है! ॥ २४ ॥ यह यादव, कुन्ती का विवाह होने के समय से हम से मिले हैं, इसकारण हमने इन को, साथ सोना, बैठना, भोजन करना आदि से अपनी समानता को पहुँचादिया है और हमने ही इन को राजसिंहासन दिया है ॥२५॥ चँवर, मोरछल, शंख, स्वेतछत्र, किरीट, सिंहासन और शय्या को हमारी उपेक्षा से ही भोगते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु जैसे सर्प की रक्षा करने के निमित्त पिलायाहुआ दूध, पिलानेवाले को ही दुःखदायक होता है तैसे ही, देनेवाले के ही प्रतिकूल हुए इन यादवों के राजचिन्ह बस अब पूरे होलिये, अब आगे को वह चिन्ह छीनलेने चाहियें; क्योंकि–जो यादव हमारी प्रसन्नता से बढे हैं वही अब निर्लज्जता से हम को स्पष्ट आज्ञा करते हैं, यह कैसा आश्चर्य है! ॥ २७ ॥ जैसे सिंह की स्वीकार करीहुई वस्तु, उस के दियेविना मेंढे को नहीं मिल सक्ती तैसे ही, भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदिकों की न दीहुई वस्तु को इन्द्र भी क्या बलात्कार से (जबरदस्ती) ले सकेगा? ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे भरतकुलश्रेष्ठ! श्रेष्ठकुल में हुआ जन्म, बान्धव और सम्पदा से जिन को अत्यन्त मद हुआ है ऐसे उन असभ्य कौरवों ने, इसप्रकार बलरामजी को कठोर भाषण सुनाकर, हस्तिनापुर में प्रवेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चोच्यतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शांतिं नेच्छंत्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सांत्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ ते इमे मंदमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किलैवंभुर्भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्मा क्रम्यते येन पारिजातोमरांघ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं सोक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ३६॥ यस्यांघ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥

करा ॥ २९ ॥ कौरवों की दुष्टता देखकर और अवाच्य कथन सुनकर कोप से खलबलाकर भयङ्करस्वरूप हुए वह बलरामजी वारम्वार हँसतेहुए कहनेलगे कि-॥ ३० ॥ धन, कुटुम्ब, भूमि आदि मदों से उच्छृंखल हुए जो दुर्जन हैं वह शान्ति की इच्छा नहीं करते हैं, जैसे गधे-बैल आदि पशुओं को दण्ड ही ढँग पर लाता तैसे ही दुष्ट कौरवों को दण्ड ही शान्त करेगा, शान्ति से कार्य नहीं होसक्ता ॥ ३१ ॥ अहो! अति क्रोध में भरेहुए यादवों को और श्रीकृष्णजी को धीरे २ समझाकर, इन को समझाने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३२ ॥ सो मन्दबुद्धि, वृथा अभिमान करनेवाले, दुर्जन, दुष्ट और कलह करने में तत्पर इन कौरवों ने, तिस उपकार करनेवाले भी मेरा तिरस्कार करके वारम्वार दुर्वचन कहे ॥ ३३ ॥ इन्द्रादिक लोकपाल भी जिनकी आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करते हैं, वह भोज, वृष्णि और अन्धकों के स्वामी राजा उग्रसेन, क्या केवल भूमिपर के भी राजाओं को आज्ञा करने में समर्थ नहीं हैं?॥ ३४॥ जिनसे सुधर्मानामक देवसभा पैरों से कुचली जातीहै, जिनसे, देवताओं का कल्पवृक्ष(पारिजातक) लाकरउपभोग किया जाता है वह श्रीकृष्णजी भी मनुष्य राजाओं के सिंहासन के योग्य नहीं हैं क्या?॥ ३५॥ सकल सम्पदा देनेवाली लक्ष्मी, प्रत्यक्ष जिन के दोनों चरणों की उपासना करती है वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी, राजाओं के छत्र चँवर आदि चिन्हों के योग्य नहीं हैं क्या? ॥ ३६॥ सबकी सेवन करीहुई गङ्गा को भी तीर्थपना मिलने के कारण ऐसे जिन के चरणकमल के रज को, सब लोकपालों ने अपने किरीटयुक्त मस्तकपर धारण करा है तथा ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और मैं (शेष) जिन के अंश के अंश से उत्पन्न होकर, जिन के चरणकमल के रज को मस्तक पर चिरकाल से धारण करते हैं ऐसे श्रीकृष्णजी को सिंहासन का अधिकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ३७ ॥ भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखंडं तृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनां ॥ असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥ लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गंगायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसम्भ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुंबा जिजीविषवः। सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्रांजलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षंतुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव भूधरेदमनंत लीलया भूमण्डलं बिभर्षि

नहीं है क्या? ॥ ३७ ॥ कौरवों का दियाहुआ टुकड़ा यादव भोगते हैं क्या? हम चर्मपादुका हैं क्या? और यह कौरव स्वयं मस्तक हैं क्या? ॥ ३८ ॥ अहो! मद्य आदि से मत्तहुए की समान ऐश्वर्य से मत्तहुए अभिमानी पुरुषों की कठोर और असङ्गत वाणी को, उन को शिक्षा देनेवाला कौन पुरुष सहेगा? ॥ ३९ ॥ इस से आज पृथ्वी को कौरवहीन करदूँगा, ऐसा निश्चय करके मानो त्रिलोकी को जलाए ही देते हैं ऐसे अतिक्रोध में भरेहुए वह बलरामजी, हाथ में हल लेकर खड़ेहुए ॥ ४० ॥ और क्रुद्धहुए तिनबलरामजी ने, हस्तिनापुर को उखाड़कर गङ्गा में उलटदेने के निमित्त, उस को दाहिनी ओर से तट के नीचे लगाए हुए हल के अग्रभाग से खेंचा ॥ ४१ ॥ तब खैचने के कारण जल में के डोंगे की समान डगमगानेवाले और गङ्गा में को गिरतेहुए उस हस्तिनापुर को देखकर जिन को घबड़ाहट हुई है ऐसे बचने की इच्छा करनेवाले वह कौरव, लक्ष्मणा सहित साम्ब को आगे करके, कुटुम्ब के साथ हाथ जोडेहुए तिनही प्रभु बलरामजी की शरण गये ॥४२॥४३॥ और स्तुति करनेलगे कि—हे राम! हे राम! हे जगत् के आधार! हम तुम्हारी सामर्थ्य को नहीं जानते हैं इसकारण अज्ञान से मोहित होने से कुबुद्धि हुए जो हम तिन के अपराधों की क्षमा करने को तुम समर्थ हो ॥ ४४ ॥ हे ईश्वर! तुम वास्तव में आश्रयरहित हो, और इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के एक ही कारण हो, इसकारण यह सब लोक, क्रीडा करनेवाले तुम्हारे खेल की सामग्री हैं ऐसा ऋषि वर्णन करते हैं ॥ ४५ ॥ हे सहस्र मस्तकवाले अनन्त! तुम ही इस भूमण्डल को अनायास में मस्तक पर धारण करते हो और प्रलयकाल के समय अपने स्वरूप में सकल जगत् का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहस्रमूर्धन् ॥ अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः शेषेद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥ कोपस्ते खिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्ते-स्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः परिवर्हं कुञ्जरान् षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्मीणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्येसभायां कुरुषु स्वचेष्टितं ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचय-

उपसंहार (समाप्ति ; करके शेषशय्यापर शयन करनेवाले अथवा शेष रहनेवाले जो अद्वितीय नारायण सो तुमही हो ॥ ४६ ॥ अब, हमारे ऊपर कोप करना आप को योग्य नहीं हैं ऐसा वर्णन करते हैं कि—हे भगवन् ! सत्त्वगुण धारण करनेवाले तुम्हारा, सकल जगत् का पालन करने में तत्पर यह कोप, कुमार्ग से चलनेवाले सकल प्राणियों को शिक्षा देने के निमित्त है, द्वेष से वा डाह से नहीं है ॥ ४७ ॥ हे सर्वभूतात्मरूप ! हे सर्वशक्तिधर ! हे अविनाशिन् ! तुम्हें नमस्कार हो; यह जगत् जिनकी रचना है ऐसे हे विश्वकर्मन् ! तुम्हें नमस्कार हो, हम तुम्हारी शरण आये हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार जिनका नगर काँपरहा है ऐसे अत्यन्त भयभीत होकर शरण में आयेहुए तिन कौरवों के प्रार्थना करनेपर अतिप्रसन्न हुए तिन बलरामजी ने, भय न मानो ऐसा कहकर अभयवचन दिया ॥ ४९ ॥ तब कन्या के ऊपर प्रेम करनेवाले दुर्योधन ने, तिस लक्ष्मणा के साथ साम्ब को साठवर्ष की अवस्था के बारह सौ हाथी, एकलाख बीस सहस्र घोडे, सुवर्ण से मंढेहुए सूर्य की समान चमकते हुए तेज के समूहरूप छः सहस्र रथ और जिन के कण्ठों में मोहरें पडी हैं ऐसी सहस्र दासियें दहेज में दीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ वह दुर्योधन का दियाहुआ सब दहेज लेकर यादवों में श्रेष्ठ भगवान् बलरामजी, साम्ब पुत्रसहित और पुत्रवधू लक्ष्मणा को साथ में लेकर, यादवों से सत्कार को पायेहुए होकर द्वारका नगरी को चलेगये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर वह बलरामजी, अपने नगर में जाकर, जिन का चित्त प्रेमयुक्त है ऐसे बान्धवों (यादवों) से मिले और उन्होंने श्रेष्ठ यादवों की सभा में जाकर, कुरुदेशों में जो अपना (नगर को उखाडकर उलटना आदि) चरित हुआ था सो सब कहा ॥ ५३ ॥ अब भी यह हस्तिनापुर, बलरामजी के पराक्रम को सूचित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रामविक्रमम् ॥ संमुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदेश्यते ॥ ५४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे हास्तिनपुरकर्षणसंकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषितां ॥ कृष्णेनैकेन बहूनां तद्दिदृक्षुः स नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रियं एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादितां ॥ ३ ॥ प्रफुल्लेंदीवरांभोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ लुरितेषु सरःस्वच्छैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलीं पतत्पताकाध्वजवा-

करताहुआ, दक्षिण की ओर को ऊँचा और गंगा की ओर को झुकाहुआ देखने में आरहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भा० दश० स्कन्ध उत्तरार्द्ध में अष्टषष्टितम अध्या० समाप्त ॥ * ॥ अब आगे उनहत्तरवें अध्याय में, नारदजी ने प्रत्येक मन्दिर में होताहुआ श्रीकृष्णजी का गृहस्थधर्म देखा और उन की स्तुति करके चलेगये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! श्रीकृष्णजी ने नरकासुर को मारा और उन इकले ही श्रीकृष्णजी के साथ बहुतसी स्त्रियों का विवाह हुआ, यह समाचार सुनकर नारदजी ने, श्रीकृष्णजी का उन स्त्रियों के साथ गृहस्थाश्रम का धर्म कैसा चलरहा है यह जानने की इच्छा करी ॥ १ ॥ जो एक भगवान् एक स्वरूप से अवतीर्ण हुए, उन्हों ने एक ही काल में पृथक् २ मन्दिरों में सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियों से विवाह कर लिया यह बड़े आश्चर्य की बात है, सो देखना चाहिये ॥ २ ॥ ऐसे उत्साह से युक्त वह नारदजी, उन श्रीकृष्णजी को देखने के निमित्त द्वारका में आपहुँचे; वह द्वारका—खिलेहुए आरामबागों में और दूसरे भी बगीचों में के पक्षियों के समूहों के शब्दों से गुञ्जार रही थी ॥ ३ ॥ खिलेहुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद और उत्पल नामवाले कमलों से भरेहुए सरोवरों में हंस और सारसपक्षियों से शब्दायमान करी जारही थी ॥ ४ ॥ सवर्ण के और रत्नों के जिस में पात्र भाण्ड आदि हैं ऐसे बहुमूल्य मरकतमणियों से प्रकाशित होनेवाले स्फटिक के और चांदी के बड़े २ नौ लाख राजमन्दिरों से युक्त थी ॥ ५ ॥ भिन्न २ गलियें, राजमार्ग (सड़कें), चौहट्टे, बाजार, भोजनस्थान, सभास्थान और देवमन्दिरों से सुन्दर थी; छिड़केहुए मार्ग, चौहट्टे, गलियें और देहलों से युक्त थी तथा फहराती हुई पताकाओं से और ध्वजाओं से जिस में धूप दूर करीगई है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रितातपां ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितं ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ॥ इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषैः सुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ॥ नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यातमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥ १२ ॥ तस्मिन् समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विभो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥ तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलध-

ऐसी थी ॥ ६ ॥ उस द्वारका में, जहाँ विश्वकर्मा ने, पूर्णरीति से अपनी चतुराई दिखाई है और जो इन्द्रादि सब लोकपालों से पूजित हैं ऐसे सोलह सहस्र एक सौ आठ मन्दिरों से शोभायमान और भोग की सामग्रियों की सम्पदा से युक्त है ऐसे श्रीहरि के रणवास में जाकर, तहाँ श्रीकृष्णजी की स्त्रियोंके घरोंमें से एक बडे (रुक्मिणी के) घर में गये ॥७॥ ॥ ८ ॥ उस घरका वर्णन करते हैं कि—वह घर मूँगोंके खम्भों से और वैदूर्यमणियों की बड़ी २ चौखटों से बनाहुआ था, इन्द्रनीलमणि की भीतों से और जिन की कांति सूर्यादि की कान्ति से भी कम नहीं होती है ऐसी इन्द्रनील मणि की ही भूमि से शोभायमान था ॥ ९ ॥ विश्वकर्मा की रचीहुई और मोतियों की लडों की झालरें जिन में लटक रही हैं ऐसी कपडछत्तों से शोभायमान था; उत्तम मणियों से भूषित हाथीदाँत की चौकियों से और शय्याओं से शोभायमान था ॥ १० ॥ कण्ठों में कण्ठे पहिरे और उत्तम वस्त्र धारण करनेवाली दासियों से तथा सुन्दर अंगरखे, शिर में बाँधने के वस्त्र और मणिजडे कुण्डलों को धारण करनेवाले सेवकों से शोभायमान था ॥ ११ ॥ रत्नों के दीपकों के समूहों की कान्तियों से जिस में का अन्धकार नष्ट होगया है और जहाँ छज्जों के अग्रभागों पर बैठेहुए मोरपक्षी, झरोखों में को बाहर निकलनेवाले, भीतर के अगर के धुएं को, यह मेघ की श्यामघटा है क्या ? ऐसी बुद्धि से शब्द करतेहुए नृत्य कररहे थे ॥ १२ ॥ उन घरों में सब समय, अपनी समान ही जिनके गुण, रूप, अवस्था और आभूषण हैं ऐसी सहस्र दासियों से युक्त और सुवर्ण की दण्डी की चौंरी हाथ में लेकर उस से स्वयं वायु करनेवाली रुक्मिणी सहित विद्यमान यादवपति श्रीकृष्णजी को नारदजी ने देखा ॥ १३ ॥ उन नारदजी को देखकर सकलधर्म के पालन करनेवालों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन सांजलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थं ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम किं ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ नैवाऽद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ गौरी जनेषु सकलेषु दमः खलानां ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥ दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चरांम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात्॥१८॥ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः

श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजी ने, रुक्मिणी के पलँग पर से शीघ्रता के साथ उठकर, किरीट से सेवित (युक्त) अपने मस्तक से उन के दोनो चरणों को नमस्कार करके हाथ जोडकर उन को अपने आसन पर बैठाया ॥ १४ ॥ जिनके चरण को धोने का गंगारूपजल, सकल जगत् को पवित्र करनेवाला है वह भगवान् स्वयं ब्रह्मादिकों में श्रेष्ठ होकर भी धर्माचरण करनेवाले पुरुषों के पालक होने के कारण उन्होंने सबों को शिक्षा देने के निमित्त उन नारदजी के चरणों को धोकर वह जल मस्तक पर धारण करा, इसकारण ही ब्राह्मणों के हितकारी देव ऐसा गुण के अनुसार नाम उनको प्राप्तहुआ है ॥ १५ ॥ इसप्रकार नर के सखा जो पुरातन ऋषि नारायण उन्होंने शास्त्र में कहीहुई विधि के अनुसार देवता और ऋषियों में श्रेष्ठ नारदजी का पूजन करके और अमृत की समान मधुरी तथा मितवाणी से सत्कार करके, हे प्रभोनारदजी! निजानन्द से परिपूर्णतुम्हारी हम क्या शुश्रूषा करें? ॥ १६ ॥ इसप्रकार कहने पर नारदजी बोले कि—हे सकलकोक नाथ! हे वेद में गान करेहुए! सकल साधु पुरुषों में मित्रभाव करना और दूसरों को पीड़ा देनेवाले दुष्टों को दण्ड देना यह तुम्हारे में कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि—जगत् की रक्षा और धारण के द्वारा सबों को धर्मआदि चार प्रकार के पुरुषार्थों की सिद्धि होने के निमित्त तुम्हारा यह अपनी इच्छा के अनुसार अवतार है ऐसाहम भलीप्रकार जानते हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभो! संसाररूप कूप में पड़ेहुए पुरुषों को, उस में से बाहर निकलने के निमित्त आश्रय करनेयोग्य, अज्ञाधज्ञानी ब्रह्मादिकों ने भी केवल जिन का हृदय में चिन्तवनही करा है ऐसे सब लोकों को मोक्षफल देनेवाले दोनों चरण मैंने देखे, सो यद्यपि इन के दर्शन से ही मैं कृतार्थ होगया हूँ तथापि जिसप्रकार मुझे निरन्तर उन चरणों की स्मृति रहे तैसा मेरेऊपर अनुग्रह करो जिस से कि—उनका ही ध्यान करताहुआ मैं विचरूँ ॥ १८ ॥ श्रीशुकदे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स नारदः योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यद्गृहं गतः ॥ २२ ॥ तत्राप्याचष्ट गोविंदं लालयंतं सुतान् शिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ ॥ २३ ॥ जुह्वतं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ॥ भोजयन्तं द्विजान् क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ॥ क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च वंदिभिः ॥ २६ ॥ मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वा-

वजी ने कहाकि—हे राजन्! तदनन्तर उस घरमें से निकलकर नारदजी, योगेश्वरों के भी ईश्वर तिन श्रीकृष्णजी की अचिन्त्यशक्ति को देखने की इच्छा से, दूसरी एक श्रीकृष्ण जीकी स्त्री के घर में चलेगये ॥ १९ ॥ उस घर में भी प्रिया के साथ और उद्धवजी के साथ श्रीकृष्णजी को फांसों से खेलते हुए देखा तहाँभी श्रीकृष्णजी ने उठकर सन्मुखजाना आसन देना इत्यादि करके उन नारदजी की परम भक्ति के साथ पूजाकारी ॥२०॥ और अनजान की समान उन से वूझा कि—आप द्वारका में कब आये? धन-पुत्र आदिकों में आसक्त रहनेवाले हमसमानो के हाथ से पूर्ण मनोरथ आपका कौनसा कार्य होसक्ता है? ॥ २१॥ तथापि हे ब्रह्मन्! कुछ तो कार्य हम से कहकर हमारे इस जन्म को सफल करो, ऐसी हमारी प्रार्थना है,तब नारदजी ने अचम्भे में होकर कुछ उत्तर न दिया और उठकर दूसरे घर में को चलेगये२२।तहाँ भी उन्हों ने छोटे२बालकों को लाडकरतेहुए श्रीकृष्णजी को देखा।२३। तिससे भी दूसरे घर में स्नान करने को उद्यत हुए श्रीकृष्णजी को देखा और दूसरे घर में आहवनीय अग्नि के विषैं हवन करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा, कहीं पंचयज्ञों से देवादिकों का आराधन करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा, कहीं ब्राह्मणों को भोजन करातेहुए और कहीं ब्राह्मणों के भोजन करलेने पर शेष रहे अन्न को भोजन करतेहुए ॥ २४ ॥ कहीं सन्ध्या करने को बैठेहुए. कहीं मौनव्रत धारण करके गायत्रीमंत्र को जपतेहुए,और कहीं हाथ में ढाल-तलवार लेकर तलवार चलाने के प्रकार दिखातेहुए ॥ २५ ॥ कहीं घोडोंपर, हाथियों पर और रथों में बैठकर जानेवालें, कहीं पलँग पर सोयेहुए और सूत-मागधों से स्तुति करेहुए श्रीकृष्णजी को देखा ॥ २६ ॥ कहीं उद्धव आदि मंत्रियों के साथ प्रजाओं के कल्याण की सम्मति करनेवाले, कहीं मुख्य २ श्रेष्ठ स्त्रियों से घिरकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रमुख्यांबलाद्वृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ॥ इतिहासपुराणानि शृण्वंतं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायंतमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परं ॥ शुश्रूषंतं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया॥ ॥ ३० ॥ कुर्वंतं विग्रहं केश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि संहरामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विदूयुपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपायनयैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोकाः विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजंतं सकलान्देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयंतं क्वचिद्धर्मं कूपारामसमठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरंतं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैंधवम् ॥ घ्नंतं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुंगवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु ॥ क्वचिच्च-

जलक्रीडा करने में तत्परहुए और कहीं मुख्य ब्राह्मणों को भूषित गौएँ दान करनेवाले और कहीं मंगलकारी इतिहास पुराणों को सुननेवाले श्रीकृष्णजी को देखा ॥ २७ ॥ २८ ॥ किसी घर में अपनी स्त्री के साथ हँसी की वार्त्ताओं से हास्य करनेवाले, कहीं धर्म का सेवन करनेवाले और कहीं अर्थ तथा काम का सेवन करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा ॥ २९ ॥ कहीं एकान्त में बैठकर, प्रकृति से पर पुरुषोत्तम एक आत्मा का ध्यान करनेवाले, कहीं पूजन की सामग्री और वस्त्रभूषणादि विषयभोग समर्पण करके अपने गुरुओं की सेवा करनेवाले, कहीं किन्ही के साथ कलह करनेवाले और दूसरे स्थान में किन्ही के साथ सन्धि (मेल) करनेवाले और कहीं बलरामजी के साथ साधुओं के कल्याण की सम्मति करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कहीं समय २ पर पुत्रों का उन के योग्य स्त्रियों के साथ और कन्याओं का उन के योग्य वरोंके साथ शास्त्रोक्त रीति से विवाह करने को ठहरानेवाले, और विवाह होनेपर ऐश्वर्य आदि देकर सम्पन्न करनेवाले, कहीं कन्याओं को सुसराल मे भेजना और जामाताओं को घर बुलाना यह करनेवाले और कहीं बालकों के जात कर्म आदि संस्कार का परम उत्सव करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा; योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी के जिन बालकों के महोत्सवों को देखकर सबही लोक विस्मय को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कहीं अपने ही अंश जो देवता तिनका बहुत दक्षिणावाले यज्ञों से आराधन करनेवाले, कहीं कुए बनवाना, आरामबाग लगवाना और मठ आदि बनवाना इत्यादि से पूर्त्तनामवाले स्मार्त्तधर्म का आचरण करनेवाले, कहीं श्रेष्ठ २ यादवों के साथ सिन्धुदेश के घोडों पर सवार होकर मृगया करनेवाले और उस मृगया में श्राद्ध आदि के योग्य पशुओं का वध करनेवाले श्रीकृष्णजी को देखा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिं ॥ ३७ ॥ विदामं योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनां ॥ योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायन् लीला भुवनपावनीः ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान् गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयं ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुव-

कहीं मंत्रियों का और रणवास में रहनेवाले तिन २ पुरुषों का अभिप्राय जानने की इच्छा से दूसरे वेष से अपने चिन्हों को ढककर विचरनेवाले तिन योगेश्वर श्रीकृष्णजी को देखा ॥ ३६ ॥ इसप्रकार मनुष्यों की आकृति ग्रहण करनेवाले भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के ऐश्वर्य को देखकर वह नारदजी हँसतेहुए उन श्रीकृष्णजी से कहनेलगे कि- ॥ ३७ ॥ हे योगेश्वर! हे आत्मस्वरूप ! तुम्हारी योगमाया को प्रत्यक्षरूप से देखना माया करनेवाले ब्रह्मादिकों को भी कठिन है, यह ठीक है परन्तु तुम्हारे चरणों की सेवा के प्रभाव से, तुम्हारे स्वरूप में ही स्फुरित होती है यह हम जानते हैं तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को हम कुछ नहीं समझते हैं॥३८॥हे देव! ब्रह्माण्ड को पवित्र करनेवाली तुम्हारी लीलाओं का गान करताहुआ तुम्हारे यशसे व्याप्तहुए लोकों में मैं जैसे विचरूँ तैसे तुम मुझ को आज्ञा दो॥३९॥ ऐसा नारदजी का भाषण सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि- हे नारदऋषे! मैं शास्त्र के द्वारा धर्म का उपदेश करनेवाला, स्वयं उस का आचरण करनेवाला और दूसरे को सम्मति देनेवाला हूँ, इस से लोकों को शिक्षा मिलने के निमित्त ही मैं यह धर्म का आचरण करता हूँ, सो हे पुत्र नारद! मेरा उलटा भगवान् ने चरण धोना आदि करा ऐसा मन में लाकर खेद न कर ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इसप्रकार अनुग्रह करेहुए वह नारदजी, गृहस्थाश्रमियों को पवित्र करनेवाले और श्रेष्ठ धर्म का आचरण करके दिखानेवाले तिन श्रीकृष्णजी को यह सब घर में एक ही हैं ऐसा देखनेलगे ॥ ४१ ॥ और उससमय अनन्तपराक्रमी श्रीकृष्णजी की अचिन्त्य शक्ति के बल का प्रभाव वारम्वार देखकर वह नारद ऋषि, कौतुकयुक्त और विस्मय में हुए ॥ ४२ ॥ इसप्रकार धर्म, अर्थ और काम में जिन का चित्त श्रद्धावान् है ऐसे श्रीकृष्णजीके उत्तम सत्कार करने के कारण सन्तुष्ट हुए वह नारदजी, तिन श्रीकृष्णजी का ही वारंवार स्मरण करतेहुए चलेगए ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मनुष्य की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ योनीह विश्वविलयोद्भवहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नाम एकोनसप्ततितमोध्यायः ॥ ६९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥ गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्मा धन्यो विरहातुराः ॥ १ ॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीव वंदिनः॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाहन्तरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मं मुहूर्त

रीति से वर्त्ताव करनेवाले और सकल प्राणीमात्र की उन्नति के निमित्त नानाप्रकार की शक्ति ग्रहण करनेवाले वह नारायण श्रीकृष्णजी, सोलह सहस्र एक सौ आठ सुन्दर स्त्रियों के लज्जायुक्त प्रेम के साथ अवलोकन से और हास्य से सेवित होतेहुए उन के साथ रमण करनेवाले हुए ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण भगवान् श्रीहरि ने, इस श्रीकृष्ण अवतार में, जिन को और पुरुष न करसकें ऐसे कर्म करे हैं, उन को जो पुरुष गाता है, सुनता है वा दूसरों के गानेपर उन की प्रशंसा करता है तिस पुरुष को, मोक्ष देनेवाले तिन भगवान् के विषैं भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकोनसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस सत्तरवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी के आन्हिक (प्रतिदिन के) कर्मों का क्रम से वर्णन होकर, राजदूत के और नारदजी के सूचित करेहुए कार्य को सिद्ध करने के निमित्त श्रीकृष्णजी ने विचार करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन्! अब श्रीकृष्णजी के आन्हिक कर्म की रीति कहते हैं सुनो— प्रातःकाल समीप आने पर, अनेकों कृष्णमूर्त्तियों से कण्ठ में आलिङ्गन करीहुई श्रीकृष्णजी की स्त्रियें, आगे होनेवाले कृष्ण के विरह से दुःखित होतीहुई, प्रभातकाल को जतानेवाले शब्द को सुनकर, सोयेहुए श्रीकृष्णजी को जगानेवाले कुक्कुटों (मुरगों) को 'तुम शीघ्र ही मर क्यों न जाओ ऐसा शाप देनेलगीं ॥ १ ॥ उस समय मन्दारवन के पवनो से पुष्पों का रस ग्रहण करने में आसक्तहुए भौंरे, गुञ्जारशब्द करनेलगे तब जगेहुए पक्षी, स्तुति पढनेवालों की समान, सोयेहुए श्रीकृष्णजी को जगातेहुए अत्यन्त शब्द करनेलगे ॥ २ ॥ उस समय प्रिय श्रीकृष्णजी की भुजाओं में विद्यमान (श्रीकृष्णजी की आलिङ्गन करीहुई) रुक्मिणी आदि सब स्त्रियों ने, आलिङ्गन का वियोग होने के कारण स्नानपूजनादि के योग्य अतिपवित्र भी तिस ब्राह्ममुहूर्त्त को अच्छा नहीं माना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः । दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ॥ चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन् वृद्धान् विप्रान्भ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ॥७॥ धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजां ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससां॥८॥ ददौ रूप्यखुराग्राणां सौमाजिनतिलैः सह ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो वद्धं वद्धं दिने दिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मंगलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वाससोभिर्भूषणैः स्वैर्यैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं

॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी ने तो उस ब्राह्ममुहूर्त्त के समय उठकर हाथ-पैर आदि धो, जल का आचमन करके, प्रसन्न इन्द्रियों से युक्त होकर प्रकृति से पर आत्मा का ध्यान करा ॥ ४ ॥ अखण्ड, स्वप्रकाश, निरुपाधिक, नित्य, जिस में निरन्तर अविद्यादि दोष स्वरूपस्थिति से दूरहुए हैं ऐसे और जिस के सत्ता और आनन्द यह धर्म, इस जगत् की उत्पत्ति, नाश के कारण रजःसत्त्वादि गुणरूप शक्तियों से समझने में आते हैं ऐसे ब्रह्मनामक अपने स्वरूप का ध्यान करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजी ने, शुद्ध जल में स्नान करके और वस्त्र पहिनकर सन्ध्योपासन कादि सकल कर्मों को शास्त्र में कहीहुई विधि से करा. तिस में श्रीकृष्णजी की कण्व शाखा होने के कारण उन्होंने, सूर्योदय से पहिले ही अग्नि में हवन करके मौनव्रत से गायत्री के मंत्र का जप करा ॥ ६ ॥ फिर उदयहुए सूर्य का उपस्थान करके, अपने ही अंशरूप देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करके, स्वरूपसाक्षात्कार से युक्त उन्होंने, वृद्धों का और ब्राह्मणों का पूजन करा और जिनको आभूषण अर्पण केर हैं ऐसे उन ब्राह्मणों को, जिनके सींग सुवर्ण से मँढेहुए हैं, जिनके कण्ठों में मोतियों की माला पडीहुई हैं, जिनके ऊपर उत्तम वस्त्रों की झूलें पडीहुई हैं और जिनके खुर चाँदी से मँढेहुए हैं ऐसी बहुतसी दूध देनेवाली, सूधे स्वभाव की, पहलोन ब्याही बछडोंसहित गौएँ एक एक बद्ध १३०८४ प्रतिदिन प्रत्येक घर में रेशमी पाटम्बर, कृष्णमृगछाला और तिलोंसहित दान करीं ॥७॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर उन्होंने अपनी विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सकल प्राणियों को नमस्कार करके कपिला गौ आदि मङ्गलवस्तुओं का स्पर्श करा ॥ १० ॥ फिर मनुष्यलोक के विशेष करके भूषणरूप अपने शरीर को पीताम्बर आदि वस्त्रों से, कौस्तुभ आदि भूषणों से और दिव्य मालाओं से तथा अनुलेपनो से भूषित करा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथादर्श गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामाश्च सर्ववर्णानां पौरांतःपुरचारिणां ॥ प्रा-
दाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥ संविभज्याग्रतो विप्रान्
स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ ता-
वत्सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितो-
ग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसं-
युक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोऽतःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवी-
क्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥ सुधर्मायां
सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यंग षड्
ऊर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोवभा-
सयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्महात्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥

॥ ११ ॥ तदनन्तर मङ्गल के निमित्त घृत में, और दर्पण में अपना मुख देखकर तैसे ही गौ, वृषभ, ब्राह्मण और देवताओं का दर्शन करके नगर में रहनेवाले सब वर्णों को और रणवास में के सब जनों को, इच्छित पदार्थ देकर और मंत्री आदिकों को इच्छित पदार्थों से प्रसन्न करके आनन्द को प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने, पहिले ब्राह्मण, मित्र, मंत्री और स्त्रियों को माला, ताम्बूल और लेपन आदि भोग के पदार्थ बाँटकर फिर उन को भोग करने के निमित्त आप भी स्वीकार करा ॥ १३ ॥ इतने ही में दारुक सारथी ने, सुग्रीव आदि नामवाले घोडों से जुताहुआ परम आश्चर्यकारी रथ समीप लाकर खड़ा करा और आप आगे प्रणाम करके खड़ा होगया तब ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णजी, अपने हाथ से उस के जोड़ेहुए हाथ पकड़कर सात्यकि और उद्धव के साथ उस रथ के ऊपर जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य चढ़ता है तैसे चढे॥१५ ॥ उससमय लज्जा और प्रेमसहित रणवास में की स्त्रियों की दृष्टियों से अवलोकन करे जाते हुए, क्षणभर धीरे २ चलाएहुए रथ में बैठकर फिर उन स्त्रियों के भी अवलोकन के द्वारा बड़े दुःख से जाने की आज्ञा देने पर, कुछ हँसकर उन का मन हरतेहुए चलेगये ॥१६॥ इसप्रकार सब घरों में से भिन्न २ रूप से निकलकर फिर एक ही रूप से, सब यादवों से घिरेहुए होकर उन श्रीकृष्णजी ने सुधर्मानामक देवसभा में प्रवेशकरा हे राजन् ! जिस सभा में प्रवेश करनेवालों को भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढापा और मृत्यु यह छः विकार नहीं होते हैं ॥ १७ ॥ उस सभा में उत्तम आसन पर बैठेहुए मनुष्यों मे श्रेष्ठ, यादवों से घिरेहुए वह प्रभु भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशयुक्त करतेहुए, जैसे आकाश में तारागणों से घिराहुआ चन्द्रमा, सब दिशाओं को प्रकाशयुक्त करताहुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्तांडवैः पृथक् ॥ १९ ॥ मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः ॥२१॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ॥ राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभंजन ॥ वयं त्वां शरणं याम भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीवितांशां सद्यः

शोभायमान होता है तैसे, शोभित हुए ॥ १८ ॥ हे राजन्! उस सभा में आनन्द के साथ हास्यरसयुक्त भाषण करनेवाले पुरुष नानाप्रकार की हास्य की बातों से तिन प्रभु श्रीकृष्णजी को प्रसन्न करनेलगे, तैसे ही नटों के आचार्य (उस्ताद) मृदंग, वीणा, तबले, सारङ्गी, मुरली, झाँज और शंखों के शब्दों के साथ अलग २ अपने २ समूहों से ताण्डव नृत्य के द्वारा तिन भगवान् की सेवा करने लगे; तैसे ही नृत्य और गान करनेवालीं वारांगना, अपने २ समूहों से, मृदंग आदि बाजों के साथ नृत्य और गान करनेलगीं तैसे सूत, मागध और वन्दी भगवान् की स्तुति करनेलगे ॥१९॥२०॥ उस सभामें बैठेहुए कितने ही ब्राह्मण, वेदमंत्रों का व्याख्यान करनेलगे कितने ही बोलने में चतुर पुराणों के वक्ता, पुण्य यशवाले पहिले राजाओं की कथा कहने लगे॥२१॥ इसप्रकार प्रतिदिन व्यवहार चलतेहुए हे राजन्! एकदिन कभीभी किसी का न देखाहुआ एक पुरुष, सभा के द्वारपर आकर प्राप्त हुआ तब, द्वारपालों ने, भगवान् को सूचना देकर उनकी आज्ञा से तिस पुरुष का सभा में प्रवेश कराया ॥२२॥तब उस ने हाथ जोड़कर कालकर्मों के भी नियन्ता श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके, हाथ जोड़ेहुए, जरासन्ध ने कार गार (जेलखाने) में बन्द करलिया तिस से राजाओं को जो दुःख प्राप्तहुआ था सो कहा ॥२३॥ अर्थात् उस जरासन्ध के दिग्विजय के समय जो राजे नम्र नहीं हुए थे उन बीस सहस्र आठ सौ राजाओं को गिरिव्रज नामवाले दुर्ग (किले) में तिस जरासन्ध ने बलात्कार से रोक रक्खा था उनका दुःख निवेदन करा ॥२४॥ कि—हेकृष्ण! हे कृष्ण! हे अप्रमेयस्वरूप! हे शरणागतभयनाशक! जन्ममरणादिरूप संसार से डरे हुए और भेदबुद्धि धारनेवाले हम तुम्हारी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ इस संसार में का यह प्राणी, जबतक काम्य और निषिद्ध कर्मों में अत्यन्त रमकर तुम्हारे कहेहुए तुम्हारे पूजनरूप अपने कल्याणकारी धर्म में सावधान नहीं रहता है तबतक जो कालरूप ब-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवान् जगदिनः कलयाऽवतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किंवा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥ स्वमायितं नृपसुखं परतंत्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव मायया ह ॥ २८ ॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ॥ यो भूभुजोऽयुतमतंगजवीर्यमेको विभ्रद्दुरोधभवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं

लवान् तुम, इस के जीवित रहने की आशा को ही तत्काल तोड़डालते हो, ऐसे निरन्तर सावधान रहनेवाले कालरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ २६ ॥ यह तो लोकों की गति हुई, हम तो तुम्हारे भक्त हैं फिर हमें यह दुःख क्यों भोगनापड़ता है ? यह आश्चर्य प्रतीत होता है, क्योंकि—हे ईश्वर ! अपने भक्तों की रक्षा करने के निमित्त और दुष्टों को दण्ड देने के निमित्त, अपने संकर्षणरूप अंशसहित तुम जगदीश्वर उत्पन्नहुए हो ऐसा होतेहुए,दूसरे कोई एक (जरासन्ध आदि) यदि हमें दुःख देते हैं तो क्या ? 'मेरा भक्त नाश को नहींप्राप्त होता है, मैं भक्तों का योगक्षेम चलाता हूँ इत्यादि' तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करता है अथवा तुम्हारा रक्षा कराहुआ भी हमसमान प्राणी अपने कर्म से ही उत्पन्न हुए अपने दुःख को भोगता है ? सो हम नहीं जानते अर्थात् यह दोनोंही बातें हमें योग्य नहीं प्रतीत होतीं ॥ २७ ॥ हे ईश्वर तुम्हारे अनुग्रह से निष्काम पुरुषों को मिलानेवाले और अपने ही में जो स्वरूपसुख तिस को त्यागकर, हम स्वप्न में के सुखकी समान और स्त्री पुत्रादिकों के वश में होनेवाले राजसुख को पाने की इच्छा करते हैं और उस के निमित्त जहाँ निरन्तर भय है ऐसे प्रेत की समान शरीर से केवल पुत्र स्त्री आदि की चिन्ता कोही धारण करते हैं, इसी प्रकार इस संसार में तुम्हारी माया से अतिदीन (विषयासक्त) होकर क्लेश पाते हैं॥२८॥ इसकारण तुम्हारी माया के करेहुए कर्मबन्धन को तुमही दूर करो,क्योंकि-तुम्हारेचरण,शरणागतों के शोकदूरकरनेवाले हैं इसकारण तुमही जरासन्धरूप कर्मपाश से बँधेहुए हम को उस से छुटाओ यदि कहोकि—तुमही पराक्रम करके तहाँ से छूटजाओ तो हे भगवन्! दश सहस्र मदोन्मत्त हाथियों का बल धारण करने वाले जिस इकले जरासन्ध ने, हम राजाओं को, जैसे सिंह मेंढो को घेरलेता है तैसे घेर रक्खा है इसकारण ही हम प्रयत्न करके उस से नहीं छूटसक्ते हैं॥२९॥हे अजित ! हे चक्र को उठाकर धारण करनेवाले देव ! जो जरासन्ध,अठारह वार तुम्हारे साथ युद्ध हुआ उस में सत्तरह वार युद्ध में तुमने वास्तव में उसका तिरस्कार करा तथापि अठारहवीं वार म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकृद्दृढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रांदुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ संभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिं ॥ ३४ ॥ अपि स्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान् भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ नहि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पांडवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च

नुष्यचेष्टा से लीला करनेवाले अनन्तपराक्रमी तुम भगवान् को एकवार जीतकर घमण्ड में होगया है सो हम तुम्हारे हैं इस सम्बन्ध से हमें बहुत ही दुःख देता है इसकारण उस के विषय में जो योग्य होय सो करिये ॥ ३० ॥ राजाओं के दूतने कहाकि–हे प्रभो! इसप्रकार जरासन्ध के बन्धन में डालेहुए और तुम्हारे दर्शन की इच्छा करनेवाले राजे, तुम्हारे चरणतल की शरण आये हैं इसकारण उन दीनों को सुख होय तैसा उपाय करो ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन्! इसप्रकार राजाओं के दूत के कहतेहुए में, तहाँ सूर्य की समान परमकान्ति से युक्त और पीलेवर्ण की जटा धारण करनेवाले नारद ऋषि अकस्मात् (अचानक) आगये ॥ ३२ ॥ उन को देखते ही, ब्रह्मादिक सब लोकेश्वरों के भी पालक तिन भगवान् श्रीकृष्णजी ने, बड़ी शीघ्रता से सभासदों के साथ और सेवकों के साथ उठकर हर्ष के साथ मस्तक से प्रणाम करा ॥ ३३ ॥ फिर शास्त्रकी रीति के अनुसार उन का पूजन करके आसन को ग्रहण करनेवाले उन नारदजी को, श्रद्धा से और मधुर भाषण से सन्तुष्ट करते हुए कहने लगेकि–॥ ३४ ॥ हे नारदजी! इससमय तीनों लोकों को किसी से भय तो नहीं है? अहो! लोकों में विचरने वाले आप से हम को सब लोकों का वृत्तान्त मिलता है, यह बड़ा ही लाभ है ॥ ३५ ॥ क्योंकि जिन का कर्त्ता ईश्वर है ऐसे तीनों लोकों में तुम्हारा न जानाहुआ कुछ भी नहीं है; इसकारण, इससमय पाण्डवों के मन में क्या है सो तुम से हम बूझते हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सर्वज्ञ के भी अनजान की समान, जरासन्ध के वध के निमित्त पाण्डवोंका अभिप्राय बूझने पर नारदजी, 'यह देवमाया है' ऐसा जानकर कहनेलगे कि–हे प्रभो! सर्वव्यापक! विश्व रचनेवाले जो ब्रह्माजी तिन को भी मोहित करनेवाले, अपनी विद्या आदि शक्तियों से सकल प्राणियों में अन्तर्यामीरूप से रहनेवाले और राख से ढकेहुए अग्निकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मायिनः ॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वन्हेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ॥३७॥ तवेहितं कोऽर्हति सांधु वेदितुं स्वमायया यदसृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवसीयते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्रोज्ज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडंबनम् ॥ राज्ञः पितृष्वस्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥ यक्ष्यति त्वां मखेंद्रेण राजसूयेन पाण्डवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवानुमोदतां ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवंतं वै सुरादयः ॥ दिदृक्षवः समेष्यंति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयंतेऽतेवसायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षोऽभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवि यं-

समान अपनी शक्तियों से ही अपने तेज को ढककर रहनेवाले तुम भगवान् की, जिनका उल्लंघन न होसके और जो जानी न जायँ ऐसी बहुतसी माया मैंने देखी हैं, इसकारण तुम सर्वज्ञ होकर जो मनुष्यलीला से अनजान की समान प्रश्न करते हो, यह मुझे आश्चर्य नहीं प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥ हे देव! मिथ्याभूत यह जगत्, जिन तुम्हारी माया से सब सत्य है ऐसा प्रतीत होता है, ऐसे अपनी इच्छा के अनुसार जगत् को उत्पन्न करनेवाले और संहार करनेवाले तुम्हारे मन में के अभिप्राय को भलीप्रकार से जानने को कौन समर्थ है? अर्थात् कोई समर्थ नहीं है इसकारण अचिन्त्यरूप तुम भगवान् को केवल नमस्कार ही है ॥ ३८ ॥ अज्ञानरूप अन्धकार से घिरने के कारण, दुःखदायक शरीर से संसार पानेवाले और तिस ही अज्ञान करके उस शरीर से मोक्ष का उपाय न जाननेवाले जीव को, श्रवण आदि से मोक्ष प्राप्त होने के निमित्त, जिन तुमने, लीलावतारों से अपना यशःस्वरूप दीपक प्रज्वलित कर रक्खा है ऐसे तुम भगवान् की मैं शरण आया हूँ॥३९॥ अब, सब के साक्षी आप का न जानाहुआ यद्यपि कुछ भी नहीं है तथापि मनुष्यलोक के अनुसार तुम्हें, तुम्हारी बुआ के पुत्र और भक्त धर्मराज के मन का मनोरथ सुनाता हूँ ॥ ४० ॥ चक्रवर्त्तीपना प्राप्त होने की इच्छा करनेवाले वह पाण्डु के पुत्र धर्मराज, यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ के द्वारा तुम्हारा आराधन करने की इच्छा करते हैं, उन को आप सम्मति और आज्ञा दें॥ ४१ ॥ और यहाँ बैठे ही बैठे ऐसा न करिये किन्तु तहां जाइये भी, क्योंकि—हे देव! तिस श्रेष्ठ यज्ञ में तुम्हारे दर्शन की इच्छा करनेवाले इन्द्रादिक देवता और यशस्वी राजे; अवश्य आवेंगे ॥ ४२ ॥ और वह सब ही तुम्हारे दर्शन से पवित्र होयँगे, क्योंकि—हे ईश्वर! मनुष्याकार ब्रह्मरूप तुम्हारी कथा को सुनने से कीर्त्तन करने से और ध्यान करने से चाण्डाल भी पवित्र होते हैं फिर दर्शन और स्पर्श आदि करनेवाले पुरुष, दर्शन स्पर्श आदि करके पवित्र होंगे इसका क्या कहना? ॥ ४३ ॥ हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमंगल दिग्वितानम् ॥ मंदाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गङ्गेति च—हे चरणांबु पुनाति विश्वम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ॥ वाचःपेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मंत्रार्थतत्त्ववित् ॥ तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥ इत्युपामंत्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥ इतिश्रीभा०म० द० उ० भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवदेवस्य रुद्धवोऽब्रवीत् ॥ सभ्यानां मतमा-

सब भुवनो के मंगलरूप ! जिन तुम्हारा, सब दिशाओं का छत्रसमान भूषणरूप और निर्मल यश, स्वर्ग, पाताल और भूमि में प्रसिद्ध होकर जगत् को पवित्र करता है, तैसे ही जिन तुम्हारे चरण का जल, स्वर्गपर मन्दाकिनीरूप से, पाताल में भोगवतीरूप से और इस भूलोक में गंगारूप से प्रसिद्ध होता हुआ त्रिलोकी पवित्र को करता है, तिन तुम्हारे प्रत्यक्ष आने से सब मंगल और पवित्र होगा इस का क्या कहना ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तिस सभा में नारदजी के कहेहुए धर्मराज की ओर के वृत्तान्त को सुननेवाले यादव, जरासन्ध को जीतने की इच्छा से, हस्तिनापुर को जाने के विषय में नारदजी के कथन को मान्यरूप से ग्रहण नहीं करते थे तब, श्रीकृष्णजी ने कुछ हँसकर, मधुरी वाणी में अपने भक्त उद्धवजी से कहा ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धव ! क्योंकि तुम हमारे उत्तम चक्षु इन्द्रिय की समान पदार्थों के प्रकाशक होकर विचार से साधने योग्य फलों का तत्त्व जाननेवाले मित्र हो, तिस से इससमय नारदजी की और दूत की बताई हुई दोनो बातों में जो हम को करना उचित हो सो कहो, उस तुम्हारे कहने पर ही हम विश्वास करेंगे और तैसा ही करेंगे ॥४६॥ इसप्रकार सर्वज्ञ भी भगवान् के अनजान की समान सम्मति के निमित्त प्रेरणा करेहुए उद्धवजी, भगवान् की आज्ञा को मस्तक पर धारण करके उत्तर देनेलगे ॥४७॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इकहत्तरवें अध्याय में उद्धवजी की कहीहुई सम्मति के अनुसार श्रीकृष्णजी ने इन्द्रप्रस्थ को गमन करा तब पाण्डवों को परमानन्द हुआ, यह कथा वर्णन करी है, राजसूययज्ञ का निमित्त करके भीम और दुर्योधन आदिकों में कलह उत्पन्न करके उस के द्वारा प्रभु ने भूमि का भार हरा ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि— हे राजन् ! पहिले कथन के अनुसार राजसूययज्ञ के निमित्त जाना चाहिये ऐसा नारदजी का मत, जरासन्ध को जीतकर राजाओं की रक्षा करें ऐसा सभासदों का मत और दोनो कार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणा देव सा-
चिव्यं यक्ष्यतस्त्वयि ॥ कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणां ॥ २ ॥ यष्टु-
व्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ॥ अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो
मम ॥ ३ ॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ॥ यश्चैतेन गोविंद
राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥ स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ॥
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥ द्वैरथे स तु जेतव्यो मा
शताक्षौहिणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥
ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव
सन्निधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः

करें ऐसा श्रीकृष्णजी का मत जानकर वह महाबुद्धिमान् उद्धवजी कहने लगे कि—हे देव! यज्ञ करनेवाले फुफेरे भ्राता धर्मराज की सहायता करें ऐसा जो नारदजी ने कहा है सो आप करें और तैसे ही शरण आयेहुए राजाओं की रक्षा भी करें ॥ १ ॥ २ ॥ इस में पहिले राजसूय यज्ञ के निमित्त चलें फिर राजाओं की रक्षा करना उचित है ऐसा कहते हैं कि—सब दिशाओं को जीतनेवाला पुरुष, राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन करे ऐसी विधि होने के कारण दिग्विजय के प्रसङ्ग से होनेवाला जो जरासन्ध का जय सो राजसूय के निमित्त और शरणागतों की रक्षा करने के निमित्त भी होयगा ऐसा मेरे विचार में आता है ॥ ३ ॥ इस जरासन्ध के वध से हमारा भी बडाभारी निर्भयरूप कार्य सिद्ध होयगा और हे गोविन्द! बन्धन में पडेहुए राजाओं को छुटानेवाले तुम्हारा यश भी प्रसिद्ध होयगा ॥ ४ ॥ अब, अतिउत्कण्ठितपने से शीघ्र ही जरासन्ध को मारने की इच्छा करनेवाले यादवों से कहनेलगे कि=वह प्रसिद्ध राजा जरासन्ध, बल में दश सहस्र हाथियों की समान है, सो उस की समान ही बलधारी भीमसेन के विना, दूसरे उस से अधिक बलधारियों को भी, बडी कठिनता से भी उस को जीतना अशक्य है, क्योंकि—भीमसेन से ही उस का मरण होना कहा है ॥ ५ ॥ उस जरासन्ध को द्वन्द्वयुद्ध में ही जीतना चाहिये; सैंकडों अक्षौहिणी सेनाओं से घेरकर भी जीतने का कार्य नहीं है; यदि कहो कि—वह अपनी सेना को युद्ध करने के निमित्त भेजेगा तो फिर उस के साथ द्वन्द्वयुद्ध कैसे होयगा तो सुनो—वह ब्राह्मणों का भक्त है इसकारण ब्राह्मणों के याचना करने पर वह उन को कभी भी निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ इसकारण भीमसेन ब्राह्मण का वेष धारण करेहुए उस के समीप जाकर द्वन्द्वयुद्ध की भिक्षा मांगे, तब वह भीमसेन, समानबली होनेपर भी तुम्हारे समीप में उस को मारडालेगा इस में सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ यदि कहो कि—मेरे समीप में क्या होगा तो सुनो—रूपरहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥९॥ जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धववचो राजन् सर्वतो भद्रमच्युतं ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ॥ भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ ॥ १२ ॥ निर्गमय्याव रोधान्स्वान्ससुतान् सपरिच्छदान् ॥ संकर्षणमनुज्ञाप्य यदु-

कालरूप तुम ईश्वर के, जैसे ब्रह्मा और शिव, जगत् की उत्पत्ति और संहार के विषयमें केवल निमित्तमात्र हैं, वास्तव में सब के कर्त्ता तुम ही हो; तैसे ही यहां तुम ही समीप होने मात्र से मारनेवाले होओगे और भीमसेन केवल निमित्तमात्र होगा ॥ ८ ॥ सो इस उपाय से तुम उस को शीघ्र ही मारडालोगे, तो जरासन्ध के बन्धन में डालेहुए राजाओं की स्त्रियें, अपने घरों में बालकों को बहलाने के समय 'हे बेटा ! रोवे मत; श्रीकृष्णजी अब ऐसा करेंगे ! इसप्रकार कहकर' अपने शत्रु (जरासन्ध) का वध और प्राणप्रिय पति का छुटाना इस तुम्हारे कीर्त्तिकारी कर्म को गाती हैं; वह भी तो—जैसे गोपियें, शङ्खचूड नामक तुम्हारे शत्रु के वध का और उस से अपने छुटाने का गान करती हैं, अथवा तुम्हारा आश्रय पायेहुए ऋषि, जैसे तुम्हारे पहिले अवतारों में होनेवाले नक्रवध और गजेन्द्र मोक्ष तथा रावण के वध और सीता के मोक्ष का गान करते हैं, अथवा हम यादव, जैसे कंस के वध का और देवकी वसुदेव के छूटने का गान करते हैं; तैसे ही गान करती हैं, सो सब सत्य होयगा ॥ ९ ॥ और हे श्रीकृष्णजी ! यह जरासन्ध का वध, शरणागतों की रक्षा, राजसूय यज्ञ, तुम्हारी श्रेष्ठ कीर्त्ति और भूमि के भार का दूर होना इत्यादि बहुत से कार्यों के सिद्ध होने का साधन होयगा और ऐसा होने से आगे को शिशुपाल आदि का वध करना भी सुखसाध्य होजायगा और कर्मफल के परिपाक से अर्थात् राजाओं के पुण्य के फल से और जरासन्ध के पाप के फल से तुम्हें भी यह प्रिय ही है; सो तुम राजसूय यज्ञ में जाओगे तो यह सब कार्यसिद्ध होजायँगे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते कि—हे राजन् ! ऐसा, सबप्रकार से कल्याणकारी और युक्तियों से दृढ वह उद्धवजी का कथन, नारदजी, यादवों में वृद्ध पुरुष और श्रीकृष्णजी इन सबों ने अत्यन्त प्रिय माना ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी ने, वसुदेवादि गुरुजनों की आज्ञा लेकर और बलरामजी तथा उग्रसेन की भी आज्ञा लेकर, दारुक आदि विजयी सेवकों को राजसूय यज्ञ में जाने को ठीकठाक करने की आज्ञा करी और पुत्रोंसहित तथा सामग्री (सामान) सहित अपनी स्त्रियों को भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजं च शत्रुहन्॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजं॥१३॥ ततो रथाद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया॥ मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत्॥१४॥ तृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः॥ वरांवराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः॥ ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः॥ स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा ययुरधियुज्य संवतः॥१६॥ वलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः॥ दिवांऽशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथांऽर्णवः क्षुभितझषोर्मिभिः॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा॥ निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मुकुंदसंदर्शनविवृतेंद्रियः॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा॥ मा भैष्ट

भिजवाकर फिर वह गरुडध्वज श्रीकृष्णजी, सारथी के लाएहुए अपने रथपर चढे ॥१२॥१३॥फिर रथ,हाथी,पैदल और घुडसवारों से भयङ्कर अपनी सेना से घिरेहुए वह श्रीकृष्णजी, मृदङ्ग, नोवत, डङ्के, शंख और नफीरी इन बाजों के शब्दों से गूँजतीहुई तिस पश्चिम दिशा की ओर को गये॥१४॥ तब उन श्रीकृष्णपति के पीछे, अपने पुत्रोंसहित, श्रेष्ठ वस्त्र,भूषण,लेपन और मालाओं को धारण करनेवाली,हाथ में तलवार ढाल लेनेवाले मनुष्यों से रक्षा करीहुई वह पतिव्रता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णजी की स्त्रियें, म्याने और रथों में तथा सुवर्ण से मँढीहुई पालकियों में बैठकर गईं ॥ १५ ॥ उस समय, जिन की झोंपड़ियें, खस आदि के तृणों की हैं और जिन की सामग्री (सामान) कम्बल हैं उन सेवकों की स्त्रियें और वारांगना, अपनी २ सब सामग्री (सामान) बैल आदिकों के ऊपर चारों ओर से दृढ़ता के साथ बाँधकर और स्वयं अलङ्कार धारण करके डोलियें, ऊँट, बैल, भैंसे, गदहे, खिच्चर, गाड़ी और हाथियों पर बैठकर चल दिये ॥ १६ ॥ तब रथों की घरघराहट और घोडों की हिनहिनाहट आदि के भयानक शब्दों से युक्त वह सेना, बडे २ झण्डे, पताका, छत्र, चँवर, उत्तम प्रकार के आयुध, भूषण, किरीट और कवचों से, जैसे समुद्र दिन के समय, सूर्य की किरणों से और खलबलायेहुए मगर नाके आदिकों से तथा तरङ्गों से शोभा पाता है तैसे ही शोभित हुई ॥१७॥ इसप्रकार चलदेने के अनन्तर श्रीकृष्णजी ने जिन को सत्कार करके पूजा समर्पण करी है और श्रीकृष्णजी के दर्शन से जिन की सब इन्द्रियें तृप्त हुई हैं ऐसे वह नारदमुनि, उन श्रीकृष्णजी का राजसूययज्ञ में जाने का निश्चय जानकर उन को नमस्कार करके उन को ही हृदय में धारण करतेहुए आकाशमार्ग से चलेगये ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान्, मधुरवाणी से राजदूत को प्रसन्न करतेहुए कहनेलगे कि—तू राजाओं को यह समाचार दे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षंश्च मुमुक्षवः ॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीर्याथ पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ॥ पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणां ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ॥ चिरादृष्टं प्रियतमं सस्वजे पुनः पुनः ॥२५॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेंद्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं

कि—तुम भय न करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मैं जरासन्ध को शीघ्र ही मारता हूँ ॥१९॥ इसप्रकार भगवान् के कहने पर उस दूत ने, तहाँ से जाकर राजाओं को, भगवान् के कहने के अनुसार सब समाचार सुनाया, वह राजे भी जरासन्ध से छूटने की इच्छा करतेहुए, भगवान् का दर्शन होने की बाट देखते रहे ॥ २० ॥ इधर श्रीकृष्णजी ने, आनर्त्त, सौवीर और मारवाड़ इन देशों को और कुरुक्षेत्र को लाँघकर, कितनी ही नदियों के पार होकर, पर्वत, नगर, गांववालों के झोंपडे और बडी २ खानों का उल्लंघन करा ॥२१॥ फिर दृषद्वती और सरस्वती नदी के पार होकर आगे पाँचाल देश तथा मत्स्यदेश को उल्लंघन करके इन्द्रप्रस्थ (देहली) में गमन करा ॥२२॥ तब जिनका दर्शन मनुष्यों को दुर्लभ है ऐसे वह श्रीकृष्णजी समीप आये यह सुनकर, प्रसन्नचित्तहुए धर्मराज, उपाध्याय (पाधा) और मित्रमण्डली सहित, उन को लाने के निमित्त नगर से बाहर सन्मुख गये ॥ २३ ॥ वह गानों के और बाजों के शब्दसहित हृषीकेश भगवान् को, जैसे इन्द्रियें बडे आदर के साथ मुख्य प्राण के सन्मुख जाती हैं तैसे ही, सन्मुख गये ॥ २४ ॥ फिर स्नेह से आर्द्रचित्त हुए उन धर्मराज ने, बहुत समय में दृष्टि पडेहुए परमप्रिय श्रीकृष्णजी को देखकर वारंवार हृदय से लगाया ॥२५॥ लक्ष्मी के निर्मल स्थान श्रीकृष्णजी के शरीर को, भुजाओं से आलिंगन करके जिन के पाप नष्ट होगये हैं, जिन के नेत्रों में आनन्द के आँसू भरआये हैं, जिन के शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं और जिन को लोकव्यवहार की भी सुध नहीं रही है ऐसे वह धर्मराज परम सन्तोष को प्राप्तहुए ॥ २६ ॥ तैसे ही भीम, मामा के पुत्र तिन श्रीकृष्णजी को आलिंगन करके हास्य करतेहुए प्रेम के वेग से नेत्रों को आनन्द के आँसुओं से भरकर परम आनन्द में निमग्नहुए, तैसे ही नकुल, सहदेव और अर्जुन ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मुदा प्रवृद्धधाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरुसृंजयकैकयान् ॥ सूतमागधगंधर्वा वंदिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥ मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्नृतुर्जगुः ॥३०॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशालंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुंभैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपवलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ॥ मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृंगैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेंद्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्

भी, नेत्रों को आनन्द के आँसुओं से भरकर परममित्र श्रीकृष्णजी को आलिंगन करा ॥२७॥ उन में-समान अवस्थावाले होने के कारण अर्जुन ने,उन का केवल आलिंगन करा, नकुल सहदेव ने आलिंगन के साथ प्रणाम करा और श्रीकृष्णजी ने भी ब्राह्मणों को प्रणाम करके अवस्था में अपने से बड़े धर्मराज आदि को यथा योग्य प्रणाम करा ॥ २८ ॥ उन के सन्मान करेहुए श्रीकृष्णजी ने, सम्मुख आयेहुए कुरु सृंजय और कैकय इन का भी सन्मान करा; तदनन्तर सूत मागध, गन्धर्व, वन्दीजन, पास में बैठनेवाले पुरुष और ब्राह्मण यह सब एक साथ मृदंग, शंख, पटह, वीणा, पणव, गोमुख आदि बाजों के शब्द के साथ श्रीकृष्णजी की स्तुति और गान करनेलगे और वारांगना नृत्य करनेलगीं ॥२९॥ ॥ ३० ॥ इसप्रकार पाण्डवों से मिलेहुए वह पुण्यश्लोक शिखामणि भगवान् श्रीकृष्णजी ने, पाण्डवों से घिरेहुए और सूतादिकों से स्तुति करेहुए होकर अलङ्कृत (सजायेहुए) हस्तिनापुर में प्रवेश करा ॥ ३१ ॥ वह नगर, हाथियों के मद की गन्धवाले जलों से मार्ग छिड़काहुआ था; तथा चित्रविचित्र ध्वजाओं से, सुवर्ण के फूलों की वन्दनवारों से, तैसे ही जल से मुहपर्यन्त भरेहुए और फूलों की मालाओं से शोभित करेहुए कलशों से, स्नान आदि करके नवीन वस्त्र, भूषण, माला और चन्दनादि के लेपन को धारण करनेवाले पुरुषों से तथा स्त्रियों से सुशोभित था ॥ ३२ ॥ प्रत्येक घर में लाकर रक्खेहुए उत्तम दीपकों से और तोड़कर स्थापन करेहुए पुष्पफलादि पदार्थों से युक्त था, झरोखों में से बाहर को निकलनेवाले अगर के धूपों से और झलकनेवाली पताकाओं से युक्त तथा, जिन के शिरपर सुवर्ण के कलश हैं ऐसे चाँदी के बड़े २ शिखरों से शोभायमान घरों से बचाचच भराहुआ था; ऐसे उस धर्मराज के नगर को भगवान् ने देखा ॥३३॥ तब पुरुषों के नेत्रों के आदर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुसंकुल इभाश्वरथद्विपेन्द्रिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यमूभिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलाऽवलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मङ्गलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अंतःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्रविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यंकात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसु-

पूर्वक देखने के पात्र ऐसे वह श्रीकृष्णजी, आये हैं ऐसा सुनकर उत्कण्ठा से दौडते में जिन के केशों की और पहिरे वस्त्रों की गांठ ढीली होगई हैं ऐसी तरुणी स्त्रियें,तत्काल घरके कामों को पलँगपर सोयेहुए पतियों को छोड़कर राजमार्ग (आमसड़क) से जानेवाले श्रीकृष्णजी को देखने के निमित्त चलीगईं ॥ ३४ ॥ तदनन्तर घरों के ऊपर की छत्तों पर चढीहुई उन स्त्रियों ने, हाथी, घोडे, रथ और सिपाही इसप्रकार चतुरंगिणी सेना से अत्यन्त भरगयेहुए तिस राजमार्ग में स्त्रियों सहित आयेहुए उन श्रीकृष्णजी को देखकर, उन के ऊपर फूलों की वर्षा करी और मन से उनको आलिंगन करके आनन्द के साथ देखने से ही उन का स्वागत करा ॥ ३५ ॥ उससमय, चन्द्रमा के साथ स्थित तारागणों की समान, श्रीकृष्णजी के साथ स्थित उन की स्त्रियों को मार्ग में देखकर स्त्रियें कहने लगीं कि—जिन के नेत्रों को सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले यह पुरुषोत्तम, उदारहास्ययुक्त लीला के साथ अवलोकन के लेश से सुख देते हैं ऐसी इन श्रीकृष्णजी की स्त्रियों ने जन्मान्तर में न जाने कौन पुण्य करा होगा ॥ ३६ ॥ उससमय, जहाँ तहाँ मार्ग में नगरवासी बड़े २ सेठ-साहूकार पुरुष, गन्ध, पुष्प-ताम्बूल आदि शुभ वस्तु हाथ में लेकर श्रीकृष्णजी के सन्मुख जाकर उन की पूजाकरके निष्पापहुए।३७।फिर घवराहट में हुए और प्रफुल्लित नेत्र ऐसे रणवासमें के पुरुषों ने, बडी प्रीति के साथ आगे जाकर जिन का सत्कार करा है ऐसे उन श्रीकृष्णजी ने राजभवन में प्रवेश करा ॥ ३८ ॥ तब, अपने भ्राताके पुत्र त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णजी आये हैं ऐसा सुनकर प्रसन्न चित्तहुई कुन्ती ने, पलँगपर से उठकर, द्रौपदी सहित आगे जाकर उन को हृदय से लगाया ॥ ३९ ॥ तब आदरयुक्त उन धर्मराज ने, देवदेवों के भी नियन्ता तिन श्रीकृष्णजी के अपने घर आनेपर, परम आनन्द में भरेहुए उन धर्मराज को, श्रीकृष्णजी की पूजा करने के क्रम का भी स्मरण न रहा ॥ ४० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणी सत्या भद्रा जांबवती तथा ॥ ४२ ॥ कालिंदी मित्रविन्दा च शैब्या नाग्नजिती सती ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया । विहरन् रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीभा० म० द० उ० कृष्णस्येंद्रप्रस्थगमनमेकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्रह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बंधिबान्धवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

उससमय श्रीकृष्णजी ने, पिता की बहिन कुन्ती को और बडी स्त्रियों को प्रणाम करा, और उन को भी द्रौपदी तथा सुभद्रा ने प्रणाम करा ॥ ४१ ॥ तब कुन्ती की प्रेरणा करीहुई द्रोपदी ने, पतिव्रता-रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा एवं नाग्निजिती का तथा और भी जो श्रीकृष्णजी की स्त्रियें आई थीं उन सबों का वस्त्र, माला और कुंकुम आदि सौभाग्य के पदार्थों से पूजन करा ॥४२॥४३॥ तदनन्तर, धर्मराज ने सेना, सेवक और मंत्रियोंसहित तथा स्त्रियोंसहित श्रीकृष्णजी को, प्रतिदिन नये २ सत्कारों से, उन को जैसे सुख प्राप्त हो तैसे ठहरादिया ॥ ४४ ॥ एक समय अर्जुन के साथ और अर्जुन के सहायक हुए जिन्होंने, इन्द्र के खाण्डव नामवाले वन से अग्नि को तृप्त करके उस में जलतेहुए मयासुर को छुडाया ; फिर उस मयासुर ने धर्मराज को, एक दिव्य सभा बनादी वह श्रीकृष्णजी धर्मराज का प्रिय करने की इच्छा से, अर्जुन के साथ रथ पर बैठकर और साथ में कुछ योधाओं को लेकर विचरतेहुए कितने ही महीने पर्यन्त उस हस्तिनापुर में रहे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे बहत्तरवें अध्याय में धर्मराज ने श्रीकृष्णजी को राजसूययज्ञ का कार्य निवेदन करा तब, जरासन्ध को जीतना कठिन है ऐसा जानकर तिन श्रीकृष्णजी ने, भीमसेन से उस जरासन्ध का वध करवाया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! एक समय सभा में सिंहासन पर बैठेहुए और ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भीमसेन आदि भ्राता, आचार्य, कुल के वृद्ध, जाति, सम्बन्धी और कुटुम्बियों से घिरेहुए धर्मराज, उन ऋषि आदि सबों के सुनतेहुए—हे कृष्ण! हे भक्तवत्सल! ऐसा सम्बोधन देकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रतुराजेन गोविंद राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायंत्यभद्रनशने शुचयो गृणंति ॥ विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥ तेदेवदेव भवतश्चरणारविंदसेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः॥ ये त्वां भजंति न भजंत्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानां॥५॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवाऽनुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृ-

श्रीकृष्णजी से कहा ॥ १ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर ने कहा कि—हे गोविन्द! हे प्रभो! यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूययज्ञ के द्वारा, तुम्हारी ही पवित्र विभूति ऐसे इन्द्रादि देवताओं की आराधना करने की मैं इच्छा करता हूँ उस मेरे मन के कार्य को सिद्ध करदेने की आप कृपा करें ॥ ३ ॥ यदि कहो कि यह चक्रवर्त्ती राजाओं का मनोरथ तू क्यों करता है तो सुनो-हे कमलनयन ईश्वर! जो पुरुष तुम्हारी पापनाशक पादुकाओं का अपने शरीर से निरन्तर सेवन करते हैं, मन से ध्यान करते हैं और वाणी से उन का प्रभाव वर्णन करते हैं वही पुरुष शुद्धचित्त होकर संसार के नाशक मोक्ष पद को पाते हैं और वही यदि विषयभोग की इच्छा करें तो उन को वह विषय भी प्राप्त होते हैं जो दूसरे चक्रवर्त्ती राजाओं को भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ तिस से हे प्रभो! हे देवदेव! इस संसार में का यह प्राणियों का समूह, तुम्हारे चरणकमल की सेवा के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखलेय; कर्म आदि को ही मुख्य माननेवाले कितने ही जो कौरव और सृंजय हैं वह भगवद्भक्ति का बहुत सन्मान नहीं करते हैं उन का मोह दूर होने के निमित्त तुम, जो तुम्हारी सेवा करते हैं और जो सेवा नहीं करते हैं उन दोनो प्रकार के ही पुरुषों की निष्ठा (फल) दिखाओ ॥५॥ यदि कहो कि—रागद्वेषादिराहित मुझ में यह भेदभाव कैसे होयगा तो सुनो—समदृष्टि, सर्वात्मा, और अपने आनन्द का अनुभव करनेवाले तुम निरुपाधिक ब्रह्मरूप को, यद्यपि, यह अपना है, यह पराया है इसप्रकार की भेदबुद्धि नहीं है तथापि जैसे सब में समभाव रखनेवाले कल्पवृक्ष की सेवा करनेवालों को ही उस से फल मिलता है तैसे ही सेवा करनेवाले पुरुषों को ही, तुम से, सेवा की न्यूनता अधिकता का फल मिलता है; इस में तुम में भेदभाव वा निर्दयीपना आदि दोष नहीं आता है ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे शत्रुनाशक राजन्! तुमने बहुत अच्छा निश्चय करा है जिस राजसूयनामक यज्ञ को करके तुम्हारी पुण्यकारिणी कीर्ति सब लोकों में फैलेगी ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दार्मपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः ॥ जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥१०॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः ॥ भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह संजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृप-

हे प्रभो ! ऋषियों को, देवताओं को, सकल प्राणीमात्र को और हम मित्रों को भी यहश्रेष्ठ राजसूय यज्ञ इच्छित है ॥ ८ ॥ उस में मुझे वा दूसरे किसी को क्या करना है ? किन्तु यह राजसूय सहज में होनेवाला है, इस से सब राजाओं को जीतकर, सब पृथ्वी को वश में करके और यज्ञकी सब सामग्री इकट्ठी करके राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करो॥९॥यदि कहो कि सब राजाओं को कैसे जीतेंगे तो सुनो—हेराजन्!यह तुम्हारे भ्राता,वायु इन्द्र आदि लोकपालों के अंश से उत्पन्न हुए हैं इसकारण इन के द्वाराही तुम्हें सब राजाओं का जीतना सुखसाध्य है और इन्द्रियों को वश में न करनेवाले पुरुषों से कठिनता से भी वशमें करने को अशक्य ऐसेमुझे, जितेन्द्रिय तुमने वश में करलिया है इसकारण तुम्हें कुछभी दुःसाध्य नहीं है ॥ १० ॥ अब तुम्हारी तो बात दूर रहै परन्तु अतिदीन ऐसे भी मेरे भक्त का तिरस्कार करने को कोई भी समर्थ नहीं होता है ऐसा कहते हैं कि—मैं ही जिन का परम उपासनीय देवता हूँ उन का तिरस्कार करने को इसलोक में कोई देवता भी अपने पराक्रम से, यश से, सम्पदा से और सेनाआदि सामग्रियों से समर्थनहीं होसक्ता फिर राजा (मनुष्य) समर्थ नहीं होगा इसका तो कहनाही क्या? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् के कहेहुए भाषण को सुनकर प्रसन्न और प्रफुल्लमुखकमल हुए उन धर्मराज ने, श्रीकृष्णजी के तेज से बढ़ेहुए अपने भीम आदि भ्राताओं को दिग्विजय करने के कार्य में लगाया ॥ १२ ॥ सहदेव को संजयदेश के राजाकी सहायता देकर दक्षिणदिशा की ओर नियत करा, नकुल को मत्स्यदेश के राजा के साथ पश्चिम दिशा की ओर भेजा; अर्जुन को केकय राजा के साथ उत्तरदिशा को भेजा और भीम को मद्रक राजाओं के साथ पूर्वदिशा की ओर भेजा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उनभीम आदि वीरोंने, अपने पराक्रम से राजाओं को जीतकर यज्ञ करनेवाले धर्मराज को बहुतसा धन लाकर समर्पण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ ॥ १६ ॥ ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तेभ्यः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाचिनोति स्वयंकल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥

करा ॥ १४ ॥ तब जरासन्ध राजा जीतने में नहीं आसक्त ऐसा सुनकर, उस को कैसे जीतें इसप्रकार की चिन्ता करनेवाले धर्मराज से, सब के कारण श्रीकृष्णजी ने, अपने से उद्धवजी ने जो 'भीमसेन, द्वन्द्वयुद्ध में उस को मारडाले ऐसा' जो उपाय कहाथा वह बताया ॥ १५ ॥ हे राजन्! फिर भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजी यह तीनो, ब्राह्मण का वेष धारकर, जहाँ जरासन्ध था तिस गिरिव्रज नामक स्थान में चलेगये ॥ १६ ॥ और ब्राह्मणकावेष धारण करनेवाले वहतीनो ही राजे,दानकरने के समय उसके घर जाकर गृहस्थाश्रमी और ब्राह्मणभक्त तिस जरासन्ध से याचना करनेलगे ॥ १७ ॥ कि-हेराजन् ! हम तीनोही बहुतदूर से आयेहुए याचक अतिथि हैं, ऐसा तुम जानो, और जिसकी हम इच्छा करते हैं सो हम को समर्पण करो ॥ १८ ॥ यदि कहोकि—जो तुम चाहते हो सो बताओ, नहीं तो भला पुत्रादि वा राज किरीट आदि मांगलिये तो वह कैसे देदूँगा ? सो हे राजन्! जैसे विषयासक्त पुरुषों को न करने योग्य कुछ नहीं है तैसेही सहनशील पुरुषों को कुछ भी दुःसह नहीं है, अतिउदार पुरुषों को न देनेयोग्य कुछनहीं है और सर्वत्र समान ब्रह्म है ऐसा देखनेवालों को पराया कोई नहीं है इसकारण हम को अमुक पदार्थ चाहिये इस के कहने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १९ ॥ और जो प्राणी स्वयं समर्थ होकर भी अपने अनित्य शरीर से, साधुओं के गान करनेयोग्य सदा रहनेवाले यश को नहीं प्राप्त करता है वह निन्दनीय और 'क्या यह इसका भाग्य हीनपना है इसप्रकार' शोक करने के योग्य होता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! हरिश्चन्द्र विश्वामित्र का ऋण चुकाने के निमित्त स्त्री पुत्र आदि सब बेचकर, अपने आप चांडालपने को प्राप्त होनेपर भी खिन्न नहीं हुए इसकारण अयोध्यावासी पुरुषोंसहित स्वर्ग को गये. रन्तिदेव ने, कुटुम्बसहित अपने को अड़तालीस दिनपर्यन्त जल भी प्राप्त न होने पर, तदनन्तर प्राप्तहुआ अन्न जल आदि याचकों को देकर ब्रह्मलोक को गमन करा. मुद्गल ब्राह्मण, छः मासपर्यंत कुटुम्बसहित उपवास (निराहार व्रत) करके भी प्राप्तहुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥ २२ ॥ राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥ २३ ॥ बलेर्नु श्रूयते कीर्तिं वितताद्दिक्ष्वकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेंद्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जु-

अन्न आदि, अतिथि को देकर ब्रह्मलोक को गया. राजा शिवि, शरण आयेहुए कबूतर की रक्षा करने के निमित्त अपना मांस श्येन (बाज) पक्षी को देकर स्वर्ग को गया. राजा बलि ने, ब्राह्मण का वेष धारणकरनेवाले श्रीहरि को सर्वस्वदेकर उनको ही द्वारपाल बनालिया. कपोत ने, व्याधरूप अतिथि को कपोतीस्त्रीसहित अपना मांस देकर विमान में बैठ स्वर्ग को गमन करा. व्याध ने, उन दोनों का धैर्य देखकर स्वयं विरक्त होकर महाप्रस्थान में बन में की अग्निमें देहको जलानेके कारण निष्पाप होकर स्वर्गगति पाई इसी प्रकार और भी बहुत से पुरुष, नाशवान् शरीर के द्वारा अविनाशीलोक को प्राप्त होगये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार कहाहुआ वह जरासन्ध, स्वरों से, शरीर के अङ्गों की गठन से और धनुष की डोरी के घट्टे पडेहुए हाथों के पहुँचों से उन भीम आदिकों को यह कोई राजे हैं और इन को पहिले मैं ने कहीं (द्रौपदीस्वयंवर आदि में) देखा है ऐसा अनुमान करके विचारनेलगा कि—॥ २२ ॥ यह निःसन्देह राजाओं के कुल में उत्पन्नहुए और भय से ब्राह्मणों के चिन्ह धारण करेहुए हैं इसकारण इन्हें, कठिन से त्यागनेयोग्य अपने शरीर को भी (इन के मांगने पर) देता हूँ ॥ २३ ॥ क्योंकि इन्द्र की सम्पत्ति 'बलि से' हरण करने की इच्छा करनेवाले और कपट से ब्राह्मण का वेष धारण करनेवाले विष्णु करके ऐश्वर्यसे भ्रष्ट करेहुए भी राजा बलि की, पवित्र और दशों दिशाओं में फैलीहुई कीर्त्ति निःसन्देह सुनने में आती है; क्या उस बलि के धैर्य का वर्णन होसक्ता है? शुक्राचार्य के निषेध करने पर भी और 'यह विष्णु मेरा सर्वस्व हरलेगे ऐसा' जानकर भी उस दैत्यराज बलि ने, ब्राह्मणस्वरूप विष्णु को पृथ्वी का दान दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ प्रतिक्षण क्षीण होनेवाले और ब्राह्मण के कार्य के निमित्त बडाभारी यश प्राप्त न करके जीवित रहनेवाले इस क्षत्रिय शरीर से कौन प्रयोजन सिद्ध होता है? कोई नहीं ॥ २६ ॥ इसप्रकार विचारकर वह उदारबुद्धि जरासन्ध, श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेन से कहनेलगा कि—हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नैवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वंद्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥ २८ ॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स मागधः ॥ आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥ न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा । मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसा तुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदां ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ । जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥

ब्राह्मणों ! जो तुम्हें अच्छा होय सो मांगलो, मैं अपना मस्तक भी,तुम्हें अच्छा लगेगा तो दूँगा ॥ २७ ॥ तब श्रीभगवान् ने कहा कि हे राजेन्द्र ! यदि तू जो इच्छित है सो देने की इच्छा करता है तो तू हमें द्वन्द्वयुद्ध (दोपुरुषों करकेही करने योग्य युद्ध) दे हम युद्ध की इच्छा करनेवाले राजे, यहां आये हैं,हम अन्न की इच्छा करनेवाले ब्राह्मण नहीं है ॥२८॥ यह कुन्तीनन्दन भीम है, यह इस का भ्राता अर्जुन है और इन दोनो के मामा का पुत्र मैं तेरा शत्रु कृष्ण हूँ, ऐसा जान ॥ २९ ॥ इसप्रकार भगवान् का जतायाहुआ वह राजा जरासन्ध ऊँचे स्वर से हँसनेलगा और क्रुद्ध होकर बोला कि—अरे मूढो ! यदि तुम्हें युद्ध ही इच्छित है तो वह देता हूँ ॥३०॥ परन्तु डरपोक और युद्ध में विव्हलचित्त होजानेवाला जो तू तिस के साथ तो मैं युद्ध करूँगा नहीं, क्योंकि—तू भय से अपनी मथुरा नगरी को त्यागकर समुद्र की शरण गया है ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन तो मेरे साथ युद्ध करने के योग्य नहीं है, क्योंकि—यह अवस्था में मेरी समान न होकर बल में भी अधिक नहीं है और शरीर में भी मेरी समान पुष्ट नहीं है फिर इस के साथ द्वन्द्वयुद्ध (दूपरद्वयुद्ध) करना, लज्जाकारक, निन्दाकारक और अपयशकारक है, केवल भीम ही मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करेगा, क्योंकि--वह मेरे समान बलधारी है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर जरासन्ध अपनी ही एक बडीभारी गदा भीमसेन को देकर और तैसीही दूसरी गदा आप लेकर नगर से बाहर निकला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर ऊँचीनीची नहीं और वालु का डालकर कोमल करीहुई युद्ध की भूमि में युद्ध करने में दुर्मद वह जरासन्ध और भीम दोनो वीर, परस्पर भिडकर समान गदाओं का परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ ३४॥ दाहिने और बायें जैसे होय तैसे चित्रविचित्र मण्डल (पैंतरे) करनेवाले उन दोनो का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दंतयोरिव दन्तिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रून् । चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुद्ध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्न्वोः ॥ ३७ ॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्परशैरपिष्टां ॥ शब्दस्ततोयः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥ तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युद्ध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्मधृती विद्वान् जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थिमा-

युद्ध, रंगभूमि में आयेहुए नटों की समान शोभा पानेलगा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! एक ने दूसरे के ऊपर छोडीहुई गदाओं के पडने से उत्पन्न हुआ चटचट शब्द, युद्ध करनेवाले मद से अन्धेहुए हाथियों के दाँतों के शब्द की समान और वज्र गिरने के शब्दकी समान अतिभयङ्कर होनेलगा ॥ ३६ ॥ परस्पर के शरीरपर मारीहुई वह गदा, एक दूसरे के कन्धे, कमर, पैर, हाथ, जंघा और भुजाओं के पुट्ठोंपर पड़कर, जैसे अतिक्रोध में भरकर आक के वृक्षों की शाखाओं से परस्पर युद्ध करनेवाले हाथियों के कन्धे आदि अङ्गोंपर उन की मारीहुई वह (आक की) शाखा चूर्ण होजाती हैं तैसे ही चूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ इसप्रकार उन दोनो की ही गदाओं के टूटजानेपर, क्रोध में भरेहुए वह दोनो मनुष्यश्रेष्ठ भीमसेन और जरासन्ध लोहे के घन की समान लगनेवाली अपनी दृढ मुट्ठियों (घूंसों) से परस्पर ताडना करनेलगे तब हाथी की समान परस्पर प्रहार करनेवाले उन के हाथों के चपेटों से उत्पन्न हुआ शब्द, मेघ के विना होनेवाले वज्रपात के शब्दकी समान भयानक प्रतीत होनेलगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार जिन का अभ्यास, शरीर का बल और इन्द्रियों की शक्ति भी समान हैं ऐसे क्षीणबल न होकर प्रहारकरनेवाले उन भीम और जरासन्ध का अनुपम युद्ध हुआ ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार युद्धकरनेवाले और रात्रि के समय तिस जरासन्ध के घर मित्र की समानरहनेवाले उन भीमसेन और जरासन्ध को सत्ताईस दिन वीतगये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! एकसमय भीमसेन, अपने मामा के पुत्र श्रीकृष्णजी से कहनेलगे कि—हे माधव ! युद्ध में जरासन्ध के जीतने को मैं समर्थ नहीं हूँ, सो अब क्या करूँ ? ॥ ४१ ॥ तब उसजरासन्ध का जन्म दोटुकडों से हुआ है और मरण भी तैसे ही दोटुकडे होनेपर होयगा यह जाननेवाले और जरानामवाली राक्षसी ने उन दोनोंटुकड़ों को मिलाकरकरेहुए जीवनको भी जाननेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्यायय॑त्स्वेन तेजसाचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ सञ्चिंत्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्वो भीमः प्रहरतां वरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥ एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाहक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः॥अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः॥मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे

वह हरि श्रीकृष्णजी, अपने तेजसे भीमका बल बढातेहुए फिर इसके टुकड कैसेहोयँगे यह चिन्तवन करनेलगे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सफलज्ञानी श्रीकृष्णजी ने, उस का उपाय जानकर, एकवृक्ष की शाखा को चीरकर दिखातेहुए जैसे मैं शाखा को चीरता हूँ ऐसे तू इस जरासन्ध को चीरडाल, ऐसे संकेत से भीमसेन को शत्रुके वध का उपाय दिखाया॥४३॥तब महाबली और प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ तिस भीमसेन ने, भगवान् के संकेत करेहुए उपायको जानकर शत्रु के पैर पकडकर भूमिपर पटका॥४४॥और उस का एकपैर अपने पैरसे दबाकर तथा दूसरा पैर हाथों से पकडकर उन भीमसेन ने, जैसे बडाभारी हाथी अनायास में ही शाखा को फाडडालता है तैसे उस को गुदा के द्वार से लेकर मस्तकपर्यन्त फाडडाला ॥ ४५ ॥ उससमय तहां की प्रजाओं ने, उस के-चरण, जंघा, अण्डकोष, कमर, पीठ, स्तन, कन्धे, बाहु, नेत्र, भ्रुकुटि और कर्णवाले दो टुकडेहुए देखे॥४६॥ इसप्रकार जरासन्ध के मरण को प्राप्त होने पर उस की प्रजाओं का बडाभारी हाहाकार शब्दहुआ; उससमय अर्जुन और श्रीकृष्ण इन दोनो ने, भीमसेन को हृदय से लगाकर प्रशंसा करके सत्कार करा॥ ४७ ॥ अब दुष्ट वर्त्ताव होने के कारण ही इस जरासन्ध को मारा राज्य के लोभ से नहीं मारा यह दिखातेहुए कहते हैं। कि-अप्रमेयस्वरूप, भूतपालक, प्रभु भगवान् ने, तिस जरासन्ध के सहदेव नामक पुत्र को राज्याभिषेक करके मगध देशों का स्वामी करदिया और उस जरासन्ध ने जो राजे रोकरक्खे थे उन को तहाँ से छुटाया॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में द्विसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे तिहत्तरवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने राजाओं को छुटाकर और उन को राजयोग्य भोग अर्पण करके उन को अपने २ देश में भेजदिया और आप भीमसेन तथा अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चलेगये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते है कि-हे राजन्! जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शतान्येष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितं ॥ किरीटहारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥६॥ कृष्णसंदर्शनाल्हादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनं नाथानसूयामो मागधं

वीस सहस्र आठ सौ राजे, जरासन्ध ने युद्ध में सहज में ही जीतकर गिरिद्रोणी नामक कारागार में बन्द कररक्खे थे, वह बन्द करने के कारण क्लेश को पायेहुए, मलिनमुख, क्षुधा से निर्बल, मलिन वस्त्र धारण करेहुए और शरीरपर मैल थुपेहुए राजे तहां से निकाले तब, उन्हों ने श्रीकृष्णजी को देखा, वह श्रीकृष्णजी मेघ की समान श्यामवर्ण और पीताम्बर धारण करे थे ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीवत्सलांछन धारण करनेवाले, चार भुजाओं से युक्त, कमल की गोभ की समान लाल २ नेत्रवाले, सुन्दर और प्रसन्नमुख से युक्त, दमकतेहुए मकराकार कुण्डलों से शोभायमान ॥ ३ ॥ हाथ में कमललिये, शंख-चक्र-गदा से सुशोभित और मस्तकपर किरीट, गले में हार, हाथों में कडेतोडे, कमर में जंजीर और भुजाओं में बाजूबन्दों से सजेहुए थे ॥ ४ ॥ तैसे ही जो कण्ठ में श्रेष्ठ कौस्तुभमणि से झलकतेहुए और गले से पैरोंपर्यन्त लटकतीहुई वनमाला से लिपटेहुए थे तिन भगवान् को नेत्रों से पीतेहुएसे, जीभ से चाटतेहुएसे, नासिका के पुडों से सूंघतेहुएसे और भुजाओं से आलिंगन करतेहुएसे तथा उन के दर्शन से पापरहितहुए तिन राजाओं ने, श्रीहरि के चरणपर अपना २ मस्तक रखकर नमस्कार करा ॥ ५ ॥ ६ ॥ और श्रीकृष्णजी का दर्शन करने से प्राप्तहुए आनन्द से जिन का कारागार में पडने का खेद दूर होगया है ऐसे वह राजे, हाथ जोडकर उन श्रीकृष्ण भगवान् की वाणियों से प्रशंसा करनेलगे ॥ ७ ॥ राजाओं ने कहा कि—हे देवदेवों के स्वामिन्! हे शरणागतों के दुःख दूर करनेवाले ! हे अखण्डस्वरूप श्रीकृष्ण ! तुम्हें नमस्कार हो, तुम्हारे कारागार में से छुडाएहुए और दुःख का अनुभव करके सकल विषयों में विरक्त होकर तुम्हारी शरण आयेहुए हमें इस भयानक संसार से छुटाओ ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! इस जरासन्ध ने हमें बाँध-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विदन्ते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितो नित्यं मन्यते संपदोऽचलाः॥ ॥ १० ॥ मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्तां वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयास्यो इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः॥ ॥१२॥ ते एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ॥ कालेन तन्वा भवतोनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णाय

कर डाललिया इस हेतु से हम इस की ओर को वारम्वार दोषदृष्टि से नहीं देखते हैं, क्योंकि—हे विभो! जरासन्ध से हम राजाओं का जो राज्य छुटा सो तुम्हारा अनुग्रह ही है ऐसा हम समझते हैं ॥९॥ क्योंकि—राज्य और ऐश्वर्य से होनेवाले मद करके उच्छृंखल हुआ राजा, तुम्हारी माया से मोहित होकर, अनित्य सम्पत्तियों को यह नित्य हैं ऐसा मानता है और उन से कल्याण नहीं पाता है ॥१०॥ जैसे अज्ञानी बालक, मृगतृष्णा के जल को यह तालाव वा नदी है ऐसा मानतेहैं तैसे ही अज्ञानी पुरुष, सृष्टि में माला, चन्दन स्त्री आदि अनेकों विकारों से परिणाम को प्राप्त हुई माया को ही यह परमपुरुषार्थ है ऐसा मानते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो! जो हम पहिले राज्य करते समय, लक्ष्मी के मद से अन्धे होकर इस पृथ्वी को जीतने की इच्छा से परस्पर डाह करते थे, वह आगे को होनेवाले मृत्युरूप तुम्हें कुछ न गिनतेहुए दुष्ट मद से युक्त होकर अति निर्दयीपने से अपनी ही प्रजाओं को धन आदि के निमित्त मारते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण! वही हम इससमय गम्भीर (न दीखनेवाले) वेग से युक्त और जिस को हटाना कठिन है ऐसे बलवान् तुम शरीररूपी काल से, सम्पत्तियों से भ्रष्ट होने के कारण गर्वरहित होकर तुम्हारी कृपा से ही तुम्हारे चरण का स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ इसकारण अब आगे को वह हम प्रतिक्षण में क्षीण होते जानेवाले और रोगों की उत्पत्ति के स्थान ऐसे अपने शरीर करके सेवन करनेयोग्य और मृगतृष्णा के जल की समान शीघ्र नाश को प्राप्त होनेवाले राज्य की कुछ इच्छा नहीं करते हैं, तैसे ही हे विभो! स्वर्गादि परलोक में जाकर सेवन करने का और केवल कानो को ही प्रिय लगनेवाला जो क्रियाफल (सुख) उस को भी इच्छा नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ इसकारण हे प्रभो! इस संसार में अनेकों योनियों के विषैं भ्रमण पानेवाले भी हमें, तुम्हारे चरणकमलों का स्मरण जिस उपाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान राजभिर्मुक्तबन्धनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्वाढमाशंसितं तथा ॥१८॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणां ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद्भ्रंशितः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमंतवत् ॥ मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वन्तः प्रजात-

से लुप्त न होय वह उपाय तुम हम हे कहो ॥ १५ ॥ वासुदेव, हरि, परमात्मा और शरणागतों के क्लेश नष्ट करनेवाले तथा गोविन्द तुम कृष्ण को वारम्वार नमस्कार हो ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे तात राजन्! जरासन्ध के करेहुए बन्धन से छूटनेवाले राजाओं ने, इसप्रकार स्तुति करी तब, शरणागतवत्सल और दयालु वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मधुरी वाणी में उन से कहनेलगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे राजाओं! तुम ने जैसी प्रार्थना करी है सो सब मैंने स्वीकार करा है, आज से तुम्हें, सबों के ईश्वर और आत्मा मेरे विषें दृढ़ भक्ति उत्पन्न होय ॥ १८ ॥ हे राजाओं! तुमने जो मेरा स्मरण ही करने का निश्चय करा है सो आनन्दकारी है, तुम सत्य बोलनेवाले हो, सम्पदा और ऐश्वर्य के मद से अपना स्वेच्छाचाररूप जो उद्धतपना सो मनुष्यों को वडा उन्मत्त करनेवाला है, ऐसा मेरे देखने में आया है ॥ १९ ॥ देखो—सहस्रबाहु सार्वभौम राजाहुआ तौभी उस ने, जमदग्नि की कामधेनु का हरण करा इसकारण पुत्रों सहित उसको परशुरामजी ने मारडाला.राजा नहुष देवेन्द्रपने को प्राप्तहुआ तब भी, इन्द्राणी के सम्भोग के निमित्त ब्राह्मणों से पालकी उठवाने के कारण वह उन ब्राह्मणों के शाप से इन्द्रपद से भ्रष्ट होकर अजगर योनि को प्राप्तहुआ; राजावेन भी उन्मत्त होकर ब्राह्मणों की निन्दा करनेलगा इसकारण उस को ब्राह्मणों ने हुङ्कार से ही मारडाला; रावण राक्षसों का स्वामी था तब भी उसने सीता को हरा इसकारण उस को श्रीरामचन्द्रजी ने मारडाला; नरकासुर ने दैत्यों का स्वामी होकर अदिति के कुण्डल हरण करे इसकारण उस को मैंनेही मारा है, और भी बहुतसे देवताओं के, दैत्यों के तथा मनुष्यों के अधिपति राजे, लक्ष्मी के मद के कारण अपने स्थान से भ्रष्ट होगये ॥ २० ॥ इसकारण तुम, इस उत्पन्न होनेवाले देहादि को अनित्य जानकर सावधान चित्त रहोतथा यज्ञयागादि के द्वारा मेरा पूजन करके धर्म के साथ प्रजाओं की रक्षा करो ॥ २१ ॥ और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्तून्सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मोमन्तो ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥ सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥२६॥ ते पूजिता मुकुंदेन राजानो मृष्टकुंडलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः ॥२७॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचे-

पुत्रादिक सन्तान का विस्तार करके तथा सुख, दुःख, लाभ, हानि आदि जो जो प्राप्तहोय उस २ को समानभाव से सेवन करके और मेरेविषैं चित्त को लगाकर काल व्यतीत करो ॥ २२ ॥ और देह, धन तथा पुत्रादि के विषैं उदासीन; आत्मस्वरूप में रमेहुए और पूजा नमस्कार आदि का नियम धारण करनेवाले होकर एकाग्र करेहुए मन को मेरेस्वरूप में स्थापन करके रहो तो अन्त में ब्रह्मरूप मुझ को प्राप्तहोओगे॥२३॥श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी ने राजाओं को आज्ञा करके उन का उबटनास्नान आदि कार्य करने में सेवकपुरुषों को और स्त्रियों को नियुक्त करा ॥ २४ ॥ हे राजन् जरासन्ध का पुत्र जो सहदेव नामवाला था उस से तिन राजाओं को, राजयोग्य वस्त्र, भूषण, माला और चन्दनादि का अनुलेपन इत्यादि दिलवाकर सत्कार करवाया ॥ २५ ॥ इसप्रकार उत्तम स्नान करेहुए और आभूषण धारण करेहुए उन राजाओं को श्रेष्ठ अन्न का भोजन करवाकर फिर उनको और भी राजाओं के योग्य नाना प्रकार के ताम्बूल आदि भोग अर्पण करे ॥२६॥ तब श्रीकृष्णजी ने जिन को क्लेश से छुटाया है और सत्कार करा है ऐसे वह राजे, स्वच्छ कुण्डल धारण करके जैसे शरद् ऋतु के अन्त में चन्द्रमा आदि ग्रह शोभा पाते हैं तैसे शोभित होनेलगे ॥२७॥ तदनन्तर मणियों से जड़े सुवर्ण आदि के आभूषणों से भूषित तिन राजाओं को, मधुर भाषणों से हर्षयुक्त करके और उत्तम घोड़े जुतेहुए रथपर बैठालकर उन २ के देशों को भेजदिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार अति उदारचित्त श्रीकृष्णजी के सङ्कट से छुटायेहुए वह राजे, उनही जगत्पति श्रीकृष्णजी का ध्यान और उन के ही कर्म का स्मरण करते हुए अपने अपने देश को चलेगये ॥२९॥ फिर उन्हों ने वह जरासन्ध का मारना आदि श्रीकृष्णजी का कार्य अपने मंत्रियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ष्टितम् ॥ यथाऽन्वशाँसद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः ॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥ गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इंद्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे गागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम् ॥ आनन्दाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा रासंधवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ये त्रयस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसै-

से वर्णन करा और जैसे भगवान् ने, आज्ञाकरी थी उस के अनुसार सावधान रहकर राज्य करनेलगे ॥ ३० ॥ इसप्रकार भीमसेन से जरासन्ध को मरवाकर उसके सहदेव पुत्रसे पूजन करेहुए वहभगवान् श्रीकृष्णजी भीमसेन और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चलदिये॥ ३१ ॥ तदनन्तर शत्रुओं को जीतेहुए वह भीमसेन अर्जुन और श्रीकृष्णजी, इन्द्रप्रस्थ में पहुँचे और तहां जाकर उन्होंने, अपने मित्रों को हर्षित करने के निमित्त और शत्रुओं को खिन्न करने के निमित्त अपना २ शंख बजाया ॥ ३२ ॥ तब वह शंखों का शब्द सुनकर प्रसन्नचित्तहुए इन्द्रप्रस्थ में के रहनेवाले पुरुषों ने, जरासन्ध मरण को प्राप्त होगया ऐसा समझा और धर्मराज भी पूर्णमनोरथ हुए । ३३ ॥ तदनन्तर उन भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने, धर्मराज को वन्दना करके अपने करेहुए सब कार्य उन को सुनाये ॥ ३४ ॥ तब श्रीकृष्णजी ने कृपा करके वह जरासन्ध को मारनारूप कार्य सिद्धकरा ऐसा सुनकर धर्मराज, नेत्रों में से आनन्दाश्रुओं के बिन्दु बहातेहुए प्रेम से गद्गद होकर कुछ समयपर्यन्त कुछ भी कहने को समर्थ नहीं हुए मौन बैठे रहे॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में त्रिसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे चौहत्तरवें अध्याय में धर्मराज ने जो ब्राह्मणों से राजसूययज्ञ कराया तिस का और आगे पूजा होने के प्रसङ्ग में हुए शिशुपाल के वध का वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार धर्मराज, जरासन्ध का वध और प्रभुश्रीकृष्णजी का वह प्रभाव सुनकर सन्तुष्टचित्त होतेहुए श्रीकृष्णजी से कहनेलगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिर ने कहा कि—जो त्रिलोकी को सन्मार्ग का उपदेश करनेवाले ब्रह्मादिक हैं और जो सब लोकों के पालक इन्द्रादिक हैं वह सब, जिन तुम्हारे आज्ञा के वचन को, दुर्लभ और अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्ते-ऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥ नह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रविः ॥ ४ ॥ न वै ते-ऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा याज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोसितः वशिष्ठश्चयवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुछन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा याज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥

अहोभाग्य से ही मिलाहुआ मानकर बडे सन्मान के साथ पालन करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक! ऐसे कमलनयन तुम, स्वयं दीन होकर राजा होने का व्यर्थ अभिमान करनेवाले जो हम, तिन के आज्ञा के वचन को धारण करते हो सो केवल मनुष्यचेष्टा का अनुकरण है वास्तव में आप के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ अथवा जैसे सूर्य का तेज, उदय से, अस्त से वा ऊँचनीच सम्बन्धों से बढता घटता नहीं है तैसे ही एक, अद्वितीय, ब्रह्म, परमात्मा जो तुम तिन तुम्हारा तेज, दूसरों को आज्ञा करने से वा दूसरों की आज्ञा का पालन करने से बढता घटता नहीं है अर्थात् आप की कृपा से ही यह सब बातें होती हैं ॥ ४ ॥ हे अजित माधव! तुम्हारे भक्तों को भी देह और पुत्रादिकों के ऊपर 'मैं और मेरा इसप्रकार की' तथा औरों के ऊपर 'तू और तेरा इसप्रकार की' पशुओं की समान शरीरों के विषय में भेदबुद्धि नहीं होती है फिर तुम्हें कहाँ से होयगी ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार कहकर, जिन को श्रीकृष्णजी ने यज्ञ करने के विषय में सम्मति दी है ऐसे उन धर्मराज् ने, यज्ञ के योग्य समय में, ब्रह्मज्ञानी योग्य ब्राह्मणों को होता, अध्वर्यु आदि ऋत्विज वरा ॥ ६ ॥ उन के नाम-वेदव्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन ॥ ८ ॥ अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण यह थे ॥ ९ ॥ हे राजन्! तैसे ही भीष्म, द्रोण, कृपादिक राजे, पुत्रों सहित धृतराष्ट्र, परमबुद्धिमान् विदुर और दूसरे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बुलाये गये थे; वह सब राजे और उन के मंत्री आदि सब लोक यज्ञ देखने को उत्सुक होकर तहां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्ते देवं यजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथान्यायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमीः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इन्द्रादयो लोकपाला विरिंचभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पांडुसुतस्य वै ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ १५ ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥ १६ ॥ सौत्येहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥१७॥ सदस्याभ्यर्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्ननैकात्म्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥ अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥ एक एवाद्वितीयोऽसावेतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति

आये थे ॥ १० ॥ ११ ॥ तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने, यज्ञभूमि को सुवर्ण के हलों से खोदकर, शुद्ध करके तहाँ विधिपूर्वक धर्मराज को यज्ञ की दीक्षा धारण करवाई ॥ १२ ॥ जैसे पहिले वरुण के राजसूययज्ञ में, सुवर्ण के पात्र आदि थे तैसे ही सब उपकरण (सामान) इस यज्ञमें भी थे ब्रह्मा-रुद्रसहित इन्द्रादि लोकपाल, गणोंसहित सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, बड़े २ नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, राजे और राजरानियें यह सब, राजा के बुलवाने से सब स्थानों से, पाण्डुपुत्र धर्मराजके राजसूय यज्ञ में आये और उन्हों ने कृष्णभक्त उन धर्मराज का वह राजसूय यज्ञ विस्मय न मानकर सब प्रकार से ठीक माना ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ उससमय देवताओं की समान तेजस्वी ऋत्विजों ने, जैसे पहिले देवताओं ने वरुण से यजन करवाया था तैसे राजसूय यज्ञ की विधि के अनुसार उन धर्मराज से यजन करवाया ॥ १६ ॥ तदनन्तर एकाग्रचित्त तिन राजा ने सोमवल्ली से रस निकालने के दिन महाभाग ऋत्विजों का और सभापति का विधिपूर्वक पूजन करने का प्रारम्भ करा ॥ १७ ॥ उससमय, सभासदों में पहिले पूजा करनेयोग्य कौन है ? इस का विचार करनेवाले सभासदों से, बहुतसे योग्यपुरुषों के होने के कारण जब एक का निश्चय करने में नहीं आया तब सहदेव ने कहा कि— ॥ १८ ॥ हे सभासदो ! यादवों के पति भगवान् श्रीकृष्ण ही, सर्वदेवतारूप और देशकालधनादिरूप हैं ॥ १९ ॥ और सब यज्ञ तथा यह सब जगत् जिन का स्वरूप है, अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान और उपासना यह जिन की प्राप्ति के साधन हैं ॥ २० ॥ वह यह सृष्टि के पहिले सजातीय आदि भेदरहित एक ही थे, तदनन्तर उत्पन्न हुआ यह जगत् इन का ही स्वरूप है; क्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीहे कर्माणि जनयन् यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता॥२४॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदां ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादावनिजंयापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबो वहन्मुदा॥२७॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः॥ नार्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम्॥२८॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्ण-

कि—हे सभासदों ! यह दूसरे की अपेक्षा न करके स्वयं जन्मरहित होकर भी अपने ही द्वारा इस जगत् को उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ और, क्योंकि यह सब ही लोक जिन के अनुग्रह से तप योग आदि नानाप्रकार के सत्कर्म करके धर्म आदि पुरुषार्थ को सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ तिस से इन महात्मा श्रीकृष्णजी की पूजा पहिले करना चाहिये; ऐसा करनेपर मानो सकल जीवों की और आत्मा की भी पूजा करी हुई होजायगी ॥ २३ ॥ इस से दियेहुए का अनन्तफल मिले ऐसी इच्छा करनेवाला पुरुष, सब जीवों के अन्तर्यामी, भेदभावरहित, शान्त और पूर्णरूप श्रीकृष्णजीका ही पहिले पूजन करे ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी के प्रभाव को जाननेवाले वह सहदेव, मौन हो बैठे; इस को सुनकर सब ही श्रेष्ठ ब्राह्मण 'बहुत ठीक कहा, बहुत ठीक कहा' इसप्रकार उन की प्रशंसा करनेलगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणों का वचन सुनकर और सभासदों का अभिप्राय जानकर सन्तुष्ट और प्रेम से विह्वल हुए तिन धर्मराज ने, श्रीकृष्णजी की पहिले पूजा करी ॥ २६ ॥ उन के चरणों को धोकर लोकों को पवित्र करनेवाला वह जल, स्त्री—बन्धु—मंत्री और कुटुम्बसहित प्रेम के साथ मस्तक पर धारण करा ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्रों से और बहुत मूल्य के भूषणों से श्रीकृष्णजी की पूजा करके, आनन्द के अश्रुओं से नेत्र भरजाने के कारण वह अच्छी प्रकार देखने को भी समर्थ नहीं हुए ॥ २८ ॥ इसप्रकार पूजा करेहुए भगवान् को देखकर सब लोकों ने हाथ जोड़कर 'नमो जय' ऐसा कहते हुए तिन श्रीकृष्णजी को वन्दना करी उससमय, श्रीकृष्णजी के ऊपर आकाश में से पुष्पों की वर्षा गिरी ॥ २९ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी के गुणों का वर्णन सुनकर दमघोष का पुत्र शिशुपाल, अपने आसन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्यध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठान्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ॥ ३३ ॥ सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिर्नैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेविता-

पर से उठकर, भगवान् के गुणों का वर्णन सहन न होने के कारण क्रोधित हो, सभा में अपना हाथ ऊपर को उठाकर भगवान् को कठोर वचन सुनाताहुआ इसप्रकार कहनेलगा कि—॥ ३० ॥ यह समय सब कुछ करने को समर्थ है और उस को उलंघन करने को कोई समर्थ नहीं है, ऐसा काल का माहात्म्य कहनेवाली जो श्रुति है वह यथार्थ है, क्योंकि—काल के प्रभाव से ही ज्ञान और अवस्था में वृद्ध पुरुषों की बुद्धि भी बालक के वाक्यों से भ्रम में पडजाती है ॥ ३१ ॥ हे सभापतियों ! तुम सब ही पूजा के पात्र (योग्य) को जाननेवालों में में श्रेष्ठ हो, इसकारण पूजा के विषय में श्रीकृष्ण संमत (सबप्रकार योग्य) है ऐसा जो बालक (सहदेव) का कहना है उस को ठीक न मानो ॥ ३२ ॥ क्योंकि—तप, विद्या और व्रत धारण करनेवाले, ज्ञान के प्रताप से पापरहितहुए, ब्रह्मज्ञानी और लोकपालों करके पूजन करनेयोग्य बडे २ सभापति ऋषियों का अनादर करके, गोपाल × और क्षत्रियकुल में दूषणरूप, यह कृष्ण पूजा के विषय में कैसे योग्य होसक्ता है ? किन्तु जैसे कौआ देवताओं के पुरोडाश के योग्य नहीं होसक्ता है तैसे ही योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ वर्ण ·।· आश्रम और कुल से भ्रष्ट, सकलधर्मों से निकालाहुआ, यथेष्ट आचरण करनेवाला और गुणहीन यह कृष्ण पूजा के योग्य कैसे होसक्ता है ? ॥ ३५ ॥ ययाति + राजा ने इस के कुल को शाप दिया है इसकारण वह कुल सत्पुरुषों में से बाहर कराहुआ है और

× इस का ही वास्तविक अर्थ—गो कहिये वेदादि वाणी का पाल कहिये रक्षा करनेवाला और कुलपांसन कहिये कुलप जो पाखण्डी तिन का अंस न कहिये नाश करनेवाला, इत्यादि समझना।

·।· यह कृष्ण ब्रह्मरूप होने के कारण वर्ण आश्रम और कुलों से रहित, अनधिकारी होने के कारण सर्वधर्मबहिष्कृत, स्वच्छन्द होने के कारण यथेच्छाचारी और तम आदि गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण हैं इसकारण ही केवल जीवों के योग्य जो पूजा तिस के योग्य कैसे होसक्ते हैं ?।

+ इन के कुल को ययाति राजा ने शाप दिया इसकारण वह साधुओं से बहिष्कृत करेहुए हैं क्या ? नहीं, किन्तु शिर से वन्दना करनेयोग्य हैं, और अस्मदादि के कुलों की समान यह व्यर्थ मद्यपान करनेवाले हैं क्या ? नहीं, किन्तु सदाचारसम्पन्न हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्देशान् हित्वैते ब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधंते दस्यवः प्रजाः ॥ ॥ ३७ ॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ॥ नोवाच किंचिद्भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निंदनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पांडुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृंजयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रांतो जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वासिनार्य स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापतितो रिपोः ॥४३॥ शब्दः

निरन्तर वह कुलव्यर्थ मद्यपान करने में तत्पर है, वह पूजा के योग्य कैसे होसक्ता है? ॥३६॥ यह चोर * यादव ब्रह्मर्षियों के सेवन करेहुए मथुरादिदेशों का त्याग करके, वेदपाठ के तेज से रहित और दुर्गम समुद्र का (उस में की द्वारका नगरी का) आश्रय करके प्रजाओं को पीडा देते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इत्यादि दूसरे बहुत से अमङ्गल वचन, क्षीणपुण्यहुआ वह शिशुपाल कहनेलगा तब, गीदड के अमंगल रुदन को सुनकर भी जैसे सिंह कुछ नहीं बोलता है तैसे भगवान् श्रीकृष्णजी ने कुछ भी नहीं कहा ॥ ३८ ॥ तब भगवान् की वह दुःसह निन्दा सुनकर सभासद पुरुष, क्रोध से शिशुपाल को 'हा दुष्ट दुरात्मा मर क्यों न जाय? ऐसा शाप देतेहुए' अपना २ कान बन्दकरके उस सभा में से उठकर चलेगये ॥ ३९ ॥ क्योंकि-भगवान् की वा भगवान् के भक्तों की निन्दा सुनकर जो मनुष्य, तहाँ से नहीं उठजाता है वह पुण्य से रहित होकर नरक में जाकर पडता है ॥ ४० ॥ सभासदों के उठजाने पर पाण्डव, मत्स्य, कैकेय, और सृंजय यह राजे, क्रोधित हो हाथ में शस्त्र लेकर शिशुपाल को मारने की इच्छा करतेहुए उठकर खडेहुए ॥ ४१ ॥ हे राजन्! तदनन्तर, वह निर्भय शिशुपाल भी कृष्ण की ओर के तिन धर्मराज आदिकों को ललकारता हुआ, उन को मारने के निमित्त हाथ में ढाल-तलवार लेकर खडाहुआ ॥ ४२ ॥ इतने ही में भगवान् ने विचार करा कि—यह मेरा पार्षद मेरी समान बलवान् है, यदि इस को मैं नहीं मारूँगा तो यह इन सबों को मारडालेगा, ऐसा विचारकर आप ही आसन पर से उठकर अपने उन पाण्डवादिकों को निषेध करके क्रोध से, छुरे की समान धारवाले चक्र से, अपने ही शरीर पर को झपटकर आनेवाले तिस शत्रु का मस्तक

* यह यादव, ब्रह्मर्षियों करके सेवन करेहुए मथुरा आदि देशों का आश्रय करके वेदविरुद्ध और कठिन से जानने योग्य पाखण्ड के चिन्ह धारण करनेवाले लोकों को, उन से वह चिन्ह छुटवाकर दण्ड देते हैं और चोरी करनेवाले प्रजारूप पुरुषों को दण्ड देते हैं, फिर यादवों से दूसरा कौन धर्मात्मा है? कोई भी नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् । तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥ चैद्यदेहे स्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणं ॥ ४६ ॥ ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् । सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥५०॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुररा-

काटलिया ॥४३॥ इसप्रकार शिशुपाल को मारने पर, तहाँ बडा कलकलाहट का शब्द होनेलगा और उस के पक्षपाती राजे भी अपने प्राणों को बचाने की इच्छा करके जिधर तिधर को भागगये ॥ ४४ ॥ उस समय शिशुपाल के देह में से निकलाहुआ जो जीवरूपी तेज सो, सब लोकों के देखतेहुए, जैसे आकाश में से नीचे गिराहुआ उल्का रूप तेज, भूमि में घुसजाता है तैसे श्रीकृष्णजी के देह में प्रविष्ट होगया अर्थात् उन की सायुज्यता को प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ अब, ऐसे निन्दक का वासुदेव भगवान् के विषें कैसे प्रवेश हुआ? ऐसा कोई कहे तो हिरण्यकशिपु, रावण और शिशुपाल इन तीन जन्मों में बढेहुए द्वेष से घबडाई हुई बुद्धि के द्वारा भगवान् का ध्यान करनेवाला वह शिशुपाल, तन्मयता को प्राप्त हुआ अर्थात् फिर वैकुण्ठ में भगवान् का पार्षद होकर रहा. इसप्रकार निरन्तर चिन्तवन होना ही ध्येयरूप (भगवद्रूप) का आकार होने में कारण हुआ था ॥ ४६ ॥ तदनन्तर चक्रवर्त्ती राजा तिन युधिष्ठिर ने, सभासदोंसहित ऋत्विजों को बहुत दक्षिणा दी और पूजा करने के योग्य दूसरे सबों का भी पूजन करके विधिपूर्वक यज्ञ के अन्त का स्नान करा ॥ ४७ ॥ इसप्रकार धर्मराज का राजसूययज्ञ सिद्ध करके, कुन्ती और पाण्डवों ने जिन से रहने की प्रार्थना करी है ऐसे वह योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी, कितने ही महीने पर्यन्त तहाँ रहे थे ॥ ४८ ॥ फिर, अपने जाने की इच्छा न करनेवाले भी धर्मराज से बूझकर वह देवकी-पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी, स्त्रियोंसहित और मंत्रियोंसहित अपनी द्वारका को चलेगये ॥ ४९ ॥ हे राजन्! वैकुण्ठवासी जयविजयों का सनकादिकों के शाप से बारम्बार जो जन्म आदि हुआ उस के विषय का यह कथानक मैं ने तुम से बहुत विस्तार के साथ कहा है ॥५०॥ राजसूययज्ञ का अवभृथ स्नान करेहुए वह धर्मराज, ब्राह्मणों से और क्षत्रियों से युक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ड्डिव ॥ ५१ ॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य तां ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पितागृहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बांधवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः

सभा में इन्द्र की समान शोभायमान होनेलगे ॥ ५१ ॥ धर्मराज के पूजन करेहुए सब ही देवता, मनुष्य और प्रमथ आदि गण, श्रीकृष्णजी की और यज्ञ की प्रशंसा करतेहुए अपने अपने स्थान को चलेगये ॥ ५२ ॥ उस समय जिस ने सब को आनन्द देनेवाली और बढ़ीहुई वह युधिष्ठिर की सम्पत्ति देखकर सहन नहीं करी, तिस एक कलियुग के अंशरूप, पापाचारी और कुरुकुलनाशक दुर्योधन के सिवाय सबों को वह यज्ञ देखकर आनन्दहुआ ॥५३॥ जो पुरुष, इस शिशुपालवध आदि विष्णुभगवान् के कर्म, जरासन्ध ने बन्धन में डालकर रक्खेहुए राजाओं के मोक्ष और यज्ञ के बड़ेभारी उत्साह का कीर्त्तन, श्रवण और स्मरण करेगा वह सब पापों से छूटजायगा ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में चतुःसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ अब आगे इस पिछत्तरवें अध्याय में राजसूय यज्ञ के अवभृथ स्नान का उत्सव और दृष्टि में भ्रम होनेपर भी, सह्य नहोने के कारण दुर्योधन का मानभङ्ग वर्णन करा है ॥ * ॥ एक दुर्योधन को ही दुःख होने का कारण बूझने के निमित्त राजा ने कहाकि-हे ब्रह्मन्! शुकदेवजी! एक दुर्योधन को छोड़कर, जो तहाँ श्रेष्ठ मनुष्य, राजे और देवता आये थे वह सब ही धर्मराज का राजसूय महोत्सव देखकर आनन्द को प्राप्त हुए; ऐसा मैंने तुम से सुना सो उन में एक दुर्योधन की ही अप्रसन्नता होने का कारण क्या है सो कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! तुम्हारे दादा जो महात्मा युधिष्ठिर उन के राजसूय यज्ञ में प्रेम से बँधेहुए उन के सब ही बाँधव, यज्ञ के नानाप्रकार के कार्य करतेथे ॥ ३ ॥ भीमसेन पाकशाला (रसोइघर) का अध्यक्ष था, सुयोधन (दुर्योधन) धनका अध्यक्ष (खजांची) था, सहदेव तिस उत्सव में आनेवालों का पूजा सत्कार करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः पादावनजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये चे सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपितो महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तेते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥ ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदंगशंखपणवधुंधुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनादिभिः ॥ स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकाम्बोजकुरुकैकयकोसलाः ॥ कम्पयंतो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसरा ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विक्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥ स्वलंकृता नरा

वाला था, नकुल अनेकों प्रकार की वस्तुओं को इकट्ठा करनेवाला था ॥ ४ ॥ पूजनीय लोकों की चन्दन के लेपन आदि से शुश्रूषा करने में अर्जुन था, श्रीकृष्णजी चरण धुलाने के कामपर थे; भक्ष्यभोज्य आदि पदार्थों के परोसने पर द्रोपदी थी, अति उदारचित्त कर्ण दानाध्यक्ष था ॥ ५ ॥ तैसेही हे राजेन्द्र ! सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर आदि, बाह्लीक राजा के पुत्र भूरिआदि तथा सन्तर्दन आदि बान्धव वह सब ही उस महायज्ञ में अनेक कार्यों के करने में नियुक्त करे थे, सो वह धर्मराज का प्रिय करने की इच्छा से पूर्वोक्त अपने २ कार्य को करते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऋत्विज्, सभासद्, बड़े २ ज्ञानी और मित्र आदिकों का मधुरभाषण, भूषण और दक्षिणा आदि से सत्कार होनेपर, तथा शिशुपाल के भी भक्तपालक श्रीकृष्णजी के चरण में प्रवेश करने पर सबोंने भागीरथी में अवभृथ स्नान करा ॥ ८ ॥ उस अवभृथ (यज्ञ के अन्त के) स्नान के उत्सव में मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, नौबत, नगाड़े, नफीरी आदि नानाप्रकार के चित्र विचित्र बाजे बजनेलगे ॥ ९ ॥ उस समय हर्ष को प्राप्तहुई वारांगना नृत्य करनेलगीं, गवैयों के समूह गानेलगे; उससमय उन वीणा, मुरली और घंटों के बड़ेभारी शब्द से आकाश गूँजउठा ॥ १० ॥ उससमय, सुवर्ण के पुष्पों की माला धारण करनेवाले राजे, जिनकी ध्वजाओं के और पताकाओं के अग्रभाग चित्रविचित्र रंगों के हैं ऐसे अपने हाथी, रथ, घोड़े और उत्तम आभूषण धारण करेहुए सिपाही ऐसी चतुरंगिणी सेनाओं से घिरकर नगर के बाहर निकले ॥ ११ ॥ तथा, यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोसलवंशो के क्षत्रिय, यह सब धर्मराज को आगे करके सेनाओं से पृथ्वी को डगमगातेहुए चले ॥ १२ ॥ तैसे सदस्य, ऋत्विज् तथा दूसरे भी श्रेष्ठ ब्राह्मण बड़ाभारी वेदघोष करतेहुए चले, उससमय देवता ऋषि, पि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नार्यो गन्धस्रग्भूषणांबरैः ॥ विलिंपंत्योऽभिषिंचंत्यो विजह्रुर्विवृधैः रसैः ।१४। तैल गोरसगंधोदहरिद्रासांद्रकुंकुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिंपंत्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥१५॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥१६॥ ता देवरानृत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः १७ ॥ स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्मपालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ।१८॥ पत्नीसंयाजावभृथैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचान्तं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सह कृष्णया ॥१९॥ देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् ॥

तर और गन्धर्व पुष्पों की वर्षा करतेहुए स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ नगर में के पुरुष और स्त्रियें, चन्दन का लेपन, पुष्पों की माला, भूषण और वस्त्रों से उत्तम सजधजकर अनेकों प्रकार के रंगरसों से परस्पर लेपन करतेहुए और भिगोते हुए, क्रीड़ा करनेलगे ॥ १४ ॥ उससमय, तेल, गोरस, सुगन्धित जल, हलदी और गाढ़े केशर आदि से पुरुषों के द्वारा लेपन करीहुई वारांगना, पलटे में उन पुरुषों को लेपन करतीहुई क्रीड़ा करनेलगीं ॥१५॥ उससमय तिस उत्साह को देखने के निमित्त,जैसे देवांगना उत्तम विमानों में बैठकर आई थीं तैसेही देवताओं की स्त्रियें भी,योधाओं से उत्तम रक्षाकरी हुई अवभृथ स्नान करनेको रथ आदिमें बैठकर नगरसे बाहर भागीरथी के तीरपर आईं,वह युधिष्ठिर आदिके गमेरे भाई और उनकी स्त्रियोंसे जल और गोरसादि करके भिगोई हुईं, लज्जायुक्त हास्य से प्रफुल्लित मुख होकर शोभा पानेलगीं॥ १६ ॥वह राजरानियें,जब जल उछालने के चमड़े के यंत्रों से (फुवारोंसे)और पिचकारियोंसेअपने देवरों के और उनकी स्त्रियोंके ऊपरको जल उडानेलगीं तब उन के सूक्ष्म वस्त्र,अत्यन्त भीगगये थे,इसकारण उनके शरीर,कुच,जंघा और पेट प्रकट दीखते थे और उन की तिस जलक्रीडा की परमउत्कण्ठा से बन्धन खुलेहुए केशोंके जूडों में से फूल गिरते थे; इसप्रकार के सुन्दर विहारों से वह राजरानियें,कामीजनों के कामवासनायुक्त मन को चलायमान करनेलगीं॥१७॥उससमय वह सार्वभौम राजा युधिष्ठिर,सुवर्ण के पुष्पों की मालाओं से युक्त और उत्तम घोडे जुतेहुए अपने रथों पर स्त्रियों के साथ चढे तब, वह प्रयाज अनुयाज आदि अङ्ग क्रियाओं सहित मूर्त्तिमान् प्रकट हुआ राजसूययज्ञ ही है क्या इसप्रकार शोभायमान होनेलगे ॥ १८ ॥ तिन ऋत्विजों ने, पत्नीसंयाज नामवाला याग, और अवभृथ के सम्बन्धी कर्म करके आचमन करेहुए द्रोपदी सहित तिन धर्मराज को गङ्गा में बडे उत्साह के साथ स्नान करवाया ॥ १९ ॥ उस समय मनुष्यों की दुन्दुभियों के साथ देवताओं की भी दुन्दुभी बजनेलगीं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांबरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुरुचो मणिकुंडलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च

देवता, ऋषि, पितर तथा मनुष्य, तिन युधिष्ठिर के ऊपर पुष्पों की वर्षा करनेलगे ॥२०॥ इसप्रकार यजमान का स्नान होने पर ब्राह्मणादि चारों वर्णों के और ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रमों के सब पुरुषों ने तिस गङ्गा में स्नान करा; क्योंकि—यह अवभृथ स्नान होने पर, ब्रह्महत्यादि महापातक करनेवाला भी पुरुष तिन पापों से तत्काल छूटजाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर उन धर्मराज ने, नवीन रेशमी वस्त्र पहिनकर और भी अलङ्कार धारण करे और भूषण वस्त्र आदि देकर ऋत्विज्, सभासद तथा ब्राह्मणों का सत्कार करा ॥ २२ ॥ वह युधिष्ठिर नारायण में तत्पर थे इसकारण उन सर्वात्मा नारायण की प्रीति के अर्थ उन्होंने, बन्धु, जाति, राजे, मित्र और सुहृदों का तैसे ही और भी सब लोकों का वारम्वार सत्कार करा ॥ २३ ॥ उस समय, सब पुरुष, मणि जड़े कुण्डल, माला, पगडी, अंगरखे, दुपट्टे और बहुत मूल्य के हार धारण करके देवताओं की समान दमकउठे. तैसे ही सब स्त्रियें भी, दोनों कानों में के कुण्डलों से और अलकों के समूह से मुख पर तेजयुक्त होतीहुई, कमर में धारण करीहुई सुवर्ण की मेखला से शोभायमान होनेलगीं ॥२४॥ हे राजन्! तदनन्तर सुशील ऋत्विज्, ब्रह्मज्ञानी सभासद, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र. और तहाँ जो राजे आये थे वह ॥ २५ ॥ तैसे ही देवता, ऋषि, पितर; भूत और अनुचरोंसहित लोकपाल यह सब, दानमान के द्वारा धर्मराज से सत्कार को प्राप्त होतेहुए अपने २ स्थान को चलेगये ॥ २६ ॥ हरिभक्त राजर्षि युधिष्ठिर के तिस राजसूय के बड़ेभारी उत्साह की प्रशंसा करनेवाले पुरुष, जैसे अमृत को पीनेवाला मनुष्य तृप्त नहीं होता है तैसे तृप्त नहीं हुए ॥ २७ ॥ उससमय वियोग को न सहनेवाले धर्मराज ने, अपने मित्र, सम्बन्धी, बान्धव और श्रीकृष्णजी को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यागैकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्रांग न्यवात्सीत्तत्प्रियंकरः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च कुशस्थलीं ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदाऽतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियं ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीनानाविभांति किल विश्वसृजोपकल्पाः ॥ तांभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विपक्षहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुंतलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयकल्पायां कापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभि-

प्रेम के कारण टिकालिया ॥ २८ ॥ हे राजन्! उन धर्मराज का प्रिय करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी, साम्ब आदि यादव वीरों को द्वारका को भेजदिया, आप तहाँ ही रहे॥२९॥ इसप्रकार धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, औरों को दुस्तर ऐसे भी राजसूय यज्ञ की समाप्ति की इच्छारूप महासमुद्र को श्रीकृष्ण रूप मल्लाह के आश्रय से तरकर निश्चिन्त हुए॥ ३०॥ एकसमय, भगवद्भक्त उन राजा युधिष्ठिर के रणवास में सम्पदा तथा राजसूय यज्ञ का गौरव देखकर अपने को वह प्राप्त न होने के कारण दुर्योधन मन में सन्तापयुक्त हुआ ॥ ३१ ॥ क्योंकि—हे राजन्! धर्मराज के जिस रणवास में मयासुर की रचीहुई नरपति दैत्यपति और देवपतियों की अनेकों प्रकार की सम्पदा शोभायमान थीं उन के साथ द्रोपदी अपने युधिष्ठिर आदि पतियों की सेवा कररही थी उस सम्पत्तियुक्त द्रोपदी के ऊपर आसक्तचित्त हुआ वह दुर्योधन अपने मन में सन्ताप पाता था॥ ३२ ॥और जिस रणवास में उससमय (दुर्योधन का हास्य करते समय) नितम्ब के भार से धीरेधीरे चलने के कारण भूषणों के द्वारा शब्द करतेहुए चरणों से शोभायमान कुचों के केशर से लाल २ हार को धारण करनेवाली, हलतेहुए कुण्डलों से, और केशपाश से, शोभायमान मुखवाली और दुर्बल कमरवाली श्रीकृष्णजी की सहस्रों स्त्रियें शोभायमान थीं ॥ ३३ ॥ उस रणवास में मयासुर की रचना करीहुई सभा के विषैं एकसमय अपने छोटे भ्राताओं सहित और हित अहित जतानेवाले श्रीकृष्णजी के साथ वह सार्वभौम धर्मराज सुवर्ण के सिंहासनपर साक्षात् इन्द्रकी समान विराजमान होकर छत्रचामरादि शोभा से सेवा किये जारहे थे तब, बन्दिजनों ने उनकी स्तुति करना प्रारम्भ करी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृप ॥ किरीटमाली न्यविशदसिंहस्तः क्षिपन् रुषा ॥ ३६ ॥ स्थलेऽम्भ्यगृह्णा-द्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थलेपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ॥ ३७ ॥ जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हा हेति शब्दः सुमहानभूत्सतांमजातशत्रुर्वि-मना इवाभवत् ॥ बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्वशा ॥ ॥३९॥एतत्तेऽभिहितं राजन् यत्पृष्टोऽहमिह त्वया॥सुयोधनस्य दौरात्म्यं राज-सूये महाक्रतौ॥४०॥इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्योधनमा-नभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथान्ये-दपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥

हे राजन्! तिस समय उस सभा में, अभिमानी दुर्योधन, अपने दुःशासन आदि भ्राताओं सहित, हाथ में तरवार, मस्तकपर किरीट और कंठ में माला धारण करके, क्रोध से द्वार-पालों को धमकी देताहुआ प्रविष्ट हुआ ॥३६॥ फिर उसने मयासुर की माया से मोहित होकर स्थल में 'यह जल है' ऐसा मानकर पहिरेहुए वस्त्र का जो भागनीचे को लटक रहाथा वह ऊपर को उठाकर पकडलिया; तैसेही वह, जल में 'यह थल है' ऐसे भ्रम से एकाएकी फिसलकर गिरपड़ा ॥ ३७ ॥ उस को देखकर भीमसेन हँसा तैसेही स्त्रियें और दूसरे राजे भी, धर्मराज के निषेध करने पर भी श्रीकृष्णजी की कटाक्ष से (इशारे से) अनुमति होने के कारण हँसनेलगे ॥ ३८ ॥ तब वह दुर्योधन, तिस हास्य से लज्जित हुआ और नीचे को मुख करके क्रोधाग्नि से भस्म होताहुआ अपने घर को जानेके विषय में राजा से आज्ञा विना लिये ही सभा में से उठकर हस्तिनापुर में के अपने घर को चला गया उससमय सत्पुरुषों में आगे को होनेवाले अनर्थ का सूचक बड़ाभारी हाहाकार शब्द हुआ और धर्मराज भी खिन्नसे होगये, तैसेही जिन की दृष्टिमात्र से दुर्योधन, भ्रान्ति को प्राप्त हुआ, वह पृथ्वी का भार हरने की इच्छा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी भी मौनही रहे ॥ ३९ ॥ हे राजन्! तुमने जो मुझ से, इस राजसूय महायज्ञ में दुर्योधन की अप्रस न्नता का कारण बूझा था सो यह दुर्योधन का दुष्टचित्तपना मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा है ॥४०॥इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में पञ्चसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे छियत्तरवें अध्याय में, यादवों के और शाल्व के महासंग्राम में, शाल्व के द्युमान् नामवाले मन्त्री की गदा के प्रहारसे युद्धभूमि से प्रद्युम्न निकलकर चलेगये, यहकथा वर्णन करी है॥*॥श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! अब, क्रीडा करने के निमित्त मनुष्य का शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी का दूसरा भी अद्भुतकर्म सुनो, कि—जिस प्रकार उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः सङ्ख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजां ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥३॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण च्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसां ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयं ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥ निरुद्ध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्र-

शाल्व का वध करा ॥ १ ॥ शिशुपाल का मित्र शाल्व, रुक्मिणी के विवाह में आया था, तब यादवों के साथ जो युद्ध हुआ उस में वह शाल्व तथा जरासन्धादिक दूसरे भी राजों को यादवों ने जीत लिया था ॥ २ ॥ उस समय, सब राजाओं के सुनतेहुए शाल्व ने प्रतिज्ञा करी थी कि—हे राजाओं! मैं इस पृथ्वी को यदुकुलरहित करदूँगा, मेरा पराक्रम देखो ॥ ३ ॥ हे राजन्! वह मूढ शाल्व, इसप्रकार प्रतिज्ञा करके, प्रतिदिन एकबार मुट्ठीभर धूलि खाकर, प्रभु, देव शङ्कर भगवान् की आराधना करनेलगा ॥४॥ श्रीशङ्कर भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले हैं तथापि उन्होंने, श्रीकृष्ण का द्वेष करनेवाले शाल्व के पास मेरा वरदान व्यर्थ होगा ऐसा मानकर पहिले उस की उपेक्षाकरी फिर एक वर्ष के अनन्तर, शरण में आयेहुए तिस शाल्व से, तू वर मांगले ऐसा कहा ॥५॥ तब उस शाल्व ने, देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और राक्षस, यह जिस को न भेदसकें ऐसा अपनी इच्छा के अनुसार जानेवाला, और यादवों को भय देनेवाला एक विमान माँगलिया ॥ ६ ॥ तब तथास्तु ऐसा कहकर श्रीशङ्कर ने, शत्रुओं के नगर जीतनेवाले मयासुर को आज्ञाकरी और उस से केवल फौलाद का सौभ नामक विमान बनवाकर शाल्व को देदिया ॥ ७ ॥ तब वह शाल्व, अन्धकार के स्थान, जिस को शत्रु न छेसकें ऐसे और अपनी इच्छानुसार चलनेवाले विमान के मिलने पर, उस में बैठकर यादवों के करेहुए वैर का स्मरण करताहुआ, उन की द्वारका नगरी के ऊपर चढाई करने को चल दिया ॥ ८ ॥ हे राजन्! वह शाल्व अपनी बडीभारी सेना से द्वारका नगरी को चारों ओर से घेरकर, फलों के बाग और फूलों के बगीचे सब तोडनेलगा ॥ ९ ॥ तथा नगर के द्वार, घरों के द्वार, राजमंदिर, अटारियें और उन से भी ऊपर को उठीहुई भीतों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचण्डश्चक्रवातो भूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजन्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवानवीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥ तांश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पंचविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्व जिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्वं सप्तभिः कैकयास्य सैनिकान् ॥ दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं

तथा क्रीडा के स्थानों को तोडनेलगा और उस श्रेष्ठ सौभनामक विमान में से शस्त्रों की वर्षा भी पडनेलगीं ॥ १० ॥ शिला, वृक्ष, वज्रपात, सर्प, जल की धारा और बालू की वर्षा होनेलगी; प्रचण्ड आँधी का पवन चलनेलगा, सब दिशा धूलि से ढकगईं ॥११॥ हे राजन्! इसप्रकार सौभ विमान से अत्यन्त पीडित हुई वह श्रीकृष्णजी की द्वारका नगरी, जैसे त्रिपुरासुर की पीडित करीहुई पृथ्वी सुखहीन हुई थी तैसे ही सुख को न प्राप्त हुई ॥ १२ ॥ उस समय भगवान् प्रद्युम्न ने, अपनी सब प्रजा को पीडित हुई देखकर, सबों से कहा कि—डरो मत, और वह यशस्वी प्रद्युम्न रथ पर चढकर युद्ध के स्थान में गये ॥१३॥ तैसे ही दूसरे भी बडे २ धनुष्धारी रथों के समूहों के स्वामियों के स्वामी सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, छोटे भ्राताओंसहित अक्रूर, हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक और सारण, यह सब ही रथ हाथी, घोडे और पैदल रूप चतुरङ्गिणी सेना से रक्षित होतेहुए, कवच(बख्तर)पहिनकर युद्ध करने को बाहर निकले॥१४॥१५॥ तदनन्तर शाल्व के पुरुषों का यादवोंके साथ,जैसे पहिले असुरोंका देवताओं के साथ युद्ध हुआ था तैसे भयङ्कर और सुनने तथा देखनेवाले पुरुषोंके शरीरपर रोमाञ्च खडे करनेवाला युद्धप्रारम्भ हुआ॥१६॥तब प्रद्युम्न ने अपने दिव्य अस्त्रों से शाल्व की बहुत शस्त्रों की वर्षारूप माया एक क्षणमें, जैसे सूर्य रात्रि के अन्धकार का नाश करता है तैसे नष्ट करडाली ॥ १७ ॥ और शाल्व का जो सेनापति था उस को, सुवर्ण के पर और लोहे के अग्रभागवाले और जिन की गाँठे नीची हैं ऐसे पचीस बाणों से वेधडाला ॥ १८ ॥ फिर सौ बाणों से शाल्व को, एक २ बाण से उस के योधाओं को, दश २ बाणों से सारथियों को और तीन २

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मैहत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ ॥२०॥बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तदुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्तत्सैनतोमुंचन् शरान सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानानीकः शाल्वोऽमुञ्चत्परैरितैः॥२४॥ शाल्वानीकाशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयं जिगीषवः ॥२५॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्यं व्यहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिंदमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहू-

वाणों से उस के हाथ घोडे रथ आदिकों को ताडन करा ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्न का वह बडा अद्भुत कर्म देखकर यादवों की और शाल्व की सेना में के सब वीरों ने उन प्रद्युम्न की प्रशंसा करी ॥ २० ॥ मयासुर का रचाहुआ वह मायामय सौभ विमान, कभी तो बहुतरूपों से, कभी एक रूप से दीखाता था और कभी दीखाता ही नहीं था ऐसा वह सौभ शत्रुओं को तर्कना करनेको भी अशक्य हुआ॥२१॥कभी तो पृथ्वीपर, कभी आकाश में, कभी पर्वत के शिखरपर, और कभी जल में फिरनेवाला वह सौभ विमान, जलीहुई लकडी के चक्र (बैंटी) की समान एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता था॥२२॥ इसकारण उस विमान और सेना के पुरुषों के साथ वह शाल्व, जहाँ २ दीखता था तहाँ२ यादवों के प्रद्युम्न आदि सेनापति बाण छोडते थे ॥ २३ ॥ जिन का स्पर्श अग्नि की समान भस्म करनेवाला और सूर्य के प्रकाश की समान सर्वव्यापक है और जो सर्प की समान एक स्थान में स्पर्श होते ही मारडालनेवाले हैं ऐसे यादवों के छोडेहुए दुःसह बाणों से जिस का सौभ विमान और सेना पीडितहुए हैं ऐसा वह शाल्व घबडागया ॥ २४ ॥ शाल्व के सेनापति के अस्त्रों के समूहों से अत्यन्त पीडितहुए भी यादव वीरों ने, इस लोक में यश और परलोक में सुख के मिलने की इच्छा करके अपने २ युद्ध का स्थान नहीं छोडा ॥ २५॥ शाल्व का द्युमान् नामवाला मंत्री था, 'जिस को पहिले प्रद्युम्न ने पीडित करा था' उस बलवान् मंत्री ने, प्रद्युम्न के समीप आकर उस को लोहे की गदा से ताडन करा और 'जीतलियारे जीतलिया' ऐसा कहकर बडाभारी शब्द करा॥२६॥तब शत्रुओं को दबानेवाले परन्तु जिन का वक्षःस्थल गदा से घायल होगया है ऐसे उन प्रद्युम्न को, दारुक (श्रीकृष्ण के सारथी) के पुत्र धर्मवेत्ता सारथि ने, शीघ्र ही युद्ध की भूमि से बाहर निकालिया ॥ २७ ॥ वह प्रद्युम्न पहिले मूर्छित होगये थे फिर दो घडी में सावधान होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत् क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥ युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजायाः ॥ क्लैब्यं कथं कथं वीर त्वयाऽऽसीत् कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानतायुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवानग्र्यापोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥ इ० भा० म द० उ० षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नयं मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिं ॥ १ ॥ विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः प्रतिहत्य प्रत्यविद्ध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमे-

सारथी से कहने लगे कि—हे सूत ! तू जो मुझे युद्ध भूमि में से एक ओर को निकाल लाया यह तू ने बडा बुरा कार्य करा ॥ २८ ॥ क्योंकि नपुंसक (अधीर) की समान चित्तवाले तुझ सारथि के द्वारा अपयश पायेहुए एक मुझे छोडकर दूसरा यादवों के कुल में उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष, युद्ध में से भागाहुआ सुनने में नहीं आता है । २९ ॥ सो अब युद्ध में से प्रसिद्ध रूप से भागाहुआ मैं, बलरामकृष्ण पिता के समीप जाकर उन के बूझने पर तहाँ अपने योग्य क्या उत्तर कहूँगा ? ॥ ३० ॥ और मेरी भौजाइयें हँसतीहुई मुझ से स्पष्ट कहेंगी कि—हे वीर ! रण में शत्रुओं के साथ युद्ध करते में तुझे व्याकुलता कैसे २ हुई ? कि जिस से तू भागगया सो बता ॥ ३१ ॥ सारथि ने कहाकि—हे चिरंजीव प्रभो ! मैंने तो अपना धर्म जानकर यह कार्य करा है, क्योंकि सारथी को संकट मे पडेहुए रथी की रक्षा करना चाहिये और रथी सारथी की रक्षा करे ॥ ३२ ॥ यह जानकर ही मैं आप को युद्ध में से एक ओर को लेगया; क्योंकि—शत्रु ने गदा का प्रहार करा था इसकारण मूर्छा को प्राप्त होकर आप के ऊपर प्राणसङ्कट आपहुँचा था ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षट्सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब इस सतत्तरवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी ने हस्तिनापुर से आकर अनेकों माया जाननेवाले शाल्व को मारा और उस के सौभ विमान का भी चूर्ण करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते है कि—हे राजन् ! तिस प्रद्युम्न ने जल का आचमन करके कवच धारण करा तथा हाथ में धनुष लिया और सारथी से यह कहाकि—तू मुझे उस द्युमान् वीर के समीप ले चल ॥ १ ॥ फिर तहाँ पहुँचाएहुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्न ने, अपनी सेना का नाश करनेवाले उस द्युमान को रोककर हँसते २ आठ बाणों से वेधा ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केन चोहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहेमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ८॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥ रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः । विशंतं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायव-

चार वाणों से चार घोड़ों को, और एक वाण से सारथि को मारकर, दो वाणों से धनुष और ध्वजा तोडडाले और एक वाण से मस्तक फोडदिया ॥ ३ ॥ तैसे ही गद, सात्यकि और साम्ब आदि यादव भी शाल्व की उस सेना को मारनेलगे तब सौभ विमान में रहनेवाले सब ही वीर, मस्तक कटकर समुद्र में गिरपडे ॥ ४ ॥ इसप्रकार यादव और शाल्व के वीरों के परस्पर युद्ध करनेपर, वह उन का युद्ध, सत्ताईस दिनपर्यन्त घचापच और भयानक हुआ ॥ ५ ॥ अब दूसरे ऋषियों का मत कहते हैं कि—धर्मराज के बुलाने के कारण इन्द्र प्रस्थ में गयेहुए श्रीकृष्णजी, राजसूय यज्ञ होजाने पर और शिशुपाल के भी मरण को प्राप्त होजानेपर कुछ दिनों पर्यन्त तहाँ रहे थे॥ ६ ॥ उन्होने तहाँ अतिभयानक कुशकुन देखकर, बलरामजी के साथ मैं यहाँ आया हूँ सो शिशुपाल के पक्षपाती राजाओं ने, मेरी द्वारकानगरी का निःसन्देह नाश करा होगा, ऐसा मन में विचारकर भीष्म आदि कुरुवंश के वृद्धों की, पुत्रोंसहित कुन्ती की और सकल ऋषियों की आज्ञा लेकर द्वारका को चले गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ और तहाँ जाकर उन श्रीकृष्णजी ने, अपनी प्रजाओं की, शाल्व की दीहुई उस पीडा को देखकर तैसे ही सौभविमान और शाल्व राजा को देखकर नगर की रक्षा करने के विषय में बलरामजी को नियुक्त करा और दारुक से कहा कि—॥९॥ हे सारथी ! मेरा रथ, शाल्व के समीप शीघ्रही पहुँचा, यह शाल्व राजा बड़ा मायावी है तथापि तू मन में किसी प्रकार का भय मतकर ॥ १० ॥ इसप्रकार आज्ञा करेहुए उस दारुक ने रथपर बैठकर घोडे चलाये, तब यादवों की और शाल्व की सेना में के वीरों ने, युद्ध में प्रवेश करनेवाले श्रीकृष्णजी की ध्वजापर के गरुड़जी को देखा ॥ ११ ॥ तब प्रायः जिसकी सेना के अधिपति मरगये हैं ऐसे तिस शाल्व ने, युद्ध में श्रीकृष्णजी को देख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेश्वरः ॥ प्रहरत्कृष्णसूतायँ शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ विभेद न्यपतद्धस्तात्तच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यतां ॥ विनद्य सौभरार्ढ्यैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यस्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षतां ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥ तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीमवेगया ॥ ताडयत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायां सन्निवृत्तायां शा-

कर उन के सारथी के ऊपर भयङ्कर शब्द करनेवाली शक्ति छोड़ी ॥ १२ ॥ तब आकाश में उत्पन्न हुई उल्काकी समान सब दिशाओं को प्रकाशित करती हुई वेग के साथ आनेवाली तिस शक्ति के, श्रीकृष्णजी ने बाणों से सैंकड़ों टुकड़े करडाले॥ १३ ॥ और तिस शाल्व को सोलह बाणों से वेधकर, आकाश मे घूमनेवाले उस के सौभ विमान को भी बाणों के समूहों से, जैसे सूर्य किरणों से आकाश को सहज में ही वेधलेता है तैसे वेधडाला ॥ १४ ॥ शाल्व ने भी, शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णजी के शार्ङ्ग धनुष सहित बाएँ हाथ को बाण से वेधदिया तब उन श्रीकृष्णजी के हाथ में से शार्ङ्ग धनुष नीचे गिरपडा, यह बड़ा आश्चर्यहुआ ॥ १५ ॥ तहाँ उस आश्चर्य को देखनेवाले सब लोकों में बडा हाहाकार शब्दहुआ तब, सौभ विमान में बैठकर शोभायमान होनेवाला शाल्व राजा, बडी गर्जना करके श्रीकृष्णजी से ऐसे कहनेलगा कि—॥ १६ ॥ अरे मूढ़! जो तूने मेरे देखतेहुए मेरे सखा शिशुपाल की स्त्री (रुक्मिणी) को हरण करा है तैसे ही वह सावधान होकर न आया हुआ हमारा सखा (शिशुपाल) सभा के विषैं, तू ने मारडाला है, तिस, मुझे कोई जीतने वाला ही नहीं है ऐसे तुझ को, यदि मेरे आगे थोडे समय खडारहेगा तो अब ही तीखेबाणों से मरणदशा को पहुँचाऊँगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णजी ने कहाकि—अरे मूर्ख! तू वृथाही बडबड कररहा है, समीप आयेहुए अपने मृत्यु को नहीं देखता है; जो शूर होते हैं वह युद्ध में बहुतसी बातें नहीं बनाते हैं किन्तु पराक्रम ही दिखाते हैं ॥ १९ ॥ इसप्रकार भगवान् ने कहकर और क्रोध में भरकर भयंकर वेग से युक्त गदा के द्वारा उस शाल्व के कन्धे पर प्रहार करा, तब वह रुधिर डालताहुआ काँपनेलगा॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ल्वस्त्वंतरधीयत ॥ ततो मुहूर्तमागत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥ २१ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो पितां ते पितृवत्सल ॥ बद्ध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥ २२ ॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पितां मे बलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥ २५ ॥ एष ते जनितां तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्ववोध आस्ते स्वजनानुषंगतः ॥ महानुभावस्तदबुद्ध्यदासुरीं मायां

फिर गदा के पीछे को जानेपर वह शाल्व अचानक अन्तर्धान होगया; तदनन्तर दो घडी में (शाल्व के भेजेहुए) एक पुरुष ने आकर, श्रीकृष्णजी को मस्तक से प्रणाम करके रोते२ 'मुझे देव की ने भेजा है' ऐसा वाक्य कहा ॥ २१ ॥ कि—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे पिता पर प्रेम करनेवाले ! जैसे सौनिक (कसाई) पशु को मारने के निमित्त बाँधकर लेजाता है तैसे ही शाल्व, तुम्हारे पिता वसुदेवजी को बाँधकर लेगया ॥२२॥ यह उस का अप्रिय भाषण सुनकर, मनुष्य के स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, साधारण संसारी पुरुष की समान वसुदेवजी के विषय में स्नेह और दयायुक्त तथा खिन्नचित्त होकर कहनेलगे कि—॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों करके भी जीतने को अशक्य, नगरकी रक्षा करने में नियत (मुकर्रर) करेहुए और सावधान रहनेवाले बलरामजी को जीतकर, अति तुच्छ शाल्व मेरे पिता वसुदेवजी को कैसे लेगया ? अहो ! दैव बडा बलवान् है॥२४॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी भाषण कररहे थे सो इतने ही में तहाँ, वसुदेवजी के आकार के एक (मायारचित) पुरुष को लेकर शाल्व आया और वह श्रीकृष्णजी से कहनेलगा कि— ॥ २५ ॥ अरे मूर्ख कृष्ण ! जिस के निमित्त इस संसार में तू जी रहा है, वह यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है; देख अब तेरे देखतेहुए मैं इस का वध करता हूँ ; यदि तू समर्थ होय तो इस की रक्षा कर ॥ २६ ॥ इसप्रकार मायावी शाल्व ने, श्रीकृष्णजी को ललकार कर, उन (मायिक) वसुदेवजी का मस्तक तरवार से काटा और उन को लेकर आकाश में के सौभ विमान में चढ़ा ॥ २७ ॥ उससमय, स्वयंसिद्ध ज्ञानवान् भी वह भगवान् श्रीकृष्णजी, वसुदेवरूप स्वजन के सम्बन्ध से दो घडीपर्यन्त मनुष्य के स्वभाव के अनुसार शोक में निमग्न होकर, फिर उन्हों ने यह जानलिया कि—यह वसुदेवजी का दीखना, शिर कटना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं शाल्वमसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥ न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः स्वाभं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदंति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ॥ यत्स्ववाचो विरुद्ध्येत नूनं तन्न स्मरंत्युत ॥ ३० ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क्व चाखंडितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयात्मविद्यया हिन्वंत्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभंत आत्मानमनंतमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य संश्रितः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरंतमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्ध्वाऽच्छिनद्धर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तो-

आदि सब ही मयासुर की सिखाईहुई और शाल्व की फैलाईहुई गाया है ॥ २८ ॥ जब, जैसे जागाहुआ पुरुष स्वप्न में देखेहुए पदार्थों को नहीं देखता है तैसे ही युद्ध में श्रीकृष्णजी ने उस दूत को नहीं देखा और वसुदेवजी का शरीर भी नहीं देखा, किन्तु केवल, सौभ विमान में बैठकर आकाश में फिरनेवाले शत्रु (शाल्व) को देखा और वह श्रीकृष्णजी उस को मारने को उद्यतहुए ॥ २९ ॥ इसप्रकार करेहुए परमत का अब खण्डन करते हैं कि—हे राजर्षे ! इसप्रकार कितने ही आगे पीछे का विचार न करनेवाले ऋषि कहते हैं परन्तु यह कहना उन के अपने ही विरुद्ध होता है ऐसा वह स्मरण नहीं रखते हैं अर्थात् पूर्व के वचन में श्रीकृष्णजी राजसूययज्ञ में बलरामजी के साथ गये ही नहीं थे, किन्तु बलरामजी की आज्ञा लेकर गये थे ऐसा है; और यहाँ श्रीकृष्णजी ने बलरामजी के साथ इंद्रप्रस्थ से आकर उनसे नगर की रक्षा करनेको कहा, इसप्रकार उनके वचन में विरोध आताहै॥ ३० ॥ और यह कहना सम्भव भी नहीं हो सक्ता, क्योंकि—अज्ञानी पुरुषों में होनेवाले शोक, मोह, भय, स्नेह कहाँ और जिन का ज्ञान, विज्ञान तथा ऐश्वर्य कभी खण्डित नहीं होता ऐसे पूर्णानन्दरूप भगवान् कहाँ ? ॥ ३१ ॥ और जिन की चरणसेवा से वृद्धि को प्राप्त हुई आत्मसाक्षात्काररूप विद्या के द्वारा सत्पुरुष, अनादिकाल से होनेवाली देहात्मबुद्धि (देह आदि को ही आत्मा मानना ऐसी बुद्धि) को त्यागकर अनन्त आत्मस्वरूप ईश्वर का पद पाते हैं; तिन सर्वोत्तम और सत्पुरुषों की गतिरूप भगवान् को मोह कहाँ से होगा ? अर्थात् कभी नहीं होसक्ता इसकारण वह उन का कहना ठीक नहीं है ॥ ३२ ॥ किन्तु ठीक इतना ही है कि—अनेकों शस्त्रों से प्रहार करनेवाले उस शाल्व को उन अमोघ पराक्रमी श्रीकृष्णजी ने, वेग से छोडेहुए वाणों के द्वारा वेधकर, उस का कवच, धनुष और मस्तक पर की मणि यह छिन्नभिन्न करदिये और शत्रुके सौभ नामक विमान को भी गदा से तोडफोडडाला ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी के हाथ से फेंकीहुई गदा करके सहस्रों टुकडे होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युत-मभ्यगाद् द्रुतम् ॥३४॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथांग-मद्भुतं ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरंदरो बभूव हा हेति वचस्तदा नृणां ॥ ३६ ॥ तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुदुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन्दंतवक्रो रुषाऽभ्ययात् ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ॥ ७७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकंपयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत

चूरा हुआ वह सौभ विमान समुद्र के जल में गिर पडा तब शाल्व उस सौभ विमान को छोडकर भूमि पर उतरा और गदा उठाकर बडे वेग से श्रीकृष्णजी के ऊपर को झपटा ॥ ३४ ॥ तब श्रीकृष्णजी ने, अपने शरीर पर को झपटकर आनेवाले उस शाल्व की गदासहित भुजा बाण से काटकर गिरादी फिर उस का वध करने को प्रलयकाल काल के सूर्य की समान अद्भुत चक्र धारणकरा तब उस समय वह श्रीकृष्णजी, जैसे सूर्य सहित उदयाचल पर्वत शोभायमान होता है तैसे शोभायमान होनेलगे ॥३५॥ तदनन्तर उस ही चक्र से श्रीकृष्णजी ने, बहुत माया जाननेवाले उस शाल्व का कुण्डल किरीट सहित मस्तक, जैसे पहिले इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर का मस्तक काट गिराया था तैसे काट गिराया; उस कृत्य को देखनेवाले शाल्व के पक्ष के मनुष्यों का बडा हाहाकार शब्द हुआ ॥ २६ ॥ हे राजन्! उस पापी शाल्व के मरण को प्राप्त होने पर और उस सौभ नामक विमान का भी गदा से चूरा होजाने पर, स्वर्ग में हर्ष के साथ देवताओं की बजाई हुई दुन्दुभि बजनेलगीं. तब मरण को प्राप्त हुए शाल्व आदि मित्रों के उपकार का उन के पीछे पलटा देने के निमित्त क्रोध में भराहुआ दन्तवक्र, श्रीकृष्णजी के साथ युद्ध करने को आया ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवत से दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में सप्तसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अठत्तरवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी, दन्तवक्र--विदूरथ का वध करके द्वारका नगरी में आनन्द के साथ रहे और बलरामजी ने सूत (रोमहर्षण) का वधकरा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहत हैं कि—हे महाराज! परलोक में गयेहुए शिशुपाल, शाल्व और पौंड्रक इन के पीछे करनेयोग्य मित्र का कार्य करने के निमित्त, इकला, पैदल, महाबली, हाथ में गदा लेकर चलते में पैरों से इस पृथ्वी को डगमगानेवाला और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ वह दुष्टबुद्धि दन्तवक्र,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २ ॥ तं तथायांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥ अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुग्भ्यां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तयानृण्यमुपैम्यङ्ग मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥ एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्त्रैरिवद्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनांतरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्न-

श्रीकृष्णजी के साथ युद्ध करने को आया॥१॥२॥उस,तैसे क्रोध से आनेवाले दन्तवक्त्र को देखकर,श्रीकृष्णजी ने,आप भी हाथ में गदा लेकर शीघ्रता से रथ से नीचे को कुलाँच मारी और मर्यादा (हद्द) जैसे समुद्र को रोकती है तैसे उस को रोका ॥३ ॥ उससमय,मद से उन्मत्त हुए तिस दन्तवक्त्र ने,हाथ में की गदा ऊपर को उठाकर श्रीकृष्णजी से कहा कि— तू आज मेरी दृष्टि के मार्ग में (सामने) आया यह बडे आनन्द की वार्त्ता हुई ॥ ४॥ हे कृष्ण ! यद्यपि तू हमारे मामा का पुत्र होने के कारण मारने के योग्य नहीं है तथापि तू ने जो हमारे शिशुपाल आदि मित्रों का वध करा है और मुझे मारने की इच्छा करता है तिस से हे मन्द ! + इससमय मैं इस वज्रकल्प × कहिये वज्रसमान गदा सेतुझे मारता हूँ ॥५॥हेअङ्ग ! § देह में÷ विचरनेवाले व्याधि¶ को (हत्वा)नाश करके जैसे पितर आदिकों के अनृणत्व (बेकर्जपने) को प्राप्त होते हैं तैसेही मित्रों के ऊपर प्रेम करनेवाला मैं, तुझ बन्धुरूप शत्रु को (हत्वा) * मारकर अपने मित्रों के ऋण से छूटूँगा ॥६ ॥ इसप्रकार, जैसे अङ्कुश आदि से हाथी को पीड़ित करते हैं तैसे कठोर वचनों से श्रीकृष्णजी को पीड़ित करके उन के मस्तक पर गदासे प्रहार करा और वह सिंहकी समान गरजा भी ॥७॥ गदा से ताड़ना करेहुए भी वह यादवों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी, युद्ध में हलेतक भी नहीं किन्तु उन्होंने अपनी बड़ीभारी कौमोद की गदा से उस दन्तवक्त्र के हृदय पर प्रहार करा ॥ ८ ॥ तब गदा के

+ हे अमन्द ! (सब सहने को समर्थ)।

× 'अवज्रकल्पया' ऐसा पदच्छेद करना (कमलों की मालाकी समान परम कोमल)।

§ हे अङ्ग ! 'न विद्यते ज्ञः यस्मात् अर्थात् जिस से दूसरा कोई जाननेवाला नहीं है ऐसे हे सर्वज्ञ)।

÷ देहमें अन्तर्यामीरूप से रहनेवाले।

¶ विशेषेण आधीयते मनसि चिन्त्यते इति व्याधिः—विशेष करके चिन्तवन करने के योग्य ईश्वर को।

* क्षात्रधर्मेण आराध्य अर्थात् ब्राह्मण के शाप से शत्रुरूप प्रतीत होनेवाले तुम्हारी क्षत्रिय धर्म से आराधना करके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन् धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् । पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ १२ ॥ एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः । अप्सराभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥ उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः । वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीं ॥ १५ ॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः ॥ तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥

प्रहार से जिसका हृदय घायल होगया है ऐसा वह दन्तवक्र, मुख से रुधिर की वमनकरता हुआ केश और हाथपैर फैलाकर प्राणहीन हो भूमिपर गिरपड़ा ॥ ९ ॥ हे राजन्! जैसे पहिले शिशुपाल के वध के समय उसका तेज भगवान् के स्वरूप में प्रविष्ट होगया था तैसेही दन्तवक्त्र के शरीर मेंसे भी बाहर निकला हुआ आश्चर्यकारी अतिसूक्ष्म जीवरूप तेजभी, सबलोकों के देखतेहुए श्रीकृष्णजी के स्वरूप में प्रविष्ट होगया ॥ १० ॥ तदनन्तर उस दन्तवक्त्र का भ्राता विदूरथ, भाई के शोक में भरकर, उन श्रीकृष्णजी को मारनेकी इच्छा से हाथ में ढालतलवार लेकर क्रोध से सुसकारियें छोड़ता हुआ श्रीकृष्णजी के ऊपर को झपटा ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र! वह आरहा था, इतने ही में श्रीकृष्णजी ने, छुरे की समान धारवाले अपने चक्र से उसका किरीट कुण्डलोंसहित मस्तक काटडाला ॥ १२ ॥ इस प्रकार दूसरों के जीतने में न आनेवाले-सौभ विमान, शाल्व राजा, दन्तवक्त्र और उस के भ्राता विदूरथ को मारकर, देवता और मनुष्यों से स्तुति करेहुए; मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरा, पितर, यक्ष, किन्नर, तथा चारणोंने जिनका विजय वर्णन करा है ऐसे और पुष्पों की वर्षा से छायेहुए वह श्रीकृष्णजी, श्रेष्ठ यादवों से घिरकर, ध्वजा-पताका आदि खड़े करके सजाईहुई द्वारका नगरी में गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसप्रकार, योगेश्वर और जगदीश्वर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अनायास में ही महाबलियों को भी निरन्तर जीतते ही हैं तथापि अविचारी पुरुषों को कभी, जरासन्ध आदि ने उन को जीतलिया ऐसे प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी ने, पूतना राक्षसी से लेकर विदूरथ पर्यन्त, दानवकुल का संहार करके, फिर वह युद्ध के कार्य से उपराम (छुटकारा) पागए, अब कुछ बलरामजी का चरित्र कहते हैं कि-बलरामजी ने, कौरवों का पाण्डवों के साथ युद्ध करने का उद्योग चलताहुआ सुनकर 'हम द्वारका में रहेंगे तो किसीका तो पक्षपात स्वीकार करना पड़ेगा'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ॥ सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीं ॥ १९ ॥ यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते । २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ अभिवन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥ कस्मादसावित्यमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥२४॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहा-

उस को स्वीकार करने का मन में विचार न करके वह तीर्थयात्रा के मिष करके द्वारकानगरी में से चलेगए ॥ १७ ॥ उन्होंने अपने साथ ब्राह्मणों को लेकर प्रभास तीर्थ में स्नान करके तहाँ तर्पण और ब्राह्मणों को भोजन कराना आदि करके, देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त करा तथा वह सरस्वती नदी के सोते आनेवाली दिशा को चलदिये ॥ १८ ॥ उन्होंने, पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पश्चिमवाहिनी सरस्वती इन की यात्रा करी ॥ १९ ॥ फिर हे राजन् ! यमुना के तटपर और गङ्गा के तटपर जो तीर्थ हैं उन की यात्रा करके फिर वह, जहाँ शौनक आदि ऋषि सत्र कररहे थे उस नैमिषारण्य में गए ॥ २० ॥ तिन बलरामजी को आयाहुआ जानकर सहस्र सम्वत्सर में समाप्त होनेवाले सत्र का अनुष्ठान करनेवाले उन शौनकादि ऋषियों ने, आसन पर से उठकर आगे जाकर उन को नमस्कार करा और 'और आपका आगमन, यह बडी सुन्दर वार्त्ता हुई ऐसे' अभिनन्दन करके यथाविधि उन का पूजन करा ॥ २१ ॥ तब परिवारसहित पूजा कोहुए और आसन पर जाकर बैठेहुए उन बलरामजी ने, तहाँ बैठेहुए व्यासजी के शिष्य रोमहर्षण को देखा ॥२२॥ और जिन्होंने अपने को अभ्युत्थान नहीं दिया (उठकर शिष्टाचार नहीं किया), झुककर नमस्कार नहीं किया और हाथ भी नहीं जोडे तथा जो प्रतिलोमज होकर भी उन सब ब्राह्मणों की अपेक्षा ऊँचे आसन पर बैठे थे ऐसे उन सूतजी को देखकर वह बलरामजी क्रोध में भरगये ॥ २३ ॥ और अपने से ही ऐसा कहनेलगे कि—यह सूत प्रतिलोमज होकर भी इन सब ब्राह्मणों की अपेक्षा और धर्मरक्षक हमारी भी अपेक्षा ऊँचे आसन पर काहे से बैठा है !! इस अपराध के कारण यह दुर्बुद्धि वध करने के योग्य है ॥ २४ ॥ यह भगवान् वेदव्यास का शिष्य होकर उन से इतिहासों सहित बहुतसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथापंडितमानिनः ॥ न गुणाय भवति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेस्मिन्नवतारो मया कृतः ॥ वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हा हेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः। ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनंदन ॥ आयुश्चात्मात्मकमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योपि नियामकः ॥ ३१ ॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवान्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः॥३२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया॥

पुराण पढकर तैसे ही सब धर्मशास्त्र भी पढकर ऊँचे आसन पर बैठा है ॥ २५ ॥ सत्य है कि बहुरूपिये की समान दूसरों को धोखा देने के निमित्त, प्रतिष्ठितों का वेष धारण करनेवाला, अजितेन्द्रिय, अवशचित्त, विनयरहित और व्यर्थ पण्डितपने का अभिमानी होता है उस को वह शास्त्रादि का अभ्यास भी गुणकारी नहीं होता है ॥२६॥ इसकारण ऐसे लोकों का वध करने के निमित्त ही इस लोक में मैंने अवतार धारण करा है. इस से उत्तम वेष धारण करके धार्मिकपना दिखानेवाले और वास्तव में धर्म की मर्यादाओं को तोड़नेवाले जो पुरुष हैं वह मुझ से वध पाने के योग्य हैं, क्योंकि—वह अधर्मियों की अपेक्षा भी प्रसिद्धरूप से अधिक पाप करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ उन प्रभु बलरामजी ने ऐसा भाषण करके, दुष्टों के वध से निवृत्त होगये थे तो भी 'अवश्य होनहार बात के अटल होने से' उन रोमहर्षण के ऊपर हाथ में के दर्भ से ही प्रहार करा ॥२८॥ उससमय हाहाकार उच्चारनेवाले और खिन्नचित्तहुए वह सब ही ऋषि, उन संकर्षणदेव (बलराम) से ऐसा कहनेलगे कि—हे प्रभो ! तुम ने यह अधर्म करा है ॥ २९ ॥ यदि कहोकि—अधार्मिक प्रतिलोमज का वध करा इस में अधर्म ही क्या है ? तो सुनो—हे यदुनन्दन ! जबतक यह (सहस्रसम्वत्सरात्मक) सत्र समाप्त होयगा तबतक को, हमारे अर्थ पुराण कथा सुनाने के निमित्त इस रोमहर्षण को हमने ही ब्रह्मासन दिया था और इस के शरीर को क्लेश न हो ऐसा आयु भी दिया था ॥ ३० ॥ इसकारण, यह सब न जाननेवाले ही तुमने, ब्रह्मवध की समान इस का वध करा है. हे लोकपावन ! हे योगेश्वर ! तुम्हें, 'ब्राह्मण का वध न करे ऐसा' वेद भी यद्यपि प्रायश्चित्त देने को समर्थ नहीं है तथापि तुम दूसरे के विना कहे अपने आप ही यदि इस ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त करोगे तो लोकों की प्रायश्चित्त के विषय में प्रवृत्ति होयगी, नहीं तो नहीं होयगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान् बलराम ने कहाकि—हे ऋषियो ! लोकवर्त्ताव की इच्छा से मैं इस होनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयतां ३३ ॥ दीर्घमायुर्बलं तस्य सत्वमिन्द्रियमेव च ॥ आशासितं यत्तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥ ऋषय ऊचुः॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयतां ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिंद्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिंत्यतां बुधाः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो वल्वलो नाम दानवः॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि॥३८॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥ ततश्च भारतं

पाप का प्रायश्चित्त करता हूँ इसकारण जो सब से मुख्य पक्ष का प्रायश्चित्त होय वह तुम मुझ से कहो ॥३३॥ और हे ऋषियों इस रोमहर्षण को–दीर्घ आयु, बल,इन्द्रियों की शक्ति और दूसरा जो कुछ तुम्हें अपेक्षित हो सो सब मुझ से कहो,मैं अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से वह सब ठीक करदूँगा ॥३४॥ यह सुनकर ऋषि कहनेलगे कि–हे बलराम ! तुम्हारे छोड़े-हुए शस्त्रकी,तुम्हारे पराक्रम की और रोमहर्षण के मरण की जिस प्रकार सत्यता होय और 'जबपर्यन्त यहसत्र है तब पर्यन्त तु दीर्घायू और पुराणवक्ता हो ऐसा' (रोमहर्षण से)हमारा कहाहुआ वचन भी जैसे सत्य होय तैसा करो ॥३५॥ श्रीभगवान् बलराम ने कहाकि–पिता का आत्माही पुत्ररूप से उत्पन्न होता है ऐसा वेदका कथन ·।· है इसकारण इस रोमहर्षण का पुत्रजो उग्रश्रवा है वह यहही है ऐसा समझो;वह ही तुम्हें पुराण सुनानेवालाहोगा और आयु, इन्द्रियों की शक्ति तथा शरीर के बल आदि से वह युक्त होयगा,तात्पर्य यह कि–उस के साक्षात् जीवित न रहने से मेरे अस्त्र की मृत्यु की और आयु आदि की सिद्धि से तुम्हारे वचन की भी सत्यता होयगी ॥ ३६ ॥ हे श्रेष्ठ ऋषियों ! तुम्हारा दूसरा कौनसा मनोरथ है वह मुझ से कहो तो मैं उस को पूर्ण करूं तदनन्तर मुझ से ब्रह्मदण्ड लेकर सूतहत्या के प्रायश्चित्त को न जाननेवाले मुझे,तुम सर्वज्ञ हो इसकारण, जो प्रायश्चित्त यथायोग्य होय वह विचारकर बताओ ॥ ३७ ॥ ऋषियों ने कहा कि–इल्वल का पुत्र बल्वल नामवाला एक बडा भयङ्कर दानव है वह प्रतिपूर्णिमा को आकर हमारे सत्र (यज्ञ) को दूषित करता है ॥ ३८ ॥ हे बलराम ! उस पापी दानव को तुम मारडालो, अर्थात् यही हमारी उत्तम शुश्रूषा होयगी, क्योंकि–वह हमारे यज्ञ के स्थान में आकर पीव, रुधिर, विष्ठा, मूत्र,मद्य और मांस की चारों ओर से वर्षा करता है ॥ ३९ ॥ तदनन्तर तुम एक वर्ष (बारहमास

·।· 'अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे। आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्' इत्यादि वेद का वचन है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्ध्यसे॥४०॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन् पूयगन्धस्तु संवशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् ॥ तप्ताम्रशिखश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ संस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं तौ तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत् क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥ सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृजन् ॥ मुंचन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्याविधिवाशिषः ॥ अभ्यषिंचन्म

पर्यन्त) एकाग्रचित्त से भरतखण्ड की प्रदक्षिणा करके, तीर्थों का स्नान करतेहुए कृच्छ्रों + का सेवन करोगे तो सूत का वध करने के पाप से छूट जाओगे ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में अष्टसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे उन्नासीवें अध्याय में बलरामजी ने, ब्राह्मणों की प्रसन्नता के निमित्त बल्वल नामक दानव का वध करके तीर्थस्नान आदि से सूत की हत्या का प्रायश्चित्त करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! फिर पूर्णिमा का पर्व आने पर उस दिन धूलि की वर्षा करनेवाला प्रचण्ड और भयङ्कर पवन चलनेलगा और जिधरतिधर पीब का दुर्गन्ध फैलनेलगा ॥ १ ॥ फिर बल्वल की रचना कीहुई विष्टा मूत्र आदि की अमङ्गल वर्षा यज्ञशाला में होनेलगी, तदनन्तर शूल धारण करनेवाला वह बल्वल नामवाला दैत्य दीखनेलगा ॥ २ ॥ तब, फटेहुए काजल के पर्वत की समान काला, बडेभारी शरीरवाला, तपायेहुए ताँबे की समान लाल २ शिखा और दाढ़ी-मूछ धारण करनेवाला, दाढ़ों से भयङ्कर और भ्रुकुटि चढायेहुए मुखवाले तिस बल्वल को देखकर बलरामजी ने, शत्रुसेना का विदारण करनेवाले मूसल और दैत्यों का दमन करनेवाले अपने हल का स्मरण करा सो वह तत्काल आकर प्राप्त होगये ॥३॥४॥ तब बलरामजी ने, क्रुद्ध होकर आकाश में विद्यमान तिस ब्रह्मद्रोही बल्वल को हल के अग्रभाग से खेंचकर मूसल से उस के मस्तक पर प्रहार करा ॥ ५ ॥ तब शिर फूटाहुआ वह बल्वल, रुधिर की उलटी करताहुआ और पीडित होने के कारण हाय २ करताहुआ, जैसे इन्द्र के वज्र से फूटाहुआ और गेरू से लाल २ हुआ पर्वत गिरता है तैसे भूमि पर गिरपडा ॥ ६ ॥ इसप्रकार उस का वध करने पर प्रसन्नहुए उन महाभाग ऋषियों ने, बलरामजी की स्तुति करके और सफल आशी-

+ प्रायश्चित्त के साधकव्रत विशेषों को कृच्छ्र कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाभागा वृत्रघ्न विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयंतीं दंदुर्मालां श्रीधामाम्लान-पंकजाम् ॥ रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥ अनुस्रोतेन सरयुं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमं ॥ १० ॥ गोमतीं गंडकीं स्नात्वा विपाशां-शोणे आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उ-पस्पृश्य महेंद्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पंपां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥ स्कंदं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेंकटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं कांचीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलो-

वाद देकर उनका, जैसे वृत्रासुर के वध से प्रसन्नहुए देवताओं ने इन्द्र का अभिषेक करा था तैसे अभिषेक करा ॥ ७ ॥ और उन्होंने तिन बलरामजी को दिव्य वस्त्र, दिव्य भूषण और शोभा की स्थान कभी भी न कुमलानेवाली कमलों की वैजयन्ती माला अर्पण करी ॥ ८ ॥ फिर उन ऋषियों के आज्ञा करेहुए वह बलरामजी, ब्राह्मणों के साथ कौशकी नदी पर जाकर तहाँ स्नान करके फिर जहाँ से सरयू नदी उत्पन्न हुई है तिस सरोवर पर आये ॥ ९ ॥ फिर वह बलरामजी, सरयू के किनारे २ प्रयाग को जाकर तहाँ स्नान और देवादिकों का तर्पण करके फिर हरिद्वार को गये ॥१०॥ फिर उन्होंने, गोमती, गंडकी और विपाशा इन नदियों में स्नान करके शोण नामवाले नद में स्नान करा फिर गया में जाकर तहाँ पितरों की 'पिता के जीवित होने के कारण' ब्राह्मण भोजन आदि से आराधना करके फिर गङ्गा और समुद्र के संगम में स्नान करा ॥ ११ ॥ फिर महेन्द्र पर्वत पर परशुराम का दर्शन करके और उन को नमस्कार करके आगे सप्तगोदावरी, वेणा, पंपा और भीमरथी इन नदियों में स्नान करा ॥१२॥ फिर, उन बलरामजी ने, स्वामिकार्त्तिकेय का दर्शन करके शङ्कर के समान श्रीशैल पर्वत पर गमन करा ; तहाँ से उन प्रभु ने द्रविड देशों में के महापवित्र वेंकट पर्वत का दर्शन करके कामकोष्णी नदी में स्नानकर काँची नगरी में गमन करा तदनन्तर नदियों में श्रेष्ठ जो कावेरी तिस में स्नान करके आगे जहाँ श्रीहरि समीप रहते हैं ऐसे परमपवित्र श्रीरङ्गक्षेत्र में गमन करा ॥ १३ ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रीहरि के क्षेत्र ऋषभपर्वत की तैसे ही दक्षिण मथुरा की यात्रा करके महापातकों का नाश करनेवाले समुद्र के सेतुबन्धपर गमन करा ॥१५॥ तहाँ उन बलरामजी ने, ब्राह्मणों को दश सहस्र गौ दान दीं, फिर उन्होंने कृतमाला और ताम्रपर्णी नदी में स्नान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्रवायुतं ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥ २० ॥ प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मुनितीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युद्ध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मंडलानि विचित्राणि चरंताविदम-

करके कुलाचल मलयपर्वत पर गमन करा ॥ १६ ॥ तहाँ के अगस्त्य ऋषि को उन्होंने नमस्कार करके उन की पूजा करने पर उन ऋषि ने आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी तब, दक्षिण समुद्र के तटपर गमन करा, तहाँ उन्होंने कन्यानामक दुर्गादेवी का दर्शन करा ॥ १७ ॥ तदनन्तर अनन्तपुर में जाकर फिर पञ्चाप्सरस नामवाले सरोवरपर गमन करा, जहाँ विष्णुभगवान् की समीपता रहती है ऐसे तिस सरोवर में स्नान करके ब्राह्मणों को दश सहस्र गौ दीं ॥ १८ ॥ फिर वह भगवान् बलरामजी, केरलदेश और त्रिगर्तदेश में जाकर जहाँ शिवजी की समीपता है ऐसे गोकर्णनामक शिवक्षेत्र में गये ॥ १९ ॥ फिर, द्वीप (टापू) का आश्रय करके रहनेवाली आर्यादेवी का दर्शन करके वह बलरामजी शूर्पारक नामवाले देश को गये, फिर तापी, पयोष्णी, और निर्विन्ध्या नदी में स्नान करके, दण्डकारण्य में जाकर, जिस के तटपर माहिष्मतीनामक नगरी है तिस नर्मदानदी के समीप गये, तहाँ स्नान करके फिर मुनि तीर्थ में स्नान करके, फिर प्रभास क्षेत्र में पहुँचे ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ तहाँ ब्राह्मणों के कहने से, कौरवपाण्डवों के युद्ध में सब राजे मरण को प्राप्त होगये ऐसा सुनकर उन्होंने ' पृथ्वी का भार उतरगया ' ऐसा माना ॥ २२ ॥ फिर वह बलरामजी, संग्राम में भीमसेन और दुर्योधन गदाओं से परस्पर युद्ध कररहे हैं ऐसा सुनकर, उन को निषेध करने के निमित्त कुरुक्षेत्र में गये ॥ २३ ॥ तब, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उन को देखकर, नमस्कार करा और यह बलरामजी क्या कहने के निमित्त यहाँ आये हैं ? ऐसा विचारतेहुए मौन ही खडेरहे ॥ २४ ॥ वह बलरामजी, क्रोध में भरेहुए जय की इच्छा करनेवाले और हाथ में गदा लेकर चित्रविचित्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवां तुलबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उत्तमं शिक्षणाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्वद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरंतावन्योऽन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥ दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा ॥ क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धं विज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्याऽवभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः ॥ रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य

पैंतरोंसे फिरनेवाले उन दोनो भीमसेन और दुर्योधनको देखकर ऐसा कहनेलगे कि—॥२५॥ हे राजा दुर्योधन ! हे वृकोदर भीमसेन ! तुम दोनो समान बलधारी वीर हो; तुम में एक को (भीम को) यह 'दुर्योधन की अपेक्षा' बल में अधिक है ऐसा मैं समझता हूँ और एक को (दुर्योधन को) 'भीमसेन की अपेक्षा' यह गदा छोडने की शिक्षा की चतुराई में अधिक है ऐसा समझता हूँ ॥ २६ ॥ इसकारण समान बलधारी तुम दोनो में से एक का इस युद्ध में जय वा पराजय होयगा, ऐसा नहीं दीखता इसकारण यह तुम्हारा निष्फल युद्ध बन्द होय ।। २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि वह बलरामजी का वाक्य दोनो के ही क्लेश को दूर करनेवाला था तथापि उन्होंने माना नहीं; क्योंकि—वह दोनो परस्पर के दुर्वचन और दुष्कर्मों को वारम्वार स्मरण करके बद्धवैर होगये थे ॥ २८ ॥ तब बलरामजी, यह मेरा वाक्य इन्होंने माना नहीं ऐसा जानकर उन का दैवही ऐसा है यह समझकर फिर द्वारका को चलेगये तब प्रसन्नहुए उग्रसेन आदि ज्ञाति के यादव, सन्मुख आकर उन से मिले ॥ २९ ॥ इसप्रकार तीर्थस्नान आदि करके सूतहत्या के दोष को दूर करके फिर नैमिषारण्य में आयेहुए उन यज्ञमूर्त्ति बलरामजी से ऋषियों ने आनन्द के साथ सब प्रकार के यज्ञ करवाकर परमेश्वर का यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब, उन प्रभु बलरामजी ने, उन ऋषियों को, संशय विपर्यय आदि रहित शुद्ध ज्ञान सुनाया कि—जिस के द्वारा उन ऋषियों ने आत्मा में यह जगत् विद्यमान है और जगत् में आत्मा व्याप रहाहै ऐसा साक्षात् अनुभव से जानलिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अपनी रेवती नामवाली स्त्री के साथ यज्ञान्त स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहिनकर उत्तम आभूषण धारण करेहुए और ज्ञाति, बन्धु तथा मित्रजनों से युक्त वह बलरामजी, जैसे चाँदनीसहित चन्द्रमा शोभायमान होता है तैसे शोभित होनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! महाबली, अनन्त अप्रमेय, और माया से मनुष्यरूपी तिन बलरामजी के इसप्रकार के और भी अनन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संति हि ॥ ३३ ॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनंतस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ छ ॥ छ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥ को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः कामगार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसन्तं स्थिरजंगमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत्तद्देव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो

चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ आश्चर्यकारी कर्म करनेवाले, शेषावतारूप बलरामजी के कर्मों को जो पुरुष, सायङ्काल और प्रातःकाल के समय स्मरण करेगा वह विष्णु भगवान् को परम प्रिय होगा ॥ ३४ ॥ इतिश्रीमद्भागवत् के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकोनाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अस्सीवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने, द्रव्य की इच्छा करके अपने घर आयेहुए सुदामा देव की पूजा करके उस से, गुरु के घर उस के और अपने रहते समय की बातें बूझीं यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ बलरामजी के चरित्र सुनकर फिर श्रीकृष्णजी के ही चरित्र सुनने के निमित्त राजा कहनेलगा कि—हे भगवन्! प्रभो शुकदेवजी! मोक्ष देनेवाले अनन्तपराक्रमी महात्मा श्रीकृष्णजी के जो और चरित्र हों उन को सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन्! उत्तमकीर्त्ति श्रीकृष्णजी की मनोहर कथा एकवार भी सुनकर उन से, सारग्रहण करनेवाला और विषयों की खोज करते करते खेद को प्राप्त हुआ कौनसा पुरुष, तृप्त होगा? कोई नहीं होसकता ॥ २ ॥ जिसवाणी से तिन भगवान् के ऐश्वर्य आदि गुणों का पुरुष वर्णन करता है वहीवाणी सफल है, जो भगवान् की सेवारूप कर्म करते हैं वही हाथ सफल हैं, जो स्थावर जङ्गम में रहने वाले भगवान् का स्मरणकरे वही मन सफल है, जो उन की पवित्र कथाओं को सुनें वही कान सफल हैं ॥३॥ जो स्थावर जङ्गमरूप भगवान् की मूर्त्ति को नमस्कार करता है वही मस्तक सफल है, जो भगवान् का दर्शन करते हैं वही नेत्र सफल हैं. जो भगवान् के अथवा भगवद्भक्तों के चरणोदक का नित्य सेवन करते हैं वही अङ्ग सफल होते हैं ॥ ४ ॥ सूतजी ने, कहाकि—इसप्रकार परीक्षित् राजा के प्रश्न करने पर भगवान् शुकदेवजी ने, भगवान् वासुदेव के विषैं निमग्नचित्त होकर कहा ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगेकि—हेराजन्!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इंद्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितेंद्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा॥७॥ पतिव्रता पतिं प्रीह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाऽभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुंबिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुनाद्वारवत्यां भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ॥ ११ ॥ किं त्वर्थकामान्भजते नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ॥ सं एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तश्लोकदर्शनम्॥ १२ ॥ इति संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यस्त्युपायनं किंचिद्गृहे कल्याणि

कोई एक ब्राह्मण श्रीकृष्णजी का मित्र था, वह बड़ा ब्रह्मज्ञानी, विषयों से विरक्त, अत्यन्तशान्तचित्त और जितेन्द्रिय था ॥ ६ ॥ वह प्रारब्धवश प्राप्तहुए अन्न आदि से आजीविका चलाकर गृहस्थधर्म का आचरण करता था; तिस मलिन वस्त्र धारण करनेवाले ब्राह्मण की स्त्री भी, मलिन वस्त्र धारण करनेवाली पतिव्रता और क्षुधा से दुर्बल हुए तिस पति को जो कुछ अन्न आदि मिले सो खिलाकर आप क्षुधा से जीर्ण होरही थी ॥ ७ ॥ एकसमय, दरिद्र से पीड़ित, पति को भोगप्राप्त कराने को अशक्त होने के कारण दुःखपानेवाली और भयसे काँपनेवाली वह पतिव्रता स्त्री, पति के समीप जाकर सूखे हुए मुखसे कहनेलगी कि– ॥८॥ हे ब्रह्मन् ! वैराग्य आदि गुणवान् भी तुम्हारे, साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणों के हितकारी, शरणागतवत्सल और यादवों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजी, सखा हैं ऐसा मुझे मालूम है ॥ ९ ॥ इस से हे महाभाग ! साधुओं की परमगति तिन श्रीकृष्णजी से मिलने को तुम जाओ तब दरिद्रभाव से क्लेश पानेवाले और कुटुम्बवत्सल तुम्हें, वह बहुतसा धन देंगे ॥ १० ॥ भोजों के, वृष्णियों के और अन्धकों के स्वामी वह श्रीकृष्णजी इससमय द्वारका में हैं. उन के तुम्हारा सत्कार करनेपर वह भोजादिक भी तुम्हें द्रव्य देंगे. वह भगवान् द्रव्य देंगे या नहीं ? इस विषय में तुम सन्देह न करो; क्योंकि–वह चरणकमल का स्मरण करनेवाले पुरुष को अपना स्वरूपानन्द भी देदेते हैं ॥ ११ ॥ फिर वह जगद्गुरु, अपनी भक्ति करनेवाले पुरुष को अतिप्रिय न लगनेवाले अर्थकाम देते हैं इसका तो कहना ही क्या ? इसप्रकार स्त्री ने ब्राह्मण की अतिकोमलता से वारम्वार प्रार्थना करी तब उस ने, उत्तमकीर्त्ति भगवान् का दर्शन होयगा यह ही बड़ा लाभ है॥ १२॥ ऐसा मन में विचारकर, कृष्णदर्शन के निमित्त जाने का निश्चय करा और स्त्री से कहनेलगा कि–हे कल्याणि ! घरमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीयतां ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान् पृथुकतण्डुलान् ॥ चैलखण्डेन तान्बध्वा भेजे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥ विप्रोगम्याधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणां ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥ १७ ॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥ उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ॥ व्यलिंपद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वा वासो तांबूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥२२॥

कुछ श्रीकृष्ण को भेट लेजाने के योग्य पदार्थ होय तो दे ॥ १३ ॥ तब उस स्त्री ने, ब्राह्मणों के घरों से चार मुट्ठी च्यूड़ों के चावल माँग के लाकर, वस्त्रके चीथडेमें उन की पोटली बाँधकर वह भर्त्ता को भेंट दी ॥ १४ ॥ तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण (सुदामा) उन चौलों को लेकर द्वारका को चल दिया, और मुझे श्रीकृष्ण का दर्शन कैसे होयगा ? ऐसा विचार करता २ द्वारका की रक्षा के निमित्त सेना की स्थापन करी हुई तीन छावनियों को और उन के आगे लगाईहुई चौकियों को उल्लंघन करके और ब्राह्मणों के साथ वह ब्राह्मण, श्रीकृष्ण की भक्ति न करनेवाले पुरुषों के प्रवेश करने को अशक्य, अन्धक और वृष्णियों के घरों में के श्रीकृष्णजी के सोलह सहस्र एक सौ आठ घरों में के एक शोभायमान घर में घुसा तब वह ब्राह्मण ब्रह्मानन्द को प्राप्तहुए की समान आनन्दित हुआ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस ब्राह्मण को दूर से ही देखकर प्रिया के पलँगपर बैठेहुए भगवान् श्रीकृष्णजी ने, शीघ्रता से उठकर और सन्मुखजाकर हर्ष के साथ आलिंगन करा ॥ १८ ॥ तब, अपने मित्र तिन विप्रर्षि के अंग के स्पर्श से अति आनन्दयुक्त और तृप्तहुए तिन कमलनयन भगवान् ने, अपने नेत्रों मेंसे आनन्द के आँसू बहाये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उस प्रिय और मित्र ब्राह्मण को पलँग पर बैठाकर आप ही पूजा की सामग्री लाकर, उस सखा के चरण धोकर, वह जल श्रीकृष्णजी ने, अपने आप लोक को पवित्र करनेवाले होकर भी मस्तक पर धारण करा और दिव्य, गन्ध, चन्दन, अगर तथा केसर से उन के अङ्ग को लेपन करा ॥ २० ॥ २१ ॥ फिर सुगन्धयुक्त धूप और दीपकों की पंक्ति (आरती) से तिस मित्र का पूजन करके तथा तन्दुल और गौ अर्पण करके स्वागतप्रश्न करा (कुशल मङ्गल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ देवी पर्यचरच्छ्रेण्या चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥ अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितं ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनो ललिता राजन् कौरौ गृह्यं परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वंति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः ॥

बूझा) ॥२२॥ उससमय पुराने वस्त्र धारण करनेवाले, मलिन, दुबले और रगों से घिरे तिस ब्राह्मण की, साक्षात् रुक्मिणी देवी ने, चँवरी और पंखे से पवन करके शुश्रूषाकरी ॥२३॥ तब, निर्मल है कीर्त्ति जिन की ऐसे श्रीकृष्णजी ने, उस मलीन ब्राह्मण का अति प्रीति के साथ सत्कार करा ऐसा देखकर रणवास में के पुरुष अचम्भा करने लगे कि–॥ २४ ॥ निर्धन, निन्दित और अधम इस अवधूत भिक्षुक ने, इस लोक में ऐसा क्या पुण्य कराथा कि–॥ २५ ॥ जिस से लक्ष्मीनिवास और त्रिलोकी के गुरु श्रीकृष्णजी ने, पलँगपर विद्यामान लक्ष्मी को भी त्यागकर इस को बड़े भ्राता की समान हृदय से लगाया और इस का उत्तम सन्मान करा ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! वह सुदामा और कृष्ण दोनो परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर पहिले गुरु के घर रहते समय की अपनी मनोहर कथा कहने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् ने, कहाकि–हे धर्मज्ञ ब्राह्मण ! गुरु को गुरुदक्षिणा देकर गुरु के यहाँ से घर को आकर समावर्त्तन करनेवाले तुम ने, अपने योग्य स्त्री वरी या नहीं? ॥ २८ ॥ हे विद्वन् ! तुम्हारा चित्त, और लोगों के चित्त की समान बहुधा घर में तैसे ही गौ, भूमि, सुवर्ण आदि धन में, विषयों से अपनी ओर को खेंचा हुआ नहीं दीखता है; इसकारण तुम विषयों में अधिक लम्पट नहीं हो, ऐसा मैंने पहिले ही समझलिया है ऐसा तुम विद्वान् को योग्य ही है ॥ २९ ॥ ईश्वर की माया से रचेहुए विषयों का त्याग करनेवाले कितने ही पुरुष, विषयों में आसक्त न होकर भी, जैसे मैं लोकशिक्षा के निमित्त कर्म करता हूँ तैसे ही लोक की मर्यादा के निमित्त कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! तुम्हारा और मेरा गुरु के घर एक स्थानपर रहना हुआ था उस को तुम स्मरण करते हो क्या ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥ स वै सत्कर्मणां साक्षाद्जातेरिह संभवः ॥ आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नैन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मरते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदितानार्मिधनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपतौ सुमहद्द्विज ॥ वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलांबुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे ॥ दिशो विदंन्तोथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥ एतद्विदित्वा उदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः

जिस गुरु से परमात्मतत्त्व को जाननेवाला ब्राह्मण, संसार का अन्त पाजाता है ॥ ३१ ॥ तिस मे आत्मज्ञान देनेवाले गुरु की आतिपूजनीयता कहने के निमित्त पुरुष के तीन गुरु हैं ऐसा वर्णन करते हैं—हे ब्राह्मण ! इस संसार में पुरुष की जिस से उत्पत्ति हुई वह 'पिता' पहिला गुरु है तदनन्तर द्विजत्व को प्राप्तहुए पुरुष को जिस से सत्कर्मों की प्राप्ति होती है अर्थात् जो उपनयन संस्कार करके वेदाध्ययन कराता है वह दूसरा गुरु है; वह उस को मुझ ईश्वर की समान पहिले गुरु की अपेक्षा भी पूजनीय है और सब ही आश्रमवालों को जो ज्ञान देनेवाला वह तीसरा गुरु है सो साक्षात् मैंही हूँ ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मण ! इस मनुष्य जन्म में वर्णाश्रमवालों में जो पुरुष, साक्षात् मेरा स्वरूप ऐसे ज्ञान को देनेवाले गुरु के उपदेश से अनायास में ही संसारसमुद्र को तरजाते हैं वही अपना कार्य सिद्ध करने में बड़े बुद्धिमान् हैं ॥ ३३ ॥ सकल भूतों में रहनेवाला आत्मा भी मैं, जैसा गुरु की सेवा से प्रसन्न होता हूँ तैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ आदि गृहस्थधर्म, तप आदि वानप्रस्थधर्म और शान्ति आदि संन्यासधर्म से भी प्रसन्न नहीं होता हूँ इसकारण गुरु की सेवा से बड़ा दूसरा धर्म ही नहीं है ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! अपने गुरु के घर रहते थे तब, एकसमय गुरुकी स्त्रीके ईंधनलाने के निमित्त वन में भेजेहुए हमारे ऊपर दैवगतिसे जो अवसर आकर पड़ाथा उसका तुम्हें स्मरण है क्या ? ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मण ! उससमय बड़ेभारी वन में चलेजाने पर, असमय में एकसाथ बड़ाभारी बादल छाकर मूसलधार जल पड़ा और भयङ्कर गर्जना होकर बिजली गिरनेलगीं ॥ ३६ ॥ इतने ही में सूर्य अस्त होकर दिशा अन्धकार में ढकगईं. उससमय सब स्थल जलमय होकर, नीचा तथा ऊँचा कुछ समझ में नहीं आता था ॥ ३७ ॥ उस जलमयहुए वन में अत्यन्त पवन से और वर्षा से परमपीडितहुए और दिशाओं को भी न जाननेवाले हम, व्याकुलचित्त होकर, एक दूसरेका परस्पर हाथ पकड़कर और मस्तकपर इन्धन का बोझा लेकर निधरतिधर को भटकते फिरते थे ॥ ३८ ॥ सूर्य का उदय होने पर सांदीपन गुरुजी, हम को ईंधन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थे तिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्परैः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशांतये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥ यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देहे आवपनं विभो ॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यंतविडंबनम् ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द० उ० श्रीदामचरिते अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ॥ सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् १ ॥

लाने को गयाहुआ जानकर, हम शिष्यों को ढूँढते २ हमारे समीप आये और उन्होंने हमें शीत से जकडेहुए देखकर यह कहा कि—॥ ३९ ॥ अरे पुत्रों ! तुमने हमारे कारण बडा दुःख उठाया. प्राणियों को यह देह सब से अधिक प्रिय है परन्तु तुम ने उस देह का भी अनादर करके मेरी सेवा करी॥४०॥उत्तम शिष्यों को गुरु का प्रत्युपकार(उपकार के पलटे का उपकार) यह ही करना चाहिये, कि—जिस से सब पुरुषार्थ मिलते हैं उस शरीर को भी शुद्ध भक्ति से गुरु के अर्पण करदेना ॥४१॥ हे द्विजों में श्रेष्ठों ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहुआ हूँ, तुम्हारा मनोरथ सफल होय. तुम्हारा पढाहुआ वेद इस लोक में और परलोक में तुम्हें इच्छित फल देय ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मण ! हम गुरु के घर थे तब ऐसे बहुत से वृत्तान्तहुए उन का तुम्हें स्मरण है क्या ? गुरु के अनुग्रह से ही मनुष्य पूर्णमनोरथ होकर उत्तमप्रकार के शान्तभाव को पाने के योग्य होताहै॥४३॥ब्राह्मण ने कहा कि—हे देवदेव ! हे जगद्गुरो ! सत्य सङ्कल्पवाले तुम्हारे साथ जिन हमारा गुरु के घर वासहुआ ऐसे हम को भला कौनसा फल नहीं मिला ? सब ही फल मिलगये हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! कल्याण के उत्पन्न होने का खेत जो वेदमय ब्रह्म सो तुम्हारा शरीर है, ऐसे तुम्हारा जो गुरु के घर वास सो और लोकों को शिक्षा देने के निमित्त अत्यन्त अनुकरणमात्र (मनुष्य चरित्र की नकल) है ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में अशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे इक्यासीवें अध्याय में, श्रीकृष्णजी ने, सखा सुदामा के च्यौले भक्षण करके उस के आश्रम में इन्द्र को भी न मिलसके ऐसी सम्पदा रची, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ इसप्रकार वह श्रीहरि, तिस श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदामा के साथ सुखदायक बातें करतेहुए, सब प्राणियों के मन के साक्षी होने के कारण 'स्त्री के कहने से यह धन मांगने के निमित्त आया है; इस ने मेरे निमित्त च्यौले लाकर मुझे लज्जा के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥५॥ सर्वभूतात्मदृक्साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिंतयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ॥ प्राप्तो गामस्य दास्यामि संपदो मत्यदुर्लभाः ॥७॥ इत्थं विचिंत्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतंडुलाः ॥ ९ ॥ इति मुष्टि

वह नहीं दिये हैं, ऐसा जानकर' ब्राह्मणों के हितकारी और साधुओं के गति वह भगवान् श्रीकृष्णजी तिस प्रिय ब्राह्मण की ओर को प्रेमयुक्त दृष्टि से देखते देखते और बडे आनन्द से बारम्बार हास्य करतेहुए उस ब्राह्मण से ऐसा कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे ब्राह्मण! तुम मेरे निमित्त अपने घर से क्या भेट लाये हो? भक्तों की प्रेम के साथ अर्पण करीहुई अत्यन्त थोडीसी भी वस्तु होय तो वह मुझे बहुत होती है और जो भक्ति नहीं करते हैं ऐसे अभक्तों की दीहुई बहुतसी होय तो भी वह मुझे सन्तोषदायक नहीं होती है॥३॥जो पुरुष मुझे,पत्र हो,पुष्प हो,फल हो वा जल हो भक्ति के साथ अर्पण करता है वह, तिस शान्तचित्त पुरुष का भक्ति से अर्पण कराहुआ पत्र आदि भी मैं भक्षण करता हूँ॥४॥हे राजन्!इसप्रकार भगवान् के कहने पर भी,उस सुदामा ब्राह्मण ने लज्जित होकर और नीचे को मुखकरके वह सब,मुट्ठीभर लायेहुए च्यौले लक्ष्मीपति भगवान् को नहीं दिये॥५॥तब सकल प्राणियों के मनमें की बात जाननेवाले तिन साक्षात् भगवान्ने,उस के आने का कारण जानकर, आप जो कुछ करना था उसका चिन्तवन करा कि—इसने पहिले सम्पदा की कामना करके मेरा सेवन नहींकरा है, इसकारण च्यौले लाकर भी यह नहीं देता है और मुझ से कुछ नहीं माँगता है ॥ ६ ॥ यह मेरा सखा अपनी पतिव्रता स्त्री का इच्छित करने के निमित्त मेरे पास आया है, इसकारण मैं इसको, जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं ऐसी भोग की सम्पत्ति देता हूँ ॥७॥ ऐसा विचारकर, श्रीकृष्णजी ने, उस ब्राह्मण के वस्त्र में बँधेहुए जो च्यौलों के चावल थे उन को, 'यह क्या है?' ऐसा कहकर आपही खेंचलिया ॥ ८ ॥ और बडे आदर के साथ कहाकि—हे मित्र! मैं सत्य २ कहता हूँ कि—यह लाईहुई च्यौलों की भेट, मुझे अत्यन्त प्यारी और तृप्त करनेवाली है; हे मित्र! यह च्यौलों के चावल मुझे और मेरे आश्रय से रहनेवाले सब जगत् को भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्जग्रहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसम्पत्समृद्धये ॥ अस्मिँल्लोके ऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोपकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवंदितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान् व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवेशितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा ॥ महिष्या वीजितः श्रांतो

तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी ने, उस में से एक मुट्ठी खाकर दूसरी मुट्ठी खाने को उठाई, सो उस को खाने से पहिले ही, भगवत्परायण लक्ष्मी की अंश रुक्मिणी ने, उन परमात्मा श्रीकृष्णजी का हाथ पकड़लिया और वह कहनेलगीं कि—॥ १० ॥ हे परमात्मन् ! एक मुट्ठी खाई, यही इस ब्राह्मण को इस लोक में तथा परलोक में की मेरे कटाक्ष का विलासरूप सकल सम्पदाओं की प्राप्ति के अर्थ तुम्हारी प्रसन्नता का बहुतकुछ कारण होगया; अब दूसरी मुट्ठी खाकर मुझेभी इस के अधीन न करो ॥ ११ ॥ इधर ब्राह्मण ने तो, उस रात्रि में श्रीकृष्णजी के घर रहकर, स्वादयुक्त अन्नका भोजन करके और स्वादयुक्त पीने के जल सरवत आदि पीकर बड़े सुख के साथ ऐसा माना कि—मानो मैं स्वर्ग के भी ऊपर हूँ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! दूसरे दिन सूर्य का उदय होनेपर जगत् के पालक और निजानन्द मूर्त्ति श्रीकृष्णजी ने, जिस की वन्दना करे है ऐसा और मार्ग में दूरपर्यंत पहुँचाने को जाकर 'अब जाइये फिर कृपा करके शीघ्र ही पधारना' ऐसा विनय के साथ प्रियभाषण करके विदा कराहुआ वह सुदामा ब्राह्मण, अपने घर पहुँचने को चलदिया ॥ १३ ॥ तब श्रीकृष्णजी से धन न मिलनेपर भी अपने मन के कृपणपने के कारण लज्जित होकर उस ब्राह्मण ने, अपनेआपश्रीकृष्णजी से कुछ नहीं मांगा किन्तु भगवान् के दर्शन से ही आनन्दयुक्त होकर अपने घर को चलागया ॥ १४ ॥ जातेसमय आनन्द से मन में विचार करनेलगा कि—अहो ! ब्राह्मणों के हितकारी भगवान् की ब्राह्मणभक्ति मैंने आज देखी, देखो वक्षःस्थल पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले भी उन श्रीकृष्णजी ने, मुझ महादरिद्री को कैसी दृढ़ता से हृदय लगाया ॥ १५ ॥ मैं पापी दरिद्री कहां ? और लक्ष्मी के आश्रय श्रीकृष्णजी कहां ? तथापि यह जाति का ब्राह्मण है ऐसा जानकर मुझे कौलिया भरकर छाती से लगाया ॥ १६ ॥ और प्रिया के सेवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदां ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अथनोऽयं धनं प्राप्य मद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति चिंतयन्नंतः प्राप्तो निजगृहांतिकम् ॥ सूर्यानलेंदुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदांभोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्हा भागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ ३४ ॥ पतिमाग-

करेहुए पलँग के ऊपर भ्राता की समान मुझे बैठाया, मार्ग में मुझे परिश्रम हुआ था इस कारण उन श्रीकृष्णजी की पटरानी ने कोमल चँवर लेकर मेरी पवन करी ॥ १७ ॥ फिर उत्तमप्रकार से चरणसेवा और चन्दन आदि के उवटन आदि से, ब्राह्मण को ही देवता माननेवाले परन्तु स्वयं देवताओं के भी देव तिन श्रीकृष्णजी ने मेरी पूजा करी ॥ १८ ॥ अब श्रीकृष्णजी ने अपने को धन नहीं दिया तिस के कारण को मन में विचारता है कि यद्यपि सकल पुरुषोंको, उन भगवान् की चरणपूजा ही, पाताल में और भूतलपर की सकल सम्पदाओं की, अणिमादि सिद्धियों की, स्वर्गप्राप्ति की और मोक्ष की भी कारण है ॥ १९ ॥ तथापि परमदयालु तिन श्रीकृष्णजी ने, यह दरिद्री सुदामा ब्राह्मण, धन पानेपर गर्व में होकर मेरा स्मरण नहीं करेगा, ऐसा मन मे विचारकर, मुझे बहुतसा वा थोडासा भी धन नहीं दिया ॥ २० ॥ इसप्रकार चिन्ता करताहुआ वह ब्राह्मण, अपने घर के समीप को गया, तो वह स्थान उस को—सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के समान प्रकाशित होनेवाले विमानो से चारों ओर घिराहुआ ॥ २१ ॥ शब्द करनेवाले पक्षियों के समूहों से भरेहुए चित्रविचित्र बागवगीचों से और जहाँ सूर्य के उदय में खिलनेवाले और चन्द्रमा के उदय में खिलनेवाले लाल, स्वेत और नीले कमल खिलरहे हैं ऐसे तलावों में के जलों से युक्त ॥ २२ ॥ और आभूषण धारण करेहुए पुरुषों से तथा हरिणी की समान नेथवाली स्त्रियों से युक्त दीखा, उस ऐश्वर्य को देखकर वह सुदामा ब्राह्मण, अरे ! यह तेज का समूह क्या दीख रहा है ? फिर विमानों को देखकर अरे ! यह किस का स्थान है ? फिर उस स्थान को अपना ही जानकर, अरे ! वह ऐसा यह कैसे होगया ? इत्यादि तर्कना करनेलगा ॥ २३ ॥ इसप्रकार विचार करनेवाले तिस महाभाग सुदामा को, देवताओं की समान कान्तिवाले पुरुष और स्त्रियें, हाथ में भेटलेकर, ऊँचे स्वर के गीतवाजों के साथ उस के सन्मुख गये ॥ २४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम गृहाच्चूर्णरूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ॥ मणिस्तंभशतोपेतं महेंद्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यंका हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमंति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान् भ्राजमानाञ्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीं ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्ममदुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत

पति आयेहैं, ऐसा समाचार सुनकर हर्षितहो पतिका दर्शन करनेमें आदरयुक्तहुई उस की स्त्री जैसे अपने स्थान(कमलों के वन) में से लक्ष्मी बाहर निकलती है तैसे ही अपने घरमें से शीघ्रता के साथ बाहर निकली भगवान् तहाँ सकल स्वर्ग की सम्पदाओं को ही लाये थे इसकारण उन दोनों का शरीर भी देवताओं की समान दिव्य हुआ ॥ २५ ॥ वह पतिव्रता स्त्री पति को देखकर, जिस के नेत्रों में प्रेम के कारण और उत्कण्ठा से आनन्द के आँसू आगये हैं ऐसी होकर, उस ने अपने नेत्र मूँदकर प्रेमभाव से उन पति को नमस्कार करके मन से आलिङ्गन करा ॥ २६ ॥ उससमय वह ब्राह्मण, विमान में बैठीहुई देवाङ्गना की समान दमकतीहुई और कठले आदि आभूषण कण्ठ में धारण करनेवाली दासियों के मध्य में झलकनेवाली उस अपनी स्त्री को देखकर विस्मितहुआ ॥ २७ ॥ और प्रसन्नहुआ वह ब्राह्मण, उस स्त्री के साथ स्वयं अपने घर में प्रविष्ट हुआ, वह घर—मणिमय सैंकडों खम्भों से युक्त और इन्द्रस्थान की समान शोभायमानथा॥२८॥तहाँ दूध के झागों की समान गद्दे, सुवर्ण की पट्टी आदि लगेहुए हाथीदाँत के पलँग, सुवर्ण की दण्डीवाले चँवरी और पंखे थे ॥ २९ ॥ तैसे ही कोमल बिछौने बिछायेहुए सुवर्ण के आसन (चौकी आदि), और जिन में मोतियों की झालर लटकरही थीं ऐसी चमकतीहुई कपडछतें थीं ॥३०॥ स्फटिक मणि की भीतें और इन्द्र नीलमणि की भूमिवाले उन घरों में स्त्रीरत्न शोभायमान थे और रत्नों के दीपक जलरहे थे ॥ ३१ ॥ उन घरों में सकल सम्पदाओं की समृद्धि को देखकर सावधानचित्त हुआ वह ब्राह्मण, अकस्मात् आईहुई उस अपनी समृद्धि के विषय में 'यह कहाँ से आगई? ऐसा विचार करनेलगा ॥ ३२ ॥ वह कहनेलगा कि—अहो! मुझे निःसन्देह प्रतीत होता है कि—भाग्यहीन और जन्म से ही दरिद्री मुझे यह समृद्धि प्राप्त होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदूत्तमस्य ॥ ३३॥ नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किंचित्कृतोऽप्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्गवपि भूरिकारी ॥ मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विप्रजतस्तत्पुरुषप्रसंगः ॥३६॥ भक्तांय चित्रा भगवान् हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्द्धयत्यजः अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्धवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं

का कारण, महाविभूति भगवान् श्रीकृष्णजी की कृपादृष्टि के सिवाय दूसरा कोई नहीं है।३३। यादवों के स्वामी मेरे सखा श्रीकृष्णजी, निःसन्देह भक्त के दियेहुए थोडे से भी पदार्थ को बहुतसा माननेवाले और अपने बहुतसे दियेहुए को भी मेघ की समान थोडा देखनेवाले हैं इसकारण यह याचना करनेवाले भक्त को विना कहे ही बहुत सी सम्पत्ति देते हैं अर्थात् जैसे समुद्र को भी भरदेनेवाला परमउदार मेघ, अपनी करीहुई बडी वर्षा को भी बहुत थोड़ी मानकर लोकों के समक्ष वृष्टि न करके रात्रि में सब लोकों के सोजाने पर उन के खेतों को जल से पूर्ण करडालता है तैसे ही मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णजी भी, भक्तों को देने के निमित्त इन्द्रपद को भी तुच्छ और उन की करीभक्ति को अधिक मानकर समक्ष में कुछ न कहतेहुए सकलसम्पदा देते हैं ॥ ३४ ॥ वह भगवान् अपने दियेहुए बहुतसे भी ऐश्वर्य को थोडा मानते हैं और प्रेमयुक्त भक्त के करेहुए थोड़े से भी भजन को बहुतसा मानते हैं इस विषय में प्रमाण मेरा ही उदाहरण है कि—मेरी अर्पण करीहुई च्यौलों की केवल एक मुट्ठी थी वह उन महात्मा ने प्रीतियुक्त हो बहुत मानकर स्वीकार करी ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर और श्रीकृष्णजी की भक्तवत्सलता देखकर उस ब्राह्मण ने मन में प्रार्थना करी कि—मुझे अब आगेको जन्म जन्म तिन श्रीकृष्णजी का प्रेम, सखाभाव, मित्रता और सेवकभाव प्राप्त हों तथा महानुभाव और ऐश्वर्य आदि गुणों के स्थान तिनही श्रीकृष्णजी के साथ विशेष करके सम्पदा पानेवाले मुझ को उन के भक्तों की उत्तम सङ्गति होय ॥ ३६ ॥ अब भक्ति का फल सम्पदा, प्राप्त होने पर फिर भक्ति की क्यों प्रार्थना करता है ऐसा कोई कहेतो कहते हैं कि—धनवान् पुरुषों को मदोन्मत्तपना होकर आगे को अधोगति प्राप्तहोती है ऐसा स्वयं देखनेवाले विचारवान् भगवान्, अपने अपूर्ण (कच्चे) भक्तको, अनेकों प्रकार की सम्पत्तियें ऐश्वर्य, पुत्र पौत्र आदि समृद्धि और राज्य, यह कुछ भी नहीं देते हैं किन्तु, दृढभक्ति नहीं देते हैं, मुझ अज्ञानी को तो भक्ति न होने से यह सम्पदा मिली इस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयान् जोषया त्यक्ष्यन्नुभुजे नातिलंपटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदो दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबंधनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इतिश्रीभागवते म० द० उ० एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥ तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण

कारण अब वह भक्ति ही प्राप्त होय ॥ ३७ ॥ भगवान् का परमभक्त वह ब्राह्मण तो, इसप्रकार बुद्धि से निश्चय करके, तिन विषयों को धीरे २ त्यागता हुआ, अति आसक्त न होकर स्त्री के साथ विषयों का सेवन करनेलगा ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी में इसप्रकार की ब्राह्मणभक्ति होना आश्चर्य नहीं है, क्योंकि-देवताओं के देवता, यज्ञपति तिन प्रभु श्रीहरि के, ब्राह्मण ही प्रभु और इष्टदेवता हैं, उन को तिन ब्राह्मणों से परमश्रेष्ठ दूसरा कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वह भगवान् का मित्र ब्राह्मण, उन सम्पदाओं के भोग के समय में भी, किसी के न जीतेहुए भगवान् को भक्तों ने अपने वश में करलिया है, ऐसा जानकर उन के ही तीव्र ध्यान से अपने अविद्यारूप बन्धन को तोड़कर (देहाभिमान को छोडकर) थोडेही काल में, ब्रह्मज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होनेवाले उन के स्वरूप को प्राप्त होगया ॥ ४० ॥ हे राजन्! यह च्यौलों की कथा और इस में के ब्राह्मणों के हितकारी श्रीकृष्णजी की ब्राह्मणभक्ति को जो पुरुष सुनता है वह, भगवान् के विषैं भक्ति पाकर कर्मबन्धन से छूटजाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे बयासीवें अध्याय में, सूर्यग्रहण के समय चारोंओर से इकट्ठेहुए राजाओं ने यादवों को देखकर उन के साथ आनन्दपूर्वक कृष्ण कथा वार्त्ता करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हेराजन्! फिर वह बलरामकृष्ण द्वारका में रहते रहे, एकसमय, जैसे प्रलयकाल में सूर्य का लय होकर अन्धकार छाजाता है तैसेही सर्वग्रास से अन्धकार छानेवाले बहुत ही बडे सूर्य ग्रहण के पर्व आये ॥ १ ॥ हे राजन् ज्योतिषियों के बताएहुए उन सूर्यग्रहणों का समय आने से पहिले ही, उन को सुनकर सब देशों के मनुष्य, पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से स्यमन्तपञ्चक नामवाले कुरुक्षेत्र को चलेगये ॥ २ ॥ जिस कुरुक्षेत्र में, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुरामजी ने, पृथिवी को क्षत्रिहीन करतेसमय, राजाओं के रुधिर के प्रवाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्र चक्रे महाहृदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योघापनुत्तये ॥ ४ ॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः ॥ कृष्णपक्षश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्गारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥ व्यरोचंत महातेजाः पथि कांचनमालिनः ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥ तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्भूरिमालिनीः ॥ ९ ॥ रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वन्न द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ १० ॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥

से बडेभारी नौ तालाव उत्पन्न करदिये थे ॥ ३ ॥ और जहाँ राजाओं के वध के पाप से अलिप्त भी उन भगवान् प्रभु परशुरामजी ने, लोकों को ऐसा करना चाहिये, ऐसी उन को शिक्षा देने के निमित्त, जैसे साधारण पुरुष, अपने पाप दूर करने के निमित्त प्रायश्चित्त आदि करता है तैसे बहुतसे यज्ञ करके भगवान् का आराधन करा ॥ ४ ॥ अतिपुण्यकारक तिस तीर्थयात्रा में तिस कुरुक्षेत्र के विषें भरतखण्ड में की बहुत सी प्रजा गई थीं, तैसे ही हे राजन् ! अक्रूर, वसुदेव, आहुक, गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि यादव भी अपने पाप दूर करने की इच्छा करके उस कुरुक्षेत्र में गए थे, उससमय अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा यह दोनों, सुचन्द्र, शुक और सारण के साथ द्वारका की रक्षा करने के निमित्त रहे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब कण्ठ में सुवर्ण के पुष्पों की माला धारण करनेवाले, दिव्य माला, वस्त्र, कवच, कुण्डल आदि पहिने और स्त्रियों के साथ यात्रा को निकलेहुए वह महातेजस्वी यादव, मार्ग में विमानों की समान रथों से, तरङ्गों की समान चञ्चल चालवाले घोड़ों से, गरजनेवाले मेघों की समान हाथियों से और विद्याधरों की समान तेजस्वी सिपाही आदि मनुष्यों से, देवांगना के साथ विमान में बैठकर जानेवाले देवताओं की समान शोभायमान होनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन महाभाग यादवों ने, एकाग्रचित्तपने से उस तीर्थ में स्नान करके निराहार व्रत करा और ब्राह्मणों को वस्त्र तथा माला देकर, सुवर्ण के पुष्पों की माला धारण करीहुई गौ भी दान दीं ॥ ९ ॥ तदनन्तर उन्होने परशुरामजी के रचना करेहुए तालावों में विधि के साथ मोक्षस्नान करके, श्रीकृष्ण के विषें हमें भक्ति हो इस अभिप्राय से ब्राह्मणों को उत्तम अन्न का भोजन कराया ॥ १० ॥ तदनन्तर जिन के देवता श्रीकृष्ण हैं तिन यादवों ने, ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर आप भी भोजन करने पर घने और शीतल छायावाले वृक्षों के नीचे अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ११ ॥ तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबंधिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्य-विदर्भकुरुसृंजयान् ॥ १२ ॥ कांबोजकैकयान्मद्रान्कुंतीनानर्तकेरलान् ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ॥ १३ ॥ नंदादीन्सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कंठितोत्थितान् ॥ १४ ॥ अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्ररोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १५ ॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोऽभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः १६॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥ १७ ॥ पृथा भ्रातॄन् स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुंदं च जहौ संकथया शुचः ॥ १८ ॥ कुंत्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृतार्थिषम् ॥ यद्वा आपत्सु मद्वार्ता नानुसर्थ सत्तमाः ॥ १९ ॥

इच्छानुसार डेरे आदि लगाकर, कुछदिनों तहां ही रहने के ढंग से ठहरे ॥ ११ ॥ फिर हे राजन् ! उन यादवों ने, तहाँ आयेहुए मित्र सम्बन्धी राजाओं को देखा, तैसे ही, मत्स्य, उशीनर, कौसल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ती, आनर्त्त, और केरल देशों में रहनेवाले पुरुषों को तथा दूसरे भी अपने पक्ष के और शत्रुपक्ष के सैंकडों पुरुषों को देखकर परमस्नेही नन्दादि गोपों को और दर्शन की बहुतदिनों से उत्कण्ठा रखनेवाली गोपियों को भी देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब परस्पर के दर्शन से उत्पन्न हुए आनन्द के वेग करके अत्यन्त उमडेहुए हृदयों से और मुख कमलों से जिन के ऊपर शोभा आरही है, जिन के नेत्रों में से आनन्द के आँसू वह रहे हैं, जिन की वाणी प्रेम से गद्गद होरही हैं और जिन के शरीरों पर अधिक हर्ष से रोमाञ्च खडे होगये हैं ऐसे वह सब लोक, परस्पर दृढ आलिङ्गन करके आनन्द में निमग्न हुए ॥ १५ ॥ तैसे ही सकल स्त्रियें भी परस्पर एक दूसरी को देखकर अतिप्रेम से जिन की दृष्टि मन्दहास्य युक्त और निर्मल कटाक्षयुक्त हुई हैं तथा जिन के नेत्रों में आनन्द के आँसू आगये हैं ऐसी होकर केशर से लेपन करेहुए स्तनों को, तैसे ही अपने स्तनो से दबाकर आलिंगन करनेलगीं ॥ १६ ॥ तदनन्तर छोटी अवस्था के लोकों से, प्रणाम करेहुए वह सब लोक, अधिक अवस्थावाले वृद्धों को प्रणाम करके और स्वागत का तथा कुशल का प्रश्न करके आपस में कृष्ण की कथा वर्णन करनेलगे ॥ १७ ॥ कुन्ती तो—अपने भ्राता, बहिन, उन के पुत्र, माता, पिता, भावज, और श्रीकृष्णजी को देखकर उन के साथ प्रेम की बातें करनेपर सब दुःखों को भूलगई ॥ १८ ॥ वह कुन्ती वसुदेवजी से कहनेलगी कि—हे आर्य भ्रातः ! मैं तो, अपने मनोरथ पूर्ण नहीं हुए ऐसा मानती हूँ, क्योंकि तुमने समर्थ होकर भी, मेरे ऊपर आपत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरंति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २० ॥ वसुदेव उवाच ॥ अहो मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २१ ॥ कंसप्रतापितास्सर्वे वयं याता दिशो दिशः ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादितास्स्वसः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २३ ॥ भीष्मो द्रोणोऽविकापुत्रो गांधारी ससुता तथा ॥ सदाराः पांडवाः कुंती सृंजयो विदुरः कृपः ॥ २४ ॥ कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥ २५ ॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकैकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २६ ॥ राजानो ये च राजेंद्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २७ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥ २८ ॥ अहो भोजपते यूयं जन्म-

आने के समय मेरा स्मरण भी नहीं करा ॥ १९ ॥ मित्र हों, जातिवाले हों, पुत्र हों अथवा माता पिता भी हों वह, जिस का दैव प्रतिकूल हो उस स्वजन का भी स्मरण नहीं करते हैं ॥ २० ॥ तब वसुदेवजी ने कहा कि—हे बहिन ! दैव के खिलौनेरूप हम मनुष्यों को तू कुछ दोष मत देव, क्योंकि—सब लोक ईश्वर के वश में हैं, वह उस की प्रेरणा से ही नानाप्रकार के कार्य करते हैं अथवा दूसरों से कराते हैं ॥ २१ ॥ हे बहिन ! पहिले कंस के अत्यन्त दुःख दियेहुए हम सब, दिशा २ में को भागगये थे, सो अब ही फिर दैव करके अपने स्थानों को प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! उन आयेहुए कुरु—मत्स्य आदि राजाओं का, वसुदेव उग्रसेन आदि यादवों ने, सत्कार करा तब, वह परमानन्दमूर्त्ति श्रीकृष्णजी के दर्शन के आनन्द से अत्यन्त सुख को प्राप्तहुए ॥ २३ ॥ भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, तैसे ही पुत्रों सहित गान्धारी, स्त्री सहित पाण्डव, कुंती, सृंजय, विदुर, कृपाचार्य ॥ २४ ॥ कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, ॥ २५ ॥ दमघोष, विशालाक्ष, मिथिला नगरी का राजा, मद्रदेशों का राजा, कैकयदेशों का राजा, युधामन्यु, सुशर्म्मा, और पुत्रोंसहित बाल्हीक आदि जो राजे तहाँ आये थे; तैसे ही हे राजेन्द्र ! राजसूययज्ञ में जीतेहुए होने के कारण युधिष्ठिर के पक्ष में होकर जो राजे तहाँ आये थे वह, लक्ष्मी के और शोभा के रहने के स्थान श्रीकृष्णजी के शरीर और उनकी स्त्रियों को देखकर उनकी सुन्दरता की अधिकता से विस्मयमें होगये ॥ २६ ॥ २७ ॥ तदनन्तर बलरामकृष्ण करके उत्तम सत्कार करेहुए राजे, हर्षयुक्त होकर, भगवान् के अङ्गीकार करेहुए यादवों की प्रशंसा करनेलगे ॥ २८ ॥ कि—हे भोजपते उग्रसेन राजन् !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाजो नृणामिह ॥ यत्तद्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनां ॥ २९ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रं ॥ भूः कालभजितभगाऽपि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिंडबन्धः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥३१॥श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्तत्र यदून्प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ यत्रागमद्वृतो गोपैरनस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३३ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः॥ स्मरन् कंसकृतान्क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३४ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह॥३५॥ तावात्मा-

इस मनुष्यलोक में तुमने ही अपने जन्म की सफलता करली है, क्योंकि—जिनका दर्शन योगीजनों को भी दुर्लभ है ऐसे भगवान् श्रीकृष्णजी को तुम निरन्तर देखते हो ॥२९॥ केवल उन का दर्शन ही तुम्हें होता है ऐसा नहीं किन्तु अत्यन्तदुर्लभ और भी बहुत से लाभ होते हैं; जिन की वेदों में वर्णन करीहुई कीर्त्ति, जिन के चरण की धोवन का जल (गङ्गाजल) और जिन के वचनरूप शास्त्र (वेदादि), इस सकल जगत् को अत्यन्त पवित्र करते हैं, और काल की गति से भाग्यहीन हुई भी भूमि, जिन के चरणारविन्द के स्पर्श से उत्तम शक्तिपाकर हमें सकल पदार्थ जिधर तिधर से देती है ॥ ३० ॥ उन भगवान् के साथ दर्शन, स्पर्श, पीछे २ फिरना, वार्त्तालाप, सोना, बैठना, भोजन, विवाहसम्बन्ध और गोत्रसम्बन्ध जिन के हैं ऐसे तुम,यद्यपि नरक के मार्गरूप घरों में रहते हो तथापि तुम्हारे घरों में स्वर्ग की और मोक्ष की भी इच्छा को दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वयं प्रगटहुए हैं, इसकारण तुम्हारा जन्म सफल है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! नन्दराजा तो तहाँ श्रीकृष्ण आदि यादव आये हैं ऐसा सुनकर कृष्ण आदिकों के दर्शन की इच्छा के, गोपों के साथ उन यादवों के समीप ही ठहरने की इच्छा से छकड़ों पर लादेहुए सामान आदि सहित ही तहाँ आगये ॥ ३२ ॥ उन नन्दजी को देखकर हर्ष को प्राप्तहुए यादव, जैसे प्राण के आने पर इन्द्रियें उठकर उस के सन्मुख जाती हैं तैसे सन्मुख जाकर, बहुतसमय में दर्शन होने के कारण मिलने में शीघ्रता करनेवाले उन्होंने, उन नन्दजी को दृढता के साथ हृदय से लगाया ॥ ३३ ॥ वसुदेवजी तो नन्दजी को आलिङ्गनकर प्रसन्न होकर, कंस के दियेहुए क्लेशों का और अपने पुत्र गोकुल में रखदिये थे उन का स्मरण करतेहुए, प्रेम से अत्यन्त विव्हल हुए ॥ ३४ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलराम तो अपने मातापिता तिन यशोदानन्द को नमस्कार और आलिङ्गन करके, प्रेम से कण्ठ भर आने के कारण कुछ भी बोलने को समर्थ नहीं हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३६ ॥ रोहिणी देवकी चार्थे परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३७ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्यापि पदं मैश्वर्य यस्यानेह प्रतिक्रिया ॥ ३८ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्यो पतुर्भवति पक्ष्म हृ यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयो न सतां परः स्वः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिराद्भीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ॥ दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ४० ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ॥ आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरा-

किन्तु मौन ही रहे ॥ ३५ ॥ तब राजा नन्द ने और महाभाग्यवती यशोदा ने उन दोनों पुत्रों को अपनी गोद में बैठाकर उन को भुजाओं से कौलिया भरलिया और विरहशोक को त्यागकर नेत्रों में से आनन्द के आँसू बहाये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रोहिणी और देवकी यह दोनों, यशोदा से मिलकर तिस यशोदा के करेहुए पुत्रों को लाड़ करना आदि मित्रभाव का स्मरण करके गद्गदकण्ठ हुई कहने लगीं ॥ ३७ ॥ कि—हे व्रजेश्वरि ! हे यशोदे ! छूटने का कारण होने पर भी न छूटनेवाले तुम दोनों के मित्रभाव को भला कौन भूलनेवाला है?, क्योंकि—इन्द्र के ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी इस लोक में जिस मित्रभाव का पलटा नहीं हो सकेगा ॥ ३८ ॥ हे यशोदे ! जिन्होंने माता-पिता को देखा भी नहीं ऐसे इन हमारे बलरामकृष्ण पुत्रों को तुम्हारे समीप रखने पर, जैसे पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं तैसे ही तुम ने इन की रक्षा की है; यह तुम माता-पिता से ही इच्छा के अनुसार खाना, खेलना, उत्साह, लाड़, और पालन (स्नान, भोजन, पीना आदि) पाकर निर्भयपने से गोकुल में रहे हैं. सत्य है कि—सत्पुरुषों को, 'यह अपना और यह पराया इसप्रकार की' भेदबुद्धि किञ्चिन्मात्र भी नहीं होती है ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! जो गोपियें, श्रीकृष्णजी को देखने में प्रवृत्त हुई अपनी दृष्टियों को रोकनेवाले पलकों को रचनेवाले ब्रह्माजी की निन्दा करती थीं वह सब गोपियें भी बहुत काल के अनन्तर मिलेहुए प्रिय श्रीकृष्णजी को देखकर नेत्रों के द्वारा हृदय में पहुँचाएहुए उन को दृढ आलिङ्गन करके, नित्य चित्त को एकाग्र करनेवाले योगियों को भी दुर्लभ भगवद्रूपता को प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी, आत्मभाव को प्राप्त हुई उन गोपियों से एक ओर मिलकर और दृढ़ आलिङ्गन करके तथा कुशल बूझकर हँसतेहुए इसप्रकार कहा कि—॥ ४१ ॥ हे सखियों ! अपने माता-पिता आदि का कार्य करने की इच्छा से गोकुल में से मथुरा में गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यितान् शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४२ ॥ अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञा विशंकया ॥ नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४३ ॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४४ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४५ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥ ४६ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मनाततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यतात्मतमक्षरे ॥४७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्म-

हुए और तहाँ शत्रुपक्ष का नाश करने के विषय में अपने चित्त को लगाकर बहुत दिनों पर्यन्त रहनेवाले हमारा तुम स्मरण करती हो क्या? ॥४२॥ क्या, हम अकृतज्ञ (करे-हुए उपकार को स्मरण न करनेवाले) हैं ऐसी कुछ शङ्का मन में लाकर तुम हमारी निन्दा तो नहीं करती हो? क्या करें! भगवान् प्राणीमात्र के संयोग और वियोग करते हैं यह वार्त्ता सत्य है ॥ ४३ ॥ जैसे वायु, मेघ की घटा, तृण, रुई और धूलि, इन का एक स्थान पर संयोग करके तत्काल ही वियोग करदेता है, तैसे ही ईश्वर प्राणीमात्र के संयोग वियोग करता है ॥ ४४ ॥ ऐसी दशा में तुम्हें मेरे वियोग से मेरा अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हुआ यह एक बडी उत्तम वार्त्ता हुई, क्योंकि—मेरे विषय की केवल भक्ति ही उत्पन्न होजाय तो वह,—प्राणियों को मोक्ष देसक्ती है, फिर मेरी प्राप्ति करदेनेवाला मेरा स्नेह तुम्हें प्राप्त हुआ यह तो कितने अहोभाग्य की वार्त्ता है? ॥ ४५ ॥ हे स्त्रियों! जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पाँच महाभूत, घटपटआदि पदार्थों के आदि अन्त में, बाहर और भीतर सब रूपों से हैं, तैसे ही मैं भी सकलपदार्थों के आदि, अन्त में, बाहर और भीतर सकल रूपों से हूँ ॥ ४६ ॥ जैसे घटआदि कार्य पृथ्वी आदि रूप ही हैं तैसेही जरायुज (झिल्ली में लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले) स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होनेवाले) अण्डज (अण्डे में उत्पन्न होनेवाले) और उद्भिज्ज (पृथ्वीआदि को फोडकर उत्पन्न होनेवाले) यह चारोंप्रकार के शरीर अपने कारणरूप पञ्चमहाभूतों में ही रहते हैं, भोक्ता आत्मा के विषैं नहीं रहते हैं, आत्मा तिन पञ्चमहाभूतों में केवल भोक्तारूप से व्यापरहा है, कारणरूप से नहीं, तिस से भूतभौतिकरूपभोग्य और भोक्ता आत्मा यह दोनो मुझ परिपूर्ण ब्रह्म के विषैं भासते हैं, सत्य नहीं हैं ऐसा तुम देखो ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि—हे राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्णजी ने, आत्मतत्व का उपदेश करके समझाई हुई वह गोपियें, आत्मतत्व का वारम्वार चिन्तवन करके लिङ्ग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४८ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभा० म० द० उ० वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् १॥ ते एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥३॥ हित्वात्मधाम विधुतात्मकृतव्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुंठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युत्तम-

शरीर का नाश होनेपर तिन श्रीकृष्णजी के स्वरूप को ही प्राप्त होगई ॥ ४८ ॥ और कहनेलगीं कि—हे कमलनाभ ! अगाध बोधवाले योगेश्वरों करके भी हृदय में चिन्तवन कराहुआ और संसाररूप कूप में पडेहुए पुरुषों को उस में से निकलने में अवलम्बन रूप तुम्हारा चरणकमल, घरद्वार का सेवन करनेवालीं भी हमारे मन में निरन्तर प्रकट रहे अर्थात् तुम्हारी कृपासे हमें प्राप्तहुआ यह तुम्हारा साक्षात् दर्शन फिर घरके झगडों से कभी दूर न हो॥४९॥ इतिश्रीमद्भागवतकेदशमस्कन्धउत्तरार्द्धमेंद्व्यशीतितम अध्यायसमाप्त॥*॥ अब आगे तिरासीवें अध्याय में, स्त्रियों में श्रीकृष्णजी की कथा का उत्साह चलने पर, श्रीकृष्णजी की स्त्रियों ने, द्रौपदी से अपना २ विवाह कहा, यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! गोपियों को आत्मतत्त्व का उपदेश करनेवाले गुरु और उनकी गति ऐसे उन श्रीकृष्णजी ने, उन की प्रार्थना करने को 'तथास्तु' कहकर उन के ऊपर अनुग्रह करा और फिर उन्होंने धर्मराज आदि सब ही सुहृदों से कुशलमंगल बूझा ॥ १ ॥ इसप्रकार लोकनाथ श्रीकृष्णजी के सत्कारपूर्वक प्रश्न करने पर वह पाण्डव आदि, उन के चरण के दर्शन से निष्पाप और हर्षितचित्त होकर उन श्रीकृष्णजी से कहनेलगे कि—। २ ॥ हे प्रभो ! देहधारियों को अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्या का नाश करनेवालीं और व्यासआदि सत्पुरुषों के मन में से मुख के द्वारा बाहर प्रकटहुई तुम्हारे चरणकमल से सम्बन्ध रखनेवालीं कथारूप अमृत को किसी समय भी जो पुरुष, अपने कर्णरूपपात्रों से इच्छानुसार पीते हैं उन को अमङ्गल भला कैसे होयगा ? अर्थात् कभी नहीं होगा ॥ ३ ॥ इसकारण अपने स्वरूप के प्रकाश से जहाँ बुद्धि से करीहुई जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीनो अवस्था नष्ट होगई हैं ऐसे सकल आनन्दों के समूहरूप, अपरिच्छिन्न, कुण्ठित न होनेवाली चैतन्यशक्ति से युक्त, कालवश नष्ट होतेहुए वेदों की रक्षा करने के निमित्त योगमाया से मनुष्यावतार धारण करनेवाले और परमहंसों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकशिखामणि जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविंदकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जांबवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान् स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजाविथूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥८॥ सत्यभामोवाच ॥ यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पितोऽदिशत मां प्रभवऽपि दत्तां ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्य-

की गति ऐसे तुम्हें हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! इसप्रकार पवित्रकीर्त्ति पुरुषों के मुकुटमणि तिन श्रीकृष्णजी की लोकों के स्तुति करनेपर, उससमय यादवों की और कौरवों की स्त्रियें इकट्ठी होकर, त्रिलोकी में वर्णन करी हुई श्रीकृष्णजी की कथाएँ परस्पर कहनेलगीं वह, मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदीने कहा कि—हे रुक्मिणि! हे भद्रे! हे जाम्बवति! हे कौसले! हे सत्यभामे! हे कालिन्दि! हे मित्रविन्दे! हे रोहिणि! हे लक्ष्मणे! हे कृष्णपत्नियों! तुम मुझे यह बताओ कि—अपनी माया से लोकों का अनुकरण करनेवाले अच्युत भगवान् श्रीकृष्णजी ने, अपनेआप तुम्हारा पाणिग्रहण (विवाह) कैसे करलिया? ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब रुक्मिणी बोली कि—मुझे, शिशुपाल को प्राप्तकराने के निमित्त जरासन्ध आदि राजे, हाथ में धनुषधारण करने को उद्यत हुए तब, जीतने में न आनेवाले वीरों के मस्तकोंपर के मुकुटमणि की समान जिन के चरण की धूलि का कण है अर्थात् जिन्होंने उन के मस्तक पर चरण रक्खा है ऐसे श्रीकृष्णजी, जैसे सिंह बकरी और भेडों के समूह में से अपना भाग लेजाता है तैसे अपना भागरूप मुझे ले आये; तिन भगवान् के चरण की पूजा मैं निरन्तर करती रहूँ ॥ ८ ॥ सत्यभामा कहनेलगी कि—अपने भ्राता प्रसेन का वध होने से दुःखितचित्तहुए मेरे पिता सत्राजित् के दोषदेनेपर, अपने ऊपर लगे अपयश को दूर करने के निमित्त जब श्रीकृष्णजीने, जाम्बवन्त को जीतकर स्यमन्तक रत्न लाकर दिया तब इन के ऊपर खोटा दोष लगाने के अपराध से डरेहुए उन मेरे पिता ने, दूसरे को देने के निमित्त कहीहुई भी मुझे, इन प्रभु श्रीकृष्णजी को अर्पण करा है ॥ ९ ॥ जाम्बवती कहने लगी कि—मेरे पिता जाम्बवान् ने, यह प्रभु श्रीकृष्ण, अपने स्वामी और कुलदेवता रामही हैं ऐसा न जानकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाहमुपेत्य दासी ॥ १० ॥ कालिंद्युवाच ॥ तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ मित्रविन्दोवाच ॥ यो मां स्वयंवरे उपेत्य विजित्य भूपान् निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तत्स्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृंगान् पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ॥ पंथि निर्जित्य राजन्याञ्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्य

इन के साथ सत्ताईस दिनपर्यन्त युद्ध करा, तदनन्तर परीक्षा करनेपर उन्हों ने, यह राम ही हैं ऐसा जानकर इन के चरण धोये और इन को प्रसन्न करके मणिसहित मुझे पूजनरूप से अर्पण करा है इसप्रकार मैं इन की दासी हुई हूँ ॥ १० ॥ कालिन्दी कहनेलगी कि- मेरे चरण के स्पर्श की इच्छा से यह तप कररही है ऐसा मुझे, जानकर, जिन्होंने अपने मित्र अर्जुन के साथ मेरे समीप आकर मेरा पाणिग्रहण करा तिन भगवान् के घर में के कूडे को निकालनेवाली दासी मैं हूँ ॥ ११ ॥ मित्रविन्दा कहने लगी कि - जो लक्ष्मीनिवास भगवान्, मेरे स्वयम्वर में आकर राजाओं को तैसे ही अपराध करनेवाले मेरे भ्राताओं को जीतकर, जैसे सिंह श्वानों के झुण्ड में से अपना भाग ले जाता है तैसे ही मुझे अपनी द्वारकानगरी में ले आये, तिन भगवान् के चरण धोने का कार्य मुझे जन्म जन्म में मिले ॥ १२ ॥ सत्या ने कहा कि- मेरे पिता ने राजाओं के बल की परीक्षा करने के निमित्त, अतिबली, पराक्रमी और तीखे सींग धारण करनेवाले तथा वीर पुरुषों का खोटा घमण्ड दूर करनेवाले जो सात बैल नियत करे थे, उन को इन भगवान् ने बडी शीघ्रता से नाथकर, जैसे बालक बकरी के बच्चों को बाँधकर डालदेते हैं तैसे बाँधकर डालदिया ॥ १३ ॥ इसप्रकार पराक्रम दिखाना ही जिस का मूल्य है ऐसी मुझे, जो भगवान्, मेरे पिता के दियेहुए दहेजरूप दासियोंसहित चतुरङ्गिणी सेना को लेकर और मार्ग में रोकनेवाले राजाओं को जीतकर द्वारका में लाये उन भगवान् का दासभाव मुझे प्राप्त हो ॥ १४ ॥ भद्रा कहने लगी कि- मेरे पिता ने, मेरे चित्त को श्रीकृष्णजी के विषैं आसक्त जानकर अपने मामा के पुत्र इन श्रीकृष्णजी को, आप ही बुलाकर, अक्षौहिणीसेना और सखियों के साथ मुझे इन के अर्पण करादिया ॥ १५ ॥ कर्मों के द्वारा किसी भी शरीर में भ्रमण करनेवाली मुझे जन्म २ में इन भगवान् की चरणसेवा ही प्राप्त हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ गमीपि राज्यच्युत-जन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमासं हे ॥ चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥२१॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वापरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम्

क्योंकि—जन्म में आयेहुए जीवात्मा के कल्याण होने का यही मुख्य साधन है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा कहनेलगी कि—हे द्रौपदि! नारदजी के वारम्वार गान करेहुए श्रीकृष्णजी के जन्म और कर्म को सुनकर, अहो! लक्ष्मी ने भी इन्द्रादि लोकपालों को छोड़कर, भगवान् को ही वरा है, ऐसा बहुत विचार करके, इस लक्ष्मी की समान मेरा भी चित्त श्रीकृष्णजी के विषैं आसक्त हुआ था ॥ १७ ॥ हे साध्वि! तब कन्या के ऊपर दया करनेवाले मेरे पिता बृहत्सेन ने, मेरा अभिप्राय जानकर श्रीकृष्णजी की प्राप्ति होने के निमित्त उपाय करा ॥ १८ ॥ हे द्रौपदि! जैसे तेरे स्वयम्वर में, तेरे पिता ने तुझे, अर्जुन को देने की इच्छा से मत्स्य करा था. परन्तु तुम्हारा मत्स्य केवल बाहर से ही ढकाहुआ था, भीतर से नहीं था, इसकारण खम्भे के समीप से ऊपर को दृष्टि करने से दीखता था और यह हमारा मत्स्य तो तैसा न होकर खम्भ की मूल में रक्खेहुए केवल कलश में के जल में ही दीखता था इसकारण नीचे को दृष्टि और ऊपर लक्ष्य (निशाना) होने से श्रीकृष्णजी को छोडकर दूसरे किसी के भी भेदन करने में नहीं आसक्ता था ॥ १९ ॥ ऐसी मत्स्य के यन्त्र की रचना को सुनकर, सब शस्त्र अस्त्रों के तत्त्व को जाननेवाले सहस्रों राजे, अपने उपाध्याओं (गुरुओं) के साथ, सब दिशाओं से मेरे पिता के नगर में आये थे ॥ २० ॥ उन सबों का, उन के पराक्रम और उन की योग्यता के अनुसार मेरे पिता ने सत्कार करा तब, मेरे ऊपर चित्त लगानेवाले उन्होंने, सभा में मत्स्ययन्त्र को भेदने के निमित्त बाणों के सहित धनुष उठाया ॥ २१ ॥ उन में से कितनो ही ने हाथ में धनुष लेकर उस को चढ़ाने में असमर्थ होने के कारण वह ज्यों का त्यों ही छोडदिया, कितने ही तो धनुष को चढाकर और उस की डोरी पहुँचे पर्यन्त खेंच करके भी आगे को शक्ति न होने के कारण हाथ में से निकलेहुए तिस ही धनुष से ताड़ित होतेहुए नीचे गिरपडे ॥ २२ ॥ दूसरे, जरासन्ध, अम्बष्ठ, शिशुपाल, भीम, दुर्योधन और कर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥२३॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिं ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नोच्छिन्तत्स्पृशे परं ॥ २४ ॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥२५॥ तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रंगमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुंतलकुंडलत्विड्गंडस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसे ऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदंगपटहाः शंखभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो न-

इन वीरों ने, धनुषको उठाकर उस का रोदा चढाया परन्तु उस लक्ष्य की स्थिति (निशाने की जगह) उन की समझ में नहीं आई इसकारण उन का उद्योग निष्फल गया ॥ २३ ॥ यत्न करनेवाले अर्जुन ने तो, जल में पडतेहुए मत्स्य की परछाहीं को देखकर उस की स्थिति और स्थान को जानकर वाण भी छोडा परन्तु उस वाण से उस का वेध नहीं करा, केवल उस को स्पर्श ही करा ॥ २४ ॥ इसप्रकार वह अभिमानी सब राजे, मानभङ्ग (अप्रतिष्ठा) पाकर यन्त्र का वेध करने से हटगये तब, भगवान् श्रीकृष्णजी ने धनुष लेकर उस का रोदा चढ़ाकर, फिर सहज में ही उस में वाण चढ़ाकर, सूर्य के मध्यान्हकाल में आने पर, सकल प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले अभिजित् मुहूर्त्त में, जल में प्रतिबिम्बित होतेहुए मत्स्य को एकवार देखकर, वाण से उस यन्त्र को तोड़कर गिरादिया॥२५॥२६॥ उस समय स्वर्ग में और भूमि पर दुन्दुभी वजनेलगीं, जयजयकार शब्द करनेवाले और हर्ष से विव्हल हुए देवता भूमि पर पुष्पों की वर्षा करनेलगे॥२७॥उससमय नवीन जरी के रेशमी उत्तम दो वस्त्र एक उढाकर और एक पहिराकर वेणी(चोटी)में पुष्पों की माला बाँधीहुई और लज्जासहित हास्ययुक्त मुखवाली मैं, सुवर्णसे दमकतीहुई रत्नोंकी मालाको हाथमें लेकर मधुर शब्द करनेवाली पायजेबोंसे भूषितचरणोंसे चलतीहुई तिसरङ्गसभाके स्थानमेंप्रविष्टहुई२८ और श्रीकृष्णजी के विषैं आसक्तचित्त हुई तिस मैंने, जिस में उत्तम केशपाश और कुण्डलों की कान्ति से युक्त कपोल चमकरहे हैं ऐसा अपना मुख ऊपर को करके, सन्ताप दूर करनेवाले हास्ययुक्त कटाक्षपातों से चारोंओर बैठेहुए राजाओं की ओर को अवकाश के साथ देखती देखती श्रीकृष्णजी के समीप जाकर अपने हाथमें की माला तिनश्रीकृष्णजी के गले में डाली ॥ २९ ॥ सो इतने ही में मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी और चौघड़े आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृतुर्गायकाँ जगुः ॥ ३० ॥ एवं वृते भगवति गेयेषु नृपयूथपाः ॥ नैं सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धतो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥ मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयं ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास कांचनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्वसज्जंत राजन्यो निषंङ्गेषु पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिं ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाहूंघ्रिकंधराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणां ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां समाविशत्तरणिरिवे स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटैरश्वैर्गजैरपि ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदा-

वाजे वजनेलगे, नट और नटनियें नृत्य करनेलगे और गवैये गानेलगे ॥ ३० ॥ हेद्रौपदि ! इसप्रकार भगवान् प्रभुश्रीकृष्णजी को मैंने वरा तब, कामातुर हुए और श्रीकृष्णजी से स्पर्धा (हिर्स) करनेवाले बड़े बड़े राजाओं ने, उस को सहन नहीं करा ॥ ३१ ॥ इतने ही में भगवान्, उत्तम चारघोडे जुतेहुए रथपर मुझे बैठालकर, अपने आप कवच आदि धारण करे और चतुर्भुज होकर दो हाथों से मुझे आलिङ्गन करके और दूसरे दोनोंहाथों से धनुष वाण उठाकर युद्ध करने को उद्यत हुए ॥ ३२ ॥ हे द्रौपदि ! उससमय सुवर्ण से मँढा हुआ वह रथ, दारुक सारथी ने चलाया तब, जैसे हिरनों के देखते हुए सिंह अपना भाग लेजाता है तैसेही सब राजाओं के देखते हुए श्रीकृष्णजी मुझे लेकर चलदिये ॥ ३३ ॥ तब धनुष उठाकर युद्ध करने को उद्यत हुए वह कितने ही राजे, जैसे श्वान सिंहको रोकने के निमित्त उस के पीछे भागते हैं तैसे मार्ग में श्रीकृष्णजी को रोकने के निमित्त उन के पीछे दौडनेलगे ॥ ३४ ॥ उन में से कितने ही राजे, युद्ध में श्रीकृष्णजी के शार्ङ्ग धनुष से छूटेहुए वाणों के समूहों से हाथ, पैर और कण्ठ कटकर मरकर ही गिरपडे, शेष कितने ही एक, युद्ध करने का त्याग करके भागगये ॥ ३५ ॥ फिर जैसे सूर्य अस्ताचल को जाता है तैसे श्रीकृष्णजी द्वारका को चलेगये; वह द्वारका सूर्य को ढकनेवालीं ध्वजा खडीकरके और नानाप्रकार की वन्दनवारें बाँधकर अत्यन्त सजाईगई थी तथा सकलपृथ्वी पर और स्वर्ग में प्रशंसा करीहुई थी ॥ ३६ ॥ मेरे पिता ने, अमूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन और पात्र आदि सामग्री देकर, मित्र, सम्बन्धी और बान्धवों का सत्कार करा ॥ ३७ ॥ और पूर्णकामभी तिनभगवान् को दासी, सकल सम्पदा, हाथी, घोडे, रथ, सिपाही और नानाप्रकार के शस्त्र भक्ति के साथ समर्पण करे ॥ ३८ ॥ हेद्रौपदि ! इन रुक्मिणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिकाः ॥ सर्वसङ्गनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽर्थ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादांबुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ॥ वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ॥ कुचकुंकुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥ व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३ ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी मौषव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णे खिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा

आदि हम आठों ने, पूर्व के जन्मों में सकल संगोंका त्याग, वैराग्य और तप करे थे; इसकारण इस जन्म में हम, तिन आत्माराम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णजी के घर की दासी हुई हैं ॥ ३९ ॥ सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियें कहनेलगीं कि—भौमासुर ने, दिग्विजय के समय जीतेहुए राजाओं की हम कन्याओं को बन्धन में डालकर रक्खा है, ऐसा जानकर, पूर्णकाम भी जिन श्रीकृष्णजी ने, उस भौमासुर को सेनासहित युद्ध में मारकर हम को बन्दीघर में से छुटाया और संसार से मुक्त करनेवाले अपने चरणकमल का वारंवार स्मरण करनेवाली तिन हमारा पाणिग्रहण करा ॥ ४० ॥ हे साध्वि ! हम सार्वभौमपद, इन्द्रपद, तिन दोनों पदोंके भोग के ऐश्वर्य, अणिमादि सिद्धि, ब्रह्मपद, मोक्ष वा सलोकता आदि मुक्ति की भी किञ्चिन्मात्र इच्छा नहीं करती हैं किन्तु उन भगवान् के, ब्रह्मादिकों के सेवन करने योग्य, लक्ष्मी के स्तनोंके केशर से सुगन्धयुक्त हुए सर्वोत्तम चरणरज को मस्तकपर धारण करने की इच्छा करती हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ यदि कहो कि—उस परमदुर्लभ चरणरज की इच्छा क्यों करती हो ? तो भक्तवत्सलता के कारण गौ चरानेवाले उन महात्मा भगवान् के चरणरज को और चरण के स्पर्श करने को, जैसे गोप, गोपी, भीलिनी, तृण और लता भी इच्छा करती हैं तैसे ही हम भी इच्छा करती हैं, इस से यह सूचित करा कि—भगवत्परायणों को वह चरणरज परमसुलभ है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में त्र्यशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे चौरासीवें अध्याय में, ऋषियों का समागम होने पर वसुदेवजी के यज्ञ का उत्साह और सम्बन्धियों को विदा करनेआदि की कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा तैसे ही राजाओं की स्त्रियें और कृष्ण की भक्त गोपियों ने रुक्मिणी आदि कृष्ण की स्त्रियों का, सर्वात्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥ द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रस्तथाऽगिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान् दृष्ट्वा सहसोत्थायं प्रागासीना नृपादयः ॥ पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

हरि श्रीकृष्णजी के विषैं प्रेम से परवश हुआ भाषण सुनकर, सबों ने ही आनन्द के अश्रुओं से नेत्रों को भरकर विस्मय माना ॥ १ ॥ इसप्रकार स्त्रियों के साथ स्त्रियें और पुरुषों के साथ पुरुष भाषण कर रहे थे उसी समय, तिस कुरुक्षेत्र में बलरामकृष्ण को देखने की इच्छा से ऋषि आपहुँचे ॥ २ ॥ उन के नाम—वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, ॥ ३ ॥ शिष्योंसहित, भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, ॥ ४ ॥ द्वित, एकतत्रित, सनकादिक ब्रह्मपुत्र, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, तैसे ही वामदेवादि और भी, यह ऋषि थे ॥ ५ ॥ उन ऋषियों को देखते ही पाण्डव श्रीकृष्ण, बलराम और जो तहाँ पहिले बैठेहुए राजे आदि थे उन सबों ने ही एकसाथ उठकर, जगत् के वन्दनीय तिन ऋषियों को नमस्कार करा ॥ ६ ॥ उससमय पाण्डव आदि सब राजाओं ने, उन का स्वागत बूझना, आसन, पाद्य, अर्घ्य पुष्प, धूप और चन्दन के लेपन आदि से पूजन करा तैसे ही बलरामसहित श्रीकृष्णजी ने भी, उन का यथायोग्य पूजन करा ॥ ७ ॥ तदनन्तर सुख से बैठेहुए उन व्यास आदि मुनियों से, धर्म की रक्षा के निमित्त अवतार आदि धारण करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, तिस बड़ी भारी सभा के मौन होकर सुनते में कहनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् कहनेलगे—अहो ! आज हम, सफल जन्मवाले हुए हैं, क्योंकि -उस जन्म का फल पूर्णरूप से हमें मिला है, जो कि--देवताओं को भी दुर्लभ तुम योगेश्वरों का दर्शन हमें मिला है ॥ ९ ॥ केवल दर्शन ही नहीं किन्तु स्पर्श भी प्राप्त हुआ है. अहो ! केवल तीर्थ स्नान करने को ही तीर्थ माननेवाले अर्थात् साधु और शास्त्र आदि तीर्थों के द्वारा भीतरी शुद्धि न करके केवल ऊपर से स्नानमात्र ही करके अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शना-देवसाधवः॥११॥नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः॥उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥१२॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ॥ यत्तीर्थ-बुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु- स एव गोखरः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्यैतत् भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रा-स्तूष्णीमासन् भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥ चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥

को तीर्थसेवी माननेवाले, तथा केवल प्रतिमामात्र में ही देवता बुद्धि रखनेवाले अर्थात् देवताओं दिव्य विग्रह और दिव्य चरित्रोंकी ओर दृष्टि न करके स्थूलभाव से उतने पाषाण वा मृत्तिका आदि के स्थूल विग्रह को ही देवता माननेवाले मनुष्यों को, क्या? आप का दर्शन, स्पर्श, स्वागत बूझना, नमस्कार और चरणपूजा आदि करना वनसक्ता है? कदापि नहीं होसक्ता, क्योंकि-वह स्थूल दृष्टि होने के कारण दिव्य उपदेश करनेवाले तुम्हारे अनुगामी कैसे होसक्ते हैं ॥ १० ॥ जलमयतीर्थ तीर्थ नहीं हैं ऐसा नहीं है और मृत्तिका पाषाणमय देवता देवता नहीं है ऐसा भी नहीं है किन्तु वह तीर्थ और देवता हैं सत्य है परन्तु उन में और साधुओं में बडा अन्तर है,वह तीर्थ और देवता बहुतसमय पर्यन्त सेवा करने पर पवित्र करते हैं और साधु दर्शनमात्र से ही पवित्र करदेते हैं ॥११॥ अग्नि,सूर्य, चन्द्रमा, तारे, भूमि, जल,आकाश, वायु, प्राणी और मन इन के अभिमानी देवताओं की उपासना करने पर भी वह, 'तू तेरा और मैं मेरा इसप्रकार की' भेदबुद्धि धारण करनेवाले पुरुष के पापमूलक अज्ञान को नष्ट नहीं करते हैं और ज्ञानी पुरुष तो मुहूर्त्तमात्र सेवा करने से ही भक्ति ज्ञान आदि का उपदेश करके उस अज्ञान को नष्ट करदेते हैं ॥१२॥ इसकारण जिस पुरुष को, वात-पित्त -कफरूप तीन धातुओं से युक्त शवसमान जड़ शरीर में ही 'यह मैं हूँ ऐसी' आत्मबुद्धि है; स्त्रीपुत्रादिकों के ऊपर ही 'यह मेरे हैं ऐसी' अपनेपन की बुद्धि है,ईश्वर और देवताओं के दिव्य विग्रह को छोडकर केवल मृत्तिका पाषाण आदि की स्थूल मूर्त्ति में ही पूजनीयबुद्धि है और तीर्थवासी साधुओं को तथा शास्त्ररूप तीर्थों को छोडकर केवल जल में ही तीर्थबुद्धि है और तीर्थरूप साधुओं में वह सर्वरूपबुद्धि नहीं है, वह गौओं के तृण आदि को उठानेवाले गर्दभ की समान (पशुतुल्य) है ॥१३॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन्! इसप्रकार के अकुण्ठबुद्धि भगवान् श्रीकृष्णजी के दीनपने के भाषण को सुनकर, वह ब्राह्मण उस भाषण का आशय न समझने के कारण चकितबुद्धि होकर चुप (निरुत्तर) होगए ॥१४॥ तदनन्तर उन ऋषियों ने बहुत ही देरी पर्यन्त विचार करके हँसतेहुए तिन जगद्गुरु श्रीकृष्णजी से कहा कि- हे कृष्ण ! तुम ईश्वर होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये विभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्त-

'मैं तुम्हारी आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला हूँ' ऐसा जो कहते हो सो केवल जनसंग्रह के निमित्त अर्थात् सब लोक ऐसा वर्त्ताव करें, यह दिखाने के निमित्त है ॥ १५ ॥ ऋषियों ने कहाकि—हे प्रभो ! जिन तुम्हारी माया से विश्वस्रष्टाओं के स्वामी मरीचि आदि ऋषि और तत्त्वज्ञानियों में उत्तम हम भी अत्यन्त मोहित हुए हैं अर्थात् तुम्हारा अभिप्राय क्या है सो नहीं जानते हैं, क्योंकि—जो तुम मनुष्यलीला से गुप्त होकर, स्वयं ईश्वर होने पर भी दूसरों के सेवकों की समान वर्त्ताव करते हो तिन तुम भगवान् के चरित्र बडे आश्चर्यकारी (बड़ी कठिनता से जानने योग्य) हैं ॥१६॥ जो तुम आसक्तिरहित और एक होकर भी, जैसे भूमि वास्तव में एक होकर भी अपने कार्यरूप घट आदि पदार्थों से बहुत से नाम और रूप धारण करनेवाली होती है तैसे ही तुम भी, अपने स्वरूपमात्र करके ही इस जगत् को बहुत से प्रकारों से उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो और संहार करते हो, तथापि 'मेरा कराहुआ यह मेरा इसप्रकार के' अहङ्कार से बँधते नहीं हो, ऐसा तुम परिपूर्ण का 'मनुष्यभाव स्वीकार करके ब्राह्मणों का सन्मान आदि करने का' चरित्र केवल अनुकरण करके दिखाया है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि तुम, वास्तव में प्रकृति से पर पुरुषोत्तम हो और तुम्हें जन्मादि विकार नहीं प्राप्त होते हैं तथापि तुम, भक्तों की रक्षा करने को और दुष्टों को दण्ड देने के निमित्त समय २ पर अपना शुद्ध सत्त्वगुणी स्वरूप धारण करते हो और वर्णाश्रम धर्म के अभिमान से युक्त होतेहुए, लोकों को शिक्षा देने के निमित्त अपने आचरण से सनातन वेदमार्ग की रक्षा करते हो ॥१८॥ वेद तुम्हारा शुद्ध हृदयस्वरूप है, जिस वेद में तप, स्वाध्याय और इन्द्रियों को वश में करने के द्वारा कार्यरूप, कारणरूप और उन दोनों से निराला केवल सत् रूप ब्रह्म प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ तिस से हे ब्रह्मरूप कृष्ण ! तुम्हारे हृदयरूप वेद को प्रवृत्त करनेवाला जो ब्राह्मणकुल उस को तुम, वेद के उत्पत्तिस्थान अपनी प्राप्ति का स्थान जानकर उस का सन्मान करते हो इसकारण ही तुम, ब्राह्मणों के भक्तों में श्रेष्ठ गिनेगये हो ॥ २० ॥ सत्पुरुषों की गतिरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्वृत्या यदन्त ... ॥ नमस्तस्मै
भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ स्वयोग ... रमात्मने ॥ २२॥
न यं विदन्त्यमी भूपा एकाराम ... जवनिकाच्छन्नमात्मानं
कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा ... न गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममा-
त्रेन्द्रियाभातं न वेद राहुं ... था नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रिये-
हया ॥ मायया वि ... पप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते द-
दृशिमाङ्घ्रिमघौघ ... उत्सिक्तभक्त्युपहताश-
यजीवकोश ... ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इत्यनुज्ञाप्य ... युधिष्ठिरम् ... दधिरे

तुम्हारे साथ समागम को प्राप्त होकर आज हमारी ... की सफलता हुई है, क्योंकि—तुम सकल कल्याणों के परम ... तुम्हारे प्राप्त होने पर फिर कोई कल्याण प्राप्त होने को शेष नहीं रहता ... भगवान्, अकुण्ठितबुद्धि, और योगमाया से महिमा को ढकेहुए तुम परमात्मा ... को नमस्कार हो ॥ २२ ॥ सबों के आत्मा, सृष्टि आदि के कारण, सबों के नियन्ता और मायारूप परदे से ढकेहुए तुम्हें, यह यहाँ विद्यमान राजे, और तुम्हारे साथ एक स्थानपर भोजन शयन आदि करनेवाले यादव भी नहीं जानते हैं ॥ २३॥ जैसे सोयाहुआ पुरुष, स्वप्न में, स्वप्न में के देखेहुए पदार्थों को सत्य मानता है और मिथ्याभूत इन्द्रिय (मन) से भासनेवाले सिंहादि स्वरूप को भी 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है, परन्तु उस से रहित दूसरे जागते समय में के देवदत्तादिरूप अपने को नहीं जानता है ॥ २४॥ इसप्रकार जाग्रत् अवस्था में भी शब्दादि विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्तिरूप माया के द्वारा आत्मस्वरूप के स्मरण का नाश होने के कारण भ्रान्तचित्त हुआ पुरुष, स्वप्नादि के पदार्थों की समान मिथ्याभूत देह आदि के विषैं विद्यमान भी तुम अपने आत्मा को नहीं जानता है किन्तु देह को ही आत्मा जानता है॥ २५॥ 'पापों के समूहों का नाश करनेवाली गङ्गा का भी आश्रय और योगसिद्धि को प्राप्तहुए योगिजनों करके भी हृदय में केवल चिन्तवनही करेहुए परन्तु दर्शन न करेहुए' तुम्हारे चरणको आज हमने, बहुत से पुण्यों के प्रभाव से देखा है, इसकारण अबतुम, हमें भक्त बनाकर हमारे ऊपर अनुग्रह करो; यदि कहोकि—भक्ति का क्या करना है तुम पहिले की समान तप ही करो तो सुनिये—बढी हुई भक्ति से ही जिन का अन्तःकरणरूप जीवकोश (लिंगशरीर) दूर होगया है वही पूर्वकाल के पुरुष तुम्हारी गति को प्राप्तहुए हैं दूसरेनहीं प्राप्तहुए ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार उन ऋषियों ने स्तुति करके, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर से जानेकी आज्ञा लेकर अपने आश्रम को चलने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य वभाषेदं सुयन्त्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यतां ॥ २९ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥ सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथाऽन्यांभस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुंदुभिं ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरा-

का मन में विचारकरा ॥ २७ ॥ सो ऋषियों का जानेका विचार देखकर महायशस्वी वसुदेवजी ने, उन के समीप जाकर उन को नमस्कार करके और हाथों से उन के चरण पकड़कर एकाग्रचित्त से उन से कहा ॥ २८ ॥ वसुदेवजी कहनेलगे कि–हे ऋषियों ! सकल देवताओं के रहने के स्थान तुम को नमस्कार हो, आप को मेरा वचन सुननायोग्य है, जिसकिसी, विधिपूर्वक करेहुए कर्म के द्वारा मोक्ष को रोकनेवाले कर्म दूर होते हैं वह कर्म वर्णन करिये ॥ २९ ॥ इसप्रकार वसुदेवजी के प्रश्न करने पर, सर्वज्ञ श्रीकृष्णजी को छोडकर यह हम से प्रश्न करते हैं ऐसा मन में विचारकर विस्मय में हुए उन ऋषियों से नारदजी कहनेलगे कि–हे विप्रो ! अपने पुत्र श्रीकृष्ण को बालक (अज्ञानी) मानकर उन को छोडकर यह वसुदेवजी, अपने कल्याण का साधन जानने की इच्छा से जो हम से बूझरहे हैं सो कुछ बडे आश्चर्य की बात नहीं है ॥ ३० ॥ क्योंकि–इस जगत् में निरन्तर सहवास होना, मनुष्यों के अविश्वास का कारण होता है; देखो–गङ्गाजी के तटपर रहने वाला पुरुष, गङ्गाजल को छोडकर अपनी शुद्धि होने के निमित्त दूसरे तीर्थ के जल की ओर को जाता है ॥ ३१ ॥ जिनका ज्ञान, काल से तैसेही इस जगत् के उत्पत्ति–स्थिति संहारों से, अपने से, दूसरे से और रूपान्तर आदि होने से भी कभी नाश को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ तिन, विषयों में आसक्ति, कर्म, सुख, दुःख और सत्त्वादि गुणों के वारंवार प्रकट होने से जिनका ज्ञानस्वरूप खण्डित नहीं हुआ है ऐसे अद्वितीय ईश्वर को यह संसारी जन, जैसे सूर्य को–मेघ, कुहर और राहु से ढकाहुआ मानता है तैसेही तिन ईश्वर के कार्यरूप प्राण, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण आदि करके वह ईश्वर ढकाहुआ है ऐसा मानता है, इस में कुछ आश्चर्य मानने की बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! नारदजी के इसप्रकार कहनेपर वह ऋषि, वसुदेवजी को सम्बोधन करके तहाँ इकट्ठेहुए सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एष साध [illegible] या यजे-
द्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्त [illegible] वेभिः शास्त्र-
चक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्म [illegible] ॥ अयं स्वस्त्ययनः
पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्ध [illegible] पूरुषः ॥ ३७ ॥ वि-
त्तैषणां यज्ञदानैर्गृहै- दारसुतै [illegible] षणां देवं कालेन विसृजे-
द्रुधः ॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः [illegible] ॥ ३८ ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो
जातो देवर्षिपितृणां [illegible] त्यजन्पतेत् ॥३९॥
त्वं त्वद्य मुक्तो द्व [illegible] न्य निर्ऋणो
शरणो भव ॥ ४० ॥ [illegible] वान्मुन [illegible] जगता-

राजे और बलराम कृष्ण के सुनतेहुए इसप्रकार कहन [illegible]
करके, सब यज्ञों का फल देनेवाले विष्णुभगवान् का आराधन [illegible]
द्वारा कर्मों को निवृत्त करने की उत्तम रीति कही है ॥ ३५ ॥ विद्वान् पुरुषों [illegible]
दृष्टि से, अन्तःकरण की शान्ति का और मोक्ष का सुलभ उपाय यही दिखाया, तैसे [illegible]
क्षत्रियों के मन को हर्ष उत्पन्न करनेवाला आवश्यक धर्म भी यही कहा है ॥ ३६ ॥
शुद्ध, न्याय से प्राप्त हुए द्रव्य से श्रद्धापूर्वक जो पुरुषोत्तम भगवान् का यजन करना, यह
ही गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का कल्याणकारी मार्ग है ॥३७॥ हे वसुदेवजी!
कर्म के अत्यन्त दूर होने में प्राणी की सकल इच्छा छूटनी चाहियें, उन के छूटने की यह
रीति है कि—विचारवान् पुरुष, धन के फल यज्ञों करके और दानों करके धन की इच्छा को
छोडै, गृहस्थाश्रम के योग्य विषयभोगों करके स्त्री-पुत्रादिकों की इच्छा को त्यागे और
देह के मरण को प्राप्त होने पर अपने को स्वर्गादिलोक प्राप्त होने की जो इच्छा होती है
उस को, देवताओं को भी मारनेवाला जो काल वह मेरे भी सुख का नाश करेगा ऐसा मन
में विचारकर छोडदेय ; इसकारण ही पूर्वकाल के धैर्यवान् पुरुष, गाँव में रहतेहुए सकल
इच्छाओं को त्यागकर फिर तपोवन में गये ॥३८॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यरूपी जो
द्विज वह, देवता, ऋषि और पितरों के तीन ऋणोंसहित उत्पन्न होता है इसकारण यदि वह
यज्ञ, वेदादि पढना और पुत्रोत्पत्ति करके उन ऋणों को दूर करे विना संसार का त्याग
करता है तो पतित होता है ॥ ३९ ॥ हे परमबुद्धिमान् वसुदेवजी! तुम तो, वेदाध्ययन
और पुत्र उत्पन्न करने के कारण ऋषि और पितर दोनों के ऋण से छूटगये हो, अब
यज्ञ के द्वारा देवताओं का ऋण चुकाकर ऋणरहित होतेहुए संन्यस्त होकर घर से निकल
जाओ ॥४०॥ यह क्रम तो जिन का चित्त शुद्ध न हो उन लोगों का है, हे वसुदेवजी!
तुम तो कृतार्थ ही हो, क्योंकि—तुम ने, जगत् के ईश्वर भगवान् श्रीहरि का प्रेमरूपभक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीश्वरं प्रोचुः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नानम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ तं एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन् क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन् राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्कंकंठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः ॥ नर्तुर्ननटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकंठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ॥ स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥

के साथ पूजनकरा है इसकारण वह भगवान् तुम दोनों के पुत्ररूप को प्राप्त हुए हैं॥४१॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार उन ऋषियों का कथन सुनकर तिन उदारचित्त वसुदेवजी ने, उन ही ऋषियों को मस्तक से प्रणाम करके और प्रसन्न करके ऋत्विज बनालिया ॥४२॥ हे राजन्! फिर धर्म से वरेहुए उन ऋत्विजों ने, उस स्यमन्तपञ्चक क्षेत्र में मंत्र, तन्त्र और हविर्भाग आदि सब उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञ करके उन वसुदेवजी से यजन करवाया ॥४३॥ हे राजन्! जब उस यज्ञ की दीक्षा वसुदेवजी ने ग्रहण करी तब, स्नान करेहुए, उत्तम वस्त्र धारण करेहुए और उत्तम आभूषण पहिरे हुए यादव और सकल राजे उस यज्ञ को देखने के निमित्त यज्ञशाला में आये तैसे ही बहुमूल्य वस्त्र पहिनेहुए और कण्ठे आदि आभूषण धारण करके हर्षयुक्त हुई वसुदेवजी की स्त्रियें भी हाथ में पूजन आदि के पदार्थ लेकर दीक्षा की शाला में पहुँचीं ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ उससमय मृदङ्ग, पटह, शङ्ख, भेरी, आनक आदि बाजे बजनेलगे, नट और नटनियें नृत्य करनेलगे, सूत और मागध स्तुति पढ़नेलगे, उत्तम कण्ठवाली गन्धर्वों की स्त्रियें अपने पतियों के साथ सुन्दर गति गानेलगीं ॥४६॥ उस यज्ञ में अभिषेक के समय देवकी आदि अठारह स्त्रियों सहित नेत्रों में अंजन लगायेहुए और शरीर को तेल, हलदी, माखन आदि लगायेहुए उन वसुदेवजी का, ऋत्विजों ने, महाभिषेक की विधि से, जैसे पहिले नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा का अभिषेक करा था तैसे अभिषेक करा ॥४७॥ उससमय, यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके कृष्ण मृगछाला ओढेहुए वह वसुदेवजी, पाटाम्बर पहिनकर, हाथों में सुवर्ण के कंकण, कण्ठ में हार, पैरों में नूपुर, कानों में कुण्डल और दूसरे भी आभूषण धारण करनेवालीं अपनी स्त्रियों के साथ अत्यन्त शोभायमान होने लगे ॥४८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्यार्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ... यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्ण... ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ... साधिनो अग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञान... ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ॥ स... भ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥ ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजा... न् रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥ ... तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो ... पूज... तान्पांरिवर्हेण भूयसा ॥ ... लकुरून्काशिक... त्विक्सुरगणान्नृभूता... चारणान् ॥ श्रीनिकेतमनु... ॥५६॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नार...

हे राजन्! रत्नों के आभूषण और पीताम्बर वस्त्र धारण करनेवाले वह उन वसु... ऋत्विज्, जैसे पहिले इन्द्र के यज्ञ में शोभित हुए थे तैसे शोभायमान होनेलगे ॥ ४९ ॥ उससमय सकलप्राणियों के स्वामी वह बलरामकृष्ण, अपने २ बन्धुओं से और अपने २ अंशभूत पुत्रों से तथा स्त्रियों से युक्त होतेहुए शोभायमान हुए ॥ ५० ॥ तब वसुदेवजी ने प्रत्येक यज्ञ में विधि के साथ अग्निहोत्रादिरूप सकल अङ्गों से और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों से तथा सौर सत्र आदि वैकृतयज्ञों से, चरुपुरोडाश आदि द्रव्य तथा मंत्र और कर्मस्वरूप ईश्वर का यजन करा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन वसुदेवजी ने, दक्षिणा देने के समय अलङ्कार धारण करनेवाले ऋत्विजों को, आप भी अलङ्कार धारण करके बहुतसे द्रव्य की दक्षिणा और गौ, भूमि तथा कन्या भी दीं ॥ ५२ ॥ फिर पत्नीसंयाज और आवभृथ्य नामक याग करके, उन महाऋत्विज ब्राह्मणों ने यजमान को आगे करके परशुरामजी के रचेहुए सरोवर में स्नान करा ॥५३॥ वह अवभृथस्नान होने पर उत्तम अलङ्कार धारण करनेवाले उन वसुदेवजी ने और उन की स्त्रियों ने, स्तुतिपाठ करनेवाले पुरुषों को अलङ्कार और वस्त्र अर्पण करे तैसे ही सकल वर्णों को और श्वान पर्यन्त सकल जीवों को अन्नदान से तृप्त करा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बन्धु, उन की स्त्रियें, उन के पुत्र, सभासद- ऋत्विज्, देवताओं के समूह, मनुष्य, भूत, पितर, चारण तैसे ही विदर्भ, कोसल, कुरु, काशि, केकय और सृञ्जय इन देशों में के राजे इन सबों को सन्मान के निमित्त बडे २ सामान दिये. तब वह सदस्य आदि सब ही लोक, लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी की आज्ञा लेकर यज्ञ की और उन भगवान् की प्रशंसा करतेहुए अपने २ स्थान को चलेगये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उससमय, धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, कुन्ती, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुहृत्संबंधिबान्धवाः ॥ ५७ ॥ बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाक्लिन्नचेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नंदस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयाऽर्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्यदुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोऽतिसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन्॥६०॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेषु यत्कृताज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचरामहे ॥ अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्याम पुरः सतः ॥६३॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वगतानुतं बन्धून्वो न पश्यति यैर्याऽपदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनक-

सहदेव, नारद, भगवान् व्यास, तैसे ही मित्र, सम्बन्धी और बान्धव; यह अपने बान्धव यादवों को आलिङ्गन करके स्नेह से गद्गदचित्त होकर विरह के दुःख सहन न करतेहुए अपने देश को चलेगये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उससमय, श्रीकृष्ण, बलराम और उग्रसेन आदि यादवों से, वस्त्रादि के द्वारा बडा सत्कार करेहुए नन्द गोप, यादवों के ऊपर प्रेमभाव होने के कारण गोपालोंसहित कितने ही दिनों पर्यन्त तहाँ ही रहे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी तो, यज्ञविषयक मनोरथरूपी महासमुद्र को अनायास में ही तरकर सन्तुष्टचित्त और सम्बन्धियों से घिरेहुए, नन्दजी का हाथ पकड़कर उन से कहनेलगे ॥६०॥ वसुदेवजी ने कहा कि—हे मध्यानन्द ! स्नेह नामक जो मनुष्यों की फाँसी है वह ईश्वर की ही रचीहुई होने के कारण, शूरों से उन के बल करके और योगिजनों से उन के ज्ञान करके भी टूटना बडी कठिन है ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ६१ ॥ क्योंकि—करेहुए उपकार को न जाननेवाले भी हमारे ऊपर अतिश्रेष्ठ तुम ने यह जो अनूपम मित्रता करी है तिस का पलटा यद्यपि हम से कभी भी नहीं होसकेगा तथापि वह मित्रता अब भी वैसी ही है, कम नहीं होती है. इस से प्रतीत होता है कि-यह स्नेहपाश ईश्वर का ही रचाहुआ है ॥ ६२ ॥ हे भैया नन्द ! हम पहिले बन्दीघर में थे तब असमर्थ होने के कारण तुम्हारा कुछ भी प्रिय कार्य नहीं करा अब तो लक्ष्मी के मद से अन्ध नेत्रवालेहुए हम, आगे विद्यमान भी तुम्हें नहीं देखते हैं ॥ ६३ ॥ हे सन्मान देनेवाले ! कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुष को, राज्यलक्ष्मी ही प्राप्त न होय, क्योंकि—उस के द्वारा अन्धा (विवेकहीन) हुआ वह पुरुष, अपने आश्रित पुरुषों को और बान्धवों को भी नहीं देखता है (उन का उपकार नहीं करता) है ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! प्रेम की अधिकता से गद्गदचित्तहुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुंदुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रु[illegible] ॥ नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविंदरामयोः ॥ अंग[illegible] यदुभिर्मानितोऽव-सत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमा[illegible]वः ॥ परार्ध्याभरणक्षौम-नानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ [illegible]या कृष्णोद्धववलादिभिः दत्त-मादाय परिवर्हं यापितो [illegible] ॥ नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गो-विंदचरणांबुजे ॥ [illegible]गः ॥ ६९ ॥ बन्धुषु प्र-तियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ [illegible]रवतीं पुनः ॥७०॥ जनेभ्यः कथयां[illegible]दर्शनादिकं ॥७१॥इतिश्रीभा० [illegible] तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम [illegible]ऽध्यायः ८४

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृत[illegible]

वह वसुदेवजी, नन्दजी की करीहुई पुत्रों को लाड करना आदि मित्रता को स्मरण करतेहुए नेत्रों में आँसू लाकर रोनेलगे ॥६५॥ वह नन्दराजा तो सखा वसुदेवजी के और बलराम-कृष्ण के प्रेम से उन का प्रिय करने के निमित्त, तीन मासपर्यन्त तहाँ ही रहे, वह भा[illegible] काल में चलने को उद्यत हुए तो—आज ही दुपहर को चलेजाना और दुपहर को जाने को उद्यत हुए तो—कल चलेजाना इसप्रकार यादवों ने उन को सत्कार के साथ रोक रक्खा था ॥ ६६ ॥ तदनन्तर, वसुदेव, उग्रसेन, कृष्ण और बलराम आदिकों करके, बहुमूल्य के आभूषण, रेशमी वस्त्र और अनेकों प्रकार के पात्र आदि देकर गोपों सहित तृप्त करेहुए और साथ में बहुतसी सेना देकर भेजेहुए वह नन्दजी, उन के दियेहुए उस सब पारितोषिक (बकसीस) को लेकर अपने छकड़े आदि सामान सहित चलदिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ उससमय श्रीकृष्णजी के चरण कमलों में लगेहुए चित्त को फिर तहाँ से पीछे को हटाने में असमर्थ और संसार से विरक्त हुए—नन्दजी, गोप और गोपियें, यह सब ही, अपने गोकुल में जाकर निरन्तर भगवान् की समीपता जहाँ रहती है ऐसी मथुरा में ही जारहे ॥ ६७ ॥ इसप्रकार सकल बन्धुओं के अपने २ स्थान को चलेजाने पर, कृष्ण ही जिन के देवता हैं ऐसे वह यादव, वर्षा ऋतु को समीप आया जानकर, श्रीकृष्णजी की आज्ञासे फिर द्वारका को चलेगये ॥७०॥ तदनन्तर उन्हों ने, तहाँ के लोकों को तीर्थयात्रा में होनेवाला वसुदेवजी के यज्ञ का बडाभारी उत्साह और सम्बन्धी पुरुषों का दर्शन आदि जो कुछ वृत्तान्त हुआ था सोसब वर्णन कर सुनाया ॥ ७१ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में चतुरशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे पचासीवें अध्याय में, वसुदेवजी ने, बलरामकृष्ण पुत्रों की प्रार्थना करी तब उन्हों ने उन पिता को ज्ञान और देवकी माता को, पहिले मरण को प्राप्तहुए पुत्र लाकर दिये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! तदनन्तर एकसमय वसु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिनंद्यांह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥१॥ मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रंभः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ॥ स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्व्योश्चेष्टेव चेष्टतां ॥६॥ कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युतां ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान्॥७॥

देवजी, अपने समीप आकर चरणों में वन्दना करनेवाले तिन बलरामकृष्ण पुत्रों की, प्रीति के साथ आशीर्वादों से प्रशंसा करके कहनेलगे ॥ १ ॥ वह, पुत्रों के परमेश्वरपने को सूचित करनेवाला ऋषियों का भाषण सुनकर, उनके देखेहुए और सुनेहुए पराक्रमों से 'यह ईश्वर हैं, ऐसा विश्वास करके बलरामकृष्ण को सम्बोधन करके कहनेलगे ॥ २ ॥ वसुदेवजी कहनेलगे कि–हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे सङ्कर्षण ! हे सनातन ! तुम दोनों को, इस जगत् के साक्षात् स्वरूपभूत कारण जो प्रकृति पुरुष और उन के भी कारणरूप परमेश्वर तुम हो, ऐसा मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥ जिस स्वरूप में, जिस कर्त्ता से, जिस साधन करके, जिस से, जिस के सम्बन्ध का, जिस के निमित्त, जो जो, जैसा, जब यह जगत् उत्पन्न होता है वह भोगने योग्य प्रकृति के और भोक्ता पुरुष के भी ईश्वर भगवान् तुम ही हो ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! हे आत्मस्वरूप ! अपने ही उत्पन्न कोहुए इस देव मनुष्यादिरूप नानाप्रकार के जगत् में तुमही अन्तर्यामीरूप से प्रवेश करके स्वयं जन्मादि विकाररहित होकर भी, क्रियाशक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप जीव होकर इस को धारण और पोषण करते हो ॥५॥ जगत् को उत्पन्न करनेवाले प्राणादिकों की जो शक्तियें हैं वह 'उन प्राणादिकों को पराधीनता होने के कारण' उन प्राणादिकों के परमकारण ईश्वर की ही हैं अर्थात् जैसे लक्ष्य (निशाने) को वेधने की शक्ति बाण की है ऐसी प्रतीत होती है परन्तु वह बाण, परतन्त्र हैं इसकारण वह शक्ति उन की नहीं है किन्तु पुरुष की है तैसे ही समझना; उन प्राणादिकों के अचेतन और ईश्वर के चेतन होने के कारण, अचेतन का चेतन के वश में होना योग्य है, जैसे वायु की शक्ति से तृणादिकों का आना जाना होता है परन्तु उन तृणों की वह शक्ति नहीं है अथवा जैसे पुरुष की शक्ति से बाणों में वेग उत्पन्न होता है परन्तु वह वेग बाणों की शक्ति नहीं है तैसे ही प्राणादिकों की चेष्टारूप जो शक्तियें हैं वह उन की नहीं हैं किन्तु एक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की हैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमा की कान्ति, अग्नि का तेज, सूर्य की प्रभा, तारागण और बिजली का चमकना, पर्वतों की स्थिरता और पृथ्वी का प्राणियों का आधाररूप होने का वर्त्ताव और गन्धगुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥ नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इंद्रियं त्विंद्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अत्रबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनां ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यब्द्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्न संत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्वयादिव्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्तवखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभां ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य

यह सब वास्तव में तुम्हारी ही शक्ति हैं ॥ ७ ॥ हे ईश्वर ! जल की तृप्त करने की शक्ति, जीवित रखने की शक्ति, देवपना, जलपना और उन का रस यह सब तुम ही हो, तैसे ही वायु की जो इन्द्रियशक्ति, अन्तःकरणशक्ति, शरीरशक्ति, शरीरव्यापार और गति यह सब तुम्हारी ही शक्ति, हैं ॥ ८ ॥ दिशाओं का अवकाश और दिशा तुम हो, आकाश और आकाश का आश्रय शब्द तन्मात्रा, परा पश्यन्ती ॐकार (मध्यमा) और वर्णपद आदिकों को पृथक् करनेवाली वैखरी तुम ही हो ॥ ९ ॥ इन्द्रियों की जो विषयों की प्रकाशक शक्ति; और उन के जो अधिष्ठात्री देवता और उन की जो प्रेरणा करने की शक्ति सो तुम ही हो. तैसे ही बुद्धि की जो निश्चयरूप शक्ति और अन्तःकरण की जो अनुसन्धान(विचार)शक्ति सो तुम ही हो ॥ १० ॥ पञ्चमहाभूतों का कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियों का कारण राजस अहङ्कार, इन्द्रियोंके देवताओं का कारण सात्विक अहङ्कार और जीवों के संसार का कारण माया यहसब तुमही हो ॥ ११ ॥ जैसे नाशवान् घडे कुण्डल आदिपदार्थोंमें मृत्तिकासुवर्णआदि पदार्थमात्र अविनाशी हैं तैसे ही यहाँ के सकल नाशवान् पदार्थों में जो शेष रहनेवाला तत्त्व है सो तुम ही हो ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण और उन का परिणामरूप जो महत्तत्त्व आदि पदार्थ वह साक्षात् परब्रह्मरूप तुम्हारे विषैं योगमाया से कल्पना करेहुएहैं १३ इसकारण यह पदार्थ वास्तव में तुम से निराले नहीं हैं; जिससमय यह पदार्थ तुम्हारे स्वरूप में माया से कल्पित हुए प्रतीत होते हैं उससमय ही तुम इन में कारणरूपसे पुरेहुए हो ऐसा भासता है, नहीं तो निर्विकल्परूप से तुम ही शेष रहते हो ॥ १४ ॥ इसगुणों के प्रवाहरूप संसार में तुम सर्वात्मा की प्रपञ्च में की सूक्ष्मगति को न जाननेवाले अज्ञानी पुरुष, देहाभिमान से करेहुए कर्मों के द्वारा इस लोक में जन्ममरणरूप संसार पाते हैं ॥ १५ ॥ इसप्रकार उन के तत्त्व का निरूपण करके वह प्राप्त नहीं हुए इसकारण शोक करते हैं कि हे ईश्वर !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वयो गतं त्वन्मायया ईश्वर ॥ १६ ॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां नो नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥ १८ ॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ॥ एतावतालमलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्यैतत्पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः संवतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य

दैवयोग से इस लोक में दुर्लभ और इन्द्रियादि करके कुशल मनुष्य शरीर के प्राप्त होने पर भी तुम्हारी माया से मोहित होकर अपने स्वार्थ में असावधान रहनेवाले मेरा यह आयु व्यर्थ ही निकलगया है ॥ १६ ॥ देह के विषैं यह मैं हूँ, ऐसे और इस देह के सम्बन्ध से होनेवाले, पुत्रादिकों के विषय में यह मेरे हैं इसप्रकार के अभिमानरूप स्नेहपाश से तुम, इस सब ही जगत् को मोहित करदेते हो ॥ १७ ॥ इस से तुम दोनों हमारे पुत्र नहीं हो किन्तु साक्षात् प्रधान पुरुषों के ईश्वर होकर पृथ्वी के भारभूत क्षत्रियों का संहार करने के निमित्त अवतीर्ण हुए हो, ऐसा ही तुम ने स्वयं भी पहिले मुझ से कहा है ॥ १८ ॥ इसकारण हे दीनबन्धो ! शरणागतों के संसाररूप भय को नष्ट करनेवाले तुम्हारे चरणकमल की आज मैं शरण हुआ हूँ, अबतक जोकुछ विषयों में आसक्ति हुई इतनी ही से मरपाया; क्योंकि—जिस विषयाशक्ति से मुझे, शरीर के ऊपर आत्मबुद्धि और तुम परमेश्वर के ऊपर पुत्रबुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! तुमने मुझ से सूतिकागृह (सोवर) में पहिले ऐसा कहाथा कि—जब तुम दोनों ही सुतपा और पृश्नि नामवाले थे तैसेही जब कश्यप और अदिति थे तथा अब वसुदेव और देवकी हो, इनतीनों समय तुम से जन्म रहित भी मैं, अपनी चलाई हुई धर्ममर्यादा की रक्षा करने के निमित्त अवतीर्ण हुआ हूँ इसकारण हे भगवन् ! आकाश की समान असङ्ग भी तुम, नानाप्रकार के अवतार धारण करते हो और छोडदेते हो, हे वेद में वर्णन करेहुए प्रभो ! तुम सर्वव्यापक की विभूतिरूप माया को कौन पुरुष जानता है ? कोई नहीं जानता ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार यादवों में श्रेष्ठ और विनय से नम्र भगवान् ने, पिताका भाषण सुनकर, हँसते हुए मधुरवाणी से कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे तात ! तुमने जो हम पुत्रों को, उद्देश करके सकल तत्त्वोंका उत्तम प्रकार से निरूपण करा है इसकारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्वंग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूयो नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः। श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वानीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥ कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्याद्दशुलोचना ॥ २८॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां रा-

यह तुम्हारा कथन यथार्थ है ऐसा हम मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ तात! मैं, तुम, यह बलराम और यह द्वारकावासी सब पुरुष, अधिक क्या कहूँ चराचर सबही प्राणी, मेरी समान (परब्रह्मरूप) ही हैं ऐसा तुम विचारबुद्धि से जानो ॥ २३ ॥ जैसे—आकाश, वायु, तेज, जल और भूमि यह पञ्चमहाभूत अपने से उत्पन्न हुए घट आदि कार्यों में उपाधियों के धर्मों से प्रकट होना, नाशपाना, थोडापना, बहुतपना आदि, धर्मों को प्राप्तहुए से प्रतीत होते हैं तैसे ही यह आत्मा भी अपने उत्पन्न करेहुए गुणों के परिणामरूप महत् आदि कारणों से रचेहुए देवमनुष्य आदि शरीर में, उपाधि के धर्मों से मनुष्य आदिकों के विषैं ज्ञान के प्रकट होने से, वृक्षादिकों में ज्ञान के गुप्त होने से, मच्छर आदि शरीरों में छोटेपन से और हाथी आदि के शरीरों में बडेपन से नानाप्रकार का भासता है, परन्तु यह वास्तव में तैसा नहीं है किन्तु—यह आत्मा एक होने पर भी अनेकरूपों से,स्वयम्प्रकाश होने पर भी दृश्यरूप से,नित्य होने पर भी अनित्यरूप से,अनन्य होने पर भी अन्यभाव से, निर्गुण होने पर भी सगुणरूप से और व्यापक होने पर भी परिच्छिन्नरूप से भासता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार भगवान् के बोध करायेहुए वह वसुदेवजी, उस आत्मा की एकता को सुनकर भेदबुद्धिरहित और सन्तुष्टचित्त होतेहुए मौन ही रहे ॥ २६॥ हे राजन्! तदनन्तर तहाँ सकल देवतारूप देवकी, मेरे बलरामकृष्ण पुत्रों ने, सान्दीपनिगुरु का मरण को प्राप्त हुआ पुत्र जीवित करके लादिया, यह सुनकर विस्मय में हुई और कंस के मारेहुए अपने पुत्रों का स्मरण करके शोक से नेत्रों में आँसू भरतीहुई, श्रीकृष्ण और बलराम दोनों को सम्बोधन करके दीनता के साथ कहनेलगी ॥२७॥२८॥ देवकी ने कहा कि—हे अचिंत्यस्वरूप बलराम! हे बलराम! हे योगेश्वरेश्वर कृष्ण! तुम दोनों, विश्वरचयिता प्रजापतियों के ईश्वर आदिपुरुष हो ऐसा मैं जानती हूँ॥२९॥तुम दोनों,काल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञांमुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्यौ मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवंति किल विश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड् विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः संद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादावनिजं तज्जलं सवृंद आब्रह्मपुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स

के प्रभाव से, जिन के विवेक धैर्य आदि नष्ट होगये हैं ऐसे शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले और भूमि के भाररूप राजाओं का नाश करने के निमित्त मेरे गर्भ में अवतीर्ण हुए हो ॥३०॥ हे विश्वात्मन्! हे आद्य! जिन तुम्हारे पुरुषरूप अंश के मायारूप अंश से उत्पन्न हुए गुणों के अंश से जगत् के उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं ऐसा प्रसिद्ध है, तिन तुम्हारी मैं आज शरण आई हूँ ॥३१॥ हे योगेश्वरों के ईश्वरो! मरण को प्राप्त होकर बहुत वर्ष वीतेहुए पुत्र को लाकर देने के निमित्त सान्दीपनि गुरु के आज्ञा दियेहुये तुम, यमराज के यहाँ से उस को लाये और गुरु को दक्षिणा दी, ऐसा प्रसिद्ध है, तिसी प्रकार मेरे भी मनोरथ को तुम पूरा करो, यदि कंस के मारेहुए मेरे पुत्रों को तुम लाओ तो उन को देखने की मैं इच्छा करती हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि— हे राजन्! इसप्रकार माता के प्रार्थना करेहुए उन बलरामकृष्ण ने, अपनी अचिन्त्यशक्ति योगमाया का आश्रय करके सुतल में प्रवेश करा ॥ ३४ ॥ जगत् के आत्मा और परमदेवता तथा अपने परमइष्टदेव, पाताल में प्रवेश करनेवाले उन दोनो बलरामकृष्ण बन्धुओं को देखकर, उनके दर्शन के आनन्द से आर्द्रचित्तहुए राजा बलिने, तत्काल परिवारसहित उठकर उन को नमस्कार करा ॥ ३५ ॥ और उन महात्मा बलरामकृष्ण को प्रीति के साथ श्रेष्ठ आसन समर्पण करके, उस पर बैठेहुए उन के, जिस के धोवन का जल ब्रह्माजी पर्यन्त सकल जगत् को पवित्र करता है तिस चरण को धोकर वह जल, परिवारसहित अपने मस्तक पर धारण करा ॥ ३६ ॥ और उन बलरामकृष्ण का उत्तम वस्त्र, भूषण, लेपन, ताम्बूल, दीपक और अमृत की समान भोजन के द्वारा तैसे ही अपने पुत्रपौत्रादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रसेनो भगवत्पदांबुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥ दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन्न कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयं॥४४॥तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्यपुष्णत्पादारविंदधिषणान्यगृहांधकूपात्॥निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैकं उत

कुल, धन और देह को समर्पण करके पूजन करा ॥३७॥ हे राजन्! तदनन्तर वह राजा बलि, प्रेम से पिघलीहुई अपनी बुद्धि से भगवान् के चरणकमल को धारण करताहुआ, जिस के नेत्र आनन्द के आँसुओं से भरआये हैं; जिस के शरीर पर रोमाञ्च खडे होगये हैं और जिस का कण्ठ गद्गद होगया है ऐसा होकर कहनेलगा ॥ ३८ ॥ बलि ने कहा कि—हे देव ! फणके एक भाग में जगत् को धारण करनेवाले शेषरूप तुम बलरामजी को नमस्कार हो, और जगत् को उत्पन्न करनेवाले तुम कृष्ण को नमस्कार हो, सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र को चलानेवाले ब्रह्मरूप और परमात्मा ऐसे एकरूप तुम दोनों को नमस्कार हो ॥ ३९ ॥ जो, योगेश्वरों के भी दृष्टि न पडनेवाले तुम, अपनी इच्छा से रजोगुण और तमोगुण के स्वभावों करके युक्त ऐसे हम को दृष्टि पडेहो,तिस से तुम्हारा दर्शन बहुत से जीवों को दुर्लभ होकर भी तुम्हारी कृपा से किन्ही जीवोंको सुलभ होजाता है, यह निश्चय कराहुआ है ॥ ४० ॥ दैत्य दानव आदि हम और गन्धर्व,सिद्ध विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथों के स्वामी, इत्यादि हमारी समान दूसरे भी जो कितने ही प्राणी हैं वह साक्षात् शुद्ध सत्त्वगुणी और वेदमूर्त्ति तुमसे निरन्तर वैरभाव रखते हैं, उन में से जैसे कितने ही (शिशुपाल आदि) परम वैरभाव की भक्ति से और कितने ही (गोपी आदि) कामभक्ति से तुम्हारे स्वरूप को प्राप्तहुए हैं, तिसप्रकार सत्त्वगुणी देवता भी तुम्हारे स्वरूप को नहीं प्राप्तहुए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरों के ईश्वर ! प्रायः योगेश्वर भी तुम्हारी योगमाया को, 'यह ऐसे स्वरूपवाली वा इस प्रकार की है' यह नहीं जानते हैं फिर हम तो जानही क्या सक्ते हैं? ४४ ॥ हे देव ! निष्काम पुरुषों के भी खोजने योग्य, तुम्हारे चरणकमल के आश्रय से भिन्न घररूप अन्ध-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वसत्त्वैश्वरांमि॥४५। शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो॥ पुमान् य च्छ्रद्धया तिष्ठेश्चोदनांया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽतरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ॥ ४७ ॥ तेनासुरामेगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा तान् शोचत्यात्मजान्स्वांस्ते इमेध्यासतेऽतिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातुः शोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति विज्वराः ॥५०॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंग पतंगः क्षुद्रभृद्घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिं ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्त-

कारयुक्त कूप में से निकलकर मैं शान्तभाव से, जगत् की रक्षा करनेवाले वृक्षों के नीचे अपने आप गिरेहुए फल आदि से निर्वाह करताहुआ जैसे इकलाही विचरूँ अथवा सबोंके मित्र साधुओं के साथ विचरूँ तैसा तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करो ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! हे सकल जीवों के ईश्वर ! जिस तुम्हारे कहेहुए आचरण को करनेवाला पुरुष, विधिनिषेध रूप बन्धन से मुक्त (जीवन्मुक्त) होता है वह अपना दासभाव तुम हम से कहो और हमें निष्पाप करो ॥ ४६ ॥ इसप्रकार प्रार्थना करेहुए श्रीभगवान् कहनेलगे कि–स्वायम्भुव मन्वन्तर में मरीचि नामवाले प्रजापति की ऊर्णा (कला) नामवाली स्त्री के विषैं छःपुत्र देवता उत्पन्नहुए थे, वह कन्या सरस्वती के साथ सङ्गम के निमित्त उद्यतहुए ब्रह्माजी को देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ उस परिहासरूप दुष्कर्म से (ब्रह्माजी के शाप से) वह तत्काल दैत्ययोनि को प्राप्त होकर हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए थे; यद्यपि हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद आदि कहे हैं तथापि इस कथन से वह भी उस के पुत्र हुए थे, ऐसा जानना; तहाँ से वह योगमाया करके देवकी के उदर में लेजाने पर तहाँ से वह जन्म लेते ही कंस करके मारेगये ;हे बलिराजन् ! अब वह देवकी उन अपने मरेहुए पुत्रोंका शोक कररही है वह छहों तुम्हारे समीप हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हम इन को इस स्थान से माता का शोक दूर करने के निमित्त लियेजाते हैं ; माता का शोक दूर होनेपर यह शाप से (दैत्ययोनि से) छूटकर सुखी होतेहुए देवलोक को गमन करेंगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत् और घृणी इन नामोंवाले यह छः पुत्र मेरे अनुग्रह से फिर सद्गति को पावेंगे ॥ ५१ ॥ ऐसा कहकर उन पुत्रोंको लेकर, राजाबलि के पूजा करेहुए उन बलरामकृष्ण ने फिर द्वारका में आकर माता को वह पुत्र समर्पण करे ॥ ५२ ॥ उन बालकों को देखते ही पुत्रों के स्नेह से स्तनों में से दूध टपकाती हुई वह देवकी, उन को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नी ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रद्भृशं शनैः ॥ ५३ ॥ अपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥ पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तद् दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य संत्यनन्तानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥ इतिश्रीभागवते म० द० उ० मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं

आलिंगन करके और गोदी में बैठाकर वारंवार उन का मस्तक चूमनेलगी ॥ ५३ ॥ तदनन्तर, जिस से सृष्टि चलती है उस, विष्णु की माया से मोहित होने के कारण सन्तुष्ट और पुत्रों के स्पर्श से आनन्दित हुई तिस देवकी ने, उन पुत्रों को स्तनपान कराया ॥५४॥ वह पुत्र भी, श्रीकृष्णजी के पीने से * शेष रहेहुए तिस देवकी के अमृतसमान दूध को पीकर, श्रीकृष्णजी के अङ्ग के स्पर्श से जिन को, हम देवता हैं ऐसा ज्ञान होगया है ऐसे होकर वह, श्रीकृष्ण, देवकी, वसुदेव और बलरामजी को नमस्कार करके सब लोकों के देखतेहुए, देवताओं के स्थान स्वर्ग को चलेगये ॥५५॥५६॥ हे राजन् ! उन मरेहुए पुत्रों का आना और जाना देखकर अत्यन्त विस्मय में हुई देवीदेवकी ने, यह अहन्तामपतारूप रचीहुई श्रीकृष्णजी की माया ही है ऐसा जाना ॥ ५७ ॥ हे राजेन्द्र ! इसप्रकार के अनन्त शक्ति परमात्मा श्रीकृष्णजी के अद्भुतचरित्र अनन्त हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी कहते हैं कि- हे शौनकादि ऋषियों ! शुकदेवजी के वर्णन करेहुए, जगत् के पाप नष्ट करनेवाले और भगवद्भक्तों के कानों को उत्तम आनन्द देनेवाले इस अमृत कीर्त्ति भगवान् के चरित्र को, जो मनुष्य भगवान् की ओर को अपना चित्त लगाकर श्रवण करेगा वा दूसरों को सुनावेगा वह मनुष्य, उन भगवान् के निर्भय स्थान को पावेगा ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में पञ्चाशीतितम अध्याय समाप्त ॥*॥ अब आगो छयासीवें अध्याय में अर्जुन ने, दाम्भिकपने से सुभद्रा का हरण करा और श्रीकृष्णजी ने मिथिला नगरी में जाकर राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण को आनन्दित करा यह कथा वर्णन करी है ॥ *॥ जैसे देवकी को मरेहुए पुत्रों का मिलना कठिन था तैसेही अर्जुन को सुभद्रा का मिलना,

* सूतिकाघर में श्रीकृष्ण साधारण बालक बने ऐसा कहा है, इसकारण उस समय भगवान् ने देवकी का दूध पिया ऐसा तहाँ यद्यपि कहा नहीं है तथापि इस कथन से वैसा समझना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिभूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः संभाजितोभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहरां ॥ प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥६॥ साऽपि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमं ॥ हसन्ती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तदृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥

बलदेवजी के प्रतिकूल होने के कारण दुर्लभ था ऐसा माननेवाला राजा प्रसङ्ग से प्रश्न करता है कि—हे शुकदेवजी ! बलराम कृष्ण की बहिन जो मेरी दादी थी उस सुभद्रा को अर्जुन ने, जिसप्रकार वरा हो वह विवाह की रीति हम आप से सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! जय पाने में समर्थ अर्जुन, तीर्थयात्रा के निमित्त से पृथ्वीपर विचरते में, प्रभास तीर्थ पर जापहुँचे, तहाँ उन्होंने अपने मामा (वसुदेव) की कन्या जो सुभद्रा तिस को बलराम, दुर्योधन को देंगे और अन्य वसुदेव आदि उस को दुर्योधन के निमित्त देने की इच्छा नहीं करते हैं ऐसा सुना तब उस का हरण करने की इच्छा करनेवाले वह अर्जुन, बलरामजी को धोखा देने के निमित्त, अतिपूजनीय त्रिदण्डी यति का वेष धारण करके द्वारका में गये ॥ २ ॥ ३ ॥ और अपने प्रयोजन को साधनेवाले वह अर्जुन, तहाँ वर्षाकाल के चारमासपर्यंत रहे. तब कपटवेष को न जाननेवाले पुरवासी लोकों ने और बलरामजी ने भी उन का वारंवार सत्कार करा ॥४॥ एक समय बलरामजी ने, उस अर्जुन को, अतिथिरूप से निमन्त्रण करके और घर लाकर श्रद्धा के साथ अन्न परोसा तब उस ने वह भोजन करा ॥ ५ ॥ तहाँ उन्होंने वीर पुरुषों के मन को हरनेवाली और तरुण अवस्था में आईहुई एक बडी कन्या देखी, तिस करके प्रीति से प्रफुल्लित नेत्रहुए अर्जुन ने उस के ऊपर रतिसुख की इच्छा से क्षोभित हुआ अपना मन लगाया ॥ ६ ॥ और वह सुभद्राभी स्त्रियों के मनो को प्रिय लगनेवाले तिन अर्जुन को देखकर उन में ही मन और दृष्टि लगाकर लज्जायुक्त नेत्र कटाक्षों से उन की ओर को देखकर हँसतीहुई, यही मेरे पति हो ऐसी इच्छा करनेलगी ॥ ७ ॥ तब केवल उस कन्या का ध्यान करतेहुए, उस को हरण करने का अवसर मिलने की इच्छा करनेवाले वह अर्जुन, अतिबलवान् कामदेव से चित्त के भ्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गतां ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुंधतो भटान् ॥ विद्रावयन्क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयागताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्देवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा

में पडजाने के कारण बलरामजी के करेहुए सत्कार से भी कुछ सुखीसे नहीं हुए ॥ ८ ॥ तदनन्तर एक समय उस कन्या के माता पिताओं ने (देव की वसुदेवने) और श्रीकृष्णजी ने जिन को अनुमति दी है ऐसे उन अर्जुन ने, बडीभारी देवयात्रा के निमित्त से रथपर बैठकर द्वारका से बाहर निकली हुई उस कन्या को रथपर बैठाल कर, अपने गांडीव धनुष धारण करके और चारों ओर से रोकनेवाले शत्रुओं को भगाकर उन यादवों के हाहाकार करतेहुए, जैसे सिंह अपना भाग हरण करता है तैसे उन्होंने उस सुभद्रा का हरण करा ॥९॥ १० ॥ यह सुनकर, जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र खलबलाता है तैसे बलरामजी खलबला उठे; परन्तु श्रीकृष्णजी ने तथा दूसरे भी यादवों ने चरण पकडकर उन को समझाया तब वह शान्त हुए ॥ ११ ॥ और तदनन्तर हर्षयुक्त हुए उन बलरामजी ने, उन सुभद्रा और अर्जुनरूपी वधूवरों को प्रीति के साथ देनेयोग्य बहुत से पदार्थ तैसे ही बहुमूल्य के आभूषण धारण करेहुए हाथी, रथ, घोडे, सेवक और दासियें, यह सब भेजदिये, उससमय यादव और पाण्डव सब ही प्रीति से प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ अब भक्तवत्सलतायुक्त भगवान् का दूसरा चरित्र कहतेहुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! श्रुतदेवनाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजी का भक्त था, वह श्रीकृष्णजी की अनन्यभक्ति से पूर्णमनोरथ, शान्त, विषयाशक्तिरहित और विचारवान् था ॥ १३ ॥ वह विदेह देश में की मिथिलानगरी में रहता था, वह गृहस्थाश्रमी होकर भी उद्योग के विना जो अन्नादि मिलजाय उस से ही अपना भोजनादि सब निर्वाह चलाता था ॥ १४ ॥ उस के प्रारब्ध से उस को प्रतिदिन शरीर आदि के निर्वाह की पूर्त्ति के योग्य ही अन्न आदि प्राप्त होता था, खटपट करने पर भी अधिक नहीं मिलता था, इसकारण जितना प्राप्त होय उतने से ही सन्तुष्ट रहकर वह अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को पूरे विधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्राष्ट्रपालोऽग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य सार्कं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्चयवनादयः ॥ १८ ॥ तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ ॥ १९ ॥ आनर्त्तधन्वकुरुजांगलकंकमत्स्यपांचालकुंतिमधुकैकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगीयत छिन्नकर्मबंधैः ॥ २१ ॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुत

विधान से करता था ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस देश का स्वामी बहुलाश्वनाम से प्रसिद्ध एक राजा था, वह जनक के वंश में उत्पन्न हुआ था और देह आदि में अभिमान रहित तथा श्रुतदेवकी समान ही भगवद्भक्त था, इसकारण वह दोनो ही भगवान् को प्रिय थे ॥ १६ ॥ उन के ऊपर प्रसन्न हुए भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजी, एक समय दारुक के लायेहुए रथ पर बैठकर ऋषियों के साथ विदेहदेश में गये ॥ १७ ॥ वह ऋषिनारद, वामदेव, अत्रि, व्यास, परशुराम, असित, अरुणि, मैं (शुकदेव), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदि थे ॥ १८ ॥ तब विदेहदेश में जाते समय मार्ग में जहाँ तहाँ के स्थानों पर पहुँचेहुए तिन भगवान् का, हाथ में पूजा की सामग्री लेनेवाले पुरवासी और देशवाशी लोगों ने, जैसे गुरुशुक्रादिग्रहोंसहित उदय को प्राप्तहुए सूर्य का पूजन करते हैं तैसे पूजन करा ॥ १९ ॥ और हे राजन् ! उससमय, आनर्त्त, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, कैकय, कोसल और अर्ण देशों में रहनेवाले लोकों ने, तथा दूसरे भी देशों के पुरुष और स्त्रियों नें, अपनी दृष्टियों से उदारहास्य और स्नेह के साथ देखनेवाले तिन श्रीकृष्णजी के मुखकमल को आदर के साथ देखा ॥ २० ॥ तब अपने दर्शन से जिन का अज्ञान नष्ट हुआ है ऐसे उन लोकों को, कृपादृष्टि से अभय और तत्त्वज्ञान देनेवाले वह त्रिलोकी के पूजनीय भगवान् श्रीकृष्णजी, दशोंही दिशाओं में व्यापेहुए देवता और मनुष्यों से गान करेहुए, शुद्ध और पापनाशक अपने यश को सुनतेहुए धीरे २ विदेह देश में जापहुँचे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! तब वह विदेह देश में के पुरवासी और देशवासी लोग, श्रीकृष्णजी को आयाहुआ सुनकर हर्षित हो और हाथ में पूजा की सामग्री लेकर उन भगवान् के सन्मुख गये ॥ २२ ॥ और उन उत्तमकीर्त्ति भगवान् को तथा पहिले ही जिन के नाम सुने थे ऐसे नारद वामदेव आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वास्तथा मुनीन्॥२३॥स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमंत्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥२५॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृद्दयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुंबो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ॥ गंधमाल्यांबरांकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहाभितर्पितान् ॥ पादावनेजतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मं-

ऋषियों को देखकर, जिन के नेत्र और हृदय प्रफुल्लित हुये हैं ऐसे उन पुरुषों ने,उन को अपने मस्तक पर हाथ जोडकर प्रणाम करा ॥ २३ ॥ अपने ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त वह जगद्गुरु आये हैं ऐसा माननेवाले वह बहुलाश्व राजा और श्रुतदेव ब्राह्मण यह दोनो, भगवान् के चरणों पर गिरे ॥ २४ ॥ और उस बहुलाश्व राजाने तथा श्रुतदेव ब्राह्मण ने, ब्राह्मणोंसहित उन श्रीकृष्णजी को एकसाथ हाथ जोडकर अपने घर पूजा ग्रहण करने के निमित्त आने की प्रार्थना करी ॥ २५ ॥ उन दोनों की प्रार्थना को स्वीकार करके, दोनों का प्रिय करने के निमित्त, उन दोनों ने ही यह मेरे घर से दूसरे के घर जाते हैं ऐसा जानने में न आयेहुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, ब्राह्मणों सहित दोरूप धारण करके दोनों के घरगये ॥ २६ ॥ तब बढीहुई भक्ति से हर्षितचित्त हुए और आनन्द के अश्रुओं से जिस के नेत्र भरआये हैं ऐसे उस बहुलाश्व राजा ने, दुराचारी पुरुषों को जिन का नाम सुनना भी दूर है ऐसे, परन्तु कृपा करके अपने घर आयेहुए और अपने दियेहुए उत्तम आसन के ऊपर सुख से बैठेहुए तिन ऋषियों को प्रणाम करके और उन के चरण धोकर लोकों को पवित्र करनेवाला वह चरणों की धोवन का जल, कुटुम्बसहित अपने मस्तक पर धारण करा और उन प्रभु की-गन्ध पुष्प, वस्त्र, अलङ्कार, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ और वृषभ अर्पण करके पूजा करी ॥२७॥२८॥२९॥ तदनन्तर उत्तम अन्न से तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को, राजा मधुरवाणी से प्रसन्न करता हुआ अपनी जङ्घा पर रक्खे हुए श्रीकृष्णजी के चरण को धीरे २ दबाता हुआ हर्ष से ऐसा कहने लगा ॥ ३० ॥ राजाने कहाकि—हे विभो ! तुम सब जीवों के आत्मा, साक्षी और स्वप्रकाश हो, इसकारण तुम, अपने चरणकमल का स्मरण करनेवाले हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥ स्वत्रचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकांतभक्तान्मे नान्यतः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ को नु त्वच्चरणांभोजमेवम्विद्विसृजेत्पुमान् ॥ निष्किंचनानां शांतानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः॥३३॥ योवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ॥ यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ नारायणाय ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन् गृहान्नो निवस द्विजैः ॥ समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम्॥ ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृणपीठदृषत्सीध्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनंद्यांघ्रीन्संभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥ तदंभसा महाभाग आत्मा-

को दृष्टि पडेहो ॥ ३१ ॥ अनन्य भक्तकी अपेक्षा मुझे बलराम भ्राता भी, लक्ष्मी स्त्री भी, और ब्रह्मदेव पुत्र भी प्रिय नहीं है, ऐसा जो वचन तुमने कहा है, उस को सत्य करने के निमित्त तुम हमारे दृष्टिगोचर हुए हो, ॥ ३२ ॥ इस से यह वार्त्ता जानने वाला कौनसा पुरुष, तुम्हारे चरणकमल का त्याग करेगा ? जो तुम निष्किञ्चन और शान्त ऋषियों को अपना स्वरूपपर्यंत देते हो ॥ ३३ ॥ और जो तुम राजा यदु के वंश में अवतार धारण करके इस संसार में देवमनुष्यादि योनियों के विषे उत्पन्न होकर तीन तापों को अनुभव करनेवाले जीवों के, उन तीनों तापों की शान्ति होने के निमित्त त्रिलोकी में सब लोकों का पाप दूर करनेवाले अपने यश को फैलाते हो ॥ ३४ ॥ ऐसे आप अकुण्ठबुद्धि, अतिशान्त, तप करनेवाले, ऋषिरूप, नारायणभगवान् श्रीकृष्णजी को नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ हे व्यापक प्रभो ! तुम कुछदिनोंपर्यंत इन सब ऋषियोंसहित हमारे घर रहकर अपने चरणरज से इस निमि राजा के कुल को पवित्र करो ॥३६॥ इसप्रकार राजा बहुलाश्व के प्रार्थना करेहुए लोकपालक भगवान् श्रीकृष्णजी, मिथिला नगरी में के पुरुषों का और स्त्रियों का कल्याण करतेहुए कुछदिनोंपर्यंत तहां ही रहे ॥ ३७ ॥ इधर श्रुतदेव ब्राह्मण भी जनक राजा की समान,अपने घर आयेहुए श्रीकृष्णजी को और ऋषियों को नमस्कार करके अत्यन्त हर्षित हुआ और वस्त्र से पवन करताहुआ नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ तदनंतर लायेहुए कुशा आदि के आसन और पिराल पर बैठालकर तथा स्वागत प्रश्न से उन का अभिनन्दन करके स्त्री सहित उसने बडेहर्ष के साथ उन के चरणों को धोया ॥ ३९ ॥ और उस महाभाग श्रुतदेव ने, घर तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नं समृद्धान्वयम् ॥ स्नापयांचक्रे उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृताम्भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥ ४१ ॥ स तर्कयामास कुतो ममोन्धभूद्दृढान्धकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सुपविष्टान्कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यं स्वजनापत्य उवाचाब्धभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गर्दतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दतां॥ नृणां संदधतामंतर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः

कुटुम्बसहित आप, उस जल से स्नानकरा, तिस से और भगवान् के चरण के स्पर्शआदि से वहअत्यन्त हर्षितहुआ और उस के सकल मनोरथ पूर्णहुए ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस ने, फल, गन्ध पुष्प आदि पूजा के पदार्थ, खस से वसाये हुए अमृतसमान मधुर जल, सुगन्धयुक्त मृत्तिका (कस्तूरी) तुलसी,कुश,कमल और सत्वगुण को बढ़ाने वाले अन्न के द्वारा अनायास में ही ठीकहुई पूजा के द्वारा उन ऋषियों का पूजनसत्कार करा ॥४१॥ फिर वह श्रुतदेव मन में तर्कना करनेलगा कि घररूप अँधेरिये कुए में पड़ेहुए मुझ को, श्रीकृष्णजी का और जिनका चरणरज सकल तीर्थों के भी दोष दूर करनेवाला है और जो श्रीकृष्णजी की मूर्त्ति का निवासरूप हैं ऐसे ब्राह्मणों का समागम न जाने कौन से पुण्य के प्रभाव से हुआ है ? ॥ ४२ ॥ ऐसे उत्तम प्रकार से सत्कार करे हुए और आसन पर सुख से बैठेहुए उन ऋषियों के सन्मुख पोषण करनेयोग्य पुत्र और स्वजनोंसहित प्राप्तहुआ वह श्रुतदेव,श्रीकृष्णजी के चरण कोस्पर्श करताहुआ ऐसा कहने लगा ॥ ३४ ॥ श्रुतदेव ने कहाकि—तुम पुरुषोत्तम आज ही मेरे समीप आयेहो ऐसानहीं है किन्तु जबअपनी सत्वआदि शक्तियों से इस जगत् को उत्पन्न करके इसमें अपनी सत्तासे प्रविष्ट हुएहो उसी समय प्राप्त हुए हो परन्तु आपका दर्शन केवल आजही हुआ ॥ ४४ ॥ जैसे सोयाहुआ इकला ही पुरुष. अपनी अविद्या से स्वप्न में, मन से ही देवता मनुष्यादिरूप दूसरे शरीर को उत्पन्न करके और उस में प्रवेश करके नानाप्रकार का प्रतीत होता है तैसे ही तुम भी इस जगत् को रचकर उस में प्रवेश करेहुए से होकर नानाप्रकार के भासते हो ॥ ४५ ॥ और जो मनुष्य निरन्तर तुम्हारा श्रवण, कीर्त्तन, पूजन,वन्दन और परस्पर सम्वाद करते हैं उन शुद्धचित्त पुरुषों के भी हृदय में तुम केवल प्रकाश को ही प्राप्त होते हो और मुझे तो दृष्टिगोचर भी हुए हो इसकारण मेरा अहोभाग्य है ॥ ४६ ॥ यद्यपि तुम सब के हृदयों में हो तथापि लौकिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यंत्यपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदंतो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यभून्मुनीन् ॥ संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ५१ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु

वैदिक अनेकों कर्मों से विक्षिप्तचित्त हुए पुरुषों से तुम बहुत ही दूर हो और यद्यपि अहङ्कारादि आत्मशक्तियों से तुम्हारा ग्रहण नहीं होता है तथापि जिन के अन्तःकरण में तुम्हारे श्रवण कीर्त्तन आदि का संस्कार है उन के तुम बहुत ही समीप हो ॥४७॥ इसकारण देहाभिमान से रहित हुए पुरुषों को मोक्ष देनेवाले, देहाभिमानी जीवों को आत्मा से भिन्न संसार देनेवाले, महतत्त्व आदि कार्य और उस की कारण प्रकृति इन दोनों उपाधियों के नियन्ता, अपनी माया से जिन का ऐश्वर्य लुप्त नहीं हुआ है और अपनी माया करके दूसरों के ज्ञान को ढकनेवाले तुम कारण को नमस्कार हो ॥४८॥ हे देव! वह परमेश्वर तुम, अपने दास इन हम को आज्ञा करिये, कि—हम आप का कौनसा दासकार्य करें? जब तक तुम्हारा दर्शन न हो तबतक ही मनुष्यों को संसार का क्लेश होता है, दर्शन होने पर फिर क्लेश का नाश ही हो जाता है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! ऐसा उस श्रुतदेव का कहाहुआ भाषण सुनकर, भक्तों के दुःख हरनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अपना अधिक और ब्राह्मणों का कम आदर देखकर लोकशिक्षा के निमित्त, तू ब्राह्मणों में मुझ से भी अधिक श्रद्धाकर ऐसा उस से कहने के अर्थ, अपने हाथ से उस का हाथ पकडकर हँसतेहुए उस से कहनेलगे ॥ ५० ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे ब्राह्मण! तेरे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त यह ऋषि, यहाँ आये हैं ऐसा तू जान, क्योंकि—यह ऋषि हृदय में रहनेवाले मेरे द्वारा अपनी चरणरज से लोकों को पवित्र करतेहुए विचरते रहते हैं ।, ५१ ॥ और देवता आदिकों की अपेक्षा भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं क्योंकि—देवताओं की मूर्त्ति, अयोध्या आदि क्षेत्र और गंगा आदि तीर्थ यह दर्शन, स्पर्श और पूजन के द्वारा धीरे धीरे बहुत काल में पवित्र करते हैं, वही पवित्रता सत्पुरुषों के दर्शन से तत्काल हो जाती है ॥ ५२ ॥ इस संसार में सब ही प्राणियों में ब्राह्मण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत्कलया युतः ॥५३॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणादिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥ एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ॥ ५९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥

जन्म से ही श्रेष्ठ है फिर जो यदि तप, विद्या, सन्तोष और मेरी उपासना इन गुणों से युक्त होय तब तो उस की श्रेष्ठता का कहना ही क्या ? ॥५३॥ यह चतुर्भुजस्वरूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं है, क्योंकि—ब्राह्मण सर्वदेवमय है और मैं सर्ववेदमय हूँ, देवताओं की सिद्धता वेद के अधीन होने के कारण देवमय मुझ से भी वेदमय ब्राह्मण श्रेष्ठ है ॥५४॥ यह मेरा मत न जानकर ही गुणों में दोष लगानेवाले और साधुमहात्मा आदि सब को छोड़कर एक प्रतिमाकार पाषाण को ही पूजनीय माननेवाले दुर्बुद्धि पुरुष गुरुरूप, आत्मरूप और मेरे स्वरूप इन ब्राह्मणों का अपमान करते हैं ॥ ५५ ॥ और ब्राह्मण ही, सर्वत्र ईश्वर हैं ऐसी भावनाकरके, यह स्थावर जंगमरूप जगत् और इस के कारण महत्तत्त्व आदि पदार्थ हैं वह सब ही मेरे रूप हैं ऐसा अपने मन में धारण करता है ॥ ५६ ॥ इसकारण हे ब्राह्मण ! तू इन सब ऋषियों का, यह मेरा ही स्वरूप हैं ऐसी बुद्धि से पूजनकर, इसप्रकार यदि इन का पूजन करेगा तो मैं ही साक्षात् पूजा कराहुआसा होऊँगा; ऐसा करेविना बहुतसी सामग्रियों से पूजन कराहुआ भी मैं पूजन कराहुआसा नहीं होता हूँ ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—राजन् ! इसप्रकार प्रभु श्रीकृष्णजी करके आज्ञा कराहुआ वह श्रुतदेव ब्राह्मण, और राजा बहुलाश्व यह, श्रीकृष्णजी के साथ उन सब द्विजोत्तमों को अभेददृष्टि से आराधना करके भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भक्तों की प्रीति के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, कुछदिनोंपर्यन्त उस मिथिला नगरी में रहकर अपने भक्त श्रुतदेव और राजा बहुलाश्व को वेदों की प्रवृत्तिकी रीति और ब्रह्मज्ञानका उपदेश सुनाकर द्वारका को लौटगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षड़शीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः

परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरन्ति

अब इस सत्तासीवें अध्याय में, नारायण और नारदजी के सम्वाद के द्वारा, वेदों ने, ईश्वर की, गुणों के आश्रय से निर्गुण ब्रह्मपर जो स्तुतिकरी है तिसका वर्णन करा है ॥ * ॥ इस से पहिले अध्याय में भगवान् श्रीकृष्णजी, श्रुतदेव ब्राह्मण और बहुलाश्व राजा इन अपने भक्तों को स्वतःप्रमाण (जिस में किसी का प्रमाण न दियाजाय ऐसे) वेद का ब्रह्मपरत्व वर्णन करके फिर द्वारका को चलेगये, ऐसा शुकदेवजी ने कहाथा तिस को सुनकर, शब्द रूप वेदों का ब्रह्मपरत्व होना कठिन है ऐसा माननेवाले राजा ने प्रश्न करा कि—हे शुकदेवजी ! सगुण पदार्थों का वर्णन करनेवाली श्रुतियें, किसीप्रकार भी जिसका दिखाना न बनसके ऐसे निर्गुण और कार्यकारणों से पर(असङ्ग)ब्रह्म के विषैं, प्रत्यक्ष कैसे प्रवृत्त होती हैं? इस कहने का तात्पर्य यह है कि—श्रुति तो शब्द होती हैं, उन शब्दों की प्रवृत्ति मुख्या १ लक्षणा २ और गौणी ३ यह तीन प्रकार की है; उन मेंसे मुख्या के रूढ़ि और यौगी दो भेद हैं, तिन में रूढ़ि वृत्ति - ठिगना, ऊँचा इत्यादि स्वरूपों से, गौ, ब्राह्मण इत्यादि जातियों से अथवा स्वेत, काला इत्यादि गुणों से दिखाने के योग्य वस्तु के ऊपर, यह उस वस्तु का नाम है और यह वह वस्तु है इसप्रकार सङ्केत से प्रवृत्त होती है जैसे यह ठूँठ है, यह गौ है, यह स्वेत है इत्यादि स्थलपर प्रवृत्त होती है तैसे वह रूढ़िवृत्ति—अनिर्देश्य (जिस को किसी सङ्केत से बताया न जासके ऐसे) और निर्गुण (जिस में कोई गुण नहीं ऐसे) ब्रह्म के विषैं ' उसके अपना विषय न होने के कारण कैसे प्रवृत्त होती है? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती, दूसरी लक्षणावृत्ति—पहिले कहेहुए संज्ञासंज्ञि के (नाम और नाम वाले के) संकेत से ही ' जैसे गङ्गापर मल्लाह का घर है इत्यादि स्थल में गङ्गा के तट का सम्बन्ध लेकर तहाँ मल्लाह का घर है ऐसा समझाता है तिसी प्रकार ' कहेहुए पदार्थ के सम्बन्ध से प्रवृत्त होती है; वह—परब्रह्म के सकल सम्बन्धों से रहित होने के कारण तहाँ कैसे प्रवृत्त होसक्ती है? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती, तीसरी गौणी (गुणवृत्ति) है वह—' जैसे यह देवदत्त सिंह है, इत्यादि स्थल पर सिंह शब्द से उस सिंह के शूरता आदि गुणों को लेकर, उन गुणों से युक्त देवदत्त है ऐसा अर्थ लियाजाता है तैसे ' कहेहुए पदार्थों पर होनेवाले गुणों से युक्त उस की समान दूसरे पदार्थ पर प्रवृत्त होती है. वह-परब्रह्म के निर्गुण होने के कारण तहाँ कैसे प्रवृत्त होसक्ती है? अर्थात् प्रवृत्त नहीं होती. चौथी यौगी (मुख्या का दूसरा भेद योगवृत्ति) है वह भी ऊपर कहीहुई तीनप्रकार की शब्दवृत्तियों से वर्णन करेहुए पद और अर्थ के अथवा प्रकृति और प्रत्यय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मने कल्पनाय च ॥ २ ॥

के द्वारा 'जैसे पङ्कात् (कीच से) जायते (उत्पन्न होता है सो) पङ्कज (कमल)' (उपगोः) उपगु ऋषि का अपत्यम् (सन्तान अर्थात् उन से उत्पन्न होनेवाला) औपगव (उन का पुत्र) इत्यादि स्थल पर उन पङ्कज औपगव आदि शब्दों पर प्रवृत्त होती है. वह भी-कार्यकारण की अपेक्षा से पर और असङ्ग ब्रह्म के विषैं कैसे प्रवृत्त होसक्ती है? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती.इस से 'ब्रह्म को'पदार्थत्व का योग न होने के कारण और अपदार्थ को वाक्यार्थत्व का योग न होने के कारण,ब्रह्म को श्रुतिगोचरता नहीं होसक्ती. सो सगुण वस्तु का प्रतिपादन करनेवाली श्रुति निर्गुण ब्रह्म के विषैं कैसे प्रवृत्त होती हैं ॥१॥ इसप्रकार प्रश्न करने पर श्रीशुकदेवजी ने कहा कि हे राजन्! सबकुछ करने को समर्थ और नित्यमुक्त ईश्वर ने, प्रलयकाल में अपने में लीन हुए जीवों को फिर इस लोक में विषयभोग और जन्म आदि कर्म प्राप्त होने के निमित्त तथा परलोक में स्वर्गादि लोकों का उपभोग और मुक्ति मिलने के निमित्त (अर्थात् जीवों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त होने के निमित्त) बुद्धि, इन्द्रियें, मन और प्राण यह उत्पन्न करे हैं. यदि बुद्धि, इन्द्रियें, मन और प्राण (लिङ्गशरीर) यह उत्पन्न न करे होते तो जीवों को, साधन न होने के कारण अर्थ धर्म आदि प्राप्त करने में नहीं आते ; तैसे ही स्वरूपविचार न होसकने के कारण मोक्ष भी प्राप्त नहीं होसक्ता इसकारण वह बुद्धि आदि ईश्वर ने उत्पन्न करे हैं. अब निर्गुण ब्रह्म के विषैं श्रुतियें कैसे प्रवृत्त होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर, ईश्वर ने बुद्धि आदि की उत्पत्ति करी, यह कहने का आशय यह है कि—सकल श्रुतियें,ईश्वर का और ईश्वर से उत्पन्न हुए जीवों के चार प्रकार के पुरुषार्थों का वर्णन करके, तात्पर्य आदि वृत्तियों से ब्रह्मपर हैं. तिन में कितनी ही श्रुतियें, सगुण होकर भी गुणों से तिरस्कार को प्राप्त न होनेवाले ईश्वर के 'सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वोपास्य, सर्वकर्म-फलदाता, सर्वकल्याणकारी गुणों के निधान, सच्चिदानन्दरूप आदि' धर्मों का वर्णन करती हैं. दूसरी कितनी ही श्रुतियें—जीव के किञ्चिज्ज्ञत्व (कुछएकजाननापन) आदि धर्म कहकर उन का संसार (आवागमन) दूर होने के निमित्त उन को 'उस ईश्वर का स्वरूप तू है ऐसा' उपदेश करती हैं. उस में तत्पद का और त्वंपद का सामानाधिकरण्य (एक स्थान पर घटना), दूसरे प्रकारों से न होसकने के कारण, जहदजहल्लक्षणा करके ब्रह्म के विषैं ही पर्यवसान पाता है, इसकारण उन जीव और ईश्वर की एकता का प्रतिपादन करनेवालीं श्रुतियें, तात्पर्यवृत्ति से ब्रह्मपर ही हैं. अस्थूल (स्थूलतारहित), अनणु (सूक्ष्मतारहित) इत्यादि निषेध करनेवालीं श्रुतियें भी,तत्पदार्थ के शोधन के विषय में उपयोगी हैं इसकारण उन का निर्गुण के ही विषैं पर्यवसान है. उपासना का निरूपण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥ एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः। सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥ यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥ धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्येवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोक-

करनेवाली श्रुतियें भी, अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा ज्ञान के साधनों का उपदेश करती हैं इसकारण उन का पर्यवसान ज्ञान के द्वारा परम्परासम्बन्ध से ब्रह्म के विषैं ही है. सृष्टि, स्थिति और प्रलय का प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियें भी, सृष्टि आदि के कथन के द्वारा ज्ञान वैराग्य की साधन हैं इसकारण उन का पर्यवसान भी परम्परासम्बन्ध से ब्रह्म के विषैं ही है. इसकारण ईश्वर से सृष्टि आदि के द्वारा जीवों के चारप्रकार के पुरुषार्थों का वर्णन करनेवाली सब श्रुतियों का परम्परा आदि सम्बन्ध से, निषेधादिमुख करके अथवा भागलक्षणा करके ब्रह्म के विषैं ही पर्यवसान है ॥२॥ इस विषय में अनादिसिद्ध परम्परा चली आती है इसकारण सन्देह करना उचित नहीं है ऐसा कहने के अभिप्राय से कहते हैं कि—सो यह श्रुतियों की ब्रह्मपरता का वर्णन करनेवाला रहस्य (गुप्त रखनेयोग्य) निर्णय, पूर्वपुरुषाओं के भी पूर्वपुरुष ऐसे सनकादिको ने मन में धारण करा है, जो पुरुष सूखे तर्कों का आग्रह न करके उन को श्रवण आदि करके धारण करेगा वह देह आदि सब उपाधियों को दूर करके परमानन्दस्वरूप को पावेगा ॥ ३ ॥ इस विषय को ही सब श्रुतियों के अर्थ के निरूपण के द्वारा विस्तार के साथ कहने को इतिहास कहते हैं कि—हे राजन् ! इस विषय में तुम से, जहाँ नारायण ही कहनेवाले हैं ऐसा बदरीनाथ नारायण का और नारदऋषि का सम्वादरूप इतिहास वर्णन करता हूँ ॥४॥ एकसमय लोकों में विचरनेवाले भगवद्भक्त नारदजी, पुरातनऋषि नारायण का दर्शन करने के निमित्त उन के बदरिकाश्रम को गये थे ॥ ५ ॥ जो नारायण इस भरतखण्ड में मनुष्यों का कल्याण करने के निमित्त और मुक्ति करने को कल्प के प्रारम्भ से धर्म, ज्ञान और शान्ति से युक्त तप कररहे हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जो नारायण, उस आश्रम में 'तहाँ से समीप के ही' कलापनामक ग्राम में रहनेवाले ऋषियों से घिरकर सुख के साथ बैठे सो तब ही नारदऋषि ने प्रणाम करके, 'ब्रह्म के विषैं श्रुतियें कैसे प्रवृत्त होती हैं ? ' यही प्रश्न उन से करा ॥ ७ ॥ तब भगवान् नारायण ने उन नारदजी से सब ऋषियों के सुनतेहुए जो पहिले के परमवृद्ध जनलोकवासी सनकादिकों का प्रश्नोत्तरों से निर्णयरूप सम्वाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ तत्र हायमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥ सनंदन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ॥ तदंते बोधयांचक्रुस्तल्लिंगैः श्रुतयः परम् ॥ ॥ १२ ॥ यथा शयानं सम्राजं वंदिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जय जय जह्यजामजित दोषगृ-

हुआ था वह कहा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे ब्रह्मपुत्र ! पहिले जनलोक में तहाँ रहनेवाले, ब्रह्मानी के मानसिकपुत्र सनकादि ऋषियों का ब्रह्मसत्र × हुआ ॥ ९ ॥ यदि कहो कि उससमय मैं कहाँ गया था ? तो-श्वेतद्वीप का स्वामी जो अनिरुद्ध नामवाला मैं तिस मेरा दर्शन करने के निमित्त जब तुम तहाँ गये थे तब, तुमने जो प्रश्न अब मुझ से करा है यही प्रश्न उस जनलोक में हुआ था और तदनन्तर तहाँ ऐसा उत्तम ब्रह्मविचार हुआ कि-जिस में सब श्रुतियें तात्पर्यवृत्ति से आगई हैं ॥ १० ॥ यदि कहो कि-वह सब सर्वज्ञ थे तो उन में वक्ता कौन हुआ और प्रश्न करनेवाला कौन हुआ ? तो-यद्यपि वह चारों ही सनकादि ऋषि, शास्त्राभ्यास, तपस्या और स्वभाव में समान थे और मित्र, शत्रु तथा उदासीनों में समता रखनेवाले थे इसकारण सब ही वक्ता बनसक्ते थे तथापि कुछएक कौतुक से उन्हों ने,एक सनन्दन को वक्ता बनाया और शेष श्रोता बने और प्रश्न करा ॥ ११ ॥ तब सनन्दन ने कहा कि-हे सनकादिकों ! जब परमेश्वर अपने रचेहुए इस जगत् को,, अपनी ही शक्तियों से प्रलयकाल में अपने स्वरूप में लीन करके योग निद्रा के द्वारा सोयेहुए से होते हैं, तब उस निद्राके अन्त में और सृष्टि के आरम्भ में उन के प्रथम श्वासोच्छ्वासोंसे प्रकटहुई श्रुतियें उनही परमेश्वर का प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों से उन को जगानेलगीं ॥ १२ ॥ जैसे सोयेहुए चक्रवर्ती राजा के समीप प्रातःकाल के समय,उस की स्तुति पढ़नेवाले सेवक आकर, सुन्दरकीर्त्तियुक्त पराक्रम के वर्णनोंसे उस को जगाते हैं तैसेही श्रुतियें भी ईश्वर का प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों के द्वारा उन को जगानेलगीं ॥ १३ ॥ श्रुति कहनेलगीं कि-(अजित !) जिनको किसीने नहीं जीता ऐसे हे परमेश्वर ! (जय, जय) अपने उत्कर्ष को वारम्वार प्रकट करो ! यदि कहो कि-किसप्रकार मैं अपने उत्कर्ष को प्रकट करूँ तो-(अगजगदोकसाम्) अग कहिये एक

× जहाँ सब ही समान अधिकारी हों उन में संशयरहित ब्रह्मज्ञान के निमित्त एक वक्ता और शेष श्रोता होकर ब्रह्म का विचार करते हैं उस को ब्रह्मसत्र कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामाखिल-शक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥ बृहदुप-

स्थान पर ही रहनेवाले स्थावर और जगत् कहिये चलने फिरनेवाले जङ्गम हैं ओक कहिये शरीर जिनके ऐसे जीवों के । (दोषगृभीतगुणाम्) आनन्द आदि गुणों को ढकने के निमित्त सत्त्व आदि गुणों को ग्रहण करनेवाली । (अजाम्) अविद्या को । (जहि) नष्ट करो । अर्थात् जैसे व्यभिचारिणी स्त्री दूसरे पुरुषों को धोखा देने के निमित्त हावभाव आदि गुणों को ग्रहण करती है तिसीप्रकार यह अविद्या जीवों को मोहित करने के निमित्त सत्त्व आदि गुणोंको ग्रहण करतीहै,इसकारण इसका नाश करो। यदि कहोकि–यह अविद्या तो मुझ में भी अपना दोष चिकटादेगी सो मुझ में इसका नाश करने की शक्ति कहां से आई ? तो–(यत्) क्योंकि। (त्वम्) तुम।' माया को वश में कर रखनेके कारण'(आत्मना) अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही । (समवरुद्धसमस्तभगः) प्राप्त हैं सकल ऐश्वर्य जिन को ऐसे । (असि) हो। यदि कहो कि-यह जीव ही ज्ञानवैराग्य आदि साधनोंसे क्यों नहीं करते? तो–(अखिलशक्त्यवबोधक !)हे सकल शक्तियों के प्रकाशक ! इस सम्बोधन से यह सूचित करा ।कि–तुम ही उन जीवों के अन्तर्यामी सब शक्तियों के प्रवर्त्तक हो, इसकारण वह जीव, ज्ञान वैराग्य आदि साधनों के विषय में स्वाधीन नहीं हैं । यदि कहो कि–मैं अखण्डित ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणों से युक्त होकर जीवों की कर्मज्ञान आदि शक्तियों की प्रेरणा करके उन की अविद्या का नाश करनेवाला हूँ इस विषय में प्रमाण क्या है ? तो–(निगमः) मैं वेद ही प्रमाण हूँ। यदि कहो कि–मेरे स्वरूप में वेदों की प्रवृत्ति कैसे होती है ? तो–(क्वचित्) कभी सृष्टि आदि के प्रसङ्ग में (अजया) माया के साथ । (रतः) क्रीड़ा करनेवाले (च) और । (आत्मना) निरन्तर सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द,एकरसरूप से। (चरतः)रहनेवाले । (ते) तुम्हारा । (निगमः) वेद । (अनुचरेत्) प्रतिपादन करता है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–"जय जयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम् । नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥' अर्थात्–हे अजित ईश्वर ! तुम्हारी सदा जय हो, मिथ्यागुण दिखलाकर इन स्थावर जङ्गम प्राणियों को ढकनेवाली इस अविद्या को नष्ट करो, तुम्हारे विना यह जीव कुछ नहीं कर सक्ते हैं; और तुम्हारी गुणसागरता वेद शास्त्रों में गान करीहुई ॥१४॥

१ 'हृ ग्रहोभश्छन्दसि' इस सूत्र से 'ह' के स्थान में 'भ' होनेपर गृभीत शब्द बना है ।

२ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ॥ यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ य आत्मनि तिष्ठन् ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ यः सर्वज्ञः स सर्ववित् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लब्धमेतदवयंत्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवंति भुवि दत्तपदानि नृ-

वेदों में इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओं का प्रतिपादन करा है ऐसा देखने में आता है; तहाँ मेरा वर्णन कहाँ है? ऐसा कहो तो-(एतत्) यह। (उपलब्धम्) दीखनेवाला, इन्द्र अग्नि आदि स्थावरजङ्गमरूप सकल जगत्। (बृहत्) ब्रह्मरूप तुम ही हो, ऐसा। (अवयन्ति) विद्वान् पुरुष जानते हैं। यदि कहो कि कैसे? तो (अवशेषतया) प्रलय-काल में सब का नाश होनेपर भी तुम ही शेष रहते हो इस से। इसका कारण यह है कि (यतः) जिन तुम (अविकृतात्) अविकारी ब्रह्म से। (मृदि वा) जैसे मृत्तिकामें से घड़े आदि पदार्थों की उत्पत्ति और नाश होते हैं, परन्तु अन्त में वह मृत्तिका ही सत्य रहती है, तिसीप्रकार। (विकृतेः) विकार को प्राप्त होनेवाले जगत् के (उदयास्तमयौ) उ-त्पत्ति और नाश। (स्तः) होते हैं। सो तुम जगतरूप विवर्त्त के अधिष्ठान निर्विकार होकर उपादानकारण भी हो; इसकारण इन्द्रादिकों का प्रतिपादन करनेवालीं जो श्रुति हैं वह भी वास्तव में तुम्हारा ही प्रतिपादन करती हैं, क्योंकि इन्द्रादि देवता तुम से भिन्न नहीं हैं। (अतः) इसकारण (ऋषयः) मंत्रों ने, मन्त्रों को तपोबल से देखनेवाले ऋषियों ने (मनोवचनाचरितम्) मन में लायेहुए वा वचन से उच्चारण करेहुए, इन्द्रादिक नाम। (त्वयि) तुम्हारे विषैं। (दधुः) धारण करे हैं अर्थात् निराले २ वज्रहस्त आदि विकारों पर धारण नहीं करे हैं। इस विषय में यह दृष्टान्त है कि-(नृणाम्) भूमिपर रहनेवाले मनुष्यों करके। (दत्तपदानि) कहीं भी रक्खेहुए चरण। (कथम्) कैसे। (अयथा) भूमिपर न रक्खेहुए। (भवन्ति) होसक्ते हैं? अर्थात् मट्टी, पत्थर, ईंट आदि किसी भी पदार्थपर रक्खेहुए मनुष्यों के चरण जैसे भूमिका आधार छोड़कर नहीं रहते हैं तैसे ही इस सृष्टि में के किसी भी विकार का वर्णन करनेवाले वेद, परमार्थरूप और सब के कारण

१ 'इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा' इत्यादि। तथा 'अग्निर्मूर्द्धा दिव' इत्यादि।

२ चिन्तामणि, मन्त्र, कामधेनु आदि विकार को न पानेवाले पदार्थों से दूसरे विकारी इच्छित पदार्थों के उत्पत्ति नाश होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध ही है।

३ यहाँ 'वा' शब्द उपमा अर्थवाला है।

४ 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'।

५ अतत्त्वतोऽन्यथाभावो विवर्तः। अर्थात् अतत्त्वरूप से अन्यथाभाव की प्रतीति को विवर्त्त कहते हैं, जैसे सीपी में चाँदी की प्रतीति होना।

६ कार्यजननार्थमुपादीयमानं कार्यान्वितं कारणम्। अर्थात् कार्य उत्पन्न करने को ग्रहण किया जाता हुआ कार्ययुक्त कारण उपादानकारण कहाता है। जैसे मृत्तिका घट आदि के और सुवर्ण आभूषण आदि के रचने को ग्रहण करेजाते हैं, वह सदा कार्यों में अनुगत (युक्त) रहते हैं।

७ सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णाम् ॥ १५ ॥ इति तव सूरयस्त्रयधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजंति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा

ऐसेतुम्हारा ही प्रतिपादन करते हैं ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'द्रुहिणवन्हिरवीन्दुमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्। बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमूरुमूर्त्तिरतो विनिगद्यसे ॥' अर्थात्–ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता ही क्या यह उत्पन्न हुआ सकल जगत् तुम से भिन्न नहीं है, इसकारण अनेकों प्रकार के देवताओं का वर्णन करनेवाले भी वेद के मन्त्रों से अनेकों मूर्त्तिवाले तुम अजन्मा परब्रह्म ही वर्णन करेजाते हो ॥ १५ ॥ अब, तुम ही सकल श्रुतियों के गोचर हो ऐसा साधुओं की प्रवृत्ति से दृढ करते हैं कि–(त्रयधिपते !) हे त्रिगुणमायारूप हरिणी को नचानेवाले । (परम !) हे सबों के कारण परमेश्वर ! (इति) तुम ही सब का कारण होने से परमार्थरूप हो ऐसा जानकर । (सूरयः) विवेकी पुरुषों ने (तव) तुम्हारी (अखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिम्) सकल लोकों के पापों को दूर करनेवाली तुम्हारी कथाओंरूप अमृत के समुद्र को । (अवगाह्य) अवगाह न अर्थात् सेवन करके । (तपांसि) पाप वा दुःखों को (जहुः) त्यागन करा है । अर्थात् जब तुम्हारी कथाओं को सुनने आदि से ही सकल सन्ताप दूर होते हैं तो-- (ये) जो । (पुनः) फिर । (स्वधामविधुताशयकालगुणाः) तुम्हारे स्वरूप के स्फुरण से ही अपने अन्तःकरणोंमें के राग आदि धर्म्मों का और काल के वृद्धावस्था आदि धर्म्मों का त्याग करके । (अजस्रसुखानुभवम्) अखण्ड आनन्द के अनुभवरूप । (पदम्) तुम्हारे स्वरूप को (भजन्ति) सेवन करते हैं (ते +) उन्होने । (तपांसि +) सकल सन्तापों को । (जहुः +) त्यागा । (किमुत) इसका कहनाही क्या ? ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वगनीषिजना रताः । त्वयि सुभद्र गुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः ॥' अर्थात् हे परमकल्याणरूप परमेश्वर ! सकल वेदादिकों में तुम्हारे सद्गुणों का वर्णन है इसकारण सकल बुद्धिमान् साधुपुरुषों ने तुम्हारे विषैं चित्त लगाया और वह तुम्हारे गुणों का श्रवण आदि करने से तथा तुम्हारे चरणकमल का स्मरण करने से सांसारिक दुःखों से छूटगये ॥ १६ ॥ अब, कितनी ही वेद

१ तदैक्षत एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय ।

२ 'तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते । न कर्मणा लिप्यते पापकेन ॥ तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुते ॥ एत ँ ह वाव न तपति ॥ किमहं साधु नाकरवं । किमहं पापमकरवम् ।' इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महदहमादयोऽडमसृजन् यदनुग्रहतः ॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु

की श्रुतियें ऊपरके दो श्लोकों में कहेहुए सेवन को न करने की निन्दा करती हैं, सोई कहते हैं कि-(देव!+) हे देव! (असुभृतः) प्राणधारी। (यदि) जो। (ते) तुम्हारे (अनुविधाः) अनुगामी भक्त हैं। (तर्हि +) तब तो। (श्वसन्ति) जीते हैं, अर्थात् सफलजीवनवाले हैं। (इतरथा +) नहीं तो। (दृतयः-इव) लुहार की धोंकनियों की समान (श्वसन्ति +) श्वांस लेते हैं अर्थात् लुहार की धोंकनी के वायु की समान उन के श्वास मातापिता आदि को सन्ताप देनेवाले व्यर्थ ही हैं। यदि कहो कि -भक्ति न करनेवालों को भी जीवन का काम आदि फल है तो-(महदहमादयः)महत्तत्त्व और अहङ्कार आदि तत्वों ने भी। (यदनुग्रहतः) जिन के अनुग्रह से,अर्थात् जिन तुम्हारे रचना के अनन्तर अपने में प्रवेश करने से सामर्थ्य-युक्त होकर। (अण्डम्) समष्टि व्यष्टिरूप ब्रह्माण्ड को (असृजन्) उत्पन्न करा है। अर्थात् ऐसे परम अनुग्रह करनेवाले भी तुम्हारा भजन न करनेवालों को उलटा कृतघ्नपनारूप दोष प्राप्त होकर वह विषयभोग आदि फल भी नहीं मिलता है। यदि कहो कि--किसप्रकार का मैं उपासना करने योग्य हूँ? तो-(याः) जो। (अन्नमयादिषु) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय इन पाँच कोशों में। (पुरुषविधः) तिनतिन अन्नमय आदि कोशों की समान आकरवाला, अर्थात् देह, प्राण, मन, बुद्धि, और ज्ञान इन स्वरूपों से उच्चारण कराजाता है सो तुम हो। यदि कहो कि-चैतन्यस्वरूप रहनेवाले मुझे तिन २ अन्नमयादि कोशों का आकार कैसे प्राप्त होता है? तो-(अत्र) इन कोशों में। (अन्वयः) तुम्हारा अन्वय है अर्थात् जैसे काठ में अग्नि का अन्वय होता है तैसे अन्वय है इसकारण तिस २ का आकार प्राप्त होता है। यदि कहो कि-तो फिर मैं सत्य और असङ्ग कैसे होसक्ता हूँ? तो-(चरमः) अन्तिम अवधिरूप हो अर्थात् अन्नमयादि कोशों का वर्णन चलने पर पुच्छमात्र से अवधि मानकर वर्णन कराहुआ जो सो तुम हो। अच्छा तो भी अन्नमयादि कोशों में अन्वय होने के कारण असङ्गपने की हानि ही होयगी? ऐसा कहो तो-(सदसतः) स्थूलसूक्ष्मरूप अन्नमयप्राणमय आदि कोशों से। (परम्) व्यतिरिक्त, अर्थात् अन्नमयादि कोशों का साक्षी। (एषु) इन में। (अवशेषम्) अवशेष रहनेवाला, अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशों का 'नेति नेति' इत्यादि श्रुतियों से अपवाद होने पर भी शेष रहनेवाला, (अथ) और। (ऋतम्)

१ असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः तथा ॥ न चेदवेदीन्महती विनष्टिः ॥ ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवोपयन्ति ॥ इत्यादि श्रुतियें ॥

२ स वा एष पुरुषोऽन्नमयस्तस्येदमेव शिरः इत्यादि प्रमाण से।

३ ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा इत्यादि वेद में कहाहुआ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥ उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरं ॥ तत उदगादनंत तव धाम

सत्यस्वरूप। (यत्) जो ब्रह्म! (तत्+) सो। (त्वम्) तुम। (असि+) हो। यदि कहोकि–जो में ऐसा सत्यस्वरूप ब्रह्म हूँ तो उन अन्नमय आदि कोशों में मेरा अन्वय कैसे कहा? तो–तुम्हारे शुद्ध स्वरूप का निरूपण करने के निमित्त शाखाचन्द्रन्याय से अन्वय कहा है, अर्थात् जैसे किसी की दृष्टि चन्द्रमा पर पहुँचाने के निमित्त कहते हैं कि-देखो वह वृक्ष की शाखा पर चन्द्रमा है, तो क्या शाखापर चंद्रमा होता है? नहीं, किन्तु चन्द्रमा का निरूपण करने को ऐसा कहते हैं तिसी प्रकार तुम्हारे शुद्ध स्वरूप का निरूपण करने के निमित्त ही अन्नमयादि कोशों में तुम्हारा अन्वय कहा है वास्तव में तो तुम सत्यस्वरूप असङ्ग हो ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'नरवपुः प्रति पद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः ॥ नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥ अर्थात्--हे भक्त के सङ्कट दूर करने के निमित्त नृसिंहावतार धारनेवाले परमात्मन्! यदि मानवशरीर को पाकर, श्रवण, वर्णन और भली प्रकार स्मरण आदि करके तुम्हारा भजन नहीं करते हैं तो यह मनुष्यों का श्वास लेकर जीना लुहार की धौंकनी के वायु की समान है तिस से निरर्थक है ॥ १७ ॥ अब ' उदरं ब्रह्मेत्यादि ' श्रुति, ईश्वर के विषैं मन का प्रवेश होने के निमित्त उपासनाओं के भेद कहती हैं कि– (अनन्त!) हे अनन्त! । (ऋषिवर्त्मसु) ऋषियों के सम्प्रदायमार्गों में। [ये] जो। (कूर्पदृशः) स्थूलदृष्टि पुरुष। (सन्ति +) हैं। (ते+) वह। (उदरम्[1]) उदर में के मणिपूरचक्र में रहनेवाले ब्रह्म को। (उपासते) ध्यान के द्वारा उपासना करते हैं। (आरुणयः) अरुण के वंश में उत्पन्नहुए ऋषि (परिसरपद्धतिम्[4]) सर्वत्र नाड़ियें फैलने के मार्ग ऐसे। (हृदयम्) हृदय में स्थित। (दहरम्) सूक्ष्मरूप को। (उपासते +) ध्यान करते हैं। क्योंकि– (ततः) तिस सूक्ष्म से। (परगम्) सर्वोत्तम अर्थात् ज्योतिर्मय। (तव) तुम्हारा। (धाम) प्राप्ति स्थान अर्थात् सुषुम्नानाड़ीरूप स्थान। (शिरः) मस्तकपर्यन्त। (उदगात्) ऊपर को गयाहुआ है। अर्थात् मूलाधार-

१ उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षा उपासते, हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो, बृह्मा हैवैता इत ऊर्ध्वं त्वेवोदसर्पत्तच्छिरोऽश्रयत, यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः ॥ इत्यादि ॥

२ कूर्प शर्करारजो विद्यते दृक्ष्वक्षिषु येषां ते तथा रजःपिहितदृष्टयः स्थूलदृष्टय इति यावत्।

३ उदरालम्बनं मणिपूरकस्थं ब्रह्म।

४ परितः सरन्ति प्रसर्पन्तीति परिसरा नाड्यस्तासां पद्धतिं मार्गं प्रसरणस्थानमित्यर्थः।

५ शतधैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्त्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणे भवन्तीति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतंति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्र-योनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसं ॥१९॥

चक्र से हृदय के मध्य में को होकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ऊपर को गयाहुआ है; उस की ऐसी महिमा है कि– (यत्) जिस सुषुम्नानाडीरूप स्थान को । (समेत्य) प्राप्त होकर । (पुनः) फिर । (इह) यहाँ । (कृतान्तमुखे) मृत्यु के मुखरूप संसार में । (न) नहीं । (पतन्ति) पडते हैं ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'उदरादिषु यः पुंसां चिन्तितो मुनिवर्त्मभिः॥ हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ॥' अर्थात्–मुनियों के प्रचार करेहुए मार्गों के द्वारा, मणिपूरकचक्र आदि के विषैं ध्यान करेहुए जो दिव्यरूप भगवान् पुरुषों के मृत्यु के भयरूप संसार अर्थात् आवागमन को दूर करते हैं [मुक्ति देते हैं] उन हृदय में विद्यमान सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर की हम उपासना करते हैं ॥१८॥ अब, यदि ईश्वर को भी जीवात्मा की समान उदर आदि का सम्बन्ध है तो कौनसी विशेषता है जो उन की उपासना करें ? इस शङ्का को दूर करनेवाली 'एको देव[1] इत्यादि' श्रुतियें स्तुति करती हैं कि–(प्रभो +) हे प्रभो ! । (त्वम् +) तुम । (स्वकृतविचित्रयोनिषु) अपनी ही रचीहुई ऊच्च-नीच-मध्यमरूप देवता-तिर्यक्-और मनुष्य की योनियों में अर्थात् प्रकट होने के स्थानरूप कार्यों में । (हेतुतया) कारणरूप से । (विशन्-इव) प्रवेश करते हुए से । अर्थात् उपादानकारणरूप से पहिले ही विद्यमान होकर भी तदनन्तर प्रवेश करेहुए से होकर । (स्वकृतानुकृतिः) अपनी ही रचीहुई तिन २ देवता आदि योनियों का अनुकरण करतेहुए । (तरतमतः) उत्तम अधम आदि न्यूनाधिकभाव से । (अनलवत्) अग्नि की समान । अर्थात्-जैसे अग्नि स्वयं तारतम्य (छोटा बड़ापन) रहित होकर भी काठके अनुसार बड़े-छोटे-मोटे आदि रूपवाला प्रतीत होता है तैसे, (चकास्सि) भासते हो । (अथ) इसकारण । (अभिविपण्यवः) इसलोक और परलोक में भोगनेयोग्य कर्मों के फलों से रहितहुए । (विरजधियः) निर्मलबुद्धिपुरुष । (वितथासु) मिथ्याभूत । (अमूषु) इन देवमनुष्य आदि योनियों में । (अवितथम्) सत्य । (समम्) समान । (एकरसम्) एकसरूप । (तव) तुम्हारे । (धाम) स्वरूप को । (अन्वयन्ति) जानते हैं । अर्थात्-अखण्डैश्वर्यरूप तुम भगवान् को, उपाधि का कराहुआ

१ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

२ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्–इति श्रुतिः ।

३ अभि-वि उपसर्गपूर्वकस्य पणव्यवहार इत्यस्य धातोरूपं पण्युरिति, तस्य बहुवचने, अभिविपण्यवः अभितो विगतव्यवहाराः; ऐहिकामुष्मिककर्मफलरहिता इत्यर्थः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वकृतपुरेष्वपीष्ववहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेंऽघ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः।२०। दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरि-

न्यूनाधिकभाव न होने के कारण तुम ही उपासना करनेयोग्य हो ऐसा जानते हैं॥ श्रीधरजी की अनुकृति—'स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम्। सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तमुपास्महे ॥' अर्थात् अपने रचेहुए कार्यकहिये देवमनुष्यादि शरीरों में, न्यूनाधिकभावरहित, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप भगवान् की हम उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ अब स यश्चेत्यादि, श्रुति, यह जीव वास्तव में भगवत्स्वरूप ही है, ऐसा बोधन करतीहुई अवतार धारण करनेवाले भगवान् के भजन का प्रकार कहती हैं– (देव+) हे देव ! (अमीषु) इन । (स्वकृतपुरेषु) अपने कर्म्मों से करेहुए मनुष्यादिशरीरों में । (भोक्तृत्वेन +) भोक्तापने से । (विद्यमानम्+) विद्यमान । (परम् +) परन्तु । (अवहिरन्तरसंवरणम्) कार्यकारणरूप आवरणों से रहित । (पुरुषम्) जीव को । (अखिलशक्तिधृतः) सकलशक्तियों के आश्रय पूर्णरूप । (तव) तुम्हारे । (अंशकृतम्) अंश की समान और करेहुए की समान अर्थात् अंशरूप और रचाहुआसा प्रतीत होता है और वास्तव में त्वद्रूपही है ऐसा । (वदन्ति) तत्त्वज्ञानीपुरुष कहते हैं । (इति) इसप्रकार अर्थात् जीव के तत्त्व का निर्णय करेविना परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होगी इसकारण । (नृगतिम्) जीवके तत्त्व को । (विविच्य) विचारकर। (कवयः) तत्त्वज्ञानी पुरुष । (विश्वसिताः +) विश्वासयुक्त होतेहुए अर्थात् भगवान् के चरण की शरण लेने से ही संसार का दुःख दूर होगा, अन्यथा नहीं;ऐसा विश्वास रखतेहुए। (निगमावपनम्) शास्त्र में कहेहुए सकल कर्म अर्पण करने के खेतरूप अर्थात् जहाँ अर्पण करेहुए सकल कर्म मुक्तिरूप फल देनेवाले होते हैं ऐसे। (अभवम्) संसार को दूर करनेवाले । (ते) तुम्हारे । (अंघ्रिम्) चरण को । (भुवि) इस भूलोक में । (उपासते) पूजनवन्दनादि करके सेवन करते हैं (यही इस भूलोक में उचित है) ॥ श्रीधरजी की अनुकृति 'त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम् । त्वदंघ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय ॥' अर्थात्—हे परमानन्दस्वरूप ईश्वर ! तुम्हारे अंशरूप मेरे, तुम्हारी माया के करेहुए बन्धन को, तुम अपने चरण की सेवा का उपदेश देकर, दूर कर दो ॥ २० ॥ यदि कोई भक्ति को छोटा साधन कहे तो उचित नहीं, ऐसा माननेवालीं कितनी ही श्रुतियें भक्ति का महत्त्व

१ स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः । तत्त्वमसि ।
२ बहिः कार्यम्, अन्तरं कारणम्, तयोःसम्वरणेन रहितम् ।
३ अंश इव अंशः, कृत इव कृतः; तम् ।
४ निगमोक्तकर्मणामावपनमासमन्तादुप्यतेऽस्मिन्नित्यावपनं क्षेत्रम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रमणाः ॥ न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न वत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो यदनुशया

वर्णन करती हैं कि (ईश्वर)हेईश्वर!(दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय) दुर्बोध आत्मतत्त्व का ज्ञान होने के निमित्त। आत्ततनोः (अवतार धारण करनेवाले । (तव) तुम्हारे । (चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः) चरित्ररूप महासमुद्र में स्नान करके श्रमरहित हुए । (केचित्) कोई । अर्थात् विरले ही भक्तिरसिक पुरुष । (ते) तुम्हारे । (चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः) चरणकमल के विषैं हंसकी समान रमण करनेवाले भक्तजनों के कुलोंसे होनेवाली सङ्गति करके घरद्वार आदि का करा है त्याग जिन्होंने ऐसे । (सन्तः+) होतेहुए।अर्थात् भक्तों के संग से घर आदि को छोड़कर श्रवणकीर्त्तन आदि में निमग्न होतेहुए तिस ही सुख से तृप्तहुए वह । (अपवर्गम्-अपि) मोक्ष को भी (न) नहीं । (परिलषन्ति) चाहते हैं । अर्थात् जब मोक्ष ही नहीं चाहते तो फिर दूसरे इन्द्रपद आदि की इच्छा क्या करेंगे ? अर्थात् कदापि नहीं करेंगे । इसकारण तुम्हारी भक्ति-मुक्तिसे भी अधिक है । श्रीधरजी की अनुकृति—'त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः । कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥ ' अर्थात्—हे भगवन् ! कोई विद्वान् तुम्हारी कथारूप अमृत के समुद्र में विहार करतेहुए,परम आनन्द से युक्त होकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग को तृण की समान समझते हैं ॥२१॥ अब 'आराममस्य पश्यन्ति इत्यादि, इत्यादि श्रुतियें वारंवार ऊँचे स्वरसे परमात्मा ईश्वर के ऊपर प्रेम करने का उपदेश करती हैं कि—(त्वदनुपथम्) तुम्हारी सेवा में उपयोगी होनेवाला । (इदम्) यह । (कुलायम्) शरीर। (आत्मसुहृत्प्रियवत्) आत्मा, सुहृद् और प्रिय की समान । (चरति) स्वाधीनता से वर्ताव करता है । (तथा) तथापि । (आत्मनि) आत्मा । (प्रिये) प्रिय ! (हिते) हित । (च) और(उन्मुखे) संसार से तारने के विषय में सन्मुख खडे । अर्थात् ऐसे सब प्रकार सुख से सेवन करनेयोग्य भी । (त्वयि) तुम्हारे विषैं । (जीवाः +) प्राणी। (न) नहीं । (रमन्ति) 'श्रवणकीर्त्तन सखाभाव आदि के द्वारा' रमण करते हैं । (वत) यह बड़ेदुःख की वार्त्ता है । केवल रमण ही करते नहीं इतनाही नहीं किन्तु—(असदुपासनया) देह आदिकों के लालनपालन आदि करके । (आत्महनः) आत्मघात करलेते हैं।

१ यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्चेति श्रुतिः । व्याख्यातश्च सर्वैर्भाष्यकृद्भिः—मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्त इति ।

२ आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन । न तं विदाथ य इमाज जानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेंद्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोंऽघ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ क इह नु वेद

वह आत्मघात ऐसा है कि–(यदनुशयाः) जिन देहादिकों के लालनपालन आदि की वासना को धारण करनेवाले वह जीव । [कुशरीरभृतः] श्वान सूकर आदि की निन्दित योनियों को धारण करतेहुए । [उरुभये] अनेकों भयों से युक्त संसार में [भ्रमन्ति] भ्रमते हैं । इसकारण ही उन को आत्मघाती समझना चाहिये ॥ श्रीधरजी की अनुकृति– 'त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह । कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति॥' अर्थात् हे भगवन् ! इस संसारमें मेरा ऐसा मानुष जन्म कब होगा कि जब जगन्नाथ आत्मस्वरूप तुम्हारे विषैं मेरा मन रमेगा॥२२॥ अब,' आत्मा वारे द्रष्टव्य इत्यादि 'श्रुतियें, भक्ति के अङ्गरूपसे ध्यानका उपदेश करतीहैं कि–(प्रभो +)हे प्रभो! (निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुजः)जिन्होंने अपने प्राण,मन और इन्द्रियों को वशमें करलियाहै ऐसे दृढ़योगकरनेवाले । (मुनयः)ऋषि (हृदि) हृदय में।(यत्) जिस तुम्हारे तत्त्व को । [उपासते] ध्यान करते हैं। [तत्] उस ही तुम्हारे तत्त्व को । [अरयः] शत्रु(अपि) भी ।(तव) । तुम्हारे । (स्मरणात्) स्मरण से । (ययुः) प्राप्तहुए हैं । और (उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः) शेषजी के शरीर की समान कोमल भुजदण्ड पर आसक्तचित्त हुई । (स्त्रियः) स्त्री गोपियें । (तथा +) तैसे ही । (अंघ्रिसरोजसुधाः) तुम्हारे चरणकमल का उत्तम प्रकार से चिन्तवन करनेवालीं । (समदृशः) समता कहिये देश-काल-वस्तु परिच्छेदरहितपने से देखनेवालीं । (वयम्) हम श्रुतियों की अभिमानिनी देवता अथवा गोपीरूपता को प्राप्तहुई हम श्रुतियें । (अपि) भी । (ते) तुम्हें । (समाः) समानहैं । इस प्रकार तुम्हें सबही समान हैं अर्थात् तुम्हारे स्मरण की ऐसी ही महिमाहै कि-जो योगी तुम्हारी हृदय में उपासना करते हैं, जो शत्रु द्वेष से तुम्हारे परिच्छिन्नरूप का चिन्तवन करते हैं, जो स्त्रियें कामातुर होकर तुम्हारे परिच्छिन्नरूप का ध्यान करती हैं और हम तुम्हें अपरिच्छिन्नरूप से देखती हैं, इन सबों को वह तुम्हारा ध्यान समानरूप की प्राप्ति करादेता है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति -'चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम् । यथा कथञ्चिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम् ' अर्थात् हे देव ! परमदुर्लभ जो, प्रेम के साथ तुम्हारा स्मरण सो,

१ आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । इत्यादिः

२ श्रुतीनां गोपीरूपत्वमुक्तं बृहद्वामने 'तुष्टोऽस्मि ब्रूत भो विप्रा वरं यन्मनसेप्सितम् ।' इति भगवदुक्ताः श्रुतय ऊचुः ' यथा त्वाङ्गोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः । भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षा जनि नस्तथा ॥ ' इति प्रार्थितो भगवानुवाच ' व्रजे गोप्यो भविष्यथेति ॥ '

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ॥ तर्हि न सन्न

हे नृहरे! जिसकिसी प्रकार भी मुझे रात्रि-दिन हो ॥ २३॥ अब 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते' इत्यादि श्रुतियें, भगवान् के तत्त्व को जानना कठिन है, ऐसा कहतीहुई, भक्ति को ही स्वीकार करके स्तुति करती हैं कि-(बत) अहोभगवन्! (इह) इस जगत् में। (अग्रसरम्) पहिलेसे ही होनेवाले (त्वम् +) तुम को (अवरजन्मलयः) इधर का उत्पत्ति और नाश से युक्त (कः-नु) कौन पुरुष ? (वेद) जानता है, कोईनहीं जानता अर्थात्-पहिले होनेवाला पुरुष पीछे होनेवाले पुरुष के वृत्तान्त को जानता है, पीछे होने वाला पुरुष, पहिले के पुरुष का वृत्तान्त नहीं जानता है, जैसे पिता, पुत्र के जन्म आदि का वृत्तान्त जानता है परन्तु पुत्र, पिता के जन्म आदिका वृत्तान्त नहीं जानता है तैसेही पूर्व सिद्ध तुम ही केवल अनन्तर उत्पन्नहुए जीवों के सब वृत्तान्त को जानते हो, वह जीव तुम्हारे वृत्तान्त को नहीं जानते हैं अब ईश्वर पूर्वसिद्ध और जीव अर्वाचीन है इस विषय में प्रमाण कहनेवाली श्रुतियें, जीवों को ज्ञान न होने का कारण कहती हैं कि-(यतः) जिन तुम से (ऋषिः) ब्रह्माजी। (उदगात्) उत्पन्न हुए। [यम्-अनु] जिन ब्रह्माजी के अनन्तर। [उभये] दो प्रकार के अर्थात् आध्यात्मिक और आधिभौतिक, ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता अथवा निवृत्तिनिष्ठ सनकादिक और प्रवृत्तिनिष्ठ मरीचि आदि यह दो प्रकार के। [देवगणाः] देवगण। (उत्पन्नाः ×) उत्पन्न हुए। आगे के और जीव उन के भी पीछे के हैं। और [यदा] जब। [अवकृष्य] सकल जगत् को अपने में समेटकर। [शयीत] शयन करते हो। [तर्हि] तब। अर्थात् तुम्हारे पीछे शयन करनेवाले जीवों को ज्ञान प्राप्त होनेका साधन ही नहीं होताहै, क्योंकि--उससमय (सत्) आकाश आदि स्थूल पदार्थ। [न] नहीं। [असत्] महत्तत्त्व आदि सूक्ष्म पदार्थ। [न] नहीं [उभयम्] स्थूलसूक्ष्मात्मक शरीर। [च+] भी। [न+] नहीं। [च] और [कालजवः]' उसका निमित्तभूत, काल का वेग। [न] नहीं]। तैसेही-[तत्र] तिससमय [किमपि] इन्द्रिय, प्राण, मन आदि कुछ भी। तथा [शास्त्रम्] उन को बोध करनेवाले वेदपुराण आदि शास्त्र। [न] नहीं। इसकारण उससमय भी जीवों को तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है। इस सब का अभिप्राय यह है कि-उरली ओर की सृष्टि में उत्पन्न होकर देह आदि उपाधि के कारण तुम से बहुत पृथक् हुए और कालवश करके

१ यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् ॥ कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ॥ अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ अनेजदेकं मनसो जवीयो नैतद्देवा अप्नुवन् पूर्वमर्शत् ॥ तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ इत्यादि ॥

२ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्, इति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमनकृष्य शयीत यदा ॥ २४ ॥
जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनिये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त

मलिनान्तःकरणहुए जीवों को ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं है। और जब प्रलयकाल के समय तुम में और इन में बहुतसा अन्तर नहीं होता है तब ज्ञान का साधन न होने के कारण, इन को तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है इसकारण इन जीवों ने, अनन्य शरणागत होकर तुम्हारी भक्ति करी है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–काहं बुद्ध्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव । दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश ॥' अर्थात् हे दीनबन्धो! हे दयासिन्धो ! हे नृहरे ! कहाँ मैं बुद्धि आदि से बँधाहुआ ? और कहाँ तुम्हारा तेज? इसकारण हे भूमन्! मुझे भक्ति दो ॥ २४॥ अत्र 'सदेव सौम्येदमित्यादि' श्रुतियें, उपदेश करनेवाले लोकों के भी मतभेद होने के कारण अनेकों भ्रम हैं इसकारण उन से तत्त्वज्ञान होना कठिन है ऐसा कहती हैं–(असतः) सृष्टि के पहिले न होनेवाले इस जगत की । (जनिम्) उत्पत्ति को । (ये +) जो वैशेषिक[1] (स्मरन्ति) कहते हैं । अथवा ऐसा अर्थ करना कि–(असतः) जीव में पहिले न होनेवाले ब्रह्मत्व की । 'योग साधन के द्वारा'। (जनिम्) उत्पत्ति को । (ये ×) जो पातञ्जल[3] (स्मरन्ति) कहते हैं (सतः) सत् कहिये पञ्चज्ञानेन्द्रियें और मन यह छः ६ इन्द्रियें, इन के छः ६ विषय, और छः ६ ज्ञान, एक शरीर, एक सुख तथा एक दुःख ऐसे इक्कीस प्रकार के दुखों के । (मृतिम्) नाशरूप मोक्ष को (ये +) जो गोतममतवाले नैयायिक । (स्मरन्ति +) कहते हैं । (उत) और भी । (आत्मनि) जीवात्मा और परमात्मा में । (भिदाम्) घटाकाश और मठाकाश की समान भेद को । (ये) जो सांख्य आदि । (स्मरन्ति +) कहते हैं । और । (विपणम्) कर्मफल को । (ऋतम्) सत्य । (ये +) जो मीमांसक । (स्मरन्ति) कहते हैं । (ते) वह निराला २ उपदेश करनेवाले सब ही मतवादी । (आरुपितैः) आरोप करेहुए भ्रमों से ही । (उपदिशन्ति) उपदेश करते हैं। अर्थात् वह

१ सदेव सौम्येदमग्र आसीत् । असद्वा इदमग्र आसीत् । ब्रह्मैव सन ब्रह्माप्येति । अनीशया शोचति मुह्यमानः अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः । स्वयंधीराः पण्डितंमन्यमानाः । जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते बहुचंद्रवत् । इत्यादि श्रुतिविरोधात् .

२ सप्तपदार्थवादी नवीन तार्किक जिन को 'काणाद' कहते हैं वह वैशेषिक होते हैं॥

३ योगशास्त्र रचनेवाले, उन का यह आशय है कि-जैसे तांबा आदि धातु पहिले सुवर्णरूप न होकर सुवर्णकारक औषधि का पुट देनेपर सुवर्ण होजाता है तैसे ही पहिले से ब्रह्मरूप न होनेवाला भी जीव, योगशक्ति से ब्रह्मरूप होजाता है.

४ अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरुपिनैः ॥ त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः॥नहिं विकृतिं त्यजंति कनकस्य तदात्मतया स्व-

तत्त्वदृष्टि से उपदेश नहीं करते हैं, क्योंकि—यह सब मत हमारे अद्वैत मत से विरुद्ध हैं। हाँ वह अन्तर्यामी आत्मा यदि वास्तव में त्रिगुणमय होता तो इनका कहनाहोसक्ता। परन्तु [पुमान्] पुराण पुरुष आत्मा। [त्रिगुणमयः] त्रिगुणमय है। [इति] इस कारण से जो [भिदा] भेद आदि मानना है सो। [यत्] क्योंकि। [त्वयि] तुम्हारे विषैं। [अबोधकृता] अज्ञान करके उत्पन्न है। तिस से [सः] वह भेद। (ततः) तिस अज्ञान से। [परत्र] परलीओर के। [अबोधरसे] ज्ञानघनरूप तुम्हारे विषैं। [न] नहीं [भवेत्] होसक्ता। श्रीधरजी की अनुकृति—' मिथ्यातर्कसुकर्कशैरितमहावादान्धकारान्तरभ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटम्। श्रीमन्माधव! वामन! त्रिनयन! श्रीशङ्कर! श्रीपते! गोविन्देति मुदा वदन्मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम्॥ ' अर्थात् हे प्रभावशालिन्! मिथ्या तर्कोंसे परमकर्कश पुरुषों के कहेहुए वादरूप अन्धकार में भ्रमनेवाले मन्दमति पुरुष को, तुम्हारा ज्ञानमार्ग दुर्गम है। हे श्रीमन्! हे माधव! हे वामन! हे त्रिनेत्र! हे शङ्कर! हे श्रीपते! हे गोविन्द! हे मधुपते! इस प्रकार आनन्द के साथ कहताहुआ मैं, कब मुक्त होऊँगा? ॥ २५ ॥ अब, यदि असत् वस्तु उत्पन्न नहीं होती है, और पुरुष त्रिगुणमय नहीं है, ऐसा होय तो यह सब प्रपञ्च. और पुरुष भिन्न नहीं हैं ऐसा होयगा, परन्तु उन के भेद की प्रतीति तो अनुभव में आती है, ऐसा कैसे होता है? ऐसा कोई कहे तो— ' असतोऽधिमन इत्यादि ' श्रुतियें कहती है—(मनः) मन के द्वारा ही विलसित होनेवाला। (इदम्) यह। (त्रिवृत्) त्रिगुणात्मक जगत्। (आमनुजात) अन्तर्यामी पुरुषपर्यन्त। (असत्) मिथ्याभूत होकर। (सत्-इव) अधिष्ठानरूप आत्मा की सत्यता से सत्यसा। (विभाति) प्रतीत होता है। अब आत्मज्ञानी पुरुषों को भी यह जगत् सत्य ही है ऐसा भासता है, फिर उस को खोटा कैसे कहाजासक्ता है? ऐसा कोई कहे तो— [आत्मविदः) आत्मज्ञानी पुरुष। [इदम्] भोक्ताभोग्यरूप इस। (अशेषम्) सकल जगत् को। [आत्मतया] आत्मता करके अर्थात अधिष्ठानरूप आत्मा की सत्ता करके। [सत्] यह सत्य है ऐसा (अभिमृशन्ति) जानते हैं। आत्मा से भिन्न सत्यरूप नहीं जानते हैं, इस विषय में लोकाचार दिखाते हैं कि—(कनकार्थिनः +) सुवर्ण लेने की इच्छा करनेवाले पुरुष। [कनकस्य] सुवर्ण के। [विकृतिम्] विकाररूप कुण्डलादिक पदार्थों को। [नहि] नहीं। [त्यजन्ति] त्यागते हैं। [परम् +] किन्तु। [तदात्मतया] सुवर्ण-

१ असतोधिमनोसृजत. मनः प्रजापतिमसृजत. प्रजापतिः प्रजा असृजत.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितं ॥ २६ ॥ तव परि ये चरंत्यखिलसत्वनिकेततया त उत पदाक्रमंत्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ॥ परिवयसे पशूनिव गिरा

रूपता करके ही। [गृण्हन्ति +] गृहण करते हैं। तैसे ही–[स्वकृतम्] आत्मा करके स्वयं उपादान कारण होकर कराहुआ। और [अनुप्रविष्टम्] तिस पुरुषरूप आत्मा करके भीतर प्रवेश कराहुआ। [इदम्] यह भोक्तृभोग्यात्मक जगत्। [आत्मतया] आत्मारूप ही है ऐसा। (अवसितम्) आत्मज्ञानी पुरुषों ने जाना है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत्स्वतः। सदाभासमसत्यस्मिन्भगवन्तं भजामतम् ॥' अर्थात्–स्वयं असत्स्वरूप यह जगत्, जिन की सत्ता से सत् प्रतीत होता है ऐसे इस असत्रूप जगत् में सत्रूप से भासनेवाले तिन भगवान् का हम भजन करते हैं ॥ २६ ॥ अत्र 'सत्यं ज्ञानमित्यादि' श्रुतियें, भक्ति करके ही ज्ञान सुलभ होता है ऐसा वर्णन करती हैं–(प्रभो +) हे प्रभो! (अखिलसत्त्वनिकेततया) तुम सकलप्राणियों के आश्रयस्थान हो ऐसा जानकर। (ये) जो पुरुष। (तवै) तुम को, (परिचरन्ति) सेवन करते हैं। (ते) वह। (उत) ही। (अविगणय्य) तिरस्कार करके। (निर्ऋतेः) मृत्यु के। (शिरः) शिर को। (पदा) चरण से। (आक्रमन्ति) दबाते हैं। अर्थात् मृत्यु को जीतकर मोक्ष पाते हैं; उन के कृतार्थ होने में कोई सन्देह नहीं है। (त्वयि) तुम्हारे विषैं। (कृतसौहृदाः) किया है प्रेम जिन्होंने ऐसे। (ते) वह पुरुष। (खलु) निःसन्देह। (पुनन्ति) पवित्र करते हैं अर्थात् अपने को तो पवित्र करते हैं सो करते ही हैं परन्तु दूसरों को भी भक्तिमार्ग का उपदेश कर पवित्र करके तारदेते हैं। (ये) जो। (विमुखाः) तुम से विमुख कहिये अभक्त हैं। (ते +) वह। (न +) नहीं। (पुनन्ति) पवित्र करते हैं। अर्थात् वह अपने को भी पवित्र नहीं करते फिर दूसरों को कहाँ से पवित्र करेंगे? क्योंकि–(विबुधान्) विद्वान्। (अपि) भी। (तान्) तिन अभक्तों को। [त्वम् +] तुम! [गिरा] वेदरूपवाणी के द्वारा। [पशून्-इव] पशुओं की समान अर्थात् जैसे रज्जु से वृषभ आदि पशुओं को बाँधते हैं तैसे तिन २ कर्मों के अधिकार के अनुसार। [परिवयसे] बाँधते हो। इसकारण तुम्हारे भक्तों को ही ज्ञान और मोक्ष सुलभ

१ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।
२ अत्र कर्मणि षष्ठी।
३ छन्दसि व्यवहिताश्चेति यच्छब्देन व्यवधानमदोषः।
४ तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि। तस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्।
५ देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरावित्यादिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः॥२७॥त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहंति समदंत्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः

है, दूसरों को नहीं ॥ श्रीधरजी की अनुकृति--'तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्। यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति॥' अर्थात् मनुष्य, पञ्चाग्नि के तापों से तपें, पर्वतों पर से गिरें, तीर्थों की यात्रा करते फिरें, शास्त्रों को पढ़ें, दर्शपौर्णमास आदि यागों से यजन करें और नानाप्रकार के वादों से विवाद भी करें परंतु श्रीहरि का आश्रय लिये विना मृत्यु को नहीं तरसक्ते ॥२७॥ अब'अपाणिपाद इत्यादि' श्रुतियें भगवान् ही सुन्दर सेवन करनेयोग्य हैं ऐसा वर्णन करती हैं-(प्रभो+) हे प्रभो!। (त्वम्) तुम । (अकरणः) स्वयं इन्द्रियों के सम्बन्ध से रहित । और (अखिलकारकशक्तिधरः) सब प्राणियों की इन्द्रियों की शक्तियों के प्रवर्त्तक । (स्वराट्) स्वतःसिद्धज्ञानवान् । (असि +) हो । इसकारण (अनिमिषाः) इन्द्रादिक देवता । [विश्वसृजः] ब्रह्मादिक । [अजया] अविद्यासहित । [तव] तुम्हारे । [बलिम्] पूजन के उपहार को । [उद्वहन्ति] समर्पण करते हैं । और [समदन्ति] भक्षण करते हैं । [च] भी । अर्थात् जैसे सेवक पुरुष, अपनी स्त्रियोंसहित, स्वामी की सेवा करते हैं तैसे ही इन्द्रादिक देवता और उन के भी पूजनीय ब्रह्मादिक भी, अपनी अविद्या से युक्त होतेहुए तुम्हें बलि समर्पण करते हैं अर्थात् तुम्हारी सेवा करते हैं और मनुष्यों के दियेहुए हव्यकव्यादिरूप बलि को आप भी भक्षण करते हैं। इस में दृष्टांत-[वर्षभुजः] किसी खण्ड के स्वामी राजे। [अखिलक्षितिपतेः-इव] चक्रवर्त्ती राजा को जैसे । अर्थात् जैसे थोड़े२ देशों के स्वामी राजे, अपने प्रजाओं के दियेहुए करभेट आदि को ग्रहण करके, चक्रवर्त्ती राजाको स्वयं कर भेटरूप से समर्पण करते हैं तैसे ही ब्रह्मादिक देवता भी बलि समर्पण करते हैं। यदि कोई कहे कि-क्यों तो-[भवतः] कालरूप तुम से । (चकिताः] प्राप्तहुआ है भय जिन को ऐसे। [सन्तः+) होतेहुए । (यत्र) जिस सृष्टि रचने आदि कर्मके ऊपर (ये) जो ब्रह्मादिक । (तु) तो । (अधिकृताः) नियुक्त करेहुए हैं । (ते +) वह । (तत्+) उस कर्म को । (विदधति) करते हैं । अर्थात् आप की आज्ञा का पालन करना यही उन का बलि समर्पण करना है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति-'अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिभृक् । सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम् ॥ ' अर्थात् जो देव इन्द्रिय आदिरूप उपाधियों से रहित होकर भी सकल इन्द्रियों की शक्तियों को धारण करनेवाले, स-

१ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।

२ भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ नहि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥ अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि

वज्ञ और सबके कर्त्ता हैं उन सब के सेवन करनेयोग्य परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥ इस प्रकार इन्द्रियों के प्रवर्त्तक ईश्वर का, इन्द्रियों के वशीभूत मनुष्य सेवन करते हैं; ऐसा कहा. अब ' यथाग्नेरित्यादि' दूसरी श्रुतियें, इतने ही कारण से प्राणी ईश्वर का सेवन करते हैं ऐसा नहीं है किन्तु उन से स्वयं उत्पन्नहुए हैं इसकारण उन का सेवन करते हैं, ऐसा वर्णन करने के निमित्त कहती हैं कि (विमुक्त) हे नित्यमुक्त ईश्वर ! (ततः) माया से । (परस्य) पर, अर्थात् माया के भी प्रेरक । (तव) तुम्हारी । (यदि) जब । (अजया) मायाके साथा(उदीक्षया) केवल अवलोकनमात्रसे ही । (विहरः)क्रीडा। (भवति+)होती है । (तदा+) तब।(उत्थनिमित्तयुजः) ' तुम्हारे अवलोकनमात्रसे' जिन के कर्म और कर्मयुक्त लिङ्गशरीर प्रकटहुए हैं ऐसे ।(स्थिरचरजातयः)स्थावर और जङ्गम जाति के जीव । (स्युः) उत्पन्न होते हैं । इससे तुम्हारे विषैं कोई विषमता नहीं आती है ।क्योंकि– [परमस्य] परमदयालु । [वियत इव] आकाश की समान सम । [शून्यतुलाम्] शून्य की समता को । [दधतः] स्वीकार करनेवाले । और [अपदस्य] वाणी तथा मन के अगोचर [तव×] तुम्हें । [कश्चित्] उन जीवों में से कोई । [अपरः] अपना । अथवा [परः] पराया । (च) भी । [नहि] नहीं । [भवेत्] होता । इसकारण उन जीवों को तुम्हारा समानभाव से सेवन करनाही उचित है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–' त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः । जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः॥,अर्थात-हे नृहरे ! हे पितः ! तुम्हारे अवलोकनमात्र से क्षोभ को प्राप्त हुई माया करके जागृत होनेवाले कर्मों करके उत्पन्नहुए और जन्म मरणरूप संसार को प्राप्त तथा खिन्नहोनेवाले हमारी तुम रक्षाकरो ।२९। इसप्रकार परमात्मा से अविद्योपाधिक जीव होते हैं और वह उन परमात्मा की सेवा करते हैं ऐसा कहा । अब, यदि उन की अविद्या एक है तब तो उस से बँधेहुए जीवके भी एक होनेसे एक की मुक्ति होनेपर सब की मुक्ति होने का दोष आवेगा और यदि अविद्याओं को नाना (बहुतसी) मानें और जीवात्मा एक मानेतो एक अंश में अविद्या दूर होने पर भी उसही जीवात्मा का अन्य अंश में संसार दूर.न होने के कारण किसी की मोक्ष ही नहीं होगी इस से अविद्या एक और जीवात्मा (अनेक) माना है। वह जीवात्मा यदिअत्यन्तसूक्ष्म

१ यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाःसर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्ति । इत्यादि ॥

२ न पश्यत इत्यपदस्तस्य वाङ्मनसयोरगोचरस्येत्यर्थः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियंतृ भवेत्समगनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयो-

हैं तो देहव्यापि चैतन्य नहीं बनसकेगा और देहकी समान परिमाणवाले जीवात्मा हैं ऐसा मानेंगे तो उन को सावयव होने के कारण अनित्यता प्राप्त होगी और ऐसा होनेपर परलोक के साधनों की भी व्यर्थता होयगी इसकारण वह जीव वास्तव में सर्वगत और नित्य हैं ऐसा कितने ही नैयायिक आदि मानते हैं. उन के मत का दूषण करनेवाली कितनी ही एक श्रुतियें कहती हैं–(ध्रुव) हे नित्यस्वरूप प्रभो ! [जीवाः] जीव। [यदि] जो। [अपरिमिताः] वास्तव में असंख्यात। [ध्रुवाः] नित्य। (च) और। [सर्वगताः] सर्व व्यापक। (स्युः) हों। [तर्हि] तो। [तेषाम्+] उन का। ' तुम्हारी समानता होने के कारण, [शास्यता] शिक्षा पाने के योग्यपना। [न] नहीं होसकेगा। [इति] इसकारण (भवता +) तुम्हारे द्वारा। (नियमः) उन का नियमन। [न] नहीं। (स्यात्) होगा। [इतरथा] और तैसा न होनेपर। [नियमः +] तुम से उन का नियमन (घटते +) बन सक्ता है। क्योंकि–(यन्मयम्-च) जिस बिम्बरूप ब्रह्म से अविद्या आदि उपाधि के कारण विकाररूप (जीवाख्यम् +) जीवनामक प्रतिबिम्ब। (अजनि) उत्पन्न हुआ है। (तत्) वह बिम्बरूप ब्रह्म। (अविमुच्य) 'अपने प्रतिबिम्बरूप जीवविकार का। कारणरूप से उस का त्याग न करके। (नियन्तृ) नियमन करनेवाला। (भवेत्) होयगा। यदि कहो कि–वह कौनसा है ? तो–(समम्) जो सर्वत्र अनुस्यूत कहिये पुराहुआ है। यदि कोई कहे कि–' नो, वह ' ऐसे संकुचित शब्दों से क्यों कहते हो ? यदि समझा होय तो स्पष्टरूप से उस का वर्णन करो, तो–(मतदुष्टतया) जानने में आईहुई वस्तुको दोष होने के कारण। [अनुजानताम्] हम जानते हैं ऐसा कहनेवालों को। [यत्]जो। [अमतम्] प्रायः समझने में नहीं आया है। वह यत् तत् [जो, वह] शब्दों से प्रकाशित न होनेवाला, अतर्क्य और सकल पदार्थों में व्याप्त होकर रहनेवाला वस्तु ही जीवों का नियामक होयगा ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–' अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या-युक्त्या चैवमेवावसेयः। यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे॥' अर्थात् जिन को श्रुति ने और युक्ति ने सकल लोकों का अन्तर्यामी वर्णन करा है और जो ऐसा ही निश्चय करनेयोग्य हैं तथा जो सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हैं उन श्रीमान् नृसिंह भगवान को ही मैं चित्त से आश्रय करता हूँ ॥ ३० ॥ अब, बिम्बरूपी परमात्मा से जीव होते हैं

१ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां। अवचनेनैव प्रोवाच स ह तूष्णीं बभूव यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेषु ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रजयोरुभययुजा भवंत्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ॥ त्वयि त इमे ततो विविधनाम-

इसकारण परमात्मा जीवों का नियन्ता और जीव नियम्य हैं, यदि ऐसा कहाजाय तो—जीवों को अनित्यपना प्राप्त होने से प्रतिदिन करेहुए कर्मादिकों का नाश और न करेहुओं की प्राप्ति होने का प्रसङ्ग होयगा और मोक्ष नाम से जीव के स्वरूप का नाश ही होजायगा। और सिद्धान्ती तो—स्वप्रकाश आनन्दमय जीवात्मा के अविद्या के करेहुए अनर्थों के दूर होने को ही मोक्ष कहता है। इसकारण यह विरोध हुआ, ऐसी कोई शङ्का करे तो—अन्तःकरण आदि उपाधियों के जन्म से ही जीवों के जन्म होते हैं, वास्तव में नहीं होते हैं, ऐसा कहने के निमित्त शङ्का करते हैं कि—जीवरूप से उत्पत्ति प्रकृति की होती है वा पुरुष की होती है? अथवा दोनों की होती है ? यदि कहो प्रकृति की जीवरूप से उत्पत्ति होती है तो—जीवों को जड़ता प्राप्त होयगी, यदि कहोगे कि—पुरुष की जीवरूप से उत्पत्ति होती है तो-पुरुष को विकारीपना प्राप्त होयगा ; इसकारण ही दोनों की भी जीवरूप से उत्पत्ति नहीं होती है ऐसा कहते हैं कि -(अजयोः) 'अजामेकामित्यादि' श्रुति में अजत्व कहिये जन्मरहित वर्णन करेहुए। (प्रकृतिपूरुषयोः) प्रकृति-पुरुष की अर्थात् केवल प्रकृति की वा केवल पुरुष की। (उद्भवः) जीवरूप से उत्पत्ति। (न) नहीं। (घटते) होसक्ती है। (उभययुजा) प्रकृति और पुरुष इन दोनों में एक का दूसरे के ऊपर अध्यास होने पर तिस से। (असुभृतः) प्राण आदि उपाधियों से युक्तजीव। (जलबुद्बुदवत्) जल के बुलबुलों की समान अर्थात् जैसे केवल वायु से और केवल जल से बुलबुले नहीं होते हैं किन्तु वह वायु और जल दोनों एकत्र मिलें तो तब ही उत्पन्न होते है तिसीप्रकार(भवन्ति) उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जैसे बुलबुले उत्पन्न होने में वायु निमित्त कारण है और जल उपादान कारण है तैसे ही जीवों की उत्पत्ति होने में प्रकृति निमित्त कारण है और पुरुष उपादान कारण है। तात्पर्य यह है कि—प्रकृति और पुरुष की एकता से जीवों की उत्पत्ति होती है और 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों के बल से और उत्पत्ति के श्रवण करके जीव का जन्म औपाधिक है, वास्तविक नहीं है ऐसा सिद्ध होता है। अब जीवों के लय का प्रकार कहते हैं कि—(ततः) वास्तव में जन्म नहीं है इसकारण से। (ते) वह। (इमे) यह जीव। (विविधनामगुणैः) नाम गुण आदि अपने नानाप्रकार के कार्योपाधियों के साथ। (परमे) उपाधिशून्य। (त्वयि) तुम्हारे विषैं। 'सुषुप्ति और प्रलय के समय'। (मधुनि) शहद में। (अशेषरसा इव) सकल

१ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम्। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥ नृषु तव मायया भ्रतममीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥ क-

फूलों के रसों की समान । अर्थात् जैसे शहद में सब ही फूलों के रस, विशेष करके भिन्न २ पहिचानने में नहीं आते हैं तथापि सामान्यरूप से समझ में आजाते हैं तैसे ही सुषुप्ति और प्रलयकाल में तुम्हारे विषैं लय को प्राप्तहुए जीव, यद्यपि विशेषरूप से समझने में नहीं आते हैं तथापि उन का कारण लिङ्गशरीर रहने के कारण सामान्यरूप से समझेजाते हैं और मुक्ति के समय तो-(अर्णवे) समुद्र में । (सरितःइव) जैसे नदियें । 'अपने नामरूपों को त्यागकर एकीभाव से लय को प्राप्त होजाती हैं तैसे ही सकल जीव निरुपाधिक तुम्हारे विषैं अपने जीवभाव को छोडकर(लिल्युः)एकीभावसे लय को प्राप्तहुए हैं॥श्रीधरजी की अनुकृति-'यस्मिन्नुद्यद्विलयमपि यद्भाति विश्वं लयादौ जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्यावबोधोअत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये मध्येचित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम्॥'अर्थात्-जीवोंसहित यह विश्व जिन के विषैं कर्मानुसारप्रकट होकर फिर प्रलय आदि के समय लीन होताहुआ भासताहै और गुरुकी कृपा होनेसे केवल आत्मज्ञान प्राप्तहोनेपर,जैसे समुद्रमें नदियें नामरूपको छोड़तीहुई लीन होतीहैं तैसे ही एकसाथ जिनके विषैं अत्यन्त अन्त को अर्थात् एकीभावरूप मोक्षको प्राप्त होता है तिन त्रिलोकी के गुरु नृसिंह भगवान् को मैं चित्तके मध्य में ध्यान करता हूँ॥ ३१ ॥ इसप्रकार परमेश्वर से जीव उत्पन्न होते हैं और परमेश्वर के वशीभूत होकर कर्म करते हैं तथा फिर तिस परमेश्वर के विषैं ही लय को प्राप्त होजाते हैं ऐसा संसारचक्र में परिभ्रमण कहा । अब उस संसार के दूर होने के निमित्त 'परीत्य भूतानीत्यादि'श्रुतियें भगवद्भाव का वर्णन करती हैं-(अमीषु)इन। (नृषु) संसारी जीवों में। (तव)तुम्हारी । (मायया) मायाकरके । (अनुप्रभवम्) वारंवार जन्ममरणरूप । (भ्रमम्) भ्रमण को (अवगत्य) जानकर । (सुधियः) विवेकी पुरुष । (अभवे) संसार को दूर करनेवाले । (त्वयि) तुम्हारे विषैं । श्रवणकीर्त्तन आदि के द्वारा । (भृशम्) अत्यन्त । (भावम्) भक्ति को । (दधति) करते हैं। यदि कहो कि-उस भक्ति के करने से क्या होता है ? तो-

१ यथा सौम्य मधु मधुकृतां निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणां रसान्समवहारमेकतां संगमयन्ति ते यथा तत्र न विवेकं लभन्ते अमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥

२ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

३ परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाःप्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयं ॥ ॥ ३२ ॥ त्रिजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य इह यतंति यंतुमतिलोलमुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज संत्यक्त-

(अनुवर्त्तताम्) तुम्हें शरण जाकर तुम्हारी भक्ति करनेवाले पुरुषों को । (भवभयम्) संसार का भय (कथम्) कैसे । (भवेत्+) होगा? अर्थात् कभी नहीं होगा । (यत) क्योंकि–(तव) तुम्हारा । (भ्रुकुटिः) भ्रुकुटि को चलानारूप । (त्रिणेमिः) शीत-उष्ण और वर्षा इन तीन भागवाला सम्वत्सरनामक काल । (अभवच्छरणेषु) जिन के तुम रक्षक नहीं हो ऐसे पुरुषों में ही । (भयम्) जन्ममरण आदिरूप भय को । (सृजति) उत्पन्नकरता है, इसकारण ही विचारवान् पुरुष तुम्हारी भक्ति करते हैं ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'संसारचक्रकर्कचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम् । कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ॥ ' अर्थात्–हे नृसिंहभगवन् ! संसार चक्र के दाँतों से विदीर्णहुए और बढ़ेहुए नानाप्रकार के सांसारिक तापों से तपेहुए एवं बडी कठिनता से किसी प्रकार इस संसार में मानवशरीर को प्राप्त होकर तुम्हारी शरण मे आयेहुए मेरा तुम उद्धार करो ॥ ३२ ॥ वह भगवद्भक्ति, मन को वश में करनेपर होती है और वह मनको वश में करना गुरु के आश्रय से होता है, इसकारण 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवेत्यादि' श्रुतियें,गुरु का आश्रय करने का वर्णन करती हैं कि–(अज) हे जन्मरहित परमेश्वर ! (विजितहृषीकवायुभिः) जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को और प्राणों को जीता है ऐसे योगियों करके । [अदान्तम्) वश में करने को अशक्य ऐसे [अतिलोलम्] अतिचञ्चल । [मनस्तुरगम्] अपने मनरूपी घोड़े को । [यन्तुम्] वश में करने के निमित्त । [ये] जो । [यतन्ति] यत्न करते हैं । [ते] वह । [गुरोः] गुरु के । [चरणम्] चरण को । [समवहाय] त्यागकर । अर्थात् गुरु के चरण का आश्रय न करके [उपायखिदः] दूसरे उपायों में क्लेश भोगतेहुए । [व्यसनशतान्विताः] सैकड़ों विघ्नों से तिरस्कार को प्राप्तहुए । (अकृतकर्णधराः) मल्लाहों का आश्रय न करनेवाले पुरुष । (जलधौ-इव) समुद्र में जैसे । ' दुःख पाते हैं । वैसे ही ! (इह) इस जन्ममरणरूप संसार में । ' दुःख को प्राप्त । (सन्ति) हैं ॥ अर्थात् जैसे विनामल्लाहों के व्यापारी नदी में गोंते खाते हैं तैसे ही विनागुरु के सांसारिक पुरुष संसारसमुद्र में गोते खाते हैं और मन निश्चल नहीं होता है परन्तु गुरु के बताये भगवद्भजनरूप सुख का अनुभव होनेपर तो मन स्वयं ही निश्चल होजाता है । श्रीधरजी की अनुकृति–' यदा परानन्दगुरो भव-

१ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् । आचार्यवान् पुरुषो वेद । नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुविज्ञानाय प्रेष्ठेत्याद्याः श्रुतयः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तकर्णधरा जलधौ ॥ ३३ ॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्म-

त्पदं पदं मनो मे भगवँल्लभेत। तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः॥' अर्थात्–हे भगवन्! हे परमानन्दस्वरूप गुरो! जब आप की कृपा से मेरा मन आप के स्वरूप में स्थान पावे तो सकल साधनों के श्रम से रहित होकर परम सुख को प्राप्त करूँ॥३३॥ अब 'परीक्ष्य लोकान्[1] इत्यादि' दूसरी कितनी ही श्रुतियें वैराग्य का वर्णन करती हैं कि–(श्रयतः) तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष को। (सर्वरसे) सकल सुखों के स्थान ऐसे परमानन्दस्वरूप। (त्वयि) तुम। (आत्मनि) आत्मा के। (सति) प्राप्त होनेपर (स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैः) स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, गृह, भूमि, प्राण और रथ, आदि अतितुच्छ सुख के साधनों करके। (किम्) कौनसा लाभ है? अर्थात् कोई लाभ नहीं है। (इति) ऐसे। (सत्) परमार्थ सुख को। (अजानताम्) न जाननेवाले। और (मिथुनतः) स्त्री के साथ मिलकर (रतये) रतिसुख के निमित्त। (चरताम्) घर में रहनेवाले। (नृणाम्) पुरुषों को (स्वविहते) स्वयं नाशवान्। और (स्वनिरस्तभगे) स्वयं ही सार रहित ऐसे। [इह] इस संसार में [कः-नु] भला स्वजन आदि कौनसा अर्थ। (सुखयति) सुख देनेवाला है? अर्थात् कोई सुख देनेवाला नहीं हैं ॥ श्रीधरजी की अनुकृति–'भजतो हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्घनः। आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः॥' अर्थात्–हे भगवन्! निःसन्देह, भजन करनेवाले को साक्षात् परमानन्द चैतन्यघन तुम आत्मा प्राप्त होजाते हो तो फिर इन तुच्छ स्त्री पुत्रादिकों से उस को क्या कार्य है? अर्थात् कोई कार्य नहीं है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार गुरुके उपदेश से आत्मतत्त्व को जानकर सार असार का विवेक होने से विरक्तहुए पुरुष को, सत्सङ्गति से तत्त्वसाक्षात्कार होता है, इस विषय में 'श्रोतव्यो मन्तव्य इत्यादि'[2] श्रुतियें सदाचार का वर्णन करती हैं कि–(ये+) जो। (विमदाः) निरहङ्कारी। (भवत्पदाम्बुजहृदः) तुम्हारे चरणकमल का हृदय में ध्यान करनेवाले। और (अघभिदंघ्रिजलाः) अपने चरणोदक से लोकों के पापों का नाश करनेवाले। ऋषि हैं। (ते) वह। (उत) भी। सत्समागम होने के निमित्त (भुवि) भूतल पर। (पुरुपुण्यतीर्थसदनानि) बहुत पुण्यकारी तीर्थों का, भगवान् के मन्दिरों का और भगवान् के क्षेत्रों का (उपासते +) सेवन करते हैं। क्योंकि–

१ परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन। यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थिताः अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

२ श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। इत्यादयः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥
सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथो-

तहाँ ही प्रायः सत्समागम होता है (ते+) वह ऋषि। (पुनः) फिर। (पुरुषसारहरावसथान्) पुरुषों के विवेक, स्थैर्य, धैर्य, क्षमा, दया, शान्ति आदिकों को नाश करनेवाले घरों को। (न) नहीं। (उपासते) सेवन करते हैं। (प्रभो+) हे प्रभो! (ये) जो ऋषि। (नित्यसुखे) नित्यसुखरूपी। (त्वयि) तुम। (आत्मनि) आत्मा के विषैं। (सकृत्) एकबार भी। (मनः) मन को। (दधति) धारण करते हैं। वह भी विवेकादिकों का नाश करनेवाले गृहों का सेवन नहीं करते हैं, फिर पहिले कहेहुए परमसमर्थ ऋषि, घरों का सेवन नहीं करते इस का तो कहना ही क्या? श्रीधरजी की अनुकृति—'मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्। नित्यं तन्मुखपङ्कजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृतस्रोतःसम्प्लवसम्प्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्॥' अर्थात्—हे प्रभो नृहरे! उन स्त्रीपुत्रादिकों के शरीरों के सङ्ग को त्यागता और रात्रिदिन तुम्हारा ही भलीप्रकार चिन्तवन करताहुआ तथा जहाँ जहाँ निरभिमानी सन्तजन हैं उन आश्रमों में वसताहुआ, नित्य उन के मुखरूप कमल से निकलेहुए तुम्हारी पवित्र कथारूप अमृत के स्रोत के प्रवाह में यथोचित स्नान करके मैं इस अनर्थ के मूल देह का न धारण करनेवाला अर्थात् मुक्त कब होऊँगा? ॥ ३५ ॥ अब कितनी ही श्रुतियें प्रश्नोत्तरों के द्वारा मननपूर्वक तत्त्वनिश्चय करने की रीति कहती हैं—तिस में पहिले प्रश्न—(इदम्) 'यह मैं और यहमेरा इसप्रकार प्रतीति में आनेवाला' यह सब द्वैत। (सत्) सत्यस्वरूप है। क्योंकि (सतः) ब्रह्मरूप सत्यवस्तु से। (उत्थितम्) उत्पन्नहुआ है। अर्थात् जो वस्तु जिस से उत्पन्न होताहै वह तद्रूप कहिये उस के रूपवाला ही होता है, ऐसा सब के देखने में आता है, जैसे सुवर्ण से उत्पन्नहुए कुण्डल आदि वस्तु सुवर्ण ही होते हैं तैसेही सत्यरूप ब्रह्म से उत्पन्न हुआ यहसब द्वैत सत्यरूप ही है। (इति चेत्) ऐसा यदि मीमांसकों का प्रश्न होय तो, उसका उत्तर यह है कि—(ननु तर्कहतम्) यह तुम्हारा अनुमान विचार करने पर बाधित होता है। यदि कहो कि—कैसे तो—तुम द्वैतका सत्य वस्तु से अभेद करने की इच्छा करते हो, परन्तु उस को सिद्ध करने में तुमने जो कारण कहा, उसही कारण से वह सिद्ध न होकर उलटा द्वैत का भेद सिद्ध होता है, क्योंकि—सत्य वस्तु से उत्पन्न हुआ, इतना कहने से ही उस का सत्यवस्तु से निराला होना समझ में आता है, और जो सत्य से निराला है वह असत्य सिद्ध होता है, इस से तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। इसपर फिर प्रश्न करो कि—हम अभेद करने की इच्छा नहीं करते हैं किन्तु भेद का निषेध करना चाहते हैं, वह इसप्रकार कि—द्वैत, सत्य से निराला नहीं है, क्योंकि—वह सत्य से उत्पन्न हुआ है, जो जिस से उत्पन्न होता है वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भययुक् ॥ व्यवहृतये विकल्प इपितोऽपपरंपरया भ्रमयति भारती त उरुवृत्ति-

उस से निराला नहीं होता है, जैसे सुवर्ण से होनेवाले कुण्डल सुवर्ण से निराले नहीं होते हैं, इसप्रकार भेद का निषेध करने से अभेदही सिद्ध होता है ना ? । इस कथन का उत्तर यह है कि-(क्वच) कहीं । (व्यभिचरति) व्यभिचार को प्राप्त होता है अर्थात् जो जिस से उत्पन्न होता है वह उस से भिन्न नहीं होता है यह तुम्हारा कहना सर्वत्र ठीक नहीं बैठता देखो=पिता से उत्पन्न हुआ पुत्र और मुद्गर से होनेवाला घटप्रध्वंस (घट का टूटना) यह उन से निराले नहीं होतेहैं क्या? किन्तु होतेही हैं। इसपर फिर प्रश्न करो कि-जो वस्तु जिस उपादान से उत्पन्न होती है वहवस्तु उस उपादान से कभीभी निराली नहीं होती। देखो-कुण्डल सुवर्णरूप उपादान से उत्पन्न हुए हैं वह उस सुवर्ण से कभीभी निराले नहीं रहते पिता और मुद्गर यह पुत्र और घटप्रध्वंस के उपाद न कारण नहीं हैं किन्तु निमित्तकारण हैं इसकारण हमारे कहने में कुछ बाध नहीं आता है। इस कथन का दूषणरूप उत्तर यह है कि-(क्वच) किसी स्थानपर (मृषा) कार्य असत् ही होता है अर्थात् जो वस्तु जिस उपादान से होती है वह वस्तु तिस उपादानसे भिन्न नहीं होती है यह तुम्हारा अनुमान ठहरने वाला नहीहै, क्योंकि-रज्जुरूप उपादान से होनेवाला सर्प रज्जु से भिन्न होता है और रज्जु के सत्य होनेपर भी वह मिथ्या होता है । यदि उस को सत्य कहो तो जैसे कुण्डलों का बाध नहीं होता है तैसे सर्प का भी बाध नहीं होना चाहिये, वह होता है या नहीं ? अर्थात् होताही है । इसपर फिर यह प्रश्न है कि-रज्जु में भासनेवाले सर्प की केवल रज्जु ही उपादान कारण नहीं है किन्तु उस के साथ में दूसरा अज्ञान भी कारण है, इसकारण अज्ञानसहित रज्जु से होनेवाले सर्प का मिथ्यात्व होता है; परन्तु केवल सत्य ब्रह्म उपादान से होनेवाले जगत् में मिथ्यापना नहीं आवेगा; इसकारण यह जगत्रूप द्वैत मिथ्या नहीं है किन्तु सत्य है । इसकथन का दूषणरूप उत्तर कहते हैं कि-(उभययुक्) सत्यरूप ब्रह्म और उस के साथ में की अविद्या इन दोनों उपादानों से होनेवाला यह द्वैतरूप प्रपञ्च भी । (तथा) सत्य । (न) नहीं है । किन्तु ब्रह्म और अविद्या दोनों से उत्पन्न होने के कारण रज्जु में भासनेवाले सर्प की समान मिथ्या ही ठहरता है, सत्य नहीं सिद्ध होता । इस पर फिर प्रश्न होता है कि-इस कहेहुए कारण से द्वैतरूप प्रपञ्च का सत्यत्व नहीं बनता परन्तु हम दूसरे कारण से प्रपञ्च का सत्यत्व सिद्ध करते हैं कि-यह द्वैत सत्य है, क्योंकि-इस से ' घडे से जल लाना आदि ' कार्य सिद्ध होते हैं,जो सत्य नहीं हो उस से कार्य सिद्ध नहीं होता है;जैसे सीपी में भासनेवाला रजत (चाँदी) सत्य नहीं होता है, क्योंकि-उस से कार्य सिद्ध नहीं होता है; ऐसा कहने का उत्तर यह है कि-(व्यवहृतये) व्यवहार के निमित्त । (विकल्पः) भ्रम । (इषितः) इच्छित है अर्थात् खोटे रुपये से भी कभी कभी व्यवहार चलताहुआ देखने में आता है, सत्य ही पदार्थ सदा व्यवहारमें चाहिये ऐसा नहीं है;इसकारण प्रपञ्च का व्यवहार चलाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के निमित्त द्वैतरूपीभ्रम को ग्रहण करना चाहिये यह हमें इष्ट है । इसपर फिर प्रश्न होता है कि–जो वस्तु एक स्थानपर सत्य होती है उस का दूसरे स्थानपर जो आरोप (धोखा) होना उस को भ्रम कहते हैं, जैसे सर्प को एक स्थानपर सत्य देखा होता है तो उस का रज्जुपर आरोप होता है अतएव वह भ्रम होता है; तैसे ही ब्रह्म में द्वैत का भ्रम होने के विषय में दूसरे स्थानपर द्वैत सत्य होना चाहिये । आकाशपुष्प अत्यन्त ही असत्य है इसकारण उस का दूसरे स्थान में आरोप नहीं होता है तैसे द्वैत अत्यन्त ही असत् होता तो उस का ब्रह्म में आरोप नहीं होता, और वह तो हुआ है, इस से द्वैत सत्य सिद्ध होकर तुम्हारा अद्वैत ही सत्य है ऐसा सिद्ध नहीं होता है । इस कथन का खण्डनरूप उत्तर यह है कि–(अन्धपरम्परया) अन्धपरम्परा करके, जो भ्रम (आरोप) वह व्यवहार चलाने के निमित्त हमें इष्टहै,अर्थात् इस वड के वृक्षपर मैंने पिशाच देखा है,ऐसा एकअन्धे ने दूसरे अन्धे से कहा,उसने तीसरे से,तिस ने चौथे से इसप्रकार परम्परासे पिशाचके ज्ञान की समान जो निर्विवाद परिवाटी चलती होतीहै उस परिपाटी को अन्धपरम्परान्याय कहते हैं। कोईसा भी भ्रमहो वह पूर्वसंस्कारसे उत्पन्नहुआ होता है। उस भ्रममें,भपनेमें संस्कार है ऐसा सिद्ध करने के निमित्त,भ्रम होने की वस्तु(सर्पादिक) पहिले थी, केवल इतनी प्रसिद्धि की ही अपेक्षा होती है,वस्तु की सत्यता की अपेक्षा नहीं होती है । वस्तु सत्य नहीं हो तो भी उस की एकवार प्रसिद्धि होनेपर वह भ्रम उत्तरोत्तर चलता ही जाता है । इन्द्रियों का अगोचर भी ब्रह्म, स्वप्रकाशपने से स्फुरित होने के कारण तहाँ 'जैसे इन्द्रियों के अगोचर और साक्षिभास्य आकाश में कालेपने का और नानाप्रकार के आकार का भान होता है तैसे ही' द्वैतरूप आरोप का भासमान होना योग्य ही है । अर्थात् ब्रह्म के विषैं अनादिकाल से असत् द्वैत की जो प्रतीति चली आरही है उस में प्रथम प्रथम भासेहुए द्वैत पर उत्तरोत्तर द्वैत के भासने का सम्भव है । द्वैत की जो प्रतीति होती है वह वास्तव में सत्य नहीं है किन्तु उस के सत्यपने का कारण, ब्रह्म की सत्तामात्र ही सत्य है; तिस से अद्वैत ही सत्य है ऐसा सिद्ध होता है । प्रपञ्चव्यवहार जो चलता है सो अन्धपरम्परा से मिथ्या ही चलता है इसकारण उस की सत्यता में जो अर्थक्रियाकारीपने का हेतु तुम नें कहा सो निष्फल है। इस पर यह प्रश्न होता है कि–'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादि श्रुतियों ने, 'चातुर्मास्य यज्ञ करनेवाले को अक्षय फल प्राप्त होता है'. इसप्रकार कर्मफल को नित्य कहा है; सो मिथ्या कैसे होयगा, इसकारण वेद का वर्णन कराहुआ द्वैत सत्य है । इस कथन का खण्डनरूप उत्तर यह है कि–(भगवन् +) हे भगवन्! (ते) तुम्हारी । (भारती) वेदरूपवाणी ।(उरुवृत्तिभिः) गौणी और लक्षणा आदि वृत्तियों के द्वारा । (उक्थजड़ान्) कर्म की श्रद्धा के भार का दबाव पडने के कारण मन्दबुद्धिहुए पुरुषों को । (भ्रमयति) मोह में डालती है । अर्थात् वेद कर्मफल को नित्य नहीं मानता है किन्तु लक्षणावृत्ति के द्वारा कर्मफल की प्रशंसामात्र करता है; यदि ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥ न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमित-मंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वित-

नहीं कहाजाय तो 'तद्यथेह कर्मचित इत्यादि' श्रुतियों से विरोध आवेगा। इसकारण वेद सकाम पुरुषों से, अन्तःकारण की शुद्धि के अर्थ कर्म कराने के निमित्त, कर्मों के फल की स्तुति करके, उन कर्मों की प्रीति उत्पन्न करता है॥ श्रीधरजीकी अनुकृति -'उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सत्त्वेव सर्पः स्रजः कुर्वत्कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवं परः। अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम्॥' अर्थात्—हे हरे! यह भुवन सत्रूप तुम से उत्पन्नहुआ है परन्तु सत्रूप रज्जु से उत्पन्नहुए सर्प की समान, सत् नहीं हैं, और इस संसार में अर्थक्रियाकारी होकर भी खोटे सुवर्ण की समान भ्रमरूप है, और कर्मफल की नित्यता को कहनेवाला वेद भी वास्तवरूप से कर्मफल को सत्य नहीं कहता है किन्तु उपाधिग्रस्त जीव के अन्तःकरण की कर्मद्वारा शुद्धि होने के निमित्त कर्मफल की प्रशंसामात्र करता है। तुम्हारे तिस सत्स्वरूप परमानन्द परमपद को ही मैं आनन्द के साथ प्रणाम करता हूँ। हे लक्ष्मी करके स्तुति करेहुए भगवन्! तुम्हारे चरणों में नम्रहुए मुझे तुम न त्यागो॥३६॥ इसप्रकार प्रपञ्च की सत्यता के विषय में कोई साधक नहीं है ऐसा कहा, अब उस की असत्यता के विषय में 'यतो वा इमानि इत्यादि, सृष्टिप्रलय विषयक श्रुतियें प्रमाण हैं और अनुमान भी होता है, ऐसा कहते हैं कि—(यत्) क्योंकि—(इदम्) यह जगत्। (अग्रे) सृष्टि से पहिले। (न) नहीं। (आस) था। और। (निधनात्) प्रलय से। (अनु) पीछे। (न) नहीं। (भविष्यत्) होगा। (अतः) इस से। (अन्तरा) सृष्टि और प्रलय की मध्यदशा में (एकरसे) केवल एकरस (त्वयि) तुम्हारे स्वरूप में। (मृषा) मिथ्यारूप। (विभाति) भासता है, (इति) ऐसा। (मितम्) निश्चित है। (अतः) इसकारण। (द्रविणजातिविकल्पपथैः उपमीयते) मृत्तिका, सुवर्ण, लोहा आदि पदार्थों के घट, कुण्डल और कुदाल आदि भेदों के प्रकारों से समानता करके इस का निरूपण करते हैं अर्थात् जैसे घट, कुण्डल और कुदाल आदि कार्यरूप पदार्थों के अनेकों नाम उच्चारणमात्र करने में आते हैं परन्तु सत्य मृत्तिका सुवर्ण आदि ही हैं, तैसे ही यह आकाश आदि कार्य नाममात्र हैं और सत्य ब्रह्म ही है। इसप्रकार इस प्रपञ्च की सत्यता के विषय में प्रमाण न होकर मिथ्यापने में बहुत से प्रमाण होने के कारण-(विततमनोविलासम्) व्यर्थ और मनोविलासमात्र, ऐसे इस प्रपञ्च को जोकोई पुरुष, (ऋतम्) सत्य है। (इति) ऐसा। (अवयन्ति) जानते हैं। वह (अबुधाः) अज्ञानी हैं। इस विषय में ऐसा अनुमान है कि—यह द्वैत सत्य नहीं है क्योंकि—यह आदि और अन्त से रहित है, विकारी है और दृश्य कहिये दीखने में आ-

१ तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते। एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।

२ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥ ३७ ॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन् भजति सरूपतां तदनुमृत्युमुपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः॥३८॥यदि न समुद्धरंति

नेवाला है, अतः जो आदि और अन्त में नहीं रहता है, विकारी और अदृश्य होता है वह सत्य नहीं होता, जैसे सीपी में प्रतीति होनेवाला रजत आदि में और अन्त में नहीं होता है, विकारी और दृश्य होता है इसकारण सत्य नहीं होता है तैसे ही जो वस्तु आदि और अन्त में होती है, विकारी और दृश्य नहीं होती है वह सत्य होती है । जैसे आत्मा द्वैत के आदि और अन्त में होता है विकारी और दृश्य नहीं है इसकारण सत्य है ॥ श्रीधरजी की अनुकृति-' मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः । महदहङ्कृतिखप्रमुखं तथा नरहरे न परं परमार्थतः ॥ ' अर्थात-हे नरहरे ! जैसे परिणाम को प्राप्तहुए मुकुट, कुण्डल, कङ्कण और किङ्किणी आदि परमार्थरूप से सुवर्ण ही हैं तैसे ही यह महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश आदि सब वास्तव में ब्रह्म ही हैं ॥ ३७ ॥ अब यदि प्रपञ्च कुछ है ही नहीं,ऐसा कहाजायगा तो तिस मिथ्याभूत प्रपञ्च से चैतन्य के सम्बन्ध का लेश भी नहीं है ऐसा सिद्ध होयगा और ऐसा हुआ तो फिर जीव ने क्या अपराध करा है कि-जिस के द्वारा वह संसार पाता है अथवा ईश्वर का ऐसा कौनसा बडा मारी पुण्य है कि-जिस करके वह नित्यमुक्त है और उस समय कर्मकाण्ड का भी विषय क्या है ? ऐसी शङ्का आने पर 'द्वा सुपर्णा इत्यादि' श्रुति जीव ईश्वर की विशेषता का वर्णन करती हैं कि-(प्रभो +) हे प्रभो ! (सः) वह जीव । (यत्) जब । (अजया) तुम्हारी माया से, मोहित होकर । (अजाम्) अपनी अविद्या को । (अनुशयीत) आलिङ्गन करता है । तब । (गुणान्) देह इंद्रियादि जो गुणों के कार्य हैं तिन को । (जुषन्) सेवन करताहुआ अर्थात्-यह मेरा स्वरूप हैं ऐसा मानताहुआ (तदनु-सरूपताम्) और तिस के अनन्तर तिन देह इन्द्रियादिकों के धर्मों को। (जुषन्+) सेवन करताहुआ । (अपेतभगः) अपने आनन्द आदि गुणों के आवरण को प्राप्तहुआ (मृत्युम्) जन्ममरण आदिरूप संसार को । (भजति) प्राप्त होता है । उस के निमित्त ही कर्मकाण्ड की अपेक्षा है । (आत्तभगः) प्राप्त हैं नित्य ऐश्वर्य जिन को ऐसे । (त्वम्-उत) तुम तो । (अहिः) सर्प । (त्वचम्-इव) अपने ऊपर की त्वचा कहिये कैंचली को जैसे, यह उत्तम है और मेरी है ऐसा अभिमान नहीं करता है, तैसे हीं तिस माया को 'यह उत्तम है इस बुद्धि से, तुम स्वीकार नहीं करते हो किन्तु । (ताम्) उस को।(जहासि)त्यागतेहो। और (परिमेयभगः) अपरिमित ऐश्वर्यसे युक्त होतेहुए। (अष्टगुणिते) अणिमादि आठ ऐश्वर्यों से युक्त। (महसि) सर्वोत्तम ऐश्वर्य के विषैं । (महीयसे)

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीतीत्यादिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः॥ ३९॥ त्वदवगमी

पूजित होते हो इसकारण ही नित्यमुक्त हो॥ श्रीधरजी की अनुकृति—'नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावादिभिर्भावात्सत्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्। मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय॥' अर्थात्—हे नृहरे! तुम्हारे कटाक्षरूप आँगन में जाकर काल स्वभाव आदि के साथ नाचनेवाली तुम्हारी माया, सत्व-रजः-और तमोमय भावों से बहुतों को उखाडकर मेरे शिरपर अतिभारी चरण को रख उसे दबाकर कुचलरहीहै इसकारण अति आतुरहुआ मैं तुम्हारी ही शरण आया हूँ, तुम अपनी उस माया को मेरे शिरपर से हटा दो॥३८॥ इसप्रकार कहेहुए सकल साधनों से जो भगवान् का सेवन करते हैं वह मृत्यु को तरजाते हैं और अन्य पुरुष संसार को प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा। अब, जो बाहरी सङ्गति को त्यागकर भगवान् के मार्ग में को प्रवृत्त होनेपर भी फिर वमन (उलटी) का भक्षण करने की समान विषयों काही सेवन करते हैं उन को भगवान् की प्राप्ति नहीं होती है और इस लोक में सुख भी नहीं मिलता है किन्तु उन को निन्दित योनि प्राप्त होती हैं इसकारण उन का शोक करतीहुई, 'कामान् य इत्यादि' श्रुतियें कहती हैं कि—(भगवन्) हे भगवन्!।(ये +) जो। सकल संगों को त्यागकर। (यतयः) संन्यासी होकर। (हृदि) अपने हृदय में की।(कामजटाः) का की मूल ऐसी वासनाओं को।(यदि) जो।(न) नहीं। (समुद्धरन्ति) उखाडते हैं। तो उन।(असताम्) दुष्ट संन्यासियों को।(हृदि) हृदय में।(गतः) गयेहुए अर्थात् विद्यमान भी।(त्वम् +) तुम।(अस्मृतकण्ठमणिः-इव) जैसे कण्ठ में विद्यमान भी धारण कराहुआ मणि विस्मरण होजानेपर नहीं मिलता है तैसे उन दुष्ट संन्यासियों।(दुरधिगमः) बडी कठिनता से मिलते हो। और इतना ही नहीं किन्तु, उन (असुतृपयोगिनाम्) इन्द्रियों की तृप्ति करने मे तत्परहुए दम्भी योगियों को।(उभयतः) इस लोक में और परलोक में दोनों स्थानपर।(अपि)ही।(असुखम्) दुःख प्राप्त होता है। यदि कहोकि—कैसे? तो-(अनपगतान्तकात्) न चूकेहुए मृत्युरूप तुम से। इस लोक में और [अनधिरूढपदात्] नहीं प्राप्त करा है स्वरूप जिन का ऐसे [भवतः] तुम से। परलोक में भय प्राप्त होता है अर्थात् उन को, लोकों को प्रसन्न रखना, धन प्राप्त करने आदि के क्लेश न दूर होने का तथा भोगों के वैभव लोक में प्रकट होने के भय का इस लोक में दुःख और तुम्हारे स्वरूप की जिस को प्राप्ति नहीं हुई ऐसे अविद्यायुक्त पुरुष को, कहेहुए वर्णाश्रमधर्मों का उल्लंघन होने के कारण तुम से प्राप्त होनेवाले दण्डरूप नरक प्राप्ति का परलोक में दुःख प्राप्त होता है॥श्रीधरजी की अनुकृति—'दम्भन्यासमिषेण

१ कामान् यः कामयते मन्यमानः स कर्मभिर्जायते तत्र तत्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः।अनुयुगमन्वह सगुण गीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः॥४०॥द्युपतय एव ते न

वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं संमुह्यंतमहर्निशं विराचतोद्योगक्रमैराकुलम् । आज्ञालंघिन मज्ज्ञमज्ज्ञजनतासम्माननासन्मदं दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम्॥' अर्थात्-हे दीनानाथ! हे दयानिधान! हे परमानन्दस्वरूप ! हे प्रभो! पाखण्ड धारण करने के मिष से संसार को ठगनेवाले,एक भोग की ही चिन्ता से आतुर, रात्रिदिन मोह को प्राप्त होनेवाले, करेहुए नानाप्रकार के उद्योगों के कष्टों से आकुलहुए, आप की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले,अनजान और अज्ञानियों के सम्मान का वृथा घमण्ड रखनेवाले मेरी रक्षा करो॥३९॥अब,संन्यासीको कुछभी कर्त्तव्य नहींहै,वह सुखके उपभोग करके केवल अपने प्रारब्ध कर्मों का क्षय करता है । फिर उस को इसलोक में और परलोक में सुख नहीं है, इसप्रकार उसकी निन्दा क्यों करते हो और ब्रह्मज्ञानी की तो बड़ी महिमा कही है, ऐसा कोई कहे तो उस के विषय में कहते हैं कि–(सगुण) हे षड्गुणऐश्वर्यसम्पन्न ईश्वर ! (त्वदवगमी) जिसको तुम्हारा ज्ञान होगया है वह पुरुष, (भवदुत्थशुभाशुभयोः) कर्मफल देनेवाले तुम ईश्वरसे प्रकटहुए अपने पुरातन पुण्यपापों के फलरूप (गुणविगुणान्वयान्) सुखदुःखों के सम्बन्धों को । (न) नहीं । (वेत्ति) जानता है । (तर्हि) उस समय । (देहभृताम्) देहाभिमानी लोकों की । (गिरः-च) प्रवृत्ति निवृत्ति करनेवाली विधिनिषेधरूप वाणियों को भी । (न +) नहीं। (वेत्ति+) जानता है । अर्थात् देहाभिमान छूट जाने के कारण उस को करनेयोग्य कर्मों का अथवा न करनेयोग्य कर्मों का सम्बन्ध नहीं रहता है और यह योग्यही है । (यतः) क्यों कि–(मनुजैः) मनुष्योंकरके ।(अनुयुगम्) प्रत्येकयुगमें।(गीतपरम्परया)प्रकटहोनेवाले सम्प्रदायोंकेउपदेशकेअनुसार(अन्वहम्)प्रतिदिन (श्रवणभृतः) श्रवण के द्वारा चित्त में धारण करेहुए । (त्वम्) तुम । (अपवर्गगतिः) उन को मोक्षगतिरूप । (भवसि+) होते हो । इस का तात्पर्य यह है कि–जिन पुरुषों को तत्त्वज्ञान होगया है उन को कर्म के अधिकार की शङ्का ही नहीं है और जो निरन्तर तुम्हारे श्रवण आदि में तत्पर हैं उन को भी तुम्हारे स्वरूप की प्राप्ति होती है इसकारण विधिनिषेध की बाधा नहीं है, हाँ दम्भी योगसाधन दिखाकर विषयलम्पट होनेवाले अन्य पुरुषों को इसलोक में और परलोक में सुख नहीं मिलता है ॥श्रीधरजी की अनुकृति-'अवगमं तवमे दिश माधव स्फुरति यन्न सुखासुखसंगमः।श्रवणवर्णनभावनयापि वा नहि भवामि यथा विधिकिङ्करः ॥ ' अर्थात् हे माधव ! तुम मुझे अपना ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान दो जिस से मुझे सुख दुःख का समागम न हो । अथवा मुझे श्रवण कीर्त्तन की भक्ति दो, जिस से कि–मैं कर्मजाल का किङ्कर न बनूँ ॥ ४० ॥ अब तुम्हारे स्वरूप को जाननेवाला पुरुष, सुख दुःख और विधि निषेध को नहीं जानता है ऐसा कहा, तहाँ दुर्ज्ञेय बताकर कहाहुआ जो तुम्हारा स्वरूप सो कैसे जाना जायगा ? ऐसी शङ्का होतो ठीक है; परन्तु तुम्हारी महिमा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ययुरंतमनंततया त्वमपि यदंतरांऽडनिचया ननु सावरणाः॥ ख इव रजांसि वांति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥

वाणी के और मन के अगोचर है इसकारण उस महिमा का अविषयरूप से ही ज्ञान होता है ऐसा समझे, यह दिखाते हुए 'यदूर्ध्वं गार्गी त्यादि, श्रुतियों से वर्णन करीहुई अपरिमित महिमा कहते हैं कि-(भगवन्+) हे भगवन्। (द्युपतयः) स्वर्गादि लोकों के स्वामी ब्रह्मादिक। (एव) ही। (ते) तुम्हारे। (अन्तम्) अन्त को। (न) नहीं। (ययुः) प्राप्तहुए। ब्रह्मादिकों की तो वार्त्ता अलगरहे परन्तु (त्वम्-अपि) सर्वज्ञ तुमभी। (आत्मनः) अपने। (अन्तम् +) अन्त को (न+) नहीं। (यासि+) प्राप्त होते हो। (अनन्ततया) क्योंकि तुम्हारा अन्त नहीं है। तो फिर सर्वज्ञपना और सर्वशक्तिपना कैसा ? यदि ऐसा कहो तो-जो अन्त है ही नहीं, उस को नहीं जानने से सर्वज्ञपने की वा अन्त प्राप्त नहींहुआ इस से सर्वशक्तिमान्पने की हानि नहीं होती है, क्योंकि-शशा कहिये खरगोश के सींग नहीं होते हैं, सो उन शशाके सींगों को न जानने के कारण सर्वज्ञता की और उन को न पाने के कारण सर्वशक्तिमान्पने की हानि नहीं होती है, क्योंकि-जो वस्तु हो उस को न जानने से सर्वज्ञता में कमी आती है और जो वस्तु है ही नहीं उस को न जानने से कौन हानि है ? इसीप्रकार जब तुम्हारा अन्त है ही नहीं तो उस को तुम ने नहीं भी जाना तो तुम्हारी सर्वज्ञता में कुछ हानि नहीं है। अब यदि कहो कि-मेरा अनन्तपना कैसे है तो-[खे] आकाश में। [वायुना +] वायु करके। [रजांसि-इव) जैसे रज के कण घूमते हैं तैसे। [यदन्तरा] जिन तुम्हारे विषैं। (सावरणाः) उत्तरोत्तर दशगुण अधिक पृथिव्यादि सात आवरणों सहित। [अण्डनिचयाः] ब्रह्माडों के समूह। [वसया-सह] कालचक्र के साथ। [वान्ति] एकसाथ घूमते हैं। अर्थात् क्रम से न घूमकर एकसाथ घूमते हैं। [ननु] यह कैसे आश्चर्य की बात है! (हि) क्योंकि। (अतएव+] इसकारण ही। [भवन्निधनाः] तुम्हारे विषैं परिसमाप्ति को पानेवाली। [श्रुतयः] श्रुतियें। [अतन्निरसनेन] स्थूलत्व आदि जड पदार्थों का निरास करके निषेधमुख से। [त्वयि] तुम्हारे विषैं। (फलन्ति) तात्पर्यवृत्ति से सफल होती हैं। अर्थात् अवधि के विना निषेध हो नहीं सक्ता. इसकारण अवधिरूप तुम्हारे विषैं निषेधमुख से परिसमाप्ति को प्राप्त होकर सफल होती हैं॥ श्रीधरजी की अनुकृति-' द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः। त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पदम्॥' अर्थात्-हे अनन्त! स्वर्गादि लोकों के स्वामी ब्रह्मादिकों ने तुम्हारे अन्त को नहीं जाना इतना ही नहीं किन्तु तुम भी अपने अन्त को नहीं जानते हो; श्रुतिशिरोभूषणरूप उपनिषद् की वाणियें तुम्हारे विषैं ही सफल होती हैं इसकारण सत्यस्वरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है; हे भगवन्! तुम्हारी सदा जय होय, मैं तुम्हारे उस अखण्ड सच्चिदानन्द पद को भजता हूँ ॥४१॥

१ यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूत भवच्च भविष्यच्च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वात्मनो गतिम् ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणां ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्त्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥ इत्याद्यृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥

श्रीभगवान् ने कहा कि–हे नारदजी ! इसप्रकार ब्रह्माजी के सनकादि पुत्रों ने, सनन्दन के वर्णन करेहुए वेदस्तुतिरूप, आत्मतत्त्व के वर्णन को सुनकर, आत्मा के तत्त्व को जानने के कारण कृतकृत्यहुए उन्हों ने, तदनन्तर गुरुबुद्धि से उन सनन्दन का पूजन करा ॥ ४२ ॥ सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्नहुए और आकाश में विचरनेवाले उन महात्मा सनकादिक ऋषियों ने, इसप्रकार यह सकल श्रुतियों का, पुराणों का और उपनिषदों का तात्पर्यरूप रस निकाला है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! तुम भी, मनुष्यों की वासनाओं को भस्म करनेवाले इस ब्रह्मनिरूपण को, श्रद्धाके साथ मन में धारण करके भूमिपर जहाँ जाने की तुम्हारी इच्छा होय तहाँ विचरो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार नारायण ऋषि के उपदेश करेहुए आत्मतत्त्व को श्रद्धाके साथ ग्रहण करके, आत्मज्ञानी, कृतकृत्य, सुनेहुए अर्थ को मन में धारण करनेवाले और नैष्ठिक ब्रह्मचारी तिन नारदजी ने कहा ॥ ४५ ॥ नारदजीबोले कि–जो तुम , सकल प्राणिमात्र को मोक्ष देने के निमित्त मनोहर अवतार धारण करते हो ऐसे निर्मलकीर्त्ति तुम श्रीकृष्णजी को नमस्कार हो ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इसप्रकार वह नारदजी, आदिऋषि तिन नारायण को और उन के महात्मा शिष्यों को नमस्कार करके तदनन्तर तहाँ से मेरे साक्षात् (योनि सम्बन्ध के विना [१] होनेवाले) पिता वेदव्यासजी के आश्रम को चलेगये ॥ ४७ ॥ तब वेदव्यासजी के सत्कार करेहुए उन नारदजी ने, आसन को ग्रहण करके और उस आसन पर बैठकर, नारायण के मुख से आप जो सुना था वह सब उन व्यासजी से वर्णन करा ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! हम से जो तुम ने प्रश्न कराथा वह,

(१) एकसमय व्यासजी अग्नि मथ रहे थे, सो किसी कारण से व्यासजी का वीर्य स्खलित होकर वह अरणी में गिरा तब व्यासजी ने उसका भी मन्थन करा इसकारण उस अरणी से तत्काल शुक पुत्र उत्पन्नहुआ; ऐसा प्रसिद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेपि श्रुतिश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्ततयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमि-

'जिसप्रकार अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्म के विषैं श्रुतियों की प्रवृत्ति होती है सो' यह सब मैंने तुम से वर्णन करा है ॥ ४९ ॥ अब सब वेदस्तुति का अर्थ संक्षेप से कहते हैं कि- जो भगवान् अपने स्वरूप में सोयेहुए जीवों को सकल पुरुषार्थों की सिद्धि होने के निमित्त इस जगत् के उत्पत्ति, पालन और संहार करने का विचार करते हैं, जो इस जगत् के आरम्भ में मध्य में और अन्त में रहते हैं; जो प्रकृत्ति और पुरुष के उपादान कारण हैं, जिन्हों ने इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके और तिस में अन्तर्यामीरूप से प्रवेश करके जीवों को भोग प्राप्त होने के निमित्त भिन्न भिन्न शरीर उत्पन्न करे हैं; जो जीवों को भोग देकर उन के शरीरों की रक्षा करते हैं और जिन की प्राप्ति होने पर, चरणतल में नारंवार दण्ड की समान प्रणाम आदि करके उपासना करनेवाला यह जीव, जैसे गाढ निद्रा में सोयाहुआ पुरुष, अपने शरीर का अनुसन्धान (१) नहीं रखता है किन्तु उस का त्याग करता है तैसे ही जो अपनी कार्यकारणरूप अविद्या का अनुसन्धान न रखकर त्याग करते हैं तिन भय को दूर करनेवाले और अखण्डस्वरूप की स्थिति करके मायारूप मूल कारण का तिरस्कार करनेवाले भगवान् श्रीहरि का निरन्तर ध्यान करै ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में सप्ताशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अट्ठासीवें अध्याय में विष्णुभगवान् के भक्त को मोक्ष प्राप्त होता है और दूसरे देवताओं के भक्तों को ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीहरि भक्तों को मुक्ति देते हैं, ऐसा कहा तिस को सुनकर राजा ने कहाकि-हे शुकदेवजी ! देवता, असुर और मनुष्यों में जो प्राणी, विषयभोगों का तिरस्कार करनेवाले श्रीशङ्कर का आराधन करते हैं वही प्रायः धनी और विषयभोग करनेवाले होते हैं और लक्ष्मी के पति तथा सकल भोगोंसे युक्त श्रीहरिकी जो आराधना करतेहैं वह दरिद्री और भोगरहित होते हैं इस का कारण क्या है ? ॥ १ ॥ यह जानने की हम इच्छा करते हैं क्योंकि-इस विषय

(१) जैसे गाढ निद्रा में सोयेहुए शरीरवान पुरुष को और लोग देखते हैं परन्तु वह अपने शरीर को कुछ नहीं देखता है तैसे ही जीवन्मुक्त हुए पुरुष को, अन्य लोग, यह देहधारी है, ऐसा देखते हैं परन्तु वह कुछ नहीं देखता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च्छामः संदेहोऽत्र महान्हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामस-श्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु किंचन ॥ उपाधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भ-

में हमें बडाभारी सन्देह है, विरुद्ध स्वभाववाले श्रीहरि और श्रीहर के भक्तों को विरुद्ध फल प्राप्त होता है अर्थात् ऐश्वर्य को त्यागनेवाले श्रीशङ्कर के भक्तों को दरिद्रता होना चाहिये और ऐश्वर्यों को स्वीकार करनेवाले श्रीविष्णु के भक्तों को ऐश्वर्य मिलने चाहियें, परन्तु ऐसा न होकर भक्तों को विपरीत फल प्राप्त होता है इस का क्या कारण है? ॥२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! निरन्तर आनन्दरूप भी ईश्वर, जब अपनी शक्ति (प्रकृति) से युक्त होते हैं तब उस प्रकृति के सत्त्व आदि गुणों से युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर इन तीन नामों को धारण करते हैं; सात्विक, राजस और तामस यह तीन प्रकार का अहङ्कार है ॥३॥ तिस से एक मन, दश इन्द्रियें और पाँच महाभूत इसप्रकार सोलह विकार और दिशा, वायु, सूर्य आदि देवता उत्पन्न हुए हैं. तिस में अहङ्कार के सत्त्वादि तीन गुणों में से रजोगुण का अंश ब्रह्माजी में अधिक है, सत्त्वगुण का विष्णु में और तमोगुण का अंश शिवजी में अधिक है. इसकारण जो मनुष्य जिस अधिक गुण से युक्त देवता का भजन करता है उस को उस गुण से सम्बन्ध रखनेवाली विभूतियें ही प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥ इसप्रकार विष्णुभक्तों को सत्त्वगुण की विभूतियें प्राप्त होती है, उन में भी सत्त्वगुण के शान्तरूप होने के कारण और साक्षात् श्रीहरि भगवान् के, सर्वों के साक्षी, सर्वज्ञ, प्रकृति से परपुरुष और निर्गुणरूपी होने के कारण उन के भक्त निर्गुण होते हैं; इस विषय में यह तत्त्व समझना कि—आत्मवस्तु को गुणों के सम्बन्ध से उन के धर्मों के योग और अयोग से बिम्ब और प्रतिबिम्ब ऐसे दो रूप होते हैं. सत्त्व, रज और तम यह गुण स्वभाव से शान्त, घोर और मूढ हैं. विष्णु, ब्रह्मा और शिव इन का वास्तव में बहुतसा भेद न होने पर भी गुणों के धर्मों से अंशतः भेद होता है. तिन में सत्त्वगुणी विष्णु का शान्तधर्म होने के कारण उन को विक्षेप और मूढता नहीं प्राप्त होती हैं. ब्रह्मा जी और श्रीशङ्कर को वह विक्षेप और मूढता प्राप्त होती हैं और अन्यगुणों के दबजाने से उन के अंशों का भेद होता है. इसकारण पूर्णसत्त्वरूप विष्णु भगवान् की बुद्धि मोक्षकारक और स्वयं आनन्दमय है तथा अंशतः ऐश्वर्यों की भी देनेवाली है. ब्रह्मा-रुद्रादिकों के अंशतः सेवन करनेवाले पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और अंशतः एकतारूप करके सेवन करनेवाले पुरुषों को कुछ काल में मोक्ष भी प्राप्त होता है. ऐसा जानकर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तिष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥ शृण्वन्भगवतो धर्मान-पृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्र-

जहाँ तहाँ 'सत्त्वमूर्त्ति से कल्याण होते हैं' 'सत्त्व ही जिन की प्रियमूर्त्ति है' ऐसा कहा है। इस में कुछ और नहीं है, किन्तु उन के भक्तों में जो कलह होता है वह केवल मोह ही है ॥ ५ ॥ हे राजन्! अश्वमेधयज्ञ होने पर तुम्हारे दादा धर्मराज ने, श्रीकृष्ण भगवान् से धर्म सुने थे तब, उन पूर्णज्ञानी श्रीकृष्णजी से, जो तुम ने मुझ से बूझा है यही बूझा था ॥ ६ ॥ तब जिन्होंने मनुष्यों के कल्याण के निमित्त यदु के कुल में अवतार धारण करा है वह प्रभु सन्तुष्ट होकर, सुनने की इच्छा करनेवाले उन युधिष्ठिर से कहनेलगे ॥७॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—जिस मनुष्य को विषयों का त्याग करने की इच्छा होती है परन्तु वासना की प्रबलता से वह विषयों को त्याग नहीं सक्ता है और उन का भोग करते में भी क्लेश पाता है उस के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त मैं धीरे धीरे उस के सकलधन को हरण करलेता हूँ; तदनन्तर निर्धन और दुःखों की परम्परा से ग्रस्त हुए उस को उस के सम्बन्धी पुरुष छोडदेते हैं ॥ ८ ॥ वह भक्त फिर कदाचित् कुटुम्बियों के आग्रह से धन प्राप्त करने में प्रवृत्त होय तो भी, मेरे अनुग्रह से उस के सब उद्योग व्यर्थ होजाते हैं, फिर वह विरक्त होकर मेरे भक्तों के साथ मित्रता करता है तब मैं उस के ऊपर अनुग्रह करता हूँ ॥ ९ ॥ वह अनुग्रह यह है कि—चैतन्यमात्र, सत्य, अनन्त और सूक्ष्म जो परब्रह्म तिस की उस को प्राप्ति होती है, इसप्रकार मेरा आराधन करना परम कठिन है इसकारण ही लोक मुझे त्यागकर अन्य देवताओं की सेवा करते हैं ॥ १० ॥ और वह पुरुष, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले उन देवताओं से राज्यलक्ष्मी को पाकर उद्धत, घमण्डी और असावधान होकर, अपने को वरदेनेवाले उन देवताओं को भी भूलजाते हैं और उन का अपमान करते हैं ॥ ११ ॥ वही वार्त्ता इतिहास के द्वारा स्पष्ट करने के निमित्त श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, शाप देने को और अनुग्रह करने को समर्थ हैं. परन्तु ब्रह्मा और शिवजी यह दो देवता, शीघ्र ही प्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सादोऽग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरंतीमामितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाप संकटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदं ॥ दृष्ट्वाशुतोष पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥ स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यति ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यपि ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वदिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटं ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरं ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ॥ शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः॥१९॥

सन्न होजाते हैं और शाप भी शीघ्र ही देते हैं, विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होते हैं और शाप भी नहीं देते हैं ॥१२॥ इस विषय में यह पुरातन इतिहास कहते हैं कि—महादेवजी, वृकासुर को वरदान देकर स्वयं ही सङ्कट में पड़े ॥ १३ ॥ शकुनिदैत्य का पुत्र वृकासुर नामवाला दुर्बुद्धि असुर था; उस ने मार्ग में नारदजी को देखकर उन से बूझा कि—ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों देवताओं में शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाला कौनसा देवता है? ॥१४॥ तब नारदजी ने कहा कि--तू महादेवजी की शरण जा, तब शीघ्र ही तुझे सिद्धि प्राप्त होयगी. जो महादेवजी थोडे ही आराधन से शीघ्र प्रसन्न होते हैं और थोड़े से अपराध से शीघ्र ही कोप में होजाते हैं ॥ १५ ॥ जिन शङ्कर ने, स्तुति पढ़नेवाले बन्दि की समान स्तुति करनेवाले रावण के और बाणासुर के ऊपर प्रसन्न होकर, उन को अनूपम ऐश्वर्य दिया और उन से ही बडे सङ्कट को प्राप्त हुए; रावण ने उन के ही कैलाश पर्वत को उखाडा और बाणासुर ने उन को ही अपने नगर का रक्षक बनाया ॥ १६ ॥ इसप्रकार नारदजी के कहने पर वह वृकासुर, केदारक्षेत्र में अपने शरीर के मांस को काटकर उस के हवन से अग्निमुख श्रीमहादेवजी का आराधन करनेलगा ॥१७॥ इसप्रकार प्रतिदिन हवन करने पर भी छः दिन पर्यन्त महादेवजी का दर्शन नहीं हुआ, तब सातवें दिन वह वृकासुर खिन्न होकर 'मरूँगा वा कार्य को सिद्ध करूँगा' ऐसे निश्चय से उस केदारकुण्ड में स्नान करने के कारण गीले केशोंवाला अपना मस्तक अपने ही शस्त्र के काटने को उद्यत हुआ ॥१८॥ तब परमदयालु तिन श्रीशङ्कर ने, उस कुण्ड में की अग्नि में से बाहर निकलकर, साक्षात् मूर्त्तिमान् अग्नि की समान प्रकाशवान् अपनी भुजाओं से उस का हाथ पकडलिया और, जैसे हम, किसी दुःख से खिन्न होकर आत्मघात करनेवाले को निषेध करते हैं तैसे, मस्तक काटने से उस को रोका, तब वह दैत्य, उन श्री-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तमाह चांगाल मलं वृणीष्व मे यथाऽभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते दृशा ॥२०॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहं ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियेतामिति ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ २३ ॥ तेनोपसृष्टः सन्त्रस्तः पराधावन्सवेपथुः ॥ यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥ अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुण्ठमगमद्ब्रह्मेश्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥२६॥ तं तथा व्यसनं

शङ्कर के स्पर्श से ही फिर पूर्ण शरीर होगया ॥ १९ ॥ तब श्रीशङ्कर उस से कहनेलगे कि—हे वृकासुर ! बस, बस, अब मस्तक काटने की आवश्यकता नहीं है; तू मुझसे वर मांगले, तेरा जैसा मनोरथ होय वैसा ही वरदान मैं तुझे देता हूँ, मैं तो शरण आयेहुए भक्तों के ऊपर केवल जलमात्रसे ही प्रसन्न होजाता हूँ, सो तू निष्कारण ही अपने शरीर को कष्टदेता है।२०। इसप्रकार कहनेपर उस वृकासुरने, प्राणिमात्र को भय देनेवाला ऐसा वर मांगा कि—मैं जिस जिस के मस्तकपर हाथ रक्खूँ वह तत्काल मरजाय ॥ २१ ॥ हे महाराज ! वह उस का वचन सुनकर रुद्रभगवान् ने खिन्नसे होकर, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर, जैसे सर्प को दूध पिलाते हैं तैसे उस दैत्य को वह वरदान दिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार शिवजी के कहनेपर वह दैत्य, निःसन्देह पार्वती को ही हरण करने के विषय में उत्कण्ठित होकर, शिवजी का कहना सत्य है वा असत्य इस की परीक्षा करने के निमित्त उन शिवजी के मस्तकपर ही अपना हाथ रखने का उद्योग करने लगा, तब वह शिवजी, अपने दियेहुए वरदान से आप ही भय को प्राप्तहुए ॥ २३ ॥ और वह दैत्य जिन के पीछे लगाहुआ है ऐसे भयभीतहुए और थर थर काँपनेवाले वह शिवजी, स्वर्ग, भूमि और दिशाओं के छोर पर्यन्त दौड़कर तदनन्तर उत्तरदिशा की ओर को भागने लगे ॥ २४ ॥ उससमय ब्रह्मादिक देवताभी, उन शिवजी के भय के दूर होने का उपाय न जानतेहुए, मौन ही रहे तदनन्तर वह शिवजी, अन्धकार के परली ओर प्रकाशित होनेवाले श्वेतद्वीप में जापहुँचे ॥ २५ ॥ जहाँ शान्त और सब लोकों को अभय देनेवाले संन्यासी पुरुषों की परम गति ऐसे श्रीनारायणजी रहते हैं और जहाँ गयाहुआ प्राणी फिर संसारदुःख में नहीं पडता है ॥ २६ ॥ दुःख हरनेवाले भगवान् नारायण ने, उन इसप्रकार दुःखीहुए श्रीश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः॥दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा वटुको योगमायया॥२७॥मेखला जिनदण्डाक्षैस्तेजसाऽग्निरिवाज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत्॥ २८॥श्रीभगवानुवाच॥ शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक्॥२९॥यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथा पूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेंद्र जगद्गुरौ ॥ तर्हि गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयतां ॥३३॥ यद्यसत्यं वचः शंभोः कथञ्चिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्तोऽनृतं

ङ्कर को दूर से ही देखकर, अपनी योगमाया की-शक्ति से ब्रह्मचारी वटुक का वेष धारण करा और उन के सन्मुख आपहुँचे॥२७॥ मेखला, कृष्णमृगछाला, काठ का दण्ड और रुद्राक्ष की माला से युक्त, तेज से अग्नि की समान प्रकाशवान् और हाथ में कुशों का मुट्ठा धारण करेहुए वह वटु, अतिनम्रता उन को प्रणाम करके कहनेलगा ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—अरे शकुनि के पुत्र वृकासुर ! तू निःसन्देह थकाहुआसा दीखरहा है, बहुत दूर चलकर आया है क्या ? क्षणभर विश्राम करले क्योंकि—पुरुष का यह शरीर सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है, इस को अधिक श्रम देना ठीक नहीं है ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! तुम ने कौनसा कार्य करने का मन में विचार करा है ? वह यदि हमारे सुननेयोग्य होय तो कहो. क्योंकि-यह लोक, सहायरूप से लियेहुए पुरुषों के साथ ही अपने प्रयोजन को साधता है, इसकारण तुम अपना निश्चय हम से कहो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् ने, मानो अमृत की वर्षा ही करनेवाला है ऐसे अपने वचन से जिस से प्रश्न करा है ऐसा वह वृकासुर, क्षणभर विश्राम लेकर, श्रमरहित हुआ और उसने पहिले तपस्या करना आदि सब वृत्तान्त उस वटु से कहा ॥३१॥ उस वृत्तान्त को सुनकर श्रीभगवान् कहनेलगे कि—तुम जैसा कहते हो यदि ऐसा है तो उन रुद्रका वरदानरूप वाक्य 'सत्य है' ऐसा हम तो किसी प्रकार नहीं मानते क्योंकि-जो रुद्र दक्ष के शाप से पिशाचपने को प्राप्त होगये और प्रेतों के तथा पिशाचों के राजाहुए हैं ॥३२॥ हे दानवेन्द्र ! उन जगद्गुरु श्रीशङ्कर के विषय में तुम को यदि विश्वास होय तो हे वृकासुर ! तुम पहिले शीघ्र अपने ही मस्तकपर हाथ रखकर उन के वचन की परीक्षा करलो ॥ ३३ ॥ और हे दानवोत्तम ! यदि किसी भी प्रकार उन शम्भु का वचन असत्य निकले तो असत्य बोलनेवाले उन को तू मारडाल, जिस से कि—वह फिर ऐसा असत्य भाषण न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनः ॥ ३४ ॥ इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ॥ ३८ ॥ हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेश कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥४०॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सर-

करें ॥ ३४ ॥ इसप्रकार विचित्र और अतिकोमल भगवान् के वचनों से जिस की बुद्धि चलायमान हुई है तिस वृकासुर ने भूल में पड़कर अपना हाथ अपने ही शिरपर रखलिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मानो वज्र से ही ताड़ित हुआ क्या ऐसा वह दैत्य, मस्तक फटकर मरकर गिरगया, उससमय देवताओं ने स्वर्ग में जयजयकार शब्द, बहुत अच्छाहुआ ऐसा शब्द और नमःशब्द उच्चारण करा ॥ ३६ ॥ उस पापी वृकासुर के मरण को प्राप्त होनेपर देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्वों ने पुष्पों की वर्षा करी, इसप्रकार भगवान् ने शिवजी को सङ्कट से छुटाया है ॥ ३७ ॥ सङ्कट से छूटेहुए शिवजी से वह भगवान् पुरुषोत्तम, कहनेलगे कि—अहो देव ! हे महादेव ! यह पापी दैत्य अपने ही पाप से मारागया है; हे ईश्वर ! तुम्हारे महात्मा भक्तोंका भी अपराध करनेवाला कौनसा प्राणी सुख पावेगा? कोई सुख नहीं पावेगा;फिर जगत् के पूजनीय तुम विश्वेश्वर का अपराध करनेवाला प्राणी सुख नहीं पावेगा, इस का तो कहना ही क्या ? ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो पुरुष,मन के और वाणी के अगोचर रहनेवाली शक्तियों के समुद्र और माया से पर, साक्षात् परमात्मा भगवान् ने, महादेवजी को सङ्कट से छुड़ाया,इस चरित्र को सुनता है अथवा कहता है वह जन्ममरणरूप संसार के कारणभूत कर्मों के बन्धन से और शत्रुओं से मुक्त होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उद्धरार्द्ध में अष्टाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे नौवासीवें अध्याय में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन में कौन बड़ा है ऐसा सन्देह होनेपर भृगु ऋषि ने, परीक्षा करके, विष्णु का महत्त्व ऋषियों से वर्णन करा यह कथा और भगवान् ने ब्राह्मण के पुत्र महाकालपुर में से लाकर दिये, यह कथा वर्णन करी है ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! सरस्वती नदी के तटपर ऋषि, सत्र कररहे थे,तहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभां ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मनः ॥ ततः कैलासमगमत्सं तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभ उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥ स्वतल्पा-

उन में यह संशय उत्पन्नहुआ कि—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन में कौनसा देवता बडा है? ॥ १ ॥ उस महत्त्व को जानने की इच्छा से उन ऋषियों ने तिस महत्त्व को जानने के निमित्त ब्रह्माजी के पुत्र भृगु ऋषि को भेजा, वह भृगु ऋषि परीक्षा करने के निमित्त पहिले ब्रह्माजी की सभा में गये ॥ २ ॥ उन्होंने, ब्रह्माजी के पास सत्त्वगुण है व नहीं इस की परीक्षा करने के निमित्त उन को नमस्कार वा उन की स्तुति आदि कुछ नहीं करी, तब भगवान् ब्रह्माजी, इस ने मेरा अपमान करा ऐसा जानकर अपने ही तेज से देदीप्यमान होतेहुए उन भृगुजी के ऊपर क्रुद्धहुए ॥ ३ ॥ तदनन्तर उन प्रभु ब्रह्माजी ने, अपने मन में, पुत्र के ऊपर क्रोध उत्पन्नहुआ ऐसा जानकर विवेकयुक्त बुद्धि से 'जैसे कोई समर्थ पुरुष ही अग्नि से उत्पन्नहुए जल के द्वारा ही अग्नि की शान्ति करता है तैसे' अपने से उत्पन्न हुए पुत्र के ऊपर दृष्टि देकर ही क्रोध को शान्त करा ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह भृगुजी कैलास पर्वत पर गये, तब महेश्वरदेव, यह मेरे भ्राता भृगु ऋषि आये हैं ऐसा जानकर हर्ष से उठकर उन को आलिङ्गन करने को उद्यत हुए. तब उन भृगुजी ने, तुम चिता की भस्म आदि धारण करके, अपने शुद्ध मार्ग को छोडकर, अमङ्गलपने का व्यवहार करनेवाले हो, इसकारण मुझे स्पर्श न करो; ऐसा कहा तब, वह शिवजी क्रुद्धहुए और नेत्र लाल करके हाथ में त्रिशूल उठाकर उन को मारने को उद्यत हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब पार्वती ने चरणों पर गिरकर मधुरवाणी से उन श्रीशङ्कर को समझाया, तदनन्तर भृगु ऋषि, जहाँ जनार्दन विष्णुभगवान् रहते हैं उस वैकुण्ठलोक को चलेगये ॥ ७ ॥ तहाँ लक्ष्मी की जङ्घापर शिर रखकर शयन करतेहुए श्रीविष्णुभगवान् के वक्षःस्थल पर उन्हों ने लातमारी; तदनन्तर साधुओं की गति वह भगवान्, लक्ष्मीस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दवरुह्यार्थं ननाम शिरसा मुनिं ॥ अहो ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥ अद्याहं भगवन्लक्ष्म्या आत्मसमाधिभाजनम् ॥ वत्स्यत्यूरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मद्वया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ॥ अकिंचनानां साधूनां

हित जानकर ॥ ८ ॥ अपने पलँगपर से नीचे उतरे, और उन ऋषि को मस्तक से प्रणाम करके कहने लगे कि—हे ब्राह्मण ! तुम आये यह बडी उत्तम बार्त्ता हुई क्षणभर इस पलँगपर बैठो; हे प्रभो ! आयेहुए तुम को न जाननेवाले हमारे अपराधों की तुम्हें क्षमा करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे तात मुने ! तुम्हारे चरण बहुत ही कोमल हैं और उन को बडा परिश्रम हुआ है. ऐसा कहकर अपने हाथ से उन ब्राह्मण के चरण को दबातेहुए वह विष्णुभगवान् कहने लगे कि—॥ १० ॥ हे ब्राह्मण ! तुम, तीर्थों को भी पवित्र करनेवाले अपने चरणोंदक से लोकों सहित मुझे और मुझ में रहनेवाले सकल लोकों को पवित्र करो ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आज मैं लक्ष्मी के निरन्तर रहने का स्थान हुआ हूँ, क्योंकि—तुम्हारे चरण के स्पर्श से निष्पापहुए मेरे वक्षःस्थल पर लक्ष्मी स्थिर रहेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार श्रीविष्णुभगवान् के भाषण करने पर, उन की गम्भीर वाणी से सुख को प्राप्तहुए और प्रसन्नहुए भृगुऋषि, भक्ति से गद्गदकण्ठ होकर मौन ही रहे और उन के नेत्रों में से आनन्द के आँसू टपकनेलगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उन भृगुजी ने, फिर उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियों के सत्र में आकर उन से अपना अनुभव कराहुआ ब्रह्मादिक तीनों देवताओं का वर्त्ताव वर्णन करा ॥ १४ ॥ उस को सुनकर तदनन्तर भगवान् का नम्रपना सुनने से आश्चर्य युक्त और संशय रहितहुए तिन ऋषियों ने, बडेभारी अपराध के समय भी निर्विकार रहनेवाले विष्णुभगवान् को ही सब से बडा माना; क्योंकि—जिन में शान्ति है, जिनसे अभय प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जिन से धर्म प्रवृत्त होता है, जिन से साक्षात्कारात्मकज्ञान और तिस ज्ञान से युक्त वैराग्य उत्पन्न होता है, जिन से अणिमादिक आठ प्रकार के ऐश्वर्य और अन्तःकरण के मल को दूर करनेवाला यश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जिन को, सबों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमाहुः परमां गतिम् ॥ १७ ॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः॥ भजन्त्यनाशिषः शान्ता ये वै निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधा कृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणन्याँ मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥१९॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोक्यं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा गमार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रि-

के अभय देनेवाले, शान्त, समचित्त, अकिञ्चन, परोपकारी और मननशील साधुओं की परमगति कहते हैं ॥१७॥ सत्त्वगुण ही जिन की प्रियमूर्त्ति है, जिन के ब्राह्मण ही इष्टदेव हैं, और शान्त,निष्काम और विचारवान् पुरुष जिन का सेवन करते हैं॥ १८॥ जब उन भगवान् की ही गुणमयी माया की उत्पन्न करीहुई राक्षस, असुर और देव यह तीनप्रकार की मूर्त्ति है और उन को, वह सत्त्वगुणात्मक विष्णुमूर्त्ति ही पुरुषार्थ प्राप्त होने का साधन है॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! मनुष्यों का संशय दूर करने के निमित्त ऐसा,निश्चय करके सरस्वती नदी के तटपर रहनेवाले वह ब्राह्मण, भगवान् के चरणकमल की सेवा से मुक्ति को प्राप्तहुए ॥ २० ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनकादिक ऋषियों! इसप्रकार इस कहेहुए, शुकदेवजी के मुखकमल से प्रकटहुए, सुगन्धयुक्त अमृत की समान संसारभय को दूर करनेवाले भगवान् के शुद्ध यश को, जो संसारी पुरुष, अपने कर्णरूप पात्रों से निरन्तर पान करता है,वह संसाररूप मार्ग में फिरते हुए होनेवाले श्रमों को त्याग करता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! एक समय द्वारका में किसी एक ब्राह्मण की स्त्री का पुत्र जन्म पाकर भूमि का स्पर्श होते ही तत्काल मरण को प्राप्त होगया ॥२२॥ तब पुत्र के शोक से व्याकुल हुए और दीनचित्त तिस ब्राह्मण ने, तिस मरेहुए पुत्र के प्रेत को उठाकर राजा उग्रसेन के द्वारपर रक्खा और वह विलाप करताहुआ इसप्रकार कहनेलगा कि - ॥ २३ ॥ यह पुत्र मरण को प्राप्त हुआ इस में मेरा कोई दोष नहीं हैं किन्तु ब्राह्मणों के दोषी,कृपणबुद्धि, विषयलम्पट तथा लोभी राजा के कर्म के दोषसे ही यह मेरा पुत्र मरण को प्राप्तहुआ है ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले, इन्द्रियों का जय न करनेवाले और स्वभाव से दुष्ट ऐसे राजा का सेवन करने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यम् ॥ प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥ तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वमिवासे इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ॥ ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुंभराः ॥ २९ ॥ अहं प्रजा वो भगवन् रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं

वाली प्रजा, दरिद्री और नित्य दुःखित होतीहुई क्लेश पाती हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार ही तिस ब्राह्मण ने दूसरा, तीसरा इत्यादि आठपर्यन्त पुत्र उत्पन्न होते ही मरण को प्राप्त होगये तब, उन के प्रेत पूर्व की समान राजा के द्वार पर रखकर वह राजाओं की निन्दा रूप गाथा का गान करा ॥ २६ ॥ तदनन्तर एक दिन, नवम पुत्र मरण को प्राप्त हुआ तब श्रीकृष्णजी के समीप बैठेहुए अर्जुन ने, उस ब्राह्मण की रोतेहुए गाईहुई गाथा को सुना और वह अर्जुन एकान्त में तिस ब्राह्मण से कहनेलगे कि—॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण! तू व्यर्थ क्यों रोता है, तू जहाँ रहता है, इस द्वारका में धनुर्धारी कोई सामान्य राजा भी नहीं है, क्या? फिर ब्राह्मणों का हितकारी शूर राजा नहीं है इस का तो कहना ही क्या? यह यादव तो यज्ञ में इकट्ठेहुए ब्राह्मणों की समान (केवल भोजन करनेवाले) होने के योग्य हैं! ॥२८॥ जिन क्षत्रियों के जीवित रहते, धन, स्त्री और पुत्र के वियोग से ब्राह्मण शोक करते हैं वह क्षत्रिय, राजा के वेषधारी नट की समान अपने प्राणों का पोषण करने के निमित्त जीवित रहते हैं ॥२९॥ अब, मैं कुछ दिनोंपर्यन्त यहाँ रहकर, तुम दोनों दीन स्त्रीपुरुषों के आगे होनेवाले बालकों की रक्षा करूँगा; और यदि मेरे हाथ से यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं होयगी तो मैं अग्नि में प्रवेश करके निष्पाप होऊँगा ॥ ३० ॥ तब वह ब्राह्मण कहनेलगा कि—हे अर्जुन! जिस मेरे पुत्र की रक्षा करने के विषय में बलराम, श्रीकृष्ण, धनुषधारियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिस की समान कोई रथी नहीं ऐसा अनिरुद्ध यह भी समर्थ नहीं हुए ॥३१॥ ऐसे जगदीश्वरों से भी न होसकनेवाले कर्म को तुम, अपने मूर्खपने के कारण कैसे करने की इच्छा करते हो? इसकारण तुम्हारे कहने का हम कुछ भी विश्वास नहीं करते हैं ॥३२॥ अर्जुन ने कहा कि—मैं बलराम नहीं हूँ, श्रीकृष्ण नहीं हूँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥ मावमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रैः फाल्गुनेन परन्तप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरं ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीवकत्थनं ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥

और प्रद्युम्न भी नहीं हूँ किन्तु जिस का गाण्डीव नामवाला धनुष है वह अर्जुन नामवाला वीर हूँ ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण! युद्ध में शिवजी को भी प्रसन्न करनेवाले मेरे पराक्रम का तू अपमान मत कर; हे प्रभो! अवसर पर युद्ध में मृत्यु को भी जीतकर तेरी सन्तान को लेकर आऊँगा ॥३४॥ हे राजन्! इसप्रकार अर्जुन ने जिस के चित्त में विश्वास उत्पन्न करा है ऐसा वह ब्राह्मण, प्रसन्न होकर अर्जुन का पराक्रम लोकों से वर्णन करता हुआ अपने घर को चलागया ॥३५॥ फिर कुछ काल में, स्त्री के सन्तान उत्पन्न होने का समय समीप आने पर, चिन्ता से व्याकुल हुए उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने, उस अर्जुन से, अब मेरी सन्तान की मृत्यु से रक्षा करो, रक्षाकरो, ऐसा कहा ॥३६॥ तब उस अर्जुन ने, शुद्ध जल का आचमनकर, शिवजी को नमस्कार करके और दिव्य अस्त्र का स्मरण करके, सम्हाला-हुआ गाण्डीव धनुष हाथ में लिया ॥३७॥ और तिस अर्जुन ने, अनेकों प्रकार के अस्त्र-मंत्रों का प्रयोग करेहुए वाणों से उस ब्राह्मण का घर सब ओर से रोक दिया. अर्थात् आड़े ऊपर और नीचे वाण छोडकर उस घर को वाणों का पिंजरा करदिया ॥३८॥ तदनन्तर उस ब्राह्मण की स्त्री के पुत्र हुआ, वह बारम्बार रोते रोते एकायकी शरीरसहित आकाश में गुप्त होगया अर्थात् उस का मृतशरीर भी कहीं देखने को नहीं मिला ॥३९॥ तब वह ब्राह्मण, श्रीकृष्णजी के समीप में अर्जुन की निन्दा करताहुआ कहनेलगा कि—अहो! मेरी यह कितनी मूर्खता है! देखो, जिस मैंने, इस नपुंसक अर्जुन की व्यर्थ बड २ का भाषण विश्वास करके सत्य मानलिया ॥४०॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम और श्रीकृष्णजी, यह सब ही जिस के बालकों की रक्षा करने को समर्थ नहीं हुए, उन की रक्षा करने को दूसरा कौन समर्थ होगा? ॥४१॥ इसकारण असत्य बोलनेवाले अर्जुन को धिक्कार है, अपनी प्रशंसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्ततः ऐन्द्रीमगात्पुरीं ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं विष्ण्वान्यान्युदायुधः ॥४४॥ ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥ दर्शये द्विजसूनुंस्ते माऽवज्ञातान्मानमत्मनः ॥ ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यंति ॥४६॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥४७॥ सप्तद्वीपान्सप्तसिंधून्सप्तसप्तगिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं

करनेवाले उस के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है, जो दुर्बुद्धि अर्जुन, दैव करके दूसरे स्थान पर लेगयेहुए मेरे बालक को अपनी मूर्खता से लाने की इच्छा करता है ॥४२॥ इसप्रकार उस ब्राह्मण श्रेष्ठ के निन्दा करतेहुए, अर्जुन ने, चाहे जिधर को जाने की अपनी विद्या को स्वीकार करके, जहाँ भगवान् यमराज रहतेहैं तिस संयमनी नामवाली नगरी में गमनकरा ॥४३॥ तहाँ ब्राह्मण का पुत्र कहीं भी उन को दृष्टि नहीं पडा, इसकारण तहाँ से इन्द्र की नगरी को गये. तहाँ भी ब्राह्मण का पुत्र नहीं मिला इसकारण हाथ में शस्त्र उठाकर तदनन्तर अग्नि, निर्ऋति सोम, वायु और वरुण की नगरियों में जाकर, फिर पाताल, स्वर्ग तथा और भी दूसरे सब स्थानों में ढूँढकर देखा; परन्तु कहीं भी उन को ब्राह्मण का पुत्र नहीं मिला; तदनन्तर जिन की प्रतिज्ञा असत्य हुई है ऐसे अर्जुन, अग्नि में प्रवेश करनेलगे; तब अनेकों प्रकार की युक्तियों से अग्नि में प्रवेश करने का निषेध करनेवाले श्रीकृष्णजी ने उन से कहा कि—॥४४॥४५॥ हे अर्जुन! मैं तुम्हें ब्राह्मण का पुत्र दिखाता हूँ, तुम आप ही अपना तिरस्कार न करो, जो पुरुष, अब तुम्हारी निन्दा कररहे हैं वही हमारी निर्मल कीर्त्ति को स्थापन करेंगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अर्जुनसहित अपने दिव्य रथ पर बैठकर पश्चिम दिशा की ओर को चलदिये ॥ ४७ ॥ सात सात पर्वतवाले सात द्वीप, सात समुद्र, तैसे ही लोकालोक पर्वत, इन का उल्लंघन करके, तिन के परली ओर 'सूर्य का प्रकाश न होने के कारण' गाढ अन्धकार में प्रवेश करा ॥४८॥ हे भरतश्रेष्ठ! राजन्! उस गाढ अन्धकार में श्रीकृष्णजी के शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चारों घोडे भ्रष्टगतिहुए अर्थात् आगे को चलने को समर्थ नहीं हुए ॥ ४९ । उन को देखकर महायोगेश्वरों के भी योगेश्वर तिन श्रीकृष्ण भगवान् ने, सहस्र सूर्यों की समान प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमःपरं परं ज्योतिरनन्तपारम् ॥ समनुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षो पिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं दुमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥५३॥ तस्मिन्महाभोगमनन्तमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणम् ॥ सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५४॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सांद्रांबुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्॥५५॥महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलं। प्रलंबचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालया वृतम् ॥ ५६ ॥ सुन-

वाला अपना सुदर्शन चक्र आगे छोडा॥५०॥तब मन की समान वेगवाला वह सुदर्शन चक्र, जिस में प्रवेश करना कठिन और अतिभयङ्कर है ऐसे तिस प्रकृति के कर्मरूप अपार अन्धकार को, अपने बडेभारी तेज से विदीर्ण करताहुआ, रोदे से छूटाहुआ श्रीरामचन्द्र जी का बाण जैसे रावण की सेना में को गया था तैसे उस अन्धकार में गया ॥ ५१ ॥ तब, चक्रके पीछे २ होनेवाले द्वार से जाते२ आगे उस अन्धकार के परलीओर जिसका अन्त और पार नहीं ऐसा व्याप्त होकर रहनेवाला भगवान् का तेज उन अर्जुन के दृष्टि पड़ा, तब उन्होंने चौंधाएहुए अपने दोनों नेत्रों को मूँदलिया ॥ ५२ ॥ फिर वह श्री कृष्णजी और अर्जुन, प्रचण्ड पवन से कम्पायमान होनेवाली बडी २ तरङ्गों से शोभायमान जल में घुसे और तहाँ उन्होंने बडेभारी प्रकाश से युक्त और दमकतेहुए सहस्रों मणि जडे खम्भों से शोभायमान एक अद्भुत स्थान (महाकालपुर) देखा ॥ ५३ ॥ और तहाँ अतिभयङ्कर आश्चर्यकारी, मस्तक पर के सहस्र फणों पर देदीप्यमान मणियों की कान्तियों से शोभायमान होनेवाले,दो सहस्र भयङ्कर नेत्रोंवाले,कैलासपर्वत की समान स्वेत और जिन का कण्ठ और जिव्हा काले हैं ऐसे शेषजी को देखा ॥ ५४ ॥ और उन के शरीररूप सुखकारक आसन पर बैठेहुए महाप्रतापी पुरुषोत्तम भगवान् को देखा, वह भगवान्—घने मेघ की समान श्यामवर्ण, व्यापक, पीला पीताम्बर धारण करे. प्रसन्नमुख, सुन्दर और विशाल नेत्रवाले, बहुत मूल्य की मणियों के समूहों से जडे किरीट की और कुण्डलों की कान्ति से चमकनेवाले असंख्य घुंघराले केशों से युक्त, लम्बी और सुन्दर आठ भुजा धारण करनेवाले, और कण्ठ में कौस्तुभ मणि, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह और चरणोंपर्यन्त लटकनेवाली बनमाला से युक्त थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः॥पुष्ट्या श्रियाँ कीर्त्यजया-ऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥ ववंद आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धांजली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलाऽवतीर्णावविनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥५९॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतौ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ निशम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किञ्चित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकंपितम् ॥ ६३ ॥ इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूं-

ही सुनन्द नन्द आदि अपने पार्षदों से, मूर्त्तिमान् हुए सुदर्शन आदि शस्त्रों से, पुष्टि, लक्ष्मी, कीर्त्ति, माया और सकल सिद्धियों से सेवन करेहुए होकर वह ब्रह्मादिकों के अधिपति थे ॥ ५७ ॥ उन जन्मरहित भूमानामक भगवान् को श्रीकृष्णजी ने प्रणाम करा और उन के दर्शन से भयभीत हुए अर्जुन ने भी उन को प्रणाम करा और वह दोनों ही उन के आगे हाथ जोडकर खडे होगये, तब ईश्वरों के भी ईश्वर वह भूमा भगवान्, हँसकर गम्भीरवाणी में तिन अर्जुन कृष्ण से कहनेलगे कि—॥ ५८ ॥ तुम्हें देखने की इच्छा करनेवाला मैं इन ब्राह्मण के पुत्रों को अपने समीप ले आया हूँ; पृथ्वी पर धर्म की रक्षा करने के निमित्त, तुम दोनों ही मेरे अंश से प्रकटहुए, इसकारण अब पृथ्वी के भारभूत दैत्यों का शीघ्र ही वध करके तुम फिर यहाँ मेरे समीप आजाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों ही श्रेष्ठ नारायण ऋषि हो, और पूर्णमनोरथ हो तथापि जगत् की रक्षा करने के निमित्त लोकों को शिक्षादेने के अर्थ धर्मों का आचरण करो ॥ ६० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार उन भूमा भगवान् के आज्ञा करेहुए वह श्रीकृष्णजी और अर्जुन, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर उन की आज्ञा को स्वीकार कर उन भूमा भगवान् को नमस्कार कर और ब्राह्मण के पुत्रों को लेकर हर्षयुक्त होतेहुए, जिस मार्ग से गये थे उसी मार्ग से लौटकर द्वारका को आये और उन्हों ने, जैसे पहिले रूप और अवस्था आदि था तैसे ही बडे छोटे ब्राह्मण के पुत्रों को लाकर समर्पण करा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ विष्णुभगवान् के उस महाकालपुररूप स्थान को देखकर परम आश्चर्य को प्राप्तहुए अर्जुन ने, मनुष्यों का जो कुछ पराक्रम है वह सकल श्रीकृष्णजी की कृपा से ही प्राप्तहुआ है ऐसा माना॥ ६३ ॥ इसप्रकार ऐसे अनेकों प्रकार के पराक्रम इस भूलोक में, करके दिखानेवाले श्रीकृष्णजी ने, संसार के विषयों का सेवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जितैर्मखैः'' ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रेष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः ॥ अजसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥६६॥ इतिश्रीभागवते म० द० उ० द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच । सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुंगवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिः श्वेतमवेपाभिर्नवगौवनकांतिभिः ॥ कन्दुकादिभिरभ्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ॥ स्वलंकृतैर्भटै—रश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद्भृंगविहगैर्नादितायां समंततः ॥ ४ ॥ रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः ॥ वासितामलकरा और बहुतसी दक्षिणायुक्त यज्ञों से देवादिकों का आराधन करा ॥ ६४ ॥ सबों में श्रेष्ठता को पायेहुए तिन भगवान् ने, जैसे इन्द्र उचित समय में लोकों के ऊपर जल की वर्षा करता है तैसे ही ब्राह्मणादिक प्रजाओं के ऊपर उन के इच्छित सकल मनोरथों की योग्यकाल में वर्षा करी ॥ ६५ ॥ और कितने ही अधर्मी राजाओं को स्वयं मारकर और कितनो ही को अर्जुनादिकों से मरवाकर युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओं के द्वारा अनायास में धर्म की प्रवृत्ति करी ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में एकोननवतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे नब्बेवें अध्याय में फिर श्रीकृष्णजी की लीला संक्षेप से कही है और यदुवंश में उत्पन्नहुए पुरुषों का अनन्तपना कारणसहित कहा है ॥ * ॥ अब श्रीकृष्णजी की विभूति संक्षेप से दिखातेहुए श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि—हे राजन् ! सकल सम्पत्तियों से बढ़ीहुई, श्रेष्ठयादवों करके सेवन करीहुई, फूलों के वृक्षों के बगीचों से और फलयुक्त वृक्षों के बागों से भरीहुई, प्रफुल्लित वृक्षों की पक्तियों में उडतेहुए भौंरों से और विचरतेहुए पक्षियों से सब ओर से शब्दायमान करीहुई तथा वस्त्र आभूषण आदि धारण करनेवालीं, नवीन तरुणाई की कान्ति से युक्त और अपने २ महल में गेंद आदि खेलने की सामग्री लेकर खेलते में बिजली की समान चमकनेवाली स्त्रियों से युक्त और जिन के मद टपकरहा है ऐसे मदोन्मत्त हाथी, आभूषण धारण करेहुए वीर, घोडे, और सुवर्ण से मँढेहुए होने के कारण चमकनेवाले रथों की जिस में के मार्गों में प्रति दिन बिचपिच होती थी. ऐसी अपनी द्वारका नगरी में सुख के साथ रहनेवाले और सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों को एकही प्रियप्रतीत होनेवाले तिन लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजीने, उनस्त्रियोंके परमसम्पदाओंसे भरेहुए घरों में उतने ही सुन्दररूपधारण करके क्रीडा करी ॥ १ ॥ २ ॥ ३॥४॥ ५॥ उन सब घरों के आरामबागों में जो तालाब थे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तोयेषु कूजद्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषितां ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥ सिंच्यमानोऽच्युतस्तोयैर्हसंतीभिः स्मरेचकैः ॥ प्रतिसिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिंचन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कान्तं स्मरेचकजिहीर्षयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक् क्रीडाऽभिषङ्गधुतकुन्तलबद्धबंधः ॥ सिंचन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥११॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनां ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वे-

उन के निर्मल जल, उन में खिलेहुए—उत्पल, कह्लार, कुमुद और कमलों के सुगन्ध से उत्तम वसेहुए होरहे थे, उन तालावों के तटोंपर पक्षियों के समूह शब्द कररहे थे ॥ ६ ॥ उन तालावों में के जलों में प्रवेश करके बडेभारी ऐश्वर्यवाले उन श्रीकृष्णजी ने, उन स्त्रियों से आलिंङ्गित और उन के कुचों के केशर से लिप्तशरीर होकर क्रीडा करी॥ ७ ॥ उससमय प्रेम से मृदङ्ग, प्रणव, नगाडे, और वीणा वजानेवाले गन्धर्वों ने, उन का यश गाया; सूत, मागध और वन्दीजनो ने स्तुति करी ॥ ८ ॥ उससमय हास्य करनेवाली उन स्त्रियों ने, नल की और रङ्ग की पिचकारियें छोडकर जिन को भिगोया है ऐसे श्रीकृष्णजी ने, आप भी पलटे में उन को भिगोकर ' जैसे यक्षस्त्रियों के साथ कुवेर क्रीडा करता है तैसे, क्रीडा करी ॥ ९ ॥ उससमय वस्त्र भीगजाने के कारण जिन की जंघा और कुच स्पष्ट दीखरहे हैं, जिन के बडे २ केशपाशों में से फूल विखरकर गिर रहे हैं ऐसी, पिचकारियों से श्रीकृष्णजी को भिगोनेवाली वह स्त्रियें, श्रीकृष्णजी के हाथ में की पिचकारी को छीनलेने की इच्छा से, श्रीकृष्णजी के समीप जाकर और उन को दृढ आलिंगन करके, तिससे प्राप्तहुए कामदेव के उत्साह के कारण हर्ष से प्रफुल्लितमुखी होतीहुई शोभा पानेलगीं ॥१०॥ स्त्रियों के कुचों के केशर से जिन की माला लिपगई है, क्रीड़ा की आसक्ति से जिन का केशपाश खुलगया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी भी; अपनेआप वारंवार उन स्त्रियों को भिगोतेहुए और पलटे में उन स्त्रियों करके स्वयं भी भिगोयेजातेहुए ' जैसे हथिनियों से घिराहुआ हाथी क्रीडा करता है तैसे ' क्रीडा करनेलगे ॥ ११ ॥ उससमय नटों को, नटनियों को, और गानेवजाने से जीविका चलानेवाले पुरुषों को, श्रीकृष्णजी ने और उन की स्त्रियों ने, क्रीडा करने के निमित्त अपने आप जो वस्त्र धारण करे थे वह पुरस्कार (इनाम) में देदिये ॥ १२ ॥ इसप्रकार क्रीडा करनेवाले श्रीकृष्णजी की गति, भाषण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

लिपरिष्वंगैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडं ॥ चिंतयन्त्योऽरविंदाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयननहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥ नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किंवा मुकुन्दापहृतात्मलांछनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीतइन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भो स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेप्रियं ।

अवलोकन, मन्दमुसकुरान, हास्य, चौल और आलिंगन के द्वारा उन स्त्रियों की बुद्धियें अत्यन्त तन्मय होगई ॥ १३ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी की ओर जिन का चित्त जडा है ऐसी उन स्त्रियों ने, श्रीकृष्णजीकी समीपता न होने के समय मौनव्रत धारण करके, उन कमलनेत्र का चिन्तवन करतेहुए उन्मत्त की समान जो अनन्वित (अटसट) भाषण करे हैं वह मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ १४ ॥ वह स्त्रियें कहनेलगीं कि—अरी टटीरी-पक्षिणी ! इस जगत् में रात्रि के समय जागते समय के सब व्यापारों को छोडकर श्रीकृष्णजी के शयन करने पर, निद्रारहित तू उन की निद्रा का भङ्ग करतीहुई विलाप करती है, सोती नहीं हैं, यह तुझे योग्य नहीं है, हे सखि ! हमारी समान तू भी श्रीकृष्णजी के हास्य सहित उदार लीलायुक्त कटाक्षों से चित्त में अत्यन्त बिंधगई है क्या? ॥ १५ ॥ अरी चकवि ! रात्रि के समय तू अपने नेत्र क्यों मूँद रही है ? और तू करुणस्वर से पुकार रही है सो तेरा पति इससमय तेरी दृष्टि के सामने नहीं है क्या ? अथवा हमारी समान ही तू भी श्रीकृष्णजी के दासभाव को पाकर उन श्रीकृष्णजी के चरणों पर भक्तों की चढ़ाईहुई फूलों की माला को अपने केशपाश में धारण करने की इच्छा करती है क्या ? ॥ १६ ॥ अरे हे समुद्र ! निद्रा न आने के कारण जागताहुआ तू एकसमान शब्द कररहा है, सो हमें प्राप्तहुई अटलदशा को तू भी प्राप्तहुआ है क्या ? बडे दुःख की वार्त्ता है कि—श्रीकृष्णजी ने हमारे साथ सम्भोग करके हमारे कुचों के कुंकुम आदि के चिन्होंको हरणकरा तिस के कारण जैसे हम खिन्नहुई हैं तैसे ही कौस्तुभ आदि चिन्ह जिस के हरेगये हैं ऐसा तू खिन्न दीखरहा है ॥ १७ ॥ हे चन्द्रमा ! तू अतिबली क्षयरोग से ग्रसित हुआ है, इसकारण ही क्षीण होकर अपनी कान्तियों से अन्धकार का नाश नहीं करता है, सो तू भी हमारी समान ही श्रीकृष्णजी के रहस्यभाषणों को भूलकर उन के चिन्तवन में निमग्न होताहुआ, मौन होकर क्षीण हुआ है क्या ? हमें तो ऐसा ही दीखता है ॥ १८ ॥ हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्साकं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः श्रुत्वा श्रुत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥ २० ॥ प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महांतमर्थम् ॥ अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्धृदाः कराशिता बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्ते उक्तं पुरा ॥

मलयाचल के पवन! हमने तेरा कौनसा अप्रिय कार्यकरा है? कि-जिस से तू, श्रीकृष्णजी के कटाक्षों से अत्यन्त विधीहुई, हमारे हृदय में काम की प्रेरणा करता है ॥१९॥ हे सुन्दर मेघ! तू निःसन्देह श्रीकृष्णजी का मित्र है, क्योंकि-ताप हरना, श्यामता आदि भगवान् के गुण तुझ में दीखते हैं; इसकारण ही, तू हमारी समान उन के प्रेमसे बँधकर, उन श्रीवत्सलाञ्छन का ध्यान करता है क्या? अरे! तू हमारी समान ही, उन के दर्शन के विषयमें अत्यन्त उत्कण्ठित और प्रेम से आर्द्रचित्त होताहुआ, उन का वारम्वार स्मरण करके आँसुओ की धारा छोडरहा है; अरे! उन के साथ तू ने काहे को मित्रता करी, क्योंकि-उन की सङ्गति विरक्तों को सुख देनेवाली हो परन्तु गृहस्थियों को तो दुःख ही देनेवाली है ॥२०॥हेमञ्जुलकण्ठ कोकिल! तू मरेहुओं को भी जीवित करनेवाली इस कोमल वाणी से मुझे, प्रियबोलनेवाले श्रीकृष्णजी के शब्द की समान शब्द सुनाकर दिखाती है, सो अब बता-मैं तेरा कौनसा प्रियकार्य करूँ? ॥२१॥ हे उदारबुद्धे पर्वत! तू हलता नहीं है और बोलता भी नहीं है इस से किसी तो गहन अर्थ का विचार करता है? सो जैसे हम श्रीकृष्णजी के चरण को स्तन पर धारण करने की इच्छा करती हैं तैसे ही तू भी अपने, स्तनों की समान शिखरों से भगवान् के चरण को धारण करने की इच्छा करता है क्या? यदि ऐसा है तो तुझ भी हमारी समान ही दशा प्राप्तहुई है ॥ २२ ॥ हे समुद्रपत्नी नदियों! जैसे हम श्रीकृष्णजी के कृपाकटाक्षों को न पाकर, उन के, हृदय को चुरालेजाने के कारण अत्यन्त ही दुर्बल होगई हैं, तैसे ही तुम भी इससमय ग्रीष्मऋतु में अपने इच्छितपति समुद्र के जल को मेघ के द्वारा न पाकर, जिन के कुण्डे सूखगये हैं और जिन की कमलों की शोभा दूर होगई है ऐसी अत्यन्त ही दुर्बल होगई हो; सो तुम्हारा पति समुद्र मेघ के द्वारा अमृतवर्षा से तुम्हें आनन्द नहीं देता है, यह देखकर हम बडी दुःखित हुई हैं ॥ २३ ॥ उस ही समय तहाँ दैववश आयेहुए हंस को, यह दूत है ऐसा मानकर कहनेलगीं कि-हे हंस! तू आया, यह बडी अच्छी वार्त्ता हुई; तू यहाँ बैठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं स्त्रीभिर्लब्धमदः श्रियं धृते स--नैकनिष्ठां स्त्रियां ॥२४॥ इतीदृशैर्भावैः कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिं ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ यां संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां गुहुश्च दर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥

और दूध पी; हे हंस! तू हम से श्रीकृष्णजी की कथा वर्णन कर. तू श्रीकृष्णजी का दूत होकर आया है, यह हम जानती हैं; अरे! श्रीकृष्ण! आनन्द से तो हैं? श्रीकृष्णजीने 'तुझ समान प्रेमवती स्त्री इस गृहस्थाश्रम में मैं कहीं नहीं देखता हूँ, ऐसा जो' पहिले हम से कहा था उस का अत्र क्षणिक मित्रता रखनेवाले वह श्रीकृष्ण कभी स्मरण करते हैं क्या? यदि कहे कि स्मरण करके ही उन्होंने मुझे भेजा है तो अरे! छछोरे के दूत! हम उन के समीप काहे को जायँ? यदि कहै कि—कागसुख के निमित्त वह तुम्हें बुलाते हैं तो, उन को ही तू इधर बुलाला; तदनन्तर 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर जातेहुए उस को देखकर फिर कहने लगीं कि—जो हमें धोखा देकर इकली ही उन श्रीकृष्णजी का सेवन करती है उस लक्ष्मी के विना उन को इधर बुला. यदि कहे कि—वह उन के विषैं अनन्यभाव से प्रेम करती है उस को छोडकर कैसे आवेंगे? तो हम स्त्रियों में वही एक अनन्यभाव से प्रेम करनेवाली है? हम क्या अनन्यभाव से प्रेम नहीं करती हैं? ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार योगेश्वरों के ईश श्रीकृष्णजी के विषैं ऐसे करेहुए अनुपम प्रेम के प्रभाव से वह श्रीकृष्णजी की स्त्रियें परमगति को प्राप्त हुईं ॥ २५ ॥ उन का श्रीकृष्णजी के ऊपर ऐसा प्रेम होना कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—अनेकों पुरुषों करके अनेकों प्रकारके गीतों के द्वारा अनेकों प्रकार से गान करेहुए उन श्रीकृष्णजी का केवल श्रवण होय तो भी वह स्त्रियों के मन को बलात्कार से (जबरदस्ती) हरता है फिर उन को जो स्त्रियें साक्षात् देखें उन के मन को वह हरेंगे, इस का तो कहना ही क्या? ॥ २६ ॥ जिन स्त्रियों ने जगद्गुरु भगवान् की पतिबुद्धि से चरणशुश्रूषा आदि करके प्रेम से सेवन करा, उन स्त्रियों के तप का वर्णन हमसे कैसे होसक्ता है? ॥ २७ ॥ इसप्रकार सत्पुरुषों की गतिरूप भगवान् श्रीकृष्णजी ने, वेद में कहेहुए धर्मों का वारम्वार आचरण करके, यह दिखाया कि—यह घर धर्म, अर्थ और काम का स्थान है ॥ २८ ॥ गृहस्थाश्रमियों के परमधर्म का सेवन करनेवाले श्रीकृष्णजी की स्त्रियें सोलहसहस्र एकसौ आठ थीं ॥ २९ ॥ हे राजन्! स्त्रियों में रत्नरूप उन स्त्रियों में से रुक्मिणी आदि जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ॥ साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥ ३७ ॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ नैवेह तस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आ-

आठ पटरानियें, वह मैंने पहिले तुम से कही हैं और उन के पुत्रभी क्रम से कहेहैं॥३०॥ इन आठों को छोडकर दूसरी भी जितनी (१६१००) श्रीकृष्णजी की स्त्रियें थीं उन में से हर एक के विषें भी उन सत्यसङ्कल्प ईश्वर श्रीकृष्णजी ने दश २ पुत्र उत्पन्न करे, सब मिलकर श्रीकृष्णजी ने पुत्र (१६१०८०) थे॥ ३१ ॥ उन महापराक्रमी पुत्रों में अठारह पुत्र महारथी और बडे यशस्वी थे ; उन के नाम मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥३२॥ १ प्रद्युम्न, २ अनिरुद्ध, ३ दीप्तिमान्, ४ भानु, ५ साम्ब, ६ मधु, ७ बृहद्भानु, ८ चित्रभानु, ९ वृक, १० अरुण, ॥ ३३ ॥ ११ पुष्कर, १२ देवबाहु, १३ श्रुतदेव, १४ सुनन्दन, १५ चित्रबाहु, १६ विरूप, १७ कवि और १८ न्यग्रोध, यह थे ॥ ३४ ॥ हे राजेंद्र ! भगवान् के इन सब पुत्रों में भी रुक्मिणी का प्रथम पुत्र जो महारथी प्रद्युम्न, वह रूप में और गुणों में पिता (श्रीकृष्ण) की समान ही था ॥ ३५ ॥ उस महारथी ने, रुक्मी की कन्या रुक्मवती को वरा, उस से उन के दश सहस्र हाथी के बलवाला अनिरुद्धनामवाला पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ रुक्मी की कन्या के पुत्र ऐसे तिस अनिरुद्ध ने भी, रुक्मी के पुत्र की कन्या (रोचना) को वरा, तदनन्तर उस का तिस रोचना में वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसको, मूसलके कारण हुए यादवों के संहारमें से भगवान् ने शेष (बचाकर) रक्खा था॥३७॥ तिस वज्रसे प्रतिबाहु हुआ, तिसका पुत्र सुबाहु हुआ, तिस सुबाहुसे शान्तसेन हुआ, तिस का पुत्र श्रुतसेन हुआ॥३८॥ इसकुलमें कोईभीनिर्धन, थोडी सन्तानवाला, थोडी आयुवाला, थोडे पराक्रमवाला, और ब्राह्मणों की भक्ति से हीन नहीं हुआ ॥३९॥ हे राजन् ! यदुवंश में उत्पन्न हुए और प्रसिद्ध कर्म करनेवाले पुरुषों की गिनती करना, लाखों वर्षों में भी नहीं होसक्ता॥४०॥ क्योंकि—यदुकुल में के असंख्य बालकों को शिक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतं ॥ ४१ ॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनां ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते सेनाहुकः ॥ ४२ ॥ देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा हंसा बबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४२ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य बबृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ॥ यन्नामामंगलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृ-

देनेवाले गुरु तीन करोड आठसहस्र आठसौ (३०००८८००) थे ऐसा सुना है ॥४१॥ फिर महात्मा यादवों की गिनती कौन करसकेगा? जहाँ अयुतों (दश सहस्रों) के अयुत लाखों करके सहित वह उग्रसेन राजा राज्य करते थे ॥ ४२ ॥ पहिले अमृत की प्राप्ति के समय देवदैत्यों का संग्राम हुआ, तिस में जो अतिभयङ्कर दैत्य मारेगये थे वह ही, बहुतसे रूपों से मनुष्यों में उत्पन्न होकर भगवान्द में भरेहुए प्रजाओं को दुःख देनेलगे, इसकारण ॥४३॥ हे राजन्! उन का नाश करने के निमित्त,श्रीहरि के आज्ञा करेहुए देवता, यादवों के कुल में प्रकटहुए और उन के एक सौ एक (१०१) कुल थे ॥ ४४ ॥ उन कुल के प्रभुरूप से माननीय भगवान् श्रीकृष्णजी ही थे; जो यादव उन भगवान् की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले थे वह सब ही धन बल आदि से वृद्धि को प्राप्तहुए ॥ ४५ ॥ उन की दुःखभूलने की रीति कहते हैं कि—श्रीकृष्णजी के विषें चित्त लगानेवाले उन यादवों ने, सोना, बैठना, फिरना, बोलना, खेलना, और स्नान करना आदि कर्मों में लगेहुए अपने शरीरों का भी भान नहीं रक्खा; फिर वह और सब दुःखों को भूलगये, इस का तो कहना ही क्या ? ॥४६॥अब श्रीकृष्णजी की कीर्त्ति की जो सर्वोत्तमता और श्रीकृष्णजी की जो सकलदेवों में उत्तमता सो आश्चर्यकारी नहीं है, ऐसा वर्णन करते हैं—हे राजन् ! इस से पहिले, भगवान् के चरण के धोवन का जल जो गङ्गा वही सबों से बड़ा तीर्थ था, अब तो यादवों में जो श्रीकृष्णजी की कीर्त्तिरूप तीर्थ उत्पन्न हुआ है, वह तिस गङ्गा की अपेक्षा सब स्थान में सुलभ है और अधिक प्रभाववाला होने के कारण तिस ने उस गङ्गारूप तीर्थ को छोटा करछोड़ा है; जिन श्रीकृष्णजी की परमदयालुता के कारण शत्रु और मित्र सब ही सायुज्यमुक्ति को प्राप्तहुए, जिस के अपने को प्राप्त होने के निमित्त ब्रह्मादिकों का प्रयत्न चलरहा है, वह किसी को भी प्राप्त न होनेवाली, परिपूर्णलक्ष्मी, जिन श्रीकृष्णजीके आश्रय से रही है जिन का नाम सुननेपर अथवा उच्चारण करनेपर सकलप्रकार के अमङ्गलपने का नाश करता है और जिन्हों ने अनेकों ऋषियों के वंशों में धर्म की प्रवृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवं ॥ ४८ ॥ इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥ मैत्र्यस्तयाऽनुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयेति ॥ तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षिति भुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ७ ॥ ७ ॥

करी है, उन कालमूर्त्ति और चक्ररूप शस्त्र को धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी का यह पृथ्वी के भार का हरण करना कुछ आश्चर्यकारी नहीं है अर्थात् सब का संहार करनेवाले कालमूर्त्ति और विशेष करके अनन्तप्रभाववाले चक्र को धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी का यह कितनासा कार्य है? कुछ भी नहीं है॥ ४७॥ देवकी के विषैं जन्म को प्राप्तहुए केवल यही वर्णन करा परन्तु वास्तव में जन्मरहित, इच्छामात्र से अधर्म का नाश करने में समर्थ होकर भी क्रीडा के निमित्त अपनी भुजाओं से अधर्म को दूर करनेवाले, अधिकार की अपेक्षा न रखकर वृन्दावनमें के स्थावर जङ्गम जीवों के संसारदुःख का नाश करनेवाले और मन्दहास्ययुक्त श्रीमुख से गोलोकवासी तथा नगरवासी स्त्रियों को भोग के द्वारा मोक्ष देनेवाले वह जगन्निवासभगवान् श्रीकृष्णजी, श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित होतेहुए उत्कर्षको प्राप्त होरहेहैं॥ ४८॥ इसप्रकार अपने वेदोक्तधर्म की रक्षा करने के निमित्त, तिन २ कार्यों के प्रसङ्ग से मत्स्य आदि अनेकों अवतारधारण करनेवाले परन्तु उन में विशेष करके यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण रूप परमात्मा के, मनुष्यावताररूप चेष्टा का अनुकरण करनेवाले और जीवों के कर्मबन्धनों को तोड़डालनेवाले जो कर्म हैं उन को, इन श्रीकृष्णजी के चरण में आसक्ति की इच्छा करनेवाला पुरुष, अवश्य श्रवण करे ॥ ४९ ॥ तब श्रीकृष्णजी की सुन्दर कथाओं के श्रवण कीर्त्तन सहित चिन्तवन से प्रतिक्षण में बढ़ीहुई तिस आसक्ति करके ही मनुष्य, काल के दुस्तरवेग को शांत करनेवाले उन श्रीकृष्णजी के लोक को पाता है वह लोक इतना दुर्लभ है बड़े २ राजे भी जिस की अभिलाषासे अपने राज्य आदिकों को त्यागकर, श्रवण आदि साधनों का अनुष्ठान करतेहुए नगरों में से निकलकर वनों को चलेगये हैं॥ ५०॥ इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में नवतितम अध्याय समाप्त*

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्यपण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामक प०रामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितो दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

समाप्तोयं दशमस्कन्धः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ-एकादशस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिं ॥ १ ॥ ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरित्क्षितिभारगीर्भिः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिंतयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यं ॥ अन्तः कलिं यदुकु-

॥ श्रीः ॥ अब इस ग्यारहवें स्कन्ध में नौ योगीश्वर आदिकों के इतिहास के द्वारा इकतीस अध्यायों में संक्षेप से और विस्तार से मोक्ष के मार्ग का वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! बलरामजी सहित और यादवों से घिरेहुए श्रीकृष्णजी ने. पूतना आदि दैत्यों का अपने आप वध करके और कौरव पाण्डवों में बड़ामारी कलह उत्पन्न करके भूमि का भार उतारदिया ॥ १ ॥ इस को ही स्पष्टरूप से कहते हैं कि—दुर्योधन आदि शत्रुओं ने, कपट का जुआ खेलना, अपमान, सभा में द्रौपदी के केशों का खेंचना, विष देना, और लाखाघर में जलाना इत्यादि उपद्रव करके अनेको समय जिन पाण्डवों को कोपित करा था, उन को निमित्त करके उन पाण्डव और कौरवों का युद्ध करने का नियम ठहरजाने पर उन दोनो की सहायता करने के निमित्त दोनों पक्ष में होकर एक स्थान पर इकट्ठेहुए राजाओं को परस्पर मरवाकर श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार हरा, उन में जो पूतना आदि प्रकट दैत्य थे उन को स्वयं ही मारा और जो दैत्य बान्धवरूप थे उन को आपस में कलह करवाकर मरवादिया ॥ २ ॥ अपनी भुजाओं से रक्षा करेहुए यादवों के हाथ से, पृथ्वी के भाररूप दूसरे राजाओं की सेना को मरवाकर, जिन के कर्त्तव का कोई तर्क भी नहीं करसक्ता ऐसे उन श्रीकृष्णजी ने विचार करा कि—लोकदृष्टि से यद्यपि भूमि का भार दूर होगया है तथापि वह भार न दूरहुआसा ही है, ऐसा मैं निःसन्देह मानता हूँ, क्योंकि—अहो ! जिस का सहना अत्यन्त ही अशक्य है ऐसा यह यादवों का कुल अब भी ज्यों का त्यों ही है ॥ ३ ॥ यदि कोई कहेकि—इस को दूसरे से मरवादो तो—इस यादवकुल का तिरस्कार दूसरे देवादिकों से भी किसीप्रकार नहीं होसक्ता, क्योंकि—इस ने नित्य मेरा आश्रय करा है और यह हाथी घोडे आदि ऐश्वर्य से उच्छृंखल होरहा है, इसकारण इस का संहार करेविना कार्य नहीं चलेगा, इसकारण जैसे बाँसों के झड़े में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्त्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनां ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसां ॥८॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ विभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं कर्माचरन् भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदा-

रगड से अपने आप अग्नि उत्पन्न होता है तैसे ही इस यादवों के कुल में अब थोडे ही काल में कलह उत्पन्न करूँगा और मैं शान्ति को प्राप्त होकर अपने वैकुण्ठनामक लोक को जाऊँगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार सत्यसङ्कल्प और चाहें जो कुछ करने को समर्थ ऐसे श्रीकृष्णजी ने, निश्चय करके ब्राह्मण के शाप के मिष (बहाने) से अपने कुल का संहार करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर लोक में कहीं भी जिस की अपेक्षा अधिक सुन्दरता नहीं है अथवा जिस से लोकों को सुन्दरता प्राप्तहुई है ऐसी अपनी मूर्त्ति से लोकों के नेत्रों को अपने में आसक्त करके, तैसे ही अपनी उपदेशरूप वाणी से, तिस वाणी का स्मरण करनेवाले लोकों के चित्तों को आकर्षण करके और धूलि में उगेहुए अपने चरणों के चिन्हों करके तिनको देखनेवाले लोकों की गमन आदि चेष्टाओं को दूसरी ओर को प्रवृत्तहोनेसे रोककर और आगे को होनेवाले लोक, इस के द्वारा अनायास में संसारसमुद्र को तरजायँगे ऐसे विचार से कवियों के उत्तम श्लोकों में वर्णन करी जानेवाली अपनी कीर्त्ति का पृथ्वी-पर विस्तार करके प्रभु श्रीकृष्णजी ने अपने स्थान को गमन करा ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि—हे शुकदेवजी ! जो ब्राह्मणों की भक्ति से रहित, दान न करने वाले और वृद्ध पुरुषों की सेवा न करनेवाले होते हैं उन पुरुषों के ऊपर ही ब्राह्मण क्रोध करते हैं; यादव तो ब्राह्मणों के भक्त, परमदानी, निरन्तर वृद्ध पुरुषों की सेवा करनेवाले और श्रीकृष्णजी का ध्यान करनेवाले थे उन को ब्राह्मणों का शाप कैसे हुआ ? ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वह शाप कौन से निमित्त से हुआ ? किस प्रकार का था ? और एकचित्त रहनेवाले यादवों का परस्पर कलह कैसे हुआ ? यह सब कहो ॥ ९ ॥ इस विषय में ईश्वर की इच्छा ही कारण हुई ऐसा उत्तर कहते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—पूर्ण मनोरथ और उदारकीर्त्ति भगवान् ने, सकल सुन्दर वस्तुओं के निवासस्थानरूप शरीर को धारण करके, भूतल पर की द्वारकानगरी में रहकर, क्रीड़ा करते हुए और शुभकारक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रकीर्त्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो विसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरंगिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ॥ उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यंती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयिष्यति वो मंदा मुसलं कुलनाशनम् ॥ ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा तेनिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ साम्बस्य ददृशुस्ते-

कर्मों का आचरण करते हुए, भूमि का भार हरण करनामात्र अपना कार्य शेष रहा है ऐसा मन में विचारकर अपने कुलका संहार करने की मन में इच्छा करी ॥ १० ॥ लोकों के करेहुए कितने ही (अश्वमेधादिक) कर्म, केवल पुण्य ही उत्पन्न करते हैं कितने ही (पुत्रलालन आदि) कर्म तत्काल सुख देते हैं, कितने ही (प्रायश्चित्तआदि) कर्म केवल पापों का नाश करते हैं, श्रीकृष्णभगवान् ने तो—केवल कीर्त्तन आदि करने से ही पुण्य देनेवाले, अत्यन्त सुखरूप और गानेवाले पुरुषों के कलियुगी पापोंका नाश करने वाले कर्म करके, कालरूप से वसुदेवजी के घर में रहनेवाले उन्हो ने, कर्म करने के निमित्त जिन ऋषियों को बुलाया था, उन से सकल कर्म करवाकर जाने की आज्ञा दी तब वह ऋषि, द्वारका के समीप में के ही पिण्डारक क्षेत्र को चलेगये ॥ ११ ॥ वह ऋषि—विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ और नारद आदि थे ॥ १२ ॥ वह ऋषि, कुछदिनों पर्यन्त पिण्डारक क्षेत्र में रहतेरहे सो एक समय यादवों के कुमार खेलते खेलते उन ऋषियों के समीप गये, उस समय उन्हो ने, जाम्बवती का पुत्र जो साम्ब उसका स्त्री के वेष से स्वांग भरकर अपने साथ लेलिया था, उन उद्धत परन्तु नम्र से होकर अपनी दुष्टता दिखानेवाले कुमारोंने, उन ऋषियों के चरण पकड़कर प्रश्न कराकि—हे सफलज्ञानवान् ब्राह्मणों ! यह गर्भिणी स्त्री प्रसूता होने को होरही है, इस के पुत्र होय ऐसी इच्छा है, यह प्रत्यक्ष अपने मुख से आप से बूझने में लज्जित होती है अतः हमारे द्वारा आप से बूझती है सो—इस के पुत्र होगा वा कन्या होगी ? यह बताइये ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार धोखा दिये हुए वह ऋषि, क्रुद्ध होकर उन कुमारों से कहनेलगे कि—अरे मन्दभाग्यों ! यह स्त्री तुम्हारे कुलका नाश करनेवाला मूसल उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥ यह सुनकर अत्यन्त भय-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किं कृतं मंदभाग्यैर्नः किं वदिष्यंति नो जनाः ॥ इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीयं सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ॥ समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ॥ उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन् किलैरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्री० भा० म० ए० विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभी-

भीत हुए उन कुमारों नें, तत्काल ही साम्बका पेट खोलकर देखा तो उस में कुलका संहार करनेवाला लोहेका मूसल उन की दृष्टि पड़ा ॥ १७ ॥ तब वह परस्पर कहने लगेकि- अहो ! हम मन्दभाग्यों ने क्या करा? लोक अब हमें क्या कहेंगे? ऐसा कहकर घबड़ाए हुए वह कुमार मूसल को लेकर अपने घरों को गये॥ १८॥ फिर उस मूसल को राजसभा में ले-जाकर, जिन के मुख की शोभा अतिमलीन होगईहै ऐसे उनकुमारों ने, सब यादवोंके समीप, राजाउग्रसेन को अपना कराहुआ सब ऊधम सुनाया परन्तु श्रीकृष्णजी को कुछ वृत्तान्त नहीं सुनाया॥ १९॥ हे राजन्! द्वारकावासी लोक, उस ब्राह्मणों के अमोघशाप को सुनकर तैसे ही उसमूसल को प्रत्यक्ष देखकर विस्मित और भयभीत हुए॥ २०॥ तब यादवों के राजा उन उग्रसेन ने भी, श्रीकृष्णजी से विनाबूझे ही उस मूसल का चूरा करवाकर उस चूरे को और उस मूसल के शेष रहेहुए लोहे के टुकड़े को समुद्र के जल में फिकवादिया॥ २१॥ उस लोहे के टुकड़े को एक मत्स्य ने निगल लिया और उस चूरे के कण, तरङ्गों से बहते बहते जाकर समुद्र के किनारेसे लगकर वह तहाँ पतेल के रूप से उत्पन्न होगय ॥ २२ ॥ फिर समुद्र में कहारों ने दूसरे मत्स्यों के साथ जाल से वह मत्स्य भी पकडलिया, उस को एक लुब्धक ने बिकतेहुए मोल लेलिया उस को काटते समय उस के पेट में से एक लोहे का टुकडा मिला, वह उस लुब्धक ने, अपने बाण के अग्रभाग में लगवालिया॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्णजी तो उन सब वृत्तान्तों को जाननेवाले और उस शाप को दूर करने में भी समर्थ थे, परन्तु उन्होंने उस ब्राह्मणों के शाप को दूर करने की इच्छा ही नहीं करी, किन्तु स्वयं कालरूपी होने के कारण उस को अनुमोदन ही करा ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि- हे कुरुकुल के दीपक राजन्! श्रीकृष्णजी की, दर्शन नमस्कार आदि उपासना में उत्क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ को नु राजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणांबुजम् ॥ न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनां ॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनां ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्तथाऽपि पृच्छामो धर्मान् भागवतांस्तव ॥ यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते

ण्ठित नारदऋषि, उन श्रीकृष्णजी की भुजाओं से रक्षा करीहुई द्वारका में 'श्रीकृष्णजी के अन्यत्र जाने के निमित्त वारम्वार भेजने पर भी' वारम्वार आकर तहाँ ही रहते थे ॥ १ ॥ हे राजन्! सब ही लोकों में मृत्यु को प्राप्त होनेवाला कौनसा इन्द्रियवान् पुरुष, ब्रह्मारुद्र आदि श्रेष्ठ देवताओं करके भी उपासना करने योग्य श्रीकृष्णजी के चरणकमल का सेवन नहीं करेगा? अर्थात् सब ही करेंगे ॥ २ ॥ एक समय अपने घर आयेहुए और पूजा को ग्रहण करके सुख से आसन पर बैठेहुए उन नारदजी को नमस्कार कर के वसुदेवजी कहनेलगे ॥ ३ ॥ वसुदेवजी ने कहा कि—हे भगवन् नारदजी! जैसे माता-पिता का आना बालकों के कल्याण के निमित्त होता है अथवा जैसे भगवान् की प्राप्ति के मार्गरूप साधुओं का आना आध्यात्मिक आदि तीनों तापों से तपेहुए दीन पुरुषों के कल्याण के निमित्त होता है तैसे ही, तुम्हारा विचरना सकल प्राणियों के मङ्गल के निमित्त है ॥ ४ ॥ साधु, देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि—देवताओं के चरित्र, प्राणीमात्र को वर्षा आदि के द्वारा सुख देते हैं, ठीक है परन्तु वह किसी समय अतिवर्षा आदि के द्वारा दुःख भी देते हैं और भगवत् के स्वरूप में चित्त लगानेवाले तुमसमान साधुओं का चरित्र तो सब लोकों को सुख ही देता है ॥ ५ ॥ और देवता सुख देते हैं परन्तु जो पुरुष देवताओं का, जैसे छोटे बडे यज्ञादि कर्म करके आराधन करते हैं उन को देवता भी उन कर्मों की छोटाई बडाई के अनुसार तैसा ही फल देते हैं अर्थात् जैसे पुरुष की छाया, पुरुष जैसा कर्म करे उस का ही अनुकरण करती है तैसे ही देवता कर्मानुसार फल देनेवाले हैं और तुमसमान साधु तो दीनवत्सल हैं अर्थात् अपना उपकार कराने की अपेक्षा न कर के दूसरों का दुःख दूर करनेवाले हैं । ६ ॥ इस से हे ब्रह्मन्! तुम्हारे आगमन से, सत्कार से और सम्भाषण आदि कर के ही यद्यपि हम कृतार्थ होगये हैं तथापि जिन धर्मों से तुम्हारे ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हैं और जिन धर्मों को श्रद्धा के साथ सुननेवाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुराऽनन्तं प्रजाऽर्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येमह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभु-

---

पुरुष, सकल भयों से छूटता है वह भागवत धर्म कौनसे हैं उन को मैं बूझता हूँ ॥७॥ देव की माया से मोहित हुए मैंने, पूर्वजन्म में इस भूमिपर, भगवान् मेरे पुत्ररूप से उत्पन्न हों ऐसी इच्छा से ही उन मुक्तिदाता भगवान् का आराधन करा था, मोक्ष के निमित्त नहीं करा था ॥ ८ ॥ इससे हे सुव्रत नारदजी ! अब तुम्हारी कृपा से अनेको दुःखों करके युक्त और सब ओर भय से भरेहुए इस संसार से, जैसे हम अनायास में मुक्त हों तैसे स्पष्ट रीति से तुम हमें शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार बुद्धिमान् वसुदेवजी ने जिनसे प्रश्न करा है, और श्रीहरि के गुणों का प्रसङ्ग आने के कारण उन श्रीहरि के गुणों ने ही जिन को स्मरण कराया है ऐसे वह नारदजी, सन्तुष्ट होकर उन वसुदेवजी से कहनेलगे ॥ १० ॥ नारदजी ने कहा कि-हे यादवों में श्रेष्ठ वसुदेवजी ! क्योंकि-तुम सबों को पवित्र करनेवाले भागवतधर्म बूझते हो इसकारण तुम ने यह बडा श्रेष्ठ निश्चय करा है, अर्थात् इस तुम्हारे निश्चय से लोक में भागवत धर्मों की प्रसिद्धि होकर बहुतसे लोक कृतार्थ होंगे ॥ ११ ॥ हे वसुदेवजी ! सुनाहुआ, वारम्वार पढ़ाहुआ, ध्यान कराहुआ, आस्तिकता की बुद्धि से ग्रहण कराहुआ अथवा दूसरों के आचरण करनेपर प्रशंसा कराहुआ भागवत धर्म, जगत् का द्रोह करनेवाले भी लोकों को तत्काल पवित्र करता है ॥ १२ ॥ हे वसुदेवजी ! जिस के श्रवण कीर्त्तन पवित्र हैं ऐसा परम कल्याणरूप, भगवान् नारायण का, आज तुम ने मुझे स्मरण कराया है, यह मेरे ऊपर बडा उपकार करा है ॥ १३ ॥ इस भगवद्धर्म के निर्णय के विषय में योगिराज ऋषभ के पुत्रों का और महात्मा राजा जनक का सम्वादरूप यह पुरातन इतिहास तत्त्वज्ञानी पुरुष कहा करते हैं सो मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ १४ ॥ स्वायम्भुव मनु का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः ॥ कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥२०॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन्महीं ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृ-

प्रियव्रत नामवाला जो पुत्र था उस का पुत्र आग्नीध्र हुआ, तिस का नाभि और तिस का पुत्र ऋषभ हुआ ॥ १५ ॥ वह ऋषभदेव मोक्षधर्म को प्रवृत्त करने की इच्छा से वासुदेव का अवतार हुए थे, ऐसा बडों २ ने वर्णनकरा है, उन ऋषभदेव के भी वेद के पारगामी सौ पुत्रहुए ॥ १६ ॥ उन में बडा पुत्र भरत था, वह बडा भगवत्परायण था. यह पूर्वकाल का अजनाभ नामवाला अद्भुत खण्ड, जिन भरत के नाम से भरतखण्ड कहकर प्रसिद्ध हुआ है ॥ १७ ॥ उन भरत ने उपभोग करीहुई इस भूमि को त्यागकर वन में गमनकरा और तप के द्वारा श्रीहरि का सेवन करके तीन जन्मों में तिन श्रीहरि का सायुज्य प्राप्त करलिया ॥१८॥ शेष निन्यानवे पुत्रों में से नौ पुत्र इस भरतखण्ड के भीतर ब्रह्मावर्त्त आदि नौभूखण्डों के चारों ओर से राजेहुए, दूसरे इक्यासी पुत्र कर्ममार्ग को प्रवृत करनेवाले द्विजहुए ॥ १९ ॥ शेष जो नौ पुत्र रहे वह महाभाग्यशाली योगेश्वर हुए; वह परमार्थ का निरूपण करनेवाले, आत्मज्ञान के अभ्यास में परिश्रम करनेवाले, दिगम्बर और आत्मविद्या में प्रवीण थे ॥ २० ॥ उन के नाम—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन यह थे ॥२१॥ वह यह योगेश्वर, स्थूलसूक्ष्मरूप जगत् को यह भगवद्रूप ही है ऐसा देखतेहुए और उस भगवद्रूप से अपना अभेदपना देखतेहुए भूमि पर विचरते थे ॥ २२ ॥ और अब भी जिन की इच्छित गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती है ऐसे और कहीं भी आसक्त न होनेवाले वह नौ योगीश्वर, देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य किन्नर और नागों के लोक में तैसे ही मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज और गौओं के स्थानों में यथेच्छभाव से विचरते थे।२३। वह योगेश्वर, एक दिन भरतखण्ड में महात्मा निमि राजा के, जिस में ऋषियों के अनु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान्नृप ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥२५॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान रोचमानान स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनं ॥ २९ ॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥

छान चलरहे हैं ऐसे सत्र में स्वाभाविक इच्छा से अकस्मात आपहुँचे ॥ २४ ॥ हे राजन्! सूर्य की समान तेज के पुञ्ज तिन परमभगवद्भक्त योगेश्वरों को देखकर यजमान, ब्राह्मण, और मूर्त्तिमान् हुए आहवनीय आदि अग्नि, यह सब ही उठकर खडेहुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर राजा निमि ने, उन को नारायण के परमभक्त जानकर, प्रसन्नता के साथ आसनपर बैठाकर उन का अवस्थाके क्रम से विधिपूर्वक पूजन करा ॥ २६ ॥ और अति प्रसन्न तथा नम्रतायुक्तहुए तिस निमि राजा ने, अपनी कान्ति से प्रकाश पानेवाले और ब्रह्माजी के सनकादिक पुत्रों की समान उन नौ योगेश्वरों से प्रश्न करा ॥२७॥ विदेहने कहाकि—मैं तुम्हे साक्षात् विष्णुभगवान् के पार्षद हो ऐसा जानता हूँ, यदि कहो कि—यहाँ भगवान् के पार्षद कहाँसे आये ? तो—विष्णुभगवान् के पार्षद लोकों को पवित्र करने के निमित्त सर्वत्र विचरते हैं ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २८ ॥ जीवों का क्षणभंगुर भी यह मनुष्य शरीर 'मोक्ष का साधन होने के कारण दुर्लभ है' और उस मनुष्य जन्म में भी भगवद्भक्तों का दर्शन दुर्लभ है ऐसा मैं मानता हूँ ॥२९॥ इसकारण हे राग लोभ आदि दोषों से रहितों ! मैं तुमसे बूझता हूँ कि—जगत् मे सर्वोत्तम कल्याणकारी साधन कौनसा है ? क्योंकि—इस संसार में मनुष्यों को आधाक्षण भर भी सत्समागम होना, जैसे निधि (खजाना) मिलने पर आनन्द होता है तैसे आनन्द देनेवाला है ॥ ३० और उस सर्वोत्तम कल्याण को सुनने का यदि हमें अधिकार होय तो भगवान् को प्रसन्न करनेवाले भागवतधर्मों को कहिये; जिन धर्मों से प्रसन्नहुए अजन्मा भगवान्, शरणागत भक्त को अपना स्वरूप भी देदेते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी ने कहा कि—इसप्रकार राजा निमि के प्रश्न करने पर वह कवि हरि आदि नौ योगेश्वर प्रीति से समासद और ऋत्विजोंसहित उस निमि राजा का सत्कार करके नवों जने क्रम २ से एक करके भाषण करनेलगे और शेष, भगवद्धर्मों के सुनने में तत्पर हो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यं। उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बु-

कर तहाँ ही बैठेरहे; उस समय राजा निमि ने, १ भगवद्धर्म, २ भगवद्भक्त, ३ माया, ४ माया को तरने का उपाय, ५ ब्रह्म, ६ कर्म, ७ अवतारलीला, ८ अभक्तों की गति और, ९ युगों का अनुक्रम यह नौ विषय जानने के निमित्त नौ प्रश्न करे, तिन में से एक २ प्रश्न का उत्तर कवि आदि एक २ ने कहा है ॥३२॥ तिन में से कवि ने सर्वोत्तम कल्याण का वर्णन करतहुए कहाकि—हे राजन्! इस संसार में, जिस का कभी भी नाश नहीं होता ऐसी भगवान् के चरणकमल की उपासना करना, यह ही कालकर्म आदि सकल भयों से रहित कल्याणकारी उत्तम साधन है, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि—जिस उपासना में देहादिकों के विषैं आत्मबुद्धि करके सदा बनारहनेवाला, जिस की बुद्धि उद्विग्न हुई है ऐसे पुरुष का भय, सब प्रकार से दूर होजाता है ॥ ३३ ॥ अब भागवतधर्मों का लक्षण कहते हैं कि- हे राजन्! भगवान् ने, मनुयाज्ञवल्क्य आदिकों के मुख के द्वारा वर्णाश्रम आदि का धर्म कहकर अतिगुप्त होने के कारण न जाननेवाले भी पुरुषों को सुख से आत्मप्राप्ति होने के निमित्त जो श्रवण आदि उपाय अपने आप कहे हैं वही भागवतधर्म हैं, ऐसा तुम जानो ॥ ३४ ॥ हे राजन्! जिन भागवतधर्मों को पालन करनेवाला पुरुष, जैसा योग आदि का अभ्यास करनेवाला विघ्नों से तिरस्कार पाता है तैसे तिरस्कार नहीं पाता है और इस भागवत धर्म में दोनो नेत्रों को मूंदकर दौडनेवाला भी पुरुष, ठोकर नहीं खाता है और गिरता भी नहीं है; यहाँ दोनो नेत्र श्रुति और स्मृति को समझना; ऐसा कहा है कि—श्रुति और स्मृति यह ब्राह्मणों के दो नेत्र हैं इन में से एक से रहित होय तो काणा और दोनों से रहित होय तो अन्धा कहाता है तैसे ही एक चरण रखने के स्थान को छोडकर शीघ्रता से दूसरा चरण रखने के स्थान में पहिला चरण रखकर चलने को दौड़ना कहते हैं, इन भगवत्सम्बन्धी धर्मों में श्रुति स्मृति के विषैं कहीहुई रीति विदित नहीं होय तो अथवा इस भागवतधर्म के आचरण के समय-क्रम से करने योग्य किसी विधि को भूलकर अगली विधि करी जायतो दोषी नहीं होता है और फल से भ्रष्ट भी नहीं होता है अर्थात् उस अनुष्ठान को पूर्ण रीति से करने का फल पाता है ॥ ३५ ॥ यदि कहोकि—वह भागवतधर्म कौन से हैं? तो—शास्त्र में कहीहुई विधि से करेहुए कर्म ही ईश्वर को अर्पण करनेपर भागवत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्मायया ऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसङ्कल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुंध्याद्भयं ततः स्यात्॥३८॥शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि

धर्म होता है ऐसा नियम नहीं है, किन्तु-देह से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अहङ्कार से और अध्यास से गानाहुआ जो ब्राह्मणत्व आदि स्वभाव तिस करके भी प्राणी जो जो कर्म करता है उन उन सब कर्मों को वह परमेश्वर नारायण के अर्पण करे; इस रीति से शरीर आदि सब ही धर्म भागवत धर्म होते हैं॥३६॥ अब अज्ञान से कल्पना कराहुआ भय, ज्ञान से ही दूर होता है इसकारण परमेश्वर के भजन से क्या होगा? ऐसा कहो तो-क्योंकि भय ईश्वर की माया से होता है इसकारण गुरु के विषैं ही ईश्वर की और आत्मा की भावना करनेवाला पुरुष, अनन्य भक्ति से उन ईश्वर का ही सेवन करे, यदि कहोकि-भय देहाभिमान से होता है, वह देहाभिमान अहङ्कार से होता है और वह अहङ्कार स्वरूप का ज्ञान न होने से होता हैं; इस में ईश्वर की माया क्या करती है? तो-ईश्वर से विमुखहुए पुरुष को भगवान् की माया से ही भगवान् के स्वरूप का अस्फुरण (ज्ञान का अभाव) होता है तिस से देह के ऊपर 'मैं' इसप्रकार की और अन्यों के ऊपर 'यह पराये हैं' ऐसी बुद्धि होती है तदनन्तर पराये मानेहुए शत्रु रोग आदिकों से भय होता है ऐसा लौकिक माया में भी प्रसिद्ध है इसकारण ही भय की मूल कारण जो माया तिस के नियन्ता ईश्वर का भजन करे ॥ ३७ ॥ अब, जिस का चित्त विषयों से विक्षिप्तहुआ है ऐसे पुरुष को अनन्यभक्ति कहाँ? और उस अनन्यभक्ति के प्राप्तहुए विना अभय कैसे होयगा? ऐसी शङ्का होने पर, विषयों के मिथ्याभूत होने के कारण मन को वश में करके भजन करने पर अभय प्राप्त होयगा ऐसा कहते हैं कि हे राजन्! जैसे स्वप्न में देखाहुआ पदार्थ अथवा जागते में किसी-मनोरथ के समय मन में विचाराहुआ पदार्थ वास्तव में मिथ्या होने पर भी सत्यसा भासता है तैसे ही यह द्वैत प्रपञ्च यद्यपि वास्तव में परमार्थरूप नहीं है तथापि इसका ध्यान करनेवाले पुरुष को, यह परमार्थरूप है ऐसा प्रतीत होता है इसकारण चतुरपुरुष, कर्मके सङ्कल्पविकल्प करनेवाले अपने मन को रोके तब अनन्यभक्ति प्राप्त होकर अभय मिलेगा॥३८॥अब यदि कहोकि-यह मनको वशमें करनेका मार्ग बडा कठिनहै तो-दूसरा सुलभ मार्ग यह है कि-चक्रपाणि भगवान् के कल्याणकारी जन्म, कर्म और जन्म तथा कर्मों के अर्थोंके अनुसार 'देवकीनन्दन' 'गोवर्द्धनोद्धरण' इत्यादि लोकोंमें गायेहुए जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायन्विलज्जो वि-चरेदसङ्गः ॥ ३९ ॥ एवंव्रतःस्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृ-

प्रसिद्धनाम हैं उनका श्रवण और गान करताहुआ पुरुष निर्लज्जपने से और निरीहपनेसे भूमिपर विचरे॥३९॥इसप्रकार वर्त्ताव करनेवाला,श्रीहरिके नाम कीर्त्तनसे जिसका श्रीहरि के विषैं प्रेम उत्पन्न हुआ है और जिस का चित्त द्रवीभूत हुआ है ऐसा भक्त, लोकों को दिखाने के निमित्त दम्भ करनेवाले पुरुष की समान नहीं किन्तु पिशाच से झपटाहुआसा परवश होकर एकाधसमय भगवान् को भक्तों ने जीतलिया है ऐसा मन में विचारकर खिलखिलाके हँसता है, कभी-इतने समय पर्यन्त भगवान् ने मेरी सुध नहीं ली है ऐसा मन में विचारकर रुदन करता है कभी—हे हरे! मेरे ऊपर अनुग्रह करो, इसप्रकार चिल्लाता है, किसी समय अतिहर्ष के साथ गान करता है और जीतलिया जीतलिया ऐसा मानकर नृत्य करता है ॥ ४० ॥ अब दूसरा उपाय कहते हैं कि—आकाश, वायु,अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, जीवजन्तु, दिशा, वृक्षादिक, नदियें, समुद्र और दूसरे जो कुछ प्राणीमात्र हैं सो सकल भगवान् का ही स्वरूप हैं ऐसा जानकर अनन्यभाव से उन को नमस्कार करे ॥ ४१ ॥ अब यह गति, योगिजनों को बहुतसे जन्मों कर के भी दुर्लभ है सो केवल नामकीर्त्तन से एक ही जन्म में कैसे प्राप्त होयगी ? ऐसी शङ्का आने पर दृष्टान्तसहित कहते हैं कि—भोजन करनेवाले पुरुष को,ग्रासग्रास में ही नहीं किन्तु शीत २ में भी सन्तोष,पेट भरना और भूँख की निवृत्ति होती है तैसे ही भगवान् का भजन करनेवाले पुरुष को प्रेमरूप भक्ति, प्रेम की आश्रयरूप भगवान् के स्वरूप की स्फूर्त्ति और तिस से तृप्तहुए को घर स्त्री आदि में वैराग्य यह तीनों, भजन के समय एकसाथ प्रकट होते हैं और जैसे बहुतसे ग्रास भक्षण करने से सुखादिकों की वृद्धि होती है तैसे ही बहुतसा भजन करने से परमभक्ति आदि प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! इसप्रकार अविछिन्नपने से भगवान् के चरण का भजन करनेवाले भगवद्भक्त को, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान यह प्राप्त होते हैं और तदनन्तर वह अन्तकाल में परमशान्ति पाता है ॥४३॥ भगवद्भक्त को, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य यह प्राप्त होते हैं ऐसा सुनकर राजा ने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णाम् ॥ यथा चरति यद्ब्रूते ''यैर्लिं--ङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजा-

कि—हे ऋषियों! अब भगवद्भक्तों के विषय में कहो कि—वह भगवद्भक्त, कौनसे धर्म-पर निष्ठा रखता है? उस का स्वभाव कैसा होता है? वह मनुष्यों में कैसा वर्त्ताव रखता है? क्या बोलता है? और वह कौनसे चिन्ह धारण करने पर भगवान् को प्रिय होता है? ॥ ४४ ॥ यह सुनकर हरिनामक योगेश्वर कहनेलगे कि—जो पुरुष, अपने आत्मा का सकलभूतों में ब्रह्मभावें से अनुस्यूतपना (पुराव) है ऐसा देखता है अथवा मच्छर आदि सकल प्राणियों में नियन्ता होकर रहनेवाले परमात्मा श्रीहरि का, परम ऐश्वर्यादिमान्पना ही है. न्यूनाधिकभाव नहीं है, ऐसा जो देखता है; तैसे ही ऐश्वर्य आदि गुणपूर्ण तिन श्रीहरि के विषें सकलभूत हैं और तिन जड, मलिनभूतों का आश्रय होने से जो श्रीहरि के ऐश्वर्य आदिकों का कमीपना नहीं देखता है वह पुरुष भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष, ईश्वर में प्रेम, भगवान् के भक्तों के साथ मित्रता, अज्ञानी पुरुषों के ऊपर कृपा और शत्रुओंकी उपेक्षा करताहै वह भेददर्शी होनेके कारण मध्यम भगवद्भक्त है ॥४६॥ जो पुरुष, मूर्त्ति के विषें ही श्रद्धा से श्रीहरि को पूजा समर्पण करता है, भगवद्भक्तों की पूजा नहीं करता है, औरों की तो सर्वथा ही नहीं करता है वह पुरुष प्राकृत (अब ही भक्ति का आरम्भ करनेवाला) भक्तहै, वहआगे को मध्यम और उत्तम होयगा ॥ ४७ ॥ अब फिर आठ श्लोकों से उत्तम भगवद्भक्तों के लक्षण कहते हैं—श्रीवासुदेव भगवान् की ओर चित्त लगानेवाला भगवद्भक्त, पहिले तो इन्द्रियों से विषयों का सेवन ही नहीं करता है, कदाचित् करे भी तो, यह जगत् भगवान् की मायारूप है ऐसा जानकर जो पुरुष, प्रतिकूल विषयों से द्वेष नहीं करता है और अनुकूल विषयों से हर्षित नहीं होता है वह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष, भगवान् का निरन्तर स्मरण करके, देह के धर्म—जन्म मरण, प्राण के धर्म क्षुधा और तृषा, मन का धर्म—भय, बुद्धि का धर्म—आशा और इन्द्रियों का धर्म श्रम, इन संसार के धर्मों से मोहित नहीं होता है वह भगवद्भक्तों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै सं हरेः प्रियः ॥५१॥ न यस्य स्वः परइति वित्तेष्वात्मनि वाभिदा॥ सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्य-कुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनि-मिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखम-णिचंद्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जिस के चित्त में—काम, कर्म और तिनकी वासना इनकी उत्पत्ति ही नहीं होती है और जिन का एक वासुदेव ही आश्रय हैं वह उत्तम भगवद्भक्त हैं ॥५०॥ जिस को, उत्तम कुल में हुए जन्म, तप आदि कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति के द्वारा इस शरीर में कुछ भी अहङ्कार नहीं होताहै वहपुरुष, श्रीहरिका प्यारा भक्त होताहै ॥ ५१ ॥ जिस को द्रव्य में यह अपना और दूसरे का ऐसा तथा शरीर के विषैं यह अपना और यह दूसरे का ऐसा भेद प्रतीत नहीं होता है और जो सब प्राणीमात्र में समान बुद्धि रखकर शान्त होता है उस को उत्तम भगवद्भक्त कहै॥ ५२ ॥ जो पुरुष, कोई कहेकि—त्रिलोकी का राज्य देता हूँ तब भी 'भगवान् के विषैं चित्त लगानेवाले देवादिक भी जिस की खोज करते हैं ऐसे, भगवान् के चरणारविन्द से आधेलव वा आधे निमेष(पलक लगाने) समान काल को भी चलायमान नहीं होता है, भगवान् के चरणकमल से अन्य सब तुच्छ है ऐसा जानकर उसका ही निरन्तर स्मरण करनेवाला जो पुरुष वह विष्णु भगवान् के भक्तों में श्रेष्ठ होता है ॥ ५३ ॥ और भगवान् के चरणारविन्द से चलायमान होना इन विषयों की इच्छा से मन को सन्ताप होने पर कदाचित् होजाय, परन्तु भगवत्सेवा से परम सुख मिलने के कारण, भगवान् के महापराक्रमी चरणों की अंगुलियों पर के नखरूप मणियों की चन्द्रमा की समान शीतल कान्ति से एकवार जिस के सम्पूर्ण ताप नष्ट होगये हैं ऐसे भक्त के हृदय में, वह विषयवासनारूप ताप फिर कैसे उत्पन्न होयगा ? किन्तु जैसे रात्रि में चन्द्रमा का उदय होनेपर सूर्य का ताप किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है तैसेही वह ताप कदापि उत्पन्न नहीं होगा ॥ ५४ ॥ ज्वरादि पीड़ा से प्राप्त हुई पराधीन दशा में केवल नामकीर्त्तन करने पर भी, सकल पापों का नाश करनेवाले साक्षात् श्रीहरि, मेरा चरणकमल इस भक्त ने प्रेमरूप डोरी से बँधकर अपने हृदय में धारण करा है ऐसा जानकर जिस के हृदय को कभी नहीं छोड़ते हैं वह, शास्त्र में वर्णन कराहुआ श्रेष्ठ भगवद्भक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ५५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसम्वादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ छ ॥ राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामो भगवंतो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान् स भुंजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह

है ॥ ५५ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ यह सब जगत् विष्णुभगवान् की मायारूप है ऐसा जो जानता है वह उत्तम भक्त है यह कहा, इस कारण माया के विषय में प्रश्न करताहुआ राजा कहने लगाकि-हे ज्ञानियों में श्रेष्ठों! सबों के कारण और सबों के अन्तर्यामी ऐसे विष्णु भगवान् की, मायावी ब्रह्मादिकों को भी मोहित करनेवाली माया को जानने की हम इच्छा करते हैं इसकारण तुम उस का हम से वर्णन करो ॥ १ ॥ अब पहिले कहेहुए लक्षणों से युक्त भगवद्भक्त होकर तू कृतार्थ है, बहुतसे प्रश्नों से क्या करना है ? ऐसा कहोतो-संसार के तापों से अत्यन्त तपाहुआ मैं, तिन संसार के तापों की औषध ऐसे हरि कथामृतरूप तुम्हारे भाषण को सेवन करते में तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २ ॥ ऐसा प्रश्न सुनकर अन्तरिक्ष नामक योगेश्वर कहने लगे कि-हे महापराक्रमी राजन्! अपनी उपासना करनेवाले जीवों को उत्तम सिद्धि प्राप्त होने के निमित्त अथवा अपने अंशरूप उन जीवों को भोग और मोक्ष देनेके निमित्त सब के कारणरूप परमेश्वर ने, अपने, उत्पन्न करेहुए पञ्चमहाभूतों से, छोटे बडे प्राणियों के जो शरीर उत्पन्न करे हैं यह भगवान् की माया है॥३॥ इसप्रकार जीवों के ऊपर उपकार करने के निमित्त पञ्चमहाभूतों के रचेहुए शरीरों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हुए वह भगवान्, मन के और इन्द्रियों के रूप से अपना विभाग करके जीव से तिन २ इन्द्रियोंके द्वारा विषयों का जो सेवन कराते हैं यही भगवान् की माया है॥४॥तदनन्तर वह जीव,अन्तर्यामी आत्मा करके प्रकाशित करीहुई इन्द्रियों द्वारा विषयोंका उपभोग करता हुआ उत्पन्नहुए इस शरीर को,यही मैं हूँ ऐसा मानकर और उस शरीर में आसक्त होकर संसार को प्राप्त होता है यही भगवान् की माया है॥५। अब, विषयभोग करनेवाले जीव की भोग की समाप्ति के अनन्तर मुक्ति होयगी, ऐसा होतेहुए वह जीव, संसार को कैसे प्राप्त होता है ? ऐसा कहो तो-कर्मेंद्रियों करके वासनायुक्त कर्म करनेवाला और तिन २

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकं ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा

कर्मों के सुखदुःखरूप फलों को ग्रहण करनेवाला यह जीव, इस जन्ममरणरूप संसार में वारम्वार आताजाता है, मुक्त नहीं होता है यही भगवान् की माया है ॥ ६ ॥ कितने कालपर्यन्त भ्रमण को प्राप्त होता है ? ऐसा कहो तो—इसप्रकार अनेक दुःख देनेवाली कर्मगति को प्राप्त होनेवाला और परवश हुआ यह जीव, जगत् का प्रलय होनेपर्यन्त जन्ममरण पाता है यह भगवान् की माया है ॥ ७ ॥ इसप्रकार मायामय सृष्टि कहकर अब उस का लय कहते हैं—पञ्चमहाभूतों के नाश का कारण प्राप्त होने पर, जिस के आदि और अन्त नहीं हैं ऐसा काल, स्थूलसूक्ष्मरूप जगत् को अव्यक्त ईश्वर के स्वरूप में लेजाने के निमित्त तिस जगत् को खेंचता है यही भगवान् की माया है ॥ ८ ॥ प्रलय होने का समय आते ही भूमि पर सौवर्षपर्यन्त भयङ्कर अनावृष्टि होती है और उस समय जिस में अत्यन्त उष्णता बढी है ऐसा सूर्य तीनों लोकों को सन्ताप देता है, यह भगवान् की माया है॥९॥ पाताल से लेकर जगत् को जलाने में लगाहुआ और वायु का प्रेरणा कराहुआ शेषजी के मुख का अग्नि, चारों ओर से फैलकर बढनेलगता है यह भी भगवान् की माया है॥१०॥ फिर प्रलय करनेवाले मेघों का समूह, हाथी की सूंड की समान मोटी धाराओं से सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा करता है तब ब्रह्माण्ड जल में लीन होजाता है यह भगवान् की माया है ॥११॥ हे राजन् ! फिर ब्रह्माण्डशरीर विराट्पुरुष, अपने ब्रह्माण्ड शरीर का त्याग करके, किसी प्रकार से भी प्रकट न होनेवाले सूक्ष्म ब्रह्म में प्रवेश करता है यह भगवान् की माया है ॥ १२ ॥ इसप्रकार विराट् पुरुष का लय कहकर अब ब्रह्माण्ड के कारण पृथिवी आदिकों का लय कहते हैं कि-तदनन्तर वायु ने जिस का गन्धगुण हरण करा है ऐसी पृथ्वी जल में लीन होती है, फिर उस जल के भी रसगुण को वायु के हरण करलेनेपर वह जल, तेज में लीन होता है ॥ १३ ॥ तदनन्तर प्रलयकाल के अन्धकार के उस तेज के रूपगुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी॥त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१६॥ राजोवाच ॥ यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरन्त्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणां ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः॥१९॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्ति-

को हरण करलेने पर वह तेज वायु में लय पाता है, तदनन्तर वायु के स्पर्शगुण को आकाश के हरण करलेने पर वह वायु आकाश में लीन होजाता है, आकाश के शब्दगुण को काल के हरण करलेने पर वह आकाश तामस अहङ्कार में लीन होता है ॥ १४ ॥ हे राजन्! इन्द्रियें और बुद्धि यह राज अहङ्कार में लीन होते हैं मन और इन्द्रियों के देवता भी सात्विक अहङ्कार में प्रविष्ट होते हैं फिर वह अहङ्कार तीनों प्रकार के अपने कार्यों सहित महत्तत्त्व में और वह महत्तत्त्व प्रकृति में लीन होताहै ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार उत्पत्ति,स्थिति और लय करनेवाली भगवान् की त्रिगुणमयी माया, हमने तुम से वर्णन करी, अब दूसरा क्या सुनने की इच्छा करते हो ? ॥ १६ ॥ तब राजा निमि कहनेलगा कि—हे महर्षे ! मन को वश में न करनेवाले पुरुष जिस को न तरसकें ऐसी इस ईश्वर की माया को,शरीर पर अहंबुद्धि रखनेवाले पुरुष, जैसे अनायास में तरसकें सो मुझ से कहो ॥ १७ ॥ तब, माया को तरने के विषय मे भक्ति के सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है ऐसा मन में विचार कर, साधन सहित भक्ति का वर्णन करने के निमित्त पहिले वैराग्य के द्वारा गुरु के सेवन की रीति कहतेहुए प्रबुद्धनामक योगेश्वर करने लगे कि—हे राजन् ! दुःखों को दूर करने के निमित्त और सुख को प्राप्त करने के निमित्त कर्म करने का प्रारम्भ करनेवाले और स्त्री के साथ मिथुनधर्म को स्वीकार करके रहनेवाले पुरुषों को उन के कर्मों के, उन के विचारों से उलटे (दुःखरूप) फल प्राप्त होते हैं ऐसा देखो॥ १८ ॥ कर्मों से प्राप्त करेहुए भी धन आदिक सुख के कारण नहीं होते हैं ऐसा भी देखो; इसप्रकार कि निरन्तर (मिलने के समय,रक्षा करने के समय और उस का नाश होने के समय भी) दुःखदेनेवाले, दुर्लभ और अपनीमृत्युरूप धन तैसे ही घर, सन्तान, सम्बन्धी और पशु इन मिलेहुए चञ्चल (एकसमय अवश्य छूटनेवाले) पदार्थों से प्राणी को कौन सुख होना है ? अर्थात् कोई सुख नहीं मिलेगा ॥ १९ ॥ इसप्रकार यह लोक और इस लोक में के सुख जैसे नाशवान् हैं तैसे ही कर्म से प्राप्त कराहुआ परलोक और उस में के सुख भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नां ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः॥ अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥२२॥ सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवं ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेततां ॥ विविक्तचीरवसनं सन्तोषो येनकेनचित्॥२५॥श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिंदामन्यत्र चापि हि ॥

नाशवान् हैं ऐसा जाने, क्योंकि यहाँ के माण्डलिक राजाओं की समान तहाँ रहनेवाले प्राणियों को भी समान सुखसम्पत्तिवालों के साथ स्पर्धा, अधिकसुख सम्पदावालों की निन्दा और वह लोक नाशको प्राप्तहोगा इसकारण अटल दुःख यह सब होते ही हैं॥२०॥ इसकारण अपने उत्तम कल्याण को जानने की इच्छा करनेवाला पुरुष, वेदब्रह्म में पारङ्गत होने के कारण सकल सन्देहों को दूर करनेवाले, परब्रह्म में साक्षात् अनुभव से निष्णात होने के कारण शिष्यों के मन में आत्मज्ञान बैठादेनेवाले और परमशान्ति के साक्षात् स्थान ऐसे गुरु की शरण जाय ॥ २१ ॥ और उन के समीप रहकर उन को ही आत्मा और इष्टदेव माननेवाला वह पुरुष, निष्कपटरूप से उन गुरु की सेवा कर के उन से भगवतधर्म सीखे, जिन धर्मों के द्वारा आत्मरूप और भक्तों को आत्मस्वरूप देनेवाले हरि प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ तिस में पहिले देह, स्त्री, पुत्र, धन आदि के विषैं मन की अनासक्ति (वैराग्य) सीखे; साधुओं की संगति करने की रीति सीखे, अपने से दीन प्राणियों के ऊपर दया, समान प्राणियों के साथ मित्रता, और अपने से अधिक योग्यता वाले प्राणियों से नम्र रहना, यह यथायोग्य गुण प्रत्यक्ष सीखे ॥ २३ ॥ मृत्तिका और जल आदि से देह की बाहरी और भीतरी पवित्रता, अदम्भ और भगवान् के ध्यान आदि करके मन की पवित्रता, स्वधर्म का आचरण, क्षमा, निरर्थक वार्त्तालाप करने का त्याग, अधिकार के अनुसार वेद को पढना, सरलता, ऋतुकाल में अपनी स्त्री के साथ समागम करना इत्यादि ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुखदुःख, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वपदार्थों में हर्षशोक न करना । २४ ॥ सकल प्राणियों में सच्चिदानन्दरूप से रहनेवाले आत्मा को देखना, नियन्तारूप से ईश्वर को देखना, एकान्त में वास करना, घर आदिकों के ऊपर का अभिमान त्यागना, कहीं निर्जन स्थान में पडेहुए शुद्ध चीथडों को अथवा भोजपत्र आदि को पहरना, जो अनायास में मिले उस से ही सन्तोष मानना ॥२५॥ भगवान् का वर्णन करनेवाले शास्त्र में श्रद्धा करना और दूसरे शास्त्रों की निन्दा न करना, प्राणायाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान् गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥ ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्या चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ॥ नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवता-

के द्वारा मन का दण्ड, मौन से वाणी का दण्ड, उद्योग को त्यागकर कर्म का दण्ड, सत्य, अन्तःकरण का निग्रह, बाहरी इन्द्रियों का निग्रह ॥ २६ ॥ अद्भुतकर्म करनेवाले हरिभगवान् के जन्म, कर्म और गुणों को सुनना वर्णन करना और भगवान् की प्रीति के निमित्त सकलकर्मों का आचरण करना यह सीखै ॥२७॥ तैसे ही यज्ञ आदि वैदिक कर्म, दान आदि स्मार्त्त कर्म, एकादशी का उपवास आदि तप, मन्त्रादिकों का जप, सदाचार, और अपने को जो माला चन्दन आदि वस्तु प्रिय हों वह भगवान् को समर्पण करना और स्त्री, पुत्र, घर और प्राणों का भी जो भगवान् को सेवकरूप से समर्पण करना सो सीखै॥२८॥इसप्रकार कृष्ण ही जिनके आत्मा और स्वामीहैं ऐसे मनुष्यों के ऊपर स्नेह, और स्थावरजङ्गमरूप प्राणियों की शुश्रूषा,तिन में विशेषकरके मनुष्यों की तिनमें भी स्वधर्म का आचरण करनेवालों की,तिनकी अपेक्षाभी भगवद्भक्तोंकी शुश्रूषा करना सीखे ॥ २९॥ और तिन साधुओंके साथ समागमको प्राप्त होकर भगवान् के पवित्र यश का जो परस्पर वर्णन करना तिस को सीखे और यश के वर्णन में भी स्पर्धा आदि दोष न करके जो मनका परस्पर रमण,जो परस्पर सन्तोष और जो परस्पर सकलदुःखोंकी निवृत्ति तिसको सीखे३० इसप्रकार पापों के समूहों का नाश करनेवाले श्रीहरि का अपनेआप स्मरण करके परस्पर स्मरण करानेवाले भक्तजन, साधनों मे भक्ति होने के कारण उत्पन्न हुई भगवान् की प्रेमलक्षण भक्ति करके अपने शरीर पर रोमांच धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ और तदनन्तर वह देहाभिमान छूटजाने के कारण संसार से विलक्षण दशा को पाकर कभी तो 'भगवान् के साक्षात्कार के विना जीवन को धिक्कार है' ऐसा जानकर रोते हैं, कभी 'भगवान् की चोरी करने आदि की लीला को स्मरण करके,हँसते हैं, किसीसमय भगवान् भक्त के अधीन हैं ऐसा मन में विचारकर उन को पाने की सम्भावना करके आनन्द पाते हैं, कभी 'हे हरे ! हे दीनवत्सल ! प्रसन्न हूजिये' ऐसा भाषण करते हैं,कभी उनकी रासक्रीडा आदि का स्मरण करके आप भी नृत्य करते हैं और गाते हैं, किसीसमय भ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तरां ॥ ॥३३॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्भिरीक्ष्यः ॥ देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रज-

गवान् की गोवर्द्धन को उठाना आदि लीलाओं का अनुकरण करते हैं और कभी तदाकारपने से परमात्मा के साक्षात्कार को पाकर परमानन्द में निमग्न होतेहुए मौन ही रहजाते हैं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार भागवत धर्मों को सीखनेवाला और नारायणपरायण पुरुष, भागवत धर्मों के आचरण से उत्पन्न हुई भक्ति करके दुस्तर भी माया को अनायास में तरजाता है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार नारायणपरायण हुआ पुरुष, माया को तरता है ऐसा कहा तिस को सुनकर राजाने कहा कि—हे ऋषियों तुम बडे ब्रह्मज्ञानी हो इसकारण तुम नारायणनामक परमात्मा ब्रह्म का स्वरूप हम से कहने को समर्थ हो अर्थात् ब्रह्म एकही वस्तु नारायण, भगवान्, परमात्मा आदि शब्दों से उच्चारण कराजाता है अथवा उस में कुछ विशेष है ? सो मुझ से कृपा करके कहो ॥३४॥ तब पिप्पलायन नामक योगेश्वर कहनेलगे कि—हे राजन् ! वास्तव में परब्रह्म एक ही है, परन्तु उस के सम्बन्धविशेषों से नामों में भेद इसप्रकार हैं कि—जो इस जगत् की उत्पत्ति,स्थिति, संहार का कारण होकर वास्तव में कारणरहित है उस को नारायण कहते हैं, जो सकल प्राणियों की स्वप्न, जागृति और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में साक्षीरूपसे अनुस्यूत रहकर इनतीनों अवस्थाओं से निराली समाधि आदि अवस्थाओं में भी अनुस्यूत होता है उस को ब्रह्म कहते हैं, इस प्रकार लक्षणों के भेदों के कारण नारायण आदि नामों से उच्चारण कराहुआ भी एक ही तत्त्व है ऐसा तुम जानो ॥ ३५ ॥ इस परमतत्त्व को, मन वाणी, चक्षु, बुद्धि, प्राण और दूसरी इन्द्रियें भी नहीं जानसक्ती हैं; जैसे अग्नि को, अग्नि की ही अंशरूप चिनगारियें प्रकाशित करने को अथवा जलाने को समर्थ नहीं होती हैं तैसे ही इन्द्रियों की वृत्तियें, अपने को प्रकाशित करनेवाले आत्मा को प्रकाशित करने को समर्थ नहीं होती हैं,इंद्रियों की तो वार्ता अलग रहे परन्तु स्वतःप्रमाण ऐसे वेदरूप शब्दने भी, अपने विषय में प्रमाण होनेवाले आत्मवस्तु का 'तहाँ अपनाही निषेध होने के कारण' साक्षात् वर्णन नहीं करा है; किन्तु जहाँ से वाणी मन के साथ पीछे को लौट आती हैं, जो वाणी की प्रेरणा करता है उसको ही तुम ब्रह्मजानो, इत्यादि प्रकार से जैसे अर्थात् वर्णन कराहुआसा होयगा तैसा करा है, तो फिर वेद ने वर्णन ही नहीं करा ऐसा कहो तो—तैसा नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तेम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥ नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शब्दनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८॥ अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने

है, क्योंकि स्थूल शरीर ब्रह्म नहीं है, सूक्ष्म शरीर ब्रह्म नहीं है जिस का वाणी से उच्चारण होता है वह ब्रह्म नहीं है, इत्यादि जो वेद ने निषेध करा है उस की अवधि ब्रह्म ही है, यदि अवधि नहीं होता तो उस से औरों का निषेध ही सिद्ध नहीं होता॥३६॥ अब प्रमाण का विषय न होने के कारण ब्रह्म है ही नहीं ऐसा कोई कहे तो कहते हैं—इस जगत् में जो कुछ स्थूल (कार्य) और सूक्ष्म (कारण) दृष्टि पडता है सो सब ब्रह्म ही भासता है, क्योंकि वह ब्रह्म, स्थूल सूक्ष्मों का परमकारण है और वह अनेकों प्रकार की शक्तियों से युक्त है, इसकारण एक होनेपर अनेक प्रकार का भासता है. वह अनेकप्रकार से भासना इसप्रकार होता है कि—जो पहिले एक ब्रह्म था उस को ही सत्त्व, रज और तम इततीनगुणों से युक्त प्रधान कहते हैं, तदनन्तर उस को ही क्रिया शक्ति के द्वारा सूत्र और ज्ञानशक्ति के द्वारा महत्तत्त्व कहते हैं, तदनन्तर उस को ही जीवका उपाधिरूप अहङ्कार कहते हैं, फिर इन्द्रियों के देवता, इन्द्रियें, विषय और विषयों का प्रकाश इन सब रूपों से वह एक ब्रह्म ही सर्वत्र प्रकाश पारहा है. इसप्रकार स्वयं ही सब रूपों से भासनेवाले ब्रह्म की सिद्धि होने में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ॥ ३७॥ अब, यदि ब्रह्म सर्वात्मक है तो—सकलकार्यों को जन्म आदि विकार होने के कारण ब्रह्म में भी उन का होना सम्भव है ऐसा कहो तो—यह ब्रह्मरूप आत्मा कभी भी उत्पन्न नहीं होता है, मरता नहीं है, बढता नहीं है, परिणाम (रूपान्तर) को प्राप्त नहीं होता है और क्षीण भी नहीं होता है, क्योंकि—उत्पत्ति और नाश को प्राप्त होनेवाले बालकपन और तरुणाई आदि शरीर की अवस्थाओं के तिन २ कालों को देखनेवाला है, अवस्थावालों का देखनेवाला उन अवस्थाओं से युक्त नहीं होता है यह तो स्पष्ट है—अब, अवस्थारहित ऐसा यह कौनसा आत्मा है, इसप्रकार कहो तो-वह आत्मा सकल देशों में निरन्तर रहनेवाला ज्ञानरूप है, वह ज्ञान ही अनेक इन्द्रियों के बल से अनेक प्रकार का कल्पना किया जाता है अर्थात् उस ज्ञान के आधार से ही नीलज्ञान पीतज्ञान इत्यादि अनेकों प्रकार की वृत्तियें उत्पन्न होती हैं और लय को प्राप्त होती हैं परन्तु उस आधारभूत ज्ञान का रूपान्तर (बदल) 'जैसे मनुष्य पशु आदि शरीरों का बदल होने पर भी उन में के प्राणों का बदलना नहीं होता है तैसे ही' नहीं होता है ॥ ३८॥ अब दृष्टान्त का विवरण (खुलासा) करतेहुए इन्द्रियों के लय से निर्विकार आत्मा की प्राप्ति कैसे होती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदिन्द्रियगणेहमि चे प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यर्हब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ॥ नाभ्यु-

सो दिखाते हैं—अण्डज, जरायुज उद्भिज्ज और स्वेदज इन चारप्रकार के शरीरों में, वह देह बदल जायँ तो भी तिन २ सब शरीरों में जीव के पिछाडी होकर रहनेवाला प्राण जैसे एक का एक ही रहता है तैसे ही देह की बालकपन तरुणाई आदि अनेकों अवस्था बदल जायँ तो भी उन में होनेवाला आत्मा एक का एक ही रहता है, बदलता नहीं है. तैसे ही सर्वात्मक परब्रह्म जगत् के विकारों से लेशमात्र भी लिप्त नहीं होता है, वह, जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में भी निर्विकार रहता है. जब जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियें अपने अपने काम करती हैं और स्वप्न में जाग्रत् अवस्था में के संस्कार से युक्त हुआ अहङ्कार अपने काम करता है तब वह निर्विकारी आत्मा, सविकारीहुआसा प्रतीत होता है ठीक है परन्तु जब सुषुप्ति में इन्द्रियों का और अहङ्कार का लय होजाने के कारण लिङ्गशरीररूप उपाधि का भी लय होजाता है तब निर्विकारी सुखरूप आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आता है; उस का स्मरण जागने पर भी हमें, इतने समय पर्यन्त मैं सुख से सोया था कुछ भी नहीं जाना ऐसा, होता है इस कारण जिसका अनुभव नहीं उसका स्मरण होने के कारण सुषुप्ति में आत्मा का अनुभव है ही, परन्तु उस समय विषय का सम्बन्ध नहोने के कारण वह स्पष्ट समझ में नहींआता है ॥ ३९ ॥ अब यदि सुषुप्ति में कूटस्थ आत्मा का अनुभव होता है तो फिर उस को संसार कैसे होता है ? अविद्या और अविद्या का संस्कार होने के कारण होता है,ऐसा कहो तो तिस अविद्या को दूर करनेवाला अनुभव कब होयगा ? ऐसा कहोतो—यह मनुष्य धन पुत्रादिकों की इच्छा को छोड़कर केवल भगवान् के चरण की इच्छा रखकर उत्पन्न हुई बड़ीभारी भक्ति से जब चित्त के मल को दूरकरता है अथवा इसका चित्तही गुणोंके और कर्मों के सम्बन्ध से अपने को प्राप्तहुए संस्काररूप मल का त्याग करता है तब (उसचित्त के शुद्ध होनेपर) तिस पुरुष को 'जैसे दृष्टि शुद्ध होतेही पूर्वसिद्ध सूर्य का प्रकाश प्राप्त होता है तैसेही' अपरोक्षभाव से (प्रत्यक्ष) आत्मतत्त्व प्राप्त होता है और संसार की निवृत्ति होती है ॥ ४० ॥ अब,भक्ति के कर्माधीन होने के कारण कर्मयोग का प्रश्न करताहुआ राजा कहने लगाकि—हे ऋषियों ! तुम हम से कर्मयोग कहो, जिस कर्म कर के संस्कारयुक्त हुआ पुरुष, इसही जन्म में कर्म का शीघ्र त्याग करके कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होनेवाले आत्मज्ञान को पाता है ॥ ४१ ॥ और यही प्रश्न पहिले, मैंने पिता राजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यतां ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः वेदस्य॥ चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः॥४३॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोजितेंद्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमी-

इक्ष्वाकुके समीप, ब्रह्माजी के पुत्र सनकादि ऋषियों से कराथा तब सर्वज्ञ भी तिन ब्रह्म पुत्रों ने उसका उत्तर नहीं दिया इसका क्या कारण है सो कहो ॥ ४२ ॥ तब उन में से पहिले दूसरे प्रश्न का उत्तर कहते हुए आविर्होत्र योगेश्वर कहने लगेकि—हे राजन् ! कर्म (विहित), अकर्म (निषिद्ध), विकर्म (विहित को न करना) यह तीन प्रकार केवल वेद से ही समझे जाते हैं, लोक से नहीं समझे जाते हैं, वेद तो ईश्वर से हुआ (अपौरुषेय) है, पुरुष के वाक्य में कहनेवाले के अभिप्राय से अर्थ का ज्ञान होता है, वेद में तो वाक्यों के पूर्वापर सम्बन्ध से ही तात्पर्य जानाजाता है, वह बड़ी कठिन है, इसकारण उन कर्मादिकों के निर्णय के विषय में विद्वान् पुरुष भी मोह को प्राप्त होते हैं फिर औरों की तो बातही क्या ? सो तब तुम बालक होने के कारण समझ नहीं सकते थे इस से तिन सनकादि ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ॥ ४३ ॥ अब वेद का तात्पर्य दुर्ज्ञेय कैसे है सो कहते हैं कि—हे राजन् ! यह वेद परोक्षवाद (एकप्रकार से होनेवाले अर्थ को गुप्त रखने के निमित्त उस को दूसरे ही प्रकार से कहनेवाला) है सो अज्ञानी पुरुषों की जैसे समझ में आवे तैसी रीति से उन से कर्म कराता है, जैसे पिता बालकों को औषध पिलाने लगता है तो उन को 'यदि यह पियेगा तो तुझे लड्डू आदि दूँगा, ऐसा लोभ देकर औषध पिलाता है और लड्डू आदि भी देता है परन्तु लड्डू आदि मिलना औषध पीने का फल नहीं है किंतु रोग की निवृत्ति ही उस का फल है तैसे ही वेद भी स्वर्गादिक आवांतर (लुभाव के) फलों से प्राणियों को लोभित कर के और उन को वह फल भी देकर उन से कर्मों की मोक्ष के निमित्त ही कर्म करवाता है ॥ ४४ ॥ अब कर्म मोक्ष ही यदि पुरुषार्थ है तो पहिले से ही कर्म को छोड़देय, ऐसी शङ्का उठनेपर कहते हैं कि—जो मनुष्य, अजितेन्द्रिय होने के कारण स्वयं ज्ञान को प्राप्तहुआ होकर भी वेदोक्त कर्मोंका आचारण नहीं करता है वह कर्मलोपरूप अधर्म से वारंवार जन्ममरणरूप संसार को पाता है ॥ ४५ ॥ इसकारण निषिद्ध कर्मों का त्याग करके, ज्ञान की प्राप्ति होनेपर्यन्त जो मनुष्य, फल की चाहना से रहित होकर, ईश्वर के विषैं अर्पण होयँ ऐसी रीति से वेद में कहेहुए ही कर्मों को करता है वह अन्तःकरण की शुद्धि, भक्ति और वैराग्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ यं आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याऽभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्च येद्धरिम् ॥४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥ सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्त्तिं स्वमन्त्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपो-

को प्राप्त होकर सकल कर्मों को दूर करनेवाली मोक्षरूप सिद्धि को पाता है, स्वर्गादि की प्राप्तिरूप फल का जो वेद ने वर्णन करा है सो केवल कर्मों के ऊपर रुचि उत्पन्न करने के निमित्त ही करा है ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वैदिक कर्मयोग कहकर अब तांत्रिक कर्मयोग कहते हैं–जो मनुष्य, परब्रह्मरूप ही होनेवाले अपने जीवात्मा के अहङ्काररूप बन्धन को शीघ्रता से तोडने की इच्छा करता होय वह तन्त्रोक्त और वेदोक्त दोनोंप्रकार की विधियों से भगवान् की पूजा करे ॥ ४७ ॥ आचार्य से जिस को उपनयनपूर्वक मन्त्र की प्राप्ति हुई है और तिस गुरु ने ही जिस को आगम में कहाहुआ पूजाआदि का प्रकार दिखाया है ऐसा पूजक, अपने को प्रिय लगनेवाली रामकृष्ण आदि मूर्त्ति के स्वरूप से युक्त महापुरुष भगवान् का पूजन करे ॥ ४८ ॥ स्नान आदि के द्वारा शुद्ध होकर, मूर्त्ति के सामने बैठकर और प्राणायाम, भूतशुद्धि आदि के द्वारा शरीर की शुद्धि को करके उत्तमप्रकार के न्यासों से रक्षा की विधि होनेपर देशकाल आदि की अनुकूलता के अनुसार प्राप्तहुई गन्ध पुष्पादि सामग्रियों से प्रतिमा आदि के विषैं अथवा हृदय में श्रीहरि का पूजन करे, इस पूजन के करने से पहिले ही पुष्प आदि पदार्थों को–कीडे आदिकों को दूर करने से भूमि को- बुहारने आदि से,मन को–एकाग्रता से और श्रीहरि की मूर्त्ति को–पहिलेदिन लगाये हुए चन्दन आदि को धोने आदि से ठीक करके और तदनन्तर आसन का प्रोक्षण करके, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय इन के तीन पात्र स्थापन करे, फिर एकाग्रपने से हृदय में ध्यान और पूजन करेहुए भगवान् का प्रतिमा में आवाहन करके फिर उन देव के विषैं हृदय, शिर, शिखा, नेत्र, अस्त्रमंत्रों से और मूलमंत्र से न्यास करके मूलमंत्र से उन का पूजन करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तिस में हृदय आदि अंग, सुदर्शन आदि उपाङ्गों सहित और नन्दादि पार्षदों सहित तिन २ रामकृष्णादि मूर्त्तियों के मूलमंत्र से पाद्य,अर्घ्य आचमनीय,मधुपर्क,स्नान,वस्त्र,भूषण,गन्ध,पुष्प,अक्षत,माला,धूप,दीप,नैवेद्य और ताम्बूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहारकैः ॥ साङ्गं संपूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्त्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥५५॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥७॥ राजोवाच ॥ यानि योनीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तानुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥ भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः

आदि सामग्रियों से श्रीहरि की साङ्गोपाङ्ग विधि के अनुसार पूजाकरे, तदनन्तर स्तोत्रों से स्तुति करके भगवान् को नमस्कार करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अपना आत्मा भगवद्रूप है ऐसा ध्यान करताहुआ भगवान् की मूर्त्ति का पूजन करे, तदनन्तर भगवान् का प्रसाद (निर्माल्य) मस्तक पर धारण करके, पूजा करेहुए देव को स्वस्थान में (देव को हृदय में वा मूर्त्ति रखने के सिंहासन में) स्थापन करके पूजा की विधि को समाप्त करे ॥ ५४ ॥ इसप्रकार अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और हृदय के विषैं जो पुरुष आत्मा ईश्वर का पूजन करता है वह पुरुष, शीघ्रही संसार से मुक्त होता है ॥ ५५ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में तृतीय अध्याय समाप्त॥*॥ अपने को प्रिय होय तिस तिस मूर्त्ति के विषैं भगवान् का पूजन करे, ऐसा सुनने से भगवान् के अवतार को जानने की अपेक्षा हुई इसकारण राजाने कहा कि—हे ऋषियों! श्रीहरि ने जिन२ स्वतन्त्र अवतारों से इस मनुष्यलोक में जो२ कर्म करे हैं जो२ करते हैं और आगे को करेंगे वह अवतारों के चरित्र हम से कहिये॥ १॥ तब द्रुमिल नामवाले योगेश्वर कहनेलगे कि—हे राजन्! जो पुरुष, अनन्त भगवान् के अनन्तगुणों को गिनने की इच्छा करे उसको मन्दबुद्धि समझना चाहिये; क्योंकि कोई एकाद परमबुद्धिमान् पुरुष. बहुतसे समय में और बड़े प्रयत्न से कदाचित् भूमि के रज के कणों की गणना करलेय परन्तु सकल शक्तियों के आश्रय भगवान् के गुणों को गिनने को वह समर्थ नहीं होगा इसकारण तुम्हारे अर्थ मैं संक्षेपसे कई एक अवतारों के चरित्र कहता हूँ सुनो ॥ २ ॥ तिस में पहिले सकल अवतारों के मूल पुरुषावतार को कहते हैं कि—जब सब के कारणभूत नारायण ने, अपने ही उत्पन्न करेहुए आकाश आदि पञ्च-महाभूतों से ब्रह्माण्डरूप देह को उत्पन्न करके उस में अपने अंश से प्रवेशकरा तब वह पुरुष नाम को प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ जिन के शरीर पर यह त्रिलोकी की रचना हुई, जिन की इन्द्रियों से जीवों की ज्ञानेन्द्रियें उत्पन्नहुई हैं, जिन के स्वरूपभूत सत्त्वगुण से जीवों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वसंनतो वलमोजं ईहा सत्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशांतः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेवितांघ्रिः ॥६॥ इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाऽप्सरोगणवसंतसुमंदवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥ विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट

ज्ञान प्राप्त होता है, जिन के प्राण से जीवों की-देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति और सकलक्रिया उत्पन्न होती हैं और जो इस जगत् की उत्पत्ति,स्थिति, संहार के आदिकर्त्ता हैं ॥ ४ ॥ जिन के रजोगुण से इस जगत् की उत्पत्ति के विषय में प्रथम ब्रह्माजी हुए, जिन के सत्त्वगुण से जगत् का पालन करने के विषय में यज्ञ का फल देनेवाले, ब्राह्मणों का और ब्राह्मणों के धर्मों का पालन करनेवाले विष्णुभगवान् हुए, जिन के तमोगुण से जगत् के संहार के विषय में रुद्र उत्पन्नहुए, इसप्रकार जिन से उत्पन्नहुए ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र से निरन्तर प्रजाओं की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं वह आदि पुरुष हैं ॥ ५ ॥ अब नरनारायणावतार और उन के कर्म कहते हैं—धर्म की भार्या और दक्ष की कन्या मूर्त्ति नामवाली स्त्री के उदर में, ऋषियों में श्रेष्ठ और अत्यन्त शान्त नारायण और नर इन दो मूर्त्तियों के द्वारा अवतार हुआ, उन्हों ने आत्मस्वरूप का प्रकाश करनेवाले कर्म नारदादिकों से कहे हैं और अपने आप भी करे हैं, वह नरनारायण ऋषि अब भी, नारदादि श्रेष्ठ—ऋषियों ने जिन के चरण की सेवाकरी है ऐसे होते हुए तपस्या कररहे हैं ॥ ६ ॥ अब उन की भगवान् के अवतारपने को प्रकाशित करनेवाली बड़ीभारी सहनशीलता दिखाने के निमित्त इतिहास कहते हैं कि—इन्द्र ने उन नरनारायण के तप को देखकर 'यह मेरे स्थान को हरने की इच्छा करते हैं ऐसी, मन में शङ्का करके उन के तपका नाश करने के निमित्त, वसन्त आदि परिवार सहित कामदेव को भेजा, तब उनकी महिमा को नजाननेवाला वह कामदेव, अप्सराओं के समूह, वसन्तऋतु और मन्दगामी पवन इन के साथ 'बदरिकाश्रम में जाकर , स्त्रियों के कटाक्षरूप बाणों से उन को वेधनेलगा, अर्थात् उन के चित्त को डिगाने में प्रवृत्त हुआ ॥ ७ ॥ तब वह नरनारायण , इन्द्र के करेहुए अपराध को जानकर, उस के मोह के स्मरण से हँसकर गर्वरहितपने से 'अपना उद्योग व्यर्थ होने के कारण शाप के भय से थर थर काँपनेवाले , उनकामदेव आदिकों से कहनेलगेकि—हे कामदेव ! हे पवन ! हे देवाङ्गनाओं ! तुम मुझ से भय मतमानो, तुम, हमारी करीहुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0.-In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भो मदन मारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परोविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वमवितो यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वशैश्न्यानस्मानपार जलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्च-

पूजा को ग्रहण करके इस आश्रम को अशून्य (कृतार्थ) करो—जिस आश्रम में अतिथि का सत्कार नहीं होता है तिस आश्रम को शून्य कहते हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभय देनेवाले उन नरनारायण के ऐसा कहने पर लज्जित हुए मस्तक नगाएहुएवह काम आदि देवता, उन दयालु से कहनेलगे कि—हे विभो ! माया से पर, कामक्रोधादि विकाररहित और अपने स्वरूप में रमण करनेवाले धैर्यवान् पुरुषों के समूहों से जिन का चरण कमल वन्दना करागया है ऐसे तुम्हारे विषैं यह चलायमान न होना और कृपा करना आश्चर्य कारक नहीं है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष, स्वर्गरूप स्थान को लाँघ कर सर्वोत्तम वैकुण्ठ लोक को जाते हैं इसकारण उन को ही इन्द्रादिक देवताओं के करेहुए बहुत से विघ्न प्राप्त होते हैं, तुम्हारी सेवा न करनेवालों को वह विघ्न नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि—वह यज्ञ में तिन इन्द्रादिकों के पुरोडाशआदि भाग ' जैसे किसान लोग, राजा का कर आदि राजा को देते हैं तैसेही , देते हैं, तो क्या मेरा भक्त विघ्नों से तिरस्कार को प्राप्त होता है ? नहीं नहीं,सकल देवताओं के स्वामी तुम उस की रक्षाकरते हो इस कारण वह भक्त विघ्नों के मस्तक पर चरण रखकर तुम्हारे वैकुण्ठ को जाता है जब तुम्हारे भक्त को भी विघ्न नहीं होते तो फिर तुम्हें विघ्न कहां से होंगे ? अर्थात् कभी हो ही नहींसक्ते ॥ १० ॥ तुम्हारी भक्ति न करके केवल तप करनेवालों की दो प्रकार की गति होती है,वह प्रथम तो हमारे वश में होजाते हैं, नहीं तो क्रोध के वश में होजाते हैं; तिस में हमारे वश में होनेवालों को विषयभोग तो प्राप्त होता है और क्रोध के वश में होनेवाले तो बडे ही मूढ होजाते हैं, क्योंकि—भूँख, प्यास, सरदी,गरमी,वर्षा, पवन, जिह्वा के विषय और मूत्रेन्द्रिय के भोग इस अपार समुद्र को लाँघकर कितने ही मूर्ख तपस्वी, निष्फल क्रोध के वश में होकर, गौके पैर के चिन्हरूप गढ़हे के जल में ही डूबजाते हैं और अपने दुष्कर तप को व्यर्थ नष्ट करदेते हैं अर्थात् जैसे जल में डूबताहुआ पुरुष, घबड़ाजानेपर, मस्तकपर रक्खेहुए धनादि के बोझे को विवश होकर व्यर्थ छोडदेते हैं तैसे ही यह मूर्ख तपस्वी भी मोक्ष के निमित्त नहीं और विषयभोग के निमित्त भी नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥ इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वचिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणी ॥ गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहताश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ ॥ १४ ॥ आमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयाऽवतीर्णस्तेनाहृतां मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥ गुप्तोऽप्यये मनुरिलौ-

किन्तु व्यर्थ ही शाप आदि के रूप से अपने दुष्कर तप का नाश करडालते हैं ॥११॥ इसप्रकार उन कामदेव आदिकों के स्तुति करने पर नरनारायण ने उन का गर्व नष्ट करने के निमित्त योगबल से तहाँ अपनी शुश्रूषा करनेवालीं, अद्भुतरूपवती और उत्तम आभूषण धारण करनेवालीं सहस्रों स्त्रियें रचकर उन को दिखाईं ॥ १२ ॥ तब, मानो मूर्त्तिमान् लक्ष्मी ही हैं ऐसी उन स्त्रियों को देखकर उन के रूपकी अधिक सुन्दरता आदि से निस्तेज हुए वह कामदेव आदि देवसेवक, उन स्त्रियों के शरीर की सुगन्ध से ही मोह को प्राप्त होगए ॥ १३ ॥ तब ब्रह्मादिकों के भी ईश्वर वह नरनारायण, हास्य करना सा दिखाकर नम्रहुए उन कामदेव आदिकों से कहनेलगे कि—इन स्त्रियों में से किसी स्त्री को मांगलो, यदि अतितुच्छ हम कहाँ ? और यह अतिसुन्दर स्त्रियें कहाँ ? ऐसा तुम्हारे मन में विचार हो तो इन में की कोई बुरी सी अपनी समान ही मांगलो, यदि कहोकि-इन में ऐसी एकभी नहींहै तो न सही परन्तु स्वर्गकी भूषणरूप एक तो मांगही लो १४ तब उन काम आदि देवताओं ने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उन नरनारायण की आज्ञा को माना और उन को नमस्कार करके तथा अप्सराओं में श्रेष्ठ जो उर्वशी तिस को आगे करके वह स्वर्ग को चलेगये ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन्हों ने सभा में बैठेहुए इन्द्र को नमस्कार करके, देवताओं के सुनतेहुए, नरनारायण का प्रभाव वर्णन करा, तिस को सुनकर इन्द्र ने बडा आश्चर्य माना ॥ १६ ॥ अब दूसरे अवतार और उन के चरित्र कहते हैं—जगत् के कल्याण के निमित्त अंश करके अवतार धारण करनेवाले विष्णु भगवान् हंसावतार धारण करके ब्रह्माजी को ब्रह्मविद्या का उपदेश करा, तैसे ही तिन विष्णु भगवान के, दत्तात्रेय, सनत्कुमार, और हमारे पिता भगवान् ऋषभदेव यह तीन अवतारहुए, उन्हों ने भी तत्त्वज्ञान का उपदेश करा, उन ही विष्णु ने, हयग्रीव अवतार में मधुनामवाले दैत्य को मारकर उस से श्रुतियें लौटाकरलीं ॥ १७ ॥ उन्हों ने ही मत्स्याव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्धयश्च मात्स्य क्रौडे हतो दितिज उद्धरतांऽभसः क्ष्मां ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठ ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तं ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वाऽतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाछलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिः सप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाव्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्वि-

तार धारण करके प्रलय के समय वैवस्वत, मनु, पृथिवी और औषध इन की रक्षा करी; तैसे ही वराहावतार धारकर जल में पृथ्वी का उद्धार करते में हिरण्याक्ष दैत्य का वधकरा; कूर्मावतार धारकर समुद्रमन्थन के समय पीठपर मन्दराचल को धारण करा और हरि अवतार के समय पीडित होकर शरण आयेहुए गजराज को ग्राह से छुडाया ॥ १८ ॥ उन ही भगवान् ने, निराले२ अवतार धारकर कश्यपजी के निमित्त समिधालाने को वन में जाकर तहाँ गौ के खुर के गढहेके जल में डूबने लगनेके कारण इन्द्र के हास्य करेहुए और श्रमपाकर स्तुति करनेवाले बालखिल्य ऋषियों को उस सङ्कट से तारा और वृत्रासुर के वध से ब्रह्महत्यारूप पाप में पडेहुए इन्द्र को उस पाप से छुड़ाया, तैसे ही दैत्यों के घरों में बन्द करके रक्खीहुई देवताओं की अनाथ स्त्रियों को छुडाया और तिन भगवान् ने नृसिंहावतार धारकर साधुओं को अभय प्राप्त होने के निमित्त हिरण्यकशिपु का वध करा ॥ १९ ॥ उन ही भगवान् ने सब मन्वन्तरों में देवदैत्यों के युद्ध में देवताओं का कार्य साधने के निमित्त अपने अवतारों से दैत्याधिपतियों को मारकर भुवन की रक्षा करी और वामनावतार धारण करके भिक्षा माँगने के बहाने से राजा बलि से यह पृथ्वी लेकर देवताओं को दी ॥ २० ॥ सहस्रबाहु आदि राजाओं के कुलों का नाश करने के विषय में भृगुकुल में उत्पन्न हुए, मानो जैसे अग्नि ही हो ऐसे तेजस्वी परशुरामावतार को धारण करके पृथ्वी को इक्कीसबार निःक्षत्रिय करा, उन्हों ने ही रामावतार धारकर समुद्रपर सेतुबाँधा और लङ्का में रहनेवाले रावण का वध करा, वह लोकों के पापों का नाश करनेवाली कीर्त्ति से युक्त सीतापति श्रीरामचन्द्रजी, इससमय राज्य करते हैं ॥ २१ । वही जन्मरहित भगवान् पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त यादवों में रामकृष्णावतार धारकर, जिनको देवता भी न करसकें ऐसे चरित्र करेंगे और बुद्धावतार धारण करके, यज्ञ का अनुष्ठान करने के विषयमें अयोग्यहोकरभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोहयति यज्ञकृतेऽतदर्हान् शूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवं विधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥२३॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ राजोवाच ॥ भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनां ॥ १ ॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ ये एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥३॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशां ॥४॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाथो-

यज्ञकरनेकी इच्छाकरनेवाले दैत्योंको वेदविरुद्ध तर्क समझाकर मोहितकरेंगे;तैसेही कलियुग के अन्त में कल्किरूपसे अवतार धारकर शूद्रप्रायहुए अधर्मी राजाओं का संहारकरेंगे।२२॥ हे परमपराक्रमी राजन्! इसप्रकार जगत्पति महाकीर्त्तिमान् भगवान् के जन्म और कर्मों का मैंने तुम से संक्षेप से वर्णन करा है; दूसरे भी बहुतसे चरित्र कवियों ने जहाँतहाँ वर्णन करे हैं ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥*॥ राजा निमि ने कहा कि—हे परमब्रह्म ज्ञानियों! जो बहुतसे पुरुष भगवान् श्रीहरि का भजन नहीं करते हैं, उन मन को वश में करके न रखनेवाले और विषयवासनाओं में आसक्तहुए पुरुषों की अन्त में कौन गति होती है ? ॥१॥ तब, अपने उत्पन्न करनेवाले भगवान् का अनादर करने से उन को दुर्गति प्राप्त होती है,यह कहने के निमित्त पहिले चमस नामक योगेश्वर, भगवान् से वर्णाश्रमों की उत्पत्ति कहते हैं, चमस ने कहा कि—हे निमि राजन्! नारायण के मुख,बाहु, जङ्घा और चरण इन अङ्गों से क्रम करके निराले निराले ब्राह्मण आदि चार वर्ण गुणों से अर्थात् सत्त्वगुण से ब्राह्मण, सत्त्वरजोगुण से क्षत्रिय, रजस्तमोगुण से वैश्य और तमोगुण से शूद्र उत्पन्न हुए हैं. तैसे ही हृदय से ब्रह्मचर्य आश्रम, कमर के पीछे के भाग से गृहस्थआश्रम,वक्षःस्थल से वानप्रस्थ आश्रम और मस्तक से सन्यास आश्रम यह चारों आश्रम उत्पन्न हुए हैं ॥२॥ इन वर्णाश्रमवान् लोकों में जो पुरुष, अपने को उत्पन्न करनेवाले साक्षात् पुरुषोत्तम ईश्वर को नहीं जानते हैं और सेवा नहीं करते हैं अथवा जानकर भी अवज्ञा करते हैं वह पुरुष, कृतघ्नी होने के कारण अपने वर्णाश्रमधर्म से भ्रष्ट होकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ अब, जिन से भगवान् की कथाओं का सुनना और भगवान् का कीर्त्तन दूर हैं अर्थात् यह जिन्होंने कभी करे ही नहीं हैं ऐसी जो स्त्रियें और शूद्र हों वह तुमसमान अधिकारी राजाओं के, सामदाम आदि उपायों के द्वारा अनुग्रह करने के योग्य हैं ॥ ४ ॥ अब, जो अधिकारी होकर भी जानबूझकर भगवान् का भजन नहीं करते हैं उन की निन्दा करते हैं कि—कितने ही ब्रा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः॥५॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥ वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः॥ ६॥ रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः॥ दाम्भिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान्॥७॥वदंति तेऽन्योऽन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चोशिषः॥ यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं द्रव्यै परं घ्नंति पशून्नतद्विदः॥८॥श्रिया विभूत्याऽभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान् सतोऽवमन्यंति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥

ह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यद्यपि उपनयन संस्कार अध्ययन आदि भगवद्भजन के अधिकार को प्राप्त होगये हैं तथापि वह, वेद में के अर्थवाद (फलश्रुति) सत्य हैं ऐसा मानकर कर्मों के फलों में आसक्त होकर मोहित होते हैं ॥ ५ ॥ अब, भक्तिमार्ग को दृढ़ करने के निमित्त उन के मोह का विस्तार करके उन की निन्दा करते हैं कि—कर्म के विषय में अकोविद (जैसे कर्मबन्धन करनेवाला नहीं होय तैसे कर्म करना नहीं जाननेवाले), उद्धत और मूर्ख होकर भी हम ही पण्डित हैं ऐसा माननेवाले वह पुरुष, हम यहाँ यज्ञ में सोमपान करें और फिर अमर होयँ इत्यादिक जिस मधुरवाणी से उत्कण्ठित होकर मोहित होते हैं तिस ही वाणी से वह, 'हम अप्सराओं के साथ क्रीडा करें' इत्यादि मन को प्रिय लगनेवाले शब्द भाषण करते हैं ॥ ६ ॥ और रजोगुण की अधिकता से दूसरों के घातपात करने का सङ्कल्प करनेवाले,विषयभोगों में आसक्त,सर्पों की समान क्रोधी, दम्भी, अभिमानी और पापी वह पुरुष, भगवद्भक्तों का उपहास करते हैं ॥७॥ जिन्होंने, स्त्रियों की ही उपासना चलारक्खी है और वृद्धों की सेवा नहीं करते हैं वह पुरुष, जिन में मैथुन ही सुख है, अतिथि का सत्कार नहीं है ऐसे घरों में रहकर 'आज मैं ने इतना पाया है, अब मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा; मेरे पास इतना धन तो अब है ही और आगे को अब इतना धन होजायगा इत्यादि' अपने मनोरथ परस्पर वर्णन करते हैं, और जिन में परिपूर्ण दक्षिणा अथवा अन्नदान नहीं हैं ऐसे विधानरहित दाम्भिक यज्ञ करते हैं तैसे ही हिंसा का दोष मन में न लाकर केवल अपनी जीविका चलाने के निमित्त पशुओं की हिंसा करते हैं ॥ ८ ॥ सम्पत्ति, ऐश्वर्य, उत्तमकुल में जन्म, विद्या, दान, रूप, बल और कर्म इन से होनेवाले अभिमान के कारण अन्धबुद्धि हुए वह दुष्ट, भगवान् का और भगवद्भक्तों का अपमान करते हैं ॥ ९ ॥ इसप्रकार वर्त्ताव करनेवाले वह मूर्ख पुरुष, वेदों के स्पष्ट प्रतीत होनेवाले भी ठीक अर्थ को नहीं जानते हैं,क्योंकि—वह पुरुष सकलप्राणिमात्रों में आत्मत्त्व करके और ईश्वरत्त्व करके आकाश की समान व्याप्त होकर रहनेवाले, वेद में गान करेहुए और अतिप्रिय आत्मा का श्रवण भी नहीं करते हैं;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्नहि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांति ॥ गृहेषु युंजन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥

किन्तु वास्तव में निवृत्तिपरायण भी वेद का, स्त्रीसंभोग, मांसभक्षण और मद्यपान आदि विषयों की वार्त्ता से प्रवृत्तिपरायणरूप से वर्णन करते हैं ॥ १० ॥ अत 'ऋतुकाल में स्त्रीसम्भोग करे' हवन करके शेष रहेहुए मांस का भक्षण करे' इत्यादि विधि से ही सम्भोग आदि के कहने पर, उन की तुम निन्दा क्यों करते हो? ऐसा कहो तो सुनो—इस लोक में प्राणीमात्र को विषयासक्ति स्वाभाविक ही होने के कारण स्त्रीसम्भोग, मांसभक्षण और मद्यपान यह निरन्तर प्राप्तहुए हैं ही इसकारण उन को करने के विषय में वेद ने विधि नहीं कही है किन्तु उन विषयों में आसक्तहुए प्राणी को नियम की विधिरूप से, विवाह, यज्ञ और सुराग्रहण के द्वारा सम्भोग आदिकों का करने की आज्ञा दीहुईसी करके सङ्कोचमात्रकरा है अर्थात् स्त्रीसम्भोग करना होय तो विवाह करके उस स्त्री के विषैं ऋतुकाल में ही (सोलह दिन के भीतर ही) वर्जित दिनों को छोडकर रात्रि में एकवार ही पुत्र की प्राप्ति के निमित्त ही करे, और समय न करे. तैसे ही रागवश मांसभक्षियों को यदि मांस ही भक्षण करना होय तो-यज्ञमें शेष रहेहुए हविर्भाग का ही सेवन करे, दूसरे मांस को सेवन न करे. सुरापान करना होय तो सौत्रामणिनामक इष्टिकरके तिसमें ही गन्धसूँघने के रूपसे सुरापान करे, और प्रकार नहीं करे, ऐसा सङ्कोच करा है; तो फिर स्त्रीसम्भोग, मांसभक्षण और सुरापान यह वडी खटपट के हैं इसकारण नहीं होना चाहिये ऐसा समझकर प्राणी उन का त्याग करेंगे सो वह त्याग करना ही वेद को इष्ट है ॥ ११ ॥ इसप्रकार मैथुन मांसभक्षण आदि मनोरथों से व्याकुलचित्तहुए पुरुष, प्रिय आत्मा का श्रवण नहीं करते हैं ऐसा कहा अब धर्म के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति करानेवाले धन का भी वह पुरुष केवल विषयभोग के निमित्त ही व्यय करते हैं इसकारण उन को ज्ञान नहीं प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं—धर्माचरण करना ही धन का मुख्य फल है, जिस धर्म से परोक्ष ज्ञान और तत्काल शान्ति देनेवाला अपरोक्ष ज्ञान यह दोनों प्राप्त होते हैं; ऐसे कल्याणकारी धन का वह विषयलम्पट पुरुष, केवल शरीर के सुख के निमित्त घरों में व्यय करते हैं, वह, अटलपराक्रमी मृत्यु ने हमारे शरीर को घेरालिया है ऐसा नहीं देखते हैं ॥ १२ ॥ और वेद में जो मद्यपान आदिकों की व्यवस्था से आज्ञा दी है वह भी दूसरे प्रकार की ही है, यथेष्ट नहीं है, सो

१ ऋतौ भार्यामुपेयात्।
२ हुतशेषं भक्षयेत्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥ ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून् द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान् ॥ १४ ॥ द्विषंतः परकाये षु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः ॥ १५ ॥ ये केवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यसुतृपो आत्मानं घातयंति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोशांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥१७॥ हित्वात्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान् किं-

इसप्रकार है कि-सुरा का जो प्राशन कहा है सो सुरा का नाक से सूंघनामात्र ही कहा है, प्रत्यक्षपान नहीं कहा है. तैसे ही यज्ञ में पशु का देवता के उद्देश से आलभन (मारण) कहा है, हिंसा (भक्षण उद्देश से मारना) नहीं कही है. इसप्रकार स्त्रीसम्भोग भी पुत्र की प्राप्ति के निमित्त ही कहा है, रतिसुख के निमित्त नहीं कहा है, इस अत्यन्त शुद्ध स्वधर्म को वह अज्ञानी पुरुष नहीं जानते हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकार भगवान् से विमुख रहनेवालों के बहुत से दोष कहकर अब उन की अन्तकी गति कहते हैं कि-जो इसप्रकार का धर्म न जाननेवाले असत्पुरुष, उद्धतपना, हम ही सत्पुरुष हैं ऐसा अभिमान धारण करके निःशङ्कपने से 'ऐसा करने पर ऐसा होयगा' इसप्रकार का मनोरथ करके पशुओं का द्रोह करतेहैं वह मरण को प्राप्त होने पर, उन के यहाँ मारेहुए जो पशु होते हैं वही उनको परलोकमें मारकर खातेहैं।१४।और जोपुरुष,पुत्रादिसहित इसअपने शवतुल्य शरीरके ऊपर स्नेहरखकर, और शरीरों में रहनेवाले परन्तु अपने भी आत्मा ऐसे परमेश्वर श्रीहरि का द्वेष करते हैं, वह मरण को प्राप्त होनेपर दुर्गति को प्राप्तहोते हैं ॥१५॥ अज्ञानी पुरुष, तत्त्वज्ञानियों का अनुग्रहहोनेपर तरजातेहैं और तत्त्वज्ञानी तो स्वयंही तरजातेहैं परन्तु जोतत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुएहैं और जो अत्यन्त मूढभी नहींहैं वहधर्मार्थ कामके विषयमें खटपट करनेवाले और शान्तिके विषयमें क्षणभर भी अवकाश न पानेवाले पुरुष,अपने हाथोंसेही अपना घात कर लेते हैं अर्थात् आत्मस्वरूप को न जानने के कारण जन्ममरणरूप संसार को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ यह पुरुष अपने को ही धोखा दे लेनेवाले, शान्ति रहित अज्ञानरूप कर्म को ही ज्ञान माननेवाले और अवश्यकर्त्तव्य जो श्रवणादिक साधन तिन को न करने वाले होने के कारण इसलोक में और परलोक में काल के द्वारा नष्टमनोरथ होकर अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं ॥ १७ ॥ जो पुरुष वासुदेव भगवान् से विमुख हैं वह परम कष्ट से प्राप्त करेहुए घर, सन्तान, मित्र, धन आदि सम्पत्तियों को, त्यागने की इच्छा न होने पर भी इसलोक में ही छोडकर अन्त में नरक में प्रवेश करते हैं ॥ १८ ॥ इसप्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैरा सुहृदः समाः ॥ यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिं ॥ यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीरिते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च

भक्तों की गति कहने के कारण साधक भगवान् की भक्ति ही करे ऐसा सिद्ध होनेपर तिस के विषय में विशेष बूझने के निमित्तराजा निमि ने कहा कि—हे ऋषियो ! वह भगवान् किससमय में किस वर्ण के और किस आकार के होते हैं तथा उन का कौनसे नामसे और कौनसी विधि से, मनुष्य पूजनकरें सो अब मुझ से कहो ॥ १९ ॥ तब करभाजन नामवाले योगेश्वर कहनेलगे कि—हे राजन् ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह चार युग हैं ; तिन में निराले निराले वर्ण, नाम और स्वरूपों को धारण करनेवाले भगवान् की अनेकों प्रकार की विधियों से लोक पूजा करते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुग में स्वेतवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी और वृक्षों की छाल धारण करनेवाले, तैसेही कृष्णमृगचर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष की माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करनेवाले ब्रह्मचारीरूप भगवान् होते हैं ॥ २१ ॥ तिसयुग में मनुष्य, शान्त, निर्वैर, सबों के मित्र और सुखदुःखों में समान तथा ध्यान, योग, मन का निग्रह और इन्द्रियों के निग्रह के द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं ॥ २२ ॥ और वह पुरुष, हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, मनु, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ऐसे भगवान् के नाम गाते हैं ॥ २३ ॥ त्रेतायुग में रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, कमर में दीक्षा की त्रिगुणित मेखला को धारण करनेवाले पिंगल वर्ण के केशवाले और स्रुचि, स्रुवा आदि लक्षणों से युक्त ऐसे यज्ञमूर्त्ति भगवान् होते हैं ॥ २४ ॥ उससमय धर्मात्मा और ब्रह्मवादी मनुष्य, इन्द्रादि सकल देवतारूपी श्रीहरिदेव का, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में कहेहुए यज्ञ के मार्गों से आराधन करते हैं ॥ २५ ॥ और वह पुरुष, विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय इन भगवान् के नामों को गाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरयुग में श्यामवर्ण पीताम्बरधारी और शंख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाले तैसेही श्रीवत्स आदि चिन्हों क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणं ॥ यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदं ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यं ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराजलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे म-

रके और कौस्तुभआदि लक्षणों करके शोभायमान भगवान् होते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उससमय तत्त्वज्ञान की इच्छा करनेवाले मनुष्य, चक्रवर्त्ती राजा के छत्र चँवरआदि चिन्हों से शोभायमान तिन पुरुषोत्तम भगवान् का वेद में कहीहुई और तंत्र में कहीहुई पूजा की विधि से आराधन करते हैं ॥ २८ ॥ और स्तुति करते हैं कि—हे प्रभो ! तुम वासुदेव को नमस्कार हो, तैसेही सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ २९ ॥ नारायण, ऋषि, महात्मा पुरुष, जगत् रूप होकर जगत् के ईश्वर ऐसे तुम सकल भूतात्मा को नमस्कार होय ॥ ३० ॥ इसप्रकार द्वापरयुग में लोग जगदीश्वर की स्तुतिकरते हैं, अब कलियुग में भी नानाप्रकार की तांत्रिक विधि से लोग जैसे ईश्वर का आराधन करते हैं तैसा मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ ३१ ॥ वर्ण में श्याम होकर भी कांति से देदीप्यमान. हृदयादिक अङ्ग, कौस्तुभ आदिक उपाङ्ग, सुदर्शन आदिक अस्त्र और सुनन्द आदि पार्षदों से युक्त श्रीकृष्णजी का विवेकी पुरुष, जिन में नामसङ्कीर्त्तन और स्तुति बहुतसी हैं ऐसे पूजन आदि यज्ञों से आराधन करते हैं ॥ ३२ ॥ वह इसप्रकार की स्तुति कि—हे भक्तपालक महापुरुष ! निरन्तरध्यान करनेयोग्य, इन्द्रियों से और कुटुम्ब से प्राप्त होनेवाले तिरस्कार का नाश करनेवाले, गंगादिक तीर्थों के आश्रय होने के कारण परमपवित्र, शिवजी और ब्रह्मजीसे स्तुति करेहुए, सुखरूप होने के कारण आश्रय करने के योग्य, भक्तमात्रके दुःख को दूर करनेवाले, और संसारसमुद्रसे तारनेवाले ऐसे तुम्हारे चरणकमलको मैं नमस्कार करताहूँ ३३ हे महापुरुष ! धर्ममार्ग में रहनेवाले जो तुम, रामावतार में, जिस को दूसरे न त्यागसकें और देवताओं की भी इच्छा करीहुई राज्यलक्ष्मी को त्यागकर पिता दशरथजी के वचन से (कैकेयी से कहेहुए उन के वचन को पालन करने के निमित्त) वन को गये थे; और जो तुम भक्तवत्सलता के कारण सीता के इच्छा करेहुए और माया से सुवर्ण के हरिण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ नह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति संभवम् ॥ कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य

रूप धारण करनेवाले मारीच राक्षस के पीछे दौड़े थे, तिन श्रीरामरूपी तुम भगवान् के चरणकमल को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार तिस तिस युग में योग्य नामरूपों से चारप्रकार का पुरुषार्थ देनेवाले भगवान् श्रीहरि का, हरएक युग में भगवान् आराधन करते हैं ॥ ३५ ॥ परन्तु गुण जाननेवाले और सारग्राही पुरुष, चारों युगों में कलियुग की ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि—सत्ययुग में ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञ करने से और द्वापर में पूजन करने से जो फल प्राप्त होताहै, वह सब फल, जिस कलियुग में केवल नामसङ्कीर्त्तन से ही प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥ इस से इस संसार में भटकनेवाले देहधारियों को, कलियुग में इस नामसङ्कीर्त्तन की अपेक्षा दूसरा उत्तम कोई भी लाभ (पुरुषार्थों का साधन) नहीं है, क्योंकि—जिस नामसङ्कीर्त्तन से प्राणी को मुक्तिरूप शान्ति प्राप्त होती है और संसार का नाश होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! सत्ययुग आदि में की प्रजा, हमारा कलियुग में जन्म हो, ऐसी इच्छा करती हैं, क्योंकि—कलियुग में मनुष्य निःसन्देह नारायणपरायण होंगे तब हम भी ऐसे ही होयँ, ऐसा उन का अभिप्राय होता है ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कलियुग में किन्ही किन्ही देशों में तिस में विशेष करके द्रविड़देशों में भगवद्भक्त उत्पन्न होंगे; यदि कहोकि—वह द्रविड़देश कौनसे हैं तो—जहाँ ताम्रपर्णी नदी है, तैसे ही कृतमाला, पयस्विनी, परमपवित्र कावेरी और महानदी प्रतीची, यह नदियेंहैं वह द्रविड़ देशहैं. हेराजन्! जो मनुष्य उन ताम्रपर्णी आदि नदियोंका जल पीते हैं वह प्रायः निर्मलचित्त होकर वासुदेव भगवान् के परमभक्त होते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अब भक्त की कृतकृत्यता का वर्णन करतेहैं कि—हेराजन् ! देवता, ऋषि, प्राणी, कुटुम्बी, मनुष्य और पितरों का, जैसे अभक्त पुरुष, ऋणी और किङ्कर (उन के निमित्त पञ्चमहायज्ञ आदि करनेवाला] होता है, तैसे ही जो सकल कार्यों का अथवा भेददृष्टियों का त्याग करके. शरण जाने के योग्य मुक्तिदाता भगवान् की सर्वभाव से शरणगया है वह देवादिकों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्तं ॥४१॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥४२॥ नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ॥ जायन्तेयान्मुनीन् प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यश्सापूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलास-

ऋणी वा किङ्कर नहीं होता है अर्थात् उस को पञ्चमहायज्ञ आदि करने की आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि-वह सब कृत्य भक्ति से ही हुए से होजाते हैं ॥ ४१ ॥ और यम आदि सकल देवताओं के नियन्ता श्रीहरि ही अपने से अन्य देवताओं के ऊपर और शरीर के ऊपर भी प्रेम न रखकर, अनन्यभाव से अपने चरणतल का ध्यान पूजन आदि के द्वारा सेवन करनेवाले प्रिय भक्त के हृदय में अन्तर्यामीरूप से प्रविष्ट होकर, उस के हाथ से यदि कदाचित् प्रमादादि करके पाप बनजाय तो वह सब ही पाप तत्काल नष्ट करदेते हैं अर्थात् भगवद्भक्तों को प्रमाद से होनेवाले भी पाप को दूर करने के निमित्त प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं होती है ॥ ४२ ॥ नारदजी कहते हैं कि-हे वसुदेवजी ! इसप्रकार उपाध्यायसहित वह राजा निमि, भागवतधर्मों को सुनकर प्रसन्नहुए और उन्होने जयन्ती के पुत्र तिन नौ योगीश्वरों की पूजा-करी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर सब लोगों के देखतेहुए, वह कवि हरि आदि सिद्धयोगी अन्तर्धान को प्राप्तहुए; तदनन्तर वह राजा निमि, भागवतधर्मों को आचरण करके परमगति को प्राप्तहुए ॥ ४४ ॥ हे महाभाग वसुदेवजी ! तुम भी मुझ से सुनेहुए इन भागवतधर्मों का श्रद्धापूर्वक आचरण करोगे तो निःसङ्ग होकर परमपद को प्राप्त होओगे ॥ ४५ ॥ यह तो एक शास्त्र की रीति,मैंने तुम दोनों से कही है परन्तु वास्तव में देखा-जाय तो भगवान् श्रीहरि जो तुम्हारे पुत्ररूप को प्राप्तहुए हैं तिस से तुम दोनों स्त्री-पुरुष कृतार्थ हो और तुम्हारे यश से यह जगत् भरगया है ॥ ४६ और दर्शन, आलिङ्गन, भाषण, शयन, आसन और भोजन के द्वारा श्रीकृष्णजी में पुत्रभाव का स्नेह करनेवाले तुम दोनों का अन्तःकरण शुद्ध होगया है इसकारण औरों की समान तुम्हें भागवतधर्म आचरण करने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारे पुत्रों को लालन करने से ही भागवत-धर्मों का सर्वस्व सिद्ध होगया है ॥ ४७ ॥ सोने बैठने आदि के विषें वैरभाव करके भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलोकैनाद्यैः ॥ ध्यायंत आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥ मोऽपत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ सं विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इतिश्री० भा० म० पु० ए० पंचमोऽध्यायः॥५॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्यैर्वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभु-

जिन भगवान् का ध्यान करनेवाले शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व आदि राजे, उन की गति, विलास और कटाक्षों के अवलोकन आदि करके उन के विषैं बुद्धि का लय होने के कारण उन की सायुज्यमुक्ति को प्राप्तहुए हैं फिर जिन की बुद्धि स्नेह से तदाकार हुई है उन की सायुज्यमुक्ति होयगी इस का तो कहना ही क्या ? ॥४८॥ अब पुत्र स्नेह से यदि मोक्ष होती है तो सब ही पुत्रवान् लोक क्यों नहीं मुक्त होजातेहैं ? ऐसा कहो तो—हे वसुदेवजी ! सर्वात्मा, ईश्वर, सब की अपेक्षा पर और अविनाशी हैं परन्तु माया के द्वारा मनुष्यनाट्य को स्वीकार करके गुप्तऐश्वर्यवाले तिन श्रीकृष्णभगवान् के विषैं तुम 'यह मेरा पुत्र है' ऐसी बुद्धि न रक्खो ॥ ४९ ॥ पृथ्वी के भारभूत दैत्यरूप राजाओं को मारने के निमित्त और साधुओं की रक्षा करने के निमित्त भूमि पर अवतार धारनेवाले तिन भगवान् की, कंसवधादिरूप कीर्त्ति, उन की महिमा की ओर को देखने पर यद्यपि आश्चर्यकारक नहीं है तथापि मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त होने के निमित्त इस लोक में वह आश्चर्यरूप से वर्णन करी है ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! यह आख्यान सुनकर महाभाग्यवान् वसुदेवजी और महाभाग्यवती देवकी यह दोनों, अतिविस्मितहुए और उन्होंने अपना पुत्रबुद्धिरूपमोह त्यागदिया ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य, एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र इतिहास को मन में धारण करता है वह इस ही देह में मोह का त्याग करके ब्रह्मभाव को पाने के योग्य होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब आगे अतिविस्तार से आत्मविद्या का निरूपण करने के निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तदनन्तर सनकादिक पुत्र, देवता और मरीचि आदि प्रजापति इन से घिरेहुए ब्रह्माजी, और भूतगणों से घिरेहुए भूतभविष्य प्राणियों के स्वामी श्रीशङ्कर, यह दोनों श्रीकृष्णजी का दर्शन करने के निमित्त द्वारका में पहुँचे ॥ १ ॥ तैसे ही मरुत् नामक देवगणोंसहित भगवान् इन्द्र, द्वादश आदित्य, अष्टवसु,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तोयदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिन्त्य-तेऽतर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः ॥ नैतै- भवानजित कर्मभिरज्यतेवै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः

अश्विनीकुमार, ऋभु, अङ्गिरस्, एकादशरुद्र, तेरह विश्वेदेव, साध्यदेवता, ॥२॥ गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नर यह सब ही, भगवान् ने, जिस स्वरूप से मनुष्यलोक के मन को आनन्दित करके लोकों में, सब लोकों के मन का मल दूर करनेवाला यश फैलाया था, उसही अतिसुन्दर कृष्णस्वरूप का दर्शन करने के निमित्त द्वारका में पहुँचे ॥३॥ ४ ॥ उन्होंने बडी २ सम्पदाओं से भरी तिस द्वारका में, जिन के नेत्र तृप्त नहींहुए हैं ऐसे होकर, अतिसुन्दरस्वरूप श्रीकृष्णजी का दर्शनकरा ॥५॥ और स्वर्ग के बागों में के पुष्पों से श्रीकृष्णजी को ढकदेनेवाले वह देवता, शृंखलाबन्ध आदि विचित्रपद और मनोहर अर्थवाली वाणियों से तिन जगदीश्वर भगवान् की स्तुति करने लगे ॥६॥ देवताओं ने कहा कि-हे नाथ! कर्मरूप दृढपाश से मुक्त होने की इच्छा करनेवाले पुरुष, अपने अन्तःकरण में जिस का ध्यान करते हैं परन्तु जिस को देख नहीं पाते हैं तिस तुम्हारे चरणकमल को हम बुद्धि, इन्द्रियें, प्राण, मन और वचन के द्वारा साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं, यह हमारा बड़ाभाग्य है ॥ ७ ॥ अब मुझे भी इसलोक में और परलोक में सुख देनेवाले कर्म करने पड़ते हैं, फिर कर्मपाश से मुक्त होने की इच्छा करनेवाले पुरुष, मेरे चरणारविन्द का ध्यान क्यों करते हैं? ऐसा कहोतो-हे अजित! इस अवतार में यह अतिअल्प कर्म तो रहें परन्तु माया के गुणों में नियन्ता होकर रहने वाले तुम, जिसकी मन से भी तर्कना नहीं होसके ऐसे महत्तत्त्व आदि सकल प्रपञ्च को, अपने स्वरूप में त्रिगुणमयी माया से उत्पन्न करते हो, पालन करते हो और संहार भी करते हो तथापि उन कर्मों से तुम लिप्त नहीं होते हो क्योंकि-तुम रागद्वेषादि रहित और आवरण शून्य आत्मसुख में रमेरहते हो इसकारण तुम कर्म करते हुए भी आत्माराम प-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ८ ॥ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥ स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ॥ यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भि-र्व्यूहार्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चित्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमादधन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधू-

रमेश्वर हो, इसकारण से मुमुक्षु पुरुष, तुम्हारे चरण का चिन्तवन करते हैं ॥ ८ ॥ अब मुझ आत्माराम को कर्म करके क्या करना है ऐसा कहोतो—हे स्तुतियोग्य उत्तम ! सत्त्व गुण की वृद्धि की प्राप्ति करनेवाले पुरुषों को, तुम्हारे यश को सुनने से बढ़ीहुई श्रद्धा करके जैसी शुद्धि प्राप्त होती है तैसी शुद्धि, विषयाभिलाषी पुरुषों को उपासना, शास्त्र का सुनना, वेदकापढ़ना, दान, तपऔरकर्मोंकेद्वारानहींप्राप्त होतीहैइसकारण आत्मारामभीतुम्हारे जो कर्मोंका आचरण सो अपने (तुम्हारे) परमपवित्र यश को फैलाने के निमित्त है ॥ ९ ॥ सो तुम्हारे यश की श्रद्धा ही शुद्धि का कारण है; हमने तो तुम्हारे चरण का दर्शन करा है इसकारण जिस तुम्हारे चरण का मुमुक्षु पुरुषोंने मोक्ष के निमित्त प्रेमसे द्रवीभूतहुए अपने हृदय में ध्यान करा है और जिस का भक्तों ने, तुम्हारी समान ऐश्वर्य प्राप्त होने के निमित्त वासुदेव आदि व्यूहके विषैं पूजन कराहै तिन में से कितने ही आत्मज्ञानी वीर पुरुषों ने स्वर्ग का उल्लंघन करके वैकुण्ठ को जाने के निमित्त त्रिकाल पूजन करा है वह तुम्हारा चरण हमारी विषयवासनाओं को भस्म करनेवाला अग्निसमान होय ॥ १० ॥ हे ईश्वर ! जिस का यज्ञ करनेवाले पुरुष, हाथ जोडकर और उस में हवन की सामग्री लेकर, वेद में कहे हुए इन्द्रादि देवतारूप से आहवनाय आदि अग्नियों में चिन्तवन करते हैं, जिस का योगीजन, मन को वश में करनारूप योग के द्वारा अणिमादि सिद्धि प्राप्त होने की इच्छा से चिन्तवन करते है और जिस का परम भगवद्भक्त सब प्रकार से पूजन करते हैं वह तुम्हारा चरण हमारी विषयवासनाओं को भस्म करनेवाला हो ॥ ११ ॥ इन कहेहुए छःप्रकारके सेवकों में परम भागवतों के ऊपर, तुम्हारी लक्ष्मी से भी अधिक प्रीति है ऐसी स्तुति करते हैं कि—हे प्रभो ! 'मै जहाँ रहती हूँ तहाँ ही यह वनमाला पर्युषित (वासी अर्थात् दूसरे दिन कुमलाई हुई) होनेपर भी रहती है' ऐसे तिस के रहने को सहन न करनेवाली भगवती लक्ष्मी, यद्यपि सौत के समान तिस वनमाला से ईर्षा करती है तथापि यह वनमाला भक्तों की अर्पण करीहुई है ऐसी प्रीति से तुम, भक्तपुरुषों की वनमाला करके करीहुई पूजा को ही उत्तम रीति से स्वीकार करते हो, ऐसे तुम्हारा चरण, हमारी अशुभ वासनाओं को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेव-चम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥१३॥ नस्योत गौव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमाना ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया ऽस्य वीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भमयोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥

निरन्तर भस्म करनेवाला हो ॥१२॥ अब, तुम्हारे चरण का, भक्त का पक्षपात करना प्रसिद्ध ही है ऐसा दिखानेहुए प्रार्थना करते हैं कि—हे व्यापक! हे भगवन्! जो तुम्हारा चरण, बलि राजा का बन्धन करते समय त्रिलोकी को ग्रहणकरनेवाले तीनपग रखनेवाला हुआ, उसके दूसरे चरण के समय सत्यलोकपर्यन्त जाने पर वह, खडी करीहुई ध्वजा की समान दीखनेलगा; इसप्रकार कि—तीनों लोकों में संचार करनेवाली जो गङ्गा वही जिस की पताका है, तैसे ही देवदैत्यों की सेनाओं को, क्रम से भय और अभय करनेवाले होकर देवताओं को स्वर्ग देने के विषय में और असुरों की अधोगति करने के विषय में जो कारण हुआ वह तुम्हारा चरण, भक्ति करनेवाले हमारे पापों को दूर करे ॥ १३ ॥ अब, युद्ध में देवदैत्य आदि परस्पर जीतते और हारते हैं तहाँ मैं भय और अभय करनेवाला कैसे होता हूँ? ऐसा कहो तो—युद्ध कर के परस्पर पीडा देनेवाले जो देहधारी ब्रह्मादिक वह भी, नाक में नाथ डालेहुए बैलों की समान जिन तुम्हारे वश में हैं, जयपराजय पाने में स्वाधीन नहीं हैं, ऐसे प्रकृति पुरुष से पर और सबके प्रवर्त्तक तुम पुरुषोत्तम का चरण हमारा कल्याण करे ॥१४॥ अब उन का पुरुषोत्तमत्व कहते हैं—हे प्रभो! प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्व के नियन्ता होने के कारण इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार के कारण, उत्तम पुरुष हो; ऐसा श्रुति कहती हैं. जगत की उत्पत्ति आदिकाल से होते हैं मुझ से नहीं होते हैं ऐसा कहो तो—सबों का नाश करने में प्रवृत्त होनेवाला, गम्भीर वेगवान् और तीन चातुर्मास्यरूप अवयवों से युक्त सम्वत्सरनामक जो काल वह भी तुम ही हो ॥ १५ ॥ अब तुम ही जगत् की सृष्टि आदि के कारक हो जो कहा तिस का प्रकार विस्तार के साथ कहते हैं कि—तुम से पुरुष को शक्ति प्राप्त होने के कारण वह अमोघशक्ति हुआ. तदनन्तर उस ने माया से युक्त होकर इस जगत् के बीजभूत महत्तत्त्व को उत्पन्नकरा फिर उस महत्तत्त्व ने भी उस ही माया से युक्त होकर अपने में एक के बाहर दूसरा ऐसे आवरणों से युक्त ब्रह्माण्डकोश उत्पन्नकरा ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्तस्थुपश्च जगतश्च भवानधीशो यन्मायया त्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थान् जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म १७॥ स्मायावलोककलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्यः ॥१८॥ विभ्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् । आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थपदस्त उपसृप्शन्ति ॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्यावहितो ऽग्रतः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावतारायपुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥

इसकारण ही स्थावरों के और जङ्गमों के तुम स्वामी हो. और हे इन्द्रियों के स्वामिन् ! माया से क्षोभितहुई इन्द्रियों की वृत्तियों करके प्राप्त करेहुए शब्दादि विषयों का तुम सेवन करतेहुए भी लिप्त नहीं होते हो ; तुम से दूसरे जो जीव वा योगी हैं वह अपने त्याग करेहुए भी विषयों के सेवन से वासनामात्र करके बन्धन को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ जिन तुम्हारे मन को, सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियें भी, अपने मन्दहास्य से शोभायमान कटाक्षों करके सूचित करेहुए अभिप्राय से मन को हरनेवाला जो भूमण्डल तिस करके प्रेरणा करेहुए रतिसम्बन्धी विचारों से प्रौढ़हुए कामदेव के बाणों करके और मोहनेवाली कामकलाओं करके चलायमान करने को समर्थ नहींहुई इसकारण ही तुम विषयों का सेवन करतेहुए भी अलिप्त हो ॥ १८ ॥ तुम्हारी अमृतसमान कथारूप नदियें और चरण के धोवन के जल की गङ्गादिक नदियें, त्रिलोकी में के जीवों के पापों को धोडालने में समर्थ हैं इसकारण ही अपनी शुद्धि होने की इच्छा करनेवाले वर्णाश्रमधर्मी पुरुष, वेद में वर्णन करीहुई तुम्हारी कीर्त्तिरूप तीर्थ का श्रवण कीर्त्तन आदिरूप करके और चरण से उत्पन्न हुए गङ्गादि तीर्थ का स्नानपानादिरूप से सेवन करते हैं ॥१९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! ब्रह्माजी ने, शिवजी और देवताओंसहित इसप्रकार जीकृष्णजी की स्तुतिकरी, तदनन्तर नमस्कार करके लौटकर जाने के निमित्त आकाश तें खडे होकर श्रीकृष्णजी से कहा ॥ २० ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि–हे सर्वात्मन् प्रभो ! पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त पहिले हमने तुम्हारी प्रार्थना करी थी तैसे ही वह सब कार्य तुमने ठीक करलिया है ॥ २१ ॥ सत्यप्रतिज्ञ साधुओं का कल्याण करने के निमित्त तुमने धर्म की स्थापनाकरी है और दशों दिशाओं में सब लोकों के पाप नष्ट करनेवाली अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे विभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हितायाजगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः॥२४॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो॥२५॥ नाधुनाऽतेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठ किंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्बुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥ यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गंतास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति॥३०॥ इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापजः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य

कीर्त्ति फैलाई है ॥ २२ ॥ यदुवंश में अवतार लेकर सर्वोत्तमरूप धारण करनेवाले तुम ने जगत् के हित के निमित्त परमपराक्रमयुक्त कर्म करे हैं ॥ २३ ॥ हे ईश्वर ! जिन तुम्हारे चरित्र को सुननेवाले और कीर्त्तन करनेवाले सदाचारवान् मनुष्य, इस कलियुग में भी संसार के कारणरूप अज्ञान को तरजायँगे ॥२४॥ हे प्रभो पुरुषोत्तम ! यदुवंश में अवतार धारण करनेवाले तुम्हें एक सौ पच्चीस वर्ष होगये हैं ॥२५॥ हे सर्वाधार ! देवताओं के कार्य करने में से अब तुम्हें कोई भी कार्य करने को शेष नहीं रहा है और यह यादवकुल भी ब्राह्मणों के शाप से नष्टहुआसा हो होगया है ॥ २६ ॥ इस से हे वैकुण्ठ ! अब यदि तुम्हारी इच्छा होय तो तुम अपने वैकुण्ठलोक में गमन करो और तुम्हारे किङ्करूप हम लोकपालों को लोकों सहित रक्षा करो अर्थात् वैकुण्ठ को जाते में हम लोकपालों के घर पधारकर हमारी पूजा को ग्रहण करके हमें कृतार्थ करो ॥२७॥ ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीभगवान् कहने लगे कि-हे देवेश्वर ब्रह्मदेव ! तुम ने जो कहा यह सब मैंने पहिले ही मन में विचारलिया है, तुम्हारा सब कार्य मैंने करलिया है और भूमि का भार भी उतारकर दूर करदिया है ॥ २८ ॥ और वीरता, शूरता तथा लक्ष्मी से उद्धत होकर लोकों का नाश करने की इच्छा करनेवाला यह यादवों का कुल भी, जैसे मर्यादा समुद्र को रोकती है तैसे ब्राह्मणों के शाप से रोकदिया है ॥२९॥ घमण्डीहुए यादवों के बहुतबढेहुए कुल का संहार करेविना यदि मैं निजधाम को चलाजाऊँगा तो मर्यादा को उलंघन करने वाले इस यादवकुल से ही लोकों का नाश होजायगा ॥ ३० ॥ हे पवित्र ब्रह्माजी ! अब ही ब्राह्मणों का शाप रचकर इस कुल के नाश का प्रारम्भ करा है, इस से इस का अन्त होनेपर शीघ्र ही मैं वैकुण्ठ को जाऊँगा तब तुम्हारे लोक में भी आऊँगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तम् ॥ सह देवगणैर्देवैः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतांऽधसा ॥ ३७ ॥ तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ॥ व्रजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टा यादवाः कुलनन्दन ॥ गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यंदनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तैजिरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा

कहते हैं कि—हे राजन्! भगवान के इसप्रकार कहनेपर ब्रह्माजी ने, उन श्रीकृष्णजी को नमस्कार करके देवगणों के साथ सत्यलोक को गमन करा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर द्वारका में बडे बडे उत्पात होनेलगे, उन को देखकर एकस्थान पर इकट्ठेहुए बूढे २ यादवों से भगवान् ने कहा ॥ ३३ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे वृद्धों! इस द्वारका में जिधर तिधर यह बडे बडे उत्पात होनेलगे हैं और हमारे कुल को ब्राह्मणों से बडा दुस्तर शाप भी प्राप्त हुआ है ॥ ३४ ॥ सो हे श्रेष्ठ यादवों! जीवित रहने की इच्छा करनेवाले हमारा अब इस द्वारका में रहने का काम नहीं है, इस से अधिक विलम्ब न करके आज ही महापुण्यकारी प्रभासक्षेत्र में चलें ॥ ३५ ॥ जहाँ दक्ष के शाप करके क्षयरोग से पीडितहुए चन्द्रमाने, स्नान करने पर तत्काल रोग के दुःख से छुटकारा पाया और फिर अपनी कलाओं की वृद्धि को प्राप्तहुआ ॥ ३६ ॥ हम भी तहाँ स्नान करके देवताओं का और पितरों क तर्पण करके, मधुरता आदि अनेकों गुणों से युक्त अन्न करके बडे बड़े विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन करावेंगे और उन सत्पात्र ब्राह्मणों को, अनेक फल देनेवाले बड़े २ दान श्रद्धाके साथ देकर, जैसे नौका के द्वारा समुद्र को तरजाते हैं तैसे ही सकल दुःखों को तरजायँगे ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इसप्रकार भगवान् के आज्ञा करेहुए वह यादव, तिस तीर्थ को जाने की इच्छा से अपने २ रथों में घोडे जोड़नेलगे ॥ ३९ ॥

(१) प्रभास क्षेत्र में चलें ऐसा कहने का श्रीकृष्णजी का यह अभिप्राय था कि--यादव देवताओं के अंश हैं वह अपने २ अधिकारों पर ही जाने के योग्य हैं, तत्काल मोक्ष पाने के योग्य नहीं हैं, द्वारका में शरीर छोडनेपर मुक्त होजायंगे इसकारण इन को कल्याणरूप फल देनेवाले प्रभास क्षेत्र में ही लेजाना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत॥४१॥उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥४२॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्द्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाऽशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेम हि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोऽलंकारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि ॥ ॥ ४६ ॥ वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमंथिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते

यह देखकर, भगवान् का भाषण सुनकर और भयङ्कर उत्पात देखकर निरन्तर भगवान् के आज्ञाकारी होकर रहनेवाले उद्धवजी ने, जगत् के ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णजीसे एकान्त में मिलकर उन के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम करा और हाथ जोड़कर उन से कहनेलगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे देवदेव ! हे ईश्वर ! हे योगेश्वर ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! तुम निःसन्देह इसकुल का संहार करके मनुष्यलोक का त्याग करने वाले हो, क्योंकि—तुमने ईश्वर और समर्थ होकर भी ब्राह्मणों के शाप को दूर करने का उपाय नहीं करा ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! हे केशव ! मैं तुम्हारे चरणकमल का आधे क्षण को भी त्याग नहीं करसक्ता, इसकारण तुम मुझेभी निजधाम को ले चलो ॥ ४३ ॥ हेकृष्ण ! तुम्हारी क्रीड़ा के चरित्र मनुष्यों को परममङ्गलरूप और कर्णों को अमृत की समान मधुर लगनेवाले हैं इसकारण उन का आस्वादन (श्रवण) करके भी जब मनुष्य, धन, पुत्र, स्त्री आदि कों में की आसक्ति को छोड़देते हैं तो जिन हमने सोना, बैठना, फिरना, रहना, स्नान करना, खेलना, और भोजन करना, इत्यादि कों में तुम्हारी सेवा करी है ऐसे हम, परमप्रिय, आत्मस्वरूप तुम्हें त्यागने को कैसे समर्थ होसक्ते हैं ? ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ मैं माया के भय से यह प्रार्थना करता हूँ ऐसा नहीं है किन्तु तुम्हारा वियोग सहन नहीं होसकेगा इसकारण कहता हूँ ; तुम्हारे उपभोग करेहुए माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण धारण करनेवाले और उच्छिष्ट (तुम्हें अर्पण करने पर, यह मुझे पहुँचगया, अब तुम इस का भोजन करो ऐसा तुम्हारे कहेहुए अन्न आदि) का भोजन करनेवाले हम दास, तुम्हारी माया को जीतरहे हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ दिगंबरपने से फिरनेवाले, इन्द्रियों को वश में रखने का परिश्रम करनेवाले, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले, सकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योन्ति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च, ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडंबनम् ॥ ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान्देवकीसुतः ॥ एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्ववासं मेऽभिकांक्षिणः ॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ तदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नेक्ष्यत्यन्योऽन्यविग्रहात् समुद्रः सप्तमेऽह्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वया वेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽ-

विषयभोगों को त्यागनेवाले, शान्त और निर्मल जो ऋषि हैं वह बड़े कष्ट से तुम्हारे ब्रह्म नामक स्थान को पाते हैं ॥ ४७ ॥ और हे महायोगिन् ! हम तो इसलोक में कर्ममार्ग के विषैं भटकते हुए भी तुम्हारे करेहुए कर्म, तुम्हारे भाषण, और तुम्हारी गति, मन्दहास्य, अवलोकन, चौल आदि जो कुछ मनुष्यलोक का अनुकरण हुआ है तिस का अनुकरण और कीर्त्तन करतेहुए तुम्हारे भक्तों के साथ होनेवाले कथाश्रवण आदिकरके दुस्तर भी संसार को अनायास में तरजायँगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार प्रार्थनाकरेहुए वह देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी, एकान्तभक्त, प्रिय और सेवक तिन उद्धवजी से कहने लगे ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे महाभाग उद्धवजी ! तुमने जो मुझसे कहा सो यदुकुल का संहार आदि कार्य मेरे मन में करने का है, क्योंकि—ब्रह्माजी, शङ्कर, और इन्द्रादिक लोकपाल यह सब मेरे वैकुण्ठवास की इच्छा कररहे हैं ॥ १ ॥ ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर मैं बलरामसहित इस मनुष्यलोक में जिस कार्य के निमित्तप्रकटहुआ था वह देवताओं का सब कार्य ठीक होगया है ॥ २ ॥ जो यह भूमि का भाररूप शेष रहाहुआ यादव कुल है सो भी ब्राह्मणों की शापाग्नि से भस्मसा होकर परस्पर कलह करके नाश को प्राप्त होजायगा और इस नगरी को आज से सातवें दिन समुद्र डुबालेगा इस कारण तुम सकल संगों का त्याग करके आत्मनिष्ठ होजाओ ॥ ३ ॥ हे साधो ! यह भूलोक जिससमय मुझसे त्यागाहुआ होयगा उससमय नष्टमङ्गल होजायगा और इस के ऊपर कलियुग भी अपना प्रभाव बैठालेगा ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! मेरे त्यागे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

धर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥५॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नेश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानाऽर्थो भ्रमः सगुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्म विकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥ तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व वितंतमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथाऽर्भकः॥११॥

हुए इस भूतल पर तुम भी न रहो, क्योंकि-आगे को कलियुग में लोकों की अधर्म पर प्रीति होयगी ॥ ५ ॥ तब फिर क्या करना चाहिये? यदि ऐसा कहो तो-तुम स्वजन और बान्धवों में के स्नेह को त्यागकर मुझ में उत्तम प्रकार से मनलगाकर सर्वत्र समदृष्टि रक्खो और भूमि पर विचरो ॥ ६ ॥ अब गुणदोषों से युक्त लोकों में समदृष्टि कैसे रक्खीजाय? ऐसा कहो तो-मन, वाणी, चक्षु और कर्ण आदि इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ ग्रहण कराजाता है वह सब मन की कल्पनामात्र होने के कारण मायाकल्पित और क्षणभर में नाश को प्राप्त होनेवाला है ॥७॥ क्योंकि-दिक्षिप्तचित्तहुए पुरुष को, भेदविषयक जो भ्रम होता है वह उस में गुणदोषबुद्धि उत्पन्न करनेवाला है,उस भेद के सत्य न होने के कारण विचारवान् पुरुष सर्वत्र समदृष्टि रखते हैं; अब वेद ने ही विधिनिषेधों के द्वारा 'भेद सत्य है' ऐसा कहा है ऐसा कदाचित् ध्यान में आवे तथापि विचार करके देखने पर, जिस की बुद्धि में गुणदोष हैं उस को ही वेद ने,यह विहितकर्म है,यह अकर्म है और यह निषिद्धकर्म है ऐसा कहा है, ज्ञानी को नहीं कहा है, क्योंकि ज्ञानी निरन्तर सकल जगत् को अभेदभाव से देखता है ॥८॥ इसकारण ही इन्द्रियों के समूह को, और मनको वश में करके इस जगत् को अपने जीवात्मा के विषैं देखो और जीवात्मा को मुझ सर्वात्मा के विषैं अभेदरूप से व्यापरहा है ऐसा देखो ॥ ९ ॥ अब,ऐसा देखकर, एकाग्रचित्तपने से कर्म न करने पर देवादिक विघ्न करेंगे ऐसा कहो तो-वेद के तात्पर्य के निश्चय और उस के अर्थों के अनुभव से सन्तुष्ट हो,तब सकल देवतादिकों में आत्मरूप हुए तुम,विघ्नों से तिरस्कार नहीं पाओगे, इस का तात्पर्य यह है कि-आत्मा का अनुभव होनेपर्यन्त वर्णाश्रमधर्मों के अनुसार कर्म करे, तदनन्तर सबों के आत्मरूप होजाने के कारण कोई भी विघ्न नहीं करसक्ता ॥ १० ॥ इस से ही ज्ञानी यथेष्ट आचरण करता है ऐसा न समझे, क्योंकि-जैसे बालक सङ्कल्पविकल्पों से रहित होताहुआ स्वाभाविक इच्छा से ही किसी हस्तचलाना आदि कर्म को करता है और स्वाभाविक ही रोना आदि कर्म नहीं करता है तैसे ही गुणदोषबुद्धि से रहित हुआ ज्ञानी, पूर्व के संस्कारवश अनेकों निषिद्धकर्मों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः॥पश्यन्गदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याहं तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥१४॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्भक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे॥ तत्त्वज्ञसंनिगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥१६॥सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव मायया मे ब्रह्मादिस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः॥१७॥ तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठ-

से निवृत्त ही होता है परन्तु इस निषिद्ध कर्म को न करना चाहिये ऐसी दोषबुद्धि से निवृत्त नहीं होता है, तैसे ही वेदविहित ही कर्म करता है परन्तु यह विहित है करना ही चाहिये ऐसी गुणबुद्धि से नहीं करता है ॥११॥ इसप्रकार वेद के तात्पर्य का यथार्थ निश्चय और वेदार्थ का अनुभव करनेवाला,सकलप्राणियों का मित्र और शान्त हुआ पुरुष,सकलजगत् मेरा स्वरूप ही है ऐसा देखकर फिर जन्ममरणरूप संसार को नहीं पाता है॥१२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! इसप्रकार भगवान् के आज्ञा करने पर वह परमभगवद्भक्त उद्धवजी,तत्त्व को जानने की इच्छा करके फिर उन श्रीकृष्णजी को नमस्कार करके कहनेलगे ॥१३॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे योगेश्वर! हे योगफल के निधिरूप! हे योगस्वरूप! तुम ने जो यह मेरे कल्याण के निमित्त संन्यासरूप त्याग का लक्षण कहा है सो केवल अपनी महिमा के महत्त्व के अनुसार कहा है मेरे अधिकार को देखकर नहीं कहा है॥१४॥ क्योंकि—हे व्यापक सर्वात्मन्! यह विषयों का त्याग, विषयों में आसक्त पुरुषों से होना बड़ी कठिन है, तिस में जो तुम्हारे भक्त नहीं हैं उन को तो अत्यन्त ही कठिन है, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥१५॥ तिस कारण जिस से तुमने त्याग आदि कहा ऐसा मैं, मूढ़बुद्धि होकर तुम्हारी माया से रचेहुए पुत्रकलत्रादि सहित देह के विषै मैं और मेरा इसप्रकार की बुद्धि से निमग्न होरहा हूँ, इस से हे भगवन्! जो मुझ से संक्षेप से कहा है, उस को जैसे मैं सुख से साधसकूँ तैसे अपने सेवक मेरे अर्थ विस्तार के साथ कहिये ॥ १६ ॥ मैंने संक्षेप से कहा है इस का विस्तार तुम दूसरे से बूझो? ऐसा कहो तो—हे ईश्वर! सत्य और स्वप्रकाश आत्मा का मुझ से वर्णन करनेवाला तुम्हारे सिवाय देवताओं में भी नहीं दीखता है,क्योंकि यह ब्रह्मादिक सब ही देहधारी होने के कारण तुम्हारी माया से मोहितबुद्धि होकर विषयों में सत्यता की बुद्धि रखनेवाले हैं ॥ १७ ॥ और कितने ही लोक तो दुष्ट स्वभाववाले हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धिष्ण्यं । निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये १८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ संमुह्यन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां "श्रेयोऽसावनुविंदते" ॥ २० ॥ पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितं॥ ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे "पौरुषी प्रिया ॥२२॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम्॥

कितने ही सेवाकरनेपर भी फल मिलने के समय नाश को प्राप्त होजाते हैं, कितने ही अज्ञानी-कितने ही रक्षा करने में असमर्थ और कितने ही स्थानभ्रष्ट हैं इस से निर्दोष, अविनाशी, सर्वज्ञ, रक्षा करने में समर्थ और काल आदि से बाधा न पानेवाले वैकुण्ठलोक में रहनेवाले तुम नरसखा नारायण को, आध्यात्मिक आदि अनेकों तापों से तप्त होने के कारण विषयों के सेवन से घबड़ायाहुआ मैं शरण आया हूँ ॥ १८ ॥ इसप्रकार उपदेश करेहुए तत्त्व को असंभावना विपरीतभावनाओं के द्वारा ग्रहण करने में असमर्थहुए तिन उद्धवजी से, तिन असम्भावना आदिकों के दूर होने के निमित्त, गुरु के उपदेश के विना भी मन में ही विचार करने पर अन्वय व्यतिरेक से तत्त्वसाक्षात्कार होता है ऐसा दिखाने के निमित्त श्रीभगवान् ने कहा कि-हे उद्धवजी ! प्रायः इस लोक में लोकतत्त्व की परीक्षा करनेवाले जो पुरुष हैं वह आप ही अपना विषयवासनाओं से उद्धार करलेते हैं, गुरु के उपदेश की कुछ अपेक्षा नहीं रखते हैं ॥ १९ ॥ पशु आदि शरीरों में भी अपना हित अहित विचारनेवाला गुरु आप ही है, तिस में मनुष्य शरीर के विषै तो विशेष करके है, क्योंकि-इस पुरुष को मनुष्यशरीर में प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा अपना स्वरूप जानकर कल्याण करलेना सुलभ होता है ॥ २० ॥ तिस में प्रत्यक्ष इसप्रकार है कि-इस पुरुष जन्म में सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र में प्रवीण विचारवान् पुरुष, ज्ञान ऐश्वर्य आदि सकल शक्तियों से परिपूर्ण मुझ परमात्मा को अत्यन्त सुलभ रीति से जानलेते हैं ॥ २१ ॥ एक, दो, तीन वा चार चरणों के, बहुत से चरणों के, अथवा चरणों के विनाही उत्पन्न करेहुए बहुत से शरीर हैं उन में मुझे मनुष्य शरीर परम प्रिय लगता है ॥ २२ ॥ अब अनुमान इसप्रकार है कि-इस मनुष्य शरीर में ही सावधान रहनेवाले पुरुष, चक्षु इन्द्रियसे ग्रहण करने को अशक्य और अहंकार आदिकों में से निराले मुझ ईश्वर की यथार्थ रीति से खोज करके उस को प्राप्त करलेते हैं, वह खोजने की रीति इस प्रकार है कि-बुद्धि आदि जड पदार्थों का प्रकाश एक स्वप्रकाश वस्तु के विना नहीं होसक्ता इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्रोप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥२५॥ यदुरुवाच॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गांऽभस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्श-

कारण सकल दृश्यपदार्थों को प्रकाश करनेवाली जो एक वस्तु है वही आत्मा है, दूसरा अनुमान इसप्रकार है कि बुद्धि आदि पदार्थ एक स्वतन्त्रकर्त्ता से प्रेरित हैं क्योंकि—वह साधनरूप हैं, जो जो साधनरूप पदार्थ होते हैं वह वह 'कुल्हाड़ी आदि पदार्थों की समान' दूसरे स्वाधीनकर्त्ता के प्रेरणा करेहुए होते हैं, ऐसा अनुमान करके सावधान हुए पुरुष, मेरी खोज करके मेरी प्राप्ति करलेते हैं ॥२३॥ अब अन्वय व्यतिरेक से असम्भावना की निवृत्ति के विषय में इतिहास कहते हैं कि—हे उद्धवजी! इस आप ही अपना उद्धार करने के विषय में अवधूत (दत्तात्रेय) का और परमतेजस्वी राजा यदु का सम्वादरूप पुरातन इतिहास वृद्धपुरुष दृष्टान्तरूप से वर्णन करते हैं वह मैं तुम से कहता हूँ ॥ २४ ॥ धर्म को जाननेवाले राजा यदु ने, उबटन आदि संस्कार से रहित, तरुण, निर्भय फिरनेवाले और विद्वान् किसी एक ब्राह्मण को देखकर उस से प्रश्न करा॥२५॥ यदु ने कहा कि—हे ब्राह्मण! इन्द्रियों की प्रीति के निमित्त कर्म न करनेवाले तुम्हें यह परमनिपुण, लोकविलक्षण बुद्धि कहां से प्राप्तहुई है? जिस बुद्धि को पाकर तुम विद्वान् होकर भी लोक में बालक की समान (अज्ञानी की समान) विचरते हो ॥ २६ ॥ प्रायः धर्म. अर्थ, काम और आत्मविचार के विषय में सब ही मनुष्य प्रवृत्त होते हैं, तिन में भी आयु, यश अथवा लक्ष्मी प्राप्त होने की कामना से ही वह प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ और तुम तौ समर्थ, ज्ञानी, चतुर, सुन्दर और अमृत की समान मधुर बोलनेवाले होकर भी जड़, उन्मत्त और पिशाच की समान कोई भी कर्म नहीं करते हो और करने की इच्छा भी नहीं करते हो ॥ २८ ॥ काम और लोभरूप वन की अग्नि से जलतेहुए सब लोकों में तुम, अग्नि में से बाहर निकलकर गङ्गा के जल में गोतालगाकर रहनेवाले हाथी की समान जरा भी ताप नहीं पाते हो, सो ऐसा बडाभारी आनन्द तुम्हें कैसे प्राप्तहुआ है? ॥२९॥ इससे हे ब्राह्मण! विषयभोग से और स्त्रीपुत्रादिकों से रहितहुए तुम्हारे मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥३४॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परा-

में आनन्द रहने का कारण क्या है? यह सब बूझनेवाले हमसे तुम कहो ॥३०॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे उद्धवजी! इसप्रकार ब्राह्मणों के भक्त और उत्तमबुद्धि उन राजा यदु ने जिन से सत्कारपूर्वक प्रश्नकरा है ऐसे वह महाभाग ब्राह्मण, नम्रतायुक्त तिन राजा यदु से कहनेलगे ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—हे यदु राजन्! बुद्धि से ही आश्रय कियेहुए मेरे बहुतसे गुरु हैं, उन में से जिस गुरु से जो बुद्धि सीखकर मैं मुक्त होताहुआ पृथ्वी पर विचरता हूँ उन गुरुओं का मैं तुम से वर्णन करता हूँ सुनो ॥ ३२ ॥ १ पृथिवी, २ वायु, ३ आकाश, ४ जल, ५ अग्नि, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ कपोत, ९ अजगर सर्प, १० समुद्र, ११ पतङ्ग, १२ मधुमक्षिका, १३ हाथी, ॥ ३३ ॥ १४ मधु को हरण करनेवाला, १५ हरिण, १६ मत्स्य, १७ पिङ्गला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी, २१ बाणबनानेवाला, २२ सर्प, २३ मकडी और २४ भृङ्गी कीडा ॥ ३४ ॥ यह चौबीस गुरु मैंने अपनी बुद्धि से ग्रहणकरे हैं, इन के वर्त्ताव से मैंने अपने ग्रहण करने के और त्यागने के गुण सीखलिये हैं ॥ ३५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ट! यदुराजन्! अब मैंने जिस गुरु से जिस रीति से जो सीखा है सो तैसा ही तुम से कहता हूँ सुनो ॥३६॥ अब पृथ्वी से जो कुछ सीखा सो कहते हैं कि—सकलप्राणियों के चरणों से आक्रमण करने पर भी (खूँदने पर भी) वह जैसे क्षमा करती है अपने नियम से चलायमान नहीं होती है तैसे ही प्रारब्धकर्म के प्रेरणा करेहुए प्राणियों के पीड़ा देने पर भी धैर्यवान् पुरुष, उन प्राणियों की उस दैवाधीनता को जानकर आप अपने धर्ममार्ग से चलायमान नहीं होय; यह व्रत (नियम) मैंने पृथिवी से सीखा है ॥३७॥ अब विशेष करके पर्वतरूप और वृक्षरूप हुई पृथिवी से सीखेहुए गुण कहते हैं कि—जैसे पर्वत परके वृक्ष, तृण, झरने आदि सब पदार्थ परोपकार के निमित्त होते हैं और उन का जन्म भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थैकांतसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मतां ॥ ३८ ॥ प्राण-वृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अंतर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्तव्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं वित-

केवल परार्थ ही होता है तैसे ही अपने सब व्यवहार और जन्म यह केवल परोपकार के ही लिये हों ऐसा, साधु पुरुष पर्वत से सीखे और वृक्षों का शिष्य होकर उन से परात्मता सीखे अर्थात् जैसे वृक्ष, दूसरेके तोडकर अथवा उखाडकर लेजाने पर उस का अनुमोदन ही करके केवल पराधीनता से रहता है तैसे ही अपने को कोई मारे अथवा खसोटे तो उस का अनुमोदन करके पराधीनपने से रहे ॥ ३८ ॥ वायु भी प्राणवायु और बाहरी वायु ऐसे दो प्रकार का है, तिस में प्राणवायु का गुरुभाव कहते हैं कि—जैसे प्राणवायु आहार मिलने से ही सन्तुष्ट होजाता है; रूपरस आदि इन्द्रियों के विषयों की अपेक्षा नहीं करता है तैसे ही योगी को भी आहारमात्र से ही सन्तुष्ट होना चाहिये, इन्द्रियों के प्रिय विषयों की अपेक्षा नहीं करना चाहिये; कुछ भी भोजन नहीं कियाजायगा तो मन विव्हल होकर ज्ञान का नाश होजायगा, ऐसा न होने के निमित्त देह का निर्वाह होनेयोग्य भोजन करना चाहिये; श्रेष्ठ आहार की और विषयों की अपेक्षा होय तो मन और वाणी को विक्षेप प्राप्त होता है, ऐसा न होने की युक्ति करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अब बाहरी वायु का गुरुभाव कहते हैं कि—जैसे बाहर का वायु, वन में वा अग्नि में सर्वत्र फिरने पर कहीं भी आसक्त होकर नहीं रहता है तैसे ही गुणदोषों से रहितबुद्धि हुआ योगीको, सर्वत्र शीत उष्ण आदि अनेकों धर्मों के विषयों में अनुकूल वा प्रतिकूल प्राप्तहोय तो उस का सेवन करतेहुए कहीं भी आसक्त नहीं होना चाहिये॥ ४० ॥ और जैसे वायु सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित पदार्थों के आश्रय से सुगन्धि वा दुर्गन्धिवाला प्रतीत होता है परन्तु वह सुगन्ध आदि गुण पृथिवी के हैं इसकारण उन के संयोग को नहीं पाता है तैसे ही पृथिवी के विकाररूप देहों में प्रविष्ट होकर उन देहोंके बालकपन आदि धर्मों का आश्रय करके बालक युवा आदि रूपों से प्रतीत होनेवाला भी योगी, वास्तव में आत्मदर्शी होनेके कारण उन बालकपन आदि गुणों से युक्त नहीं होता है यह मैंने बाहरी वायु से सीखा है॥ ४१॥ अब आकाश का गुरुभाव कहते हैं—देहस्थिति से वर्त्ताव करनेवाला भी योगी, मेरा आत्मा आकाश की समान है ऐसी भावना करे और जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त होय तो भी उस को घट आदि पदार्थों से संग वा परिच्छिन्नता नहीं प्राप्त होते हैं तैसे ही ब्रह्मस्वरूप भावना से अपने आत्मा की स्थावर जङ्गमों में अनुस्यूतपने से व्याप्ति और वह भी जैसे मणियों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽवन्नमयैर्भावैर्मयाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्येत नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपामित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्नागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्संरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानांता

सूत की होती है तैसी नहीं किन्तु सब अंशों में व्याप्ति है ऐसा समझकर अपना किसी भी देह आदिकों से सङ्ग वा किसी भी पदार्थ से परिच्छेद नहीं है ऐसी भावना करे ॥ ४२ ॥ और जैसे आकाश को वायु के प्रेरणा करेहुए मेघ, धूलि आदिकों का स्पर्श नहीं होता है तैसे ही अन्तर्यामी जीवात्मा को, काल के रचेहुए—तेज, जल और पृथ्वीमय देह आदिक पदार्थों का स्पर्श नहीं होता है ॥ ४३ ॥ अब जल से सीखेहुए गुण कहते हैं-जैसे जल, स्वच्छ, स्वभाव से स्निग्ध, मधुर, मनुष्यों के पवित्र होने का स्थान और दर्शन, स्पर्शन तथा वर्णन के द्वारा जगत् को पवित्र करता है तैसे ही योगी भी—स्वच्छ, स्वभाव से स्नेह युक्त, मधुर भाषण करनेवाला, मनुष्यों के पवित्र होने का स्थान, और दर्शन, स्पर्शन तथा कीर्त्तन के द्वारा जगत् को पवित्र करनेवाला होय ॥ ४४ ॥ अब अग्नि से जो सीखा सो कहते हैं—जैसे अग्नि तेजस्वी, तापशक्ति से प्रकाशवान्, क्षोभ करने को अशक्य, अपने पेट में सब रखनेवाला और सर्वभक्षक होकर भी दोषरहित होता है तैसे ही योगी भी, ज्ञान की अधिकता से तेजस्वी, तप से प्रकाशवान्, मोहित करने को अशक्य, उदर से ही पात्र का व्यवहार करनेवाला और सर्वभक्षक होकर भी दोषरहित होय ॥ ४५ ॥ और जैसे अग्नि कहीं गुप्त, कहीं स्पष्ट, और कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों करके उपासना करने योग्य होकर अपने को होम की सामग्री देनेवाले पुरुषों के पहिले हुए और आगे को होनेवाले पापों को जलाडालता है और दूसरों की इच्छा से सकल स्थल में भक्षण करता है तैसे ही साधु, कहीं गुप्त, कहीं प्रकट, और कल्याण की इच्छा करनेवाले लोकों करके सेवन करने योग्य और अन्न देनेवाले लोकों के हुए और होनेवाले पापों को भस्म करनेवाला होकर दूसरों की इच्छा से सर्वत्र भोजन करनेवाला होय ॥ ४६ ॥ और जैसे अग्नि काठ में होय तो उन काठों की समान ही लम्बा टेढा आदि प्रतीत होता है परन्तु वह वास्तव में तैसा नहीं होता है तिसीप्रकार आत्मा भी, अपनी अविद्या से उत्पन्न करेहुए छोटेबड़े देवता—पशु—पक्षी आदि जगत् में प्रविष्ट होनेपर तिस २ के स्वरूपवाला प्रतीत होताहै परन्तु वास्तव में तैसा नहीं होताहै, ऐसा योगी जाने ॥ ४७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथोऽर्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नाँ-

अब चन्द्रमा से जो सीखा सो कहते हैं कि–जैसे चन्द्रमा की प्रकाशरूप सोलह कलाओं के ही उत्पत्तिनाश होते हैं, उदकमण्डलरूप (जलमय) चन्द्रमा के नहीं होते हैं तैसेही जन्मसे मरण पर्यन्त सकल विकार, अव्यक्तस्वरूप काल के द्वारा देह के ही होते हैं, आत्मा के नहीं होने हैं ॥ ४८ ॥ फिर सिंहावलोकनन्याय से अग्नि से सीखेहुए वैराग्य का वर्णन करते हैं–नदी के प्रवाह की समान वेगवाले काल करके आत्मसम्बन्धी प्राणीमात्र के देहों के उत्पत्तिनाश प्रतिक्षण में होते हैं तो भी, जैसे अग्नि की ज्वालाओं के उत्पत्तिनाश प्रतिक्षण में होतेहुए भी नहीं दीखते हैं तैसे ही दीखते नहीं हैं, इसप्रकार देह के क्षणभंगुर होने के कारण योगी उस देह में आसक्त न होय ॥ ४९ ॥ अब सूर्य से जो सीखा सो कहते हैं कि–जैसे सूर्य आठ मासपर्यन्त अपनी किरणों से जल को खेंचता है और फिर वर्षा ऋतु में उस को छोडदेता है परन्तु खेंचने के और छोडने के अभिमान को धारण नहीं करता है तैसे ही देह से निराले आत्मा का अनुसन्धान रखने वाला योगी भी, इन्द्रियों के द्वारा विषयों को स्वीकार करता है और याचक के आनेपर वह विषय उस को ददेता है परन्तु उन में यह मेरे प्राप्त करेहुए हैं और यह मेरे दियेहुए हैं ऐसा अभिमान नहीं रखता है ॥ ५० ॥ और जैसे एक ही सूर्य, जल आदि में प्रतिबिंबित होनेपर, स्थूलबुद्धि पुरुषों करके निराला २ देखाजाता है तैसे ही वास्तव में स्वरूप में एक ही हुआ आत्मा, दैहिक उपाधियों में प्रविष्ट होनेपर स्थूलबुद्धि (देहाभिमानी) पुरुषों करके निराला २ जानाजाता है; ऐसा योगी जाने ॥ ५१ ॥ अब कपोत

(१) ज्योतिषशास्त्र में इस विषय में ऐसा नियम है कि–चन्द्रमा का मण्डल जलमय है और सूर्य का मण्डल तेजोमय है, इन दोनों की एक नक्षत्र पर स्थिति होने पर, नेत्रों के सन्मुख आयेहुए सूर्यमण्डल की आड़ में हुआ चन्द्रमा दीखता नहीं है, वही अमावस्या है, तदनन्तर साठघड़ीं में चन्द्रमा दूसरे नक्षत्र पर जाता है और सूर्य तो तेरह दिन में दूसरे नक्षत्र पर जाता है इसकारण प्रतिपदा से विषम रहेहुए सूर्यमण्डल का प्रतिदिन पन्द्रहवां पन्द्रहवां भाग जलमण्डल में प्रतिबिम्बित हुआ दीखने लगता है, उस को कला कहते हैं, ऐसा होते होते पन्द्रहवें दिन तेरह नक्षत्र का अन्तर पड़ने के कारण सत्ताईस नक्षत्ररूप राशिचक्र के मध्य में चन्द्रमा और सूर्य यह दोनो एक दूसरे के सन्मुख आजाते हैं, तब पृथ्वी की छाया से चिन्हित हुए सूर्य का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब दीखता है, वही पूर्णिमा है, तिस पूर्णिमा में अमावास्या में के प्रतिबिम्ब के सहित सोलह कला का चन्द्रमा ऐसा कहते हैं तदनन्तर फिर प्रतिपदा से लेकर इन दोनों मण्डलों के विषम होने के कारण प्रतिदिन एक एक कला कम होती जाती है, इसप्रकार केवल चन्द्रमा की कलाओं के ही उत्पत्ति नाश होते हैं उदकमण्डलरूप चन्द्रमा के नहीं होते हैं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्द्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याऽङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥५४॥ शय्यासनाटनस्थानवार्त्ता-क्रीडाशनादिकं ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वांछति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ॥ तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः संनिधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः

(कबूतर) से जो कुछ सीखा सो कहते हैं कि—मनुष्य, किसी विषय में वा किसी के भी साथ अतिप्रीति वा लालनपालन आदि न करे, यदि करेगा तो वह विवेकहीन होकर कपोत पक्षी की समान सन्ताप पावेगा ॥ ५२ ॥ कोई एक कबूतर पक्षी, जङ्गल में एक वृक्षपर घोंसला बनाकर अपनी कपोती स्त्रीके साथ कितने ही वर्षोंपर्यन्त रहतारहा ॥५३॥ स्नेह से परस्पर चित्त गुँथेहुए गृहधर्मी (मैथुनसुख में निमग्न) तिस कबूतर और कपोती इन दोनोंने ही,अपनी दृष्टि से,दृष्टि अङ्ग से अङ्ग और बुद्धि से बुद्धि अत्यन्त मिलाली थी ॥५४॥ वह दोनों ही, सोना, बैठना, फिरना, खडारहना, परस्पर बातचीत करना, रतिक्रीडा करना और खाना इत्यादि विषयों में निःशङ्कपने से रहकर दोनों साथ २ वन की पंक्तियों में फिरते थे ॥ ५५ ॥ हे राजन्! हास्य के साथ देखना, मधुरभाषण आदि करके कपोत को प्रसन्न करनेवाली और उस की प्रीतिपात्र हुई वह कबूतरी, जिस २ पदार्थ की इच्छा करती थी तिस २ पदार्थ को वह अजितेन्द्रिय कबूतर बडे कष्ट से भी लाकर देता था ॥ ५६ ॥ तदनन्तर पहिला ही गर्भधारण करनेवाली उस सती कबूतरी ने, प्रसूति का समय प्राप्त होने पर अपने पति के समीप ही घोंसले में अंडे उत्पन्न करे ॥ ५७ ॥ फिर जल के भरेहुए उन अण्डों में श्रीहरि की काल कर्म आदि अतर्क्य शक्तियों करके अङ्गों की रचना होकर उत्पन्न होने के समय कोमल अङ्ग और रोमों से युक्त बच्चे उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ तदनन्तर प्रसन्नचित्त और पुत्रों पर प्रेम करनेवाले वह दोनों,उन बच्चों के कुलकुल शब्दों को सुनकर उन के मधुर शब्दों से सुख पातेहुए उनका पोषण करनेलगे ॥५९॥ तब हर्षयुक्त हुए उन बच्चों के उत्तम स्पर्शवाले पंखों से कुलकुल शब्दों से,बालकपन की भोली चेष्टाओंसे और सन्मुख आनेसे उन मातापिताओं बडा आनन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योऽन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ-शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुंबिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥६२॥ दृष्ट्वा तांल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः॥ जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयांतिके॥६३॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान्पश्यत्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥६७॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥ अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य

होताथा ॥६०॥ इसप्रकार विष्णुभगवान् की माया से अत्यन्त मोहित होकर परस्पर स्नेहसे जिनके चित्त गुँथगये हैं और उन बच्चों का पोषण करने के विषय में तत्पर होने के कारण व्याकुलचित्त हुए वह दोनो उन छोटे२बच्चें का पोषण करते थे॥६१॥एकदिन उन बच्चोंके खाने के निमित्त अन्न की इच्छा करनेवाले वह दोनोही कुटुम्बी कपोतपक्षी अपने घोंसले के चारोंओर उस वन में जाकर बहुत समय पर्यन्त फिरते रहे ॥ ६२ ॥ सो इतनेही में वन में फिरनेवाले किसी एक बहेलिये ने स्वाभाविक अपने घोंसले के आसपास फिरतेहुए उन कबूतर के बच्चों को देखकर अपना जाल फैलाया और उन को पकड़लिया ॥ ६३ ॥ इधर बच्चों के पालनके विषय में निरन्तर उत्सुक ऐसे कबूतर और कबूतरी दोनो गये थे, सो बच्चों का चुगा लेकर अपने घोंसले में आये ॥ ६४ ॥ उन में कबूतरी अपने बच्चों को जाल में फँसकर रोतेहुए देखकर, अत्यन्त दुःखित हुई और आप भी विलाप करती करती उनके समीप को दौड़कर गई ॥६५॥ वह कबूतरी भगवान् की माया से उन बच्चों के ऊपर वारंवार स्नेह बँधजाने के कारण दीनचित्त होतीहुई, मैं भी ऐसे ही जाल में फँस कर मरूँगी ऐसी स्मृति को भूलकर बँधेहुए उन बच्चों को देखती हुई आप भी जाल में फँसकर बँधगई ॥ ६६ ॥ तब वह कबूतर पक्षी तो, अपने शरीर से भी अधिक प्रिय परन्तु बँधेहुए उन बच्चा का तैसे ही अपने शरीर की समान प्रिय परन्तु जाल से बँधी हुई उस स्त्री को देखकर, अत्यन्त दुःखित और दीन होताहुआ शोक करने लगा कि—॥६७॥ अहो प्राणियों! अल्पपुण्य और दुर्मति मेरा यह कैसा नाश हुआ है सो देखो! इस लोकमें के सुखसे तृप्त न होनेवाले और परलोक का भी कोई साधन न करनेवाले मेरा धर्म अर्थ काम का सम्पादन करनेवाला यह गृहस्थाश्रम नष्ट होगया है ॥ ६८ ॥ जिस मेरी योग्य और अनुकूल पतिव्रता स्त्री, सूनेहुए घर में मुझे छोडकर अपने उत्तम बालकों के साथ स्वर्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७ ॥ तां स्तथैवावृतान् शिशून् मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुम्बपशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इतिश्रीभागवते म० ए० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मा-न्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥

को चलीगई है ॥ ६९ । सो स्त्री और पुत्र मरजाने के कारण इकला रहाहुआ मैं दीन, अब सूने घर में दुःखरूप आयु को विताकर जीवित रहने की क्यों इच्छा करूँ ॥ ७० ॥ इसप्रकार विलाप करनेवाला वह अज्ञानी दीन कबूतर पक्षी, तिसीप्रकार जाल में फँसकर फडफडानेवाले और मृत्यु के ग्रसेहुए उन स्त्री सहित बच्चों को देखता हुआ भी, उन के मोह से आप भी जाल में जापडा ॥ ७१ ॥ वह क्रूर बहेलिया तो उस गृहस्थाश्रमी कबूतर की, उस के बच्चों की और कबूतरी की एकसाथ प्राप्ति होजाने पर सिद्धकार्य होकर अपने घर को चलागया ॥ ७२ ॥ इसप्रकार कबूतर की समान दूसरा भी कुटुम्ब के ऊपर प्रेम करनेवाला गृहस्थी, चित्त की अशान्तता से सुखदुःखादिकों में रमकर कुटुम्ब का पोषण करनेलगे तो वह भी उन पुत्रकलत्रादिकों के साथ दुःख से नाश को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ इसकारण खुलेहुए मुक्ति के द्वाररूप मनुष्यशरीर के प्राप्त होने पर उस कबूतर पक्षी की समान यदि घर में आसक्त होता है तो उस को विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि—यह कल्याण के मार्गों की सीढ़ी पर चढकर भी फिर नीचे गिरपडा ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागत के एकादश स्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ब्राह्मण ने कहाकि—हे यदुराजन् ! जैसे दुःख, यत्न के विना प्राप्त होता है तैसे इन्द्रियों से उत्पन्न होनेवाला जो सुख वह, स्वर्ग में और नरक में भी प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होता है इसकारण चतुर पुरुष उस की जरा भी इच्छा न करे ॥ १ ॥ किन्तु जैसे अजगर उदासीन होता है तैसे ही उदासीनवृत्ति धारण करके देह का निर्वाह होनेयोग्य ही दैव से उद्योग के विनाही प्राप्तहुआ आहारमात्र फिर वह सुन्दर मीठा हो वा विरसहो तैसे ही पेटभरनेयोग्य हो वा थोडासा हो भक्षण करे ॥ २ ॥ यदि ग्रास प्राप्त नहीं होय तो वह दैव के ऊपर विश्वास रखकर महाअजगर की समान उद्योग न करके निराहार ही बहुत दिनों पर्यन्त सोतारहे ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओजः सहो बलयुतं विबिभ्रद्देहमकर्मकं ॥ शयानो वीतनिद्रश्च "नेहेतेन्द्रियवानपि" ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ७ ॥ योपिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृ-

आहार पाने में समर्थ होकर भी क्या वह सोता ही रहे ? ऐसा कहो तो—हाँ, इन्द्रियों के बल मन के बल और शरीर के बल से युक्त भी देहधारी, कुछ न करके सोतारहे, तैसे ही आत्मविचाररूप अपने प्रयोजन के विषय में जागताहुआ रहकर, देखना आदि व्यापार करने में समर्थ होकर भी उन को न करे, यह मैंने अजगर से सीखा है ॥४॥ अब समुद्र से जो सीखा सो कहते हैं कि—ऋषि, निश्चलजलवाले समुद्र की समान बाहर से प्रसन्न और भीतर से गम्भीर, (अभिप्राय से) यह इतना है ऐसी थाह पाने को अशक्य; (तेजस्वीपने से) दूसरों को दुस्तर, (स्वरूपसाक्षात्कार होने के कारण) काल और देश करके अन्त और पार रहित तथा (राग लोभ आदि न होने के कारण) क्षोभरहित होय ॥ ५ ॥ और जैसे समुद्र, वर्षाऋतु में नदियों के जल से समृद्ध होजाने पर भी बढता नहीं है और ग्रीष्म ऋतु में नदियों का जल न मिले तो भी सूखता नहीं है तैसे ही मुनि, भोगसम्पदाओं की दशा में हर्ष न माने और भोगहीनदशा में शोक भी न करे, किन्तु नारायणपरायण होकर रहे ॥ ६ ॥ रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द और रस इन पाँच विषयों से मोह को प्राप्त होतेहुए पतङ्ग (कीडा), मधुकर (भौंरा), हाथी, हिरन और मत्स्य यह पाँचों नाश को प्राप्त होते हैं इसकारण उन रूपगन्ध आदिकों में आसक्त न होने के विषय में यह पाँच गुरु हैं, तिन में पतङ्गे से जो सीखा सो कहते हैं कि—जैसे पतङ्गा अग्नि में रूप देखकर उस को खाने की इच्छा से उस में गिरकर नाश को प्राप्त होजाता है तैसे ही इन्द्रियों को वश में न रखनेवाला पुरुष, भगवान् की मायारूप स्त्री को देखकर उस के हावभावों से लोभित होताहुआ तिस में आसक्त होनेपर अन्त में नाश को प्राप्त होकर अन्धतम नरक में जाकर पडता है ॥७॥ यह स्त्री तो एक उपलक्षण है तिस से भगवान् की माया करके रचेहुए—स्त्री, सुवर्ण, भूषण और वस्त्रादि पदार्थों का उपभोग करने की बुद्धि से आसक्तचित्त हुआ पुरुष, मोहित और विवेकहीन होकर पतङ्गे की समान निःसन्देह नाश को प्राप्त होता है इसकारण योगी, तिन स्त्री पुत्रादिकों में आसक्त न होय ॥ ८ ॥ मधुकर दो प्रकार का है—एक पुष्पों का रस ग्रहण करनेवाला भ्रमर दूसरी मधुमक्खी; तिस में भ्रमर से सीखेहुए गुण कहते हैं कि—जैसे भौंरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हानहिसंन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः

पुष्पों का नाश न करके उन में का थोडा २ मकरन्द लेकर किसी में भी आसक्त न होता हुआ अपना निर्वाह करता है तैसे ही मुनि, गृहस्थों को पीडा न देकर जितने से अपना निर्वाह होय उतना, बहुतसे घरों में से थोडा २ आहार भक्षण करने की मधुकरी (भौंरे की) वृत्ति धारण करे; ऐसा न करेगा तो वह मुनि, जैसे भौंरा बहुतसे मकरन्द के लोभ से एक ही कमल के पुष्पपर रहजायतो, सूर्यास्त के अनन्तर उस कमल के मुँदने पर उस में मोह से बँधजाता है तैसे ही मुनि भी, गुण के लोभ से एक ही घर में रहेगा तो तहाँ मोहसे बँधजायगा ॥ ९ ॥ और जैसे भौंरा छोटे बडे फूलों में से मकरन्द को ग्रहण करता है तैसे ही विवेकी पुरुष, छोटे बडे सकल शास्त्रों में से जो सार होय उस को ग्रहण करे ॥ १० ॥ सायङ्काल को भक्षण करने के निमित्त वा दूसरे दिन भक्षण करने के निमित्त भिक्षा के अन्न आदि का संग्रह न करे, किन्तु हाथ ही जिस का पात्र है अर्थात् जितना हाथ में आवे उतना ही ग्रहण करनेवाला अथवा उदर ही जिस का पात्रहै ऐसा होय, यदि इकट्ठा करेगा तो उस को मौहाल की मक्खी की समान मरनापडेगा ॥ ११ ॥ इस को ही स्पष्ट करके कहते हैं कि- यह सन्ध्या के समय भोजन करूँगा, और यह कल को भोजन करूँगा ऐसी इच्छा से भिक्षा के अन्न आदि का संग्रह नहीं करे, यदि संग्रह करेगा तो वह, उस संग्रह करेहुए अन्न आदि के साथ, जैसे मौहाल की मक्खी संग्रह करेहुए मधु (सहद) के साथ नाश को प्राप्त होती हैं तैसे, नाश को प्राप्त होयगा ॥ १२ ॥ स्पर्श की आसक्ति नाश का कारण है, इस विषय में हाथी से लीहुई शिक्षा का वर्णन करते हैं कि-योगी, सच्ची तो क्या परन्तु काठ की भी स्त्री को हाथ से तो क्या परन्तु पैर से भी स्पर्श करने की इच्छा न करे।यदि स्पर्श करनेकी इच्छाकरेगा तो हाथीको पकडनेवाले पुरुष,जहाँहाथी होय उस वनमें एक बडाभारी गढहा खोदकर उसको ढककर उस के समीप में लकडी की रंगीहुईहथनी खडी करदेतेहैं,तब रात्रि के समय उस हथिनीसे संग करनेको मदान्धपनेसे जाने वाला हाथी गढहेमें गिरजाताहै सो उसी समय वह जैसे परवश होकर दुःख भोगता है तैसे ही 'वह भिक्षुक भी नरक आदि में पडकर दुःख भोगेगा॥ १३॥ और चतुर पुरुष,कभी भी स्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ वलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसञ्चितम् ॥ भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥१५॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयागीतमोहितात् ॥ ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्री-

के विषैं भोगबुद्धि से आसक्त न होय, किन्तु उस स्त्री को 'यह मेरी मृत्यु है' ऐसादेखै, उस में यदि आसक्त होयगा तो वह पुरुष, जैसे हथनी में आसक्त हुआ हाथी, उस में आसक्त हुए दूसरे बलवान् हाथियों से माराजाता है मैसेही उस स्त्री के विषैं आसक्त होने वाले अन्य पुरुषों से माराजायगा ॥ १४ ॥ अब मधु को हरण करनेवाले से सीखे हुए गुण का वर्णन करते हैं कि—जैसे मधु का हरण करनेवाला पुरुष, मौहाल की मक्खियों के हरण करेहुए मधु को हरण करके लेकर जानेलगता है तो उस से उस मधु को कोई दूसरा ही बलवान् पुरुष छीनकर भक्षण करता है तैसे ही, धन के लोभी पुरुषों ने जिस को दानन करा और न जिस को भोगा ही, ऐसा दुःख से इकट्ठा कराहुआ जो धन होता है, उस को उस मे कोई दूसरा ही हरण करलेता है और उस से कोई तीसरा हरण कर के उपभोग करता है, यदि कहो कि—उत्तमता के साथ गुप्त करके रक्खे हुए धन को दूसरा कैसे जानेगा ? और कैसे हरण करलेगा ? ऐसा कहो तो—जैसे मधु (शहद) को हरण करनेवाला पुरुष, वृक्ष की खखोड़ल में के मधु को मौहाल की मक्खियों के आने जाने से जानजाता है तैसेही लोक भी धन को जानजाते हैं ॥ १५ ॥ अब उद्योग विना करेभी यति को भोजन प्राप्त होता है, यह भी मैंने उस से ही सीखा है ऐसा वर्णन करतेहैं कि—अतिदुःख से इकट्ठे करेहुए धन के द्वारा, घर में के खाना पीना आदि भोगों की इच्छा करनेवाले गृहस्थों के भोगों को, उन से पहिले ही यति, जैसे मौहाल की मक्खियों के इकट्ठे करेहुए शहद को उन से पहिले ही उस शहद का हरण करनेवाला भक्षण करता है तिसी प्रकार सेवन करता है, क्योंकि—यति और ब्रह्मचारी यह दोनो, पकेहुए अन्न के स्वामी हैं, इसकारण उन के आजाने पर गृहस्थ उन को न देकर भक्षण करेतो उस को चान्द्रायण व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिये, इस रीति से गृहस्थों को आवश्यक दानकहा है ॥१६॥ अब हरिण से जो सीखा सो कहते हैं कि—सर्वत्र फिरनेवाला यति भगवान् का गान और श्रवण करे परन्तु कभी भी विषयासक्त पुरुषों के करेहुए गान को न सुने, इस तत्त्व को, बहेलियें के गान से मोहित होकर बँधेहुए हरिण से यति सीखै; नहींतो बन्धन में पड़ेगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहाँ देखने में आया है ? यदि ऐसा कहोतो—हरिणी के पुत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डनको वश्य ऋष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इंद्रियाणि जयंत्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ ॥ २० ॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद्विजितान्येंद्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिंगला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किञ्चिन्निबोध नृपनन्दन ॥२२॥ सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान् शुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्त-

ऋष्यशृङ्ग ऋषि, स्त्रियों के आमीण नृत्य वाजे और गान को सुनकर उन स्त्रियों के वश में खिलौने की समान होगये थे ॥ १८ ॥ रस के सेवन की आसक्ति नाशका कारण है, यह मैंने मत्स्य से सीखा है ऐसा वर्णन करते हैं—अति दुर्जय जिव्हा के रस के सेवन में आसक्त हुआ दुर्बुद्धि मनुष्य, जैसे मांस के रस में आसक्तहुआ मत्स्य, उस मांस में चुभे हुए लोहे के काटों से मरण को प्राप्त होता है तैसेही, मरण को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ रसना इन्द्रिय ऐसी दुर्जय है कि--आहार का त्याग करनेवाले विचारवान् पुरुष, रसना इन्द्रिय को छोड़कर शेष सब इन्द्रियों को जीतलेते हैं परन्तु अन्नरहित पुरुष,की वह रसना इन्द्रिय वृद्धि को प्राप्त होती है, तब यदि आहार का सेवन कराजाय तो फिर रसकी आसक्ति से सब इन्द्रियें चलायमान होजाती हैं, इस से रसकी आसक्ति को छोड़कर केवल औषध की समान भोजन करै ॥ २० ॥ और इन्द्रियों को जीतनेवाला भी पुरुषजबतक रसना इन्द्रिय को नहीं जीते तबतक वह जितेन्द्रिय नहीं है, रसना इन्द्रिय को जीतलिया जाय तो सब ही इन्द्रियें जीतीहुईसी होजाती हैं ॥ २१ ॥ हे राजपुत्र ! पहिले राजा विदेह के नगर में एक पिङ्गला नामवाली वेश्या रहती थी, उस से मैंने जो कुछ सीखा है सो तुम से कहता हूँ सुनो ॥ २२ ॥ वह वेश्या एक दिन किसी बहुतसा धन देनेवाले सुन्दर पुरुष को अपने रतिमन्दिर में लेजाने के निमित्त, आभूषण धारण करेहुए अपना सुन्दररूप सजाकर सायङ्काल के समय द्वार में बैठी ॥ २३ ॥ हे पुरुषों में उत्तम राजन् ! धन की अभिलाषा से व्याकुल हुई वह पिङ्गला, मार्ग में आनेवाले पुरुषों को देखकर, उन में धनी और बहुतसा मूल्य देनेवाला पुरुष मुझे रतिसुख के निमित्त प्राप्त होय, ऐसा विचार कररही थी ॥ २४ ॥ वह जारपुरुषों से मिलेहुए धन से जीविका चलानेवाली थी इसकारण, आयेहुए साधारण धनी पुरुषों के निकलकर चलेजाने पर दूसरा ही कोई तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती ॥ निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेदं आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः" ॥ २८ ॥ नह्यंगाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ॥ यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥२९॥ पिंगलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यतावजितात्मनः ॥ या कांतादसतः कामं कामये येन वालिशाः ॥ ३० ॥ संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३१ ॥ अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्याक्रीतेन वित्तं रति-

बडा धनवान् पुरुष मेरी ओर को आवेगा और उस से मुझे बहुतसा धन प्राप्त होयगा ॥२५॥ ऐसी दुराशा से जिस की निद्रा नष्ट होगई है और द्वारपर खडीहुई वह पिङ्गला अब कोई नहीं आवेगा ऐसा अमझकर घर में को चलीजाती थी और इतने ही में कोई आया ऐसा प्रतीत होने पर बाहर को चली आती थी, इसप्रकार होते होते आधीरात का समय होगया ॥२६॥ द्रव्य की आशा से जिस का मुख अत्यन्त सूखगया है ऐसी दीनचित्त हुई तिस पिङ्गला वेश्या को, द्रव्य की चिन्ता से परिणाम में सुख देनेवाला उत्तम वैराग्य (अब विषयसुख से भरपाई ऐसा विचार) उत्पन्न हुआ ॥२७॥ उस विरक्तचित्त हुई पिङ्गला का गीत जैसा हुआ है तैसा मैं तुम से कहता हूँ तुम मुझ से सुनो, वैराग्य, पुरुष की आशारूप पाशों को काटनेवाला खड्ग ही है ॥ २८ ॥ हे यदु राजन्! जैसे अपरोक्षज्ञान को प्राप्त न हुआ पुरुष, ममता को त्याग करने की इच्छा नहीं करता तैसे ही वैराग्य को प्राप्त न हुआ पुरुष, अपने देहबन्धन का त्याग करने की इच्छा नहीं करता है २९ पिङ्गला कहनेलगी कि—अहो ! जिस ने मन को नहीं जीता ऐसी मेरे मोह के फैलाव को देखो ! जिस मोह से विवेकहीन हुई मैं, तुच्छ पुरुष से भोग पाने की और धन पाने की इच्छा करती हूँ ॥ ३० ॥ जो मूर्ख मैं, समीप (अन्तर्यामी) रहनेवाले, मन को रमाकर सुख देनेवाले और लक्ष्मीपति होने के कारण धन भी देनेवाले इन नित्य ईश्वर का त्याग करके, उन से दूसरे भोगसम्पादन में असमर्थ और दुःख, भय, खेद, शोक और मोह उत्पन्न करनेवाले तुच्छ पुरुष का सेवन करती हूँ ! ॥३१॥ अहो! जो मैं, स्त्रीलम्पट, द्रव्यलोभी और शोक करने योग्य पुरुष से, उस ने बिकते में मोललियेहुए और अपनेआप उस के हाथ बेचेहुए देह से धनकी और रतिसुख की इच्छा करती हूँ; सो मैंने आजपर्यन्त परपुरुष के समागमरूप अतिनिन्दनीय वृत्ति से अपने अन्तर्यामी आत्मा को व्यर्थ ताप दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

र्पात्मनेच्छती ॥३२॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यंस्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धं ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति काऽन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ योऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्कामयच्युतात् ॥३४॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणां ॥ तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥ किं त्वप्रियं मे व्यभजन् कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यन्तवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः॥ ॥ ३७ ॥ मैवं स्युर्मदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः॥

है ॥ ३२ ॥ अहो! मुझ धिक्कार है, जो मैं अत्यन्त ही निन्दित पदार्थों का सेवन करता हूँ. शरीररूप घर कि—जिस में खम्भ, बाँस और दासे सब हाडों के ही बने हैं, तिस में पीठ का हाड दासा, उस के दोनों ओर के हाड बाँस और हाथ पैर की हड्डियें खम्भ हैं ऐसे' त्वचा-रोम-नखों से ढकेहुए, जिस में नौ द्वार (पतनाले) वहरहे हैं और जो विष्टा से और मूत्र से भराहुआ है ऐसे शरीररूपी घरको, यह सुन्दर है ऐसी बुद्धि से मेरे सिवाय दूसरी कौनसी स्त्री सेवन करेगी? अर्थात् कोई सेवन नहीं करेगी ॥ ३३ ॥ अहो! सत्सङ्ग होने पर भी मेरा यह कैसा मोह है! विदेह राजाओं (ज्ञानियों) के इस नगर में एक मैं ही मूढबुद्धि हूँ, क्योंकि, जो जारकर्म करनेवाली मैं, इन नाशरहित और परमानन्द देनेवाले भगवान् को छोडकर दूसरे भोगों के सुख की इच्छा करती हूँ ॥ ३४ ॥ इस से, क्योंकि यह ईश्वर, सकलप्राणियों के अतिप्रिय, स्वामी, हितकर्त्ता, और आत्मा हैं इसकारण अब मैं, उन को आप ही अपने देह का अर्पण करके उन के साथ जैसे लक्ष्मी रमण करती है तैसे रमण करूँगी ॥३५॥ जो शब्दादिक विषय, रतिसुख देनेवाले पुरुष, और इन्द्रादिक देवता हैं वह तो मुझ भार्या का क्या प्रिय करेंगे? क्योंकि—वह आदि और अन्त से युक्त हैं काल के ग्रासरूप होरहे हैं इसकारण इस लोक में वा परलोक में ईश्वर के सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष सेवन करने योग्य नहीं है ॥ ३६ ॥ ऐसा निश्चय करके अपने भाग्य की प्रशंसा करती है—किन्ही भी प्राचीन शुभकर्मों के द्वारा विष्णुभगवान्, मेरे ऊपर निःसन्देह प्रसन्नहुए हैं, इसकारण ही दुष्ट आशा धारण करनेवाली मुझे यह सुखदायक वैराग्य हुआ है ॥ ३७ ॥ ईश्वर की प्रसन्नता के विना मुझ मन्दभाग्य को, वैराग्य होने के कारण ऐसे क्लेश होते ही नहीं, जिस वैराग्य से युक्त हुआ पुरुष, अपने घरद्वार आदि का सम्बन्ध छोडकर शान्ति पाता है ॥ ३८ ॥ इस से अब मैं, तिन विष्णुभगवान् के करेहुए वैराग्यरूप उपकार को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३९ ॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै" ॥ ४० ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाऽखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजां ॥ छित्त्वोपशमसंस्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४३ ॥ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवते म० एकादशस्कन्धे पिंगलोपाख्याने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ५ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणां ॥ अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥१॥ सा-

शिरपर धारण करके और तुच्छ विषयों की दुष्ट आशा को त्यागकर, तिन ही सर्वनियन्ता परमेश्वर की शरण जाती हूँ ॥ ३९ ॥ सन्तुष्ट होकर इस प्राप्तहुए वैराग्य पर श्रद्धा रखनेवाली और दैवयोग से ही जो प्राप्त होय उस से ही निर्वाह करनेवाली मैं, इन ही आत्मरूप प्रियपति के साथ क्रीड़ा करती हूँ ॥ ४० ॥ अब ब्राह्मदिकों का त्याग करके इन आत्मा के साथ ही क्यों रमती है ? ऐसा कोई कहे तो—संसाररूप कूप में पडेहुए विषयरूप धुएँ से जिस के विवेकरूप नेत्र फूटगये हैं और कालरूप अजगर से निगलेहुए आत्मा को, ईश्वर के सिवाय दूसरा कौन रक्षा करसक्ता है ? ॥ ४१ ॥ अब, अपनी रक्षा करने निमित्त उन की सेवा करती है ? ऐसा कोई कहे तो—यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि—यह पुरुष जब सावधान होकर, यह सब जगत् काल सर्प का निगलाहुआ है ऐसा देखता है और सब प्रपञ्च से विरक्त होता है तब अपनी रक्षा करने को आप ही समर्थ होता है, इसकारण मैं केवल प्रेम से ही उन ईश्वर का सेवन करती हूँ ॥४२॥ ब्राह्मण ने कहा कि—इसप्रकार बुद्धि से निश्चय करनेवाली तिस पिङ्गला वेश्या ने, पुरुष, की अभिलाषा से उत्पन्न हुई धन आदि की दुराशा को तोड़कर शान्ति का आश्रय करा और शय्या के ऊपर जाकर सुख से शयन करा ॥४३॥ तात्पर्य यह कि आशा ही परमदुःख का साधन है और आशा का न होना ही परम सुख का साधन है; देखो ! पति की आशा से दुःखितहुई भी पिङ्गलाने, तिस आशा को अत्यन्त तोडकर परम आनन्द के साथ शयन करा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ अब कुरर पक्षी से जो कुछ सीखा तिस का वर्णन करतेहुए ब्राह्मणनें कहा कि—हे यदुराज ! मनुष्यों की जो जो अत्यन्त प्रिय वस्तु होती है, वह संग्रह करनेपर अति दुःख का कारण होती है, इसकारण जो पुरुष, संग्रह को दुःखदायक जानकर, किञ्चिन्मात्र भी संग्रह नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविंदत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणां ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान् गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभञ्जैकैकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो

करता है वह अनन्त सुख पाता है ॥ १ ॥ इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं कि—एक टिट्टिभ पक्षी अपनी चोंच में मांस लेकर जारहा था सो उस को, दूसरे जो बलवान् पक्षीथे कि-जिन के पास मांस नहीं था वह मार नेलगे, तब उस पक्षीने तिस मांस को छोडदिया, उस के साथ ही वह पक्षी उस मांस की ओर को गये और वह टिट्टिभ पक्षी सुख को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ अब बालक से लीहुई शिक्षा का वर्णन करते हैं कि-जैसे बालक का मान वा अपमान नहीं होताहै और गृहस्थ की समान घर की तथा बालबच्चोंकीभी चिन्ता नहीं होतीहै, तैसेही मुझे भी मान वा अपमान नहीं हैं, घरद्वार की और और बालबच्चों की चिन्ता भी नहीं है इसकारण मैं अपने साथ ही क्रीडा करता हुआ और अपने में ही प्रीति करताहुआ इसजगत्में बालक की समान विचरता हूँ॥३॥इससे अज्ञानीकी और सर्वज्ञ की सबप्रकारसे तुल्यता न माने किन्तु केवल निश्चिन्तपने के विषय में ही समानता माने; क्योंकि—इस जगत् में मान अपमान की चिन्ता से मुक्त और परमानन्द में निमग्न दोनोही हैं यदि कहोकि—वह दोनो कौन? तो—एकतो उद्योगरहित अज्ञानी बालक और दूसरा गुणातीत परमेश्वर में एकी भाव को प्राप्त हुआ साधु ॥ ४ ॥ अब कुमारी से ली हुई शिक्षा का वर्णन करते हैं कि—एकग्राम में एक गृहस्थ की एक विवाह के योग्य हुई कन्या थी, उस ने घर में के पिता आदि सब मनुष्यों के कहीं काम के निमित्त घर से बाहर चलेजानेपर अपने को वरने के निमित्त घर आयेहुए पाहुनों का 'बैठने को आसन और जल आदि देकर' आप ही सत्कार करा ॥ ५ ॥ हे राजन्! तदनन्तर उन पाहुनों के भोजन के निमित्त वह कन्या, एकांत में उखली में धान डालकर कूटनेलगी सो उस के हाथमें के शंख के कङ्कण बड़ा खटखट शब्द करनेलगे ॥ ६ ॥ तब वह बुद्धिमती कन्या, यह अपने आप ही धान कूटना अपनी दरिद्रता को जतानेवाला है, ऐसा जानकर लज्जितहुई; और फिर उसने अपने हाथमें के एक२ करके कङ्कण निकाले दो दो कङ्कण हाथों में शेष रहगये ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः॥८॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥ लोकाननुचरन्नेतांल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥ मन एकत्र संयुंज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुंचति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिंधनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरन्तरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एका-

और फिर कूटनेलगी तो उन दो २ कङ्कणों का भी शब्द होनेलगा, तब उस ने उन में से भी एक २ निकालडाला, तब एक से शब्द का होना बन्द हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक यदु राजन् ! लोकों का तत्त्व जानने के निमित्त इन सब लोकों में फिरनेवाला मैं, स्वाभाविक ही तहाँ पहुँचगया था, तब उस कन्या का यह उपदेश मैंने ग्रहण करा है कि–॥ ९ ॥ बहुतसे पुरुषों का एक स्थान पर निवास होनेपर कलह होता है और दो का एकत्र वास होनेपर परस्पर बातचीत होती है इसकारण चतुरपुरुष, उस कुमारी के कङ्कण की समान इकला ही विचरै ॥ १० ॥ अब चित्त की एकाग्रता करनेपर वह, द्वैत होनेपर भी स्फुरित न होय ऐसी समाधि का कारण होती है ऐसा बाण बनानेवाले से मैंने सीखा है सो कहता हूँ–एक बाण बनानेवाला, अपनी दुकान में बैठाहुआ बाण बनारहा था, उस का चित्त बाण उत्तम बनने के निमित्त बाण की ओर लगरहा था, उस ने जैसे उस समय समीप के मार्ग में को वाने और सेना के साथ जानेवाले भी राजा को नहीं जाना, तैसे ही जिस का मन ब्रह्माकार होता है वह योगी, किसी भी पदार्थ से होनेवाले सुखदुःख को नहीं जानता है, ऐसा जानकर योगी आलस न करके आसन और श्वास को जीतकर वैराग्य और अभ्यास से स्थिर कराहुआ अपना मन, एक स्थान में लगावे; यदि कहो कि–कहाँ लगावे तो–जो यह मन, विषय न होय तो सुषुप्ति में लय पाता है और विषय होय तो उस में आसक्त होता है, वह मन, जहाँ स्थिति पाने पर धीरे धीरे कर्मवासनाओं को छोड देता है और बढेहुए सत्त्वगुण से, तमोगुण रजोगुण को दबाकर उन तमोगुण रजोगुण के लयविक्षेपरूप कार्यों से रहित होताहुआ जिस के स्वरूप से रहता है तिन भगवान् में लगावे, इसप्रकार जिसने परमात्मा में चित्त लगाया है वही पुरुष कृतकृत्य होकर दर्शन आदि करके बाहर के द्वैत की और स्मरण से मानसिक द्वैत की स्फूर्त्ति को नहीं रखता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ अब सर्प से जो सीखा उस का वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारंभोतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परमे आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतं-

करते हैं कि-जैसे सर्प लोकों से भय की शङ्का करके इकला फिरता है, अपना एक स्थान नहीं रखता है, सावधानी के साथ एकान्त में रहता है, अपना विषियरपन वा निर्विषपन किसीप्रकार भी लोकों को नहीं समझने देता है, सहायतारहित होकर थोडे शब्द उच्चारण करता है तैसे ही ऋषि भी इकला ही फिरे, अपना एक स्थान नियत न रक्खे, सावधान और एकान्त में रहे अपनी रीतिभांति किसी प्रकार भी लोकों को समझने न देय, अपने साथ किसी को न लेय, थोडा भाषण करे ॥ १४ ॥ और घरबनाने की रीति अपने को अतिदुःख देनेवाली होती है, और अपना शरीर थोडे काल रहनेवाला होने के कारण निष्फल भी है ऐसा विचारकर योगी, जैसे सर्प दूसरे के बनायेहुए घर में प्रवेश करके सुख से रहता है तैसे ही दूसरे के बनायेहुए घर में ही निर्वाह करलेय ॥ १५ ॥ अब साधनसामग्री के विना केवल ईश्वर से ही जगत् के उत्पत्ति प्रलय होते हैं. यह मैंने मकडी के दृष्टान्त से निश्चय करा है ऐसा कहने के निमित्त पहिले संहार की रीति कहते हैं-एक, नारायण देव ईश्वर, अपनी माया से पहिले उत्पन्न करेहुए इस जगत् का 'अपनी शक्तिरूप काल से' संहार करके, कल्प के अन्त में सत्त्व आदि सब शक्तियों के प्रकृति में लीन होने पर उससमय सकल प्रपञ्च के आधार, सबों के आश्रय, सजातीय आदि भेदशून्य, प्रकृति पुरुषों के ईश्वर, ब्रह्मादिकों को और जीवन्मुक्तों को प्राप्त होनेवाले, मोक्ष शब्द से उच्चारण करेजानेवाले निरुपाधिक और परमानन्दरूप एक आदिपुरुष ही रहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक राजन्! तदनन्तर वही परमात्मा केवल अपने प्रभावरूपकाल से, त्रिगुणमयी अपनी माया को क्षोभित करके उस से सृष्टि के आरम्भ में सूत्र (महत्तत्त्व) को उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥ वह सूत्र अहङ्कार के द्वारा त्रिगुणमय जगत् को उत्पन्न करनेलगता है तब उस को ही तीनों गुणों का कार्य कहते हैं. उस को महत्तत्त्व और सूत्र कहने का कारण यह है कि-जिस सृष्टिरूप कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपतां ॥ २२ ॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥२४॥ देहो गुरुर्ममं विरक्तिविवेकहेतुर्विभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कं ॥ तत्त्वान्यनेनं विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥ २५ ॥ जा-

के विषैं यह विश्व ओतप्रोत भराहुआ है और जिस वायुरूप सूत्र से जीव संसार पाता है ॥ २० ॥ इसप्रकार सीखेहुए अर्थ को कहकर अब दृष्टान्त कहते हैं—जैसे मकडी नामवाला कीडा, अपने हृदय में से मुख के द्वारा तन्तुओं को फैलाकर घर बनाता है और उस के द्वारा बहुत समयपर्यन्त क्रीडा करके फिर उन सब तन्तुओं को निगलजाता है, इस कार्य में उस को दूसरे साधन की अपेक्षा नहीं होती है तैसे ही परमेश्वर भी अपने में से जगत् को फैलाकर उस के द्वारा क्रीडा करके अन्त में उस जगत को अपने में लीन करलेते हैं ॥ २१ ॥ अब, भगवान् का ध्यान करनेवाले भक्तों को उन का सारूप्य प्राप्त होना आश्चर्य नहीं है ऐसा भृङ्गी नामक कीडे से मैंने सीखा है सो वर्णन करता हूँ कि—जो प्राणी अपनी निश्चयात्मक बुद्धि से जिस जिस विषय पर अपना मन, स्नेह से, द्वेष से वा भय से निश्चल धारण करता है वह तिस २ के समानरूप को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ इस विषय में दृष्टान्त यह है कि—भृङ्गी नामवाले भ्रमर करके भीत (दीवार) आदि के आश्रय से मट्टी का घर बनाकर उस में बन्द करके रक्खाहुआ किसी भी प्रकार का कीडा भय से उस का ध्यान करता हुआ, हे राजन् ! पहिले रूप को छोडकर तिस ही रूप से तिस भृङ्गी की समान रूप को प्राप्त होता है, तब भगवान् का ध्यान करनेवाले पुरुष, देहान्त होने पर दूसरे शरीर से उन भगवान् के स्वरूप को पावेंगे, इस का क्या कहना ! ॥ २३ ॥ हे प्रभो यदुराजन् ! इसप्रकार इन चौवीस गुरुओं से मैंने यह बुद्धि (शिक्षा) पाई है; अब अपने शरीर से ही पाईहुई शिक्षा में तुम से कहता हूँ, सुनो ॥ २४ ॥ यह देह भी मेरा गुरु है, क्योंकि यह, वैराग्य और ज्ञान का कारण है, तिस में यह जन्ममरण और निरन्तर परिणाम में दुःख देनेवाले फल को धारण करता है, इस से वैराग्य का कारण है और इस देह के द्वारा उत्तम प्रकार से मैं तत्त्वों का विचार करता हूँ इस से यह ज्ञान का कारण है ऐसा अति उपकारी भी यह देह, अन्त में श्वान और गीदड आदिकों का भक्ष्य होता है, ऐसा निश्चय करके, इस की आस्था छोडकर मैं असङ्गपने से विचारता हूँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वांते स कृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मः ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तै—रतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्युयावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

॥ २५ ॥ अब देह का फल निरन्तर परिणाम में दुःखदायक कैसे है ? सो कहता हूँ—बडे कष्ट से द्रव्य को इकट्ठा करनेवाला पुरुष, जिस देह का भोग प्राप्त करने की इच्छा से, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, सेवक, घर और मान्य पुरुषों का पोषण करता है, वह शरीर आयु के समाप्त होते ही फिर दूसरे शरीर के उत्पन्न होने का बीजरूप कर्म उत्पन्न करके, जैसे वृक्ष दूसरे वृक्ष का बीज उत्पन्न करके नाश को प्राप्त होता है तैसे ही, नाश को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ और इस देह को वा देहाभिमानी पुरुष को, कभी तो जिव्हा रस की ओर को खेंचती है, कभी तृषा जल की ओर को खेंचती है, तैसे ही मूत्रेन्द्रिय मैथुन की ओर को, त्वचा स्पर्श की ओर को, पेट अन्न की ओर को, घ्राणेन्द्रिय सुगन्ध की ओर को और चञ्चल दृष्टि रूप की ओर को खेंचती है; तैसे ही कर्मेन्द्रियें बोलना, देना लेना, जाना आना और मल मूत्र का त्याग करना इन की ओर को खेंचती हैं, तात्पर्य यह कि—जैसे बहुतसी सपत्नी स्त्रियें, एक पति को पकडकर अपनी अपनी ओर को खेंचती हैं और उस को दुःख होता है तिसीप्रकार इस को भी दुःख होता है ॥ २७ ॥ इसप्रकार तीन श्लोकों से, देह वैराग्य और ज्ञान का कारण है ऐसा कहकर अब इस देह की अतिदुर्लभता दिखातेहुए ईश्वरनिष्ठा का वर्णन करते हैं कि—परमेश्वर ने, अपनी मायाशक्ति से, वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस और मत्स्य आदि अनेक शरीर उत्पन्न करे परन्तु उन में किसी की भी बुद्धि, परमात्मा को प्रत्यक्षरूप से जानने में समर्थ नहीं है ऐसा जानकर, वह सन्तुष्ट नहीं हुए, तदनन्तर ब्रह्म का अपरोक्षज्ञान प्राप्त करनेवाली बुद्धि से युक्त पुरुषशरीर को उत्पन्न करके वह देव सन्तोष को प्राप्तहुए॥२८॥ इसकारण इस लोक में बहुत जन्मों के अन्त में, अनित्य होकर भी पुरुषार्थ देनेवाला, इसकारण ही अत्यन्त दुर्लभ यह मनुष्यशरीर देव से प्राप्त होनेपर, यह वारंवार मरनेवाला है इसकारण जबतक मरकर गिर न पडे तबतक ही, धैर्यवान् पुरुष, बडी शीघ्रता से मोक्ष के साधन के निमित्त यत्न करे; क्योंकि—विषयों का सेवन तो श्वानसूकर आदि योनियों में भी प्राप्त होताही है, फिर उसके निमित्त यत्न करने की आवश्यकता ही क्या ? ।२९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोनहंकृतिः ॥ ३० ॥ नह्येकस्मादुरोज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतद्द्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ॥ वन्दितोऽर्चयितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

ऐसे अनेकों प्रकार के ग्रहण करनेयोग्य और त्यागनेयोग्य गुणों का विचार करके अब तुम समर्थ विद्वान् होकर भी उद्योग क्यों नहीं करते हो? इत्यादि प्रश्न का उत्तर कहते हैं कि—इसप्रकार बहुतसे गुरुओं के प्रभाव से जिस को वैराग्य उत्पन्न हुआ है और अपरोक्षज्ञानरूप प्रकाश से युक्त मैं, आत्मस्वरूप में रहकर, सब प्रकार के कर्म करने को समर्थ होकर भी, देह में अहङ्काररहित और स्त्रीपुत्रादिकों में ममतारूप सङ्गरहित होकर इस पृथ्वी पर विचरता हूँ ॥ ३० ॥ अब, बहुत से गुरुओं की कौन आवश्यकता है? श्वेतकेतु, भृगु आदिकों ने तो बहुत से गुरु नहीं करेथे, ऐसा कहोतो—एकगुरु से, बहुत से विचारों से भरपूर और स्थिर ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि—अद्वितीय ब्रह्म को, किन्ही ऋषियों ने, प्रपञ्चरहित और कितनों ही ने प्रपञ्चसहित इत्यादि अनेकों प्रकार से वर्णन करा है, तिस में यह गुरु केवल परमार्थ का उपदेश करने के विषय में ही नहीं है किन्तु अन्वयव्यतिरेकों से, आत्मा के विषय की असम्भावना विपरीतभावना दूर करने के विषय में हैं, इसकारण इन का बहुत होना योग्य ही है;ज्ञानोपदेश करनेवाला गुरु तो शास्त्र में एकही कहा है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे उद्धवजी! इसप्रकार उन गम्भीरबुद्धि ब्राह्मण (दत्तात्रेय) ने राजा यदु से कहा तब उन राजा यदु ने उन को प्रणाम करा और उन की पूजा करी; तदनन्तर तृप्तहुए वह ब्राह्मण,उन राजा की आज्ञा लेकर, जैसे आये थे तैसेही अपनी इच्छा के अनुसार चलेगये ॥ ३२ ॥ हमारे पूर्वपुरुषाओं के भी पूर्वज (वृद्ध) वह राजा यदु, अवधूत का भाषण सुनकर, पुत्रादि सब संगों से मुक्त होतेहुए परब्रह्म में चित्त लगाकर तत्पर हुए ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ चौबीस गुरुओं की शिक्षा के वर्णन से असम्भावना दूर होकर कुछ ज्ञान को प्राप्तहुए उद्धवजी को आत्मतत्त्व की प्राप्ति होने के निमित्त, आरम्भ से साधनों का वर्णन करतेहुए श्रीभगवान् कहनेलगे कि—हे उद्धवजी! गीता पञ्चरात्र आदिकों में मेरे कहेहुए पूजा-नमस्कार आदि वैष्णवधर्म में सावधान रहकर, मेराही आश्रय करनेवाला मुमुक्षु पुरुष, उस धर्म में विरोध न आवे इसप्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनां ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मादेहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाऽ-

कार निष्कामभाव से वर्ण, आश्रम और कुल के विहित धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥ अब, निष्कामभाव कैसे होसक्ता है ? यह कहो तो—पहिले स्वधर्म का आचरण करके शुद्धचित्त हुआ पुरुष, विषयासक्तहुए सकल प्राणियों के विषय सत्य हैं ऐसे, अभिमान से आरम्भ करेहुए सकल कर्मों का विपरीत फल प्राप्त होता है, ऐसा देखै, अर्थात् ऐसा करते २ निष्कामभाव प्राप्त होता है ॥२॥ अब काम्यविषयों के मिथ्या होने के कारण भी निष्कामभाव प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं—जैसे स्वप्न देखनेवाले पुरुष का नानाप्रकारके पदार्थों का देखना निष्फल है, अथवा जैसे चिन्तन करनेवाले पुरुष का अनेकों प्रकारके मनोरथ करना निष्फल है तैसे ही इन्द्रियों के द्वारा बाहरी विषयों का जो सेवन करना वह, एक आत्मा में नानाप्रकार से कल्पित होने के कारण निष्फल है ॥ ३ ॥ ऐसा मन में विचारकर मुमुक्षु पुरुष, काम्य कर्मों का त्याग करके, नित्यनैमित्तिक कर्मों का ही निष्कामभाव से सेवन करे, और आत्मविचार के विषय में प्रवृत्त होय तो वह निष्काम कर्म करनेवाले वेदज्ञ का भी अधिक आदर न करे॥ ४॥किन्तु अहिंसा आदि यमों का ही आदरके साथ सेवनकरे, शौचादि नियम का शक्ति के अनुसार 'जितने से आत्मज्ञान में विरोध न आवे, उतना ही' सेवन करे और तत्त्वविचार के निमित्त मेरे स्वरूप को जाननेवाले, रागलोभादि दोषरहित और मेरे ध्यान से मेरा स्वरूप ही हुए गुरु का सेवन करे ॥ ५ ॥ अब गुरुसेवक के धर्म कहते हैं—गुरु की सेवा करनेवाला मुमुक्षु, मैं उत्तम हूँ ऐसा अभिमान और दूसरे से डाह न करे; किन्तु आलस्यरहित, स्त्रीपुत्रादि की ममता से शून्य और गुरु में दृढप्रेम करनेवाला होय; और वह व्यग्रतारहित होकर आत्मवस्तु को जानने की इच्छा करे, दूसरे की निन्दा की इच्छा न करे, किन्तु सत्यवक्ता और स्त्री, पुत्र, घर, क्षेत्र, स्वजन और धन आदि के विषै, अपना समान ही प्रयोजन है ऐसा देखनेवाला होय अर्थात् सब के देहों में आत्मा के एक होने के कारण स्त्रीपुत्रादि के ऊपर ही विशेष ममता क्यों रक्खे ? ऐसा विचारकर उन में उदासीन रहै और गुरु की सेवा करे ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ अब, देह आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिर्दारुणो दाह्यादाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् ॥ अंतः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ-गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तरोऽरणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी साऽतिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च

से निराला आत्मा कौन है? जिसकी एकता से सबों में समता प्राप्त होती है ऐसा कहो तो—जैसे अग्नि, दाह्य (जलाने योग्य), और प्रकाश्य काष्ठ से, निराला ही जलाने वाला और प्रकाश करनेवाला है तैसेही दृश्य और जड़ स्थूलसूक्ष्मरूप दोनों देहों से, उन का देखनेवाला और प्रकाशक आत्मा अत्यन्त विलक्षण (निराला ही) है ॥ ८ ॥ और काष्ठ में प्रविष्ट हुआ अग्नि जैसे काठ के निमित्त से—नाश, उत्पत्ति, छोटापन बड़ापन, और अनेकपने को पाता है परन्तु वह स्वयं नाश आदि से रहित होता है तिसी प्रकार देह में प्रविष्ट हुआ आत्मा भी देह के निमित्त से—अनित्यत्व, आदित्व, बद्धत्व, और अनेकत्वआदि धर्मों को पाता है, परन्तु वास्तव में वह नित्य, अनादि, व्यापक, मुक्त और एक आदि रूप है ॥९॥ अब अग्नि को काष्ठ के संयोग से उस के धर्म प्राप्त होते हैं, यह योग्य ही है, आत्मा तो असङ्ग है, उस को देह से और देह के धर्मों से सम्बन्ध कैसे होता है? ऐसी शङ्का आनेपर कहते हैं कि—ईश्वर की वशीभूत माया के, इन्द्रियादि रूप परिणाम को को प्राप्त हुए गुणों से, जो यह सूक्ष्म और स्थूल शरीर बना है, इस के अध्यास का कराहुआ ही यह जन्ममरण आदि रूप संसार जीव को प्राप्त हुआ है, उस की निवृत्ति आत्मज्ञान ही करता है, ॥ १० ॥ इस कारण विचार के द्वारा, कार्य-कारणसमुदाय रूप देहमें ही विद्यमान शुद्ध परमात्मा को जानकर, इस देहादिमें मानी-हुई आत्मबुद्धि का स्थूल सूक्ष्मक्रम से निरास करे ॥ ११ ॥ अब, गुरुसे पाईहुई विद्याही, अविद्या को और अविद्यासे उत्पन्न हुए अध्यास को दूर करने में समर्थ होती है, ऐसा स्पष्ट करने के निमित्त विद्या की उत्पत्ति अग्नि की उत्पत्ति के वर्णन के द्वारा निरूपण करते हैं-आचार्य नीचे की अरणि है, शिष्य ऊपर की अरणि है; उन दोनों अरणियों के मध्य का जो मथने का काष्ठ सो उपदेश है और उस से उत्पन्नहुई जो ब्रह्मविद्या वह अरणी के और मथने के काष्ठ के मिलने पर उत्पन्नहुई अग्नि की समान सुखकारी है अर्थात् अविद्यादि दोषों को दूर करके परमानन्दरूप मोक्ष की प्राप्ति करादेती है ॥ १२ ॥ अब, उस ब्रह्मविद्या की अग्नि से समता कहते हैं कि—चतुर शिष्य करके ग्रहण करीहुई और चतुर गुरु की दीहुई वह उत्तम ब्रह्मविद्या, गुण कार्यरूप माया को (संसार को)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

शाम्यत्यसमिधोऽग्निः ॥१३॥ अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः॥१५॥ एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥१६॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुः-

दूर करके, जिन गुणों से उत्पन्न हुआ जगत्, जीव को संसार प्राप्त होने का कारण होता है उन ही गुणों को जलाकर, जैसे अग्नि काठ को जलाकर अन्त में आप भी शान्त होजाता है तैसे ही, अन्त में आप भी शान्त होजाती है, इसप्रकार ज्ञान को प्राप्तहुआ यह जीव, कार्य, कारण और विद्या का भी व्यवधान दूर होने के कारण परमानन्दरूप होजाता है ॥ १३ ॥ इसप्रकार स्वप्रकाशक, ज्ञानरूप, नित्य और एक ही आत्मा है और उस में कर्त्तापन आदि धर्म देहरूप उपाधि से ही भासते हैं; तिस आत्मा से निराला सब जगत् अनित्य और मायामय है इसकारण सब विषयों से विरक्त होकर आत्मज्ञान करके मुक्त होजाता है ऐसा 'विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मात्' इत्यादि वाक्यों से कहा, इसप्रकार श्रुतियों के आधार से निर्णय करेहुए भी अर्थ के विषय में मतान्तर के विरोध से संशय न होय इसकारण उस मत का खण्डन करने के निमित्त अपने आप ही कथन करके दिखाते हैं—अब यदि तुम कर्म करनेवाले और कर्मों के फल (सुख दुःख) भोगनेवाले इन जीवों का नानात्व मीमांसकों की समान मानते होओ, तैसे ही भोग के स्थान, भोग का काल, भोग के उपायभूत कर्मोंका कहनेवाला शास्त्र और भोक्ता आत्मा इन सबों का नित्यत्व मानते होओ, तैसे ही माला, चन्दन, स्त्री आदि सब पदार्थों की स्थिति प्रवाहरूप से नित्य है और सत्य है, मायाकल्पित नहीं है ऐसा मानते होओ और एक समय घट का ज्ञान होता है, दूसरे समय पट का ज्ञान होता है और तीसरे समय तीसरे ही पदार्थ का ज्ञान होता है, तिस से बुद्धिही, घटपटादि अनेकों आकारों से उत्पन्न होती है और भेद को प्राप्त होती है इसकारण आत्मा, नित्य ज्ञानरूप न होकर ज्ञानपरिणामी है इसकारण मुक्ति के समय इन्द्रिरहितहुए आत्मा को ज्ञानपरिणामीपना न होने से जडपने से मुक्ति प्राप्त होना पुरुषार्थ नहीं है इसकारण प्रवृत्तिमार्ग ही श्रेष्ठ हैं निवृत्ति मार्ग श्रेष्ठ नहीं है ऐसा मानते होओ तो—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे उद्धवजी! यह मीमांसकों का मत है, इस को सच्चा मानाजाय तो अनर्थ का कारण होजायगा, यदि कहो कि कैसे? तो—सब ही प्राणियों को देह के सम्बन्ध से, मास वर्ष आदि काल के अवयवों करके जो जन्ममरण आदि विकार वारंवार प्राप्त होते हैं वह इस मत के अनुसार कभी भी दूर नहीं होसकेंगे ॥ १६ ॥ और इस लोक में कर्म करनेवाले और सुख दुःखों को भोगनेवाले जीव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खसुखयोः को न्वेर्थो विवशं भजेत् ॥१७॥ न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखमूढानां द्वयाऽहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युना प्रभवेद्यथा ॥१९॥ को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ॥ आघातं नयिमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥२०॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्द्धाऽसूयाऽत्ययव्ययैः ॥ बहंतरायैरायासो यदि धर्मः स्वयं-

को पराधीनता देखने में आतीहै,क्योंकि—जीव यदि स्वाधीन होता तो इच्छा न होने पर भी उस के हाथ से जो दुष्कर्म होता है वह कदापि नहीं होता और उस को दुःख भी नहीं भोगना पडता, इस से मीमांसकों के मत के अनुसार जीव कुछ स्वतन्त्र नहीं है,तब पराधीन हुए पुरुष को कौनसा विषय सुख देगा? अर्थात् कोई नहीं देगा ॥ १७ ॥ अब जो भलीप्रकार कर्म करना जानते हैं वह सुखी होते हैं और जो भलीप्रकार कर्म करना नहीं जानते हैं वही दुःखी होते हैं, ऐसा कहो तो—भलीप्रकार उपाय जाननेवाले भी प्राणियों को किसी समय कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता है और मूढ पुरुषों को भी किसी समय कोई भी दुःख प्राप्त नहीं होता है, तिस से यह कर्मकुशल होने के कारण सुखी हैं ऐसा उन लोगों का केवल व्यर्थ अभिमान ही है ॥१८॥ अब वह पुरुष, सुख की प्राप्ति का उपाय और दुःख को दूर करने का उपाय जानते हैं, ऐसा यद्यपि मानलिया तथापि वह पुरुष, जो साक्षात् मृत्यु प्राप्त होता है वह जैसे प्राप्त न होय तैसे उपाय को नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ तथापि उन को, जबतक जीवित रहेंगे तबतक सुख ही होयगा,ऐसा कहो तो—यह ठीक नहीं है क्योंकि—जिस के आगे मृत्यु भय दिखाताहुआ खडा है उस को, कौनसा धन आदि पदार्थ, वा शब्दादिविषय सुख देगा? किन्तु जैसे वध करने के स्थान में लियेजातेहुए वध के योग्य अपराधी को उससमय दियाहुआ माला, चन्दन, मिष्टान्न आदि कोई भी पदार्थ सुख नहीं देता है तैसे ही जिस के आगे मृत्यु खडा है ऐसे इस जीव को कोई भी पदार्थ सन्तोष नहीं देता है ॥ २० ॥ इस लोक के सुख की समान ही स्वर्गादि लोक में का सुख भी, दूसरे के सुख को न सहना, दूसरे के गुणों में दोष लगाना, नाश होना और प्रतिदिन कमी होतेजाना इन के द्वारा दोषयुक्त है और 'जैसे अतिश्रेष्ठ है ऐसी सुनीहुई खेती, अतिवर्षा आदि बहुतसे विघ्नों से युक्त होने के कारण निष्फल होती है, तैसे ही' परलोक में के सुख भी इसलोक में करेहुए कर्मों में के वैगुण्य आदि बहुतसे विघ्नों से युक्त होने के कारण निष्फल हैं ॥ २१ ॥ अब कर्म में विघ्न न पडे तो उस का फल स्वर्गादि सुख जैसा चाहिये वैसा मिलेगा, ऐसा कहो तो—विघ्न न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वा जितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनालभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः

पढकर यदि उत्तम प्रकार से धर्माचरण कियाजाय तो उस से प्राप्तहुआ भी स्वर्गादिक स्थान जैसे निकलजाता है सो मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाला पुरुष, इस लोक में यज्ञों के द्वारा इन्द्रादिक देवताओं का यजन करके स्वर्गलोक में जाता है और तहाँ अपने सम्पादन करेहुए दिव्य भोगों को देवताओं की समान भोगता है ॥२३॥ वह अपने पुण्य के प्रभाव से प्राप्तहुए सकल भोगों से परिपूर्ण सुन्दर विमान में अप्सराओं के मध्य में उन के मन को हरनेवाला रूप धारण करताहुआ विहार करनेलगता है तब उस के समीप में गन्धर्व आदि उस के यश को गाते हैं ॥ २४ ॥ तब छोटी २ घंटियों के समूहों से शोभा पानेवाले और यथेच्छ गमन करनेवाले विमान में बैठकर देवताओं के नन्दनवन आदि क्रीडा करने के स्थानों में स्त्रियों के साथ सुख से क्रीडा करनेवाला वह पुरुष, पुण्य के समाप्त होने पर मैं नीचे गिरूँगा, यह नहीं जानता है ॥ २५ ॥ वह पुरुष, विषयभोग से पुण्य की समाप्ति होनेपर्यन्त स्वर्ग में आनन्द पाता है, परन्तु पुण्य क्षीण होते ही तहाँ से गिरने की इच्छा न करताहुआ भी काल के गिराने पर नीचे गिरता है ॥ २६ ॥ प्रवृत्ति दो प्रकार की है—एक तो विधिवाक्य के कहेहुए काम्यकर्म में, दूसरी विधि का उल्लंघन करके अधर्म में; तिस में से काम्यकर्म में प्रवृत्त होने की गति तो कहदी अब अधर्मप्रवृत्ति की गति कहते हैं—यदि यह पुरुष, विषयासक्त पुरुषों के सङ्ग से अधर्म में तत्पर होकर इन्द्रियों को न जीतकर, विषयासक्त, कृपण, लोभी, स्त्रीलम्पट, और प्राणीमात्र की हिंसा करनेवाला होय तो वह शास्त्र की विधि के विना पशुओं को मारकर प्रेतगणों का और भूतगणों का आराधन करने लगता है और कर्म के वशीभूत हो नरक में जाकर तहाँ के दुःखों को भोगता है और तदनन्तर अज्ञान से भरीहुई स्थावर आदि योनियों में उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ इसप्रकार दुःख ही जिस का अन्त का फल है ऐसे कर्मों को देह से करनेवाला यह प्राणी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां यद्भयं कल्पजीविनां ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्द्धपरायुषः ॥ ॥ ३० ॥ गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्परतन्त्रं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुण-

उन कर्मों से फिर देह पाता है, परन्तु ऐसे संसारचक्र में फिरनेवाले तिस मरणधर्मी प्राणी को कौन सुख होना है ? कोई सुख नहीं होसक्ता ॥ २९ ॥ तथापि लोकों के नित्य और लोकपालों को अमर होने के कारण सुख है ऐसा कहो तो—सब लोकों को और कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले लोकपालों को, अधिक तो क्या, परन्तु दो परार्द्धपर्यन्त की परमायुवाले ब्रह्माजी को भी मुझ से भय है, इस से प्रवृत्तिमार्ग अनर्थ का हेतु है ऐसा जानकर तिस से विरक्त होकर निवृत्त होना ही योग्य है ॥ ३० ॥ इसप्रकार अपनी ईश्वरता को प्रकट करने से निरीश्वरवादी सांख्य आदिकों का भी खण्डन हुआ, अब कर्त्ता भोक्तारूप ही आत्मा है, ऐसा जो उन्होंने कहा था तिस का खण्डन करते हैं कि—सत्त्वादिगुणों की कार्य जो इन्द्रियें वही कर्मों को उत्पन्न करती हैं और सत्त्व आदि गुण, इन्द्रियों की प्रवृत्ति करते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता है इसकारण आत्मा को कर्त्तापन नहीं है; और वह जीवात्मा तिन इन्द्रियादिकों के विषैं अहङ्कार से तादात्म्य को पाकर कर्मों के फल भोगता है; इसकारण उस में भोक्तापन भी औपाधिक भासता है; वह सत्य नहीं है ॥ ३१ ॥ अब आत्मा को जो नानात्त्व कहा था वह भी औपाधिक ही है ऐसा वर्णन करते हैं—जबतक गुणों का इन्द्रियरूप से परिणाम है तबतक ही आत्मा को नानात्त्व (अनेकपना) है और जबतक वह आत्मा का नानात्व है तबतक कर्माधीनता आदि परवशपना है ॥ ३२ ॥ और जबतक परवशपना है तबतक ही उस को मुझ कालरूप ईश्वर से भय है, तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष, इन गुणों के परिणामरूप शरीर, इन्द्रिय, पुत्र, स्त्री, विषय भोग आदिकों को सत्य मानकर अङ्गीकार करते हैं वह, लोक आदिकों के अनित्य होने के कारण शोकयुक्त होकर मोह को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ अब, लोक आदि केवल अनित्य ही नहीं हैं किन्तु मायामय भी हैं ऐसा कहते हैं कि—हे उद्धवजी ! काल आदिक अनेकरूपों से प्रकृति के गुण का परिणाम होनेपर, ज्ञानवान् पुरुष, काल, ईश्वर, वेद, लोक, स्वभाव और धर्म, ऐसे मेरा ही बहुत प्रकार से वर्णन करते हैं. इस से वह पुरुष, कालआदिरूप मुझ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

व्यनिकरे सति ॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्त्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुंजीतोत विसृजेच्छयीतासीत यात वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ छ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो

निराले नहीं हैं, इसकारण निवृत्ति ही मुक्ति का कारण होने से श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार एक ही आत्मा को गुणकार्यरूप देह के सम्बन्ध से संसार और आत्मज्ञान से मुक्ति होती है ऐसा कहकर उसकी ही मतान्तरों के खण्डन से दृढ़ता करनेपर उद्धवजी कहनेलगे कि—हे विभो ! सत्त्वादिगुणों के दूर होनेपर मुक्ति होती है अथवा उन के होतेहुए ही होती है ! यदि कहो कि—दूर होनेपर होती है तो—ज्ञान का साधन न होने के कारण मुक्ति नहीं होगी और यदि ऐसा कहोकि—गुणों के होतेहुए ही होती है तो—गुणों के कार्यरूप देहादि के विषैं अभिमान के साथ रहनेवाला यह देहधारी, देह से होनेवाले कर्मों के विषैं और सुख दुःखादि के विषैं बद्ध क्यों नहीं होता है ? यदि कहोकि—वह आकाश की समान अनावृत (न विराहुआ) है इसकारण बद्ध नहीं होता है तो—वह पहिले ही गुणों से कैसे बद्ध होता है ? ॥ ३५ ॥ अब यदि गुणों के होतेहुए ही उन के अहङ्कार से बद्ध होता है और तिस अहङ्कार की निवृत्ति से मुक्त होता है ऐसा मानलें तो—उस को कैसे जानें ? इस से बद्ध और मुक्तहुआ पुरुष कैसा वर्त्ताव करता है ? कैसा विहार करता है ? और किन लक्षणों से जानाजाता है ? तैसेही—भोजन करना, मल मूत्र का त्याग करना, सोना, बैठना, जाना, आना आदि व्यवहार कैसे करता है ? ॥ ३६ ॥ हे प्रश्न को जाननेवालों में श्रेष्ठ अच्युत ! तुम इन मेरे प्रश्नों का उत्तर कहो, क्योंकि—एक ही आत्मा अनादि गुणों के सम्बन्ध से नित्यबद्ध कैसे होता है ? और वह स्वयं नित्यमुक्त कैसे होता है ? इस विषय में मुझे भ्रम होरहा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० के एकादशस्कन्ध में दशमअध्यायसमाप्त ॥*॥ एकहीआत्मा ईश्वररूपसे नित्यमुक्त और जीवरूप से नित्य बद्ध कैसे है ? इस विषय में मुझे भ्रम है, ऐसा जो तुम कहते हो, सो क्या तुम्हें वास्तव में विरोध प्रतीत होता है ? अथवा कुछएक विरोध का भास होता है ? यदि कहोकि वास्तविक प्रतीत होता है तो--ठीक नहीं, क्योंकि—सत्त्वादि गुण माया से उत्पन्न हुए हैं, इसकारण माया से रहित मुझ को मोक्ष वा बन्धन कुछ भी नहीं है, ऐसा मेराही कराहुआ निर्णय है, इस के ऊपर अधिक कुतर्क करने की आवश्यकता नहीं है, तात्पर्य यह है कि—उपाधिरूप जो सत्त्वादि गुण वह, मेरी माया से कल्पित हैं, माया के सिवाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न बंधनम् ॥१॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याऽविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणां ॥ मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्ययाऽनिर्विद्यया च तथेतरः ॥४॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणो-

दूसरा कोई भी उन का मूल नहीं है, जो पदार्थ मायाकल्पित है वह रज्जु में भासनेवाले सर्प की समान ही भासता है, वास्तव में सत्य नहीं है, इसकारण बन्ध और मोक्ष यहदोनो मायाकल्पित स्वरूप को धारण करेहुए हैं, मैं गुणों के आधीन न होकर गुणोंका नियन्ता हूँ, इसकारण मुझे बन्धन वा मोक्ष कुछ भी नहीं है. जीव को भी वास्तव में बन्ध मोक्ष नहीं हैं किन्तु वह अज्ञान से गुणों के वशीभूत हुआ सा है इस कारण उस को अज्ञान के रहने पर्यन्त बन्ध और तदनन्तर मोक्ष, यह प्रतीत होते हैं ॥ १ ॥ इसप्रकार, जैसे स्वप्न बुद्धि का निमित्त है अर्थात् बुद्धि के ही द्वारा भासता है, तैसेही अन्तःकरण के धर्म-शोक,मोह,सुख, दुःख, देहकी उत्पत्ति और लय,यह माया के रचेहुए अध्यास सेही आत्मा में भासते हैं इसकारण जीवको भी संसार अज्ञानवश ही है वास्तव में नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धवजी ! प्राणियों का मोक्ष और बन्धन करनेवाली, विद्या और अविद्यारूप मेरी दो शक्ति हैं, वह—सृष्टि आदि की कारणभूत हैं और मेरी माया करके रचना करीहुई है;इस कारण जबतक मैं अविद्या की प्रवृत्ति करता हूँ तबतक बन्ध होता है और जब विद्या देता हूँ तब मोक्ष भी प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ हे महामते उद्धवजी ! एक ही जो मैं आत्मा तिस का अंश मानाहुआ जो जीव है उस को ही अविद्या के द्वारा अनादिबन्धन प्राप्त होता है, तैसे ही विद्या के द्वारा मोक्ष भी प्राप्त होता है, इस का तात्पर्य यह है कि—जैसे एक ही चन्द्र आदि पदार्थ का, जल आदि उपाधि के कारण बिम्बप्रतिबिम्बरूप भेद होता है और उस में जैसे जल के करेहुए कम्पायमान होना आदि धर्म प्रतिबिम्ब को ही प्राप्त होते हैं, तैसे ही प्रतिबिम्ब के भी उपाधिभेद से भेद होने के कारण एक जलपात्र के फूटजानेपर उस में का एक प्रतिबिम्ब ही बिम्ब में एकता को प्राप्त होता है, दूसरे घट में के प्रतिबिम्ब को नहीं प्राप्त होता है, तैसे ही अविद्या में प्रतिबिम्बितहुए मेरे अंशरूप जीव को ही अविद्या का कराहुआ बन्धन और विद्या का कराहुआ मोक्ष होता है, प्रत्येक जीवों की उपाधि भिन्न २ होने के कारण उन के बन्धमोक्ष की व्यवस्था नहीं होती है ॥४॥ अब बद्ध और मुक्त का भेद मैं तुम से कहता हूँ सुनो—हे तात उद्धवजी ! एक तो जीवों का और ईश्वर का परस्पर भेद है, दूसरे जीवों का जीवों के साथ ही परस्पर भेद है, तिस में जीव ईश्वर का भेद इस प्रकार है कि-वह जीवेश्वर शोक और आनन्दरूप विरुद्धधर्मवाले हैं और एकधर्मी (नाशवान्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तातं स्थितयोरेकयर्मिणि ॥ ५ ॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः॥ योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियैरिंद्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभा-

शरीर के विषैं नियम्यपने के और नियामकपने के सम्बन्ध से रहते हैं ॥५॥ जैसे वृक्ष के ऊपर घोंसला बनाकर रहनेवाले पक्षी, वृक्ष से निराले होते हैं तैसे ही, जिस का वर्णन न होसकै ऐसी माया के द्वारा शरीररूप वृक्षपर हृदयरूप घोंसला बनाकर रहनेवाले यह जीव ईश्वररूप पक्षी, देह से निराले हैं और यह दोनों ही चैतन्यरूप होने के कारण एकसे और एकमति से साथ रहनेवाले होने के कारण सखा हैं, उन में एक जीवरूपपक्षी, पिप्पलान्न (देहाभिमान से होनेवाले कर्म का सुखदुःखरूपफल) को भक्षण करता है. दूसरा ईश्वररूपपक्षी, निराहार (कर्मफलरूप विषयभोग से रहित) होकर भी, निजानन्द से तृप्त होने के कारण ज्ञानादिशक्तियों से जीव की अपेक्षा अधिक है ॥ ६ ॥ उन में कर्मफल को न भोगनेवाला जो सर्वज्ञ ईश्वर वह अपने को और दूसरे जीव को भी जानता है तथा कर्मफल को भोगनेवाला जो जीव वह अपने को और परमात्मा को भी नहीं जानता है इसकारण ही वह देहादिकों का आत्मभाव से अभिमान धारण करता है. इस से जो अविद्या से युक्त जीव है वह अनादिकाल से बद्ध है और जो विद्या स युक्त ईश्वर है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ अब बद्धमुक्तजीवों का ही परस्पर भेद कहते हैं-जैसे स्वप्न देखकर उठाहुआ पुरुष, स्मरण आयेहुए स्वप्न के देह में रहताहुआ भी उस में के सुखदुःखादिकों के सम्बन्ध से छूटाहुआ होने के कारण उस देह में रहताहुआसा नहीं होता है. तैसे ही जीवन्मुक्त पुरुष, संस्कारवश देह में स्थित होय तो भी देहसम्बन्धी सुखदुःखादिकों का संबंध छूटजाने के कारण देह में रहाहुआसा नहीं होता है और जैसे स्वप्न को देखनेवाला जीव, वास्तविकरूप से उस देह में न रहताहुआ भी उस में के सुखदुःखादिकों के सम्बन्ध से उस में रहताहुआसा होता है, तैसे ही अज्ञानी जीव, वास्तव में देह के सम्बन्ध से रहित होकर भी देहनिमित्तक सुखदुःखों का अपने में अध्यास करके देह के सम्बन्ध से युक्तसा होता है ॥ ८ ॥ गुणों के कार्यरूप इन्द्रियों से गुणों के कार्यरूप विषयों का सेवन करने परभी, जो राग द्वेषादिरहित मुक्तजीव है वह, मैं इनविषयों को ग्रहण करता हूँ ऐसा नहीं मानता है, क्योंकि-गुणों की कार्यरूप इन्द्रियें, गुणरूपविषयों को ग्रहण करती हैं, उस में मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसा वह मानता है ॥ ९ ॥ और अज्ञानी जीव तो, पूर्वकर्मों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोवुधस्तत्र कर्ताऽस्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनेमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितोऽनिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते

वशीभूत शरीर में रहकर, इन्द्रियों से होनेवाले कर्मों का मैं कर्त्ता हूँ ऐसा अभिमान धारण करके उन शरीरादिकों में बद्धहोता है; इन तीनों श्लोकों करके, ज्ञानी कैसा वर्त्ताव करता है इस प्रश्न का,सुखदुःखशून्य और निरभिमान होकर देह के विषैं वर्त्ताव कर्त्ता है ऐसा उत्तर जाने ॥ १० ॥ अब दूसरा भेद कहकर, कैसा भोजन करता है इत्यादि प्रश्नों का उत्तर कहते हैं—इन्द्रियों के कर्म मुझे कुछ बन्धन नहीं करते हैं, ऐसा जानकर विरक्तहुआ विद्वान् जीव यद्यपि-सोना, बैठना, फिरना, स्नानकरना, देखना, स्पर्शकरना, सूँघना, भोजनकरना, सुनना इत्यादि कर्मों में तिन २ विषयों का तिन २ इन्द्रियों से भोग करता है तथापि उन कर्मों का अभिमान अपने में धारण न करने के कारण प्रकृति के कार्यरूप देह में साक्षी होकर रहनेवाला भी वह जीव, तिसमें के कर्मों से जैसे अज्ञानी बन्धन पाता है किन्तु जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी अथवा जैसे सूर्य, जल में प्रतिबिम्बित होनेपर भी, अथवा जैसे वायु सर्वत्र विचरनेपर भी कहीं आसक्त नहीं रहता तैसे ही, कहीं भी आसक्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ किन्तु वैराग्य से तीक्ष्ण हुई ब्रह्मविद्या करके जिसके असम्भावना आदि दोष दूर हुए हैं ऐसा वह विद्वान् पुरुष,स्वप्न से जगेहुए पुरुष की समान देहादि प्रपञ्च से पृथक् होता है, इस प्रकार बद्धपुरुष और मुक्त किसप्रकार भोगों को भोगतेहैं इत्यादि प्रश्नों का उत्तर कहा १३ अब बद्ध और मुक्त पुरुष कैसे विहार करता है इस के उत्तर रूप से उनका भेद कहते हैं कि—जिस पुरुष के प्राण, इंद्रिय, मन और बुद्धि की 'यह खाऊँ, यह देखूँ, यह प्राप्त करूँ इत्यादि' वृत्तियें, सङ्कल्पों से रहित होती हैं, वह देह में स्थित होयतो भी उसदेह के गुणों से मुक्त है, इसकारण मुक्त पुरुष, प्राणादि की वृत्ति सङ्कल्प से रहित रखकर विहार करता है और बद्ध पुरुष, प्राणादिकों की वृत्तियों को सङ्कल्पयुक्त रखकर विहार करता है ऐसा जाने ॥ १४ ॥ इकप्रकार बद्धमुक्तों के स्वयं जाननेयोग्य लक्षण कहकर अब, कौनसे लक्षणों से जानाजाता है इस के उत्तररूप से दूसरे भी सहज में जाननेयोग्य भेद कहते है—जिस का शरीर दुष्ट पुरुषों से पीड़ित कियाजाता है और किसी समय दैव वश कुछ एक पूजाजाता है परन्तु यदि वह पुरुष, विद्वान् होयतो उस का मन हर्षखेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बुधः ॥१५॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ् मुनिः॥१६॥ न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥ गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलाऽवतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममा-

आदि विकारों को नहीं प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ और वह गुण दोषों से रहित और सम दृष्टि धारण करनेवाला मुनि, भलाबुरा करनेवाले वा बोलनेवाले लोकों की स्तुति वा निन्दा कुछ भी नहीं करता है, उस को ही मुक्त समझे और इस से विपरीत होयतो उसको बद्ध समझे ॥ १६ ॥ तैसे ही भीतर से मनन शील और अपने स्वरूप में रमाहुआ होने पर भी बाहर से जो कुछभला वा बुरा कर्म नहीं करताहै और भला वा बुरा नहीं कहताहै तथा किसी प्रकार का विचारभी नहीं करता है किन्तु इस पहिले कहीहुई वृत्ति से जड़पुरुष की समान विचरता है उस पुरुष को मुक्तसमझे औरउस से विपरीत वर्त्तावाले को बद्धसमझे इनही कहेहुए मुक्त पुरुषों के लक्षणों को मुमुक्षु पुरुषों के साधन जाने ॥ १६ ॥ अब, जो केवल वेदब्रह्म का जाननेवाला है और केवल अपनी पण्डिताई की ही प्रशंसा करता है परन्तु इन पूर्व कहेहुए साधनों से वेद के अर्थ पर निष्ठा नहीं रखता है उस की निन्दा करतेहैं—जो पुरुष, वेदब्रह्म के विषैं अर्थतःपारङ्गत होकर भी यदि परब्रह्म के विषैं ध्यान आदि के अभ्यास से उस में निष्ठा करनेवाला न होय तो उस का अध्ययन करने आदि का सब परिश्रम, 'बहुत दिनों में व्याहनेवाली गौ को दूध के निमित्त पालनेवाले पुरुष के परिश्रम की समान' केवल परिश्रमरूपफल ही देनेवाला होता है, पुरुषार्थ देनेवाला नहीं होता है ॥ १८ ॥ इस को ही दूसरे दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं कि—हे उद्धव! दूध न देनेवाली गौ की, प्रीतिशून्य स्त्री की, पराधीन होकर प्रतिक्षण में दुःख के कारण शरीर की, इस लोक और परलोक के साधन न होनेवाले पुत्र की, सत्पात्र में दान न करेहुए अकीर्त्तिकारक और पापकारक धन की तथा मेरे वर्णन से रहित वाणी की जो पुरुष रक्षा करता है वह आगे २ को बराबर दुःख भोगता है ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी! जिस वाणी में इस जगत् के उत्पत्ति, स्थित, संहार का कारण और श्रवण आदि करनेवाले लोकों को पवित्र करनेवाला मेरा कर्म न हो अथवा लीला से धारण करेहुए मेरे अवतारों में के जगत् के प्रिय रामकृष्णादि जन्म न हों उस निरर्थक वाणी का उच्चारण प्रवीण पुरुष न करे ॥ २० ॥ ऐसे विचार से आत्मा में प्राप्त हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्मनि ॥ उपरमेत विरजं मनो मय्यर्पयं सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलं ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्सङ्गलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥

देव मनुष्यादि देहों के अध्यास को दूर करके, निर्मलहुए मन को, परिपूर्णरूप मुझ भगवान् के विषैं धारण करके शान्ति पावे, केवल शास्त्र की पण्डिताई से अपने को कृतकृत्य न समझलेय ॥ २१ ॥ यदि तुम, ब्रह्म में निश्चलभाव से मन को धारण करने को असमर्थ होओ तो फल पाने की इच्छा को छोडकर मेरे उद्देश से अर्थात् मुझे अर्पण करके वर्णाश्रम के निमित्त कहेहुए सकल कर्मों को करो अर्थात् मेरी भक्ति से ही कृतार्थ होजाओगे ॥ २२ ॥ हे उद्धवजी ! जो पुरुष, श्रद्धायुक्त होकर, परममंगलरूप और लोकों को पवित्र करनेवाली मेरी कथाओं का श्रवण करता है, मेरे जन्मों का और कर्मों का वारंवार गान करता है, स्मरण करता है और अनुकरण करता है; मेरे सन्तोष के निमित्त धर्म, अर्थ और काम का आचरण करता है तथा मेरा ही आश्रय करके रहता है वह पुरुष, सकल कारणों के भी कारण ऐसे मेरे विषैं निश्चल भक्ति पाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ सत्सङ्ग से प्राप्तहुई तिस मेरी भक्ति के द्वारा वह भक्त, निरन्तर मेरा ध्यान करके ध्यान में मग्न होते ही, साधुओं के दिखायेहुए मेरे स्वरूप को निःसन्देह सुख से प्राप्त होजाता है ॥ २५ ॥ अब साधुओं की और भक्ति की विशेषता बूझने के निमित्त उद्धवजी कहनेलगे—हे उत्तम कीर्त्तिवाले प्रभो ! मनुष्यों करके अपनी २ बुद्धि से कल्पना करेहुए साधु बहुतसे होते हैं परन्तु तुम्हें कौनसे लक्षणोंवाला साधु माननीय है? और भक्ति भी लोकों में बहुत प्रकार की है परन्तु नारदादि साधुओं की सन्मान करीहुई कौनसी भक्ति तुम्हारे विषय में उपयोगी होती है ? ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! हे जगत्प्रभो ! यह जो कुछ मैंने बूझा सो, तुम कृपा करके अत्यन्त नम्र, भक्त और शरण में आयेहुए मुझ से कहिये ? ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! तुम आकाश की समान असङ्ग, परब्रह्मरूप और प्रकृति से परपुरुष हो तथापि अपने भक्तोंकी इच्छा से निराला स्वरूप धारण करके अवतरे हो॥२८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कृपालुरतकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनां ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गंभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेद-

श्रीभगवान् ने कहाकि—हे उद्धवजी ! अब तुम से तीस लक्षणावाले उत्तम साधुओं का वर्णन करता हूँ—१ लोकों के ऊपर कृपा करनेवाला, २ किसी से द्रोह न करनेवाला, ३ क्षमावान्, ४ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाला, ५ निन्दा आदि दोषों से रहित, ६ सुख दुःख के समय समान, ७ यथाशक्ति सब का उपकार करनेवाला ॥ २९ ॥ ८ विषयों से चित्त को चलायमान न होने देनेवाला, ९ जितेन्द्रिय, १० कोमलचित्त, ११ सदाचार को पालनेवाला, १२ परिग्रह का त्यागनेवाला, १३ इस लोक में के सुख के निमित्त किसीप्रकार के कर्म न करनेवाला, १४ परिमित भोजन करनेवाला, १५ शान्त, १६ अपने धर्म में स्थिर रहनेवाला, १७ मेरे आश्रय से रहनेवाला, १८ मननशील ॥ ३० ॥ १९ सावधान, २० निर्विकार, २१ कष्ट के समय भी धैर्य धरनेवाला, २२ भूँख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन छहों विकारों को जीतनेवाला, २३ मानरहित, २४ दूसरों का सन्मान करनेवाला, २५ दूसरों को समझाने में चतुर, २६ धोखा न देनेवाला, २७ करुणा करके ही परोपकार में लगनेवाला, २८ ज्ञानवान् ॥ ३१ ॥ और २९ वेदरूप मेरे कहेहुए स्वधर्म को पालन करने पर अन्तःकरण की शुद्धि आदि गुण हैं और उस को पालन न करने पर नरकगमन आदि दोष हैं ऐसा जानकर भी, यह धर्म प्रभु के ध्यान में विक्षेप करनेवाले हैं और आचरण न करनेपर भी यह भक्ति से ही सिद्ध होसकते हैं ऐसे दृढ़ निश्चय से तिन अपने सकल धर्मों को त्यागकर जो पुरुष मेरी सेवा करता है वह उत्तम साधु है ॥ ३२ ॥ तैसे ही जो पुरुष, मैं देशकाल आदि के परिच्छेद से रहित, सर्वात्मा और सच्चिदानन्दरूप हूँ ऐसा सामान्यपने से जानकर और फिर मनन आदि के द्वारा विशेषरूप से जानकर अनन्यभाव से मेरी सेवा करते हैं वह उत्तम भक्त होते हैं ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ३३ ॥ इसप्रकार साधुओं के लक्षण कहकर अब आठ श्लोकों में भक्ति के लक्षण कहते हैं, मेरी मूर्त्ति का और मेरे भक्तजनों का दर्शन, स्पर्श और पूजन करे, मेरी सेवा स्तुति और गुणकर्मों का वर्णन करे, नम्रता रक्खे ॥ ३४ ॥ हे उद्धवजी ! मेरी कथा सुनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डवादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्रा बलिविधानं च सर्वपर्वसु ॥ वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहृत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं"

में श्रद्धा रक्खे, मेरा ध्यान करे, जो कुछ मिले वह सब मुझे समर्पण करे, दासभाव से अपना शरीर मुझे समर्पण करे ॥३५॥ मेरे जन्म और कर्मों का वर्णन करे, मेरे जन्माष्टमी आदि उत्सवों का अनुमोदन करे, मेरे मन्दिरों में भक्तमण्डली इकट्ठी करके गाना, नाचना, बजाना आदि के द्वारा मेरा उत्सव करे ॥३६॥ मेरा दर्शन आदि करने को यात्रा करे, चौमासे में के जन्माष्टमी एकादशी आदि पर्वों में महापूजन सर्वोत्तम नैवेद्य आदि समर्पण करे, वैदिक वा तान्त्रिक दीक्षाग्रहण करे, मेरे एकादशी आदि व्रतों को धारण करे ॥३७॥ मेरे पूजन और मूर्त्तिस्थापन करने में श्रद्धा रक्खे, मेरे निमित्त फूलोंके वृक्षों के बाग, फलोंके वृक्षों के बाग, क्रीडा के स्थान, नगर और मंदिर उत्पन्न करने के काम में शक्ति के अनुसार अपनेआप और शक्ति न होय तो दूसरों के साथ मिलकर उद्योग करे ॥ ३८ ॥ मेरे मन्दिर में निष्कपटभाव से दास की समान झाडना बुहारना, लीपना, छिडकाव करना, चित्रकारी करना इत्यादि के द्वारा सेवा करे ॥ ३९ ॥ अभिमान और पाखण्ड को धारण न करे, अपने करेहुए धर्म का वर्णन न करे, मुझे अर्पण करेहुए पदार्थ का आप उपभोग न करे, और पदार्थों की तो वार्त्ता अलगरहे परन्तु मुझे अर्पण करेहुए दिव्य प्रकाश को भी अपने कार्य में न लावे. दूसरे देवता को अर्पण कराहुआ पदार्थ मुझे अर्पण न करे ॥४०॥ लोकों में जो २ पदार्थ सबों को प्रिय लगनेवाला है और अपने को अति-

१ विष्णु को निवेदन कराहुआ ग्रहण न करे, इस का तात्पर्य यह है कि-लोभ से ग्रहण न करे भक्ति से तो ग्रहण करे ही, क्योंकि--छः मासतक उपवास करने से जो फल मिलता है वह फल विष्णुभगवान् के नैवेद्य के एक सीत के भी भक्षण करनेवाले पुरुषों को कलियुग में प्राप्त होता है। जिस के हृदय में हरि का रूप, मुख में नाम पेट में नैवेद्य और मस्तक पर चरणोदक तथा निर्माल्य रहता है वह साक्षात् विष्णु ही है, ऐसा स्मृतिवचन है।

२ इसकारण ही पूजा आदि करते समय दूसरा दीपक लाकर रक्खे नहीं तो दो वत्ती तो अवश्य ही डाले।

३ विष्णुभगवान् को अर्पण कराहुआ अन्नादि पदार्थ अन्य देवताओं को अर्पण करे और वह पितरों को भी देय तब अनन्तफल देनेवाला होता है, पितरों को देकर शेष रहाहुआ पदार्थ यदि परमात्मा श्रीहरि को अर्पण करे तो उस के पितर नरक में पडकर दुःख भोगते हैं। इत्यादि स्मृतिवचन हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाऽग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंगे यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुवत्कृत्वा हृदि खे ध्यानेनिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थंडिले मंत्रहृदयैर्योगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेषिति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायंश्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्व-

प्रिय है वह पदार्थ मुझे निवेदन करे तब वह अनन्तफल देनेवाला होता है ॥ ४१ ॥ हे उद्धवजी ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, विष्णुभक्त, हृदयाकाश, वायु, जल, पृथिवी, अपना जीवात्मा और सकलप्राणी यह ग्यारह मेरे पूजा करने के स्थान हैं ॥४२॥ हे उद्धवजी ! सूर्य के विषें वेद में कहेहुए सूर्यस्तुतिपरक सूक्तों से उपस्थान आदि करके मेरी पूजा करे. अग्नि के विषें घृत आदि हवन के पदार्थों स मेरी पूजा करे श्रेष्ठ ब्राह्मण के विषें आदर सत्कार करके और गौ के विषें कोमल घास आदि खिलाकर मेरा पूजन करे ॥ ४३ ॥ विष्णुभक्त के विषें बन्धु की समान सत्कार करके मेरा पूजन करे, हृदयाकाश में ध्यान की निष्ठा रखकर मेरीपूजा करे, वायु में प्राणवायु की दृष्टि से और जलमें जलादि पदार्थों का तर्पण आदि करके मेरा पूजन करे ॥ ४४ ॥ भूमि में रहस्यमन्त्रों के न्यास से और जीवात्मा में विषयभोग अर्पण करके मेरी पूजा करे, सकल प्राणिमात्र में समता रखकर उन के अन्तर्यामी मुझ क्षेत्रज्ञ का पूजन करे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार इन ग्यारहों स्थानों में शंख, चक्र, गदा और कमल से युक्त चारभुजा धारण करनेवाले शान्तस्वरूप का ध्यान करके एकाग्रचित्तपने से मेरा पूजन करे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार जितेन्द्रिय रहनेवाला जो पुरुष, मेरा पूजन करता है और यज्ञ याग आदि वैदिककर्मों से तथा बावड़ी, कुआ, सरोवर आदि सार्त्त कर्मों से मेरा आराधन करता है उस को मेरी दृढ़ भक्ति प्राप्त होती है और दृढ़भक्ति पानेवाले उस को साधुसेवा से तत्त्वज्ञान होता है ॥ ४७ ॥ हे उद्धव जी ! तुम से यह ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहा, तिस में भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि-प्रायः सत्सङ्ग से होनेवाले भक्तियोग के विना संसार को तरजाने का दूसरा कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं है इस का कारण, सत्पुरुषों का उत्तम आश्रय मैं हूँ, इस कारण सत्सङ्ग से मेरी प्राप्ति शीघ्र होती है ॥ ४८ ॥ अब, दूसरे साधनों की अपेक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो यदुनन्दन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकौयाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥ तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः

रखनेवाले सांख्ययोग आदि से भी, स्वतन्त्र साधु समागम ही श्रेष्ठ है ऐसा वर्णन करने के निमित्त कहते हैं कि—हे यदुनन्दन उद्धवजी ! तुम मेरे दास, बन्धु और मित्र हो इसकारण श्रद्धा के साथ सुननेवाले तुमसे अतिरहस्य और सब से गुप्त रखनेयोग्य एकविषय कहता हूँ उस को सुनो ॥४९॥ इतिश्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥*॥ श्रीभगवान् ने कहा ।कि—हे उद्धवजी ! अन्य सब सङ्गो को दूर करनेवाला सत्संग, जैसे मुझे वश में करता है तैसे आसन प्राणायाम आदि योग,तत्त्वविवेकरूप सांख्य, अहिंसा आदि धर्म, वेदपाठरूप स्वाध्याय, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तप,सन्यासरूप त्याग, अग्निहोत्र आदि इष्ट, कूपबगीचा आदि पूर्त्त, अभयदान आदि दक्षिणा, एकादशीउपवास आदि व्रत, देवपूजा आदियज्ञ, रहस्यमन्त्ररूप छन्द, गङ्गा आदि तीर्थ, शौच आदि नियम, अहिंसा आदि यम, यह सब साधन वश में नहीं करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ हे उद्धवजी ! सत्संग से ही, दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, तैसे ही मनुष्यों में जो रजोगुण तमोगुण के स्वभाववाले थे वह वैश्य, शूद्र, स्त्रियें और अन्त्यज, तैसे ही वृत्रासुर प्रल्हाद आदि बहुतसे पुरुष, तिन २ युगों में मेरे स्वरूप को प्राप्त होगये हैं ; वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजराज, जटायुपक्षी, तुलाधारवैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा दासी, गोकुल की स्त्रियें, यज्ञकरनेवाले ऋषियों की स्त्रियें तैसे ही और भी बहुतसे पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होगये हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ उन्होंने वेद नहीं पढे थे. तथा वेदों का अर्थ जानने के निमित्त बडे २ सत्पुरुषों की सेवा भी नहीं करी थी, व्रत धारण नहीं करे थे और तप भी नहीं करा था तथापि वह केवल सत्सङ्ग से ही मेरे स्वरूप को प्राप्त होगये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण ॥ क्षणार्द्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ २२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रति-

हैं ॥ ७ ॥ तिस में सत्सङ्ग से ही प्राप्त हुई केवल प्रीति से गोपी, गौ, यमलार्जुन आदि वृक्ष, मृग और जो दूसरे मूढबुद्धि कालियादि सर्पकृतार्थ होकर मुझ अनायास में ही प्राप्त होगये हैं ॥८॥ जिस मुझ को, योग, सांख्य, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, वेदपठन और संन्यास के द्वारा यत्न करनेवाला पुरुष भी नहीं पाता है ; इस का तात्पर्य यह है कि—पहिले श्रीकृष्णजी के साथ जिन गोपियों को और गौ आदि पशुओं को समागम हुआ था वही साधु थे, उन का समागम ही औरों को सत्सङ्ग होकर तिस के द्वारा ही उन को भक्ति प्राप्तहुई ॥९॥ अक्रूरजी, बलरामजी के साथ जब मुझे गोकुल में से मथुरा को लेगये थे तब, मुझ में अतिदृढ़ प्रेमभाव से आसक्तचित्त हुई और मेरे वियोग से अतिदुःखित हुई गोपियों ने, मुझ से भिन्न कोई भी पदार्थ सुखदायक नहीं देखा ॥ १० ॥ उन को ऐसा दुःख हुआ कि—हे उद्धवजी ! वृन्दावन में विचरतेहुए और परम प्रिय साक्षात् मेरे साथ क्रीडा करते में जिन गोपियों ने जिन रात्रियों को अतिसुख से आधे क्षण की समान बिताया था, उन गोपियों को ही वही रात्रियें मेरा वियोग होनेपर कल्प की समान बहुत बडी होगईं ॥ ११ ॥ जैसे समाधि में स्थित ऋषि, अपने नामरूप कुछ भी नहीं जानते हैं तैसे ही मेरे विषें आसक्ति से अपनीं बुद्धि को लगानेवालीं उन गोपियों ने, अपने पतिपुत्रादिकों को, शरीर को, परलोक को और इस लोक को भी कुछ नहीं जाना किन्तु जैसे नदियें अपने नामरूपों को छोडकर समुद्र के जल में प्रविष्ट होजाती हैं तैसे केवल मेरी कामना करनेवालीं वह सैंकड़ो सहस्रों स्त्रियें, यद्यपि मेरे स्वरूप को जाननेवाली नहीं थीं तथापि 'हमें आनन्द देनेवाले यह जार हैं' ऐसी बुद्धिसे जानेहुए परब्रह्मरूप मुझ को सत्सङ्गति के प्रभाव से प्राप्त होगईं ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे उद्धवजी ! मेरे भजन का प्रभाव ऐसा है इसकारण तुम, श्रुति, स्मृति, विधि, निषेध, प्रवृत्त कर्म, निवृत्तकर्म, श्रवण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्॥योहि सर्वात्मभावेन मया स्यो ह्यकुतोभयः ॥१५॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥ यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिद्ध्यते तथैव मे व्यक्ति-

करनेयोग्य और श्रवण कराहुआ सब शास्त्र छोडकर, सकल प्राणीमात्र के अन्तर्यामी एक आत्मा मुझ को 'सब जगत् भगवद्रूपही है' ऐसी भावना से शरणजाओ और मेरी प्राप्ति करके संसारभय से छूटजाओ ॥ १४ ॥ १५ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे योगेश्वरों के ईश्वर ! तुमने पहिले 'मेरे कहेहुए स्वधर्म में सावधान रहकर इत्यादि' कर्म करे ऐसा कहाथा और अब सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण जा, ऐसा कहते हो, सो तुम्हारा भाषण सुननेवाले मेरा आत्मविषयक 'आत्मा को कर्तृत्व है या नहीं ? ऐसा' संशय निवृत्त नही होता है; कि—जिस संशय से मेरा मन घूमरहा है. इसकारण इस संसय को दूरकरो ॥ १६ ॥ इस का उत्तर कहने के निमित्त श्रीभगवान् बोले कि—हे उद्धवजी ! यह प्रत्यक्ष आधार आदि चक्र में नादादिरूप से प्रकट हुआसा प्रतीत होनेवाला ईश्वर, परावाणी नामक नादरूप प्राणसहित वर्त्तमान आधार चक्र में प्रविष्ट होकर तदनन्तर मणिपूरक चक्र में पश्यन्ती नामक मनोमय सूक्ष्मरूप को पाकर फिर विशुद्धिचक्र में अस्पष्टनादरूप कुछस्थूल स्वरूप को प्राप्त होता है, तदनन्तर मुख में ह्रस्वादि मात्रा, उदात्तादि स्वर और ककार आदि वर्ण इसप्रकार वैखरी नामक अतिस्थूल अनेक वेदशाखा रूप होता है॥ १७ ॥ जैसे अग्नि, आकाश में प्रथम अस्पष्ट ऊष्मारूप होता है और उस का काठ मे बल के साथ विशेष मन्थन करनेपर पहिले सूक्ष्म चिनगारीरूप से उत्पन्न होकर फिर वायु की सहायता से बड़ाहोते२ घृतादि होम के द्रव्यों के द्वारा वृद्धि को प्राप्तहोता है, तैसेही मुझईश्वर की परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी

१ यह सब उत्तर कहने का भगवान् का ऐसा अभिप्रायहै कि ईश्वरही अपनी मायाके द्वारा प्रपञ्च रूप से भासता है, जीवों को प्रपञ्च के अध्यास से अनादि अविद्या के द्वारा कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि प्राप्त होकर विधि निषेध का अधिकार प्राप्त हुआ है वह जबतक हैं तबतक ही वह अन्तःकरण की शुद्धिके निमित्त कर्म करें, अन्तःकरण शुद्ध होनेपर कर्मजाड्य के दूरहोने के निमित्त भक्ति में विक्षेप करनेवाले कर्म का आदर छोड़कर दृढ़ विश्वास के साथ मेरा भजन करें, और ज्ञान होजाय तो फिर जीवों को कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रियं हि वाणी ॥ १८॥ एवं गदिः कर्म गतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदव्यक्तयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥ द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कन्धः पंचरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोर्क प्रविष्टः॥२२॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसा य एकं

नामक अति सूक्ष्म, स्थूल और अतिस्थूल ऐसी वाणी के स्वरूप से उत्पत्ति हुई है ॥ १८ ॥ इसप्रकार ही भाषण, कर्म (हाथों का व्यवहार), गति (चरणोंकाव्यवहार) विसर्ग (पायु और उपस्थ इन दो इन्द्रियों की वृत्ति), सुगन्ध लेना, रस ग्रहण करना, देखना,स्पर्श करना,श्रवण करना,सङ्कल्प (मनकी वृत्ति),विज्ञान (बुद्धि और चित्तकी वृत्ति) अभिमान (अहङ्कार की वृत्ति), सूत्र (प्रधान की वृत्ति) और रज, सत्व तथा तम इन तीन गुणों का आधिदैविक आदि यह सब प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है ॥ १९ ॥ लोकरूपी कमलका आधार और तीनों गुणों का आश्रय यह आदि ईश्वर पहिले निराला २ न होकर अव्यक्तरूप एक ही था. वही काल के द्वारा वाणी आदि इन्द्रियरूप शक्तियों का विभाग पाकर, जैसे बीज क्षेत्र का आधार पाकर वृक्षादिरूप से अनेक प्रकार के भासते हैं तैसे ही इन्द्रियादिरूप से अनेकप्रकार का भासता है ॥ २० ॥ तन्तुओं के फैलाव में है स्थिति जिसकी ऐसा पट जैसे खडे लम्बे तन्तुओं में, ओत और आडे तन्तुओं में प्रोत होता है उन से भिन्न नहीं होता है तैसे ही यह सकल जगत् भी जिस कारणरूप ईश्वर में ओत प्रोत होकर उस से निराला नहीं है, इसी प्रकार जो यह अनादि कालीन, प्रवृत्ति स्वभाववाला, अविद्या से आत्मा में कल्पना कराहुआ देहरूपी संसारवृक्ष भोगरूप पुष्प और मोक्षरूप फल को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥ इस वृक्ष के पुण्यपाप रूप दो बीज हैं, वासनारूप सैंकडों जड़ हैं, गुणरूप तीन गुद्दे हैं महाभूतरूप पांच स्कन्ध हैं, शब्द स्पर्श आदि पांच रस हैं, ग्यारह इन्द्रिय शाखा हैं, इस के ऊपर जीव ईश्वररूप दो पक्षियों के घोंसले हैं, जिसकी वात, पित्त, कफरूप तीनछाल हैं जिस के सुखदुःखरूप दो फल हैं और वह वृक्ष सूर्यमण्डलपर्यन्त बढाहुआ है अर्थात् सूर्यमण्डल को भेदकर जानेवाले को संसार नहीं रहता है ॥ २२ ॥ उस वृक्ष के एक फल (दुःख) को गाँव में रहनेवाले गृध्र पक्षी (कामीगृहस्थ) खाते हैं और दूसरे एक फल (सुख) को वन में रहनेवाले हंसपक्षी (विवेकी संन्यासी) भक्षण करते हैं, इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विद्वांश्च जीवाशयममत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥२४॥ इतिश्री०भ०पु०एकाद०भगवदुद्धवसं०द्वादशोऽध्यायः॥१२॥७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्मः उभये हते ॥ ३ ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ॥ ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो

प्रकार एक परमात्मा ही मायामय होकर बहुतरूप हुआ है, ऐसा पूजनीय गुरुओं के उपदेश से जो जानता है वही वेदका वास्तविक अर्थ जानता है ॥ २३ ॥ हे उद्धवजी! तुम तो इसप्रकार सावधान और जितेन्द्रिय होकर गुरुकी उपासना से बढीहुई एकाग्र भक्ति करके तीक्ष्ण करेहुए ज्ञानकुठार से जीवोपाधिरूप त्रिगुणमय लिङ्गशरीर को काटकर और परमात्मा की प्राप्ति करके तदनन्तर सकल साधनों का त्याग करो ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ पूर्व अध्याय में ज्ञानकुठार से लिङ्गशरीर का छेदन करके साधनों का त्यागकरे ऐसा कहा, तिस में गुणों की वृत्तियों का प्रतिबन्ध होने पर ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होयगी? ऐसी शङ्का आने पर, गुणों की निवृत्ति से ज्ञान की प्राप्ति का उपाय कहने के निमित्त श्रीभगवान् कहनेलगे कि—हे उद्धवजी! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण बुद्धि (प्रकृति) के ही हैं आत्मा के नहीं हैं इसकारण सत्त्वगुण की वृद्धि से रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियों को जीते तथा सत्यदयादिवृत्तिरूप सत्त्वगुण का शान्तरूप सत्त्वगुण से ही जय करे यह क्रम शास्त्रसिद्ध है ॥ १ ॥ बढेहुए सत्त्वगुण से,मेरी भक्ति दिखानेवाला धर्म उत्पन्न होता है, सात्विक पदार्थों के सेवन से सत्त्वगुण बढता है और फिर उस से धर्म प्रवृत्त होता है ॥२॥ और फिर सत्त्वगण से बढाहुआ वह सर्वोत्तमधर्म, रजोगुण का और तमोगुण का नाश करता है, तिन दोनों का नाश होने पर वह दोनों रागद्वेष आदि के द्वारा और प्रमाद आलस्य आदि के द्वारा जिस के कारण थे वह अधर्म भी तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र (निवृत्ति प्रवृत्ति वा पाखण्ड आदि शास्त्र), जल (गङ्गाजल, सुगन्धितजल वा मद्यादिक जल), लोक (सत्पुरुष, गृहासक्त वा दुराचारी आदि लोक), देश (एकान्त स्थल, राजमार्ग और द्यूतस्थान आदि देश), काल (प्रातःकाल, प्रदोष और मध्यरात्रि का काल), कर्म (नित्यनैमित्तिक काम्य और जारण मारण आदि कर्म), जन्म (वैष्णवदीक्षा, शैवदीक्षा, शाक्तदीक्षा और क्षुद्रदीक्षा आदि जन्म), ध्यान (विष्णु का, स्त्रीपुत्रादि का और शत्रु आदि का ध्यान), मन्त्र (प्रणव, काम्य और क्षुद्र आदि मंत्र),

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निन्दन्ति तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥५॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथाऽपि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानादुःसहः स्याद्धि

और संस्कार (आत्मशोधक, देहशोधक और गृहादिशोधक आदि संस्कार) यह दश पदार्थ तीनों गुणों को बढ़ानेवाले हैं ॥४॥ इस जगत् में के पदार्थों में से शास्त्र के जाननेवाले जिस जिस की प्रशंसा करते हैं वह वह पदार्थ सात्विक है, जिस जिस की निन्दा करते हैं वह वह तामस है और जिस जिस की प्रशंसा वा निन्दा कुछ न करके उपेक्षा करते हैं वह वह राजस है ॥ ५ ॥ तिस में सत्त्वगुण की वृद्धि के निमित्त पुरुष, जो सात्विक हैं ऐसे निवृत्तिशास्त्र, गङ्गाजल आदि का ही सेवन करे तब उन से भक्तिलक्षणधर्म और तिस धर्म से आत्मसाक्षात्कार करनेवाला और स्थूल सूक्ष्म देहों के कारणभूत गुणों का निरास करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर, जैसे बाँसों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न हुआ अग्नि, स्वयं ही उत्पन्न हुई ज्वालाओं से उस सब वन को जलाकर आप भी शान्त होजाता है तैसे ही तिस अग्नि की समान व्यापारवाला और गुणों के मेल से उत्पन्न हुआ देह भी, अपनेआप उत्पन्नहुए ज्ञान से अपने कारणभूत गुणों का निरास करके आप भी शान्त होजाता है ॥७॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे श्रीकृष्णजी ! जितेन्द्रियपने से सात्विक पदार्थोंके सेवनमें जब ऐसा बड़ा पुरुषार्थ है और अनेकों मनुष्य, राजस और तामस विषयों को दुःखों का स्थान जानतेहैं तब वही मनुष्य, फिर 'जैसे कुत्ते कुतिया के ललकारने पर भी उस के भोगने में ही लम्पट होते हैं, अथवा जैसे गदहे चरणों से प्रहार करने पर भी गदही के पीछे ही दौड़ते हैं, अथवा जैसे बकरे मारने को आनेपर भी निर्लज्जपने से बकरी के पीछे दौड़ते हैं तैसे ही' विषयों को भोगने में लम्पट रहते हैं, यह कैसे होताहै? ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! विचारहीन पुरुष को पहिले देहादिके विषै 'मैं हूँ' ऐसी बुद्धि पूर्ण रीति से उत्पन्न होती है, तदनन्तर उस के सत्त्वगुणप्रधान भी मन को दुःखरूपी रजोगुण घेरलेता है ॥ ९ ॥ फिर रजोगुण से युक्त हुए तिस मन का 'यह ही उत्तम भोग है' ऐसा भोग्यपने के विषय का सङ्कल्प उत्पन्न होता है; तदनन्तर अहो कैसा स्वरूप है ! कैसा भाव है ! कैसी मधुरता है ऐसे गुणों के चिन्तवन से उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्मतेः ॥ १० ॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन् रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतंद्रितो मनो युंजन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोनुयुंजीत मनो मय्यर्पयंश्नैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धावेश्यते यथा ॥ १४ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् ॥१६॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि

दुर्बुद्धि पुरुष को दुःसह कामवासना उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ फिर रजोगुण के वेग से मोहित होकर काम के वशीभूत हुआ वह अजितेन्द्रिय पुरुष, विषयभोग के निमित्त करे हुए कर्म परिणाम में दुःखरूप हैं ऐसा जानताहुआ भी उन को ही फिर करता है ॥ ११ ॥ जब ऐसा है तब तो किसी भी दुःख की निवृत्ति नहीं होयगी, ऐसा कहो, तो—जो विद्वान् (देहादिकों से आत्मा निराला है ऐसा जाननेवाला) पुरुष है वह, यदि कदाचित् रजोगुण से और तमोगुण से बुद्धि को मूढता प्राप्त होकर विषयासक्त होजाय तो भी वह यदि फिर आलस्यरहित होताहुआ विषयों में दोषदृष्टि रखकर यत्न के साथ मन को रोकेगा तो विषयों में आसक्त नहीं होयगा ॥ १२ ॥ मन का वश में होना कठिन है इसकारण उस को जीतने में विलम्ब लगै तो आलस्य न करके सावधानी के साथ प्रतिदिन, दिन में तीन वार आसन का जय और प्राणायामों के द्वारा श्वासवायु का जय करनेवाला योगी, अपने मन को धीरे २ मेरेविषैं लगाकर स्थिर करे ॥ १३ ॥ हे उद्धवजी ! सकल विषयों से खेंचाहुआ मन, जैसे साक्षात् मेरे स्वरूप में पूर्ण रीति से स्थिर होयगा ऐसा योग मेरे सनकादि शिष्यों ने कहा है ॥ १४ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे केशव ! अतिवृद्ध सनकादि ऋषियों को तुमने इस जन्म में शिष्य करा हो सो तो हो नहीं सक्ता, तिस से तुमने उन सनकादि ऋषियों को जिस समय में जिसरूप से योग का उपदेश करा हो उस काल और उस रूप को जानने की मैं इच्छा करता हूँ वह आप मुझ से कहिये ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनकादि ऋषियों ने, एकसमय अपने पिताजी से, योग की पराकाष्ठा की सूक्ष्मगति के विषय में प्रश्न करा ॥ १६ ॥ सनकादिकों ने कहा कि—हे प्रभो ब्रह्माजी ! यह चित्त स्वभाव से ही प्रीतियुक्त होने के कारण विषयों में प्रविष्ट होकर उन में ही आसक्त होता है और वह (अनुभव करेहुए)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च प्रभो ॥ कथमन्योऽन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सांकाश्यमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां तु उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥ पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥

विषय भी वासनारूप से चित्त में प्रवेश करते हैं, तब संसार समुद्र को तरने की इच्छा करनेवाले मुमुक्षु के चित्त का और विषयों का वियोग कैसे होता है, सो कहिये ? ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे उद्धवजी ! इसप्रकार प्रश्न करनेपर वह देवाधिपति जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी, विचार करनेलगे परन्तु उन्होंने प्रश्न का बीज 'यह प्रश्न अज्ञान से है ऐसा' नहीं जाना; क्योंकि-उन की बुद्धि उससमय दूसरे सृष्टि आदि कर्मों से व्यग्र होरही थी॥१८॥ तब उन ब्रह्माजी ने, उस प्रश्न का अभिप्राय और उत्तर जानने की इच्छा से मेरा ध्यान करा, तब मैं, जैसे हंसपक्षी जल और दूध को पृथक् २ करने में समर्थ होता है तैसे गुण और चित्त को पृथक् २ करनेमें समर्थ हूँ ऐसा दिखाने के निमित्त हंसरूप से उन के समीप में गया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखकर वह सनकादि ऋषि, ब्रह्माजी को आगे करके मेरे समीप आये और मेरे चरणों को प्रणाम करके उन्होंने मुझ से, तू कौन है ? ऐसा प्रश्न करा ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! इसप्रकार तत्त्व को जानने की इच्छा करनेवाले उन ऋषियों ने मुझ से प्रश्न करा तब उससमय उन से मैंने जो कुछ कहा सो तुम मुझ से सुनो ॥ २१ ॥ देह से निराले आत्मा का ज्ञान होनेपर उस आत्मा में मन की एकाग्रता रखनेवाले पुरुष को, विषयासक्ति का होना असम्भव होने के कारण अपनेआप ही विषयों का और चित्त का भिन्न २ पना होजाता है ऐसा कहने के निमित्त प्रश्नखण्डन के मिष से ही पहिले आत्मानात्मविवेक कहते हैं-हे ब्राह्मणों ! यह तुम्हारा प्रश्न क्या आत्मविषयक है ? अथवा आत्मा की उपाधिरूप पञ्चभूत के समूह के विषय का है ? यदि आत्मविषयक है तो-उस परमार्थभूत आत्मवस्तु को अनेकपना नहोने के कारण तुम्हारा कराहुआ 'तू कौन है ऐसा' अनेक पदार्थों में से एक का निश्चय करने का प्रश्न कैसे बनसक्ता है ? और उत्तर देनेवाले मुझ को भी किस का आश्रय है ? अर्थात् आत्मा में कुछ विशेष न होनेपर कौन से जाति गुण आदि विशेषों का आश्रय करके मैं उत्तर दूँ ? ॥ २२ ॥ और यदि यह प्रश्न पञ्चभूत के समूह के विषय का होय तो-देव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुद्ध्यध्वमंजसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥ यर्हि संसृ-

मनुष्यादि सब शरीरों के पञ्चमहाभूतस्वरूप होने के कारण, वास्तव में उन के (परम कारणरूप से) एक समान होनेपर, तू कौन है ? ऐसा जो तुम्हारा प्रश्न है सो केवल वाणी मात्र से उच्चारण कराहुआ है और निरर्थक है ॥ २३ ॥ मन, वचन, दृष्टि और अन्य भी सब इन्द्रियों से जिस का ग्रहण करते हैं वह सब मैंही हूँ, मुझ से दूसरा कुछ नहीं है ऐसा तुम तत्वविचार से जानो, इस वाक्य से 'तू कौन है' इस प्रश्न का 'मैं सर्वात्मक हूँ ऐसा उत्तर भी कहाहुआसा ही होगया ॥ २४ ॥ इसप्रकार प्रश्न का खण्डन करने के मिष से अपना स्वरूप सामान्यभाव से निरूपण करके, अब ब्रह्माजी को भी जिस का उत्तर देना कठिन ऐसा जो प्रश्न करा था उस का उत्तर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त कहते हैं—हे पुत्रों ! चित्त विषयों में प्रवेश करता है और विषय चित्त में प्रविष्ट होते हैं, यह ठीक है तथापि वह विषय और चित्त दोनों ही परस्पर मिलकर उन का एकरूप आकार होने पर वह, मत्स्वरूपी (ब्रह्मरूपी) जीव का देह (अध्यास से अपना मानाहुआ उपाधि है) वास्तविक स्वरूप नहीं है ॥ २५ ॥ इसप्रकार वारंवार विषयसेवन के संस्कार से उन विषयों में प्रवेश करनेवाले चित्त का और वासनारूप से चित्त में प्रवेश करनेवाले विषयों का, जीव, स्वयं ब्रह्मरूप होकर त्याग करे ॥ २६ ॥ जाग्रत् आदि अवस्थायुक्त जीव को ब्रह्मपना कैसे प्राप्त होयगा ? इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं कि—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्था बुद्धि की ही हैं, जीवकी नहीं हैं, वह भी स्वाभाविक नहीं किन्तु क्रम से सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से हुई हैं, जीवतो उन वृत्तियों के साक्षीरूप से तिन अवस्थाओं से निराला ही निश्चय करागया है ॥ २७ ॥

१ इस का अभिप्राय यह है कि, कर्तृत्वभोक्तृत्व आदि स्वरूप से विषयों में गुथाहुआ चित्त ही बुद्धि अहंकार आदि नामों से उच्चारण कराजाता है, वही यदि जीव का सत्यस्वरूप होता तो उस का और विषयों का वियोग नहीं होता, परन्तु जीव का सत्यस्वरूप मैं ब्रह्म हूँ ; उस में चित्त के अध्यास से चित्त का स्वभाव आजाने के कारण विषयों के साथ गुथागुथी होरही है इसकारण अपनी ब्रह्मभावना से और विषयों के मिथ्यापन का अनुसन्धान करने से, सब विषयों से विरक्त होकर भगवान् की सेवा करनेवाले जीव की परिपूर्णस्वरूप से स्थिति होती है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ॥

क्योंकि-बुद्धि का कराहुआ यह अध्यास आत्मा को ' मैं जगरहा हूँ मैं सोता हूँ इत्यादि ' अवस्थारूप बन्धन करनेवाला हुआ है इस से तीनों अवस्थाओं के साक्षीरूप मुझ तुरीय के विषैं रहकर, जीव इस बन्धन का त्याग करे तब अपने आप ही विषयों का और चित्त का परस्पर त्याग होजाता है ॥ २८ ॥ अहङ्कार का कराहुआ बन्धन अपने परमानन्दादि धर्मों को ढककर अनर्थ का कारण हुआ है, ऐसा जानकर जीव, विषयों से विरक्त होकर, तीनों अवस्थाओं से निराले चौथे मेरे विषैं एकतारूप से रहकर संसार के कारणभूत देहाभिमान और उस की करीहुई भोगों की चिन्ता का त्याग करे ॥ २९ ॥ जबतक पुरुष की भेदबुद्धि. गुरु के उपदेश करेहुए शास्त्र के अभ्यास से प्राप्तहुई युक्तियों से निवृत्त नहीं होती है तबतक ; जैसे कोई पुरुष स्वप्न में जागने की अवस्था को देखता है परन्तु वह स्वप्न ही है तैसे ही वह अज्ञानी पुरुष,जागताहुआ भी (सांसारिककार्यों में चतुरता से चलताहुआ भी) स्वप्न देखनेवाले की समान है क्योंकि-उस को यथार्थज्ञान नहीं होता है ।३०। आत्मा से निराले देहादि पदार्थों के मिथ्या होने के कारण उन का कराहुआ वर्णाश्रम आदि भेद,स्वर्गादि फल और उन फलों के देनेवाले कर्म,यह सब मिथ्या हैं अर्थात् आत्मा से निराले कुछ भी नहीं हैं,जैसे स्वप्न देखनेवाले जीव को, स्वप्न में के देहादि मिथ्या होने के कारण उन के भेद, कर्म और फल मिथ्या होते हैं तैसेही आत्मा के भी वर्णाश्रम आदि सब भेद मिथ्या हैं इस से अज्ञानी पुरुषों के निमित्त ही वेद है जिन को आत्मज्ञान होगया उन के निमित्त नहीं है ॥ ३१ ॥ जो (आत्मा) जाग्रत् अवस्था में, जिन की बालकपन तरुणाई आदि अवस्था क्षण २ में बदलती है उन बाहर के स्थूल देह आदि सब पदार्थों को चक्षु आदि सब इन्द्रियों से सेवन करता है, जो स्वप्न की दशा में जागते में देखेहुए पदार्थों की समान ही क्षण २ में नाश पाने वाले, हृदय में उत्पन्न हुए वासनामय पदार्थों का सेवन करता है और जो सुषुप्ति अवस्था में तिन सब विषयों का उपसंहार करता है वही तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा एक है। अब यदि जाग्रत् अवस्था को इन्द्रियें देखती हैं, स्वप्नावस्था को मन देखता है और सुषुप्ति अवस्था को जाग्रत् स्वप्नावस्थाओंमें के शेष रहेहुए संस्कारोंवाली बुद्धि देखती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ सञ्छिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत मोऽखिलसंशयाधिं ३३ ॥ ईक्षेत विभ्रमिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति मायास्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥

है, ऐसा समझने में आता है तथापि, उन इन्द्रियों का, मन का और बुद्धि का द्रष्टा वह आत्मा ही है । अब जाग्रत् आदि अवस्थाओं के द्रष्टा विश्व, तैजस और प्राज्ञ यह निराले कहे हैं ऐसा कोई कहे तो ठीक नहीं है, क्योंकि—जिस ने स्वप्न देखे और तदनन्तर जिस ने (सुषुप्ति में) कुछभी नहीं जाना वही मैं अब जागरहा हूँ ऐसी स्मृति का तीनों अवस्थाओं में अन्वय होने में उपाधिभेद से विश्वादिनामों को धारण करनेवाला वह आत्मा ही है, इसप्रकार बालकपन तरुणाई आदि अवस्थाओं में भी आत्मा की एकता को जाने ॥ ३२ ॥ इसप्रकार विचार करके, गुणों से जो मन की जाग्रत आदि तीन अवस्था हुई हैं वह मेरे अंशभूत जीव के विषैं मेरी अविद्या की करीहुई हैं, वास्तविक नहीं हैं ऐसे आत्मरूप पदार्थ का निश्चय करनेवाले तुम, अनुमान से, साधुओं के उपदेश से और श्रुतियों से तीखेहुए ज्ञानखड्ग के द्वारा 'आत्मा देह से भिन्न है अथवा अभिन्न है इत्यादि' संशय के अधिष्ठान अहङ्कार का छेदन करके हृदय में ही रहनेवाले मेरा सेवन करो ॥३३॥ यह जगत् भ्रान्तिमात्र है ऐसा अनुमान करे, क्योंकि- यह स्वप्न की समान मनोविलासरूप, दृश्य और नाशमान है, तैसे ही अलातचक्र की समान अति चञ्चल है, अब निर्विषयक भ्रान्ति कैसे होयगी ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं कि—भ्रान्ति का अधिष्ठान जो एक ब्रह्म वही भ्रान्ति के समय अनेकप्रकार का भासता है इसकारण गुणों के परिणाम का कराहुआ जो यह देह-इन्द्रिय-अन्तःकरणरूप तीनप्रकार का भेद है सो केवल माया ही है ।३४। इस से तिस दृश्य (देहादि) प्रपञ्च करके अभिमान करने का त्यागकरके प्राणी अपने स्वरूप सुख का अनुभव करे और उस स्वरूपसुख की निश्चलता के निमित्त सब इच्छा और शरीरसम्बन्धी व्यापारों को छोड़देय, अब देहधारी पुरुष की द्वैतदृष्टि सर्वथा दूरहोना असम्भव है अतः उस को फिर संसार प्राप्त होजायगा, ऐसी शङ्का आनेपर कहतेहैं कि-जीवन्मुक्त को किसी आवश्यक आहारादि कर्म के समय यदि यह देहादि द्वैत देखने में आता है तथापि पहिले ही अवस्तु जानकर छोड़ाहुआ वह फिर उस को मोहित करने को समर्थ नहीं होता है, किन्तु देहपात होने पर्यन्त उस को उस का संस्कारवश स-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपं ॥ दैवादपेतमथ दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ।३६। देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः। तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः।३७।मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्साख्ययोगयोः।जानीत मागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया।३८।अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥३९॥मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकं ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः॥ संभाजयित्वा परया

रणमात्र ही रहता है ॥ ३६ ॥ तथापि जैसे मदिरा के मद (नशे) से मत्तहुआ पुरुष, शरीर पर धारण कराहुआ वस्त्र, दूसरी ओर को अस्तव्यस्त होगया अथवा कहीं रहगया है इस का कुछ ध्यान नहीं रखता है तैसेही जीवन्मुक्त हुआ पुरुष, जिस देह से अपने आत्मतत्व को जाना है, वह नाशवान् होने के कारण उपेक्षा कराहुआ अपना देह, सोते से उठकर आसनपर बैठा है अथवा खड़ा है अथवा तहाँसे दूसरी ओर को कहींगया है अथवा जाकर फिर लौटआया है इसका अनुसन्धान नहीं रखता है फिर अपने सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिकों का कहाँसे रक्खेगा ? ॥ ३६ ॥ अब जो देह पालन करने पर भी मरणोन्मुख होता है उस की ओर को यदि किञ्चिन्मात्र भी नहीं देखा तो वह गिरही पड़ेगा, ऐसा कहो तो प्रारब्ध कर्म के अधीन वह शरीर, जबतक अपने को उत्पन्न करनेवाला कर्म है तबतक प्राणइन्द्रियों के सहित जीवितरहेगा ही,इस में सन्देह नहीं है;यदि कहो कि-इस दशा में कभी तो उस के ऊपर आसक्ति होगी, इस शंका का उत्तर कहते हैं कि-जिस ने समाधिपर्यन्त योग साधन करा है और जिसने परमार्थ वस्तु को जानलिया है वह पुरुष, स्वप्न में के देह की समान जानेहुए तिस पुत्र स्त्री आदि सहित देह का अहन्तामम्ता से सेवन नहीं करता है ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणों ! आत्मानात्मविवेकरूप सांख्यशास्त्र और अष्टाङ्गयोग में का यह रहस्य, मैंने तुम से कहा है, तुम से मोक्षधर्म का वर्णन करने की इच्छा से हंसरूप से आयाहुआ मैं विष्णु हूँ ऐसा तुम जानो ॥ ३८ ॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणों ! मैं योग, सांख्य, जानने योग्य धर्म, पालनकरने योग्य धर्म, प्रभाव, लक्ष्मी, कीर्त्ति और इन्द्रियनिग्रह का परम आश्रय हूँ ॥ ३९ ॥ इसकारण निर्गुण, निरपेक्ष, और सर्वों के सुहृद्, प्रिय और आत्मा ऐसे मेराही, जो गुणों के परिणामरूप नहीं ऐसे साम्य. असङ्ग आदि सब गुण मेरा सेवन करते हैं इसकारण मेरे कहनेपर तुम दृढविश्वास रक्खो॥ ४० ॥ इसकारण मैंने जिनके संशयों को तोड़डाला है ऐसे वह सनकादि ऋषि, परमभक्ति से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भक्त्याऽगृणंत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इ० भा० ब० ए० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यते मतयो

मेरा सत्कार करके उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करनेलगे ॥ ४१ ॥ तिन ऋषियों से पूजन कराहुआ और स्तुति कराहुआ मैं, ब्रह्माजी के देखतेहुए अपने स्थान को लौट आया ॥ ४२ ॥ इतिश्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी ने कहाकि—हे श्रीकृष्णजी ! वेद को जाननेवाले पुरुष, कल्याण के बहुत से साधन कहते हैं, उन में सब ही मुख्य हैं ? अथवा उन में से एक मुख्य है शेष सब उस के अवान्तरभेद हैं ? ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! तुम ने तो, जिससे, सबप्रकार के विषयों की आसक्ति छूटकर तुम्हारे विषैं मन लगे ऐसे भक्ति योग को ही मोक्ष का साधन कहा है सो इन साधनों की क्या व्यवस्था है ? ॥ २ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे उद्धवजी ! जिस में मेरे विषैं मन लगानेवाला धर्म कहा है ऐसी यह वेदनामवाली वाणी, पहिले प्रलय के समय, काल करके नष्ट होगई थी; वही मैंने सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी से कही है ॥ ३ ॥ फिर उन ब्रह्माजी ने, वह वाणी अपने बड़े पुत्र मनुजी से कही; उन से वह, महाऋषि, भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु इन सात प्रजापतियों ने ग्रहण करी ॥ ४ ॥ उन प्रजापतियों से जो उन के पुत्र—देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, चारण, किन्देव, किन्नर, नाग, राक्षस और किम्पुरुष आदिहुए उन्हों ने ग्रहण करी; उन देवादिकों की रजःसत्त्व तमोगुणों से उत्पन्न हुई नानाप्रकार की वासना होने के कारण, उन वासनाओं के द्वारा प्राणियों में देवता, असुर और मनुष्य आदि भेद होकर उन की बुद्धि भी निराली २ होती है, तैसे ही उन सबों के स्वभाव के अनुसार चित्रविचित्र वेदके अर्थ की व्याख्यानरूप वाणी भी प्रवृत्त होती हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसप्रकार स्वभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृणाम् ॥ पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदंति स्वार्थं वै ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ १० ॥ आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयात्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ अकिंचनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत् ॥ १४ ॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न

की विचित्रता के कारण ही अध्ययन आदि से शून्य भी कितने ही पुरुषों की बुद्धियें, उपदेश की परम्परा से भेद को प्राप्त होजाती हैं, दूसरे कितने ही तो पाखण्डबुद्धि वेदविरुद्ध अर्थ के करनेवाले होजाते हैं ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! मेरी माया से मोहितबुद्धि हुए पुरुष, अपने २ कर्म के अनुसार और रुचि के अनुसार भिन्न २ प्रकार के कल्याण साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ कोई (मीमांसक) स्वर्ग ही फल है और धर्म ही उस का साधन है ऐसा कहते हैं. दूसरे (अलङ्कार शास्त्र के जाननेवाले) यश को, वात्स्यायन आदि—काम को, योग शास्त्री—सत्य, दम और शम को, तथा राजनीति के जाननेवाले पुरुष, ऐश्वर्य को ही, स्वार्थ साधने का मुख्यसाधन कहते हैं, चार्वाक (नास्तिक) लोग, दान और भोग को ही मुख्यसाधन कहते हैं. दूसरे कितने ही लोकायतिक—यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम और यमों को ही पुरुषार्थ का साधन कहते हैं ॥ १० ॥ इन ' धर्मादि साधनों को कहनेवाले ' सब लोकों के कर्मों के द्वारा रचेहुए सकल फल, आदि और अन्त से युक्त, परिणाम में दुःख और मोह में डालनेवाले, तुच्छ आनन्द से युक्त और भोग के समय भी स्पर्धा, निन्दा आदि दोषों से तथा शोक से युक्त होते हैं ॥ ११ ॥ हे उद्धवजी ! मुझमें चित्त लगानेवाले और सबही विषयोंके सुखों में निरपेक्ष रहनेवाले भक्त को, परमानन्दरूप से स्वरूप भाव करके स्फुरित होनेवाले मेरे द्वारा जो सुख है वह विषयासक्तचित्तों को कहाँ मिलेगा ? ॥ १२ ॥ धन आदि को इकट्ठा न करनेवाला, जितेन्द्रिय शान्त, समचित्त, और मेरी प्राप्ति होने पर ही सन्तुष्टचित्त ऐसे भक्त को सब ही दिशा सुखमय हैं ॥ १३ ॥ अपने चित्त को मेरे विषें अर्पण करनेवाला भक्त, मेरे सिवाय दूसरे—ब्रह्माजी के आधिपत्य, स्वर्ग के राज्य, सम्पूर्ण भूमण्डल के आधिपत्य, पाताल के आधिपत्य, अणिमादि आठ ऐश्वर्य और मोक्षपद की भी इच्छा नहीं करता है ॥ १४ ॥ हे उद्धवजी ! जैसे मुझे तुम भक्त अतिप्रिय हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शंकरः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाऽग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता २०॥ भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं

ऐसे, पुत्र ब्रह्माजी भी, साक्षात् मेरे स्वरूप शङ्कर भी, भ्रातावलराम भी, लक्ष्मी स्त्री भी और आत्मा भी अतिप्रिय नहीं है ॥ १५ ॥ निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदृष्टि भक्तके पीछे मैं नित्य 'इस भक्त के चरणरज से अपने पेटमें के ब्रह्माण्डों को पवित्र करूँगा ऐसी भावना से' जाता हूँ ॥ १६ ॥ जिन के पास किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं है, जिन का मन मुझ में लगाहुआ है, जिन के चित्त को शब्दादिविषय स्पर्शभी नहीं करते हैं और जो शान्त, निरभिमानी और सकलप्राणियों के ऊपर दया करनेवाले हैं वह मेरे भक्त, जिस सुख को भोगते हैं, निरपेक्ष पुरुषों को प्राप्त होने योग्य उस सुख को वही जानते हैं, वह सुख दूसरे किसी के भी जानने में नहीं आता है ॥ १७ ॥ उत्तम भक्तों की तो कथा अलग रहे परन्तु जितेन्द्रिय न होने के कारण, विषयों से अपनी ओर को खेंचाहुआ भी मेरा भक्त, प्रतिक्षण बढनेवाली भक्ति से भली प्रकार रक्षा कराहुआ होने के कारण प्रायः विषयों से तिरस्कार को नहीं प्राप्त होता है किन्तु वह कृतार्थ ही होता है ॥ १८ ॥ हे उद्धवजी ! जैसे स्वयम्पाक करनेवाले का अत्यन्त प्रदीप्त कराहुआ अग्नि काठ को जलाकर भस्म करता है ; तैसे ही काम द्वेष आदि किसी भी निमित्त से होनेवाली मेरी भक्ति, सब पातकों को भस्म करती है ॥ १९ ॥ इसकारण बढीहुई मेरी भक्ति, जैसे मुझे वश में करती है तैसे योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप अथवा दान यह साधन मुझे वश में नहीं करते हैं ॥२०॥ प्रिय आत्मरूपी मैं, श्रद्धा से उत्पन्न होनेवाली भक्ति करके ही सत्पुरुषों के वश में होता हूँ, मेरी भक्ति चाण्डालपर्यन्त सब पुरुषों को जातिदोष से पवित्र करदेती है ॥ २१ ॥ भक्ति न होय तो अन्य साधन व्यर्थ हैं, क्योंकि— सत्य और दया से युक्त धर्म और तप से युक्त आत्मविद्या भी, मेरी भक्ति से रहित जीव को उत्तम प्रकार से पवित्र नहीं करती है ॥२२॥ शरीर पर रोमाञ्च खडेहुए विना, चित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रवता चेतसा विना ॥ विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥ २३ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् ॥ हित्वा मयि स-

के द्रवीभूत हुए विना और नेत्रों में आनन्द के आँसू आये विना भक्ति कैसे समझीजाय? और भक्ति के विना अन्तःकरण की शुद्धि कैसे होसक्ती है? ॥ २३ ॥ और मेरी भक्ति, करनेवाले पुरुष को पवित्र करती है इस का तो कहना ही क्या? परन्तु जिस की वाणी मेरे प्रेम से गद्गद होती है, जिस का चित्त द्रवीभूत (बाहरी व्यवहार में शिथिल) होता है, जो मेरे वियोग को प्राप्तहुआ सा वारंवार रोदन करता है, कभी मेरी क्रीड़ा का रहस्य समझ में आजाय तो हँसनेलगता है, कभी लोकलाजको छोड़कर ऊँचे स्वर से मेरे चरित्र का गान करता है और नृत्य करता है, ऐसा मेरी भक्ति करनेवाला पुरुष, अपने को तो क्या परन्तु अपने दर्शन आदि से जगत् को पवित्र करता है ॥ २४ ॥ जैसे सोना, अग्नि से तपानेपर ही अपने में के दूसरी धातुओं के मेलरूप मल का त्याग करता है, धोने आदि से नहीं त्याग करता है और अपने वास्तविक स्वरूप को पाता है तैसे ही जीव भी मेरी भक्ति के द्वारा ही संसार की कारण कर्मवासनाओं को त्यागकर मेरा भजन करता है और मुझमें एकता को पाता है ॥ २५ ॥ मेरी पवित्र कथाओं को सुनने से और वर्णन करने से जैसे२ अन्तःकरण शुद्ध होता है तैसे२ यह जीव, जैसे अंजन डालाहुआ नेत्र दोषरहित होकर सूक्ष्मवस्तु को भी देखता है, तैसे ही सूक्ष्म भी आत्मवस्तु को जानने में समर्थ होता है अर्थात् भक्तिका ही एक व्यापार ज्ञान है, भक्ति से भिन्न नहीं है ॥ २६ ॥ और वह ज्ञान भी चित्त का मेरी रूपता करके एक परिणाम है और वह भी मेरी भक्ति करनेवाले को स्वाभाविक ही होता है, उस के निमित्त यत्न नहीं करना पड़ता है, जैसे विषयों का ध्यान करनेवाले पुरुष का चित्त विषयों में आसक्त होता है तैसे ही वारंवार मेरा चिन्तवन करनेवाले का चित्त मुझ में लीन होजाता है ॥ २७ ॥ इसकारण हे उद्धवजी! क्योंकि- विषयों का ध्यान संसार का कारण और मेरा ध्यान मेरी प्राप्ति का कारण है तिस से जिसप्रकार स्वप्न में और मनोरथ के समय प्राप्तहुए विषय मिथ्या हैं तिसीप्रकार भक्ति के विना दूसरे साधन और उन के फल मिथ्या (कल्पनारूप) हैं ऐसा जानकर उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मांधत्स्व मनो मद्भावभावितं॥२८॥स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः॥२९॥न तथास्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः॥योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥३०॥उद्धव उवाच॥ यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकं॥ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ३१ श्रीभगवानुवाच ॥ समे आसन आसीनः समकायो यथासुखम्॥ हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाऽग्रकृतेक्षणः ॥ ३२॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्रार्थं पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेवं समभ्यसेत् ॥ दशकृत्वस्त्रिपवर्णं मासादर्वाग्जितां-

का त्यागकरो और मेरी भक्ति से ही शुद्धहुए चित्त को मेरेविषैं स्थिर करो॥ २८ ॥ धैर्यवान् पुरुष, स्त्रियों की और स्त्रियों में आसक्तहुए कामी पुरुषों की संगति को दूरसे ही छोडकर निर्भय एकान्त स्थान में बैठे और मेरा चिन्तवन करे ॥ २९ ॥ स्त्रियों की सङ्गति से और स्त्रियों की सङ्गति करनेवाले जारपुरुषों की सङ्गति से पुरुष को जैसा क्लेश और बन्धन प्राप्त होता है तैसा दूसरे किसी की भी सङ्गति से नहीं प्राप्त होता है इसकारण उन की सङ्गति सर्वथा छोड़देनी चाहिये ॥ ३० ॥ उद्धवजी ने कहा कि– हे कमलनेत्र श्रीकृष्णजी, मुमुक्षु पुरुष, जिसप्रकार, जिन लक्षणों से युक्त जिस तुम्हारे रूप का ध्यान करे सो मुझ से कहने की कृपा करिये ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि– न बहुत ऊँचा न बहुत नीचा ऐसे कम्बल आदि के आसन पर समानशरीर से जैसे सुख प्रतीत हो तिस रीति से बैठनेवाला साधक, अपने दोनों हाथ जंघाओं पर रखकर और चित्त की स्थिरता के निमित्त नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि लगाकर पूरक, कुम्भक और रेचक इस क्रम से अथवा नासिका के बायें नथुने से ऊपर को खेंचकर रोकाहुआ वायु, दाहिने नथुने से छोडना और दाहिने नथुने से ऊपर को लेजाकर रोकाहुआ वायु, बायें नथुने से छोडना, इस क्रम से प्राण के मार्ग को शुद्ध करके विषयों से इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके प्राणायाम का अभ्यास करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकार का है एक सगर्भ और दूसरा अगर्भ, तिस में श्रेष्ठ होने के कारण सगर्भ (ॐकारगर्भित) प्राणायाम का वर्णन करते हैं–मूलाधारचक्र से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कमल की दण्डी में के तन्तु की समान सूक्ष्म और अविच्छिन्न (कहीं से न टूटाहुआ) ॐकार को मन में प्राणवायु के द्वारा प्रकट करके फिर उस ॐकार में घण्टे के नाद की समान सूक्ष्म गुञ्जारयुक्त उदात्तस्वर (अनुस्वार) को स्थिर करे ॥३४॥ इसप्रकार प्रणवगर्भित प्राणायाम प्रतिदिन प्रातःकाल दुपहर और सायङ्काल के समय दश २ वार जो पुरुष करता है वह एक मास के पहिले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं मंगलैर्ध्यानमङ्गलम् ॥ ३७ ॥ सौम्यं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदायुतम् ॥ सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥ ४१ ॥ सुकुमारमभिध्यायेत्सर्वांगेषु मनो दधत् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिन्तयेद्भूयः

ही प्राणवायु को जीतनेवाला होता है ॥ ३५ ॥ देह में ऊपर को दण्डी और नीचे को मुखवाला कमल की फूल की समान मुँदाहुआ एक हृदयकमल है उस का विपरीत ध्यान करे अर्थात्, नीचे को दण्डी और ऊपर को मुख है तथा खिलाहुआ अष्टदल और कर्णिकायुक्त है ऐसा ध्यान करे ॥ ३६ ॥ उस कर्णिका में एक के ऊपर एक इस क्रम से मण्डलाकार सूर्य चन्द्रमा और अग्नि हैं ऐसा ध्यान करे, तदनन्तर अग्नि में आगे कहेहुए ध्यान के विषय मेरे स्वरूप का चिन्तवन करे ॥ ३७ ॥ उस स्वरूप के विशेषण कहते हैं कि—यथोचित अङ्गोंवाला, शान्त, सुन्दर मुख से युक्त, घुटनोंपर्यन्त लम्बी चार भुजाओं से शोभायमान, अतिरमणीय, सुन्दर कण्ठ और कपोलों से विराजमान, स्वच्छ मन्दहास्य से शोभायमान ॥ ३८ ॥ एकसमान कानों में पहिनेहुए दमकतेहुए मकराकार कुण्डलों से युक्त, सुवर्ण की समान पीला पीताम्बर पहिनेहुए, मेघ की समान श्यामवर्ण, वक्षःस्थल पर दक्षिण की ओर श्रीवत्सलाञ्छन और बाईं ओर लक्ष्मी के आश्रय ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित, नूपुरों से शोभित चरणोंवाला, कौस्तुभमणि की कान्ति से युक्त ॥ ४० ॥ मस्तक पर देदीप्यमान किरीटवाला, हाथों में कड़े तोड़े, कमर में तागड़ी, भुजदण्डों पर धारण करेहुए बाजूबन्दों से युक्त, सकल अवयवों से सुन्दर, मनोहर, प्रफुल्लित हुए मुख वा नेत्रों से युक्त ॥ ४१ ॥ और सुकुमार मेरे स्वरूप का, मेरे चरण से लेकर मस्तकपर्यन्त के अवयवों में मन लगाकर ध्यान करे इस सविशेष ध्यान को करके, फिर शब्दादि विषयों से इन्द्रियों को मन से खैंचकर, धीरजवान् पुरुष, उस सङ्कल्पविकल्पात्मक मन को भी, सहायभूत निश्चयात्मक बुद्धि के द्वारा सर्वाङ्गयुक्त मेरे विषें स्थापन करे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उस सर्वाङ्गव्यापक चित्त को, सब अङ्गों से खैंचकर एक ही अवयव में स्थापन करे, फिर दूसरे अवयव का चिन्तवन न करे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥ एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेतं उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥१॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित् कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणायोगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥ प्राकाम्यं श्रुतदृ-

किन्तु मन्दहास्ययुक्त मुख का ही ध्यान करे ॥ ४३ ॥ फिर उस मुख में स्थिरता पायेहुए चित्त को सब के कारणरूप मेरे विषैं स्थापन करे फिर उस कारणत्त्व आदि को छोडकर ब्रह्मरूप मेरे विषैं भक्त के आरूढ होनेपर ध्याता, ध्यान, ध्येय इन में से किसी विभाग का चिन्तवन न करे ॥ ४४ ॥ इसप्रकार समाधिपर्यन्त ध्यान करनेवाला पुरुष, मेरे विषैं निश्चल बुद्धि हो जाय तो मुझे अपने में देखता है और अपने आत्मा को, जैसे दीपक आदि का तेज महाभूतरूप तेज में लीन होजाता है तैसे ही सर्वात्मा मेरे विषैं एकतारूप से संयुक्तहुआ देखता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार अत्यन्त तीव्र ध्यान से मन की एकाग्रता करनेवाले योगी का अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्मरूप अथवा द्रष्टा—दर्शन—दृश्यरूप भ्रम तत्काल नाश को प्राप्त होजाता है ॥ ४६ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि—हे उद्धवजी ! श्वास वायु और इन्द्रियों का जय करनेवाले तथा मेरे विषैं चित्त को स्थापन करनेवाले योगी को बहुतसी सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे श्रीकृष्णजी ! कौनसी धारणा से कौन से नाम की किसप्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है और वह सब सिद्धियें कितनी हैं ? यह मुझ से कहो, क्योंकि—तुम योगियों को सिद्धि देनेवाले हो ॥ २ ॥ तब श्रीभगवान् कहनेलगे कि—हे उद्धवजी ! योग के पारगामी पुरुषों ने अठारह सिद्धि और उन की अठारह धारणा कही हैं, इस से त्रिकालज्ञत्त्व आदि क्षुद्र सिद्धियों को दूसरे भी पुरुष जानते हैं ऐसा सिद्धहुआ, उन अठारह में से आठ सिद्धियें मुख्यता से मेरा ही आश्रय करके रहती हैं, वह मेरे सारूप्य को प्राप्तहुए पुरुषों में मुझ से कुछ कम अंश करके रहती हैं और दश सिद्धियें सत्त्वगण की वृद्धि से प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ तिन में १ पहिली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मता ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽसौ दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सह क्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्कांबुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः ॥ ८ ॥ एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासं-

अणिमा, (बडे शरीर से ही एकसाथसूक्ष्म होजाना) २-री महिमा, (सूक्ष्म शरीर से ही एक साथ बडा होजाना) ३-री लघिमा, (भारी शरीर से ही हल का होजाना) यह तीन सिद्धियें शरीर की हैं; ४-थी प्राप्ति, (सकल प्राणियों की इन्द्रियों के साथ उन के अधिष्ठातृ देवतारूप से सम्बन्ध), ५-वीं प्राकाम्य, (परलोक में के और इस लोक में के सब स्थानों में भोग देखने की शक्ति) ६-ठी ईशिता, (ईश्वर के विषैं माया को और दूसरों में माया के अंशों को प्रेरणा करने की शक्ति) ॥ ४ ॥ ७-वीं वशिता, (विषय भोगते में भी असङ्ग रहना) और ८-वीं प्राकाम्य, जो जो सुख पाने की इच्छा होय वह २ पराकाष्ठा का प्राप्त होना) हे उद्धवजी ! यह आठसिद्धियें मेरेविषैं स्वाभाविक और अधिकता से हैं ॥ ५ ॥ इस देह में ९-अनूर्मिमत्त्व (भूँखप्यास आदि न लगना), १०-दूरश्रवण (दूर से सुनना), ११-दूरदर्शन (दूर से देखना), १२-मनोजव (मन की समान वेग से देह की गति), १३-कामरूप (इच्छितस्वरूप की प्राप्ति) १४-परकायप्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना), १५-स्वच्छन्दमृत्यु (अपनी इच्छा के अनुसार मृत्यु होना), १६-देवताओं के साथ क्रीडा करना (अप्सराओं के साथ देवताओं की जो क्रीड़ा होती है उन को देखना), १७-यथासङ्कल्पसिद्धि (सङ्कल्प के अनुसार प्राप्ति होना), और १८-जिस की गति कहीं भी खुटती नहीं होती ऐसी आज्ञा, यह दश सत्त्वगुण की वृद्धि से सिद्धि होती है ॥६॥७॥ त्रिकाल का ज्ञाता होना, सरदी गरमी आदि से क्लेश न पहुँचना, दूसरों के चित्त आदिकों को जानना, अग्नि—सूर्य—जल-विष आदि का स्तम्भन करना, और किसी स्थान पर भी तिरस्कार न पाना ॥ ८ ॥ जप योग की धारणाओं से होनेवाली मुख्य २ सिद्धियें मैंने तुम से कही हैं, अब जिस २ धारणा से जो जो सिद्धि जिस २ प्रकार की होती है सो मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ ९ ॥ शब्द-स्पर्श—रूप—रस—गन्ध इन सूक्ष्मभूतों की उपासना करनेवाला जो पुरुष, शब्द स्पर्शादिरूपी मैंरे विषैं तदाकार हुए मन को धारण करता है वह मेरी अणिमानामवाली सिद्धि को पाता है ॥ १० ज्ञानशक्तिमान् महत्तत्वरूपी मुझ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

स्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् ॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ॥ परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोवसीयते" ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेततां याति षड्भिर्रहितो नरः ॥ १८ ॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा

परमेश्वर के विषैं महत्तत्त्वाकार हुए मन की धारणा करनेवाला पुरुष, महिमा नामवाली सिद्धि को पाता है और आकाशादि महाभूतरूपी मेरेविषैं मनकी धारणा करनेवाला पुरुष, तिस २ महाभूत की महिमा को पाता है ॥ ११ ॥ वायु आदि पञ्चमहाभूतों के परमाणुस्वरूप मेरेविषैं मन की धारणा करनेवाला योगी, काल की परमाणुरूप स्थिति लघिमानामक सिद्धि को पाता है ॥ १२ ॥ सात्विक अहङ्काररूप मेरेविषैं एकाग्रहुए मन की धारणा करनेवाला मेरा उपासक, सकल प्राणिमात्र की इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करने की शक्तिरूप प्राप्तिनामवाली सिद्धि को पाता है ॥ १३ ॥ क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्व वही सूत्र है तद्रूपी मेरे विषैं जो मन की धारणा करता है वह, उस सूत्रोपाधिक मेरे सर्वोत्तम ब्रह्माण्ड में की ज्ञानरूप प्राकाश्यनामक सिद्धि को पाता है ॥ १४ ॥ त्रिगुणमयी माया के नियन्ता, कालरूपी और अन्तर्यामी विष्णु के विषैं जो चित्त की धारणा करेगा वह देह-इन्द्रिय-अन्तःकरण के समूहरूप देहों की और जीवों की प्रेरणा करनेवाली सामर्थ्यरूप ईशिता नामक सिद्धि को पावेगा ॥ १५ ॥ विराट्, हिरण्यगर्भ और कारण इन तीन उपाधियों से रहित अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं के साक्षी तुरीयनामक, पूर्ण-ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्य युक्त मुझ नारायण में, मेरी उपासना से एकाग्रहुए मन को, धारण करनेवाले और मेरे धर्म को पालनेवाले योगी को, विषयों में अनासक्तिरूप वशिता नामवाली सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ मुझ निर्गुण ब्रह्म के विषैं स्वच्छ मन को लगानेवाला योगी, परमानन्दरूप प्राकाम्यनामक सिद्धि को पाता है, इस सिद्धि में सब प्रकार के मनोरथ पूरे होते हैं ॥ १७ ॥ शुद्ध सत्त्वगुणी, धर्ममय, श्वेतद्वीप के पति (अनिरुद्धरूप) मेरे विषैं मन की धारणा करनेवाला योगी, शुद्ध होकर, भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन धर्मों से रहित होने की अनूर्मिमत्त्व सिद्धि को पाता है ॥ १८ ॥ आकाशरूप अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिण्डं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्यापीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा

आकाश की समान निर्मल और सर्वव्यापक, जगत् के समष्टि प्राणरूप मेरे विषै मन से नाद का चिन्तवन करनेवाला यह जीव, उस आकाश में सकल प्राणियों की विचित्रवाणियों को सुनना रूप दूरश्रवण सिद्धि को पाता है ॥ १९ ॥ आदित्य को चक्षु इन्द्रिय में और आदित्य में चक्षु को संयुक्त करके उन दोनों के संयोग में मेरा ध्यान करनेवाला पुरुष, सूक्ष्म दृष्टि होकर सब जगत् को देखता है अर्थात् दूरदर्शननामक सिद्धि को पाता है ।२०॥ मन और देह दोनों को देह में रहनेवाले प्राण वायु के साथ मेरे में भली प्रकार से संयुक्त करके मेरी धारणा करने पर, उस धारणा के प्रभाव से जहां उस का मन जाता है तहाँ ही देह भी जापहुँचता है अर्थात् उस को मनोजवरूप सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २१ ॥ अचिन्त्यशक्ति और अनेकप्रकार के आकार धारण करनेवाले मुझ में जो मन की धारणा करी जाती है तो उस के बल के आश्रय से यह योगी, जब मन को उपादान कारण बनाकर जिस २ देवादिरूप को प्राप्त होने की इच्छा करता है तिस २ मन के इच्छितरूप को पानारूप प्राकाम्यसिद्धि को पाता है ॥ २२ ॥ पराई काया में प्रवेश करनेवाला सिद्ध; उस काया में अपने आत्मा का चिन्तवन करे और अपने स्थूल देह को छोड़कर लिङ्गशरीररूप उपाधि के साथ वायु के मार्ग से, जैसे भौंरा एक फूल से दूसरे फूलपर जाता है तैसे पराई काया में प्रवेश करे; यह परकायप्रवेशन नामवाली सिद्धि है ॥ २३ ॥ योगी, पैर की एडी से गुदा के द्वार को रोककर, प्राण उपाधिवाले आत्माको क्रम से हृदय,उर,कण्ठ और मस्तक में चढाकर ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा ब्रह्म में अथवा मन के द्वारा दूसरे इच्छित स्थान में लेजाकर स्थूलशरीर का त्याग करदेय, यह स्वच्छन्दमृत्यु नामवाली सिद्धि है ॥२४॥ जहाँ देवता क्रीडा करते हैं ऐसे विमानादिकों में अप्सराओं के साथ क्रीडा करने की इच्छा करनेवाला पुरुष, मेरी मूर्त्तिरूप शुद्ध सत्त्वगुण का ध्यान करे तो, सत्त्वगुण की अंशरूप अप्सरा, विमानों सहित उस के समीप आजाती हैं,यह देवक्रीडानुदर्शन नामवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्साञ्छ्रिविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः सेवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२॥ अन्तरायान्वदं-

सिद्धि है ॥ २९ ॥ मेरी आराधना करने में तत्पर हुआ पुरुष, मुझ सत्यसङ्कल्प में मन की धारणा करके, जब जैसी वस्तु का बुद्धि से सङ्कल्प करेगा उसीसमय वैसी ही वस्तु उस को उत्तमता से प्राप्त होगी, यह यथासङ्कल्प सिद्धि है ॥ २९ ॥ जो पुरुष, ध्यानयोग के द्वारा, मुझ सर्वनियन्ता स्वतन्त्र के स्वभाव से एकता को प्राप्त हुआ है उस की आज्ञा को, मेरी आज्ञा की समान कोई भी नहीं टालता है, यह अप्रतिहताज्ञा नामवाली सिद्धि है, यह दश सिद्धियें गुणनिमित्तक हैं ॥२७॥ अब त्रिकालज्ञत्व आदि क्षुद्र सिद्धियों का वर्णन करते हैं—मेरी भक्ति से शुद्धचित्त हुआ और मेरी धारणा को जाननेवाला जो पुरुष होगा उस को, तीनों काल को जानने की तथा अपने जन्ममरण को जानने की त्रिकालज्ञत्व नामक सिद्धि प्राप्त होती है और इस धारणा से ही दूसरे के चित्त आदि को जानने की, परचित्ताद्यभिज्ञता नामक सिद्धि प्राप्त होती है ॥२८॥ अग्नि सूर्य आदि उपाघातों से रहित मेरी धारणा से शान्तचित्त हुए मुनि का, प्राणायाम आदि योगसाधनों से वश में कराहुआ शरीर, जैसे मत्स्य आदि जलजन्तुओं का शरीर जल से किसीप्रकार भी नाश को नहीं प्राप्त होता है तैसे ही, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिकों से किसीप्रकार नाश को नहीं प्राप्त होता है ; इस ही धारणा से अद्वन्द्वता (शीत उष्णादि से तिरस्कार न पाना) सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ श्रीवत्सलाञ्छनादि चिन्ह, चक्र आदि आयुध, और ध्वजा छत्र चँवर आदि राजचिन्ह, इन से भूषित मेरे अवतारों का जो पुरुष ध्यान करता है वह सब स्थानों में जय पाता है, यह अपराजय नामक सिद्धि है ॥३०॥ इसप्रकार जुदी २ योग धारणा से मेरी उपासना करनेवाले मुनि को, पहिले कहीहुई सब सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३१ ॥ अथवा अनेक धारणा करने के परिश्रम की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—इन्द्रियें, मन और प्राणवायु का जय करनेवाले और पहिले वशिता नामवाली सिद्धि के प्रकरण में कहेहुए तुरीय नामक भगवान् नारायण के विषें मन की धारणा करनेवाले मुनि को, कौनसी सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ? अर्थात् उस एक धारणा से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्येतां युंजतो योगमुत्तमं॥मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः॥ ३३॥जन्मौषधितपो-मंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः॥योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत्॥३४॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम्॥ ३५॥ अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनां॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा॥ ३६॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥ ७॥ उद्धव उवाच॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतं॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः॥ १॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः॥ उपासते त्वां भगवन्यार्थातथ्येन ब्राह्मणाः॥ २॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः॥ उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे॥३॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां

ही उस को सब सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३२॥ यद्यपि ऐसा हैं तथापि उन सिद्धियों की चाहना न करे, क्योंकि—उत्तम योग (मेरी उपासना) करनेवाले और मेरी शीघ्र प्राप्ति करलेने के अधिकारी योगी को, यह सिद्धियें मेरी प्राप्ति के होने के मध्य में जन्मभोगादि करके कालक्षेप का कारण होती हैं अर्थात् यह विघ्नरूप हैं ऐसा वृद्ध पुरुष कहते हैं ॥३३॥ इस जगत् में, जन्म, ओषधि, तप और मन्त्रों से जितनी सिद्धियें प्राप्त होती हैं, उन सब ही सिद्धियों को, पहिले कहेहुए तुरीय नारायण की भावना से योगी पाता है परन्तु केवल जन्म ओषधिमात्र साधनों से वह मेरे सालोक्य आदिरूप सिद्धि को नहीं पाता है ॥३४॥ मैं सब सिद्धियों का देनेवाला और उन की रक्षा करनेवाला प्रभु हूँ और केवल इतना ही नहीं किन्तु-मोक्ष का और मोक्ष के साधन ज्ञान का तथा धर्म का और धर्म का उपदेश करनेवाले साधुओं का भी प्रभु हूँ ॥ ३५॥ इस का कारण यह है कि—जैसे पञ्चमहाभूत, जरायुज आदि चार प्रकार के प्राणियों के शरीरों में भीतर और बाहर व्याप्त हैं तैसे ही, सकल जीवों का अन्तर्यामी आत्मा मैं भी सबोंके भीतर और बाहर व्यापक होकर अपरिच्छिन्न हूँ ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ *॥ उद्धवजी ने कहा कि- हे श्रीकृष्णजी ! आदि अन्त और आवरण से रहित तुम साक्षात् परब्रह्म हो और सब प्राणियों की जीविका चलानेवाले तथा उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले तुमही हो ॥ १॥ हे भगवन् ! जिन्होंने अपना मन नहीं जीता है वह, जानने में नहीं आतेहुए भी तुम्हें, वेद का अभिप्राय जाननेवाले ब्राह्मण, छोटेबड़े पदार्थों में यथार्थ रूप से जानकर तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ २॥ वह विवेकी ब्राह्मण, जिन २ पदार्थों में भक्ति से तुम्हारी उपासना करतेहुए मोक्ष पाते हैं सो मुझ से कहो ॥ ३॥ हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूतभावन ॥ न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ॥ ताः मह्यमाख्याह्यनुभाविता-स्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मं ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्न-विदां वर। युयुत्सुना विनिशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्य हेतुकं ॥ ततो निवृत्तो हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थि-त्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहं ॥ गुणानां चा-प्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहं ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छंदसामहम् ॥

हे भूतपालक! सब प्राणियों के अन्तर्यामी जो तुम, सब प्राणियों में गुप्तरूप से रहरहे हो, तिन तुम्हारे मोहित करेहुए सकल प्राणी, देखनेवाले भी तुम्हें नहीं देखते हैं ॥ ४ ॥ इस से हे महाविभूते! पृथ्वीपर, स्वर्ग में, पाताल में और दिशाओं में तुम्हारी विशेष शक्ति से, तुम्हारी ही संयुक्त करीहुई जो कुछ तुम्हारी विभूतियें हैं वह सब मुझ से कहो सबतीर्थों के स्थानरूप तुम्हारे चरण कमल को मैं नमस्कार करता हूँ॥५॥ श्रीभगवान् ने कहाकि— हे प्रश्न जाननेवालों में श्रेष्ठ उद्धवजी! जैसे तुमने मुझ से प्रश्न करा है तैसेही यहप्रश्न पहिले कुरुक्षेत्र में शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा करनेवाले अर्जुन ने मुझ से कराथा ॥ ६ ॥ वह अर्जुन, मैं मारनेवाला और यह मानवसमूह मरनेवाला है ऐसा मानकर अ-ज्ञानी पुरुषों की समान मोहितचित्त और ज्ञातियों का वध केवल अधर्म और निन्दनीय है ऐसा जानकर तिस से हटगया था ॥ ७ ॥ तब उस पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन को उस रणभूमि में ही मैंने युक्ति से समझाया उस समय उस ने, जैसे अब तुम ने मुझ से प्रश्न करा है ऐसे ही विभूतिप्रश्न कराथा, इसकारण उस से जैसा कहा था सोई तुम से भी कहता हूँ सुनो ॥ ८ ॥ हे उद्धवजी! इनसब प्राणीमात्र का आत्मा, मित्र और ईश्वररूप से उपासना करनेयोग्य मैंही हूँ और सकल प्राणी और उन की उत्पत्ति, स्थिति संहार का कारण भी मैंही हूँ ॥ ९ ॥ गतिमान् पदार्थों की गति मैं हूँ, दूसरों को वश में करनेवालों में काल मेरा स्वरूप है, सत्व, रज और तम इनतीनों गुणों की जो समतारूप अवस्था (प्रकृति) सो मैं हूँ, पदार्थों में जो मधुरता आदि स्वाभाविक गुण है सो मैं हूँ ॥ १० ॥ सत्वादि त्रिगुणमयी पदार्थों में क्रियाशक्तिप्रधान पहिला विकार जो सूत्र सो मैं हूँ, बड़े पदार्थों में महत्तत्व मैं हूँ, सूक्ष्मपदार्थों में जीव मैं हूँ, दुर्जय पदार्थों में मन मैं हूँ ॥ ११ ॥ वेदों के सिखानेवालों में ब्रह्मा मेरी विभूति है, वेदों में अकार—उकार—मकाररूप ॐकार मैं हूँ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ १२ ॥ इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः॥स्कंदोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं

अक्षरों में अकार मैं हूँ छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ ॥ १२ ॥ सब देवताओं में इन्द्र मैं हूँ, अष्टवसु नामवाले देवताओं में अग्नि मैं हूँ. बारह आदित्यों मे वामन मैं हूँ, ग्यारह रुद्रों में नीललोहित रुद्र मैं हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियों में भृगु मैं हूँ, राजर्षियों में स्वायम्भुव मनु मैं हूँ, देवर्षियों में नारद मैं हूँ और धेनुओं में कामधेनु मैं हूँ ॥ १३ ॥ सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष और पितरों में अर्यमा मैं हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धवजी ! दैत्यों में उन का अधिपति प्रह्लाद मैं हूँ , ऐसा जानो, नक्षत्र और ओषधिओं का राजा चन्द्रमा मैं हूँ, यक्ष और राक्षसों का प्रभु कुवेर मैं हूँ ॥ १६ ॥ गजेन्द्रों में ऐरावत, जल के जीवों में उन का प्रभु वरुण, ताप देनेवालों में और कान्तिमानों में सूर्य और मनुष्यों में मैं उन का राजा हूँ ॥ १७॥ घोड़ों में उच्चैःश्रवा (इन्द्र का घोड़ा) और धातुओं में सुवर्ण मैं हूँ, दण्ड देनेवालों में यम, और सर्पों में वासुकि मैं हूँ ॥ १८ ॥ श्रेष्ठनागों में अनन्त मैं हूँ, सींग वा दाढ़वाले पशुओं में मैं सिंह हूँ, हे पवित्र उद्धवजी ! आश्रमों में संन्यास और वर्णों में ब्राह्मण मैं हूँ ॥१९। तीर्थों में और सोतों में गङ्गा, तथा स्थिर जलाशयों में समुद्र मैं हूँ, आयुधों में धनुष, और धनुर्धारियों में त्रिपुरासुर का नाश करनेवाला महादेव मैं हूँ ॥२०॥ निवास के स्थानों में मेरु, और गहनस्थानों में हिमालय मैं हूँ वनस्पतियों में पीपल और औषधियों में जौ मैं हूँ ॥ २१ ॥ पुरोहितों में वसिष्ठ और वेद के अर्थ में निष्ठा रखनेवालों में बृहस्पति मैं हूँ, सब सेनापतियों में स्वामिकार्त्तिकेय, और सन्मार्ग चलानेवालों में मैं भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्कांबुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणां ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामवहिर्मतिः गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥ २७ ॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलो सितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहं ॥ किंपूरुषाणां हनुमानन्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसां ॥ कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ॥ ३० ॥ व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥

और व्रतों में अहिंसाव्रत मैं हूँ, बुहारना-छीलना-घिसना आदि शुद्ध करने की रीतियों में वायु, अग्नि, सूर्य, जल और ब्राह्मणों के वचनरूप से शुद्ध करनेवाला मैं हूँ ॥ २३ ॥ अष्टाङ्गयोगों में समाधि और विजय की इच्छा करनेवालों में नीति मैं हूँ, विवेक आदि निपुणताओं में आत्मानात्मविवेकरूप ब्रह्मविद्या मैं हूँ, अख्याति अन्यथाख्याति आदि संशयवाद करनेवालों में 'यह ऐसा है अथवा ऐसा है' इसप्रकार का जो दुरन्त विकल्प सो मैं हूँ ॥२४॥ स्त्रियों में स्वायम्भुवमनु की स्त्री जो शतरूपा सो मैं हूँ, पुरुषों में स्वायम्भुव मनु, मुनियों में नरनारायण और ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार मैं हूँ ॥२५॥ धर्मों में प्राणियों को अभय देनेवाला संन्यास, अभयस्थानों में अन्तर्निष्ठा और गुह्यों में प्रियवचन तथा मौन मैं हूँ, मिथुनों (जोडों) में जिस के आधे शरीर से पुरुष और आधे शरीर से स्त्रीहुई वह ब्रह्मा मैही हूँ ॥ २६ ॥ सावधान रहनेवालों में वर्षरूप जो काल सो मैं हूँ, ऋतुओं में चैत वैशाखरूप वसन्त ऋतु, मासों में मार्गशीर्ष और नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र मैं हूँ ॥ २७ ॥ युगों में सत्ययुग और धीरपुरुषों में असित तथा देवलमुनि मैं हूँ, वेदका विभाग करनेवालों में व्यास, और बुद्धिमानो में सूक्ष्मबुद्धिमान् शुक्राचार्य मै हूँ ॥२८॥ प्राणीमात्र की उत्पत्ति, लय, आना, जाना, विद्या और अविद्या इन छःको जाननेवालों में वासुदेव मैं हूँ, भगवद्भक्तों में हे उद्धवजी तुम मेरा स्वरूप हो, वानरों में हनुमान्, विद्याधरों में सुदर्शन और रत्नों में पद्मराग मै हूँ, सुन्दरपदार्थों में कमल की कली, दर्भ की जातियों में कुशा और होम के पदार्थों में गौ का घी मैं हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ उद्योगी पुरुषों में धनादिसम्पत्ति और जुआ खेलनेवालों में कपटद्यूत मैं हूँ, सहनशीलों में सहनशीलता, और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वतां ॥ सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिर्मूर्तिरहं परा ॥ ३२ ॥ विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ ३७ ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटि-

धैर्यवानों में धीरज मेरी विभूति है ॥ ३१ ॥ बलवानों में देहशक्ति और इन्द्रियशक्ति मैं हूँ, तैसे ही भगवद्भक्तों में जो भक्ति के करेहुए कर्म सो मैं हूँ, भक्तों की पूजनीय वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह नृसिंह और ब्रह्मा इन नौ मूर्त्तियों में पहिली मूर्त्ति जो वासुदेव सो मेरी श्रेष्ठ विभूति है ॥ ३२ ॥ गन्धर्वों में विश्वावसु और अप्सराओं में पूर्वाचित्ति यह मेरी विभूति है, पर्वतों में स्थिरता और भूमि का अविकारी गन्ध गुण और जलों का मधुररस मैं हूँ, तेजस्वी पदार्थों में अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, और तारों की प्रभा तथा आकाश का नादरूप सूक्ष्म शब्द मैं हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणों के भक्तों में राजाबलि और वीरों में अर्जुन मैं हूँ, सकल प्राणीमात्र के उत्पत्ति स्थिति-संहार का कारण मैं हूँ ॥ ३५ ॥ गति, भाषण, मल त्यागना, ग्रहण करना, आनन्द, स्पर्श, स्वाद लेना, सुनना, सूँघना और देखना आदि दश इन्द्रियों के धर्मों में देखना मेरी विभूति है ॥ ३६ ॥ गन्ध, स्पर्श, शब्द, रस, रूप अहङ्कार और महत्तत्व इन सात प्रकृतियों की विकृति पञ्चमहाभूत, ग्यारह इन्द्रियें, अर्थात् सोलह प्रकार का विकार, जीव और प्रकृति यह पचीस तत्व, सत्व, रज, तम यह तीन गुण और परब्रह्म यह सब मैं ही हूँ, इन तत्वों की गिनती, इन का लक्षणपूर्वक ज्ञान तिस का फल और तत्त्वनिश्चय यह सब मैं ही हूँ ॥ ३७ ॥ जो जीव-ईश्वररूप दोप्रकार का भेद है, तैसे ही जो गुणगुणी रूप और क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपभेद है सो सब ही मेरे विना कुछ नहीं है अर्थात् सर्वरूप मैं ही हूँ ॥ ३८ ॥ मैं बहुतसे समय में पृथिवी आदिकों के परमाणुओं की गिनती करसक्ता हूँ परन्तु करोडों ब्रह्माण्डों को रचनेवाले मेरी विभूतियों की गिनती नहीं होसक्ती, जब मेरे रचेहुए ब्रह्माण्डों की ही गिनती नहीं होसक्ती तो उन में की विभूतियों की गिनती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टिशः ॥३९॥ तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेऽशकः ॥ ४० ॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाऽभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥ यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥

कैसे की जासक्ती है ? ॥ ३९ ॥ जहाँ २ प्रभाव, सम्पत्ति, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, सुन्दरता, भाग्य, बल, सहनशक्ति और विज्ञान यह गुण हैं उस २ को मेरा अंश जानो ॥४०॥ हे उद्धवजी ! यह सब विभूतियें मैंने तुम से संक्षेप से कही हैं,यह मेरे विषैं चित्त लगाने के निमित्त ही कल्पना करके कही हैं इसकारण इन के ऊपर ही अधिकता से चित्त को न लगावे, क्योंकि—यह सब मन के विकार हैं और जैसे आकाशपुष्प, खरगोश के सींग, आदि पदार्थ केवल कहनेमात्र में आते हैं तैसे ही इन विभूतियों को समझे, परमसत्य तो केवल ईश्वर ही है ॥ ४१ ॥ इसकारण तुम वाणी, मन, प्राण और इन्द्रियों को वश में करलो तथा अपनी बुद्धि का निग्रह, सत्त्वगुणयुक्त तिस बुद्धि से ही करो तो फिर संसारमार्ग में नहीं पड़ोगे ॥ ४२ ॥ जो संन्यासी अपनी बुद्धि से,उत्तम प्रकार वाणी और मन का निग्रह नहीं करता है, उस के व्रत, तप और ज्ञान, जैसे मट्टी के कच्चे घड़े मे का जल धीरे २ निकलजाता है तैसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥ इस से मेरे विषैं तत्पर रहनेवाला योगी, मेरी भक्तियुक्त अपनी बुद्धि से अपने मन, वाणी और प्राण का निग्रह करे तो कृतकृत्य होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में षोडश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे श्रीकृष्णजी ! वर्णों के और आश्रमों के धर्मों का आचरण करनेवालों को तथा वर्णाश्रम के धर्मों से रहित सकल द्विपाद (दो पैरवाले) मनुष्यों को, तुम्हारी भक्ति प्राप्त होने का साधन जो धर्म तुमने पहिले, युग के प्रारम्भ में कहा है सो जैसा कर्म करने पर मनुष्यों की तुम में भक्ति होय तैसा वह धर्म और उस के आचरण की रीति मुझ से आप को कहना योग्य है ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! हे शत्रुदमन ! हे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्तेनँ हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ सँ इदानीं सुमहता कालेना-मित्रकर्शन ॥ नँ प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागानुशासितः ॥४॥ वक्ता कर्त्ता वि-ता नान्यो धर्मस्याच्युत तेँ भुवि ॥ सभायामपि वैरिंच्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽत्रिंत्रा प्रवक्त्रा चँ भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देवे विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः सँ भगवान् हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचार-वतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥ आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥ वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥

प्रभो ! हे माधव ! निःसन्देह परमसुखरूप जो धर्म, तुम ने पहिले हंसरूप से ब्रह्माजी को कहा था, वह पहिले कहाहुआ भी धर्म, बहुतसा समय बीतजाने के कारण लुप्तसा होगया है सो अब ही प्रायः उस का प्रचार नहीं है तो आगे को क्या होगा ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे अच्युत ! क्योंकि—तुम से दूसरा पुरुष, इस भूमिपर अथवा जहाँ देवतादिक भी मूर्त्तिमान् हैं उस ब्रह्माजी की सभा में भी, इस भक्ति के साधनरूप धर्म को कहनेवाला, करनेवाला और रक्षा करनेवाला कोई नहीं है ॥५॥ तिस से हे मधुसूदनदेव ! धर्म का आचरण करनेवाले, रक्षा करनेवाले और कहनेवाले तुम, इस भूतल का त्याग करके चलेजाओगे तो नष्टहुए उस धर्म को कौन कहेगा ? ॥ ६ ॥ इस से हे सब धर्मों के जाननेवाले प्रभु श्रीकृष्णजी ! तुम्हारी भक्ति उत्पन्न करनेवाला वह धर्म, हम मनुष्यों में जिस २ वर्ण, धर्म के अधिकारी को जैसा २ कहा है सो तुम मुझ से वर्णन करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! ऐसे, भगवत्सेवकों में मुख्य उद्धवजी के प्रश्न करने पर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, प्रसन्न होकर मनुष्यों के कल्याण के निमित्त पुरातनधर्म कहनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी तुम्हारा यह प्रश्न धर्मयुक्त और वर्णाश्रम धर्म का आचरण करने-वाले मनुष्यों में भक्ति उत्पन्न करनेवाला है इस से वह धर्म ही तुम से कहता हूँ, तुम मुझ से सुनो ॥ ९ ॥ कल्प के आरम्भ में सत्ययुग में मनुष्यों का हंस नामवाला एक ही वर्ण था, क्योंकि—उससमय सब प्रजा, जन्म लेकर स्वभाव से ही कृतकृत्य थी, इसकारण उस को कृतयुग कहते हैं ॥१०॥ तिस कृतयुग में वेद ॐकाररूप ही था, और धर्म भी वृषभ का रूप धारण करनेवाला चार चरणवाला मैं ही था; दूसरे यज्ञादि धर्म कुछ नहीं थे, इसका-रण उस युग में सब तपस्वी और निष्पाप होतेहुए मन की एकाग्रता से शुद्ध हंसरूप मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमैः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंभो ब्रह्मसेवनं ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ अशौमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽतेयसायिनां ॥ २० ॥ अहिंसा

ध्यानरूप उपासना करते थे ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे महाभाग उद्धवजी ! त्रेतायुग के आरम्भ में विराट्रूपी मेरे हृदय से, श्वासवायुरूप से ऋक्, यजु और साम यह वेदरूपी विद्या प्रकट हुई, उस से होता, अध्वर्यु और उद्गाता इन तीन ऋत्विजों के कर्मों से युक्त यज्ञ उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ विराट्पुरुषरूप मेरे—मुख, बाहु, जंघा और चरणों से क्रम करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारवर्ण उत्पन्नहुए, वह अपने २ धर्म से परस्पर निराले समझेजाते हैं ॥ १३ ॥ विराट्रूपी मेरे कमर के अगले भाग से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थल के नीचे के भाग से वानप्रस्थ और मस्तक से संन्यास यह चार आश्रम उत्पन्नहुए ॥ १४ ॥ मनुष्यों के वर्णों के आश्रमों के स्वभाव, जन्मभूमियों के अनुसार हुए हैं अर्थात् मेरे मुख आदि उत्तम अङ्गों से उत्पन्नहुए ब्राह्मणादिकों के उत्तम स्वभाव और निकृष्ट अङ्गों से उत्पन्न हुओं के निकृष्ट स्वभाव हुए हैं ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, शान्ति, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्य यह ब्राह्मणों के स्वभावसिद्ध धर्म हैं ॥ १६ ॥ प्रताप, बल, धीरता, शूरता, दीनों के अपराध सहना, उदारता, उद्योग, स्थिरता, ब्राह्मणों की भक्ति और ऐश्वर्य यह क्षत्रियों के स्वभावसिद्ध धर्म हैं ॥ १७ ॥ गुरु शास्त्र आदि पर श्रद्धा, दान में निष्ठा, निस्कपटपना, ब्राह्मण की सेवा, और धन की वृद्धि होने पर भी असन्तोष यह वैश्य के लक्षण हैं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, गौ और देवताओं की निस्कपटभाव से सेवा करना, और उस सेवा में जो मिले उस से ही सन्तुष्ट रहना, यह शूद्र के स्वभावसिद्ध धर्म हैं ॥ १९ ॥ अपवित्रता, मिथ्या बोलना, चोरी करना, नास्तिकपना, निष्कारण कलह करना, काम, क्रोध और अतिलोभ यह चाण्डाल आदिकों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥२१॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन् गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाहूतः ॥ २२ ॥ मेखलाऽजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः न छिंद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुरान् शुचिः ॥ समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग् जपन् ॥ २६ ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥ सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुंजीत संयतः ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाण आ-

स्वभाव है ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, काम-क्रोध-लोभ का त्याग और प्राणीमात्र का प्रिय तथा हित करने का उद्योग, यह सब लोकों का साधारण धर्म है ॥ २१ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में के पुरुष, गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रम से यज्ञोपवीत नामक दूसरा जन्म होने पर, जितेन्द्रियपने से, गुरु के घर रहें और गुरु के बुलाकर कहने पर वेद को पढें और उसके अर्थ का विचार भी करें ॥ २२ ॥ वह ब्रह्मचारी मेखला, काली मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्ष की माला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु और कुशधारण करके, तेलमलना आदि छोडकर जटाधारी रहे, दाँतघिसना और वस्त्र धोकर विशेष स्वेत रखना, बैठने का आसन आदि कौतुक से रँगवाना, यह न करे ॥ २३ ॥ स्नान, भोजन, होम, जप और मलमूत्र का त्याग करते समय मौनव्रत धारण करे, नख न काटे बगल और उपस्थ के रोमों को न काटे ॥२४॥ ब्रह्मचर्यव्रतधारी, जानकर वीर्यपात कभी न करे, कभी अपनेआप वीर्यस्खलित होजाय तो जल में स्नान करके, प्राणायाम करके गायत्रीमंत्र का जप करे ॥२५॥ सावधान और पवित्र रहकर दोनों संध्या के समय और जप करते में मौन धारण करके अग्नि की होमादि से, सूर्य की अर्घ्यदान से, गुरु की नमस्कार आदि से, गौ की तृण आदि से, ब्राह्मण की आदरसत्कार से, शास्त्रोपदेश करनेवाले गुरु की उपकार को स्मरण करने से और देवताओं की गन्धपुष्पादि सामग्रियों से उपासना करे ॥ २६ ॥ अपने गुरु को मेरा स्वरूप अर्थात् साक्षात् ईश्वर हैं ऐसा जाने, कभी उनका तिरस्कार न करे, और यह मनुष्य हैं ऐसा जानकर उन के गुणों में कभी दोष न लगावे, क्योंकि—गुरु सर्वदेवमय है ॥२७॥ सायङ्काल और प्रातःकाल के समय भिक्षा मांगकर लायाहुआ अन्न उन गुरु को अर्पण करे. और भी जो कुछ (वस्त्रपात्र आदि) मिले वह भी उन को ही अर्पण करे, उन गुरु के भोजन के निमित्त बतायेहुए ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चार्यं सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥२९॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्भिन्नव्रतमखंडितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्षन् ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ॥ ३४ ॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोयं नियमः कुलनंदन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥३५॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥ अथानंतरमावेक्षन्यथा जिज्ञासितागमः ॥

अन्न आदि का सन्तोष के साथ सेवन करे ॥ २८ ॥ गुरु की शुश्रूषा करनेवाला वह ब्रह्मचारी निरन्तर, गुरु कहीं जायँ, सोवें, बैठें, और खड़े रहें तो उस समय बहुत समीप नम्रता से रहकर उनकी शुश्रूषा करे ॥ २९ ॥ ऐसा वर्त्ताव रखकर भोगरहित हुआ ब्रह्मचारी, अपने पढ़ने की समाप्ति पर्यन्त, अविच्छिन्न ब्रह्मचर्य धारण करके गुरु के घर वासकरे ॥ ३० ॥ यदि वह ब्रह्मचारी, जहाँ मूर्त्तिमान वेद हैं तिस ब्रह्मलोक में जानेकी इच्छा करे तो, मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके अपना शरीर, अधिक अध्ययन के निमित्त वा करेहुए अध्ययन के पलटे में गुरु को अर्पण करदेय ॥ ३१ ॥ और वेदाभ्यास से प्राप्तहुए तेजको धारण करनेवाला और निष्पाप हुआ वह सर्वत्र समबुद्धि रखकर अग्नि, गुरु, जीवात्मा और सब प्राणियों में मुझ परमात्मा की उपासना करे ॥ ३२ ॥ गृहस्थाश्रम को ग्रहण न करनेवाला ब्रह्मचारी, कामबुद्धि से स्त्रियों की ओर को देखना उन का स्पर्श, उन से भाषण, और उन से हास्य आदि करने का त्याग करे और मैथुन करनेवाले पशु—पक्षियों की ओर को भी न देखे ॥३३॥ वह, शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थसेवा, जप करता रहै और स्पर्श न करनेयोग्य का स्पर्श, अभक्ष्य का भक्षण तथा वार्त्ता न करनेयोग्य से वार्त्ता न करे ॥ ३४ ॥ हे कुल को आनन्द देने वाले उद्धवजी ! यह कहेहुए शौचादि नियम, मन—वाणी और देह का निग्रह तथा सब प्राणीमात्र में मेरी भावना यह धर्म सब आश्रमों को विहित हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करनेवाला और अग्नि की समान तेज का पुँज जो ब्राह्मण, वह यदि निष्काम होयतो तीव्रतप के प्रभाव से उस का अन्तःकरण (लिङ्गशरीर) भस्म होकर स्वच्छ होतेही वह मेरा भक्त होजाता है ॥ ३६ ॥ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

GC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद्गुरुणाभिनोदितः ॥ ३७ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां संवर्णामनुक्रमात् ३९॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते॥कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ४२॥शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः

वाला और गुरु से ठीक २ वेद के अर्थ को जाननेवाला, गुरुको दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से उबटन तैल मलना आदि करके समावर्त्तन नामक स्नान करे ॥ ३७ ॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण, सकाम होयतो गृहस्थाश्रम को स्वीकार करे, किन्तु उस को केवल अन्तःकरण शुद्ध होने की इच्छा होयतो वह वनमें प्रवेश करे, शुद्धचित्त होयतो संन्यास धारण करे अथवा एक के अनन्तर दूसरा उस के अनन्तर तीसरा इसप्रकार आश्रम को स्वीकार करै, मेरी पूर्ण भक्ति प्राप्त नहुई होयतो विना किसी आश्रम के नरहे और वानप्रस्थ से गृहस्थ ऐसे उलटे आश्रम को स्वीकार न करे, मेरा पूर्ण भक्त होयतो आश्रम का नियम नहीं है यह आगे आवे हीगा ॥ ३८ ॥ गृहस्थाश्रम की इच्छा करनेवाला अपने योग्य अपने वर्ण की, कुल से और लक्षणों से उत्तम और अपने से अवस्था में छोटी स्त्री करे, तिस में ब्राह्मण को ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र इनचार वर्णों की स्त्रियें करने काक्रम से अधिकार है, क्षत्रिय को क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की करने का अधिकार है, वैश्य को वैश्य की और शूद्र की करने का अधिकार है और शूद्र को केवल अपने ही वर्ण की करने का अधिकार है ॥ ३९ ॥ यज्ञ कराना, वेद पढ़ना और दान करना यह तीन कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों ही वर्णों को कहे हैं और प्रतिग्रह (दानलेना) पढाना, दूसरों को यज्ञ कराना यह तीन कर्म ब्राह्मण को अधिक कहे हैं ॥ ४० ॥ तिस में दान लेना अपने तप का, तेज का और यश का नाश करने वाला है,ऐसा ब्राह्मण को प्रतीत होयतो वह यजन कराना, और विद्या सिखाना इन दोनोंसे ही अपनी आजीविका चलावे और उसमें भी यदि दीनता आदि दोष देखनेलगे तो वह शिलवृत्ति से (स्वामीके खेत काटकर लेजाने पर उसखेत में पड़ेहुए कणों को वीनकर उस धान्य से) अपना निर्वाह करे ॥ ४१ ॥ क्योंकि—यह ब्राह्मण का शरीर, संसार में तुच्छ विषय भोगने के लिये नहीं है किन्तु इसलोक में जीवित रहनेपर्यन्त कष्टसहकर, तप करने के निमित्त और मरण के अनन्तर परलोक में अनन्तसुख भोगने के निमित्त है ॥ ४२ ॥ पहिले कही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मामुपैति शांतिम् ॥ ४३ ॥ समुद्धरंति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणं ॥ तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥ एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदन्तरेत् ॥ खड्गेन वापदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगयया पदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियां ॥ उच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबलयन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥

हुई शिलवृत्ति से वा बाजार आदि में पड़ेहुए कणों को बीनकर उस से करीहुई उंच्छवृत्ति से सन्तुष्ट रहकर और अतिथि की पूजा आदि अतिस्वच्छ धर्म का प्रीति सेवन करे और घर में रहतेहुए भी आसक्तिरहित होकर जो मुझ में चित्त को अर्पण करता है वह ब्राह्मण वा दूसरा क्षत्रियादि कोई भी हो मोक्ष पाता है ॥ ४३ ॥ जो धनवान् पुरुष, धन के विना दुःख पानेवाले और मेरे परमभक्त ब्राह्मण का, दरिद्रता से उद्धार करते हैं उन को मैं शीघ्र ही सब कष्टों से, जैसे नौका समुद्र से पार करदेती है तैसे, पार करदेता हूँ ॥ ४४ ॥ जैसे पिता छोटे बच्चों को सङ्कट में से छुड़ाता है तैसे धैर्यवान् राजा सब प्रजाओं को सङ्कट में से छुटावे और जैसे श्रेष्ठ हाथी दूसरे हाथियों को दलदल में से बाहर निकालकर आप भी अपने ही बल से बाहर निकल आता है तैसे ही वह क्षत्रिय अपना भी उद्धार आप ही करलेय ॥ ४५ ॥ ऐसे वर्त्तनेवाला राजा, यहाँ ही सब पापों का नाश करके सूर्य की समान दमकतेहुए विमान में बैठकर स्वर्गलोक को जाता है और तहाँ इन्द्र के साथ आनन्द पाता है ॥ ४६ ॥ शिलोंछवृत्ति से निर्वाह न होने के कारण क्लेश पानेवाला ब्राह्मण, वैश्य की वृत्ति से अपनी आपत्ति को तरजाय, ऐसे भी आपत्ति न जाय तो तरवार धारण करके क्षत्रिय की वृत्ति से अपनी आपत्ति को दूर करे परन्तु नीचवृत्ति से कभी दूर न करे ॥ ४७ ॥ राजा आपत्तिकाल में खेती आदि वैश्य की वृत्ति से तिस में भी अधिक आपत्ति होय तो शिकार से अथवा ब्राह्मण की पढ़ाने की वृत्ति से अपनी आपत्ति को दूर करे परन्तु नीच जाति की सेवा से दूर न करे ॥ ४८ ॥ वैश्य आपत्तिकाल में शूद्र की, सेवारूपवृत्ति को स्वीकार करे; शूद्र हीनजाति की डलियें टोकरे आदि बनाने की वृत्ति करे, सङ्कट से छूटजाय तो निन्दितकर्म से निर्वाह करने की इच्छा न करे ॥ ४९ ॥ गृहस्थ, वेदपाठरूप ब्रह्मयज्ञ से ऋषियों का, स्वधाकार से पितरों का और स्वाहाकार से देवताओं के निमित्त बलिदान करके प्राणियों का और अन्नजलादि के दान से मनुष्यों का इसप्रकार पञ्चयज्ञ, उन ऋषि आदि सबों को ईश्वररूप जानकर करे ॥ ५० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनापीडयन् भृत्यान्न्यायेनैवे-हरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदारासबंधूनां संगमः पांथसंगमः ॥ अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥५४॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥५६॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन् म्रियतोऽन्धे विशते तमः ॥५८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां

उद्योग के विना मिलेहुए अथवा अपनी वृत्ति से केवल न्यायमार्ग से मिलेहुए शुद्ध द्रव्य से अपने कुटुम्बरूप पोष्यवर्ग की आजीविका चलावै जो कुछ शेष रहै तिस से दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य आदि यज्ञ करे ॥ ५१ ॥ कुटुम्बवत्सल भी गृहस्थी, स्त्रीपुत्रादिकों में आसक्त न रहे और ईश्वरनिष्ठा में असावधान न रहे किन्तु वह विचारवान् पुरुष इस लोक में के दीखनेवाले सुख की समान ही न दीखनेवाला स्वर्गादि सुख भी नाशवान् है ऐसा देखे ॥ ५२ ॥ पुत्र, स्त्री, आप्त और बान्धवों का जो समागम है सो केवल बटोहियों के समागम की समान क्षणिक है ; क्योंकि-प्रत्येक देह के सम्बन्ध से मिलेहुए स्वप्न जैसे निद्रा दूर होने पर नष्ट होजाते हैं तैसे ही यह देहगया कि सब नष्ट होजाते हैं ॥५३॥ इसप्रकार विचार करके देह में अहङ्काररहित और स्त्रीपुत्रादिकों में ममतारहित हुआ तथा घर में अतिथि की समान उदासीनता से रहनेवाला पुरुष, घर के कर्मों से बद्ध नहीं होता है किन्तु मुक्त रहता है ॥ ५४ ॥ वह भक्तिमान् पुरुष, गृहस्थको कहेहुए कर्मों से मेरा आराधन करके तिस गृहस्थाश्रम में ही रहे अथवा वन में जाय अथवा पुत्रवान् होय तो संन्यास लेलेय ॥ ५५ ॥ जो पुरुष, घर में के विषयों में आसक्तबुद्धि, पुत्र-धन आदि की अभिलाषा से व्याकुल, स्त्री का वशीभूत, कृपणबुद्धि और अज्ञानी होता है वह 'मैं और मेरा' ऐसी बुद्धि से बन्धन पाता है ॥ ५६ ॥ अहो ! मेरे माता-पिता बूढे हैं, स्त्री के बालक छोटे हैं, विचारे बालक मेरे बिना अनाथ हैं, दीन और दुःखी हुए यह सब मेरे विना कैसे जीवित रहेंगे ! ॥ ५७ ॥ ऐसे घरकी वासनाओं से चारोंओर जिस का चित्त गुथा है और विषयों से तृप्त नहीं हुआ यह मूढबुद्धि गृहस्थ, निरन्तर उन का ध्यान करने से मरण को प्राप्त होने के अनन्तर तामसयोनियों में जन्म पाता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यस्य सँहैव वा ॥ वने एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥ कन्दमूल-फलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्धृतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिले-शयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन् वर्षास्वासारषाड् जले ॥ आकण्ठमग्नः शिशिरे एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नादद्यादितरान्यदा ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरो-डाशैर्निर्वपेत्कालनोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

ने कहा कि—हे उद्धवजी ! वानप्रस्थ आश्रम में रहने की इच्छा करनेवाला गृहस्थी, अपनी स्त्री की रक्षा का काम पुत्र को सौंपकर अथवा उसको अपने साथ लेकर आयु का तीसरा भाग (पिछत्तर वर्ष) समाप्त होने पर्यन्त वन में शान्ति के साथ रहे, फिर इन्द्रियें क्षीण होने पर उस को थोडासा वैराग्य होय तो संन्यास लेने का अधिकार है ॥ १ ॥ वह वन में रहताहुआ, वन में के पवित्र कन्दमूलफलों से अपना निर्वाह करे, तिन के, पत्ते और काली मृगछाला धारण करे ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढीमूछ और शरीर के मल को धारण करे, अर्थात् उन के दूर करने का यत्न न करे, दाँत घिसकर स्वच्छ न करे, शीतलजल में त्रिकाल स्नान करे, भूमिपर सोवै ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि तपै, वर्षाऋतु में शरीर पर ही वर्षा को सहकर अभ्रावकाश व्रत को धारण करे, शिशिरऋतु में कण्ठपर्यन्त जल में डूबा रहकर उदकवासना नामक व्रत को धारण करे, इसप्रकार वर्त्ताव रखकर वह वानप्रस्थ आश्रमवाला तप करे ॥ ४ ॥ वह कन्दमूलादि पदार्थ और नीवार आदि धान्यों को सिजाकर भक्षण करे, फल आदि काल के द्वारा पकजाएँ तो खाय, कुछ पदार्थों को उखली में कूटकर, पत्थर पर पीसकर वा दाँतो से चबाकर खाय ॥ ५ ॥ अपने आजीवन के साधन फल आदि सब अपने आप वन में जाकर लावे, दूसरे से न मँगवाये, और अपने लाएहुए को भी कालान्तर में (सायंकाल का प्रातःकाल को वा प्रातःकाल का सायंकाल को) कार्य में न लावे, परन्तु देश, काल और अपने बल की योग्यता देखकर वर्त्ताव करे, अर्थात् अपनी अशक्ति होने के कारण दूसरे के लायेहुए के लेने का अथवा दूसरे समय मिलेगा या नहीं इस का विचार करके संग्रह करने का भी विचार करे ॥ ६ ॥ वह वानप्रस्थ, वन में उत्पन्नहुए नीवार आदि धान्यों के ही चरु पुरोडाश आदि करके, उन से तिस २ समय प्राप्त होनेवाली आग्रायणेष्टि आदि करे परन्तु वेद में कहेहुए पशुयाग से (वानप्रस्थाश्रमी) मेरा यजन न करे ॥ ७ ॥ अग्नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः ॥ मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति मां ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्व्यालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥ यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥ १४ ॥ विभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीना-

होत्र, दर्श, पूर्णमास, और चातुर्मास्य भी वेद को जाननेवाले ब्राह्मणों ने, गृहस्थाश्रमी की अनुसार ही वानप्रस्थ को भी कहे हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार मरणपर्यन्त करेहुए तप से रगोंसे व्याप्त (सूखकर मांसरहित हुआ) वह वानप्रस्थ ऋषि, तपोरूप मेरा आराधन करके महर्लोक तपोलोक में जाने के क्रम से मेरे स्वरूप को पाताहै, तिस में भी यदि वह शुद्ध अन्तःकरण और भक्ति से युक्त होय तो तहाँ ही जीवन्मुक्त होजाता है और यदि उस के प्रतिबन्धक बहुत से कर्म हों तो पहिले कहेहुए क्रम से मुक्त होता है ॥ ९ ॥ और जो वानप्रस्थ कष्टभोगकर करेहुए और परमकल्याणरूप मोक्ष देनेवाले तप को, संसार में के अति थोडे विषय सुख के निमित्त खर्च करता है उससे दूसरा कौन मूर्ख है ; ॥ १० ॥ मरणकाल पर्यन्त वानप्रस्थ धर्म का आचरण करनेवाले को मोक्ष प्राप्त होता है, आयु का तीसरा भाग समाप्त होनेपर थोडा वैराग्य होय तो उस को संन्यास का अधिकार है; यदि आयु का तीसरा भाग समाप्त होने से पहिले जरा वस्था के कारण देह में कपकपी उत्पन्न होकर वानप्रस्थधर्म को पालन करने में असमर्थ होय और वैराग्य न हुआ होय तो आत्मा में अग्नि का समारोप करके (अग्निहोत्र को त्यागकर) मेरे विषैं मन की धारणाकर अग्निमें प्रवेश करे ॥ ११ ॥ और जब, करेहुए कर्मों की फल प्राप्तिरूप और परिणाम में नरकतुल्य सब लोकों में पूर्ण वैराग्य होजाय तो वह, अग्निहोत्र का त्यागकरके वानप्रस्थ आश्रम के समय में ही संन्यास धारण करलेय ॥ १२ ॥ आठ श्राद्ध कहे हैं उन को करके प्राजापत्यनामक इष्टि से मेरा यजन करे, तदनन्तर अपने आत्मा में अग्नि का समारोप करके निरीहपने से संन्यास को ग्रहण करे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण संन्यास लेनेलगता है तो, उससमय यह हमारे स्थान का उल्लंघन करके परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होयगा इस अभिप्रायसे सब देवता, स्त्री पुत्रादिकों के स्वरूप से उस को विघ्न करते हैं अर्थात् उस को अनेकों कारण दिखाकर संन्यास धारण मत करै, ऐसा कहते हैं उससमय वह किसी की न सुनकर संन्यास धारण करे ॥ १४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ॥ १६ ॥ मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्येते यस्य सन्त्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुंजीतांशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेंद्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मयो मुनिः॥२१॥अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बंध

वह पहिले तो वस्त्र धारण ही न करे, करना ही होय तो, जितने वस्त्रसे लिङ्ग ढकजाय उतना कौपीनमात्र धारण करे, प्रैपोचार के पहिले जो सब पदार्थ त्यागे हैं उन में से दण्ड और पात्र के सिवाय दूसरा कोई भी पदार्थ, परम आपत्तिकाल के विना धारण न करे ॥ १५ ॥ दृष्टि से देखकर शुद्ध निश्चय करेहुए स्थान में चरण रखकर चले, वस्त्र से छानाहुआ (जीवरहित) जल पिये, सत्य से पवित्र वाणी का उच्चारण करे, और मन से विचारकर जो शुद्ध होय उस का उच्चारण करे ॥ १६ ॥ हे उद्धवजी! मौन रखना वाणी का दण्ड है, सकामकर्म न करना देह का दण्ड है, और प्राणायाम करना मन का दण्ड है, यह तीन दण्ड जिस यति के न हों वह बाहर से धारण करेहुए बाँस के दण्डों से संन्यासी नहीं होता है ॥ १७ ॥ संन्यासी, 'प्रतिग्रह, यज्ञ कराना, अध्यापन और शिलोंछ इन चार वृत्तियों से निर्वाह चलाने के कारण चारप्रकार के हुए' ब्राह्मणों में ही जाति से छोडेहुए और पतितों को छोडकर, अमुक घर ही जाना चाहिये ऐसा सङ्कल्प न करके सात घरों में भिक्षा के निमित्त जाय और जो भिक्षा का अन्न मिले उतने से ही सन्तोष माने ॥ १८ ॥ और वह भिक्षा लेकर ग्राम के बाहर जलाशय के समीप जाकर तहाँ जल का आचमन करके लाएहुए उस अन्न की प्रोक्षण आदि से शुद्धि करे, तदनन्तर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, और प्राणियों को भाग देकर तथा इसी अवसर में कोई मांगे तो उस को भी थोडासा देकर शेष सब भोजन करे ॥ १९ ॥ वह मननशील संन्यासी, निःसङ्गपना, जितेन्द्रियपना, अपने में क्रीडा, अपने में सन्तोष, धीरता और समदृष्टि रखकर इस भूमि पर इकला ही विचरै ॥२०॥ और निर्जन तथा निर्भय स्थान में बैठकर मेरी भावना से चित्त को शुद्ध करै और मुझ परमात्मा से अभेदबुद्धि करके एकरूपहुए अपने जीवात्मा का चिन्तवन करे॥२१॥और तत्त्वविचार से, अपना बन्धन कैसे हुआ है और मोक्ष कैसे होयगा इस का विचार करे, इन्द्रियों की विषयासक्ति ही बन्धन और इन्द्रियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इंद्रियविक्षेपो मोक्षः एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥ पुरग्रामव्रजान् साधून भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिद्ध्यत्यास्वसंमोहः शुद्धसत्त्वशिलांधसा ॥ २५ ॥ नैतद्रूपमुतैतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतं ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्तत्परित्यजेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत् क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादे

को विषयों से हटाये रखना ही मोक्ष है ॥ २२ ॥ इसकारण मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके तुच्छ विषयों से विरक्त हुआ वह मुनि, मेरी भक्ति से ही अन्तःकरण में बडाभारी सुख पाकर विचरता रहे ॥२३॥ वह केवल भिक्षा के निमित्तही नगर,ग्राम, भेंडइये तथा यात्रियों के समूह में प्रवेश करे, बाकी सब समय में पवित्रदेश, नदी, पर्वत, वन और ऋषियों के आश्रमों से युक्त पृथ्वी पर इकला ही विचरता फिरै ॥ २४ ॥ वानप्रस्थों के आश्रमस्थानों में बारम्बार भिक्षा मांगे. क्योंकि–शिलवृत्ति से प्राप्तहुए उन के अन्न से शुद्धचित्त होने पर मोहरहित होकर शीघ्र ही मुक्त होता है ॥२५॥ यह दीखनेवाले मिष्टान्न आदि सत्य हैं ऐसा न देखै, क्योंकि–सब का नाश होता है इसकारण इस लोक में और परलोक में कहीं भी चित्त को आसक्त न करके इस लोक और परलोक की प्राप्ति के निमित्त कोई कर्म न करै॥ २६ ॥ममता का स्थान जो जगत् और मन;वाणी और प्राणसहित अहन्ता का स्थान जो यह शरीर, तो ही इन दोनों से होनेवाला जो सुख, यह सब आत्मवस्तु में माया से कल्पित हैं, ऐसा स्वप्न के दृष्टान्त से जानकर और उन का त्याग करके यति आत्मनिष्ठ होय और फिर उस का चिन्तवन ही न करै ॥२७॥ इस लोक में के सुखों से विरक्त हुआ मुमुक्षु, ज्ञाननिष्ठ वा मोक्ष की चाहना न रखनेवाला जो मेरा भक्त हो वह त्रिदण्ड आदि सहित यतिधर्म की आसक्ति छोड़कर जिससे विधि निषेध का किंकर न हो ऐसे यथायोग्य धर्म का आचरण करे ॥ २८ ॥ वह विवेकी पुरुष भी बालक की समान (मान अपमान रहित) क्रीडाकरे, निपुण होकर भी जड की समान (फल पानेका हेतु न रखकर) विचरे, पण्डित होकर भी उन्मत्त की समान (लोकोंकी प्रसन्नता न करताहुआ सा) भाषण करै और वेद के अर्थ को जाननेवाला होकर भी (लोकों का सङ्ग न होय इसकारण) वृषभ की समान नियमरहित आचरण करै ॥ २९ ॥ वेद के विषय का वाद (कर्मकाण्ड पर व्याख्यान आदि) करने में तत्पर न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कश्चित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥ नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेदुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमान् ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥ दुः-

होय, पाखण्डवाद वा तर्कवाद न करै और निष्प्रयोजन वाद में किसी का पक्ष भी न लेय ॥ ३० ॥ वह धैर्यवान् होकर आप, लोगों से भय न माने और दूसरों को भय न देय, लोकों के दुर्वचनों के आपणों को सहन करै, आप किसी का अपमान न करै और इसदेह के निमित्त पशु की समान किसी से वैरभाव भी न करै ॥ ३१ ॥ जैसे एकही चन्द्रमा जल के अनेक पात्रों में प्रतिबिम्बरूप से रहता है तैसेही देहादि से निराला एकही आत्मा देवमनुष्यादि शरीरों में और अपने शरीर में भी रहरहा हैं तैसेही सब शरीर भी पञ्चमहाभूतरूप होने के कारण एकरूप ही हैं ऐसा जानकर वह किसी के साथ वैर न करै ॥ ३२ ॥ एकाधस्थान पर भोजन के समय २ पर भोजन न मिलेतो खिन्न नहोय किन्तु धीरज रक्खे; और भोजन मिलजाय तो हर्ष न माने, क्योंकि-लाभ और अलाभ दोनों प्रारब्ध के अधीन हैं ॥ ३३ ॥ आहारमात्र के निमित्त ही उद्योग करै, क्योंकि—उसको प्राण धारण करना आवश्यक है, उस प्राण धारण से ही तत्त्व विचार करता है और उस तत्व को जानकर मुक्त होता है ॥ ३४ ॥ भला वा बुरा स्वयंसिद्ध जो भोजन मिले उस को खालेय, तथा वस्त्र और शय्या भी स्वाभाविक जो मिलजाय परमहंस उस कोही ग्रहण करै ॥ ३५ ॥ जैसे मैं ईश्वर लीला से लोकशिक्षा के निमित्त स्नान सन्ध्या आदि करता हूँ तैसे ही वह ज्ञानी परमहंस भी कहीं आसक्त न होकर शौच,, आचमन, स्नान तथा और भी नियमों का आचरण करे परन्तु वेद की आज्ञा पालन करनी ही चाहिये इसहेतु से न करै, क्योंकि-वह यदि सब नियमों को पालन करने की वेद की आज्ञा का पालन करेगा तो उस की ज्ञाननिष्ठा में हानि पहुँचेगी ॥३६॥ उस को भेद प्रतीति होती ही नहीं है, जो कुछ भेदबुद्धि पहिले थी वहभी ज्ञानदृष्टि से नष्ट होगई है, यदि उस को देहपात होने पर्यन्त एकाधवार भेदबुद्धि भासेतो उस को मिथ्यारूप जानने के कारण देहपात होने के अनन्तर वह मुझ से एकता को पाता है अर्थात् विदेहमुक्त होता है ॥३७॥ जिस पु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोदकेषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितसद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप इज्या वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दतेऽचिरात् ॥ ४४ ॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति

रुप को, परिणाम में दुःख देनेवाले विषयों में वैराग्य होगया है परन्तु जिसने मेरी प्राप्ति का साधन नहीं जाना है वह धीरज धरकर किसी ब्रह्मज्ञानी गुरु की शरणजाय ॥ ३८ ॥ और अपने को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेपर्यन्त गुरुकी निन्दा आदि न करके श्रद्धा और आदर के साथ यह ईश्वरही हैं, ऐसी दृष्टिसेही उन गुरु की सेवा करै और ज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर 'भूतल पर इकला विचरै इत्यादि' पहिले कहेहुए यति के धर्मोंसे वर्त्ताव करै ॥ ३९ ॥ जिस की बुद्धि अतिविषयासक्त है, जिसने इन्द्रियों को वा कामक्रोधादि को नहीं जीता है और जिस को ज्ञान वा वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ है ऐसा होकर जो केवल पाखण्डीपने से त्रिदण्डी यति का वेष धारण करता है ॥ ४० ॥(वह, जिस के रागद्वेषादि भस्म नहीं हुए हैं और धर्म को डुबोनेवाला) यति, पूजनीय देवताओं को, जीवात्मा को और अन्तर्यामी मुझ परमात्मा को धोखा देता है तथा ऐसा करने के कारण इस लोक से और परलोक से भ्रष्ट होता है ॥ ४१ ॥ शान्ति और अहिंसा संन्यासी के मुख्य धर्म हैं, तप और यजन करना वानप्रस्थ के मुख्य धर्म हैं, प्राणियों की रक्षा और यजन गृहस्थ के मुख्य धर्म हैं तथा गुरु की सेवा करना ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष, प्राणिमात्र के साथ मित्रभाव से वर्त्ताव करना, और मेरी उपासना करना यह चारों आश्रमों के धर्म हैं, जिस में ऋतुकाल में स्त्रीसमागम करना ही गृहस्थ का ब्रह्मचर्य है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार जो मनुष्य अपने धर्म से मेरी सेवा करता है, अन्य स्त्रीपुत्रादिकों में आसक्त नहीं होता है और सब प्राणियों में मेरी भावना रखता है वह शीघ्र ही मेरी दृढ भक्ति पाता है ॥ ४४ ॥ और हे उद्धवजी ! फिर वह उस एकाग्रभक्ति के द्वारा सब लोकों के महेश्वर और सबों के उत्पत्ति प्रलय के कारण मुझ वैकुण्ठवासीदेव को स-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सः ॥ ४५ ॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो मां चिरात्समुपैति मां ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान् पृच्छति यच्च मां ॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परं ॥ ४८ ॥ इतिश्रीभा० महापुराणे एकादशस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योविद्याश्रुतसम्पन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥२॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति मां ॥३॥ तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नालंकुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानवि-

मीपभाव से पाता है ॥४५॥ ऐसे स्वधर्माचरण से शुद्धचित्त हुआ और मेरा ऐश्वर्य जाननेवाला वह भक्त, परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान से सम्पन्न होकर शीघ्र ही मेरे स्वरूप को पाता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ ४६ ॥ हे उद्धवजी! जो यह (पितृलोक की प्राप्ति करादेनेवाला) वर्णाश्रमवालों का धर्म तुम से मैंने कहा है वही यदि मुझे अर्पण करके किया जाय तो मुक्ति का सर्वोत्तम साधन होता है ॥ ४७ ॥ हे साधो उद्धवजी!, जो मुझ से तुम ने बूझा था सो 'जैसे स्वधर्माचरण करनेवाला पुरुष मेरा भक्त होकर मुझ परमेश्वर को पावेगा तैसा' यह तुम से मैंने कहा है ॥४८॥ इति श्रीमद्भगवत के एकादश स्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी! जो पुरुष आत्मा का अनुभव होने के पर्यन्त होनेवाले शास्त्र के ज्ञान से युक्त होताहुआ आत्मतत्त्व को प्राप्त हुआ है, केवल शब्द ज्ञान से ही युक्त नहीं है वह, यह सब द्वैत मायामात्र है ऐसा जानकर उस को दूर करने का साधन जो ज्ञान तिस का भी मेरे विषैं संन्यास करै अर्थात् मुझ से अभिन्नपना देखै, इसप्रकार उस के करेहुए संन्यास को ही विद्वत्संन्यास कहते हैं ॥ १ ॥ क्योंकि—ज्ञानी पुरुष को, इच्छितफलरूप मैं ही मान्य हूँ, स्वर्ग वा मोक्ष भी मैं ही हूँ, मुझ से अन्य कोई भी पदार्थ उस को प्रिय नहीं होता है इसकारण उस को प्राप्त होनेयोग्य वा करनेयोग्य कुछ भी शेष नहीं रहा है ॥२॥ ज्ञानविज्ञान से सिद्धहुए पुरुष, मेरे श्रेष्ठ पद को जानते हैं और वह ज्ञानी ही ज्ञानरूप से मेरा धारण करता है इसकारण वही मुझे अतिप्रिय है ॥३॥ ज्ञान के लेशमात्र से भी जो सिद्धि होती है वह सिद्धि, तप, तीर्थ, जप, दान और दूसरे जो पवित्र साधन हैं उन से कभी भी सिद्ध नहीं होती है॥४॥ इस से हे उद्धवजी! जैसे ज्ञान प्राप्त होय तिस रीति से अपने आत्मा को जानकर ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावतः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांतरा पतति नाव्यपवर्गयोर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्युराद्यंतयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दृष्टं जनं संपतितं विलोस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षे ॥ समुद्धरैनं कृपयाऽपवर्गवर्षेण चोभिरासिंच महानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः प-

---

विज्ञान सम्पन्न होते हुए भक्तिभाव से केवल मेरा ही आराधन करो, दूसरे सब कर्मों का त्याग करो ॥ ५ ॥ सब यज्ञों के स्वामी मुझ अपने आत्मा का, ज्ञानविज्ञानरूप यज्ञ से अपने आत्मा में ही आराधन करके, पहिले कितने ही ऋषि मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त होगये हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धवजी ! तुम में जो यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनप्रकार का द्वैतभाव प्रतीत होता है वह, क्योंकि—आदि अन्त में न होकर मध्य में ही भासता है तिस से रज्जु में भासनेवाले सर्प की समान मायाकल्पित है, सच्चा नहीं है, इस से यह जन्म आदि विकार यदि देह को ही हैं तो उन के अधिष्ठानरूप तुम्हें उन से क्या है ? क्योंकि धोखे के सर्पादिकों की आदि और अन्त में जो रज्जु आदि होती है वही मध्य में भी होती है, सर्पादि दूसरा कुछ नहीं होता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! शुद्धि करनेवाला, ज्ञानविज्ञान सहित और अनादिवेदसिद्ध यह ज्ञान, जैसे मेरी समझ में आवे तैसे विस्तार के साथ कहिये; जिस को ब्रह्मादिक भी ढूँढते हैं वह अपना भक्तियोग भी तुम मुझ से कहो ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापों करके चारों ओर से तपेहुए और भयङ्कर संसारमार्ग में पड़ेहुए मुझ को, चारों ओर से अमृत की वर्षा करनेवाले तुम्हारे दोनों चरणरूप छत्र से दूसरा कोई भी आश्रय नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ हे महानुभाव ! इस संसारकूपरूप गढहे में पड़ेहुए और तहाँ कालरूप सर्प से डसेहुए तथापि तुच्छ विषयसुखों में अतितृष्णा धारण करनेवाले इस जन का तुम कृपा करके उद्धार करो; मोक्ष का बोध करानेवाले अपने वचनामृतों से इस को सींचकर इस के ताप को शान्त करो॥ १० ॥श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! यह तुम्हारा पूछाहुआ प्रश्न, ऐसे ही पहिले धर्मराज ने, हम सबों के सुनतेहुए, भगवद्भक्तपरायणों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रच्छ सर्वेषां नोनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं ते ऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ॥ इक्षेतात्मैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्ययाप्यान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनां ॥ १५ ॥ आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥ श्रुतिः

में श्रेष्ठ भीष्मजी से बूझा था ॥ ११ ॥ भारत का युद्ध होजानेपर, बन्धुओं के मरण से विह्वलहुए धर्मराज ने भीष्मजी से बहुत से धर्म सुनकर फिर उन से मोक्षधर्म बूझा था॥ १२ ॥ वह भीष्मजी के मुख से सुनेहुए ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्ति इन से युक्त मोक्षधर्म, मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥ १३ ॥ प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार, और पञ्चतन्मात्रा यह नौ, पाँच ज्ञानेन्द्रियें, पाँच कर्मेन्द्रियें, और मन यह ग्यारह; पाँच महाभूत और तीन गुण यह सब मिलकर अट्ठाईस तत्त्व ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त सब कार्यों में व्यापरहे हैं ऐसा जिस ज्ञान से देखता है और सब तत्त्वों में भी एक परमात्मतत्त्व ही है ऐसा जिस ज्ञान से देखता है अर्थात् कार्यकारणरूप जगत् को देखताहुआ भी यह परम कारणरूप ही है तिस से निराला नहीं है ऐसा जिस ज्ञान से जानता है वही ज्ञान है, यह मेरा निश्चय है ॥ १४ ॥ पहिले ज्ञान के समय एक से व्याप्तहुए सब पदार्थ एकरूप ही हैं ऐसा जो देखता था वह अब तैसा नहीं देखता है किन्तु वह एक परम कारणरूप ब्रह्म ही है ऐसा देखता है, ऐसा देखनेलगा कि उस ज्ञान को विज्ञान कहते हैं, जैसे दिशाओं की अपरोक्ष भ्रान्ति निश्चित दिशा के परोक्षज्ञान से निवृत्त नहीं होती है तैसी, पुरुष को यह संसाररूप भ्रान्ति अपरोक्ष होनेके कारण परोक्षज्ञानसे निवृत्त नहीं होती है अर्थात् आत्मरूप जगत् को देखनेवाला पुरुष, जगत् को ब्रह्मरूप से जानता हुआ भी उस को अपने से निराला मानता है. अपरोक्षज्ञान में तो, उस का बाध होकर जीवन्मुक्त हुआ पुरुष, वह अपने से निराला देखना, जलेहुए वस्त्र की समान आभासमात्र है ऐसा देखता है, उस के सिवाय और कुछ नहीं देखता है, इसकारण परोक्षज्ञान का नाम 'ज्ञान' कहा है और अपरोक्ष ज्ञान का नाम 'विज्ञान' कहा है. अब एक वस्तु का सब कार्यों में होना और कार्यों का तिस कारण से निरालापन न होना, दिखाने के निमित्त सब पदार्थों की उत्पत्ति आदि साधते हैं—त्रिगुणमय पदार्थों के सावयव होने के कारण उन के उत्पत्ति, स्थिति, संहार हैं ऐसा देखै ॥ १५ ॥ जो वस्तु किसी भी कार्य के आरम्भ में और परिणाम पाने के समय कारण रूप से, तैसे ही मध्य में भी आश्रयरूप से और एक कार्य से दूसरा कार्य होते समय उस में अनुस्यूतपने से रहती है और जो फिर उस कार्य का लय होने पर भी शेष रहती है वही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते॥१७॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिंचादमङ्गलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवन्दनम् ॥ मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणं ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनां ॥ मयि संजायते

वस्तुसत् है ऐसा देखै ॥ १६ ॥ 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि श्रुति, तैसे ही पट आदि पदार्थ तन्तु आदि के विना नहीं दीखते हैं यह प्रत्यक्ष, बड़े पुरुषों की प्रसिद्धिरूप ऐतिह्य, और दीखनेवाला होने के कारण सीपी में भासनेवाला रजत (चाँदी) मिथ्या है इत्यादि अनुमान यह चार प्रमाण है. इन से, सब प्रपञ्च नाशवान् है ऐसा निश्चय होता है इसकारण जो विवेकी पुरुष है वह सर्व व्यापक और सत्य आत्मतत्त्व को जानकर इस प्रपञ्च से विरक्त होता है ॥ १७ ॥ विवेकी पुरुष, जैसे यह लोक नाशवान् है तैसे ही इस लोक में करेहुए कर्मों से प्राप्त होनेवाला जो 'स्वर्गलोक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त का सर्व सुख सो, कर्मों के नाशवान् होने के कारण दुःखरूप और नाशवान् है ऐसा देखै ॥ १८ ॥ हे उद्धवजी! यद्यपि भक्तियोग मैंने तुम से पहिले ही कहा है तथापि उस भक्तियोग के ऊपर प्रेम रखनेवाले तुम से, फिर भी अपनी भक्ति के श्रेष्ठ कारण कहता हूँ ॥ १९ ॥ मेरी अमृतसमान कथा के सुनने में आदर और सुनने के अनन्तर निरन्तर मेरी कथा का व्याख्यान करना, मेरी पूजा में लगेरहना, स्तोत्रों से मेरी स्तुति करना ॥ २० ॥ मेरे मन्दिर को बुहारने आदि के काम में आदर, मुझे साष्टाङ्गनमस्कार करना, मेरे भक्तों की विशेष पूजा, सब प्राणियों में मेरी भावना रखना ॥ २१ ॥ मेरी पूजा की फूल तुलसी आदि सामग्री लाने का स्वयं प्रबन्ध करना, वाणी से मेरे गुण वर्णन करना, मुझे अपना मन अर्पण करना, सब विषयों की वासना छोडदेना ॥ २२ ॥ मेरे निमित्त द्रव्य खर्च करना, मेरे भजन में हानि पडे तो मालाचन्दनादि भोगसाधन का और पुत्रों को लाड़ करने आदि के सुख को भी त्याग देना, यज्ञादि वैदिक कर्म करना, दान, होम, जप, तप और एकादशी आदि व्रत मेरे निमित्त करना ॥२३॥ हे उद्धवजी! इसप्रकार के श्रवण आदि साधनोंसहित आत्मनिवेदन करनेवाले मनुष्यों की, मुझ में प्रेमरूपभक्ति उत्पन्न होती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तिः कोऽन्यार्थो—स्यावशिष्यते ॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते। कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ॥ का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्कोबंधुरुत किं गृहम् ३१ ॥ कः आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि वि-

फिर उन को कोई साधनरूप वा साधनेयोग्य अर्थ बाकी नहीं रहता है ॥ २४ ॥ अधिक तो क्या परन्तु चित्त ही अन्तर्मुख वा बहिर्मुख हुआ अर्थ और अनर्थ का कारण होता है जब सत्त्वगुणसे युक्त हुआ चित्त, आत्मरूप मुझ में अर्पण करने के कारण शान्त और तहां ही आसक्त होता है तब वह पुरुष, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥ २५ ॥ और जब वह चित्त देहगेह आदि में लगताहुआ इन्द्रियोंके द्वारा विषयों की ओर को दौडकर अति मलिन और विषयासक्त होता है तब वह पुरुष अधर्म आदि से युक्त होता है ऐसा जानो ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति प्राप्त होतीहै उसही धर्मको शास्त्र में उत्तम कहाहै, जिस से एक आत्मा का दर्शन होता है वह ज्ञान है, जिस से विषयों की आसक्ति छूटती है वह वैराग्यहै और जिस से अणिमादि सिद्धि प्राप्त होती हैं वह ऐश्वर्य है ऐसा शास्त्र में कहा है ॥ २७ ॥ उद्धवजी ने कहाकि-हे शत्रुदमन प्रभो ! श्रीकृष्णजी! यम कितने प्रकार का कहा है ? और नियम भी कितने प्रकार काहै? शम किसको कहते हैं ? दम कौनसा है ? तितिक्षा कौनसी है ? और धैर्य कौनसा है ? ॥ २८ ॥ दान क्या है ? तप क्या है? शूरता, सत्य और ऋत कौन से कहे हैं ? त्याग क्या है ? इच्छित धन क्या है ? यज्ञ कौनसा है ? और दक्षिणा क्या है? ॥ २९ ॥ हे श्रीमान् केशव ! मनुष्य का बल क्या है ? भाग्य क्या है ? और लाभ कौनसा है ? विद्या, शोभा और लज्जा यह उत्तम कौनसी हैं ? सुख कौनसा और दुःख कौनसा है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? और मूर्ख कौन है ? सन्मार्ग क्याहै ? और कुमार्ग क्या है ? स्वर्ग कौनसा है ? और नरक कौनसा है ? बन्धु कौन है ? और घर क्या है ? ॥ ३१ ॥ धनवान् कौन है ? और दरिद्र कौन है ? कृपण कौन है ? और ईश्वर कौन है ? हे सत्पुरुषों के अधिपति भगवन् ! इन मेरे बूझेहुए प्रश्नों का उत्तर और इन से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परीतांश्चैव सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥ ३३ ॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥ एते यमाः सनियाम उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥३६ ॥ दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं चं समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा

प्रतिकूल अशम अदम आदि के लक्षण भी मुझ से कहो ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि हे उद्धवजी ! १ अहिंसा, २ सत्य बोलना, ३ चोरी न करना, ४ आसक्ति न रखना, ५निन्दित कर्म में लज्जा, ६ संग्रह न करना, ७ धर्मपर विश्वास रखना, ८ ब्रह्मचर्य, ९ मौन १० स्थिरता, ११ क्षमा और १२ अभय ॥ ३३ ॥ तैसे ही १ मन में शुद्धि, २ बाहर शुद्धि, ३ जप, ४ तप, ५ होम, ६ श्रद्धा, ७ अतिथि का सत्कार, ८ मेरीपूजा, ९ तीर्थयात्रा, १० दूसरे के निमित्त चेष्टा करना, ११ सन्तोष और १२ गुरु की सेवा ॥ ३४ ॥ यह दो श्लोकों में बारह २ क्रम से यम और नियम कहे हैं, हे तात उद्धवजी ! इन का आचरण सकाम और निष्काम मनुष्य करेंतो यह उन के मन की कल्याण और मोक्षरूप कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ मेरे विषैं बुद्धि की निष्ठा को शम कहते हैं, केवल शान्त रहना ही शम नहीं है, इन्द्रियों के दमन करने को दम कहते हैं, केवल चोरादिकों का दमन करना दम नहीं है, केवल बोझे को सहना ही नहीं किन्तु दुःख को सहन करना तितिक्षा है, केवल घबराहट नहोना ही नहीं किन्तु जिव्हा और उपस्थ इन इन्द्रियों के वेग को रोकना धैर्य है ॥ ३६ ॥ केवल धनका देनाही नहीं, किन्तु प्राणियों के द्रोह का त्याग करना ही उत्तम दान है, केवल कृच्छ्रचान्द्रायण आदि ही नहीं किन्तु भोगों की उपेक्षा करना ही तप है,केवल पराक्रम करनाही नहीं,किन्तु स्वभाव का जीतना ही शूरता है, केवल यथार्थ बोलना ही नहीं, किन्तु समरूप ब्रह्म को देखना ही सत्य है ॥ ३७ ॥ सत्य और प्रिय बोलना ऋत है ऐसा कवियों ने कहा है स्नानादि करके केवल मल धोना ही शौच नहीं है, किन्तु कर्मों में अनासक्ति ही शौच है, केवल घरद्वार को छोड़देना ही त्याग नहीं है, किन्तु सब कर्मों का संन्यास करना ही त्याग है ॥ ३८ ॥ केवल पशु आदि ही धन नहीं है, किन्तु परमार्थ रूप जो धर्म वही मनुष्यों का इष्टधन है, पूर्ण ज्ञानादिरूप परमेश्वर मैं ही यज्ञ हूँ अर्थात् मेरी बुद्धि से ही यज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो मे ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणो नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं काममसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्थाः सन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुण-

करे, कर्म बुद्धि से न करे, यज्ञ के निमित्त (मेरे निमित्त) ज्ञानोपदेश करनाही दक्षिणा है, केवल सुवर्णादि का दान ही दक्षिणा नहीं है, मन को दमन करने का साधन जो प्राणायाम वही बड़ा बल है, केवल शरीर का बल ही बल नहीं है ॥ ३९ ॥ मेरी जो षड्गुणैश्वर्यरूप सम्पत्ति सो भाग्य है, केवल पुण्य ही भाग्य नहीं है; मेरीभक्ति ही उत्तम लाभ है,केवल पुत्रादि का ही लाभ नहीं है; आत्मा में प्रतीत होनेवाले देवमनुष्यादि भेदों का जो बाध होना वही विद्या है, केवल ज्ञान ही विद्या नहीं है; निन्दितकर्मों में जो त्याग की बुद्धि वही लज्जा है,केवल लौकिकलज्जा ही लज्जा नहीं है ॥४०॥ निरपेक्षता आदि गुण ही शोभा (भूषण) है, किरीटादि भूषण नहीं है ; दुःख-सुख का अनुसन्धान न रखना ही सुख है, भोग ही सुख नहीं है ; विषयों के भोग की इच्छा ही दुःख है, अग्निदाह आदि नहीं ; बन्ध से मोक्ष को अथवा बन्धन और मोक्ष इन दोनों को जो जानता है वही पण्डित है, केवल विद्वान् ही नहीं ॥४१॥ देहगेह आदि में जो मैं और मेरा ऐसा अभिमान रखता है वही मूर्ख है, केवल अनजान मूर्ख नहीं है ; मेरी प्राप्ति करादेनेवाला निवृत्तिमार्ग ही सन्मार्ग है, केवल काँटे आदिरहित मार्ग ही नहीं; चित्त का विक्षेपरूप प्रवृत्तिमार्ग ही कुमार्ग है, केवल चोरादिकों से युक्त ही कुमार्ग नहीं है ; सत्वगुण का उत्कर्ष ही स्वर्ग है, केवल इन्द्रादिलोक ही नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण की वृद्धि ही नरक है, केवल रौरवादि ही नहीं ; हे सखा उद्धवजी ! गुरुरूप मैं ही बन्धु हूँ, केवल भ्राता आदि ही बन्धु नहीं हैं ; मनुष्यशरीर ही घर है, केवल काठमट्टी आदि के ही नहीं ; गुणों से सम्पन्न ही धनी है केवल धनवान् ही नहीं ॥ ४३ ॥ जो असन्तोषी है वही दरिद्री है, केवल निर्धन ही नहीं; जिस ने इन्द्रियों को नहीं जीता वही कृपण है, केवल दीनही नहीं; जिस का चित्त विषयों में आसक्त नहीं हुआ वही ईश्वर है, केवल राजा आदि ही नहीं; जो विषयों में आसक्त है वही अनीश्वर है ॥ ४४ ॥ हे उद्धवजी ! मैंने तुम्हारे यह सब प्रश्न जैसे मोक्ष में लाभदायक हों तैसे वर्णन करे हैं,अधिक वर्णन करने से क्या है ? केवल इतने ही गुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभा०महा० एका०भगवदुद्धवसम्वादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयःकालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिमंतरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं

दोषों के लक्षण हैं कि—गुण और दोष को जो देखना वही दोष है और गुणदोषोंको न देखने का स्वभाव ही गुण है ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी ने कहा हे कमलनयन ! तुम परमेश्वर की जो आज्ञा वही विधि निषेधरूप वेद है वह वेद,विहित और निषिद्ध कर्मों के पुण्यपापरूप फलोंका वर्णन करता है ॥ १ ॥ और उत्तम अधममाव से उन के अधिकारी वर्णाश्रमों के गुणदोषरूप भेदोंका प्रतिपादन करता है; तैसे ही प्रतिलोमज (उत्तमवर्ण की स्त्रियों में हीन वर्ण के पुरुषों से उत्पन्नहुए सूतवैदेह आदि) और अनुलोमज (उत्तमवर्ण के पुरुषों से हीनवर्ण की स्त्रियों में उत्पन्न हुए (मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ आदि) भेदों का वर्णन करता है और कर्म के योग्य तथा अयोग्य होने के कारण द्रव्य, देश, अवस्था और काल के गुणदोष रूप हुए भेदों का तथा उन के फलरूप से स्वर्ग नरक आदि का वर्णन करता है ॥ २ ॥ अब, गुणदोषों में भेददृष्टि न रखना यह तुम्हारा वचन है और विधि निषेध का वर्णन करनेवाला वेद भी तुम्हारा ही वचन है; अब मनुष्यों का कल्याण कैसे हो ? क्योंकि—इन आप के वचनों में ही परस्पर विरोध है ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! पितर, देवता और मनुष्यों को भी, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से समझ मे न आयेहुए स्वर्गमोक्षादिकों के ज्ञान के विषय में और यह इसका साध्य है तथा यह इस के साधन हैं इसविषय में तुम्हारा बचनरूप जो वेद वह उत्तम ज्ञापक है, तात्पर्य यह कि—गुणदोषदृष्टि का अभाव हुआ तो मोक्ष सुख नहीं प्राप्त होयगा ॥ ४ ॥ इस से, गुणदोषों की भेददृष्टि तुम्हारी आज्ञारूप वेद से ही है, अपने आप नहीं हैं; और फिर तुम्हारे वचन से ही उस भेद का अपवाद भी मैंने सुना है, इसकारण मुझे भ्रमहोरहा है उस को दूर करो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि— हे उद्धवजी ! मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होने की इच्छा से मैंने, ब्रह्म-कर्म-देवता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥१०॥ अस्मिँल्लोके वर्त्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोऽप्येतदिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तत्साधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा वि-

काण्डों से ज्ञान, निष्काम कर्म और भक्ति, यह तीनप्रकार के उपाय कहे हैं, इन से दूसरा कोई भी उपाय शास्त्र में नहीं कहा है ॥ ६ ॥ तहाँ दुःखबुद्धि से कर्मों के फलों से विरक्त होकर कर्मों का त्याग करनेवाले पुरुषों को ज्ञानयोग सिद्धि देनेवाला है और उन कर्मों में जिन के चित्त को विराग नहीं हुआ है उन सकाम पुरुषों को कर्मयोग सिद्धि देनेवाला है ॥ ७ ॥ और जिस पुरुष को दैवयोग से मेरी कथाओं के श्रवण कीर्त्तन आदि में श्रद्धा उत्पन्न हुई है परन्तु कर्मों के फलों में वैराग्य नहीं हुआ है और अधिक आसक्ति भी नहीं है उन को भक्तियोग सिद्धि देनेवाला है ॥ ८ ॥ मनुष्य को जबतक वैराग्य न हो वा मेरी कथा सुनने आदि में श्रद्धा उत्पन्न न हो तबतक वह नित्य नैमित्तिक कर्म करे ॥ ९ ॥ हे उद्धवजी ! फल की कामना को छोड़कर अपने धर्म का आचरण करनेवाला और बहुत यज्ञ करके मेरा आराधन करनेवाला पुरुष, यदि निषिद्ध कर्म का आचरण नहीं करे तो मरने पर स्वर्ग लोक में वा नरक में नहीं जाता है अर्थात् नरक में जाना दो प्रकार का होता है एक विहितकर्म का उल्लंघन करने से, दूसरा निसिद्धकर्म का आचरण करने से तिस में वह पुरुष, स्वधर्म का आचरण करता है और निषिद्ध को त्यागता है इसकारण नरक में नहीं जाता है और फल की कामनारहित होनेके कारण स्वर्ग में भी नहीं जाता है ॥ १० ॥ किन्तु इस लोक में ही और इस मनुष्य शरीर में ही रहकर निसिद्ध कर्मों का त्यागकरता हुआ और अपने धर्म में पवित्रता से रहताहुआ, अनायास में ही पुरुष, विशुद्धज्ञान और मेरी भक्ति को पाता है ॥ ११ ॥ जैसे नरक में के प्राणी इस मनुष्य शरीर की इच्छा करते हैं,तैसे ही स्वर्गवासी देवता भी इस की इच्छा करते हैं,क्योंकि—जैसे यह मनुष्य शरीर ज्ञान—भक्ति का वा ज्ञानभक्ति के द्वारा मुक्ति का साधक है तैसे वह नरक में का शरीर वा दिव्य शरीर नहीं है ॥ १२ इसकारण विवेकी पुरुष, स्वर्ग में जाने की वा नरक में जाने की इच्छा न करे अर्थात् स्वर्ग नरक के साधक काम्य तथा निषिद्ध कर्म न करै,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्षणः ॥ नेमं लोकं च कांक्षेत देहावेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वायुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७ ॥ यदारभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितं ॥ अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै

और इस शरीर के अति श्रेष्ठ होने के कारण फिर भी मुझे मनुष्यशरीर मिले ऐसी भी इच्छा न करै, क्योंकि—देह में आसक्त होने से अपने स्वार्थ में सावधान नहीं रहता है ॥ १३ ॥ ऐसा जाननेवाला वह विवेकी पुरुष, अर्थसिद्धि देनेवाले भी इस अपने शरीर को मरण धर्म से युक्त जानकर मृत्यु का समय आनेसे पहिले, अशक्त अवस्था में ही सावधानी से मोक्ष को प्राप्त करने में यत्न करे ॥ १४ ॥ जैसे पक्षी अथवा घोंसला बनाकर रहने के अपने आश्रयभूत वृक्ष को, यमसा निर्दयी पुरुष, तोड़रहा है ऐसा देखकर तहाँ आसक्त नहोकर उस को त्यागकर चलेजाने पर सुख पाता है तैसेही रातादिनरूप काल के अवयवोंसे टूटने के कारण कम होते हुए अपने आयु को जानकर भयसे काँपनेवाला और सकल व्यापार रहित हुआ जीव, परमात्मा को जानकर देह की सङ्गति छोड़ते ही सकल सन्ताप रहित होकर परमानन्द को पाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ सकल फलोंकी मूलभूत करोड़ो उद्योगों से प्राप्त न होनेवाली परन्तु सहज में प्राप्तहुई गुरुरूप कर्णधार (मल्लाह) से युक्त और स्मरणमात्र से ही अनुकूल वायुरूप मेरी प्रेरणा करीहुई मनुष्यशरीररूप नौका को पाकर जो प्राणी संसारसमुद्र को नहीं तरता है उस को केवल आत्मघाती समझै ॥ १७ ॥ जो योगी, कर्म में दुःख को देखने से घबड़ावै और कर्म के फल में विरक्त होय तब वह, इन्द्रियों को वश में करके, आत्मानुसन्धान के अभ्यास से आत्मा में अपने मन को निश्चलमात्र से धारण करे ॥ १८ ॥ मुझ में धारण कराहुआ भी मन जब भ्रमण पाकर (दूसरे विषयों में जाकर) स्थिर न रहताहुआ सा होता है तबयोगी आलस न करके उस की कुछ इच्छा पूरी करके धीरे २ अपने वश में करलेय ॥ १९ ॥ उपेक्षा करनेपर वह अत्यन्त चञ्चल होजायगा इसकारण उस को स्वाधीन करने से छोड़ै नहीं किन्तु सावधानी से प्राणों को और इन्द्रियों को जीतकर, सत्वगुणयुक्त हुई बुद्धिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ कर्मणां

उस मन को जीतलेय ॥ २० ॥ जैसे घोडे का सिखानेवाला, सिखानेयोग्य उद्धत घोडे की गति अपनी इच्छा के अनुसार होने की चाहना करताहुआ धीरे२ अपने आप उस की गति के अनुसार ही शिक्षा देता है और किसीसमय दौड़तेहुए भी उस को लगाम से पकडकर ही उस के पीछे दौडता है, परन्तु सर्वथा उस की उपेक्षा नहीं करता है और कुछ समयमें ही उस को अपने वश में करलेताहै तैसे ही मन की थोडीसी इच्छापूर्ण करके उपेक्षा न करताहुआ उस को धीरे२ अपने वश में करलेना ही बडा योगसाधन है ऐसा जानै ॥ २१ ॥ तत्त्वज्ञान से महत्तत्त्वादिक देहपर्यंत सब पदार्थों की अनुलोम करके (प्रकृति आदि के क्रम से) उत्पत्ति और प्रतिलोम करके (पृथ्वी आदि के क्रम से) नाश का, जबतक मन निश्चल होय तबतक चिन्तवन करै ॥ २२ ॥ उत्पत्ति नाशवान् पदार्थों में उन के अवधिभूत आत्मा के दर्शन से, अज्ञान के रचेहुए संसार में खिन्न होकर विरक्त हुए और गुरु के कहेहुए अर्थ का विचार करनेवाले और तिस विचार करेहुए अर्थ का ही वारंवार चिन्तवन करनेवाले पुरुष का मन, देहादिकों में के अभिमान का त्याग करता है ॥ २३ ॥ और यमादि योगमार्गों से तथा आत्मानात्मविचाररूप विद्या से और मेरा पूजन ध्यान आदि करके योग्य हुआ मन, परमात्मा का स्मरण करता है, दूसरे साधनों से स्मरण नहीं करता है इसकारण योगी, मन के जीतने को दूसरा साधन न करै ॥ २४ ॥ योगी के हाथ से पहिले तो पापाचरण होता नहीं है, कदाचित् प्रमाद से यदि योगीसे निषिद्धकर्म बनजाय तो उस पापको वह ज्ञानाभ्यास से जलाडाले, उसके विषय में दूसरे कृच्छ्र प्रायश्चित्त आदि कभी नहीं करै ॥ २५ ॥ नित्य नैमित्तिक कर्म अन्तःकरण के शोधक होने से गुणरूप और हिंसादि कर्म अशुद्धि के कारण होने से दोषरूप हैं और उन को दूर करनेवाले प्रायश्चित्त भी गुणरूप हैं सो उस प्रायश्चित्तके करे विना योगी का पाप कैसे भस्म होसकेगा ? ऐसी शङ्का करो तो तहाँ कहते हैं कि—अपने २ अधिकार में जो निष्ठा वही गुण कहा है, दूसरा नहीं, क्योंकि इन विधिनिषेधों के द्वारा कहेहुए गुणदोषों के विधान करके उत्पत्ति से ही अशुद्ध होनेवाले कर्मों का सङ्कोच ' विषयासक्ति को छोड़नेकी इच्छा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः॥ जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुने ॥ कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वम-

से ' करा है; इस का तात्पर्य यह है कि–पुरुष की प्रवृत्ति के सिवाय दूसरी कोई भी अशुद्धता नहीं है, क्योंकि स्वाभाविक प्रवृत्ति से ही वह मलिन हुआ है और उस प्रवृत्ति को एकाएक सर्वथा दूर करना भी नहीं होसकता, इसकारण वेद ने ' यह न करै और यही करै ' इसप्रकार स्वाभाविक प्रवृत्ति के सङ्कोच के द्वारा निवृत्ति ही करी है और वह वेद भी प्रवृत्तिपर नहीं है निवृत्तिपरही है, ऐसा हम अगले अध्याय में 'उत्पत्त्यैव हि कामेषु' इत्यादि श्लोक में तुम से कहेंगे; इसप्रकार योगीकी कर्मों में स्वाभाविक प्रवृत्ति न होने से उस को प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं है ॥ २६ ॥ जब मेरी कथा में श्रद्धा उत्पन्न होती है, सर्वकर्मों में ग्लानि मानता है परन्तु उन कर्मों के फल से विरक्त नहीं होता है अर्थात् विषय दुःखरूप हैं ऐसा जानता,है परन्तु उन के त्यागने को समर्थ नहीं होता है ॥२७॥ तब परिणाम में दुःखरूप उन विषयों की निन्दा करता और निर्वाह की पूर्त्ति के योग्य उन का सेवन करताहुआ, भक्ति से ही मेरे सब मनोरथ पूरे होजायँगे ऐसा निश्चय करके वह पुरुष प्रीति के साथ मेरी भक्ति करै ॥२८॥ 'मेरी अमृतसमान कथा में श्रद्धा ' इत्यादि कहेहुए भक्तियोग से मेरा नित्य भजन करनेवाले पुरुष के हृदय में मेरे रहने पर, तहाँ की सब कामवासना नष्ट होजाती हैं ॥ २९ ॥ जब सब के अन्तर्यामी मुझ आत्मा का साक्षात्कार होता है तब इस भक्त की अहन्तामतारूप हृदय की गाँठ कटजाती है, असम्भावना आदि सब सन्देह टूटजाते हैं और संसार के कारण सकल कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ३० ॥ तिस से, मेरी भक्ति से युक्त और मुझ में मन लगानेवाले योगी को, उस काम में ज्ञान वा वैराग्यरूप साधन कल्याणकारक नहीं होते हैं किन्तु भक्तिरूप साधन ही कल्याणकारक है ॥ ३१ ॥ इस का कारण यह है कि–कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दानधर्म और तीर्थयात्रादि अन्य साधनों से जो अन्तःकरण की शुद्धिआदि फल मिलता है वह सब फल मेरे भक्त को मेरी भक्ति से अनायास में ही मिलजाता है; यह तो क्या परन्तु यदि वह स्वर्ग, मोक्ष वा मेरे वैकुण्ठलोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ॥ वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥३६॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ॥ क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥३७॥ इति० महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान् कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥ त्रैवर्ग्यकाधिकारे या निष्ठा सा गुणः परिकीर्तितः । विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥

की भी इच्छा करे तो वह भी उस को मिलेगा, परन्तु वह इच्छा ही नहीं करता है ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ क्योंकि—जो धैर्यवान् साधु मेरे एकान्त भक्त हैं, वह मेरे आग्रह से दियेहुए सर्वोत्तम मोक्षपद को भी नहीं ग्रहण करते हैं, फिर वह इच्छा नहीं करते इस का तो कहना ही क्या ? ॥ ३४ ॥ निरपेक्षता ही उत्तम और बडे कल्याण का फल तथा साधन है ऐसा कहते हैं, इसकारण किसीकी भी प्रार्थना न करनेवाले निरपेक्ष पुरुष को मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ मुझ में एकान्त भक्ति करनेवाले, समचित्त और बुद्धि से परे के ईश्वरस्वरूप को प्राप्तहुए साधुओं को विहितनिषिद्धकर्मों से होनेवाले पुण्यपाप आदि गुणदोष नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष, इसप्रकार मेरे कहेहुए इस मेरी प्राप्ति के मार्ग से सेवा करते हैं वह, काल माया आदि से रहित मेरे लोक को प्राप्त होते हैं और जिस को परब्रह्म कहते हैं उस को जानते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! जो पुरुष, इन भक्ति-ज्ञान-कर्मरूप मेरे मार्गों को छोडकर, विषयों में दौडनेवाली इन्द्रियों से, उन नाशवान् विषयों का सेवन करते हैं वह सकल गुणदोषों को सेवन करनेवाले होने से नानाप्रकार की योनियें पाते हैं ॥ १ ॥ अब, उन ही कर्मों से कितने ही गुणदोषयुक्त होते हैं और कितने ही नहीं, यहभेदभाव क्यों ? अग्नि से कितनो ही को ताप हो कितनो ही को न हो यह नहीं होसक्ता, ऐसा कहो तो तहाँ कहते हैं कि—अपने २ अधिकार में जो निष्ठा रखना उस को गुण कहा है और दूसरे के अधिकार पर आसक्ति रखना दोष है, ऐसा गुणदोषों के स्वरूप का निर्णय है इसकारण अधिकारभेद से ही गुणदोषों की कल्पना होती है, वह वस्तु का अवलम्बन करके नहीं रहते हैं ॥ २ ॥ पदार्थों के वास्तव में समान होनेपर 'यह पदार्थ योग्य है अथवा अयोग्य है ऐसे सन्देहके द्वारा' तहाँ प्राणी की स्वाभाविक प्रवृत्ति होने की रुकावट करने के निमित्त पदार्थों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ ॥ दर्शितोऽयं मयाचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यंबग्न्यनिलाकाशा भूतानां पंच धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शरीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमानि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासं-

में वेद ने शुद्धि और अशुद्धि (योग्यपना और अयोग्यपना) कही हैं और उन के निमित्त से गुण दोष तथा उन के निमित्त से पुण्यपापरूप अर्थ कहे हैं ॥ ३ ॥ हे उद्धवजी ! तहाँ शुद्धि और अशुद्धि, यह धर्म व्यवहार और देह के निर्वाह के निमित्त गुणदोषरूप कहे हैं तिन में धर्मार्थ ऐसे हैं कि—शुद्धि से धर्म होता है और अशुद्धि से अधर्म होता है व्यवहारार्थ ऐसे कि—आशौच आदि अशुद्धि दशा में भी राजा आदि को प्रजादिकों का न्याय आदि करने में शुद्धि है और अन्यकार्यों में शुद्धि नहीं किन्तु अशुद्धि ही है, देह निर्वाह के निमित्त ऐसे कि—प्रतिग्रह का निषिद्ध होना ठीक है परन्तु आपत्तिकाल में उस से देह के निर्वाह की पूर्त्ति करलेने पर पाप नहीं लगता है, अधिक करने पर पाप लगता है इत्यादि आचार, धर्मरूप भार उठानेवाले पुरुषों को मैंने मन्वादिरूप से दिखाया है ॥ ४ ॥ वास्तविक रीति से विचारकर देखने पर सबही पदार्थ समान हैं—क्योंकि—ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सब प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति के कारण भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पञ्चमहाभूत एक से हैं और सबों का जीवात्मा भी ईश्वर का अंश होने के कारण एकरूपही है ॥ ५ ॥ इसकारण हे उद्धवजी ! इन प्राणियों की प्रवृत्ति के नियम के द्वारा धर्मआदि चारप्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धि होने के निमित्त इन के एक समान भी पञ्चमहाभूतात्मक शरीरों में वेद ने वर्ण आश्रम आदि विषम नाम कल्पना करे हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धवजी ! केवल देहादिकों में ही यह कल्पना नहीं है किन्तु देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी और ग्रहण करने योग्य तण्डुल आदि पदार्थ इन सबोंके भी गुण दोष, कर्म की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सङ्कोच होने के निमित्त वेदरूप मैंने कहे हैं ॥ ७ ॥ जिस देश में काला हिरन नहीं फिरता है वह देश अपवित्र है, तिसमेंभी जहाँ ब्राह्मणभक्ति नहीं वह देश अत्यन्त अपवित्र है, और जहाँ काला हिरन भी है परन्तु सत्पुरुष नहीं हैं वह कीकट (अंग, वंग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र और मगधआदि) देशभी अपवित्र गिना है, परन्तु उस कीकट देश में सत्पुरुष होंतो उस को पवित्र माना है तैसेही विना झाड़ाबुहारा, अधिक म्लेच्छोंवाला और ऊसर भूमि का भाग यह देश अपवित्र है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च॥संस्कारेणार्थ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा॥१०॥शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वंति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितंतूनां रसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः

और वाकी के पवित्र हैं ॥ ८ ॥ जो काल पदार्थों की सम्पत्ति से युक्त अथवा जो दिन का पहिला भाग आदि काल स्वयं ही कर्म के योग्य है वह उस कर्म के विषय में शुद्ध है और जिस में पदार्थ नहीं मिलता अथवा राष्ट्रविप्लव (गदर) आदि होने से कर्म नहीं होसक्ता और जो सूतक आदि में कर्म के अयोग्य होता है वह दशाह आदि काल अशुद्ध माना है ॥ ९ ॥ पदार्थों की शुद्धि वा अशुद्धि, दूसरे पदार्थ से, वचनसे संस्कार से. काल से अथवा अधिक कम होनेसे मानी है; तहाँ पदार्थ से—तण्डुल आदि पदार्थोंकी-जल आदि से शुद्धि और मूत्रादि से अशुद्धि होती है संस्कार से वचन से—यह वस्तु शुद्ध है अथवा अशुद्ध है ऐसा संशय प्राप्त होनेपर, यह शुद्ध है ऐसे ब्राह्मण के वचन से शुद्धि अन्यथा अशुद्धि होती है, छिडकने आदि से पुष्पादिकों की शुद्धि और सूँघने से अशुद्धि होतीहै काल से—दश दिन वीतने पर नवीन जल की शुद्धि और चौमासे में तीन दिन में नये जल की शुद्धि तथा रात्रि वसजाने से वासी अन्न की अशुद्धि होती है, और अधिकता न्यूनता से—चाण्डालादिकों का स्पर्श होनेपर भी तालाव आदि के जल की शुद्धि और घडे आदि के जल की अशुद्धि है ॥ १० ॥ तैसे ही शक्ति और अशक्ति से—सूर्यग्रहण आदि सूतक के अन्न आदि की शक्तिमान् पुरुषों को अशुद्धि और असमर्थ पुरुषों को शुद्धि होती है ; ज्ञान से—पुत्रजन्म आदि का अशौच दशदिन के अनन्तर जानाजाय तो शुद्धि और दशदिन के भीतर जानाजाय तो तब से दशदिनतक अशुद्धि होती है. समृद्धि से—पुराने और मैले वस्त्रों की सम्पत्तिमानों को अशुद्धि और दरिद्री को शुद्धि होती है; तिसपर भी यह पदार्थ, अपने अशुद्धपने से प्राणी को जो पाप उत्पन्न करते हैं वह देश और अवस्था आदि के अनुसार ही करते हैं, सर्वत्र नहीं करते हैं अर्थात् निर्भय देश में ही करते हैं चोरादिकों के उपद्रव से युक्त देश में नहीं करते हैं, रोग आदि रहित तरुण आदि अवस्था में ही करते हैं, रोगीपने के दशा में वा वालक आदि अवस्था में नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ धान्य की शुद्धि वायु से होती है, लौकिक काठों की जल से, और ग्रहचमस आदि यज्ञ के पात्रों की शुद्धि गरमजल से होती है, हाथीदाँत आदि हड्डियों की शुद्धि काल से होती है, घी तेल आदि रसों की और सुवर्ण आदि धातुओं की शुद्धि अग्नि से होती है; वस्त्रादिकों की शुद्धि जल से, चर्म आदि की शुद्धि काल से,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥ अमेध्यलिप्तं येद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति ॥ भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेवं बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥ यतो यतो निवर्तेत

और अन्य पदार्थों की शुद्धि भिन्न २ शुद्धिकारी पदार्थों से, और दो तीन आदि पदार्थों के मिलने से होती है. काक चाण्डाल आदि के छुएहुए पदार्थों की शुद्धि स्पर्श आदि के न्यूनाधिकभाव से काल आदि करके होती है ॥ १२ ॥ पटला, पात्र, वस्त्र आदि जो वस्तु, जिस छीलने आदि से, खारी खट्टे आदि जल से धोनेपर अमङ्गल पदार्थों के गन्ध, लेप और मल को त्यागकर ठीक दशा को प्राप्त होय, उन पटले आदि वस्तुओं का वह छीलना आदि ही शोधक है, उस का भी गन्ध और लेप जानेपर्यन्त वारंवार लगाना ही इच्छित है ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, उपनयन आदि संसकार, सन्ध्योपासनादि कर्म और मेरे स्मरण के द्वारा कर्त्ता की शुद्धि कही है, इसकारण इन संस्कारों से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, शुद्ध होकर अपने अधिकार के अनुसार कर्म करैं ॥ १४ ॥ श्रेष्ठगुरु के मुख से अङ्गोपाङ्ग सहित मंत्र का ज्ञान होना ही मन्त्रशुद्धि है, मुझ ईश्वर को समर्पण करना ही कर्म की शुद्धि है; इसप्रकार देश, काल, पदार्थ, कर्त्ता, मंत्र और कर्म यह छः शुद्धियें होने पर इन से धर्म प्रवृत्त होता है और इन में विपरीतपना होय तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुणदोष का विभाग वास्तविक नहीं है क्योंकि—कहीं अर्थात् आपत्ति में प्रतिग्रह गुण है तौ भी सम्पत्ति में निषिद्ध होने से दोष होता है और कहीं दोष भी विधिबल से गुण होजाता है, क्योंकि—जैसे कुटुम्ब का परित्याग आदि साधारण पुरुष को दोषरूप है परन्तु विरक्त को दोषरूप नहीं है, गुणदोष का जो नियामक शास्त्र है वह गुणदोष के भेद का ही बाध करता है ॥ १६ ॥ कहीं दोष भी दोषरूप न होकर गुणरूप होजाता है, जैसे सुरापान आदि अपतित पुरुषों के पतन का हेतु होने से दोषरूप होने पर भी पतितपुरुषों के अधिकार का नाशक नहीं होता है, क्योंकि—वह पतित तो पहिले से ही है इस से यहाँ दोष भी दोषरूप नहीं हुआ, तथा संन्यासी को आसक्ति दोष है, परन्तु गृहस्थी को पहिले से ही होने से दोष न होकर गुणरूप है इस में दृष्टान्त कहते हैं कि—जो पहिले से ही नीचे सोया है वह नीचे नहीं गिरता है ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥ संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्ततो गर्स्तमनुवर्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जंतुः शून्याय कल्पते । ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ॥ आस-

अतएव गुणदोष की नियमविधि का तात्पर्य, प्रवृत्ति के सङ्कोच के द्वारा निवृत्तिविषय में ही है, क्योंकि—जिस २ विषय से यह पुरुष निवृत्त होता है उस २ से मुक्त होता है और मुक्त होना यह धर्म ही मनुष्यों का कल्याणकारी होकर शोक, मोह और भय का नाश करता है ॥ १८ ॥ पहिले 'यह विषय अति उत्तम हैं' ऐसी बुद्धि उत्पन्न होनेपर उन विषयों में पुरुष की आसक्ति होतीहै और आसक्ति होनेपर उन को भोगने की इच्छाहोतीहै उस के पूर्ण होने में विघ्न करनेवाले के साथ उन पुरुषों का उस इच्छा के कारण ही कलह होता है ॥ १९ ॥ और कलह से तीव्र क्रोध होता है, तिस क्रोध के कारण अतिमोह होता है और मोह से पुरुष की सब पदार्थों में फैलीहुई 'क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये, इस प्रकार की स्मृति नष्ट होजाती है ॥ २० ॥ फिर उस विवेक की स्मृति से रहित हुआ प्राणी, होकर भी न होनेवालासा होताहै तदनन्तर मूर्छितकी समान अथवा मृतकसमान हुए उस प्राणी के पुरुषार्थ की हानि होती है ॥ २१ ॥ विषयों में अभिनिवेश (यह अवश्य करना चाहिये ऐसे आग्रह) से अपने को नहीं जानता है और दूसरे को भी नहीं जानता है किन्तु वृक्ष की समान केवल आहारमात्र ग्रहण करके जीवित रहता है, वह मूर्छित की समान होता है और लुहार की धोंकनी की समान व्यर्थ स्वांस लेता रहता है तथा मृतकसमान है ॥ २२ ॥ 'स्वर्ग की इच्छा करनेवाला अग्निष्टोमयज्ञ करै' ऐसी जो फलश्रुति है वह मनुष्यों को परमपुरुषार्थ देनेवाली नहीं है किन्तु बहिर्मुख पुरुषों को मोक्ष का उपदेश करने की इच्छा से आनुषङ्गिकफलों के द्वारा कर्म पर रुचि उत्पन्न करनेवाली है, इस फलश्रुति से जैसे पिता, बालकों के ज्वरादि रोग दूर होने के निमित्त उन को औषध पिलाने का मन में विचार करके उन से, औषध का फल मिसरी लड्डू आदि दूँगा ऐसा कहता है तिसीप्रकार स्वर्गादि फल कहा है ॥ २३ ॥ अपने अनर्थ के कारण जो पशुआदि विषय, आयु, इन्द्रियें, बल, पराक्रम और पुत्रादि स्वजनों में स्वभाव से ही आसक्तचित्त हुए और वेद के कहने पर विश्वास रखनेवाले, अपने स्वार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रंपनसो मर्त्या आत्मनोनर्थहेतुषु ॥ २४ ।, नैतानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यंतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युंज्यात्पुंनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निधूमांताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥ न ते मामंग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥ ते मे मतविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजत्यर्था-

को न जाननेवाले और देवादियोंनिरूप दुःखमार्ग में घूमकर अन्त मे वृक्षादियोंनियों में जन्म धारण करनेवाले उन पुरुषों को,फिर उन ही पशु आदि विषयों में, उन का परमहितू जो वेद सो कैसे प्रवृत्त करेगा? ॥ २४॥२५॥ कितनेही कुबुद्धि,वेदका अभिप्राय न जानतेहुए स्वर्गादिफल कहने के कारण मनोहर प्रतीत होनेवाली फलश्रुति को ही सत्य मानते हैं,वेद के जाननेवाले ऋषि तैसा नहीं जानते हैं॥ २६ ॥जो पुरुष,कामी,कृपण,लोभी, स्वर्गादि आवान्तर फलों में परमफल की बुद्धि रखनेवाले, अग्नि से सिद्ध होनेवाले कर्मों के आग्रह से विवेकहीन और अन्त मे दक्षिणायन मार्ग से जानेवाले हैं, वह किसी प्रकारभी आत्मतत्व को नहीं जानते हैं ॥२७॥ हे उद्धवजी ! जो परमात्मा जगद्रूप है अर्थात् जिस से जगत् निराला नहीं है और जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है ऐसे हृदय में स्थित मुझ परमेश्वरको भी नहीं जानते हैं, क्योंकि—वह पशु हिंसारूप कर्मफल को ही वर्णन करनेयोग्य समझते हैं और अपने प्राणों की तृप्ति करनेमें तत्पर रहते हैं इसकारण जैसे अन्धकार से व्याप्त दृष्टिवाले पुरुष, समीप के भी पदार्थ को नहीं देखते हैं तैसे वह समीप में के भी मुझ को नहीं देखते हैं ॥ २८ ॥ वह अस्पष्ट मत को न जानतेहुए विषयों में मग्न होकर देवता आदिकों का यजन करते हैं, मेरा मत ऐसा है कि मांसभक्षण में यदि प्रीति होय तो यज्ञ में हवन करके शेषरहाहुआ मांस देवता के प्रसादरूप से ग्राह्य है. अपनी आवश्यकता से उस को ग्रहण करने की आज्ञा नहीं है ॥ २९॥ हिंसा करनेवाले और क्रूर स्वभाववाले वह पुरुष, अपने सुख की इच्छा से, पशुओं को मारकर करेहुए यज्ञों से देवता, पितर और भूतपति का यजन करते हैं ॥३०॥ स्वप्न की समान नाशवान् और केवल कान को ही प्रियलगनेवाली परलोक की और इस लोक की कामनाओं का मन में सङ्कल्प रखकर पास का धन खर्च करते हैं वह पुरुष, जैसे कोई व्यापारी दुस्तर समुद्र के उल्लंघन से बहुतसा द्रव्य मिलने की इच्छा रखकर पास का धन खर्च करता है और इतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट होता है तैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यर्थां वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥ उपासते इन्द्र-मुख्यान् देवादीन्न तथैव मां ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यान्त इह भूयास्म महाशीला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणां ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्त्ताऽपि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकांडविषया इमे ॥ परोऽक्षवादा ऋषयः परोऽक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥ शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ॥ अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणोऽनंतशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण विसेपूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो

ही वह इसलोक के और परलोक के सुख को खोतेहैं ॥ ३१ ॥ वह पुरुष, रजःसत्वतमोगुण के स्वभाववाले होने के कारण अपनी समान रजोगुणी, सत्वगुणी और तमोगुणी इन्द्रादिकों की आराधना करते हैं, मुझ गुणातीत की आराधना नहीं करते हैं; वह इंद्रादि देवता यद्यपि मेरे ही अंशभूत हैं तथापि भेददर्शीपने से उनकी करीहुई उपासना विधिपूर्वक न होने के कारण वह मेरे निमित्त करीहुईसी नहीं होती है ॥ ३२ ॥ यहाँ हम यज्ञों से देवताओं का यजन करके स्वर्ग में जायँगे और तहाँ अप्सराओं के साथ क्रीडा करेंगे; फिर स्वर्ग के भोगों को भोगने के अनन्तर इसलोक में जन्म लेकर बडे प्रतिष्ठित कुलीन गृहस्थ होयँगे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार पुष्परूप स्वर्गादि सुख को वर्णन करनेवाली वाणीसे जिनका मन विक्षिप्त हुआ है ऐसे अभिमानी और घमण्डी हुए तिन पुरुषों को मेरी वार्त्ता भी प्रिय नहीं लगती है इसकारण वह निरन्तर संसार में ही रहते हैं ॥ ३४ ॥ त्रिकाण्डविषयक (कर्म, ब्रह्म और देवताकाण्डविषयक) यह सब वेद, जीवात्मा ब्रह्मरूप ही है, संसारी नहीं है ऐसा ही कहनेवाले हैं, वह वेद अथवा उन के द्रष्टा ऋषि, अपने में का अर्थ गुप्त रखते हैं और वह अर्थ गुप्त रखना मुझे प्रिय है ॥ ३५ ॥ परा, पश्यन्ती, मध्यमा नामक सूक्ष्म और वैखरी नामक स्थूल, ऐसे दो प्रकार का वेद ब्रह्म है; उस दोनो ही प्रकार के को जानना परम कठिन है, क्योंकि—वह देश और काल के अन्त तथा पार से रहित है और अर्थ में गम्भीर होने के कारण समुद्र की समान उस में बुद्धि का भी प्रवेश नहीं होसक्ता ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति, व्यापक और परब्रह्म रूप मैंने उस वेदब्रह्म को भीतर से प्रेरणा करके बढाया है, जैसे कमल की दण्डी में के सूक्ष्म तन्तु चतुर पुरुषों के ध्यान में आते हैं तैसेही वह वेदब्रह्म सकल पुरुषोंके शरीर में नादरूप से चतुर पुरुषों के अनुभव में आता है ॥ ३७ ॥ जैसे मकड़ी अपने हृदय में से मुख के द्वारा तन्तुओं को बाहर प्रकट करती है और उन तन्तुओं के ऊपर कुछ समय पर्यन्त क्रीडा करके अन्त में उन को अपने में ही समेटलेती है तैसेही प्राणोपाधि से हिरण्यगर्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतस्थभूषिता ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयं ॥ ४० ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब् जगत्यतिछन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥४२॥ मां विधत्तेभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यान्ते प्रति-

रूपहुए, वेदमूर्त्ति और अमृतमय यह नादरूप भगवान्, स्पर्शआदि वर्णोंकी कल्पना करने वाले मनोरूप निमित्त करके अपने हृदयाकाश से अनन्तमार्गों से युक्त और अनन्तपार वेदब्रह्मरूप वाणी को उत्पन्न करते हैं और अन्त में उस को आपही समेटलेते हैं, वहवाणी हृदय में स्थित सूक्ष्म ॐकार से उर कण्ठआदि स्थानों के संयोग से स्पर्श (क ख से लेकर म म पर्यन्त), सोलह स्वर, ऊष्म (श ष स ह) और अन्तस्थ (य र ल व) इन वर्णों से भूषित होकर लौकिक और वैदिक विचित्र भाषाओं के द्वारा फैलीहुई है; उस के चौवीस अक्षरों से लेकर अट्ठाईस वत्तीस आदि चार २ अक्षरों करके बढ़ेहुए छन्द हैं ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, अष्टी, अत्यष्टी, विराट् और अतिविराट् यह छन्द हैं; चौवीस अक्षर का गायत्री, अट्ठाईस अक्षरों का उष्णिक्, वत्तीस अक्षरों का अनुष्टुप् इत्यादि चार २ अक्षरों को बढाकर बनाएहुए बृहती आदि छन्द हैं ॥ ४१ ॥ यह वेदरूप वाणी कर्मकाण्ड में नाना प्रकार के वाक्यों से किस का विधान करती है, देवताकाण्ड में मन्त्रवाक्यों से किस का प्रकाश करती है और, ज्ञानकाण्ड में अनुवाद करके किसका विकल्प करती है, इस विषय का इस वाणी का तात्पर्य मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ ४२ ॥ तुमही कृपा करके हमे बताओ ऐसा कहो तो सुनो—यह वेदवाणी कर्मकाण्डों में मुझ यज्ञरूप का ही विधान करती है, देवताकाण्डों में तिन २ देवताओं के रूप से मेरा ही प्रकाश करती है, मुझ से दूसरे किसीका भी प्रकाश नहींकरती है और जो 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः', इत्यादि श्रुतियों से आकाश आदि सब प्रपञ्च की कल्पना करके अन्त में 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि श्रुतियों से निषेध कियाजाता है वह सब मैंही हूँ, मुझ से दूसरा कोई नहीं है, यदि कहोकि—क्यों नहीं है ? तो सुनो—सकल वेदों का अर्थ इतना ही है कि—वेद, परमार्थरूप मेरा आश्रय करके मुझ में भासनेवाले आकाशादि भेद का, यह सब मायामय है ऐसा कहकर अन्त में उस का निषेध करके शान्त होता है, इस का अभिप्राय यह है कि—अंकुर में जो रस होता है वही उस की फैलीहुई शाखा, प्रशाखा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षिद्ध्यै प्रसीदति ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभा० म० ए० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥ केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तयः सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यदात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं

फल, मूलआदि में प्राप्त होता है, तैसे ही ॐकार का अर्थ परमेश्वर है, वही उस विस्तार भूत, त्रिकाण्डमय शाखाओं सहित सब वेदों का अर्थ है, दूसरा कुछ नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में एकविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे प्रभो ! विश्वेश्वर ! ऋषियों ने शास्त्रों में तत्त्व कितने गिने हैं ? अर्थात् उन्होंने शास्त्रों में जो कुछ तत्त्व कहे हैं उन में कितने योग्य हैं, तुमने तो नौ, ग्यारह, पाँच और तीन सब मिलाकर अट्ठाईस तत्त्व कहे सो हमने सुने हैं ॥ १ ॥ कितने ही ऋषि, छब्बीस तत्त्व कहते हैं, दूसरे पच्चीस, तीसरे कितने ही सात, कितने ही नौ, कितने ही छः, कितने ही चार और कितने ही ग्यारह तत्त्वों का वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ कितने ही सत्तरह, कितने ही सोलह, और कितने ही तेरह तत्त्व कहते हैं ; हे आयुष्मन् श्रीकृष्णजी ! ऋषियों ने ऐसे निराले निराले भेद, तत्त्वों की संख्याओं के, जिस प्रयोजन को कहने की इच्छा से वर्णन करे हैं वह सब आप कृपा करके मुझ से कहिये ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! ब्राह्मणों ने, तत्त्वों के विषय में जैसे जो रीति कही हैं उन सबों में ही युक्ति हैं, क्योंकि—मेरी माया को स्वीकार करके कहनेवालों को क्या दुर्घट है ? अर्थात् जैसे मृगतृष्णा के जल को मानलेने पर उस के परिमाण के विवाद में घुटनों जल कहें तो चलसक्ता है और बीस बांस जल कहें तो भी चलसक्ता है ऐसे ही माया को स्वीकार करने के अनन्तर माया की जितनी संख्या कहीजाय उतनी ही युक्ति से सिद्ध होसक्ती है ॥४॥ इस पर कहो कि—यदि सब ही ठीक है तो विवाद कैसा ? और जब माया का ही आश्रय मानलिया तो उस के भेदों के कारणों को सिद्ध करने में विवाद कैसा ? तहाँ कहते हैं कि—'जैसे तू कहता है ऐसे यह नहीं है, किन्तु जैसे मैं कहता हूँ तैसा ही ठीक है, इसप्रकार यद्यपि उन तत्त्वों के मूल कारण में भी ब्राह्मण विवाद करते हैं तथापि वास्तविक रीति से देखाजाय तो अपने २ स्वभाव के अनुसार परिणाम पायेहुए माया के सत्त्वादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोमीषां प्रसंख्यानमभीप्सतां ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥ अनाद्यविद्ययुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनार्थार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृते-र्नात्म-

गुण ही उस विवाद में कारण हैं ॥ ५ ॥ कि–जिन गुणों के क्षोभ से वाद करनेवालों में वाद करने का विषय पक्षभेद हुआ है; जब शम और दम प्राप्त होते हैं तब यह विकल्प (भेद) नष्ट होजाता है और भेद के नष्ट होते ही वाद भी शान्त होजाता है ॥ ६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी! एक का दूसरे में अन्तर्भाव होने के कारण वाद करनेवाले पुरुषों की जैसी छोटी बडी संख्या कहने की इच्छा होती है तैसी 'पहिले कारण और तदनन्तर कार्य ऐसे धर्म से' वह संख्या होसक्ती है ॥ ७ ॥ जैसे घट सकोरे आदि कार्य पदार्थ, कारण रूप मृत्तिका में अन्तर्भाव को प्राप्तहुए दीखते हैं अथवा जैसे वह कारणरूप मृत्तिका कारणरूप घटादिकों में प्रवेश करीहुई दीखती है तैसे पूर्व के एक ही कारणभूत तत्त्व में और सब कार्यतत्त्व अथवा आगे के एक ही कार्यरूपतत्त्व में पूर्व के कारणतत्त्व अन्तर्भाव करके प्रविष्टहुए दीखते हैं ॥८॥ इसकारण इन तत्त्वों की कार्यकारणता और कम अधिक संख्या की इच्छा करनेवाले वादियों में जो कहने की इच्छा से जिस की वाणी प्रवृत्त होती है, उस सब कहने को युक्तियुक्त होने के कारण हम ठीक मानकर ग्रहण करते हैं ॥९॥ कार्यकारणरूप जडतत्त्वों की भिन्नता और एकता के कहने में इच्छा से तत्त्वों का भेद रहै, परन्तु जीव और ईश्वर के चैतन्यरूप होने के कारण उनके भेद और अभेद को कहने की इच्छा क्यों हुई? कि–जिस से तत्त्वों के पचीस छब्बीस यह संख्या का भेदरूप दो पक्ष हुए, ऐसा कहो तो-तहाँ कहते हैं कि–अनादि अविद्यासे युक्त जीवको, स्वयं ही आत्मज्ञान होनेका सम्भव नहीं है दूसरेसे होसक्ता है, इसकारण उस को ज्ञानोपदेश करनेवाला दूसरा तत्त्वज्ञानी परमेश्वर होना चाहिये, ऐसा मानकर छब्बीस तत्त्वों की संख्याका पक्ष चला है १०॥ इस शरीर में जीव और ईश्वर के, चैन्यरूपी होने के कारण अणुमात्र भी भेद नहीं है, इसकारण उन के भेद की कल्पना करना व्यर्थ है और ज्ञान सत्वगुणकी वृत्ति होने के कारण प्रकृति का ही गुण है, इसकारण जीव ईश्वर की एकता मानकर पचीस तत्त्व मानने का पक्ष चला है ॥ ११ ॥ तीनोगुणों की समतारूप अवस्था ही प्रकृति है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यंगोभयं मनः ॥ १५ ॥ शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यर्थजातयः ॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥ सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ॥

इसकारण स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय के कारण जो सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण हैं वह उस प्रकृति के ही हैं, आत्मा के नहीं हैं, क्योंकि—आत्मा अकर्त्ता है इसकारण उस के विषैं सृष्टि आदि के कारणभूत गुणों का आश्रयत्व नहीं होसक्ता ॥ १२ ॥ इसकारण सत्त्वगुणमय ज्ञान प्रकृति का ही गुण है तैसे ही रजोगुणमय कर्म और तमोगुणमय जो अज्ञान है सो इस तत्वों की संख्या में तत्व नहीं है और उन का प्रकृति के गुणों में ही अन्तर्भाव है, गुणों का मेलन करनेवाला काल स्वभाव और सूत्र(महत्तत्त्व) इन का भी प्रकृति में ही अन्तर्भाव है॥१३॥हे उद्धवजी ! पुरुष प्रकृति,महत्तत्व,अहङ्कार आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी यह मैंने नौ तत्व कहे हैं ॥ १४ ॥ श्रोत्र, त्वचा चक्षु, घ्राण और जिव्हा यह पाँच ज्ञानेन्द्रियें, वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ यह पाँच कर्मेंद्रियें तथा ज्ञानकर्ममय मन यह ग्यारह ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयों के रूप से परिणाम को प्राप्तहुए पञ्चमहाभूत और सत्व, रज, तम यह तीनगुण सबमिलकर मेरे मत में अट्ठाईसतत्व हैं,चलना,बोलना वीर्य का त्यागकरना मल का त्यागकरना और कलाकुशलता यह कर्मेंद्रियों के फल हैं इसकारण इन को कर्मेन्द्रियों में ही अन्तर्गत जानना ॥ १६ ॥ श्रोत्रइन्द्रिय से गन्धपर्यन्त, पहिले कहेहुए सोलह विकाररूपकार्यों को और महत्तत्व से लेकर पृथ्वीपर्यन्त कहेहुए सात कारणों को धारण करनेवाली जो प्रकृति वही इस जगत् की सृष्टि आदि के विषय में गुणों के द्वारा सृज्यत्व आदि अवस्था को धारण करती है और परिणामरहित तथा निमित्तकारणरूप जो पुरुष वह केवल साक्षीपने से देखता है इसकारण वह, उन परिणामवाले प्रकृति आदि से निराला है ॥१७॥ प्रकृति से उत्पन्न होकर, विकार को प्राप्त होनेवाले जो महत्तत्व आदिकारण, वह प्रकृति का आश्रय करके, पुरुष के अवलोकन से सामर्थ्ययुक्तहुए और परस्पर संयोगयुक्त होकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं ॥ १८ ॥ सात ही तत्व कहनेवालों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेजः आपोन्नमात्मनः ॥ जाताने तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतान्येंद्रियाणि च ॥ पंच पंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेंद्रियाणि पंचैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्वमात्मानौ महाभूतेंद्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ ॥ २४॥ इति नानासंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्य-

का अभिप्राय यह है कि—पञ्चमहाभूत, ज्ञान (द्रष्टा जीव) और आत्मा (द्रष्टा का और दृश्य जगत् का आधार) इतने ही तत्व होते हैं; तिन में प्रकृति, महत्तत्व और अहङ्कार इन कारणतत्वों का और इन्द्रिय प्राण आदि कार्यतत्वों का आकाश आदि में अन्तर्भाव जानना ॥ १९ ॥ पञ्चमहाभूत और छठा परमात्मा (पुरुष) यह थे तिन में वही परमात्म अपने से उत्पन्नहुए उन आकाशादि से युक्त होकर उस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है और तिन में अन्तर्यामिरूप से प्रवेश करता है; यहाँ भौतिक पदार्थों का पञ्चमहाभूतों में और जीव का परमात्मा में अन्तर्भाव जानना ॥ २० ॥ कोई चार ही तत्व कहते हैं, तहाँ आत्मा से उत्पन्नहुए तेज, जल और पृथिवी यह तीन और चौथा यही था, उन चार तत्वों से ही इस अवयवी जगत् का जन्म हुआ है, इस से चार तत्वों में ही सब कार्यकारणों का अन्तर्भाव जानना ॥ २१ ॥ कितनो ही के मत में सत्रह तत्व गिने हैं, तिन में पञ्च महाभूत, शब्दादि पाँच विषय, श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियें और एक मन इन के साथ आत्मा है ॥ २२ ॥ सोलह तत्वों की गिनती में भी पूर्व के ही पन्द्रह तत्व हैं और आत्मा ही सङ्कल्प करनेलगता है तो उस को मन कहते हैं इसकारण आत्मा और मन एक ही तत्व है; कोई तेरह ही तत्व कहते हैं, तहाँ पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियें, मन, जीव और आत्मा यह समझने ॥२३॥ ग्यारह ही तत्व हैं ऐसा भी पक्ष है, तहाँ आत्मा, पञ्चमहाभूत और पाँच ज्ञानेन्द्रियें यह जानने; नौ तत्व मानने के पक्ष में पञ्चमहाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार और पुरुष यह समझने ॥१४॥ इसप्रकार ऋषियों ने तत्वों की भिन्न भिन्न संख्या कहीहै वह, प्रकृति से पुरुष निराला है इस के समझाने के निमित्त ही है, वह सब युक्तिसहित होने के कारण न्याय के अनुकूल ही हैं, क्योंकि—विद्वान् पुरुषों का कौनसा कहना ठीक नहीं है? ॥२५॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे श्रीकृष्णजी! प्रकृति और पुरुष यह दोनों यद्यपि स्वभाव से जड और चेतन होने के कारण परस्पर भिन्न हैं तथापि उन की भिन्न २ होने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योऽन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ २६ ॥ एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ मगांग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥ दृग्रूपमर्को वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिद्ध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्व-

प्रसिद्धि न होने के कारण उन का भेद नहीं दीखता है अर्थात् प्रकृति के कार्यरूपदेह में यही आत्मा है ऐसा समझने में आता है और आत्मा में यही देह है ऐसा ध्यान में आता है, उन का परस्पर भेद ध्यान में नहीं आता है ॥ २६ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! इस प्रकार मेरे हृदय में के इस बडेभारी सन्देह को, तुम सर्वज्ञ होनेके कारण, युक्ति से निपुण अपने वचनों के द्वारा दूरकरसकते हो ॥ २७ ॥ क्योंकि - इस संसार में जीवों को यथार्थज्ञान तुम्हारे अनुग्रह से ही होता है और ज्ञान का नाश भी तुम्हारी माया से ही होता है और अपनी मायाके विस्तार को ठीक २ तुम ही जानते हो, दूसरा कोई नहीं जानता इसकारण तुम ही इस सन्देह को दूर करो ॥ २९ ॥ यह सुनकर श्रीभगवान् ने कहा है कि—हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! महत्तत्व आदिरूप से परिणाम को प्राप्तहोनेवाली वह प्रकृति और परिणाम को न प्राप्त होनेवाला वह पुरुष, ऐसा प्रकृति पुरुषों का भेद स्पष्ट ही है प्रकृति शब्द से कहा हुआ यह देह इंद्रियादि का समूहरूप सर्ग (सृष्टि) जन्मादिविकारों से युक्त है और गुणों के परस्पर मेल का करा हुआ है ॥ २९ ॥ हे उद्धवजी ! मेरी गुणमयी माया, अपने गुणों से अनेक प्रकार के भेद और भेदबुद्धि को उत्पन्न करती है तिस में पहिले विकार को प्राप्त होनेवाला सर्ग ही तीन प्रकार का है, एक अध्यात्म, दूसरा अधिदैव और तीसरा अधिभूत ॥ ३० ॥ चक्षु अध्यात्म, रूप अधिभूत और इस चक्षुके गोलक में प्रवेश करा हुआ जो सूर्य का स्वरूप है वह अधिदैव है, इस चक्षु की समान ही त्वचा, स्पर्श और वायु; श्रवण, शब्द और दिशा; जिन्हा, रस और वरुण; नासिका, गन्ध और अश्विनीकुमार; चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव; मन, मन्तव्य और चन्द्रमा; बुद्धि, बोद्धव्य और ब्रह्मा; अहङ्कार, अहङ्कर्तव्य और रुद्र इन को समझना, इन अध्यात्मआदिकों की परस्पर सापेक्षता सिद्ध होती है अर्थात् चक्षु न होय तो रूप सिद्ध नहीं होता है, रूप न होय तो चक्षु सिद्ध नहीं होता; चक्षु की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गादिः श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तं ॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ नह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ॥

प्रवृत्ति नहीं होय तो उन की अधिष्ठात्री देवता सिद्ध नहीं होती है, अधिष्ठात्रीदेवता के विना चक्षु की प्रवृत्ति भी सिद्ध नहीं होती और चक्षु की प्रवृत्ति के विना रूपका ज्ञान भी सिद्ध नहीं होसक्ता, तात्पर्य यह कि—सबों की सिद्धता में परस्पर की अपेक्षा है, इसीप्रकार त्वचा आदि तीन२ पदार्थों की सिद्धता जानना और जो आकाश में मण्डलरूपी सूर्य है वह किसी की अपेक्षा न रखकर स्वयं ही सिद्ध है और अपने प्रकाश से सर्वत्र के चक्षुओं के अधिष्ठात्री देवताओं का जैसा प्रकाशक है तैसे ही आत्मा इन अध्यात्मिक आदिकों का आदिकारण होकर इन से निराला और स्वतःसिद्ध प्रकाश से परस्पर प्रकाशक होनेवाले पहिले कहेहुए अध्यात्मिक आदिकों का प्रकाशक है ॥ ३१ ॥ जो यह, गुणों का क्षोभ करनेवाले कालरूप निमित्त से, जिस का प्रकृति मूलकारण है ऐसे महत्तत्व से उत्पन्न हुआ सात्विक, राजस और तामस विकाररूप अहङ्कार है वही मोहमय विकल्प का (मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ इत्यादि भेद का) कारण है ॥ ३२ ॥ देह से निराला आत्मा है अथवा नहीं है ऐसे भेद का आश्रय करके रहनेवाला जो विवाद है वह आत्मा के अज्ञान से ही हुआ है, वह वास्तव में यद्यपि निरर्थक है तथापि स्वस्वरूपभूत मुझ परमात्मा से जिन की बुद्धि फिरीहुई है उन पुरुषों का कभी दूर नहीं होता है अर्थात् वह भेदबुद्धि से करेहुए कर्मों के द्वारा उच्चनीच योनियों में सुखदुःखरूप संसार ही पाते हैं ॥ ३३ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे प्रभो! जिन की बुद्धि आप से फिरीहुई हैं वह प्राणी अपने करेहुए कर्मों से उत्तम नीच शरीरों को जैसे ग्रहण करते हैं और जैसे त्यागते हैं सो मुझ से कहिये ? अर्थात् व्यापक भी आत्मा को इस देह से तिस देह में जाना कैसे बनता है, अकर्त्ता को कर्म करना कैसे बनता है ? और नित्य को जन्ममरण कैसे प्राप्त होते हैं, अल्पबुद्धि पुरुषों को इस विषय की तर्क करना भी कठिन है सो हे गोविन्द! आप मुझ से कहिये; इस को जाननेवाला प्रायः दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि—सब ही लोक तुम्हारी माया से मोहित होरहे हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

लोकाँल्लोकं प्रयात्यन्यं आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः ॥ जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विपर्ययस्त्वीकृतिर्प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥ स्वप्नं मनोरथं चैत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥४०॥ इंद्रियायनसृष्टेयं त्रिविद्धा भाति वस्तुनि ॥ बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि

कि—हे उद्धवजी! पाँच इन्द्रियों से युक्त यह जीवका मन ही एकदेहसे दूसरे देहमें अथवा एक लोक से दूसरे लोक में जाता है तब उस मन से निराला भी आत्मा, उस मनसे एकता को प्राप्त होकर उस के अनुसार ही वर्त्ताव करता है अर्थात् उस के जाने से अपने को भी गयाहुआ मानता है ॥ ३६ ॥ कर्मों के वशीभूत हुआ मन, देवमनुष्यादि अनेकों शरीरों की प्राप्ति के कारणरूप कर्मों में से फलोन्मुख हुए कर्मों करके आगे आनेवाले देखे और सुनेहुए विषयों का देह के अन्तकाल में ध्यान करनें लगता है तब उस ध्यान में आये हुए नवीन विषय में (देह में) प्रवेश करता है और पाहले पुरातन विषय से (देह से) छुटता है फिर उसकी पहिला पिछला विचार करने की बुद्धि नष्ट होजाती है ॥ ३७ ॥ उस समय कर्म से प्राप्तहुए देवादि शरीर के ऊपर 'यही मैं हूँ' ऐसा अत्यन्त आग्रही होकर वह देह उत्तम होतो हर्ष आदि किसी कारण से और नीच होयतो भय वा शोक आदि किसी कारण से जीव को प्रथम देह का सर्वथा विस्मरण होजाता है यही आत्मा का मरण हुआ कहलाता है आत्मा देह की समान नष्ट नहीं होता है ॥ ३८ ॥ और हे उद्धवजी! दूसरे शरीर से मन की एकता होकर 'यह देह मैं ही हूँ' ऐसी बुद्धि से स्वप्न की समान अथवा मनोरथ की समान जीव उस नवीन देह को जो स्वीकार करता है यही उस का जन्म कहाता है, उस समय भी देह की समान जीव की उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ३९ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला अथवा मनोरथ करनेवाला यह जीव, उस स्वप्न के अथवा मनोरथ के समय पूर्वकाल के अपने देह का स्मरण नहीं करता है और प्रतीत होतेहुए उस पूर्व के ही देह को, यह अपूर्व देह है, ऐसा देखता है ॥ ४० ॥ तात्पर्य यह कि-मन का दूसरे देह से ऐक्यभान होने पर तिससे आत्मा को भी उस देह के अभिमान के कारण उत्तम मध्यम अधमपना प्राप्त होता है और फिर जैसे जीव स्वप्न में मिथ्याभूत अनेकों देहों को देखनेलगता है तो अनेक स्वरूपवाला प्रतीत होता है अथवा जैसे कुपुत्र का पिता वास्तव में सर्वत्र समान होने पर भी पुत्र के अभिमान से उस के शत्रु मित्रादिकों में भेदभाव रखता है तैसे ही आत्मा भी उस देह के सम्बन्ध से बाहर के शब्दादि विषयों के सेवन का और भीतर के सुखदुःखादि परिणामों के भोगने का कारण होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवन्ति न भवन्ति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥ सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वामरो भ्रान्त्या यथाऽग्निरुदारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्यान्यस्योच्चावचा-

॥ ४१ ॥ हे उद्धवजी ! प्रतिक्षण में प्राणीमात्र के शरीर उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथापि काल के अतिसूक्ष्म होने से उस के वेग करके करेहुए वह देहों के उत्पत्तिनाश अज्ञानी पुरुषों के ध्यान में नहीं आते हैं ॥४२॥ जैसे काल के द्वारा, अग्नि की ज्वालाओं के परिणाम आदि करके, नदियों का प्रवाहों के गमन आदि करके अथवा वृक्षों का फलों के रूपान्तर आदि करके क्षण २ में परिवर्त्तन (बदलना) होता है तैसे ही उस ही काल के द्वारा करीहुई सकलप्राणियों के शरीरों की, आयु, अवस्था, तेज, बल, कर्म, कुशलता आदि अनेकप्रकार की दशा देखने में आती है ॥ ४३ ॥ जैसे अग्नि की ज्वाला क्षण २ में नवीन २ उत्पन्न होकर पहिली नष्ट होजाती हैं परन्तु उन पहिली पिछली सब ज्वालाओं के समान होने के कारण, वही यह दीपक है ऐसा देखनेवालों का ध्यान होता है अथवा जैसे प्रवाहों का जल क्षण २ में पहिला जाकर नया आने पर यह वही प्रवाह है ऐसा समझाजाता है तैसे ही जिन का आयु व्यर्थ जाता है ऐसे सैकडों मनुष्यों के शरीरों की दशा क्षण २ में बदलती हैं तौभी यह वही पुरुष है ऐसा मिथ्या ही समझना और मिथ्या ही कहना व्यवहार में चलता है ॥ ४४ ॥ देह में अहम्भाव रखनेवाले पुरुष के ही कर्म, जन्म और मरण हैं दूसरे के नहीं हैं ऐसी व्यवस्था कैसे होसक्ती है ? क्योंकि—एक ही घट, एक पुरुष के मत में है और एक पुरुष के मत में नहीं है ऐसा कहना नहीं बनसक्ता, ऐसा कहो सो ठीक नहीं है, क्योंकि—देहाभिमानवाला यह जीवात्मा भी वास्तव में न उत्पन्न होता है, न मरण को प्राप्त होता है तथापि भ्रान्ति से, जैसे महाभूतरूप अग्नि,प्रलयकालपर्यन्त रहनेवाला होकर भी काष्ठोंके संयोगवियोगों से उत्पत्ति को प्राप्त हुआसा प्रतीत होता है तैसे ही आत्माजन्मरहित होकर भी उत्पन्नहुआसा और अगर होकर भी मरण को प्राप्तहुआसा प्रतीत होता है ॥४५॥ गर्भ में प्रवेश, तहाँ बढना, जन्म लेना, बालकपना (पाँच वर्षपर्यन्त), कुमार अवस्था (सोलह वर्षपर्यन्त), यौवन (पचास वर्षपर्यन्त), वयोमध्य (साठ वर्षपर्यन्त), तदनन्तर वृद्धावस्था और फिर मृत्यु यह शरीर की नौ अवस्था हैं॥४६॥इस मन के विकार से प्राप्त हुई देह की छोटी बड़ी अवस्था,प्रकृति के अज्ञान से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तनूः ॥ गुणसंगादुपादत्ते केचित्कांश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यागमुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजाविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥४९॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान् रजसा सुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥ नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ॥ एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथांऽभसा प्रचलता तरवोपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्र-

जीवों को प्राप्त होती हैं परन्तु उनमें से एकाद जीव,परमेश्वरके अनुग्रह से,'अवस्थाओं वाले देह का द्रष्टा आत्मा, अवस्थायुक्त नहीं होता है ऐसे विवेक ज्ञान से' उन अवस्थाओं का त्याग करता है ॥ ४७ ॥ यद्यपि जन्म और मरण के समय वह (देह के जन्म और मरण) अपने देखने में नहीं आते हैं तथापि पिता के अन्तकाल में अपनी जंघापर उन का मस्तक रखकर बैठनेवाले पुत्र को उन पिता का मरण देखने में आता है और पुत्र का जातसंस्कार करते में उसका जन्म देखने में आता है तिस से वह अपने देह के जन्म और मरण का भी अनुमान करलेय इस प्रकार दृश्यपना होने के कारण उत्पत्तिनाशयुक्त देहों का द्रष्टा आत्मा उत्पत्ति नाश धर्मवाला नहीं होता है॥४८॥बीज से वृक्ष का जन्म होता है और छेदन आदि से नाश होता है ऐसा जो जानता है वह द्रष्टा (देखनेवाला) जैसे उस वृक्ष से निराला होता है तैसे ही देह के उत्पत्ति नाश देखनेवाला जो जीव वह तिस देह से निराला है इस कारण वह जीव तिस देह में रहताहुआ भी उस के जन्म मरण से संयुक्त नहीं होता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार प्रकृति के कार्यरूप देहादिकों से यथार्थ रीति करके आत्मा का विचार न करताहुआ अज्ञानी पुरुष, विषयों में आसक्त होताहुआ संसार पाता है ॥ ५० ॥ वह, अनेक प्रकार के कर्मों से जिधर तिधर को घुमायाजाकर सत्वगुण के समागम से ऋषियों का वा देवताओं का जन्म पाता है, रजोगुण के योग से असुरों की वा मनुष्यों की योनि में जाता है और तमोगुण के योग से पिशाचयोनि में अथवा तिर्यक्योनि में जन्म पाता है ॥ ५१ ॥ जैसे नाचनेवाले वा गानेवाले मनुष्यों को देखनेवाला मनुष्य, उनका अनुकरण करता है अर्थात् उन नृत्य गान आदिकों की गति और उन के शृङ्गार करुणा आदि रसों को अपने मन में लाता है तैसेही बुद्धि के गुणों को देखनेवाला पुरुष, वास्तव में अकर्त्ता होकर भी उन गुणों के बल से उन के धर्मों का अपने में आरोप कर के भ्रम पाता है ॥ ५२ ॥ जैसे तालाव आदिकों में के हिलनेवाले जल के कारण से तिस में प्रतिबिम्बित हुए तटपर के वृक्ष भी हलतेहुए से प्रतीत होते हैं तैसे ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतीव भूः ॥ ५३ ॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्तते॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिंद्रियैः ॥ आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥ क्षिप्तोऽवमानितोसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥ निष्ठितो मूत्रितो वाज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुद्ध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं मन्य आत्मन्यसदतिक्रमम्॥५९॥विदुषापि

अन्तःकरण के जन्म मरण आदि करके, तिस अन्तःकरण से तादात्म्य को प्राप्तहुआ आत्मा भी जन्म मरण को प्राप्त होता है ऐसा प्रतीत होता है अपने आप चारोंओर को घूमते हुए पुरुष के नेत्र इन्द्रिय से जैसे चारोंओर की भूमि भी घूमतीहुई सी प्रतीत होती है तैसे ही देह के और आत्मा के तादात्म्य होने के कारण आनन्दादि गुण यद्यपि वास्तव में आत्मा के हैं तथापि मानों वह शब्दादि विषयोंके हैं ऐसे प्रतीत होते हैं ॥ ५३ ॥ हे उद्धवजी ! जैसे स्वप्न में दीखेहुए अथवा मनोरथ के समय मन में विचारेहुए सब विषय मिथ्या हैं तैसे ही आत्मा को प्राप्त हुआ यह विषयानुभवरूप संसार भी मिथ्या है ।५४। जैसे स्वप्न, वास्तव मे सच्चा न होकर भी उस समय विषयोंका चिन्तवन करनेवाले पुरुषको तहाँ प्राप्त हुआ अनर्थ (अपने शिर का कटना आदि दुःख) जगने के प्रयत्न के विना दूर नहीं होता है तैसेही इसआत्माका अहन्ता ममता रूप संसार,वास्तवमें मिथ्याहोकरभी तिस में कुछ अर्थ न हो सका तो तिस अज्ञानदशा में विषयोंका चिन्तवनकरनेवाले उसके जन्म मरण नहीं छूटते हैं इस कारण अज्ञानकी निवृत्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये ॥५५॥ इसकारण हे उद्धवजी ! तुम अपनी दुष्ट (कभी भी तृप्त न होनेवाली) इन्द्रियों से विषयों का सेवन न करो और अपने स्वरूप के अज्ञान से प्रतीत होनेवाला यह सुखदुःख रूपी संसार भ्रम है, ऐसा देखो ॥ ५६ ॥ नीच पुरुषों ने जिस का तिरस्कार करा, अपमान करा, हास्य करा, निन्दा करी, ताडन करा, बन्धन करा और वृत्ति (आजीविका) छीन ली ॥ ५७ ॥ और अज्ञानी पुरुषों ने, जिस के शरीर पर थूका अथवा मूत्र करा, ऐसे अनेक प्रकार के परमेश्वर की निष्ठा से चलायमान करने को उपाय करा हुआ और कष्ट पहुँचाया हुआ पुरुष आप ही अपना उद्धार करलेय ॥ ५८ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे कहनेवालों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ! तुम्हारे कहेहुए इस सहने के उपाय को जैसे मैं सहज में जानजाऊँ तैसा हमसे (मुझ से वा आगे को होनेवाले अपने भक्तों के निमित्त) कहिये, क्योंकि—यह दुष्टपुरुषों का करा हुआ निन्दा आदि अपराध विद्वान् पुरुषों के मनको भी सहन होना परमकठिन है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ५९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी॥ऋते त्वद्धर्मनिरतांश्छांतांस्ते चरणालयान॥६०॥ इतिश्रीभागवते म०ए०भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥७॥बादरायणिरुवाच ॥ सँ एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुंदस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य सँ वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥ न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः॥३॥कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रियाँ ॥ वार्त्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः

हे जगदात्मन् ! तुम्हारे धर्म में मग्न, शान्त और तुम्हारे चरणों का आश्रय करके रहने वाले पुरुषों के सिवाय विद्वान् पुरुषों को भी दुष्टों का कराहुआ अपराध सहन करनापरम कठिन है, क्योंकि—सबका स्वभाव बड़ाबलवान् और दुस्तर है ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैंकि—हे राजन् ! इसप्रकार भगवद्भक्तों में मुख्य उद्धवजी के प्रार्थना करेहुए, यादवों में मुख्य और जिनका पराक्रम श्रवण करनेयोग्य है ऐसे भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनेदास उद्धवजी के वचन का सत्कार करके उन से कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे बृहस्पतिजी के शिष्य उद्धवजी ! इसलोक में ऐसा साधु कोई नहीं है कि—दुष्टों के उच्चारण करेहुए दुर्वचनों से विधेहुए अपने अन्तःकरण को सावधानी से शान्त करने को समर्थ होय ! ॥ २ ॥ क्योंकि—मर्मस्थान में लगेहुए नीच पुरुषों के कठोर वचनरूप वाणों से पुरुष जैसा दुःख पाता है तैसा मर्मस्थल में लगेहुए लोहे के सच्चे वाणों से विधा हुआ भी पुरुष सन्ताप नहीं पाता है ॥ ३ ॥ हे उद्धवजी ! इस तिरस्कार को सहन करने के उपाय को जानने के विषय में, महापुण्यकारक इतिहास वृद्धपुरुष कहते हैं वह मैं तुम से प्रश्न के उत्तररूप से वर्णन करता हूँ; तुम एकाग्रपने से ध्यान दो ॥४॥ दुर्जनों से तिरस्कार करेहुए परन्तु अपने कर्मों के परिपाक को स्मरण करके धैर्य धरनेवाले किसी एक भिक्षुक ने (संन्यासी ने) गानकरा है अर्थात् तिरस्कार को सहन करने के विषय में बडा अच्छा विचारकरा है ॥ ५ ॥ अवन्तिदेशों में (मालवा में) धनादिसम्पत्ति से परमसम्पन्न कोई एक ब्राह्मण था; वह खेती व्यापार आदि करता था और कामी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्मापि कालेऽकामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद्राजतोऽन्यतोऽपि वा ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो वाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १६ ॥ स चोहे

लोभी, महाक्रोधी और कदर्य था ॥ ६ ॥ उस ने, अपने धर्मरहित घरों में बान्धवों का अथवा अतिथियों का वचनमात्र से भी सत्कार नहीं करा, तैसे ही अपना देह भी भोगों को भोगने के समय विषयों से सन्तुष्ट नहीं करा ॥ ७ ॥ तब ऐसे दुष्टस्वभाववाले उस कदर्य के पुत्र, बान्धव, स्त्री, कन्या और सेवक पुरुष यह सब ही खिन्न होकर उस का प्रियकार्य तो नहीं ही करते थे परन्तु उलटा द्रोह करनेलगे । ८ ॥ इसप्रकार यक्ष की समान केवल रक्षा करने के धन का संग्रह करनेवाले और धर्मकामरहित होने के कारण इस लोक और परलोक से भ्रष्ट हुए तिस कदर्य ब्राह्मण के ऊपर नित्य करनेयोग्य पञ्चमहायज्ञ के देवता कुपितहुए ॥ ९ ॥ उन पञ्चमहायज्ञों के अभिमानी देवताओं के अनादर से, द्रव्य मिलने की पूर्त्ति करनेवाला उस का पुण्यांश नष्ट होगया ऐसे उस कदर्य के, खेती व्यापार आदि अनेकों प्रकार के परिश्रमों से मिलाहुआ धन नष्ट होनेलगा ॥ १० ॥ हे उद्धवजी! उस अधम ब्राह्मण का कुछ धन बान्धवों ने लेलिया, कुछ चोरों ने लेलिया, कुछ घरों में आग आदि लगकर नष्ट होगया, कुछ अन्न की खत्तियों को जल आदि लगकर नष्ट होगया, कुछ वकील आदिकों ने लेलिया और कुछ राजा ने अनेक प्रकार के कारणों से छीनलिया ॥ ११ ॥ इसप्रकार धन नष्ट होने पर धर्म और कामभोगोंसे रहित तथा स्वजनों का उपेक्षा कराहुआ वह ब्राह्मण अपार चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार द्रव्य नष्ट होने के कारण लम्बे २ श्वास छोडकर नष्टहुए द्रव्य का चिन्तवन करनेवाले सन्ताप को प्राप्तहुए और गद्गदकण्ठ हुए तिस ब्राह्मण को एकायकी वैराग्य पूर्वक बड़ा

१ 'आत्मानं धर्मकृत्यञ्च पुत्रदारांश्च पीडयन् । देवतातिथिभृत्यांश्च स कदर्य इति स्मृतः ॥ अर्थात्, अपना देह, धर्मकार्य, स्त्री, देवता, अतिथि और सेवकों को त्रास देकर जो वर्त्ताव करता है उस को कदर्य कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दमिदं कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एका स्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजन्त्याशु

भारी विवेक प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर वह अपने मन में ऐसा कहने लगा कि— अहो मेरी बड़ीबुरी वार्त्ता हुई, मैंने अपने शरीर को व्यर्थ दुःख दिया; जिस मेरा धन प्राप्त करने के निमित्त बड़ा भारी परिश्रम था तिस मेरा वह सबद्रव्य, धर्म के निमित्त और काम के निमित्त खर्च न होकर व्यर्थ नष्ट हुआ ॥ १४ ॥ प्रायः कदर्यों का धन कभीभी सुख देनेवाला नहीं होता है, इतना ही नहीं किन्तु वह धन, इसलोक में जीवित रहने पर्यन्त तिस के देह को और मन को ताप देता है और मरण पाने के अनन्तर उस के होते में धर्माचरण न करने के कारण, नरक प्राप्ति का साधन होता है ॥ १५ ॥ जैसे थोड़ासा भी श्वेत कुष्ट, पुरुषों के सुन्दर भी रूप को हीन करदेता है तिसी प्रकार थोड़ासा भी लोभ, यशस्वी पुरुष के निर्मल यश और गुणी पुरुषों के स्तुति योग्य गुणों का नाश करता है ॥ १६ ॥ पहिले धन मिलने के समय मनुष्यों को त्रास होता है; फिर उस (मिलेहुए) को बढ़ाने के समय, रक्षा करने के समय खर्च होने पर, नाश की प्राप्त होनेपर और उपभोग में आने पर भी त्रास, चिन्ता और भ्रम (धर्म में अधर्मबुद्धि और उपकारी में अनुपकारीबुद्धि) यह होते हैं और धन की प्राप्ति के निमित्त—चोरी, हिंसा, असत्यभाषण, दम्भ, काम, क्रोध, अभिमान, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, स्त्री, द्यूत और मद्यपान यह पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, इसकारण कल्याण की इच्छा करनेवाला पुरुष, अर्थरूपी अनर्थ को दूर से ही त्यागदेय ॥ १८ ॥ १९ ॥ भ्राता, स्त्री, माता, पिता, तैसे ही मित्र सम्बन्धी कि-जो स्नेह के सम्बन्ध से एकमन होकर रहते थे वह भी धन के निमित्त भेद को प्राप्त होते हैं; इतना ही नहीं किन्तु बीस कौडीमात्र धन के निमित्त भी वह तत्काल सब ही परस्पर के शत्रु होजाते हैं ॥ २० ॥ यह थोडेसे भी धन के निमित्त से सन्ताप पाकर स्पर्धा करते हैं और अति क्रोध में भरकर परस्पर के स्नेह को एकसाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पृशो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्विजाग्रताम् । तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥ द्रविणे कोनुपेज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बन्धूंश्च भागिनः ॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ॥ कुशला येन सिद्ध्यन्ति जरठः किं नु साधये । २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयार्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः । २८ ॥ सोहं कालावशेषेण शोषयिष्ये -

त्यागकर घर में से निकालदेते हैं अथवा उसी समय परस्पर मारपीट करनेलगते हैं ॥२१॥ देवताओंके भी प्रार्थना करनेयोग्य मनुष्यजन्म को तिसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मणशरीर को पाकर तिसका अनादर करके जो स्वार्थ का नाश करते हैं अर्थात् अपने हित (मोक्ष) को नहीं साधते हैं वह परलोक में नरकगति को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ इसकारण स्वर्ग और मोक्ष के द्वार (साधन) इस मनुष्यदेह को पाकर कौनसा विचारवान् पुरुष, अनर्थ के घर ऐसे धन में आसक्ति करेगा ? अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, ज्ञाति और द्रव्य के भागी, भाई बन्धु इन की और अपनी भी तृप्ति, धन खर्चकर अन्नादि के द्वारा जो नहीं करता है वह यक्ष की समान धन की रक्षा करनेवाला पुरुष, नरक में जाकर पड़ता है ॥ २४ ॥ ऐसा विचार करके सन्ताप को प्राप्त होता हुआ वह भिक्षु कहता है कि—अरे ! रे ! धन पाने के निमित्त व्यर्थ उद्योग करके उन्मत्त हुए मेरा वह धन कि—जिस से धर्मादि सिद्ध होते हैं जातारहा; आयु जातारहा और बल भी जातारहा अबतो वृद्ध हुआ मैं कौनसा फल साधूँ ? ॥ २५ ॥ अब अपनी समान दूसरे का भी शोक करता है कि—अहो ! इसप्रकार के अनर्थ को जाननेवाला भी पुरुष, भला कौन से कारण से निरन्तर व्यर्थ धन पाने के व्यापार से क्लेश पाता है ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि—निःसन्देह यह सब ही लोक—किसी की माया से अत्यन्त मोहित होरहा है ॥ २६ ॥ मृत्यु के घेरेहुए इस को, धन वा धन देनेवाले लोक, भोग वा भोग देनेवाले लोक इन से,तैसेही वारंवार जन्म देनेवाले कर्मों से क्या प्रयोजन है ? ॥२७॥ तिस से अब मैं निःसन्देह ऐसा मानता हूँ कि—मेरे ऊपर सकल देवमय भगवान् प्रसन्न हुए हैं, कि—जिन की कृपा से धननाश के द्वारा मुझे संसारसमुद्र से पार उतारने वाली नौका रूप वैराग्य प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥ तिस से अब तिस वैराग्य को प्राप्तहुआ मैं,यदि कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्येऽगमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शांतो भिक्षुरभून्मुनिः" ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ ते वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र वेहीभिः परिभूतिभिः ॥ ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठं चैके ऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्यादृदुर्मुनेः" ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ॥ यत्तद्वाचं वाचयन्ति तांडयन्ति न वक्ति चेत् ॥३६॥ तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद्ध-

आयु का समय शेषरहा होयगा तो उस के द्वारा अपने में ही सन्तुष्ट और धर्मादि साधनों में सावधान रहकर अपने शरीर को तपस्या करके सुखाऊँगा ॥ २९ ॥ इस विषय में त्रिलोकी के स्वामी देवता मुझे अनुमोदन दें अर्थात् विघ्न न करें, देखो—राजा खट्वाङ्ग ने, एक मुहूर्त्त में ही वैकुण्ठलोक की प्राप्ति करली है तिस से मुझे थोडे काल में सद्गति प्राप्त होयगी ऐसा प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी ! इसप्रकार अवन्ति देशों में रहनेवाले उस ब्राह्मण ने, मन से निश्चय करके अहन्तामतारूप हृदय की ग्रन्थि को दूर करदिया और शान्त तथा मननशील होकर संन्यासी होगया॥३१॥वह भिक्षु,मन,इन्द्रियें और प्राणोंको स्वाधीन करके सर्वत्र आसक्तिरहित और अपने श्रेष्ठत्व को न दिखाताहुआ इस पृथ्वीपर विचरताहुआ नगरों में और ग्रामों में केवल भिक्षा के निमित्त प्रवेश करता था ॥ ३२ ॥ हे उद्धवजी ! तिस अवधूत (मलिन) हुए वृद्ध संन्यासी को देखकर नीच पुरुष,अनेकप्रकार के तिरस्कार के साधनोंसे उस को दुःख देनेलगे ॥३३॥ कितनोंही ने उस का त्रिदण्ड खेंचलिया, कितनोंही ने पात्र,कमण्डलु और आसन यह छीनलिये, दूसरे कितनोंही ने, जप की माला, कंथा,चीर, कौपीन आदि छीनलीं ॥ ३४ ॥ कितनो ही ने तो—हे भगवन् ! यह तुम अपने त्रिदण्डादिक लो ऐसा कहकर वह दिखाये और देकर फिर छीनलिये; एक समय वह भिक्षा मांगकर लायाहुआ अन्न नदी के तट बैठकर भोजन करने लगा तब, वह पापी पुरुष उस के शरीर पर मूत्रोत्सर्ग करते थे,उस के मस्तक पर थूकते थे, मौन बैठेहुए को बुलवाते थे और न बोलने पर ताड़ना करते थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कितने ही दूसरे पुरुष, यह चोर है ऐसा कहकर कठोर वचनों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्ध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपन्त्येके ऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त ईमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयन्ति च ॥ तं बंधुनिरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुद्ध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत ईमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥४२॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति॥ ४४॥ अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं

उसका तिरस्कार करते थे, कितने ही बाँधो २ ऐसा कहकर उस को रस्सी से बाँधते थे ॥ ३७ ॥ कितने ही पुरुष, यह त्रिदण्डी के वेष का ढंग दिखाकर लोगों को धोखा देनेवाला ठग है. धन नष्ट होजाने से और कुटुम्बियों के निकालदेने के कारण इस ने यह वृत्ति (रोजगार) स्वीकार करी है, ऐसा तिरस्कार करके उस की निन्दा करते थे ॥ ३८॥ दूसरे कितने ही पुरुष, अहो ! यह बड़ा बलवान्, धैर्यवान्, और पर्वत की समान दृढ होकर, अपना निश्चय पक्का रखकर मौन धारेहुए बगले की समान अपना कार्य साधरहा है; ऐसा कहकर उस का हास्य करते थे, कितने ही तो उस के ऊपर अपनी गुदा के द्वार का वायु छोड़ते थे, कितनो ही ने, उस को बाँधलिया; दूसरों ने उस को, जैसे खेलने के तोते मैना आदि को पिंजरों में बन्द करके रखते हैं तैसे कारागार में बन्द करके डालदिया ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ इसप्रकार उस संन्यासी ने, दुर्जनों के दियेहुए ताडन आदि दुःख, देह से होने वाले ज्वरादि दुःख और दैव से होनेवाले सरदी गर्मी आदि के दुःख, इन सबों को अपने प्रारब्ध का भोग समझकर जो२ प्राप्तहुआ उस२ को भोगने का क्रम प्रारम्भ करा ॥४१॥ स्वधर्म से भ्रष्ट करने की इच्छा करनेवाले दुर्जनों से, इसप्रकार तिरस्कार को प्राप्तहुए परन्तु सात्विक धीरज धरकर स्वधर्म में रहनेवाले तिस भिक्षुक ने, यह गाथा गान करी ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—अहो ! यह सब लोक, देवता, आत्मा, गृह.कर्म वा काल यह मेरे सुख दुःख में कुछ कारण नहीं हैं किन्तु जो संसारचक्र को फिराता है वह मन ही केवल सुख दुःखों का कारण है, ऐसा कहते हैं ॥४३॥ वह अतिबलवान् मन पहिले गुणों की वृत्ति को उत्पन्न करता है तब उन गुणों से सात्विक, राजस और तामस ऐसे भिन्न२ कर्म उत्पन्न होते हैं और फिर उन कर्मों से उन कर्मों के अनुसार देव-तिर्यक् मनुष्य आदि जन्म प्राप्त होते हैं इसप्रकार मन संसारचक्र को फिराता है ॥ ४४ ॥ सङ्कल्पविकल्प करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥ ४५ ॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्येद्दानादिभिर्वः परं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवंस्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुंतुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वंत्यसद्विग्रहमत्र मर्त्याः मित्रोण्युदासीनरिपूनविमूढाः ॥ ४९ ॥ देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः ॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुर-

मन के साथ नियन्तारूप से रहनेवाला भी मुझ जीवात्मा का सखा परमात्मा, विद्याशक्ति प्रधान होने के कारण अहन्तामम्तारहित होकर लुप्त न हुए ज्ञान से केवल जीव के संसार को देखता है और यह मेरा जीवात्मा तो अपने में संसार दिखानेवाले मन को, आत्मरूप से स्वीकार करके उस के सत्त्वादि गुणों की सङ्गति से विषयों का सेवन करताहुआ बूढा होगया है अर्थात् आत्मा को यह संसार अविद्या के अध्यास से ही हुआ है, स्वयं नहीं हुआ है, क्योंकि—अध्यासरहित ईश्वर को तो सर्वथा संसार है ही नहीं किन्तु अध्यासयुक्त जीव को ही है ॥ ४५ ॥ इस से मन का निग्रह करने पर सब कुछ कराहुआसा होजाता है, नहीं तो सब व्यर्थ है, दान, नित्यनैमित्तिक स्वधर्म, नियम, यम, एकादशी आदि व्रत, शास्त्र पढना और दूसरे भी जितने साधन हैं वह सब ही उपाय मनोनिग्रह का ही अवलम्बन करके रहते हैं; अतः मन का निग्रह होना ही ज्ञान का परम साधन है ॥ ४६ ॥ इस से जिस पुरुष का मन शान्त और वश में हुआ है, उस को दानादि कार्यों का क्या करना है? कहो (ऐसा दूसरे को उपदेश करने की समान वह ब्राह्मण आपही अपने से कहने लगा) और जिस का मन वश में न होकर भटकरहा है उस को इन दानादिकों से दूसरा कौनसा फल प्राप्त होना है? ॥ ४७ ॥ अन्य इन्द्रियों के सब देवता मन के वश में हैं, परन्तु मन दूसरी किसी भी इन्द्रिय की अधिष्ठात्री देवता के वश में होकर नहीं रहता है, मन बलवानों से भी अधिक बलवान् है, और योगियों को भी भय देनेवाला देवता है इस कारण जो पुरुष उस को अपने वश में करेगा वही देवताओं का भी देवता होयगा, दूसरा कोई नहीं होयगा ॥ ४८ ॥ इसकारण जिस के रागलोभादि वेग असह्य हैं, जो मर्मभेदी है तिस मनोरूप दुर्जय शत्रु को जीतेविना कितने ही मूर्ख पुरुष, इस संसार में दूसरे कितने ही मनुष्यों के साथ में व्यर्थ वैर करते हैं और मनुष्यों में ही मित्र, उदासीन और शत्रु, यह धर्म मानते हैं ॥ ४९ ॥ केवल मन से कल्पनामात्र करेहुए इस शरीर को 'यह मैं हूं' ऐसी बुद्धि से और पुत्रादिदेहों को 'मेरे हैं' ऐसी बुद्धि से स्वीकार करके अन्धबुद्धिहुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत् । जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ॥५१॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदंगमङ्गेन निहन्यते क्वचित्कुध्यते कस्मै पुरुषः स्वदेहे॥५२॥आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ नह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् कुध्येत कस्मा- न्न सुखं न दुःखम्॥५३॥ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य

कितने ही मनुष्य, 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' ऐसे भ्रम से अन्तपाररहित संसाररूप अन्धकार में भ्रमते हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार मन ही सुख दुःख का कारण है, लोक, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म, और काल इन में कोई भी सुख दुःख का कारण नहीं है, यदि लोक सुख दुःख के कारण हों तो उस में आत्मा को क्या अर्थात् सुखदुःख का भोक्तृत्व और सुखदुःख का कर्त्तृत्व आत्मा का नहीं है, एक शरीर दूसरे शरीर को दुःख देकर आप सुख पावे तो वह सुखदुःख शरीरों के ही हुए, आत्मा के नहीं क्योंकि—अमूर्त्त और अक्रिय आत्मा किसी पदार्थ का भोक्ता वा कर्त्ता नहीं होसक्ता; तथापि शरीर का दुःख आत्मा में ही पर्यवसान पाता है, ऐसा कहो तो—परमात्मा कर्त्ता और कर्म इन दोनों में एकरूप से ही है इसकारण वह कोपयुक्त नहीं होता है, इस को अपने पर ही दृष्टान्त दे देखो कि—जब मनुष्य अपनी ही जीभ को अपने ही दाँतों से चाबता है तो उस की पीडा होने पर वह किस के ऊपर क्रोध करै? यदि दाँतों के ऊपर क्रोधित होकर उन को ताड़ना करेगा तो अपने को ही पीडा होयगी ॥ ५१ ॥ यदि इन्द्रियों के देवता दुःख के कारण हों तो भले ही हों, परन्तु उस में आत्मा को क्या? कुछ नहीं; क्योंकि—उस सुखदुःख का कर्त्तापन और कर्मपन देवताओं का ही है अर्थात् हाथ से मुखपर थप्पड़ लगाने पर अथवा मुख से हाथ को चाबलेने पर वह कर्त्तापन और कर्मपन, हाथ के और मुख के अभिमानी देवता जो अग्नि और इन्द्र इन का ही है तहाँ रहनेवाले निरहङ्कारी आत्मा का नहीं है और देवताओं का सब ही देहों में अभेद होने के कारण उन के ऊपर क्रोध करना बन नहीं सक्ता; देखो—जब कभी पुरुष अपने शरीर में किसी हाथ आदि अङ्ग से दूसरे चरण आदि अङ्ग को ताडन करता है तब वह किस के ऊपर क्रोध करता है? किसी के ऊपर नहीं ॥ ५२ ॥ सुख दुःखादिरूप परिणाम आत्मा के होते हैं ऐसा मानकर, आत्मा को सुख दुःख का कारणरूप मानाजाय तो यह सुख दुःख आत्मा के ही स्वभाव हुए; और विचार कर देखने पर आत्मा से जुदा कुछ भी नहीं है, यदि कुछ दूसरा प्रतीत भी होय तो वह भ्रान्ति से कल्पित होने के कारण मिथ्या है, ऐसे, आत्मा से दूसरा वास्तव में सुख दुःख है ही नहीं तो किस कारण से क्रुद्ध होय? ॥ ५३ ॥ यदि कहो कि—सुख दुःखादि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः॥५४॥कर्मा-दि हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्तवाचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै नहि कर्ममूलम् ॥ ५५॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चे-त्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥ नो जेनहि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रु-ध्येत कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित् क्वापि कथञ्चनास्य द्वंद्वोप-रागः परतः परस्य ॥ यथाहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभर्ति

निमित्त सूर्यादि ग्रह हैं तो—उन से जन्म रहित आत्मा को क्या हो सक्ता है ? वह ग्रह (जन्म लेनेवाले देह केही सम्बन्ध होने से जन्मलग्न से आठवें बारहवें आदि होनेपर) उत्पन्न होनेवाले देह को ही सुख दुःख देने के कारण होतेहैं, और आकाशमें के ग्रहों से तिसआकाश में के ग्रह को ही तृतीय पञ्चम आदि स्थान में एक चरण दूसरे चरण आदि दृष्टियों से पीडा कही है उन की दृष्टि के अगोचर द्वितीय षष्ठ आदि स्थान में नहीं कही है इसकारण उन की लग्न में उत्पन्न होनेवाले देह में ही उस लग्न के अभिमान से उन की पीड़ा होती है; आत्मा तो उन ग्रहो से और देह से निराला है इस कारण किस के ऊपर क्रोध करे।५४। यदि कर्म को सुख दुःख का कारण कहो तो उस में भी आत्मा को क्या?, वास्तविक रीति से देखा जाय तो कर्म कुछ है ही नहीं फिर वह कारण ही क्या होगा ?, क्योंकि—कर्म वा कर्म से होनेवाले सुख आदि, जब एक में ही जड़ता और चेतनता दोनो होयँतो जड़ता को कारण विकारीपन होसकै और चेतनता के कारण हित का अनुसन्धान तथा प्रवृत्ति होय सो देह तो जड़ है इस से उस की कर्म में प्रवृत्ति नहीं होसक्ती और पुरुष (आत्मा) तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है इस कारण उस को विकारीपन नहीं होसक्ता. इस प्रकार सुख दुःख का मूलभूत कर्म ही जब सिद्ध नहीं होसक्ता तो पुरुष कर्म के ऊपर किस कारण से क्रोध करै? ॥ ५५ ॥ यदि काल को सुख दुःखों का कारण कहो तो इस में भी आत्मा को क्या है? क्योंकि काल परमात्मा का अंशही है, अपने अंश से अपने को पीड़ा नहीं होती है; देखो जैसे अग्नि की लपट से अग्नि को ताप तथा हिम के कण से हिम को ठंड नहीं होती है इस कारण काल से होनेवाले सुख दुःखों करके आत्मा को किसी प्रकार का क्लेश नहीं होसक्ता और यह काल को अंश की कल्पना करना तो अलग रहे परन्तु प्रकृति से पर आत्मा को सुखदुःखादि का सम्बन्ध ही नहीं है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार लोक देवता आदि प्रसिद्ध सुखदुःखो के छहों कारणों का निरास करा, अब यदि कोई इन से दूसरा ही कारण उत्पन्न करे तो वह नहीं होसक्ता, यह वर्णन करते हैं—जैसे संसार का प्रकाश करनेवाले अहङ्कार को सुख दुःखादिको का सम्बन्ध है तैसा प्रकृति से पर इस आत्मा को, किसी के भी हाथ से किसी भी काल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूतैः ॥ ५७ ॥ एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धियाः ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ यं एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ७ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवा-

और किसी प्रकार भी सुख दुःखादिकों का सम्बन्ध नहीं होसक्ता, सारांश यह है कि—अहङ्कार के अध्यास से ही आत्मा में सुखदुःखादि का सम्बन्ध भासता है, वास्तव में कुछ भी नहीं है ॥ ५७ ॥ इस कारण पूर्वकाल के बड़े २ ऋषियों की स्वीकार करीहुई इस परमात्मनिष्ठा को स्वीकार करके मैं, मोक्षदाता भगवान् की चरणसेवा से ही अन्त पार रहित भी संसाररूप अन्धकार को तरजाऊँगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी! इसप्रकार धन नष्ट होने पर भी खेदरहित तिस मनन करनेवाले ब्राह्मण ने, विरक्त होकर और संन्यास धारकर पृथ्वी पर विचरते समय दुर्जनों के तिरस्कार करने पर भी ईश्वर के अनुसन्धानरूप अपने धर्म से न डिगकर ऐसी गाथा गाई है ॥ ५९ ॥ इस से सिद्ध होता है कि—जीव को सुखदुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है. मित्र, शत्रु और उदासीन आदि सब प्रकार का ही संसार जीव को अज्ञान से ही हुआ है और वह केवल अपने मन की भ्रान्ति का ही कराहुआ है, सच्चा नहीं है ॥ ६० ॥ इसकारण हे तात उद्धवजी! मुझ में लगीहुई बुद्धि से युक्त तुम, सकल प्रयत्नों से मन का विषयों से निग्रह करके उस मन को मुझ में लगाओ. इतनी ही योग की परम उन्नति है ॥ ६१ ॥ मन का निग्रह करने में अशक्त होय तो भी जो पुरुष, एकाग्रचित्त होकर भिक्षु की गाईहुई इस ब्रह्मनिष्ठा को धारण करता है अथवा सुनता है वा दूसरे को सुनाता है वह सुखदुःखादि द्वन्द्वों से कभी तिरस्कार नहीं पाता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी! अब मैं तुम से पूर्व के कपिलादि आचार्यों करके निश्चय करेहुए सांख्यशास्त्र का वर्णन करता हूँ, कि जिस सांख्यशास्त्र को जानलेने पर पुरुष तत्काल भेदबुद्धि से होनेवाले सुखदुःखादि भ्रम का त्याग करता है ॥ १ ॥ यह देखनेवाला और दीखनेवाला इत्यादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोगोचरं सत्यं द्विधाऽभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अण्डमुत्पादयामासुर्मम यतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृज-

सब ही प्रपञ्च, पहिले प्रलय के समय तैसे ही सत्ययुग में और जब पुरुष विवेक में निपुण थे तब भेदशून्य एक ज्ञानरूप ही था ॥ २ ॥ फिर वह केवल, भेदरहित और सत्य ऐसा ज्ञानरूप ब्रह्म ही, जैसे वाणी की और मन की प्रवृत्ति होय तैसे, माया का विलासरूपदृश्य और उस का प्रकाशरूप द्रष्टा ऐसे दो प्रकार का हुआ ॥३॥ उन दो अंशों में जो एक दृश्य पदार्थ वह कार्यकारणरूप प्रकृति है और जो ज्ञानरूप दूसरा द्रष्टा तिस को पुरुष कहते हैं ॥ ४ ॥ फिर उस पुरुषरूप के प्रेरणा करेहुए मुझ परमेश्वर से क्षोभित करीहुई प्रकृति से सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उन गुणों से सूत्र (क्रियाशक्तियुक्त) पहिला विकार उत्पन्न हुआ, तिस सूत्र से युक्त महतत्त्व उत्पन्न हुआ, फिर उस विकार पानेवाले महत्तत्त्व से जीव के देहादिरूप अध्यास का कारण अहङ्कार उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ वह अहङ्कार सात्विक, राजस और तामस तीनप्रकार का हुआ, वह चैतन्य और जड का ग्रन्थिरूप होकर शब्दादि पाँच विषयों का, दश इन्द्रियों का और मनसहित इन्द्रियों के देवताओं का कारण है ॥ ७ ॥ शब्दादि तन्मात्राओं के कारण तिस तामस अहङ्कार से पृथिव्यादि पंचमहाभूतरूप कार्य उत्पन्न हुआ, राजस अहङ्कार से दश इन्द्रियें हुईं और सात्विक अहङ्कार से दिशा आदि दश और चन्द्रमा यह ग्यारह उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ मेरे प्रेरणा करेहुए यह सब महत्तत्त्वादि पदार्थ, एकसाथ मिलकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने में समर्थ हुए तब उन से विराट्रूप से मेरा उत्तम क्रीडा का स्थान एक अण्ड उत्पन्न हुआ ॥९॥ जल के भीतर रहेहुए उस अण्ड में, मैं श्रीनारायणरूप लीलाविग्रह से रहा, फिर मेरी नाभि में से लोकों का कारण एक कमल उत्पन्न हुआ और उस में से चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रकट हुए ॥ १० ॥ रजो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरितिं त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोकं आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ १२ ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनां ॥ १३ ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिद्ध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥ यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥

गुणयुक्त और जगत् के स्रष्टा ब्रह्माजी ने, मेरे अनुग्रह से तपस्या करके इन्द्रादिलोकपालों सहित सब लोकों को रचा, उन के—भूर्लोक (अतल आदि सहित), अन्तरिक्ष लोक और स्वर्गलोक (स्वर्ग से सत्यलोक पर्यन्त तीनलोक) ऐसे भेदहुए ॥ ११ ॥ स्वर्ग लोक देवताओं के रहनेका स्थान, अन्तरिक्षलोक भूत प्रेत पिशाचादिकों के रहने का स्थान भूर्लोक मनुष्यों के रहनेका स्थान और तीनों लोकों के परलीओर जो महर्लोक आदिलोक वह भृगु आदि महर्षियों के रहने के स्थान हुए ॥ १२ ॥ तैसेही भूमि के नीचे के अतल आदि लोक असुरों के और नागों के रहने के स्थान, उन इकले समर्थ ब्रह्माजीने ही उत्पन्न करे, त्रिगुणमय कर्म करने पर जो गति प्राप्त होती हैं वह सब त्रिलोकी में ही उत्पन्न करी है ॥ १३ ॥ केवल योग, तप और संन्यास का आचरण करनेवालों को ही, उन के धर्मों की कमी अधिकता के अनुसार महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इन के विषें निर्मलगति मिलती हैं और भक्तियोग करनेवाले को वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ इन में वैकुण्ठलोक की गति को छोड शेष सब गति चंचल हैं, क्योंकि—कालशक्तिरूप और कर्मानुसार फल देनेवाले मुझ परमेश्वर की शक्ति से कर्मों में लगाहुआ यह जगत्, गुणों के प्रवाहरूप संसार में कभी सत्यलोकपर्यन्त की उत्तमगतियों को पाता है और कभी स्थावरपर्यन्त नीचयोनियों को पाता है ॥ १५ ॥ छोटे, बडे, दुबले, मोटे, जो पदार्थ प्रसिद्ध हैं वह सब ही प्रकृति और पुरुष इन दोनों से संयुक्त हैं ॥ १६ ॥ जिस कार्य का जो मूल कारण होता है और जो लयस्थान होता है वही मध्य की अवस्था में भी होता है, यह वार्त्ता मृत्तिका सुवर्ण आदि में प्रसिद्ध है; यदि कहो कि फिर यह मिथ्याभूतकार्य सिद्ध सृष्टि किस लिये कही है ? तो यह सृष्टि आदि व्यवहार, व्यवहार के निमित्त है अर्थात् मेरी अनेकों लीलाओं की सिद्धि के निमित्त है. जैसे सुवर्ण के कडे कुण्डल आदि पदार्थ अथवा जैसे मृत्तिका के घडे सकोरे आदि पदार्थ केवल व्यवहार के निमित्त ही भिन्न२होकर वास्तव में वह सुवर्णरूप वा मृत्तिकारूप ही होते हैं तिसीप्रकार सकल ही जगत्, केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुते परम् ॥ आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥ विराण्मयोऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥ अप्सु प्रलीयते गन्धो आपश्चैवगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥ रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ॥ अम्बरं शब्दतन्मात्रे इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥

व्यवहार के निमित्त भिन्नरूप है और वास्तव में परमेश्वररूप ही है ॥ १७ ॥ जैसे मट्टी का पिण्डा, मृत्तिका को लेकर आप निमित्तरूप होताहुआ घडे को उत्पन्न करता है तैसे ही जिस रूप को, उपादानकारणता से स्वीकार करके, पूर्व के महत्तत्त्वादि पदार्थ आगे के अहङ्कारादि पदार्थों को उत्पन्न करते हैं वहीरूप सत्य है, फिर 'मृत्तिका ही सत्यहै' ऐसा श्रुति ने क्यों कहा ऐसा कहो तो—जिस में पदार्थमात्र का आदि और अन्त होता है वह वस्तु सत्य है ऐसा श्रुति ने परम कारण आत्मा की सत्यता कहने के निमित्त दरसाया है ॥ १८ ॥ इस जगत् का उपादान कारण जो प्रकृति और तिसका अधिष्ठाता आधार जो परम पुरुष तैसे ही गुणों के क्षोभ से प्रकट हुआ जो काल है यह तीनो ब्रह्मरूप मैं ही हूँ ॥ १९ ॥ जीव को भोग देने के निमित्त प्रकट हुई यह बड़ीभारी सृष्टि, स्थिति का अन्त होनेपर्यन्त पितापुत्र आदिरूप से चलरही है और यह स्थिति जबतक परमेश्वर का अवलोकन है तबतक ही है ॥ २० ॥ जिस में लोकों के अनेकों सृष्टि के प्रकार और लय कल्पना करेजाते हैं ऐसा यह ब्रह्माण्ड, कालरूप मेरे व्याप्त करलेने पर, भुवनोंसहित पंचमहाभूतों में अंशरूप से मिलकर लय पाने को प्रवृत्त होता है ॥ २१ ॥ तहाँ पहिले सौवर्षपर्यन्त वर्षा न होने पर, सब प्राणियों के शरीर जिस अन्न से बढे हैं तिस अन्न में ही लीन होजाते हैं तब वह अन्न बीजमात्र-शेष रहता है फिर बीज भूमि में लीन होते हैं, भूमि गन्धगुण में लय पाती है ॥ २२ ॥ वह गन्धजल में लय पाता है, वह जल अपने गुणरस में लय पाते हैं, वह रस तेज में लय पाता है, वह तेजरूप में लीन होता है ॥ २३ ॥ रूप वायु में और वह वायु स्पर्श में लय पाता है और वह स्पर्श भी आकाश में लय पाता है; आकाश शब्दतन्मात्रा में और इन्द्रियें अपने प्रवर्त्तक देवताओं में लय पाती हैं ॥ २४ ॥ और हे उद्धवजी! वह देवता अपने २ नियन्ता मन में लय पाते हैं, वह मन देवताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २५ ॥ स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणसत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥ कालो मायामये जीवे जीवे आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत ज्योत्स्नीवार्कोदये तमः॥ ॥ २८ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥ इतिश्रीभा० म० ए० चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥ काम ईहा मदस्तृ-

सहित सात्विक अहङ्कार में लय पाता है, आकाश का शब्दगुण तामस अहङ्कार में लय पाता है, वह अहङ्कार महत्तत्त्व में लीन होता है ॥ २५ ॥ ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसहित वह महत्तत्त्व अपने कारणरूप गुण में लीन होता है, वह गुण माया में लीन होते हैं, वह माया काल के वश में होने के कारण जिस की वृत्ति लीन हुई हैं ऐसे काल में लीन होती है अर्थात् काल के साथ एकता को पाकर रहती है ॥ २६ ॥ वह काल माया के प्रवर्त्तक जीव के विषैं (पुरुष में) लय पाता है, जीव अपनी प्रकृति के लीन होने के कारण दूसरे किसी प्रतियोगी (जिस में लीन होय ऐसे पदार्थ) के न होने से मुझ पूर्ण सद्रूप आत्मा में एकरूप होकर रहता है, वह मैं आत्मा केवल निजस्वरूप में ही रहता हूँ, किसी दूसरे में लय नहीं पाता हूँ, किन्तु ऐसा मैं, केवल जगत् के उत्पत्तिलयों से अधिष्ठानता करके और अवधिरूप से जानाजाता हूँ ॥ २७ ॥ इसप्रकार हृदय में विचार करनेवाले मनुष्य के मन में का भेदभाव के कारण का भ्रम भला कैसे दूर होयगा, ऐसा कहो तो— जैसे आकाश में सूर्य का उदय होने पर अन्धकार कुछ भी नहीं रहता है तैसे ही वह भ्रम किंचिन्मात्र भी नहीं रहैगा ॥ २८ ॥ हे उद्धवजी! भूत भविष्य को जाननेवाले मैंने, तुम से यह सन्देह की गाँठ को काटनेवाली सांख्यशास्त्र की विधि, जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के वर्णन के द्वारा निरूपण करी है ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी! भिन्न २ सत्त्वादिगुणों में जिस गुण से यह पुरुष जैसे स्वभाव का होता है सो, यह वर्णन करनेवाले मुझ से तुम सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, सहनशीलता, विवेक, अपने धर्म में निष्ठा, सत्य, दया, पूर्वापर का स्मरण, सन्तोष, खर्चीला स्वभाव, विषयों में वैराग्य, गुरु आदि के वाक्यों पर विश्वास, अनुचितकर्म में लज्जा, सरलता, विनय, आत्मप्रीति यह सत्त्वगुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्ष्णां स्तंभे आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशःप्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥ क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दंभः क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतांस्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां संगतिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वमकृतं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥

की वृत्तियें हैं ॥ २ ॥ स्वर्गादिकों की इच्छा, यज्ञादिव्यापार, मद, लाभ होने पर भी असन्तोष, गर्व, धनादि की इच्छा से देवादिकों की प्रार्थना, भेदबुद्धि विषयभोग, मद से युद्धादि में उत्कण्ठा, अपनी प्रशंसा में प्रीति, दूसरे का हास्य करना, अपना पराक्रम प्रसिद्ध करना और बल से उद्योग करना यह रजोगुण की वृत्तियें हैं॥ ३॥क्रोध,लोभ,झूठबोलना,हिंसा,याचना,दम्भ,परिश्रम,कलह,शोक, मोह,दुःख,दीनता निद्रा,आशा,भय और जड़ता यह तमोगुण की वृत्ति हैं ॥४॥ ऐसी सत्त्व,रज और तम इन तीन गुणों की बहुत सी वृत्तियें क्रम से मैंने कही हैं और भी जो होयँ उन को इन की समान ही जानना, अब तीन गुणों की वृत्तियों के मेल को कहता हूँ सुनो ॥५॥ हे उद्धवजी ! मैं शान्त, कामी और क्रोधी हूँ इत्यादि तैसे ही मुझे शान्ति, काम और क्रोध हैं इत्यादि जो बुद्धि होतीहै वह गुणों का मेल है;इस से मन, विषय इन्द्रियें और प्राणों से युक्त जो व्यवहार वह सत्त्वरजस्तमोगुणात्मक होने से तिन सत्त्वादिकों का मेलही है ऐसा समझै ॥६॥ जब यह पुरुष, धर्म, अर्थ और काम में आसक्त होता है तब यह सत्वरजस्तमोगुणों का श्रद्धा, प्रीति और धन की प्राप्ति करादेनेवाला मेल है ऐसा जानना ॥ ७ ॥ सकाम धर्म में जब पुरुष की निष्ठा उत्पन्न होती है तैसे ही जब पुरुष गृहस्थाश्रम में आसक्त रहता है और तदनन्तर नित्य नैमित्तिक रूप स्वधर्म में आसक्त रहताहै तब उस को गुणोंका मेल ही समझना. क्योंकि—सकाम धर्म, घर में आसक्ति और स्वधर्म यह रज तम और सत्त्वगुणरूपी हैं ॥ ८ ॥ पुरुष, शम आदि वृत्तियों से सत्त्वगुणयुक्त है, कामादि वृत्तियों से रजोगुणयुक्त और क्रोधादि वृत्तियों से तमोगुणयुक्त है ऐसा अनुमान करै ॥ ९ ॥ जब पुरुष वा स्त्रियें निष्कामपने से निजधर्म का आचरण कर के प्रेमभक्ति के साथ मेरा आराधन करते हैं तब उन को सत्त्वगुण का स्वभाव प्राप्त हुआ है ऐसा समझना ॥ १० ॥ जब पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैवं मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥ यदैतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥ यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः सङ्गं भिदां बलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ।१४।यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडं॥युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥ विकुर्वन् क्रियया धीरानिर्वृत्तिश्च चेतसां ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुप-

विषयसुखों की अपेक्षा रखकर अपने कर्म से मेरा आराधन करता है तब उस को रजोगुण के स्वभाव का समझे और जब हिंसा की इच्छा रखकर मेरी आराधना करता है तब वह तमोगुणी स्वभाववाला है ऐसा समझे ॥ ११ ॥ सत्त्व,रज और तम यह तीनो गुण जीव के ही हैं, मेरे नहीं हैं, क्योंकि—वह जीव के ही चित्त में प्रकट होते हैं; जिन गुणों से वह जीव देह इन्द्रियादि विषयों में आसक्ति करने लगते ही बँधजाता है, मैं तो गुणों का नियन्ता होकर सृष्टि आदि करता हूँ तथापि कहीं आसक्त न होने के कारण नित्य मुक्त हूँ इस कारण जीवों में और मुझ में बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ इस प्रकार मिश्र अमिश्र गुणों के कार्य दिखाकर अब एक २ गुण की अधिकता के कार्य दिखाते हैं—जब प्रकाशक स्वच्छ और शान्त सत्त्व गुण दूसरे दो गुणों को जीतकर आप बढ़ता है तब यह पुरुष, सुख, धर्म, ज्ञान, शम, दम आदि धर्मों से युक्त होता है ॥ १३ ॥ जब सङ्ग तथा भेद का कारण और प्रवृत्ति स्वभाववाला रजोगुण, दूसरे दो गुणों को दबाकर आप बढ़ता है तब पुरुष, दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मी से युक्त होता है ॥ १४ ॥ जब विवेक से भ्रष्ट करनेवाला, आवरणरूप और अनुद्योगरूप तमोगुण, दूसरे दो गुणों को दबाकर आप बढ़ता है तब पुरुष, शोक, मोह, निद्रा, हिंसा और आशाओं से युक्त होता है ॥ १५ ॥ जब चित्त स्वच्छ होता है, इन्द्रियों का उपराम होता है, देह में अभय प्रतीत होता है, और मन संगरहित होता है तब मेरी प्राप्ति के आश्रय सत्त्वगुण को बढ़ाहुआ समझे।१६ जब विषय चिन्तवनरूप क्रिया से पुरुष की बुद्धि चलायमान होती है, ज्ञानेन्द्रियें विषयासक्त होती हैं, कर्मेन्द्रियें अस्वस्थ होती हैं और मन चञ्चल होता है तब इन लक्षणों से रजोगुण को बढ़ाहुआ जाने ॥ १७ ॥ जब सुषुप्ति आदि में लीन होताहुआ चित्त, चिदाकार रूप से परिणाम पाने को असमर्थ होकर लीन होता है, सङ्कल्पविकल्पात्मक मन भी लय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारय ॥ १८ ॥ एधमाने गुणे सत्त्वं देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसां ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाधोऽध आमुख्याद्रजसाऽन्तरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यांन्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसं ॥ २३ ॥ कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः ॥ तामसः

पाता है और अज्ञान तथा ग्लानता उत्पन्न होते हैं तब तमोगुणको बढ़ाहुआ जाने॥१८॥ हे उद्धवजी ! सत्त्वगुण बढ़ाहुआ होनेपर देवताओं का बल बढ़ता है, रजोगुण बढ़ाहुआ होनेपर असुरों का और तमोगुण बढ़ाहुआ होनेपर राक्षसों का बल बढ़ता है ॥ १९ ॥ सत्वगुण की उन्नति से पुरुष की जागृत् अवस्था जानना, रजोगुण की उन्नति से स्वप्नावस्था तथा तमोगुण की उन्नति से सुषुप्तावस्था जाननी और तुरीय अवस्था तो तीनों अवस्थाओं में व्याप्त होकर रहनेवाला आत्मरूप है ॥ २० ॥ वेद में कहा अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य, सत्वगुण के द्वारा ब्रह्मलोकपर्यंत ऊँचे२ लोकों में गमन करते हैं, तमोगुण के द्वारा स्थावर पर्यंत नीच२ योनियों में जन्म पाते हैं और रजोगुण से फिर मनुष्य ही होते हैं ॥ २१ ॥ सत्वगुण की वृद्धि के समय मरण को प्राप्तहुए मनुष्य, स्वर्ग में जाते हैं, रजोगुण की उन्नति के समय मरण को प्राप्तहुए मनुष्य, मनुष्यलोक में ही जाते हैं और तमोगुण की वृद्धि के समय मरण को प्राप्तहुए पुरुष, नरक में जाते हैं और निर्गुणहुए मनुष्य जीवितदशा में ही मेरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रीति प्राप्त होने की इच्छा से कराहुआ वा केवल दासभाव से कराहुआ जो अपने वर्ण तथा आश्रम को कहाहुआ कर्म है वह सात्विक है, फल की कामना रखकर कराहुआ कर्म राजस है और हिंसा के उद्देश से कराहुआ वा अतिहिंसायुक्त कर्म तामस है ॥ २३ ॥ आत्मा देह से निराला है ऐसा ज्ञान सात्विक है, आत्मा देह से भिन्न नहीं है ऐसा ज्ञान राजस है और बालक की समान वा गूँगे की समान जो विवेकशून्यज्ञान वह तामस है, तैसे ही मेरे स्वरूप का जो ज्ञान वह निर्गुण है ॥ २४ ॥ एकान्त वन में रहना सात्विक है, गाँव वा नगर में रहना राजस है, जुए आदि के स्थान में रहना तामस है और मेरे मन्दिर में रहना निर्गुण है ॥ २५ ॥ जो आसक्तिरहित होकर कर्म करता है वह सात्विक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी । तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चातिदाशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसं॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धाऽवस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवं ॥ गुणसंगं विनिर्धूय मां भजन्तु वि-

है, जो अतिआसक्ति से अन्धा होकर कर्म करता है वह राजस है और जो पूर्वापर के स्मरण से रहित होकर कर्म करता है वह तामस है तथा जो केवल मेरे आश्रय से कर्म करता है वह कर्त्ता निगुर्ण है ॥ २६ ॥ परमेश्वर में स्वाभाविक श्रद्धा सात्त्विक है, कर्म की श्रद्धा तो राजस है और अधर्म में जो श्रद्धा वह तामस है तथा मेरी सेवा में जो श्रद्धा वह निर्गुण है ॥२७॥ हितकारी, पवित्र और परिश्रम के विना प्राप्त हुआ जो भक्ष्यभोज्य आदि भोजन वह सात्त्विक माना है, मागते में इन्द्रियों को सुख देनेवाला जो तीखा खट्टा आदि आहार वह राजस है, दीनता तथा अपवित्रता दिखानेवाला जो आहार वह तामस है और मुझे अर्पण करेहुए नैवेद्य का जो आहार वह निर्गुण है ॥ २८ ॥ देह से निराला आत्मा से प्राप्त होनेवाला सुख सात्त्विक है, विषयों से होनेवाला सुख राजस है, मोह वा दीनतासे होनेवाला सुख तामस है और तत्त्व पदार्थ के विवेक से होनेवाला सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ इस प्रकार पवित्र आहार आदि पदार्थ, सुखरूप फल, दूसरे दो गुणों को जीतने आदि का काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, जाग्रत् आदि अवस्था, देवादिरूप आकृति और स्वर्गादि की प्राप्ति रूप निष्ठा यह सब ही वस्तु त्रिगुणमय हैं ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! केवल कहीहुई वस्तु ही त्रिगुणात्मक हैं ऐसा नहीं है किन्तु प्रकृति पुरुषों का आश्रय करे हुए जितने पदार्थ देखने में सुनने में और विचार करने में आते हैं वह सब गुणों के कार्यही हैं॥ ३१॥हे उद्धवजी ! जीव को जितने देवमनुष्या दिजन्म प्राप्त होते है वह सब गुण और कर्मों के निमित्त होते हैं, इस कारण जो जीव चित्त से होनेवाले इन गुणों को जीतता है वह जीव, भक्तियोग से मुझ में निष्ठा पाकर मोक्षपाने के योग्य होता है ॥ ३२ ॥ इस कारण जिस में ज्ञान और विज्ञान होने का सम्भव है ऐसा यह मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्षणाः ॥ ३३ ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेंद्रियः ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ ३४ ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय मां ॥ ३५ ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नांतरश्चरेत् ॥ ३६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे ए० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति मां ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्त्तमानोऽपि न पुमान्युज्यतेऽवस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगोऽंधवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत

शरीर प्राप्त होनेपर पुरुष, गुणों का संग छोड़कर मेराही सेवन करै ।। ३३ ॥ विवेकी पुरुष, विषयों की आसक्ति से रहित, जितेन्द्रिय, मननशील, सावधान और शान्तबुद्धि होकर मेरी भक्ति करै. तिस सात्विक पदार्थों के सेवन से सत्वगुण की वृद्धि करके रजोगुण और तमोगुण को जीते, तदनन्तर निरन्तर मेरा ध्यान करनेवाला वह पुरुष, शान्तरूप सत्वगुण से उस सत्वगुण को भी जीतै तब सत्वादि गुणों से रहित हुआ वह जीव, जीवपने के कारण लिङ्गशरीर को त्यागकर मुझ को पाता है ॥३४॥३५॥ इसप्रकार मुझे प्राप्त हुआ और चित्त से होनेवाले गुणों से छूटाहुआ वह जीव, परब्रह्मरूप मेरे से पूर्णता को पाते ही बाहर के विषयों का सेवन नहीं करता है और मन से विषयों का स्मरण भी नहीं करता है इसकारण उस को फिर जन्ममरणरूप संसार नहीं प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में पंचविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे उद्धवजी ! जिस से मेरा स्वरूप जानने में आता है ऐसा यह मनुजशरीर प्राप्त होने पर मेरी भक्तिरूप धर्म में रहनेवाला पुरुष, अपने में ही नियन्तारूप से रहनेवाले आनन्दरूपी मुझ परमात्मा को उत्तमप्रकार से पाता है ॥ १ ॥ ऐसे पुरुष को फिर विषयों में आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि–ज्ञाननिष्ठा के प्रभाव से गुणमय लिङ्गशरीर से छूटाहुआ वह पुरुष (जीव) मायामात्र और अवस्तुरूप से दीखनेवाले गुणों के कार्यरूप देह में वर्त्ताव करताहुआ भी, तिन मिथ्याभूत विषयों के साथ सङ्गमात्र ही पाता है अर्थात् उन में आसक्त नहीं होता है ॥ २ ॥ तथापि विचारवान् पुरुष, शिश्न और पेट की तृप्ति की करनेवाले दुष्ट पुरुषों का सङ्ग कभी न करै, ऐसे बहुतों की सङ्गति तो दूर रही, किन्तु ऐसे एक की भी सङ्गति करनेवाला पुरुष, जैसे अन्धे के पीछे जानेवाला अन्धा गढहे में पड़ता है तैसे, नरक में पडता है ॥ ३ ॥ इला के पुत्र बड़ी कीर्त्तिवाले,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥५॥ कामानतृप्तोनुजषन् क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकंठस्य नायुःखंडा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया ॥ मुषितो वर्षपूगानां बतेहानि गतान्युत ॥ ८ ॥ अहो मे आत्मसंमोहो येन स्त्रीर्योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥९॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्म-

चक्रवर्त्ती राजा पुरुरवा ने, प्रथम उर्वशी के विरह से मोहित होकर फिर कुरुक्षेत्र में उर्वशी से भेट होने पर, उर्वशी ने राजा से कहा कि गन्धर्वों की उपासना कर तब तेरा मनोरथ पूरा होगा. फिर राजा ने गन्धर्वों की उपासना करी तब प्रसन्नहुए गन्धर्वों ने उस को अग्नि नामक पुत्र दिया, तिस से वह देवताओं का आराधन करके उर्वशीलोक को गया, तहाँ उर्वशी के मिलने से शोक दूर होने पर उस ने विरक्त होकर यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ इस से पहिले की राजा की मोहदशा का वर्णन करते हैं कि—अपने को शय्यापर छोड जानेवाली उस उर्वशी के वियोग से व्याकुलहुआ वह राजा, उन्मत्त की समान नङ्गा होकर, हे पाषाणहृदये स्त्रि ! मुझे छोडकर न जा, खडीरह, खडीरह, ऐसा विलाप करता हुआ उस के पीछे दौडनेलगा ॥ ५ ॥ क्योंकि—जिससमय मनुष्यलोक में उर्वशी अपने समीप थी उससमय विषयभोग करनेवाला वह राजा, तृप्त नहीं हुआ और उर्वशी के चित्त को खेंचने के कारण इतना विकल होगया कि—उस ने बहुत से वर्षों की रात्रियें कितनी निकलगईं और कितनी शेष हैं यह कुछ नहीं जाना ॥ ६ ॥ उर्वशी के भोग के अनन्तर विरक्त हुआ वह राजा कहनेलगा कि—हे प्राणियों ! मेरे मोह का विस्तार देखो ! काम से चित्त में चलायमान हुए और उर्वशी ने कण्ठ में आलिङ्गन करके जिसको ग्रहण करा है ऐसे मैंने, अपने यह वृथा बीतेहुए रात्रिदिनरूप आयु के भाग मन में भी नहीं विचारे ॥ ७ ॥ सो बड़े खेदकी वार्त्ता है कि- इस उर्वशी के धोखा दियेहुए मैंने इस के साथ क्रीड़ा करते में, सूर्य का उदय हुआ वा अस्त हुआ यह कुछ नहीं जाना और तैसेही सहस्रों वर्षों के बीतेहुए दिनों को भी नहीं जाना ॥ ८ ॥ अहो ! यह मेरे मन का कैसा प्रबल मोह है ! जिस मोह से राजाओं में शिखामणि की समान सर्वोत्तम और चक्रवर्ती भी मैंने, अपना शरीर, खेलने के वानर की समान स्त्रियों के वश में करादिया ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित और चक्रवर्ती मेरे शरीर का तृण की समान त्याग करके जानेवाली उर्वशी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेजः ईशत्वमेव वा ॥ योन्वगच्छं स्त्रियं यांतीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥१२॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मां मूर्खं पण्डितमानिनम् ॥ योहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं कोऽन्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोऽक्षजं ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेंद्रियः ॥१७॥ कायः मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्मकोऽशु-

पीछे मैं उन्मत्त की समान नङ्गा और रोताहुआ दौड़ा ॥ १० ॥ जैसे गधा मुहपर लातें खाताहुआ भी गदही के पीछे दौडता है तैसे ही उर्वशी का तिरस्कार कराहुआ भी जो मैं, छोडकर जातीहुई उस के पीछे गया, ऐसे मेरा प्रभाव, दूसरे को जीतने की शक्ति और जगत् का स्वामीपन कहाँ से रहे? सब ही नष्टहुए से होगए ॥ ११ ॥ ऐसे मनुष्य के सब साधन व्यर्थ हैं, क्योंकि-जिस का मन स्त्रियों ने अपने वश में करलिया है उस की विद्या से, तप से, संन्यास से, शास्त्र पढ़ने से, एकान्तवास से और मौन से कौन लाभ होना है? कोई नहीं ॥ १२ ॥ अपने कल्याण को न जाननेवाले और मूर्ख हो कर अपने को पण्डित माननेवाले मुझ को धिक्कार है, जो मैं चक्रवर्त्तीपने को पाकर भी, स्त्रियों से तिरस्कार के साथ बैल की समान वा गदहे की समान अपने वश में करागया हूँ ॥ १३ ॥ जैसे अग्नि, घृत की आहुतियों से शान्त नहीं होता है किन्तु अधिक२ बढ़ता ही है तैसे ही सहस्रोंवर्ष उर्वशी के अधरामृत का सेवन करनेवाले मेरे मन में उत्पन्नहुआ काम तृप्त नहीं होता है किन्तु अधिक २ बढ़ता ही है ॥ १४ ॥ जारिणी स्त्री करके वश में करेहुए चित्त को, एक आत्माराम अधोक्षज भगवान् के सिवाय भला दूसरा कौनसा पुरुष छुटवाने को समर्थ है?कोई नहीं है.इस का तात्पर्य यह है कि-आजपर्यंत कर्मों के द्वारा भेदभावसे देवताओं का आराधन करके मैंने दुःख ही पायाहै इसकारण अब परमेश्वरका आराधन करूँगा॥१५॥ उर्वशी देवी ने वेद में के यथार्थ वचन से समझाया तो भी मुझ दुर्गति अजितेन्द्रिय के मन का महामोह दूर नहीं हुआ ॥ १६ ॥ मैंने जो उर्वशी को दोष दिया सो ठीक नहीं है किन्तु यह दोष मेरा ही है, क्योंकि-जैसे रस्सी के स्वरूप को न जाननेवाले रस्सी में सर्प की कल्पना करके दुःख पानेवाले पुरुष का रस्सी ने कौन अपराध करा है? तैसे ही मुझ कामातुर का इस ने कौन कपराध करा है? कोई अपराध नहीं करा है किन्तु इसप्रकार के मोह से इस में आसक्त होनेवाला मैं ही अपराधी हूँ ॥१७॥ अतिमलिन, अतिदुर्गन्धादि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिः ॥ के गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोविद्यया कृतः ॥ १८ ॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं चारु खं स्त्रियः ॥ २० ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जाऽस्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥ अथाऽपि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुंजतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवा-

युक्त और अपवित्र यह स्त्री का शरीर कहां? और सुगन्धता, पवित्रता, सुकुमारता आदि गुण कहां? इसकारण निःसन्देह यह अध्यास (दोष में गुण का प्रतीत होना) अविद्या का कराहुआ है ॥ १८ ॥ यह शरीर, माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण क्या उन का ही धन है ऐसा कहैं? वा, स्त्री इस को भोग देती है इसकारण उस का कहैं? अथवा स्वामी के वश में रहता है अतः उस धनी का कहैं ? अथवा अन्त में अग्नि की आहुति होजाता है अतः उस का कहैं; अथवा कूकर गिज्ज आदि इस को खाते हैं अतः उन का कहैं? अथवा देह से करेहुए शुभाशुभकर्म जीवात्मा को भोगने पडते हैं अतः जीवात्मा का कहैं? अथवा मित्रों के ऊपर उपकार करता है अतः उन का कहैं? इसप्रकार जिस देह का निश्चय नहीं होता है ॥ १९ ॥ तिस अपवित्र और अन्त में कीडे, विष्टा वा भस्मरूप होनेवाले देह में अहो! यह स्त्री का मुख अतिसुन्दर सरल नासिका से युक्त और अतिमनोहर मन्दहास्यसहित है इसप्रकार पुरुष आसक्त होजाता है ॥ २० ॥ वास्तव में विचार करने पर त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेद, मज्जा और हाड इन के समूहरूप देह में मग्न होनेवाले प्राणी में और विष्ठा, मूत्र तथा पीव में मग्न रहनेवाले कीडे में क्या अन्तर है? कुछ अन्तर नहीं है ॥ २१ ॥ इसकारण विवेकी पुरुष, स्त्रियों में और स्त्रीलम्पट पुरुषों में कभी आसक्त न होय; क्योंकि—विषय और इन्द्रियों के संयोग से ही मन चलायमान होता है अन्यथा नहीं ॥२२॥ देखेहुए अथवा सुनेहुए पदार्थों के विना मन चलायमान नहीं होता है इसकारण इन्द्रियों को विषयों से रोकनेवाले पुरुष का मन निश्चल होकर शान्त होजाता है ॥ २३ ॥ इसकारण इन्द्रियों से भी स्त्रियों की और स्त्रीलम्पट पुरुषों की सङ्गति कदापि नहीं करै; क्योंकि—विद्वान् पुरुषों को भी इन्द्रियों के समूह का विश्वास नहीं करना चाहिये, मुझसों को न करना चाहिये इस का तो कहना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नुवाच ॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ संत एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवन्ति हि ता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां

ही क्या? ॥२४॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी! इसप्रकार गान करनेवाला वह राजाधिराज पुरूरवा, उर्वशीलोक को त्यागकर और फिर अपने जीवात्मा में ही मुझ परमात्मा को जानकर, ज्ञान से मोह दूर होने के कारण उपराम को प्राप्त हुआ (जीवन्मुक्त हुआ)।२५। इसकारण बुद्धिमान् पुरुष, नीच पुरुषों की सङ्गति छोडकर सत्पुरुषों की सङ्गति करै, तब वह सत्पुरुष, अपने उपदेश के वचनों से इस के मन की विषयासक्ति को तोडडालते हैं ॥ २६ ॥ साधु-विषयों की अभिलाषा रहित, मुझ में चित्त लगाने वाले, अत्यन्त शान्त, समदृष्टि सर्वत्र ममतारहित, देहादि में अहङ्काररहित,, सरदी गरमी आदि से होनेवाले विकारों करके रहित और विषयों का त्याग करने वाले होते हैं॥२७॥हे महाभाग उद्धव जी! उन महाभागशाली पुरुषोंमें निरन्तर मेरी कथा होती रहती हैं और वह कथा ही आदर के साथ अपने सुननेवाले पुरुषों के पापों को निःसन्देह दूर करती हैं ॥ २८ ॥ मुझ में चित्त लगाने वाले जो पुरुष, श्रद्धा और आदर के साथ उन कथाओं को सुनते हैं, गाते हैं वा अनुमोदन करते हैं वह पुरुष मुझ में भक्ति पाते हैं ॥ २९ ॥ अनन्तगुण, आनन्द और अनुभवरूप मुझ परब्रह्म में भक्ति पानेवाले साधुको, दूसरा कौनसा फल मिलने को शेष रहता है! ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्नि का आश्रय लेनेवाले पुरुषों के सरदी, अन्धकार और भय यह तीनो दूर होजाते हैं तिसी प्रकार साधुओं की सेवा करनेवाले पुरुषों के कर्मजड़ता, जन्ममरणरूप संसार का भय और मूलकारणरूपअज्ञान यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ समुद्र में डूबतेहुए पुरुषों को जैसे दृढ (मजबूत) नाव ही तरजाने का साधन है तैसेही भयङ्कर संसारसमुद्र में गोते खानेवाले (छोटी बड़ी योनियों में जन्म पानेवाले) पुरुषों को, ब्रह्मज्ञानी और शान्त साधुही परम आश्रय हैं॥३२॥ और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बांधवाः सन्तः सन्त आत्माऽहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः ॥ मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥ निःसृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्फलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ॥ भक्ताय चानु-

जैसे प्राणियों का अन्न ही जीवन है अथवा जैसे पीड़ित पुरुषों को मैं ही शरण (पीड़ा दूर करनेवाला) हूँ अथवा जैसे आचरण कराहुआ धर्म ही मनुष्यों को परलोक में धनरूप है तैसे ही संसार में पड़ने के कारण भयभीत हुए पुरुषों को सत्पुरुष ही शरणरूप हैं ॥ ३३ ॥ और साधु, अनेकों चक्षु इन्द्रियें देते हैं अर्थात् मन में बैठने योग्य सगुण निर्गुण ज्ञानों का उपदेश करते हैं, तैसे सूर्यभी नहीं देता है क्योंकि-वह उदय होनेपर केवल बाहर के एक चक्षु इन्द्रियों का ही प्रकाशक होता है, इस कारण साधु,देवताओं की समान आराधना करने योग्य, बान्धवों की समान आराधना करने योग्य, आत्मा की समान प्रीति करने योग्य तथा मुझ ईश्वर की समान (मेरी दृष्टि से) सेवन करनेयोग्य हैं ॥३४॥ इस प्रकार वह पुरूरवा राजा,उर्वशी के लोक की अथवा उर्वशी को देखनेकी भी इच्छा को त्यागकर तदनन्तर सत्सङ्गति से सकल विषयों की सङ्गति छोड़कर आत्मस्वरूप में मग्न होता हुआ अपनी इच्छानुसार जीवन्मुक्ति दशा से इस पृथ्वी पर विचरने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्री मद्भागवत के एकादश स्कन्ध में षड्विंश अध्याय समाप्त ॥* उद्धवजीने कहाकि-हेप्रभो ! हे भक्तपालक ! भक्तजन जिस निमित्त से जिस अधिष्ठान में जिसप्रकार तुम्हारी पूजा करतेहैं वह अपना आराधनरूप क्रियायोग(पूजाविधि)मुझसेकहो १॥ क्योंकि-मनुष्यों के अल्याणका साधन यही है,ऐसा मुनिजन वारंवार कहते हैं, नारदजी, त्रिकालके जाननेवाले, आचार्य व्यासजी,और बृहस्पतिजी का भी यही मत है॥२॥ तुम्हारे मुखारविन्द से इस विधिका उपदेश भगवान् ब्रह्माजी को मिलाथा, फिर ब्रह्माजीने वही विधि अपने भृगुआदि पुत्रों से कही और भगवान् शिवजी ने पार्वतीजी से कही ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! तुम अपने भक्तों को बड़ी योग्यता को पहुँचाते हो ; चार वर्ण, चार आश्रम, स्त्री, शूद्र, इन सबों के कल्याण का समान साधन यही है, ऐसी मेरी समझ है, ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्तोय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच।।नह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैवं विधिना मां समर्चयेत् ॥ ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं मामभायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोऽगशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानमंत्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे ॥ पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीं ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्यालेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥ चलाचलेति द्विविधा प्र-

हे कमलदलनयन! कर्मबन्धन से मुक्ति होने का उपाय यही है, मैं तुम्हारा प्रेमीभक्त हूँ; इसकारण हे देवाधिदेव! वह विधि मुझ से कहिये ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे उद्धवजी! कर्मकाण्ड के ग्रन्थ असंख्य हैं और अनुष्ठानों का पार नहीं है, उन का अन्त कभी मिलता ही नहीं तथापि मैं तुम से कर्मों के अनुष्ठान की रीति संक्षेप से क्रम करके अङ्गोंसहित वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ मेरी प्रीति के निमित्त यज्ञ करने के वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र यह तीन मार्ग हैं, जिस में मंत्र और अङ्ग वेदोक्त होते हैं वह पुरुषसूक्त आदि पूजा का मार्ग वैदिक है, जिस में मंत्र और अङ्ग तन्त्रोक्त ही होते हैं वह तान्त्रिकविधि है और जिस में दोनों से कार्य होता है वह मिश्र (अष्टाक्षर मन्त्रपूजा आदि) है. इन तीनों में से जो विधि जिस को प्रिय होय, उस से ही वह मेरा पूजन करै ॥ ७ ॥ पुरुष, योग्य समय में अपने अधिकार के अनुसार वेद में कहीहुई रीति से द्विजपने को प्राप्त होकर फिर किसप्रकार भक्तिपूर्वक श्रद्धा के साथ मेरी पूजा करै सो मुझ से सुनो ॥ ८ ॥ मनुष्य, मेरे ऊपर भक्ति रखकर और परमात्मा ही मेरे गुरु हैं ऐसी भावना करके प्रतिमा, स्थण्डिल, अग्नि, सूर्य, जल, हृदय वा ब्राह्मण इन में से किसी अधिष्ठान के ऊपर योग्य सामग्रियों से निष्कामभाव करके मेरी पूजा करै ॥ ९ ॥ पहिले दन्तधावन करके शरीर की शुद्धि के निमित्त वेद और तन्त्र में कहेहुए दोप्रकार के मंत्रों से मृत्तिकाग्रहण (भस्म गोबर लगाना) आदि विधि से स्नान करै ॥ १० ॥ वेद में जो सन्ध्योपासन आदि कर्म विधान कहे हैं उन का त्याग न करके, कर्मबन्धन की दूर करनेवाली मेरी पूजा करै ।११। प्रतिमा-शिला की, काठ की, सुवर्ण आदि धातु की, मृत्तिका-चन्दन आदि की, चित्ररूप, बालू की, मन की (यह मानसपूजा में ही लीजाती है) और तत्वों की ऐसे आठ प्रकार की कही है ॥ १२ ॥ जिस को प्रतिष्ठा अर्थात् निवासस्थान कहते हैं वह भग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिष्ठो जीवंमंदिरम् ॥ उद्धांसावाहने न स्तेः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थंडिले तु भवेद्द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्याग: प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थंडिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः सम्भृतसम्भारः प्रागग्रैः कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग्वार्चे—दर्चायामथ संमुखः १९ कृतन्यासः कृत

वान् की मन्दिररूप प्रतिमा चलनेवाली और स्थिर ऐसे दो प्रकार की है, हे उद्धवजी ! स्थिर प्रतिमा के ऊपर पूजा करनेवालों को आवाहन और विसर्जन करने का विधान नहीं है ॥ १३ ॥ चलनेवाली (एक स्थानपर ही स्थापन न करीहुई) प्रतिमा के ऊपर आवाहन और विसर्जन करे चाहें न करै ऐसा विकल्प है, (शालग्राम का आवाहन विसर्जन न करै अन्यत्र कहीं करते हैं कहीं नहीं), स्थिण्डिल पर पूजन करना होय तो आवाहन और विसर्जन दोनों करै; प्रतिमा मट्टी की, चन्दन की वा चित्ररूप न होय तो स्नान करावे अन्यत्र (मट्टी की चन्दन की वा चित्ररूप प्रतिमा के ऊपर) केवल मार्जन ही करै ॥ १४ ॥ प्रतिमादिक में मुझे पूजा की सामग्री के जो पदार्थ अर्पण करै वह अतिउत्तम होयँ, भक्त निष्काम होय तो वह जैसे मिलैं तैसे पदार्थों से मेरी आराधना करै; हृदय में पूजा करनी होय तो मनोमय सामग्री को ही इकट्ठा करै ॥ १५ ॥ हे उद्धवजी ! स्नान और अलङ्कार का तो धातु आदि की मूर्त्ति में ही उपयोग करना, पृथ्वी में पूजा करनी होय तो, अङ्गप्रधानसहित देवताओं की उन स्थानों में भिन्न २ मन्त्रों से स्थापना करै; अग्नि में पूजा करनी होय तो घृत से भीगेहुए साकल्य की आहुति देय ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डल में पूजा करनेवालों को उपस्थान और अर्घ्य आदि सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ है, जल में पूजा करे तो जल आदि सामग्री ही लेय, भक्त श्रद्धा के साथ यदि थोडासा भी जल अर्पण करे तो वह मुझे अत्यन्त प्रियलगता हैं ॥ १७ ॥ और जिस के हृदय में भक्ति नहीं है वह, गन्ध, पुष्प, दीप, अन्न आदि बहुतसी सामग्री अर्पण करै तो भी उन से मेरी प्रसन्नता नहीं होती है, इस से अधिक और क्या कहूँ ? ॥ १८ ॥ मनुष्य, पूजा की सब सामग्री इकट्ठी करै, फिर पूर्व को अग्रभाग करेहुए कुशों का आसन बिछावे और पवित्र होकर उस आसन पर पूर्व को मुख करके वा उत्तर को मुख करके अथवा प्रतिमा स्थिर होय तो प्रतिमा के सन्मुख बैठकर पूजा करै ॥ १९ ॥ फिर विधिपूर्वक अपने शरीरपर न्यास करै, मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यासां मदर्चां पाणिनो मृजेत्॥कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत्॥२०॥तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च॥प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत्॥२१॥पाद्यार्घाचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः॥हृदा शीर्ष्णाऽथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्॥२२॥पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम॥अर्ण्वां जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभावितां॥२३॥तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः॥आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत्॥२४॥पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत्॥धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वासनं मम॥२५॥पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्॥उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये॥२६॥सुदर्शनं पांचजन्यं गदासीषुधनुर्हलान्॥मु-

मूर्त्तिपर भी मन्त्र का न्यास करै, और हाथ से निर्माल्य आदि हटाकर मूर्त्ति को पूँछकर स्वच्छ करै, भराहुआ कलश और प्रोक्षण के लिये लियाहुआ जल का पात्र, इन की गन्ध पुष्पादि सामग्री से पूजा करै ॥ २० ॥ तिस में जल से देवपूजन का स्थान, पूजा की सामग्री और अपने शरीर का प्रोक्षण करै,और तिस ही जल से एक पाद्य के निमित्त एक अर्घ्य के निमित्त और एक आचमन के निमित्त ऐसे तीन पात्र भरकर उन में तिस २ सामग्री के योग्य शास्त्र में कहेहुए पदार्थों को डाले और वह पात्र हृदय, मस्तक तथा शिखा (गायत्री के क्रम से तीन चरण) इन मंत्रों से प्रोक्षण करके पूरे गायत्री मंत्र से उन सबों का फिर अभिमन्त्रण करै ॥२१॥२२॥ फिर वायु और अग्नि से शुद्धहुए शरीररूपपिण्ड में की (शरीर,कोठे में की अग्नि से सूखकर आधार में की अग्नि से दग्ध होता है परन्तु ललाट में स्थित चन्द्रमण्डल में से झड़ेहुए अमृतरस से वह फिर अमृतमय होता है तिस में की) हृदय कमल में स्थित मेरी जीव कला का अर्थात् नारायणमूर्ति का ध्यान करै, उस कला का सिद्ध पुरुष ॐ कार के नादसंज्ञक अंश के परली ओर ध्यान करते है ॥ २३ ॥ उस कला का आत्मरूप से चिन्तवन करने पर उस से जैसे दीपक प्रभा के द्वारा घर को व्याप्त करता है तैसे सर्व शरीर के व्याप्त होनेपर, उसही स्थल में (हृदयकमल में) उस की मानसिक सामग्रियोंसे पूजा करके फिर उसका प्रतिमाओं के ऊपर आवाहनपूर्वक स्थापनकरै और आवरणपूजा होनेपर पूजा का आरम्भ करै।२४। पाद्य,आचमन,अर्घ्य आदि सामग्रियों की कल्पना करै, धर्मादिगुण और नौ शक्तियों से मेरा आसन कल्पना करै॥२५॥तिसपर कर्णिका और केसर से उज्ज्वल दीखनेवाला अष्टदल कमल बनावै, और वैदिक तथा तान्त्रिक विधियों से, दोनों में कहीहुई पूजा की सिद्धि के निमित्त मेरे अर्थ सामग्री ठीक करै ॥ २६ ॥ सुदर्शन, पांचजन्य, गदा, खड्ग, वाण, धनुष,हल, और मूसल इन आठ आ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः ॥ अलंकुर्वीत समेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ॥ ३४ ॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ॥

युधों की मूर्त्तियों का आठ दिशाओं में और कौस्तुभ, माला तथा श्रीवत्स इन का वक्षःस्थल में पूजन करै ॥ २७ ॥ नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण इन पार्षदों की क्रम से आठ दिशाओं में और गरुडजी की आगे स्थापना करके पूजा करै ॥ २८ ॥ चारू कोनों में दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वक्सेन, दाहिनी ओर गुरु और आठ दिशाओं में इन्द्रादि लोकपाल यह सब अपने२ स्थान में ईश्वर की ओर को मुख करके बैठेहुए कल्पना करके अर्घ्य आदि सामग्रियों से इन की पूजा करै ॥ २९ ॥ ऐश्वर्य होय तो, प्रतिदिन, चन्दन, खस, कपूर, केसर, काली अगर आदि सामग्रियों से, सुगन्धित जल से मुझे मन्त्र पढताहुआ स्नान करावै ॥ ३० ॥ स्नान कराने के समय स्वर्णधर्म (सुवर्णधर्म परिवेदवेनं) यह अनुवाक पढै; महापुरुषविद्या का (जितन्ते पुण्डरीकाक्ष इत्यादि स्तोत्र का) पाठ करै; पुरुषसूक्त पढै; और राजनादि (इन्द्रं नरोनेमधिताहवं ते इत्यादि) साम का गान करै ॥ ३१ ॥ वस्त्र, उपवस्त्र, आभूषण, पत्र, माला, गन्ध, विलेपन इन द्रव्यों से मेरा भक्त, योग्यरीति करके प्रेम के साथ मुझे उत्तमता से भूषित करै ॥ ३२ ॥ पूजा करनेवाला श्रद्धा के साथ, माला, पाद्य, आचमनीय, गन्ध, फूल, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करै ॥ ३३ ॥ धन की अनुकूलता होय तो—गुड़, खीर, घी, पूरी, पुए, लड्डू, लपसी, दही, चटनी आदि पदार्थों का नैवेद्य समर्पण करै ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गस्नान, अङ्ग को सुगन्धित पदार्थों का मलना, शीशा दिखाना, दन्तधावन, पञ्चामृत का अभिषेक, नानाप्रकार के भक्ष्य और भोज्य के पदार्थ, गान, नृत्य, यह सामान एकादशी समान पर्व के दिनों में अथवा प्रतिदिन करै ॥ ३५ ॥ मेखला, गर्त्त, वेदी कैसे२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्निमाधाय परितः संमूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥ प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदांबुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटकांगदसूत्रवरांगदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाज्यप्लुतानि च ॥ जुहुयाज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चोऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं गन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्यार्थं नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्ता-

हों उन की विधि शास्त्र में कही हैं तैसे ही रचेहुए कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके प्रज्वलित अग्नि का हाथ से परिसमूह न करै ॥ ३६ ॥ तदनन्तर परिस्तरणकर चारों ओर प्रोक्षणकर विधिपूर्वक अन्वाधान करै (व्याहृतियों का जप करताहुआ अग्नि में समिधाओं की आहुति देय) अग्नि से उत्तर को होम के उपयोगी पात्र फैलाकर प्रोक्षणीपात्र में के जल से उन का प्रोक्षण करै और अग्नि में मेरा ध्यान करै ॥ ३७ ॥ तपायेहुए सुवर्ण की सी कान्ति से युक्त, और शंख, चक्र, गदा, पद्म इन आयुधों से [illegible] शोभायमान हैं; शान्तस्वरूप और कमल के केसर के वर्ण का वस्त्र पहिरेहुए हैं ॥ ३८ ॥ किरीट, कडे, तागडी, श्रेष्ठ बाजूबन्द, यह आभूषण अपने २ उचित स्थान पर शोभित हैं, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स है और तहां ही कौस्तुभमणि विराजमान है, कण्ठ में वनमाला भूषण करे हैं ॥ ३९ ॥ ऐसा ध्यान करताहुआ पूजा की सामग्री अर्पण करके अग्नि में घी से भीगीहुई सूखी समिधाओं से; आघारहोम करके फिर 'अग्नये स्वाहा' और 'सोमाय स्वाहा' ऐसे घृत की दो आहुति देय, फिर घृत से भीगीहुई हवि की सामग्री से अष्टाक्षर मूलमंत्र को पढकर तैसे ही सोलह ऋचाओं के सूक्त से प्रत्येक ऋचा की एक २ आहुति देय; इस पूजा के क्रम से ही धर्मादि परिचारकवर्ग को भी उन के नामयुक्त मंत्र से (नाम में स्वाहा जोडकर-'धर्माय स्वाहा' इत्यादि) उन ही पदार्थों की आहुति देय और अन्त में वह बुद्धिमान् पुरुष, स्विष्टकृत हवन करै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर अग्नि में विद्यमान अन्तर्यामी पुरुष की पूजा और उस को नमस्कार करके आठ दिशाओं में पार्षदों को बलि देय, फिर पूजा के स्थान में आकर और देवता के सन्मुख बैठकर नारायणरूप ब्रह्म का ध्यान करताहुआ शक्तिअनुसार अष्टाक्षर मूलमंत्र का जप करै ॥ ४२ ॥ जप के अनन्तर आचमन देकर प्रतिमा और अग्नि में भगवान् का भोजन समाप्त हुआ ऐसा चिन्तवन करै और आसन देकर उच्छिष्टभाग विष्वक्सेन को अर्पण करै और उन्होंने मुझे आज्ञा दी ऐसी भावना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरो गत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ [illegible] मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चदुद्वास[illegible]तिज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माऽहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतांत्रिकैः अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम् ॥४९॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना

करके स्वयं भोजन करै. फिर सुगन्धयुक्त ताम्बूल आदि मुखवास के निमित्त देकर पुष्पाञ्जलि चढावे ॥ ४३ ॥ फिर मेरी लीला गावै, उन का कीर्त्तन करै, नृत्य करताहुआ मेरे चरित्रों को अभिनय करै, मेरी कथा लोकों को सुनावै और आप सुनै तथा मुहूर्त्तभर को व्यग्रता छोडकर स्वस्थ होवे ॥ ४४ ॥ छोटेबडे पुराणों में के स्तोत्र और देपभाषा की स्तुतियें पढकर स्तुतियें करै और 'हे भगवन् प्रसन्न हूजिये' ऐसा कहकर दण्डवत् प्रणाम करै ॥ ४५ ॥ मेरे चरण पर मस्तक रखकर 'रक्षा करो' ऐसी प्रार्थना करै, दोनों हाथों में, बायें हाथ में बायां और दाहिने हाथ में दायां ऐसे मेरे चरण पकडे और हे ईश्वर, पिशाच की समान भयङ्कर तथा समुद्र की समान दुस्तर मृत्युपाश से डरकर मैं तुम्हारे शरण में आया हूँ, इस ही प्रार्थना के मंत्र से मेरी दीहुई प्रसादरूपमाला को आदर के साथ मस्तक पर धारण करै और विसर्जन करना होय तो प्रतिमा में न्यास करीहुई ज्योति फिर, हृदयकमल में की ज्योति में जामिली ऐसी भावना करै, यही विसर्जन है ॥४६॥ ४७ ॥ मनुष्य की जिस समय जिस अधिष्ठानके ऊपर श्रद्धा होय उस मूर्त्ति आदि में ही वह मेरी पूजा करै, मेरे सर्वात्मा होने के कारण सकलप्राणियों में और अपने स्वरूपमें भी रहता हूँ॥४८॥जोपुरुष वेद और तन्त्र में कहीहुई इन पूजा की विधियों से मेरी आराधना करता है उस को मुझ से इस लोक में और परलोक में इच्छित सिद्धि प्राप्तहोती है॥४९॥ मेरी प्रतिमा की स्थापना करके उस के निमित्त पक्का मन्दिर बनवावे, रमणीय फुलवाड़ी लगवावे, नित्यपूजा, विशेष पर्व के दिन बड़ी भारी यात्रा, वसन्त आदि उत्सव इन के चलने के आश्रय के निमित्त खेत, बाजार, नगर, और गांव दान देय (इनकी आमदनी से उत्सवों का निर्वाह होय ऐसा प्रबन्ध करदेय) ऐसा करनेवाले पुरुष को मेरी समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मूर्त्ति की स्थापना करने से चक्रवर्त्ती पद मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेवं नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत मां ॥५३॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हर्तानुमोदितुरेव च ॥ कर्माणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः किंयत् वाचो

है, मन्दिर बनवाने से त्रिलोकी का राज्य मिलता है, पूजा आदि के द्वारा ब्रह्मलोक मिलता है और यह तीनों करनेवाला पुरुष तो मेरी समान होता है ॥ ५२ ॥ निष्काम भक्ति योगसे पुरुष मुझ को ही प्राप्त होता है,जो ऐसे मेरी आराधना करता है उस की मुझ में अखण्ड भक्ति होती है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य, अपनी दी हुई वा दूसरे की दी हुई देवता की वा ब्राह्मण की वृत्ति को हरता है वह लाखो वर्ष पर्यन्त विष्ठा भक्षण करनेवाला कीड़ा होकर नरक में विल विलाता फिरता है ॥ ५४ ॥ करनेवाला, सारथि, उत्तेजना देने वाला, अनुमोदन करनेवाला, इन चारों कोही परलोक में तिसकर्म का फल भोगना पड़ता है, क्योंकि–वह उस कर्म के भागी हैं, सहायता आदि कर्म जैसी २ अधिक योग्यता का होगा तैसे २ फल भी अधिक २ मिलेगा ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्री भगवान् ने कहा कि–हे उद्धव जी ! मनुष्य, समस्त विश्व, प्रकृति पुरुषों से अभिन्न है ऐसी दृष्टि रक्खै, और दूसरों के स्वभावों की तथा कार्यों की प्रशंसा वा निन्दा न करै ॥ १ ॥ जो पुरुष, दूसरों के स्वभावों की और कार्यों की प्रशंसा वा निन्दा करता है, वह मिथ्याभूत द्वैतपर अभिमान रखने के कारण तत्काल स्वर्ग से भ्रष्ट होजाता है ॥ २ ॥ राजस अहङ्कार का कार्य जो इन्द्रियों का समूह उस के निद्रा से व्याप्त होनेपर शरीर पिण्ड में स्थित जीव, केवल मन के द्वारा स्वप्नरूप माया में घूमता रहता है, फिर उस मन के भी लीन होजाने पर चेतना नष्ट होकर वह मृत्यु अथवा मृत्यु की समान सुषुप्ति दशा को पाता है; तैसे ही द्वैत के अभिमानी पुरुष को विक्षेप और लय प्राप्त होते हैं अर्थात् जैसे सुषुप्ति के अभिमानी प्राज्ञ का सम्पर्क होते ही, जाग्रत् का अभिमानी विश्व के भोग का क्षयरूप भ्रंश पाता है तैसे ही अनात्मा के सम्पर्क से आत्मा अपने स्वरूप से डिगजाता है ॥ ३ ॥ पहिले तो स्तुति वा निन्दा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥४॥ छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥६॥ तस्मान्नह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं सिद्धं त्रिविधं मायया कृतम् ॥७॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानं सम्पृणयम् । न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥८॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥९॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मसदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥

का विषय पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि—द्वैत यदि मिथ्या है तो उस में उत्तम क्या ! और बुरा क्या ! वा कितना है ?, जो वाणी से कहा अथवा नेत्रादि इन्द्रियों से देखा, सुना वा चाखा अथवा मन से विचारा वह सब मिथ्या ही है ॥ ४ ॥ प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि, और सीपी में चाँदी की भ्रान्ति यह मिथ्या हैं, ठीक है परन्तु भय कम्प आदि अनर्थ के कारण होते हैं, तैसे ही देह आदि मिथ्या पदार्थ भी मृत्यु पर्यन्त छोटे बड़े सब प्रकार के भय उपन्न करते हैं (अथवा देहादि लीन होनेपर्यन्त दुःख देते हैं) ॥ ५ ॥ यह समस्त विश्व आत्मा ही है, उत्पन्न होनेवाला और उत्पन्न करनेवाला दोनों ब्रह्म ही है, उस में सब प्रकार के रूप धारण करने की शक्ति है, रक्षा करनेयोग्य वही है और रक्षा करनेवाला भी वही है; वही विश्वात्मा ईश्वर संहार कियाजाता है और वही संहार करता है ॥ ६ ॥ इसप्रकार श्रुतियों ने आत्मा से भिन्न कोई पदार्थ कहा है ऐसा नहीं है किंतु आत्मा ही रचीजानेवाली वस्तु भिन्न है; देह, इन्द्रियें और अन्तःकरण यह निरूपण करीहुई तीनप्रकार की प्रतीति तिस आत्मा में निर्मूल है, यह त्रिगुणमयी त्रयी माया की रचीहुई है ऐसा समझो ॥ ७ ॥ मेरा कहाहुआ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान जिस ने पूर्ण रीति से समझलिया है वह पुरुष, किसी की प्रशंसा वा निन्दा नहीं करता है किन्तु सूर्य की समान उदासीन (प्रिय-अप्रियरहित) होकर विचरता है ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और अपना अनुभव इन चार प्रमाणों से, जितना द्वैत है वह सब उत्पत्तिनाश युक्त अर्थात् मिथ्या है, ऐसा निश्चय करै और सब आसक्तियों को छोडकर भूतलपर फिरता रहै ॥ ९ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे ईश्वर ! आत्मा तो द्रष्टा चेतन है इसकारण उस को संसार नहीं है और देह तो दृश्य जड है इसकारण उस को संसार नहीं है, परन्तु वह अनुभव में तो आता है अर्थात् दोनों में से एक को तो होना चाहिये, सो किस को है ॥ १० ॥ आत्मा तो नाशादिरहित है, उस के रागद्वेष आदि गुण नहीं हैं, पुण्यपाप आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्निर्वदारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा [illegible]विबुद्धस्य प्रस्वापो बहुनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोक[illegible]मोद[illegible]दयः ॥ अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोऽतरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा पुनर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

दोष भी नहीं हैं, वह स्वयं प्रकाश अर्थात् अज्ञानरहित है और उस को किसी ने आच्छादन नहीं करा है अर्थात् उस के स्वरूप की सीमा नहीं है; इस गुण से उस को अग्नि की उपमा देने पर बहुत से अंशों में ठीक बैठता है और देह तो काठ की समान जड है फिर जगत् में संसार किस को है ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—जबतक आत्मा का देह, इन्द्रियें और प्राणों से सम्बन्ध है तबतक, अविवेकी पुरुष को, संसार मिथ्या होने पर भी फलद्रूप होता है (अनुभव में आता है) ॥ १२ ॥ देखा[illegible] स्वप्न मिथ्या होता है यह सिद्ध है तथापि उस में दीखनेवाली भयदायक वस्तुओं के देखने से स्वप्न देखनेवाले को भय होता है, तब वह उचक उठता है तैसे ही संसार वास्तव में सत्य नहीं होने पर भी जबतक मनुष्य विषयों का ध्यान करता है तबतक दूर नहीं होता है ॥ १३ ॥ जब तक मनुष्य जागता नहीं है तबतक ही स्वप्न उस को अनेकप्रकार से अनर्थकारक होता है, वही जागा कि फिर स्वप्न उस को मोहित नहीं करसक्ता है तैसे ही ज्ञानवान् को संसार में के अनर्थों से मोह नहीं होता है ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा आदि तथा जन्म और मृत्यु, यह अहङ्कार के धर्म दीखते हैं, आत्मा के नहीं हैं ॥ १५ ॥ देहादि के ऊपर अभिमान रखनेवाला, उन के भीतर रहनेवाला और गुणकर्ममय मूर्त्ति धारण करनेवाला (लिङ्गशरीर) आत्मा-जो जीव वह, कालरूप परमेश्वर के अधीन होकर उन के वर्त्ताव कराने के अनुसार संसार में इधर से उधर को दौड़ता है उस के ही सूत्रात्मा, महान् ऐसे अनेक नाम हैं ॥ १६ ॥ मन, वाणी, प्राण, शरीर कर्म (अहङ्कार) यह समूह वास्तव में मूलरहित है परन्तु अज्ञान के कारण देवादि नानाप्रकार के स्वरूपों से प्रकाशित होरहा है. मुनि उपासना के द्वारा ज्ञानरूप खड्ग को तीखी करके उस खड्ग से ऊपर कहेहुए समूह का छेदनकरता है और निरीहपने से पृथ्वी पर विचरता रहता है ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं सुकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग गुणत्रयं [illegible] ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च यदन्यतोऽनन्यदुतात्मतत्त्वं सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तद्व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्य-त्तदेव तत्स्या-

ज्ञान का स्वरूप विवेक ही है, और वह वेद, अपने धर्म का अनुष्ठान, अपना अनुभव, गुरु का उपदेश और तर्क इन साधनों से होता है; इस जगत् की उत्पत्ति से पहिले और प्रलय के अनन्तर जो होता है वही एक आत्मस्वरूप जगत् की विद्यमान दशा में भी होना चाहिये वही जगत् का प्रकाशक और सब का हेतु है ऐसा निश्चय ही ज्ञान का फल है ॥ १८ ॥ जैसे सुन्दर गहने बनाने से पहिले सुवर्ण सब गहनों के आदि में और तूटकर गलने के अन्त में एकसमान ही होता है मध्य में ही उस में कडे कुण्डल आदि अनेकों नामों के व्यवहार होते हैं, परन्तु वह आदि मध्य और अन्त में सुवर्ण ही सत्य है तैसे ही मैं (आत्मा) जगत् के आदि मध्य अन्त में होता हूँ अर्थात् विद्यमानरूप पृथक् नहीं है ॥ १९ ॥ ऐसे [illegible] का कारणरूप होना कहकर अब प्रकाश्य का प्रकाशकरूप होना कहते हैं—हे [illegible] जी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंवाला विज्ञान (मन), उन [illegible] अवस्थाओं के कारण तीन गुण (सत्त्व, रज, तम) तथा कारण (अध्यात्म) कार्य (अधिभूत) और कर्त्ता (अधिदैव) यह समूह मिलकर गुणों का कार्य सब तीनप्रकार का जगत्, तीनों अवस्थाओं से पर सामान्य ज्ञान की सत्ता से प्रकाशित है अर्थात् तुरीयज्ञान के सर्वत्र अनुस्यूत (पुराहुआ) होने से विश्वप्रकाशित है, इस विषय में श्रुतियों के बहुत से प्रमाण हैं -' तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ' अर्थात् वह परमात्मा (ज्ञान) प्रकाशवान् है, उस के प्रकाश करके सब प्रकाशित होरहा, दूसरी श्रुति कहती है—' चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसोये मनो विदुः, अर्थात्—वह (ज्ञानरूप परमात्मा) नेत्र का नेत्र, कर्ण का कर्ण, और मन का मन है ऐसा ज्ञानी मानते हैं यह ज्ञान का सब कार्य मात्र में अन्वय कहा, तैसे ही उस का व्यतिरेक भी है, देखो—समाधि दशा में सब जगत् न होने परभी ज्ञान की सत्ता से अनुभव में आता है; इस प्रकार सर्वत्र सबकाल में जिस की सत्ता सिद्ध हुई वही ज्ञान सत्य है ॥ २० ॥ जो (विश्व) उत्पत्ति से पहिले नहीं था और प्रलय होने पर भी नहीं था, केवल मध्य में ही नाम का आधार होकर रहता है, पहिले जिसकी उत्पत्ति दूसरे से ही हुई और प्रकाश भी दूसरे से ही हुआ ऐसा वह विश्व अपने कारण का और प्रकाशक का ही रूपान्तर होना चाहिये, तिस से जुदा नहीं, ऐसा मेरी बुद्धि को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिति मे मनीषा ॥ २१ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजसस्तैजसश्च ॥ ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकाराचित्रं २२॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽवितृषोऽक्षरेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा हि प्राणो वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रा धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यं ॥ २४ ॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेदुत्तमविक्रियाभ्रमः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतैरभ्रवः किं ॥२५॥ यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्त्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरज-

को प्रतीत होता है, घड़े सकोरे भिन्न २ कितने ही आकार हुए, परन्तु उन नामों का आधार मृत्ति का ही सब का सत्य (ठीक) रूप है तैसे ही जगत् अपने कारणरूप ज्ञान से पृथक् नहीं है ॥ २१ ॥ यह जो विकारों का समूह प्रपञ्च, जो पहिले नहीं था और फिर भासनेलगा है, यह रजोगुण के द्वारा ब्रह्म का कार्य है (इस का प्रकाश ब्रह्म की सत्ता से है) ब्रह्म ही स्वयं सिद्ध है, वह किसी का कार्य नहीं है, वह ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रकाशक होने के कारण इन्द्रियें, इन्द्रियों के विषय, मन और पाँच स्थूल भूत इन चित्रविचित्र रूपों से प्रतीति में आता है॥२२॥ इसप्रकार वेद, सदाचार, अनुभव, उपदेश और अनुमान इन ब्रह्मज्ञान के स्पष्ट साधनभूत प्रमाणों से देह में आत्मभाव की प्रतीति को पूर्णरूप से दूर करे, आत्मा के विषय के संशय को तोड़डाले और स्वरूप के आनन्द से ही सन्तुष्ट होकर, सकल इच्छाओं से मरीहुई इन्द्रियों के सङ्ग से अलग रहे ॥२३॥ शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि—वह घडे की समान पृथ्वी का कार्य है; तैसे ही इन्द्रियें, इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवता, प्राण, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार यह आत्मा नहीं हैं, क्योंकि यह शरीर की समान ही अन्न के आश्रित वा पोष्य हैं, वायु, जल, तेज, आकाश और पृथ्वी यह पाँच स्थूलभूत, शब्दादिविषय (सूक्ष्मभूत) और तीनों गुणों की साम्यावस्था अर्थात् प्रकृति यह भी घट की समान जड़ हैं अर्थात् आत्मा नहीं हैं ॥२४॥ इस रीति से जिस को मेरे स्वरूप का उत्तम विवेक होगया है उस की गुणमय इन्द्रियें, सावधान रहें तो उस से कुछ विशेष लाभ है ऐसा नहीं है और वह विषयों को ग्रहण करने में प्रवृत्त होयँ तो उन से कोई दोष हो ऐसा भी नहीं है; घनघटा आई तो क्या और चली गई तो क्या, उन के गुणदोष सूर्य को किञ्चिन्मात्र भी नहीं लगते हैं तैसे ही इन्द्रियों की सावधानता (विषयों से बचे रहना) का और चंचलता का प्रकार जानना ॥२५॥ जैसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन के क्रम से सुखाना, जलाना, गीला करना और मैला करना इन गुणों का तथा ऋतुओं के कुछ कालपर्यन्त आकर चलेजानेवाले सरदी गरमी आदि धर्मों का स-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तमोमलैरहमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥ तथापि सङ्गः परिवर्ज्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽमयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहान् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहितांतरायैर्मृतास्त्रदशैपसृष्टैः ॥ ते मारुतामर्त्यसवर्चसो वै भूयो युजान्त योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जंतुः केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ॥ न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठतासीनमथ व्रजंतं शयानमुक्षन्मदंतमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि

म्बन्ध आकाश को नहीं होता है तैसे ही अहङ्कार से पर अविनाशी परब्रह्म, संसार के कारण सत्त्व, रज और तम इन गुणों के दोषों से लिप्त नहीं होता है ॥ २६ ॥ जबतक पूरा २ ज्ञान न हो तबतक पुरुष, मुक्त की समान अपनी इच्छानुकूल वर्त्ताव न करै, यह वर्णन करते हैं—ब्रह्मरूप अलिप्त है यह ठीक है तथापि जबतक मन को बिगाड़नेवाली विषयासक्ति, मेरे विषै कमोद्भव पक्के भक्तियोग से दूर न होय तबतक माया के कल्पना करेहुए विषयों से सम्बन्ध रखना वर्जित है ॥ २७ ॥ क्योंकि— जैसे रोग की भली प्रकार चिकित्सा न करीजाय तो वह वार २ बढ़कर मनुष्य को पीड़ा देता है तैसे ही जिस के राग आदिमल और उन मलों की जड़रूप कर्म भस्म नहीं हुए हैं वह मन, स्त्री पुरुष आदि सब विषयों पर आसक्त होकर कच्चे ज्ञानी तिसयोगी को भ्रष्ट करदेता है ॥ २८ ॥ बन्धु शिष्य आदिरूप देवताओं के प्रेरणा करेहुए विघ्नों के आजाने से जो योग भ्रष्ट होजाते हैं वह जन्मान्तर में करेहुए अपने पूर्व अभ्यास के बल से फिर योग का ही अभ्यास करने लगते हैं, कर्मकाण्ड का फैलाव करतेहुए नहीं बैठे रहते हैं । २९ । ज्ञानवान् से भी सर्वथा कर्म नहीं छूटसक्ता यह ठीक है परन्तु उस को फिर संसार में नहीं पड़ना पड़ता है, देखो—यह प्राणी किसी पुरातन संस्कार की प्रेरणा से मरण पर्यन्त कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है और उस से उसे पुष्टि दुर्बलता आदि विकार भी प्राप्त होते हैं, परन्तु विद्वान पुरुष देह में रहता हुआ भी उस कर्म के कारण विकार नहीं पाता है, क्योंकि—आत्मसुख का अनुभव मिलने के कारण उस की सब इच्छा नष्ट सी होजाती हैं और उस को अहङ्कार नहीं होता है इसकारण ही उस को हर्षशोक आदि से प्रकट होनेवाला संसार नहीं भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ जिस की बुद्धि आत्मस्वरूप में जड़ी हुई है उस पुरुष का देह खड़ारहो, चलो, सोवो, मूत्र करो, अन्नखाओ, अथवा स्वभाव से ही प्राप्त हुए दर्शन श्रवण आदि कोई भी कर्म करो वह उस शरीर की किसी वार्त्ता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानाऽनुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥ पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ [illegible] ज्ञानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्त्यात्मनि तु [illegible] ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्स्वयं [illegible] बुद्धेः ॥ [illegible] एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो

ध्यान नहीं रखता है ॥३१॥ यदि कदाचित् बहिर्मुख हुई इन्द्रियों का विषयों से सम्बन्ध हुआ देखने में आवेतो, वह विद्वान् पुरुष, स्वप्न के दृष्टान्त से 'जितने भी पदार्थ अनेक हैं वह सब मिथ्या [illegible] ऐसे अनुमान करके आत्मा के सिवाय किसी भी पदार्थ को सत्यनहीं मानता है, क्योंकि [illegible] को पूरा २ ज्ञात (मालूम) होता है कि—मनुष्य स्वप्न देखकर उठे तो उस को स्वप्न में देखे [illegible] पदार्थ संस्कार के कारण फिर सन्मुख भासते हैं परंतु वह अपने आप लुप्त होजाते हैं, यही [illegible] के सकल विषयों की दशा है, जैसे जागने की दशा में भासनेवाले स्वप्न में देखेहुए पदार्थ [illegible] हैं तैसे ही सब इन्द्रियों के विषय क्षणिक और मिथ्या हैं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार आत्मा को विकार [illegible] नहीं है ऐसा कहा, परंतु इसपर एक शङ्का उठती है कि—इसप्रकार आत्मा के बद्धावस्था में मलिन [illegible] के कारण हेय (त्यागने योग्य) होने से और मोक्षदशा में शुद्ध होने के कारण उपादेय (ग्रहण [illegible] से, आत्मा को विकार नहीं है ऐसा कहना नहीं बनेगा, देखो धानों को कूट [illegible] रूप से त्यागा और तण्डुल (चावल) रूप से ग्रहण करा तो उन में कुछ विकार [illegible] ऐसा कहना नहीं बनसक्ता, इसशङ्का का समाधान करते हैं कि—हे उद्धवजी ! गुण [illegible] कर्मों से चित्रविचित्र दीखने में आनेवाले जो देह इन्द्रियादिरूप अज्ञान के कार्य [illegible] के ऊपर मानेहुए होते हैं उन का ही पहिले अर्थात् बद्धदशा में ग्रहण करा था और ज्ञान के द्वारा मुक्तावस्था में उस अज्ञान का त्यागकरा, आत्मा का तो किसी अवस्था में भी ग्रहण वा त्याग नहीं कियाजाता है; यदि मुक्ति किसी क्रिया का अथवा व्यापार का फल होती तो आत्मा में विकार आसक्ता था, परन्तु मुक्ति का स्वरूप इतना ही है कि-आत्मा के ऊपर आरोपण करेहुए अज्ञानमात्र की निवृत्ति, अर्थात् बन्ध वा मोक्ष आत्मा को कभी नहीं लगता है इस कारण ही उस को विकार नहीं है ॥३३॥ जैसे सूर्य का उदय, मनुष्यों के नेत्रों पर के अन्धकार को दूर करता है, ऐसा मानते हैं घटादि दृश्य पदार्थों को नवीन उत्पन्न करता है ऐसा अर्थ नहीं है तैसे ही मेरा पूर्ण शुद्ध ज्ञान पुरुष की बुद्धि के ऊपर के पटल (अज्ञानरूप ढक्कन) को दूर करदेता है ॥ ३४ ॥ यह प्रत्यक्ष अनुभव से नित्यप्राप्त आत्मा स्वयंप्रकाश है अर्थात् उस में अज्ञानरूप मल को दूर करना, यह विकार नहीं है, वह जन्मरहित, प्रमाणों का अविषय और परमसमर्थ अर्थात् देश काल आदि की करीहुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्वि कल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वैयं पण्डितमानिनां ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतः [illegible] रोगैर्विहन्येत तत्रायं विहितो [illegible] ॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणा[illegible]

मर्यादा से रहित है तात्पर्य यह कि—उस में उत्पन्न होना, बढ़ना, पकना, क्षीणता [illegible] कोई नाश यह विकार नहीं हैं, वह सब का अनुभवरूप है, जब उस से भिन्न दूसरा नहीं, वह कारण होय तब उस में विकार उत्पन्न होय, परन्तु उस से भिन्न कुछ है [illegible] हैं और उस एक है, सब इन्द्रियें उस के स्वरूप में प्रविष्ट न होकर पीछे को लौट [illegible] कर सक्ते हैं ३५ से प्रेरित होने के कारण इन्द्रियें और प्राण अपने २ विषयों को [illegible] है, क्योंकि—आत्मा से भेदरहित आत्मस्वरूप में विकल्प मानना, यह सब मन का भ्रम [illegible] भिन्न उस विकल्प का कोई आश्रय है ही नहीं, उदाहरण [illegible] खो—सीपी में चाँदी का भ्रम होता है परन्तु उस भ्रम का आधार सीपी से [illegible] नहीं होता है, अर्थात् सीपी में माना जाने वाला रजत सत्य नहीं तैसे ही [illegible] माना हुआ विकल्प सत्य नहीं है ॥ ३६ ॥ कोई २ ऐसा कहते हैं कि आप्तप्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रतीति में आनेवाला प्रपञ्च मिथ्या नहीं है और वेदान्त के [illegible] यज्ञ के अर्थ के और यज्ञकर्त्ता का वर्णन करनेवाले अर्थवादरूप हैं, इसक[illegible] द्वैत ही सत्य है, इस मन का आशय कहकर तिस का खण्डन करते हैं कि—द्वैत, [illegible] से और आकारों से युक्त तथा पञ्चमहाभूतरूप है, ऐसे द्वैतरूप प्रपञ्च का बाध न[illegible] होता है किन्तु प्रपञ्च सत्य है, ऐसा कहनेवाले कितने ही अपने को पण्डित मान[illegible] वाले पुरुष कहते हैं उन को वेदान्त के वचन अर्थवादपर (कर्मकाण्ड की स्तुति करनेवाले) प्रतीत होते हैं, परन्तु उस प्रतीत होने का कुछ भी आधार नहीं है, देखो 'तत्त्वमसि' ऐसे वचनों की 'अग्निहोत्रं जुहोति' अथवा 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि विधिवाक्यों से एकवाक्यता नहीं की जासक्ती, यदि ऐसा होसक्ता तो उन वेदान्तवचनों को अर्थवाद कहसक्ते थे ! और आत्मा अकर्त्ता तथा अभोक्ता है ऐसा वर्णन करनेवाले वचन कर्मविधि के अङ्ग भी नहीं होसक्ते, फिर द्वैत की सत्यता कहाँ सिद्ध होती है ? अर्थात् नहीं होती; द्वैत नाम रूपों वाला और इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य तथा पञ्चमहाभूत रूप है, अतः वह स्वप्न की समान मिथ्या है ऐसे अनुमानों से और 'वाचारम्भणम्' ऐसी श्रुतियों से उस प्रपञ्च का बाध होना निश्चय करा है ॥ ३७ ॥ जिस का योगाभ्यास पूरा नहीं हुआ है ऐसे किसी योगी के शरीर को, योग साधन करते हुए मध्य में ही रोगादि उत्पन्न होकर उस से पीड़ा होनेलगे तो उस के उपाय की यह विधि वर्णन करी है कि— ॥ ३८ ॥ कितने ही रोगों का योगधारणा से नाश करै, (सन्ताप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्निनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नाम-संकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान् शनैः ॥ ४० ॥ केचि-द्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरर्थं युञ्जन्ति सिद्धये ॥ [illegible] तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अन्तवत्त्वाच्छ-रीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतां-यात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्या-मिमां योगी विचरन्मदाश्रयः ॥ नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥७॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथाऽञ्जसा पुं-

शीत आदि की पीड़ा [illegible] लेंगे तो क्रम से सोम की और सूर्य की धारणा करके उन का नाश करै), कितने ही (वातआदि [illegible] रोगों को, आसन साधकर और वायु को धारण करके नाश करै पापग्रह सर्प आदि की पीडा होन[illegible] तो तप, मंत्र औषधि के द्वारा उन को दूर करै ।३९। किन्हीं (कामादि) रोगों का निरन्तर मेरे [illegible] और नामसङ्कीर्त्तन आदि करके [illegible] योगेश्वरों (गुरुओं) संहार करै; और दम्भ, मान आदि अमङ्गलकारी शत्रुओं [illegible] की सेवा करके नाश करै ॥ ४० ॥ कितने ही धैर्यवान् पुरुष, इस [illegible] तथा दूसरे भी अनेकों उपायों से अपने शरीर को जरारोग आदि रहित और नि[illegible] युवा अवस्था में रहनेवाला बनाकर फिर अतुलनीय शक्तिवाला होना, दूसरे के शरी[illegible] में प्रवेश करना ऐसी नानाप्रकार की सिद्धियों के निमित्त जुदी २ धारणा करते हैं, ज्ञा[illegible] निष्ठा के निमित्त योगाभ्यास नहीं करते हैं ॥ ४१ ॥ परन्तु वह मार्ग चतुर पुरुषों के स्वी[illegible] करनेयोग्य नहीं है, सिद्धि के निमित्त परिश्रम करना निरर्थक है, क्योंकि—वनस्पति के फल की सनान शरीर नाशवान है, केवल आत्मा ही नित्य है ॥ ४२ ॥ कभी कभी समाधि के अङ्ग, नित्य प्राणायाम आदि योग का साधन करते रहने पर शरीर जरारोग आदि रहित होयगा, यह ठीक है परन्तु जिसकी मुझ में निष्ठा है वह बुद्धिमान् उस देहपर विश्वास न रक्खै और समाधियोग को न छोड़ै ॥४३॥ जो योगी मेरा आश्रय करके ऐसा योगाभ्यास करता रहेगा उसको कभी भी विघ्नों से पीड़ा नहीं होयगी, क्योंकि—सब विघ्नों की मूल इच्छा है, मेरी ओर को ध्यान हुआ कि—वह सब छूटजाती हैं और उस को आत्मसुख का अनुभव मिलता है ॥ ४४ ॥ इतिश्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी ने कहाकि—हे अच्युत ! जिस ने अपने चित्त को नहीं जीता है उन पुरुषों के हाथ से यह योगसाधन होना मुझे अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान् सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यजसाऽच्युत ॥१॥ प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजन्तो योगिनो मनः ॥ विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनन्ददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नरविंदलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्मायया ऽमी विहता न मानिनः ॥ किं [illegible] दोसेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्कृतः [illegible] चरन्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्पदैः परमविटतपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं ते ॥ भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेशब्रह्मायुषाऽपि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ हारनूपुरमु-

दुर्घट प्रतीत होता है इसकारण पुरुष को जैसे अनायास में सिद्धि [illegible] ॥ हारनूपुरमु- से कहिये ॥ १ ॥ हे कमलनयन ! प्रायः मन को वश में [illegible] भूतिमद्भिर्निजायुधैः॥

नोनिग्रह करने में अत्यन्त ही उद्योग करते हैं तथापि [illegible] युद्ध में फिरतेहुए मारने को विषाद को प्राप्त होते हैं॥२॥अतएव हे कम[illegible]स्तहुए और श्रीकृष्णजी की माया से पुरुष चतुर हैं, वह सकल आ[illegible] में स्पर्धा से क्रोध उत्पन्न हुआ उस क्रोधने उन के कुल हैं, योगाभ्यास के क[illegible]से बाँसों की रगड़ से उत्पन्न हुआ अग्नि उन बाँसों के ही का आश्रय नहीं डालता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपने सब कुल के नष्ट होनेपर भगवान् तुम सबों के [illegible], शेषरहे हुए भूमि के भार को उतराहुआ जाना ॥ २५ ॥ बलरामजी समुद्र बताओं, पौरुषयोग (परमपुरुष के ध्यान) को धारण करके और परमात्मा में मनको नम[illegible]र भूलोक वा मनुष्यदेह को छोड़गये ॥ २६ ॥ इसप्रकार बलरामजी के निर्याण से दुखकर भगवान् देवकीपुत्र, पीपल के वृक्ष के नीचे जाकर भूमिपर स्वस्थ बैठगये ॥ २७ ॥ उस समय भगवान् ने चतुर्भुजरूप धारण करा था, भगवान् का रूप अत्यन्त दमकता हुआ होनेके कारण उसकी कान्ति से दशों दिशाओं का अन्धकार ऐसेदूर होगया जैसे धूमरहित अग्नि के जलने पर उसकी कान्ति से अन्धकार दूर होजाता है ॥ २८ ॥ भगवान् के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह था, भगवान् का स्वरूप सजल मेघमण्डल की समान श्यामवर्ण और उनकी कान्ति अग्नि में तपाएहुए सुवर्ण की समान थी, दो पीताम्बरों से शोभित भगवान् का रूप अत्यन्त ही सुन्दर दीखता था ॥ २९ ॥ सुन्दर और कुछएक मुसकुरानयुक्त जिन का मुखकमल, नीलवर्ण के केशों से भूषित, सफेद कमल की समान सुन्दर जिस में नेत्र और जिस में के कर्णों में मकराकार कुण्डल शोभायमान थे ॥ ३० ॥ कमर में तागड़ी, कण्ठ में यज्ञोपवीत, मस्तकपर किरीट, हाथों में कड़े, भुजदण्डों में बाजूबन्द, कण्ठ में हार, चरणों में नूपुर, अङ्गुलियों में अंगूठी छल्ले, कण्ठ में कौस्तुभमणि इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यंक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतशक्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् [illegible] चरन् मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्वत्सर्वाणि कर्माणि मदर्थे शनकैः [illegible] ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान् संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ यथस्वरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रादिभिर्विभो ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु दन्तमात्मनः स्वतमम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ मां भजेरं त्वं [illegible]

से भगवान् का स्वरूप आ[illegible] अङ्गल को दूर करते हो और उन को अपने स्वरूप का दर्शन उनके पास शस्त्र मूर्त्तिमान् थे, एरु[illegible] तुम्हारे उपकार को स्मरण करते हैं और परमानन्द से भरहिनी जङ्घापर रखकर बैठेहुए थे ॥ ३२ ॥ [illegible] उपकारों का पलटा कभी नहीं चुका सक्ते (वह थोडासा टुकड़ा फेंकदिया था, वह टुकड़ा जरा नामैं[illegible] ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा में मिला और उस ने उस का वाण के आगेका फलका बनालिया[illegible]जी ने ऐसा प्रश्न करा; के चरणकमल को दूर से देखा सो उस को तिस चरण का आकार [illegible]णमयी शक्तियों से समान दीखा और 'यह मृग है' ऐसा समझकर उस को तिस वाण से वेध प्रेम के साथ फिर व्याधा आगे आया तो चतुर्भुज पुरुष श्रीकृष्ण हैं ऐसा देखकर अपत्त उद्धवजी! कारण अति भयभीत हुआ और उस ने भगवान् के चरणकमलपर मस्तक रक्खा[illegible] कठिन और प्रभु का चरण पकडकर वह व्याधा कहनेलगा कि—हे भगवन्! हे मधुसूदन को पापी के हाथ से अनजान में यह वार्त्ता हुई है, हे उत्तमश्लोक! हे निष्पाप! मैं परम अपराधी हूँ; आप को मेरा अपराध क्षमा करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! हे नारायण! जिनका स्मरण करने पर मनुष्य का अज्ञानरूपी अन्धकार दूर होता है ऐसा पण्डित कहते हैं, ऐसे आप का मैंने बड़ा अनिष्ट करा है ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठ! हे भगवन्! मैं मृग का लोभी और बड़ा पापी हूँ, मुझे तुम शीघ्रही दण्ड दो, कि—जिस से मैं ऐसा महात्माओं का अपराध फिर कभी न करूँ ॥ ३७ ॥ तुम्हारी माया के रचेहुए इस जगत् को ब्रह्माजी, ब्रह्माजी के रुद्र आदि पुत्र और वेदवेत्ता ऋषि नहीं जानते हैं, क्योंकि—उन की दृष्टि, तुम्हारी ही माया से ढकीहुई हैं, फिर जिन का जन्म निःसन्देह पापमय है ऐसे हम तुम्हारे ब्राह्मणशाप आदि का क्या वर्णन करैं (इस कारण शीघ्रही मेरा वध करो) ३८॥ भगवान् ने कहा हे जरा व्याधे! भयभीत न हो, तूने मेरी इच्छा पूर्ण करी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य तां ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं [illegible] पादयोरथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः [illegible] तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायामुडुपप्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलांछनः ॥ समुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो ब्रूहि मद्दशां ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च नैवस्थेयं भवद्भिः स्वस्वबंधुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ४७॥

है अब मेरी आज्ञा दियाहुआ तू पुण्यवानों के स्थान [illegible] जा ॥ ३९ ॥ अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करनेवाले भगवान् [illegible] युद्ध [illegible] के ऐसी आज्ञा देनेपर वह व्याधा श्रीकृष्णजी की तीन प्रदक्षिणा [illegible] अस्तहुए [illegible] कर स्वर्ग को चलागया ॥४॥ दारुक (सारथी) [illegible] कृष्णजी [illegible] में स्पर्धा से क्रोध उत्प[illegible] था, सो उस को वह मार्ग मिलगया तब वह, जिस दिशा से तुलसी के [illegible] पुष्पों की रगड़ से [illegible] युक्तवायु आरहा था उधर को मुख करके उस सुगन्ध को सूँघताहुआ आगे को चला ॥ ४१ ॥ सो पीपल की जड का आश्रय करके बैठेहुए और जिन के चारोंओर परमतेजस्वी शस्त्र हैं ऐसे अपने स्वामी श्रीकृष्णजी उस की दृष्टि पड़े प्रेम के कारण उस का अन्तःकरण भर आया और नेत्रों में आँसुओं के विन्दु आगये, वह रथ में से कूदकर भगवान् के चरणों पर आकर गिरा और कहनेलगा कि- ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणकमल को न देखने के कारण मेरी दृष्टि नष्ट होकर अज्ञान में प्रविष्ट होगई, रात्रि में चन्द्रमा का लोप होजाने पर जैसी दशा होती है तैसेही मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं होता है और कहींभी शान्ति नहीं मिलती है ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र ! सारथी के ऐसा कहने पर, गरुड़जी के चिन्ह से युक्त वह रथ घोड़े और ध्वजाओं सहित, दारुक के देखते हुए आकाश को उड़गया ॥ ४४ ॥ उस के पीछे विष्णु भगवान् के दिव्य अस्त्र आकाश में को चलेगये, यह दशा देखकर दारुक को बड़ा आश्चर्य हुआ तब श्रीकृष्णजी दारुक से कहनेलगे कि-॥ ४५ ॥ हे सारथी ! द्वारका में जा और ज्ञातियों का आपस में युद्ध करके मरना, बलरामजी का योगमार्ग से निर्याण और मेरी यह दशा, सब बार्त्ता बान्धवों से कहदे ॥ ४६ ॥ और कहदे कि-तुम अपने बान्धवों सहित द्वारका में न रहो, क्योंकि-मेरी त्यागीहुई उस यदुपुरी को समुद्र डुबालेगा ४७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वं त्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनाविताः सर्वे इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुःखितो जवनैः पुरीं ॥ ५० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेंद्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥३॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वंतः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः॥४॥ भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ॥ यो-

सबजने अपने २ परिवार और मेरे माता पिता को साथ लेकर अर्जुन से अपनी रक्षा करातेहुए इन्द्रप्रस्थ को जाओ ॥ ४८ ॥ तुम तो पुत्रधन आदि में उदासीन होकर ज्ञान को प्राप्त करने में ध्यान लगाओ, मेरे प्यारे भागवत धर्मों का आचरण करते रहो, और यह सब विश्वरचना मायाकी करीहुई है ऐसा जानकर शान्ति पाओ ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजी के ऐसा कहने पर दारुक ने उन की प्रदक्षिणा करके वार २ नमस्कार करा और उन के चरणों को मस्तक में लगाकर खिन्न होता हुआ वह द्वारका को चलागया ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—तदनन्तर तहाँ ब्रह्माजी, भवानी सहित शिवजी और महेन्द्र देवता तथा प्रजापतियों सहित मुनि तहाँ आये ॥ १ ॥ पितर, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, बड़े २ सर्प, चारण यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, गरुड़लोक के निवासी ॥ २ ॥ भगवान् का निर्याण देखने के निमित्त अति उत्कण्ठित होकर तहाँ आये; और गान करते हुए श्रीकृष्णजी के अवतार तथा चरित्र वर्णन करनेलगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! परम भक्तिमान् उन सबों ने, फूलों की वर्षा करी और विमानों की पङ्क्तियों से आकाश को भरदिया ॥ ४ ॥ भगवान् ने ब्रह्माजी की ओर को इन्द्रादि अपनी विभूतियों की ओर को देखकर परमात्मरूप में अपने चित्त को एकाग्र करके अपने कमल की समान नेत्रों को मूँदलिया अर्थात् समाधि लगाने के निमित्त से नेत्र मूँदलिये ॥ ५ ॥ लोकों को सब प्रकार आनन्द देनेवाले, धारणा के द्वारा ध्यान करने के उत्तम विषय ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गैधारणयाऽग्नेर्य्या दग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं दृष्ट्वाश्चर्यमिति विस्मिताः ॥८॥ सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलं ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडंबनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धं ॥ जिग्ये

अपने शरीर को,अग्नि की योगधारणा से भस्म न करके [illegible]वान् अपने लोक को गये, योगीपुरुषों की स्वच्छन्द मृत्यु होती है परन्तु [illegible] अग्नि की योगधारणा से शरीर को भस्म करके परलोक को जाते हैं, [illegible] न भक्तजनों को ध्यान करने को मिलै साक्षात् दर्शन होय इसनिमित्त से अपने शरीर को भस्म नहीं करा, भक्तजन अब भी उस मूर्ति का ध्यान करते हैं और उन को साक्षात्कार भी होता है ॥ ६ ॥ उस समय स्वर्ग में नौबत बजीं, आकाश में से फूलों की वर्षा हुई, श्रीकृष्णजी के पीछे सत्य, धर्म, धीरज, कीर्ति और लक्ष्मी यह भी भूमिपर से चलीगईं ॥ ७ ॥ जिन की गति किसी की समझमें नहीं आती वह श्रीकृष्णजी अपने धाम में प्रविष्ट होतेहुए ब्रह्मादि देवताओं को दीखे नहीं इसकारण वह अति आश्चर्य में होगये ॥ ८ ॥ जैसे आकाश में बिजली मेघमण्डल को छोड़कर जाती है तो उस की गति मनुष्यों की समझ में नहीं आती है तैसे ही श्रीकृष्णजी की गति देवताओं की समझ में नहीं आई ॥ ९ ॥ वह ब्रह्माजी शिवजी आदि श्रीहरि की गति को देखकर विस्मय में हुए और उस का बखान करते हुए अपने २ लोक को चलेगये ॥ १० ॥ हेराजन्! परमेश्वर ने यादवों में शरीर धारण करके उस को गुप्त रक्खा और उस से उन्हों ने अनेकों लीला करीं, इस सब को, जैसे नट स्वांग भरता है तैसे उन का माया के द्वारा कराहुआ अनुकरण जानो; वह स्वयं इस विश्व को उत्पन्न करके इस में प्रविष्ट होतेहुए विहार करते हैं और अन्त में संहार करके अपनी महिमा से उपराम को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जो मनुष्यशरीर से, यमलोक में पहुँचे हुए गुरु के पुत्र को लौटाकर लाये, जिन शरणागतों की रक्षा करनेवाले ने ब्रह्मास्त्र से भस्म हुए तुम्हारी रक्षा करी, जिन्हो ने मृत्यु के भी मृत्यु ऐसे शिवजी को भी जीत-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽतकार्तिकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वेरनयन् मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतु-र्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥ य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य [illegible] परा [illegible] भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमां ॥ १४ ॥ दारुकस्तु द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरितो जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः। व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा [illegible] ॥ कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्ता विजहुः स्मृतिं ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः

लिया और जो व्याधे को देहसहित स्वर्ग को लेगये वह क्या अपने शरीर की रक्षा नहीं करसक्ते थे? किन्तु करसक्ते थे ॥ १२ ॥ तो फिर वह कुछकाल पर्यन्त यहाँ क्यों नहीं रहे? ऐसा कहो तो सुनो—यद्यपि पूर्वोक्त प्रकार से वह प्रभु जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने में स्वतन्त्र कारण हैं, क्योंकि—वह सर्वशक्तिमान् हैं तथापि यादवों का संहार करनेपर अपने बचेहुए शरीर को यहाँ रखने की इच्छा नहीं करी, क्योंकि—आगे को मनुष्यशरीर से कोई कार्य करना शेष नहीं था और उन्हे आत्मनिष्ठ पुरुषों को दिव्यगति दिखानी थी अर्थात् जो मैं अपने शरीर को यहाँ अविचल रक्खूंगा तो आत्मनिष्ठ पुरुष भी दिव्यगति का अनादर करके देह को अविचल रखकर यहीं रमण करने का उद्योग करेंगे तो अति अनुचित होगा, ऐसे विचार से भगवान् ने अपने शरीर को यहाँ नहीं रक्खा ॥ १३ ॥ जो पुरुष, प्रातःकाल उठकर शुद्ध होकर भक्ति के साथ श्रीकृष्ण की इस दिव्यगति का कीर्त्तन करता है वह पुरुष उस ही उत्तमगति को पाता है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णजी का विरह होनेपर दारुक द्वारका में आकर वसुदेवजी और उग्रसेन के चरणों में पड़ा और उन के चरणों को आँसुओं के जल से भिगोनेलगा ॥ १५ ॥ हे राजन्! उस ने सब यादवों के मरण का वृत्तान्त कहा, उस को सुनकर लोगों के हृदय दहलगये और वह शोक से मूर्छित होकर गिरपडे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी के विरह से विह्वल हुए वह सबजने, मुख को पीटतेहुए जहाँ यादव मरेहुए पडे थे तहाँ शीघ्रता से आये ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी तथा वसुदेव, इन को अपने पुत्र श्रीकृष्णजी और बलराम नहीं दीखे इसकारण यह अतिव्याकुल हो मूर्छित होकर गिरपडे और उन को अपने शरीर का भी स्मरण नहीं रहा ॥ १८ ॥ भगवान् के विरह से व्याकुलहुए उन्होंने तहाँ प्राण छोड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः॥ ॥ २० ॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ वधूनां मृतगोत्राणामर्जुनः सापरक्रियाम्॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् २४॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनंजयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ ते तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थं हरेर्भगवतो रु-

दिये; हे राजन्! स्त्रियें, पतियों को हृदयों से लगाकर चिताओं पर चढीं ॥ १९ ॥ बलरामजी की स्त्रियों ने उन के देह को आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश करा, वसुदेवजी की स्त्रियों ने उन के शरीर को आलिङ्गन करके और श्रीहरि की पुत्र वधुओं ने प्रद्युम्नादिकों के शरीरों को आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश करा, रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णजी की स्त्रियों ने भी उन की ओर को चित्त लगाकर अग्नि में प्रवेश करा ॥२०॥ अर्जुन परमप्रिय मित्र के विरह से व्याकुलहुआ, परन्तु उस ने श्रीकृष्णजी के उपदेश करेहुए गीता के श्रेष्ठवाक्यों से अपने आत्मा को शान्ति दी ॥ २१ ॥ जिन के वंश को चलानेवाले नष्ट होगये, उन मृतबन्धुओं का पिण्डजलदान आदि कार्य शास्त्र की विधि के अनुसार क्रम से अर्जुन ने करवाया ॥ २२ ॥ हे महाराज! श्रीहरि के द्वारका त्याग करते ही एक क्षण में समुद्र ने वह नगरी, श्रीभगवान् के मन्दिर को छोडकर बाकी सारी डुबाली ॥२३॥ स्मरणमात्र से सकल अशुभों का नाश करनेवाले और सकलमङ्गलों का भी मङ्गल करनेवाले तिस मन्दिर में भगवान् मधुसूदन की नित्य समीपता है ॥ २४ ॥ जो मरने से शेष रही थीं उन स्त्रियों को, बालकों को और बूढों को लेकर अर्जुन, इन्द्रप्रस्थ को गया और तहाँ उस ने वज्र को राज्याभिषेक करदिया ॥ २५ ॥ हे राजन्! अर्जुन से जातिवालों के वध का वृत्तान्त सुनकर तुम्हारे पितामह पाण्डव तुम्हें वंश का आधार करके महामार्ग को चलेगये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य, देवाधिदेव विष्णुभगवान् के इस जन्म और चरित्रों को श्रद्धा के साथ सुनता है वह सकल पापों से छूटजाता है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इस में तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ ७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ७ ॥ शुभमस्तु ॥

दूसरे भी ग्रन्थों में प्रसिद्ध भगवान् श्रीहरि के परमकल्याणकारी इन सुन्दर अवतार के चरित्रों को और बाललीला को जो मनुष्य सुनेगा उस को, परमहंसों को प्राप्त होनेयोग्य भगवान् के ऊपर अखण्डभक्ति प्राप्त होयगी ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥*॥

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र–गौडवंश्य–श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान–विद्यालये प्रधानाध्यापक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप–नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहित एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

समाप्तोयमेकादशस्कन्धः

पुस्तक मिलने का ठिकाना–

शिवलाल गणेशीलाल

लक्ष्मीनारायण प्रेस

मुरादाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ द्वादशस्कन्धप्रारम्भः

श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त्यः पुरंजयो नाम भविष्यो बार्हद्रथः ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ २ ॥ प्रद्योतं संज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ ३ ॥ नंदिवर्धनस्तत्पुत्रः पंच प्रद्योतना इमे ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥ विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ६ ॥ नंदिवर्धन आजेयो महानंदिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागा दश—वै तेषां षट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥ समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानंदिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ८ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्तवाधार्मिकाः ॥ ९ ॥ स एकछत्रां पृ-

श्रीः ॥ राजा परीक्षित् ने प्रश्न करा कि-हे मुने शुकदेवजी ! यदुकुल के आभूषणरूप भगवान् श्रीकृष्णजी के निजधाम को चलेजानेपर इस पृथ्वीपर किस का वंश हुआ, यह मुझ से कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् बृहद्रथ के वंश में जो अन्त का पुरञ्जय नामवाला राजा होयगा, जिस का वर्णन नवमस्कन्ध में करा है, उस का शुनक नामवाला मंत्री, अपने स्वामी को (पुरञ्जय को) मारकर उस की गद्दी पर अपने प्रद्योत नामक पुत्र को बैठावेगा, उस का पुत्र पालकनामा होयगा, उस का पुत्र विशाखयूप, तिस का पुत्र राजक होयगा, राजक का नन्दिवर्द्धन नामवाला पुत्र राजा होयगा ; हे राजन् ! प्रद्योतन नामवाले यह पाँच राजे एक सौ अड़तीस वर्षपर्यन्त पृथ्वी का पालन करेंगे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ फिर उस से शिशुनाग होगा, उस का पुत्र काकवर्ण, उस का पुत्र क्षेमधर्मा, क्षेमधर्मा का पुत्र क्षेत्रज्ञ होयगा ॥ ५ ॥ तिस का पुत्र विधिसार, तिस का अजातशत्रु होयगा. उस का पुत्र दर्भक होगा, दर्भक का पुत्र अजय कहा है ॥ ६ ॥ अजय का नन्दिवर्धन, और उस का पुत्र महानन्दि होयगा, यह शिशुनाग आदि दश राजे कलियुग में तीन सौ आठवर्षपर्यन्त पृथ्वी का राज्य करेंगे, हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! फिर उस महानन्दि का शूद्री के गर्भ से कोई एक नन्दनामक पुत्र होयगा, वह महाबली और महापद्मसंख्या की सेना का अथवा इतने धन का स्वामी होकर क्षत्रियों का नाश करनेवाला होयगा और उस से आगे सब ही राजे शूद्रप्राय और अधार्मिक होजायँगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ वह महा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्थिवीमनुल्लंघितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥ नव नन्दान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥ स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १३ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशःसुतः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥ शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥१५॥ समाः भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥ अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ १६ ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता सुतः ॥ ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ १७ ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ शुंगा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्ष-

पद्मपति, राजा नन्द, जिस की आज्ञा का कोई उल्लंघन करनेवाला नहीं ऐसा होकर, मानो दूसरा परशुराम ही है ऐसे क्षत्रियों का संहार करताहुआ एकछत्र पृथ्वी का पालन करेगा ॥ १० ॥ उस नन्द के शूद्री से सुमाल्य आदि आठ पुत्र होयँगे वही आगे को राजे होकर सौ वर्षपर्यन्त इस पृथ्वी को भोगेंगे ॥ ११ ॥ फिर कोई एक चाणक्य नामवाला विश्वासघाती ब्राह्मण, नन्द और उस के आठ पुत्र इन नौ नन्दों को विश्वास दिलाकर उन का समूल नाश करेगा, उन के नष्ट होने पर फिर कलियुग में मौर्य नामवाले राजे पृथ्वी का पालन करेंगे ॥१२॥ हे राजन्! वह चाणक्य ब्राह्मण ही, मौर्यों में पहिले चन्द्रगुप्त को राज्य पर अभिषिक्त करेगा,उस चन्द्रगुप्त का पुत्र वारिसार होयगा, तिस से अशोकवर्धन होयगा॥ १३॥उस अशोकवर्धन का पुत्र सुयशा होयगा, सुयशा का पुत्र सङ्गत,तिस का शालिशूक शालिशूक का पुत्र सोमशर्मा होयगा॥ १४॥फिर उसका शतधन्वा,और तिसका बृहद्रथ होयगा, हे कुरुकुलश्रेष्ठ राजन्! यह दश मौर्य राजे कलियुग में एकसौ सैंतीस वर्ष पर्यन्त पृथ्वी को भोगेंगे, फिर उस बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र, अपने स्वामी बृहद्रथ को मारकर आपही राजा बनेगा,वही शुङ्गराजों में पहिला होयगा,तिससे आगे अग्निमित्र होयगा, अग्निमित्र से सुज्येष्ठ होयगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस का वसुमित्र,तिस का भद्रक, तिस का पुलिन्द पुत्र होयगा,तिस पुलिन्द से घोषपुत्र और घोष से वज्रमित्र होयगा॥ १७॥ तिस से भागवत और भागवत से देवभूति नाम से प्रसिद्ध राजा होयगा, यह शुङ्ग

(१) यद्यपि यहाँ चन्द्रगुप्त आदि नौ राजे क्रम से कहे हैं तथापि पराशरादि के मत से पांचवां दशरथ नामक राजा है, उस के सहित यह दश होते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शंताधिकम् ॥ १८ ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ १९ ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥ २० ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ २१ ॥ हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कश्चित्कालमसत्तमः ॥ २२ ॥ कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भवितां पृथिवीपतिः ॥ श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमांसस्तु तत्सुतः ॥ २३ ॥ लंबोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः ॥ मेघस्वातिश्चिबिलादटमानस्तु तस्य च ॥ २४ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥ चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिंदम ॥ तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान् भवितो ततः ॥ २६ ॥ मेदशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चंद्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरु-

नामवाले दश राजे एक सौ बारह वर्ष पर्यन्त पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥ १८ ॥ फिर यह भूमि हीनपराक्रमी कण्ववंशी राजाओं के वश में होजायगी ; हेराजन् ! स्त्रीलम्पट हुए उस देवभूति नामक शुङ्ग को मारकर उस का परमचतुर मन्त्री वसुदेव नामवाला कण्व स्वयं ही राज्य करेगा, उस का पुत्र भूमित्र, तिस का पुत्र नारायण और नारायण का पुत्र सुशर्मा होयगा ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ हेराजन् ! वह वसुदेवादि कण्ववंश के चार राजे कलियुग में तीनसौ पैंतालीस वर्षपर्यन्त पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥ २१ ॥ फिर कण्ववंशी अन्त के उस सुशर्मा को मारकर उस का ही सेवक कोई एक आन्ध्रजाति का बलीनामा दुष्ट शूद्र कुछ वर्षोंतक पृथ्वी का राज्य करेगा ॥ २२ ॥ उस बलि राजा का कृष्ण नामवाला भ्राता राजा होयगा, उस का पुत्र श्रीशान्तकर्ण, तिस का पुत्र पौर्णमास ॥ २३ ॥ तिस का पुत्र लम्बोदर, तिस से चिबिलक राजा होयगा, तिस से मेघस्वाति तिस का अटमान ॥ २४ ॥ अटमान का अनिष्टकर्म्मा, अनिष्टकर्मा का हालेय, हालेय का तलक, तलक का पुत्र पुरीषभीरु, तिस का पुत्र सुनन्दन राजा होयगा ॥ २५ ॥ तिस सुनन्दन का पुत्र चकोर होयगा, हे शत्रुदमन राजन् ! तिस चकोर के भिन्न २ नामवाले आठ पुत्रों में अन्त का पुत्र शिवस्वाति नामवाला होयगा, तिस का पुत्र गोमती, तिस से पुरीमान् होयगा ॥ २६ ॥ तिस का पुत्र मेदशिरा, तिस का शिवस्कन्द तिस का यज्ञश्री, तिस का विजय, विजय का पुत्र चन्द्रविज्ञ और चन्द्रविज्ञ का पुत्र सलोमधि नामवाला होयगा ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन राजन् ! यह तीस राजे चार सौ छप्पन वर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दन ॥ २८ ॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ॥ कंकाः षोडश भूपाला भविष्यन्ति च लोलुपाः ॥ २९ ॥ ततो-ष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ ३० ॥ एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दश वर्षशतानि च । नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिं ॥ ३० ॥ भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः ॥३२॥ शिशुनंदिश्च तद्भ्राता यशोनंदिः प्रवीरकः॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च वाल्हिकाः ॥ पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रो ऽस्य तथैव च ॥ ३४॥ एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः ॥ वैदूरपतयो भाव्या नैषधास्तत एव हि ॥ ३५ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥ प्रजाश्चान्त्रभृत्यिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान् क्षत्रमुत्सांद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां

पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेंगे ॥२८॥ तदनन्तर अवभृति नामवाली नगरी में सात आभीर जाति के राजे होंगे, फिर दश गर्दभी नामवाले राजे होंगे, फिर अतिलोभी सोलह कङ्क-जाति के राजे होंगे ॥ २९ ॥ फिर आठ यवन, चौदह तुरुष्क (तुरकिस्तान के तुरक) फिर दश गुरुण्ड और ग्यारह मौन नामवाले राजे होयँगे ॥ ३० ॥ हे राजन्! मौन राजों के सिवाय यह आभीर आदि पैंसठ राजे, एक सहस्र निन्यानवेवर्ष पृथ्वी का राज्य करेंगे, और फिर ग्यारह मौन राजे तो तीनसौवर्ष राज्यकरेंगे इन मौनोंके मरणको प्राप्त होनेपर किलकिला नामक नगरी में भूतनन्दादि आगे वर्णन करेंहुए राजे होयँगे; तिन में पहिला भूतनन्द फिर वंगिरि-३१।३२। उस के अनन्तर उस के भ्राता शिशुनन्दी, यशोनन्दी और प्रवीरक यह, एक सौ छः वर्ष पर्यन्त राजे होंगे॥३३॥फिर उन भूतनन्दादि के क्रम से वाल्हीक नामक तेरह पुत्र राजे होंगे, फिर एक दूसरा पुष्पमित्र नामवाला क्षत्रिय राजा होयगा और उस का पुत्र दुर्मित्र नामक होयगा॥३४॥फिर उन पहिले कहेहुए वाल्हीकों के वंशों में से सात आन्ध्र देश के राजे, सात कोसल देश के राजे कुछ विदूर देश के राजे और कुछ निषधदेश के राजे, यह तिन २ देशों के नामो से प्रसिद्ध होतेहुए एक समय में भिन्न २ खण्डों के स्वामी होकर राज्य करेंगे ॥३५॥ मागधवंश में तो विश्वस्फूर्जि राजा होयगा, वह 'दूसरा पुरञ्जय है' ऐसा प्रसिद्ध होकर 'ब्राह्मणादि वर्णों को भ्रष्ट करके' पुलिन्द, यदु, और मद्रक, इन म्लेच्छ समान वर्णों को करेगा ॥ ३६ ॥ वह दुष्ट वीर्यवान् पुरञ्जय, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन वर्णों से रहित शूद्रवर्ण की प्रजा स्थापन करके और क्षत्रियों का नाश करके, पद्मवती नगरी में गङ्गाद्वार से प्रयागपर्यन्त रक्षा करीहुई पृथ्वी को भोगेगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोक्ष्यन्ति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥ सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३८ ॥ सिंधोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ॥ भोक्ष्यन्ति शूद्रव्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥ तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ४० ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ४१ ॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४२ ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः ॥ ॥ ४३ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्क्ष्यन्त्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥ दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिंगमेवा-

॥ ३७ ॥ फिर सौराष्ट्र, आवन्त्य, शूर, अर्बुद और मालवा इन देशों में के द्विज यज्ञोपवीतसंस्कारहीन होंगे और राजे भी शूद्रसमान होंगे ॥३८॥ सिन्धुनदी का तट, चन्द्रभागानदी का देश, कौन्ती नगरी और काश्मीर देशों का भोग, शूद्र, म्लेच्छ, वेदाचाररहित ब्राह्मण और संस्कारहीन पुरुष करेंगे ॥ ३९॥ हे राजन्! यह म्लेच्छसमान राजे, एक ही काल में होंगे, और यह अधर्म तथा असत्य में तत्पर, अल्पदानी, परमकोपी, स्त्री-बालक-गौ-ब्राह्मण की हत्या करनेवाले, परस्त्री और परधन को चाहनेवाले, अनेकप्रकार के हर्ष शोक आदि से युक्त, अल्पपराक्रमी, अल्पायु ॥४०॥४१॥ संस्कारहीन, क्रियाहीन और रजोगुण तमोगुणों से भरेहुए होंगे, वह राजाओं के रूप धारनेवाले म्लेच्छ, धन आदि छीनकर प्रजाओं को पीडा देंगे ॥ ४२ ॥ ऐसे राजाओं के देशों में रहनेवाले और उन्हीं के समान, शील, आचार तथा वादविवाद करनेवाले पुरुष, परस्पर के क्लेशों से और राजाओं के करेहुए उपद्रवों से पीडित होकर नाश को प्राप्त होजायँगे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त ॥*॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! आगे को बलवान् कलियुग के प्रभाव से दिन २ धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति का धीरे २ नाश होजायगा ॥१॥ हे राजन्! कलियुग में धन ही, मनुष्यों की जन्म, आचार और गुणों की उन्नति का कारण होयगा, बल ही धर्म और न्यायकी व्यवस्था में कारण होयगा ॥२॥ आपस की प्रीति ही स्त्रीपुरुषों के सम्बन्ध का कारण होगी, कुल गोत्र आदि का कोई विचार नहीं करेगा; बेचने खरीदने के व्यापार में कपट बहुत होगा, मैथुन की चतुरता ही स्त्री पुरुषों की श्रेष्ठता का कार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ।४। अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु।।स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनं ॥५॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणं ॥ उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥६॥ दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले॥७॥ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा ह्यलुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यंति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥ अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥१०॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिंतया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः

रण होगी, कुल और आचार नहीं; यज्ञोपवीत ही ब्राह्मण की पहिचान होगी ॥ ३ ॥ दण्ड मृगछाला आदि चिन्हही संन्यासी ब्रह्मचारी आदि की पहिचान होगी, तथा वह चिन्ह ही एक आश्रम को छोड़ दूसरा आश्रम पाने का साधन होगा; आचार की ओर को कोई ध्यान नहीं देगा; धनदेने आदि की शक्ति न होने पर न्याय (मुकद्दमे) में हार होयगी, चपलता से बहुत बोलनाही पण्डितपने का साधन होगा ॥ ४ ॥ दारिद्रता ही नीचपने का (चोरआदि मानने का) साधन होगी, बनावट रखना ही साधुपने का कारण होगी, आपसमें आपस का स्वीकार करना ही विवाह मे विधि होगी, स्नान करना ही देह का आभूषण होगा ॥ ५ ॥ दूर का जलाशय ही तीर्थ मानाजायगा, समीप में के गङ्गा, गुरु और पिताआदि को कोई तीर्थ नहीं मानेगा, अनेक प्रकार से केश रखना ही सुन्दरता का कारण होगा, पेट भरलेना ही बड़ाभारी पुरुषार्थ मानाजायगा; उद्धतता के साथ जोर से बोलना ही सत्यता का कारण होयगा ॥ ६ ॥ कुटुम्ब का पालन करना ही चतुराई, और कीर्त्ति के निमित्त ही धर्म का आचरण होयगा हे राजन् ! इसप्रकार दुष्ट प्रजाओं से भूमण्डल के व्याप्त होजाने पर ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में जोकोई बलवान् होगा वहीराजा होयगा, तब चोरोंकी समान लुटेरे, निर्दयी और लोभी राजाओं ने जिन की स्त्रियें और धन हरलिये हैं ऐसे पुरुष नगरों को छोड़कर पर्वत और वनो में को चले जायँगे और तहाँ वृक्षों के पत्ते,जड़,लकड़ी,गोंद, फल, फूल, और गुठली आदि खाकर निर्वाह करेंगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ कितने ही, अवर्षा के कारण पड़ेहुए दुष्काल और राजाओं के लगाए हुए कर (टेक्स) से पीड़ित होकर, शीत, पवन, धूप और वर्षा तथा बरफ से पीड़ित होकर और आपस में कलह करके नष्ट होजायँगे ॥ १० ॥ कितनी ही प्रजा, भूख प्यास, अनेक प्रकार के रोग सन्ताप और चिन्ता से अति दुःखित होंगे, कलियुग में मनुष्यों की आयु बहुत थोड़ी अर्थात् बीस से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणां ॥ १२ ॥ पाखंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु च्छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जनेतु खरधर्मिणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥ शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिंगच्छदोदस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥

तीस पर्यन्त होगी ॥ ११ ॥ हे राजन्! कलियुग के दोष से जब प्राणीमात्र के देहछोटे २ होजायँगे, वर्णाश्रम वाले मनुष्यों का वेदविहित धर्म नष्ट होजायगा ॥ १२ ॥ धर्म में नास्तिकता अधिक बढ़ेगी, राजे चोरों की समान (लुटेरे) होंगे, सबजने—चोरी, झूँठ बोलना, विनाकारण हिंसा आदि अनेक प्रकार के कर्मों से अपना निर्वाह करेंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह वर्ण प्रायः शूद्रतुल्य होंगे, गौ बकरियों सी होंगी संन्यासी आदि आश्रम वाले, गृहस्थों का सा वर्त्ताव करेंगे, स्त्रियों के पिता भ्राता आदि को ही सगा सम्बन्धी माना जायगा ॥ १४ ॥ वनस्पति बड़े सूक्ष्म होजायँगे, वृक्ष, शमी के से छोटे होजायँगे, मेघों में जल थोड़ा और बिजली की चमक अधिक होगी तथा घर अतिथि भोजन आदि धर्मों से रहित होंगे ॥ १५ ॥ लोगों की ऐसी दशा होकर असह्य चेष्टावाले कलियुग के समाप्त होने को आनेपर, श्रीविष्णु भगवान् सत्त्वगुण के द्वारा धर्म की रक्षा के निमित्त कल्किरूप से अवतार धारण करेंगे ॥ १६ ॥ चराचर के गुरु और सब जगत् के कारण ऐसे उन जगत्पति विष्णुभगवान् का अवतार धर्म की रक्षाकरने को और साधुओं को मोक्ष देने को होता है ॥ १७ ॥ वह कल्कि अवतार शम्भलनामक गाँव में श्रेष्ठ, विष्णुयश नामवाले महात्मा ब्राह्मण के घर प्रकट होगा ॥ १८ ॥ और अणिमादि आठ ऐश्वर्यों से तथा सत्यसङ्कल्प आदि गुणों से युक्त वहपरम कान्तिमान् कल्किभगवान्, दुष्टों को दण्डदेनेवाले और शीघ्रगामी देवदत्तनामक घोड़े पर बैठकर उस शीघ्रगामी घोड़े के द्वारा पृथ्वी पर फिरते हुए हाथ में धारण करीहुई तलवार से राजाओं के वेष में छुपेहुए करोड़ों चोरों को मारेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ तेषां भविष्यति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवांगरागोतिपुष्पगंधानिलस्पृशां ॥ पौरजानपदानां वै हृतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते॥२२॥ यदावतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३। यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकराशौ समेष्यंति तदा भवति तत्कृतम्॥२४॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः॥२५॥आरभ्य भवता जन्म यावन्नंदाभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥ सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतानि च ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ

हे राजन्इसप्रकार सब चोरों के मारेजाने पर उन कल्किरूप भगवान् के अङ्ग को लगेहुए उबटन के अतिपवित्र सुगन्धित वायु से स्पर्श करेहुए उन पुरवासी और देशवासी लोकों के मन निर्मल होजायँगे ॥२१॥ और उन के हृदय में सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव के स्थित होने पर आगे को उन की प्रजा की सृष्टि उत्तरोत्तर बडी होती जायगी ॥ २२ ॥ हे राजन्! जब धर्मपति भगवान् श्रीहरि, कल्किरूप से अवतरेंगे तब सत्ययुग की प्रवृत्ति होयगी और प्रजाओं की उत्पत्ति भी सत्त्वगुणी होयगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति इन तीनों ग्रहों का संयोग होकर वह कर्क राशि पर तिस में पुष्य नक्षत्र पर एकसाथ प्रवेश करते हैं तब कल्कि अवतार होकर वह सत्ययुग प्रवृत्त होता है ॥ २४ ॥ हे राजन्! चन्द्रवंश और सूर्यवंश के राजे, जो पहिले होगये हैं तथा जो हैं और जो आगे को होंगे वह सब राजे मैंने तुम से संक्षेप से कहे हैं ॥२५॥ हे राजन्! तुम्हारा जन्म होने से नन्दराजा को राज्याभिषेक होने पर्यन्त, इतने यह कलियुग के ग्यारह सौ पन्द्रह (१११५) वर्ष होंगे ॥ २६ ॥ हे राजन्! आकाश में रात्रि के समय सप्तऋषि का उदय होता है, तब जो दो तारे प्रथम उदय होतेहुए दीखते हैं वह पुलहक्रतु दो ऋषि हैं, उन में से दक्षिणोत्तर रेखा पर समभाग में अश्विनी आदि नक्षत्रों में का जो एक नक्षत्र दीखता है ॥ २७ ॥ उस ही नक्षत्र से युक्त सप्तऋषि, मनुष्यों के सौ वर्ष तक रहते हैं और वह सप्तऋषि अब तुम्हारे समय में मघा नक्षत्र पर हैं ॥ २८ ॥ जब भगवान्विष्णु का यह शुद्ध सत्त्वगुणी कृष्ण

१ यद्यपि प्रत्येक बारह २ राशियों करके कर्क राशिपर बृहस्पति के आनेपर दो वा तीन अमावास्याओं के दिन चन्द्र, सूर्य और बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र से योग होता है तथापि वह एकसाथ हों ऐसा योग सत्ययुग के आरम्भ में ही आता है ऐसा जाने ।

२ ग्यारह सौ पन्द्रह संख्या मूल में किसी विवक्षा से अन्तर्गत संख्या कही है वास्तव में पूर्वापर का विचार करने पर चौदह सौ अट्ठानवे वर्ष होते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥ ३० ॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्तास्ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनां ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ॥ ३६ ॥ देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णा-

नामक शरीर वैकुण्ठलोक में गया उससमय लोक में कलि का प्रवेश हुआ, जिस कलि के समय लोक पाप में मग्न होते हैं ॥ २९ ॥ जब तक वह लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजी, अपने चरणकमलों से पृथ्वी को स्पर्श करते रहे तबतक 'पहिले सूक्ष्मरूप से प्रविष्ट हुआ भी' कलियुग, पृथ्वी का तिरस्कार करने को (पृथ्वी पर अपना पराक्रम चलाने को) समर्थ नहीं हुआ ॥३०॥ जब से सप्तमऋषि मघा नक्षत्र पर विचरते हैं तब से 'पहिले प्रविष्ट हुआ' संध्या और संध्यांशोंसहित दिव्य प्रमाण से बारह वर्ष का जो कलि वह सन्ध्याकाल का उल्लंघन करके प्रवृत्त हुआ है ॥३१॥ जब वह सप्तऋषि, मघा पर से क्रम २ करके पूर्वाषाढा नक्षत्र पर जायँगे तब यह कलि, 'प्रद्योतन राजा से लेकर बढता हुआ, नन्दराजा के समय अत्यन्त ही बढजायगा ॥३२॥ जिस दिन जिस समय भगवान् श्रीकृष्णजी, वैकुण्ठ को गये उसी दिन उसी समय कलियुग प्रवृत्त हुआ ऐसा पूर्वकाल के जाननेवाले कहते हैं ॥३३॥ हे राजन्! जब मनुष्यों का मन, आत्मस्वरूप का प्रकाशक होयगा तब कलियुग की सन्ध्या और सन्ध्यांशोंसहित, देवताओं के प्रमाण से सहस्र वर्ष होजाने पर फिर सत्ययुग प्रवृत्त होयगा ।३४। इसप्रकार यह वैवस्वत मनु का वंश भूमि पर जैसा ऊँचीनीची दशाओं से कहा है तैसे ही वैश्य शूद्र और ब्राह्मणों की भी वह २ दशा प्रत्येक युग में होती हैं ॥ ३५॥ हे राजन्! कथामात्र शेषरहेहुए और नामों से ही पहिचानेजानेवाले इन महात्मा पुरुषों की कीर्त्ति ही भूमिपर शेषरही है ॥ ३६ ॥ शन्तनु का भ्राता देवापी और इक्ष्वाकु वंश का राजा मरु यह दोनों चन्द्र-सूर्यवंश के हैं, हे राजन्! महायोगबल के प्रभाव से समाधि लगाकर, योगियों के रहने के स्थान कलापग्रांव में रहते हैं ॥ ३७ ॥ वह दोनों राजे, क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वांऽते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ॥४०॥ कृमिविट्भस्मसंज्ञांऽते राजनाम्नोपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥ ४२॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वा यस्तु मर्त्यया ऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वांऽते ऽदर्शनं गताः ॥४३॥ ये ये दर्भी तयो राजन्भुंजति वसुमोजसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु भगवन् ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियं ॥ अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेंद्राणां मोघः स्या-

लियुग के अन्त में भगवान् वासुदेव की आज्ञा से फिर लौटके आकर इस भूमिपर पहिले की समान वर्णाश्रमधर्मों को प्रसिद्ध करेंगे ॥ ३८ ॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता और कलि, यह चारों युग इस ही क्रम से पृथ्वी पर प्राणिमात्र में वर्त्तते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! मेरे कहेहुए यह राजे और दूसरे भी बहुतसे राजे इस पृथ्वी पर ममता करके और अन्त में इस को त्यागकर आप ही मरण को प्राप्त होगये हैं ॥ ४० ॥ हे राजन्! राजानामवाले जिस देह का अन्त में 'सड़ने पर' कीड़े, 'कुत्तों के खाजाने पर, विष्टा, और 'भस्म होजानेपर' राख यह नाम प्राप्त होना है ऐसे देह के निमित्त जो कोई प्राणियों से द्रोह करता है, क्या वह अपने स्वार्थ को जानता है? नहीं जानता; क्योंकि— जिस प्राणिमात्र के द्रोह से नरकप्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जो अखण्ड पृथ्वी मेरे पूर्वजोंने धारण करी थी अर्थात् जिस का मेरे पूर्व पुरुषों ने पालन कराथा और जो इससमय मेरे पास है वह अखण्ड पृथ्वी, मेरे पुत्रपै मेरेपोते पै और वंशवालों पै कैसे रहेगी ? ॥४२॥ इसप्रकार वह मूर्ख राजे, तेज,जल और अन्नमय शरीर को 'यह अपना है' ऐसा मानकर और पृथ्वी को 'यह मेरी है' ऐसा मानकर रहनेपर अन्त में देह और पृथ्वी दोनो को त्यागकर मरण को प्राप्त हुए हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जिन २ राजाओं ने अपने पराक्रम से पृथ्वी को भोगा है उन सबही राजाओं को कालने, कथाओं में कहनेमात्र कररक्खा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ।। * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन्! यह पृथ्वी, अपने को जीतने के निमित्त उद्यत हुए राजाओं को देखकर उन की मूर्खता के विषय में हास्य करती है और कहती है कि—अहो! मृत्यु के खिलौने रूप यह राजे मुझे जीतने की इच्छा करते हैं!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वे निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ॥ ततः सचिवपौरामात्यकरीन्द्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलां ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसां ॥ ७ ॥ ममैवेयं महीत्यन्ये वादिनः ॥ स्पर्द्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मांधाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ २ ॥ तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः

॥ १ ॥ अहो ! जिस मनोरथ से पानी के बुलबुले की समान नश्वान् अपने शरीर के ऊपर 'यह अजर अमर है ऐसा मानकर' अत्यन्त विश्वास करेहुए हैं उन 'हमारे बाप दादा आदि पूर्व पुरुष मरण को प्राप्त होगये और हम भी मरेंगे ऐसा, जाननेवाले भी राजाओं का इस पृथ्वी को जीतने का मनोरथ व्यर्थ ही होता है ॥ २ ॥ विषयलम्पट पुरुष को राज्य नहीं मिलता है इस कारण हम पाहिले पाँच इन्द्रियें और छठे मन को जीतकर देवताओं को प्रसन्न करे और राजाओंके मंत्रियों को वश में करके फिर शत्रुओं का तिरस्कार कर उन के मंत्री, पुरवासी, राजगुरु आदि हितू और बड़े २ हाथियों को अपने वश में करलें ॥ ३ ॥ इस क्रम से धीरे २ समुद्र के तटपर्यन्त की सब पृथ्वी को जीतकर राज्य करेंगे ऐसी आशा मन में घोलतेहुए वह राजे, समीप आपहुचे हुए अपने मृत्यु को भी नहीं देखते हैं अर्थात् आशा करते २ ही मरजाते हैं ॥ ४ ॥ कितने ही तो समुद्र से घिरी हुई मुझे जीतकर भी, बड़ी तृष्णा से समुद्र पार के देशों में भी राज्य करने को जाते हैं, परन्तु इन्द्रियों को जीतने का यह फल नहीं है, क्योंकि—यह अति तुच्छ है, वास्तव में इन्द्रियों को जीतने का फल साक्षात् मोक्ष है ॥ ५ ॥ हे कुरुनन्दन ! वह पृथ्वी और यह भी कहती है कि—जिस मुझे छोड़कर मनु और मनु के पुत्र आदिराजे जैसे आये थे तैसेही फिर मरगये ऐसी मुझ को यह बुद्धिहीन राजे—युद्ध में जीतने की इच्छा करते हैं यह कितना आश्चर्य है ? ॥ ६ ॥ देखो ! मेरी २ कहकर मुझ में आसक्त चित्तहुए इन दुष्टों का, मेरे निमित्त पिता पुत्र में और भ्राता २ में परस्पर कलह होता है ॥ ७ ॥ यह सब पृथ्वी मेरीही है, अरेमूर्ख ! तेरी नहीं है, ऐसा वादविवाद करनेवाले वह राजे आपस में सलाह करके, मेरे निमित्त दूसरों को मारते हैं और आपभी मरते हैं ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रार्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुहा, रघु ॥ ९ ॥ तृष्णबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मर्त्यवर्तीं कृत्वो- चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषां ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यं ॥१४॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधिमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा

ककुत्स्थ नैषध, नृग यह राजे ॥ १० ॥ और हिरण्यकशिपु, वृत्र, लोकों को दुःख देनेवाला रावण, नमुचि, शम्बर, भौम (नरकासुर) हिरण्याक्ष और तारकासुर यह दैत्य ॥ ११ ॥ और भी बहुतसे दैत्य और राजा कि-जो बडे२ ऐश्वर्यवाले होकर भी सर्वज्ञ, और सब ही कहीं पराजय न पानेवाले होकर सबों को जीतनेवाले शूर राजे और दैत्य मेरे ऊपर (पृथ्वी के ऊपर) बडी ममता करतेरहे उन को भी मरणधर्मी होने के कारण मनोरथ पूर्ण होने से पहिले ही काल ने कहनेमात्र को शेष रक्खा है अर्थात् वह मरण को प्राप्त होकर कहने मात्र को शेष रहगये हैं, हे परमसमर्थ राजन् ! ऐसा पृथ्वी ने वर्णन करा है ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ हे राजन् ! विषयों की असारता को जानना और उन से वैराग्य का वर्णन करने की इच्छा से लोकों में कीर्त्ति को फैलाकर मरण को प्राप्त हुए राजाओं की यह कथा कही हैं, परन्तु हे राजन् ! वह केवल वाणी का विलास ही हैं, परमार्थरूप नहीं हैं ॥ १४ ॥ इस लोक में जो सब दोषों का नाशक पुण्यकीर्त्ति भगवान् का गुणानुवाद वार २ कहने में आता है, वही कथाओं में साररूप है इसकारण जो कृष्ण भगवान् में निर्मल भक्ति चाहे वह निरन्तर और वार २ उस को सुने ॥ १५ ॥ राजा ने कहा कि—हे भगवन् शुकमुने ! कलियुग में पुरुष, कलियुग के बढ़ेहुए दोषों को किस उपाय से दूर करेंगे ? सो मुझसे ठीक २ कहिये ॥ १६ ॥ और युग, युगों के धर्म, प्रलय और स्थितिकाल का प्रमाण तथा ईश्वररूप विष्णु मूर्त्ति महात्मा काल की गति भी कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! सत्ययुग में उस समय के लोगों का धारण कराहुआ चार चरणोंवाला धर्म प्रवृत्त होता है; सत्य, दया, तप और दान (रागद्वेष न करके अभय देना) यह धर्म के चार चरण हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्द्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥ कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धींद्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥

॥ १८ ॥ उस युग में के लोग, दैवसे जो अन्न आदि मिले उतने से ही सन्तोष मानने वाले, पराये दुःख को, दूर करनेवाले, सब से मित्रभाव रखनेवाले, शान्त, जितेन्द्रिय सुख दुःखादि द्वन्द्वों को सहनेवाले, आत्मा में मगन रहनेवाले, सब में समदृष्टि रखनेवाले और प्रायः आत्माभ्यास करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेता में—झूँठबोलना, हिंसा, असन्तोष और कलह इन अधर्म के चार चरणों का चौथाभाग धीरे २ नष्ट होता है ॥ २० ॥ हे राजन्! उस समय पुरुष, अधिक हिंसा न करनेवाले, और विषयोंपर अधिक आसक्त न होकर यज्ञादि क्रिया और तप में तत्पर, धर्मार्थ काम में लवलीन, वेद के कहे कर्म में चतुर और जिन में ब्राह्मणवर्ण ही अधिक है ऐसे होते हैं ॥ २१ ॥ फिर द्वापर में—हिंसा, असन्तोष, मिथ्याभाषण और द्वेष इन अधर्म के चार चरणों से; तप, सत्य, दया और दान इन धर्म के चारों चरणों का आधा २ भाग नष्ट होजाता है ॥ २२ ॥ इस से उस द्वापर युग में के लोग—कीर्ति को प्रिय माननेवाले, उदारस्वभाववाले, वेद पढ़ने में तत्पर, धनी, कुटुम्बप्रेमी, आनन्दी और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जिन में मुख्य हैं ऐसे होते है ॥ २३ ॥ कलियुग में तो—बढ़ेहुए और अधर्म के कारण ऐसे अधर्म के चरणों से धर्म के चरणों का चौथाभाग शेष रहजाता है और वह भी धीरे २ क्षीण होकर अन्त में नष्ट होजायगा ॥ २४ ॥ तिस कलियुग में के लोग—लोभी, दुराचारी, निर्दयी, निष्कारण वैर करनेवाले हतभाग्य, 'धन की' अतितृष्णा करनेवाले और शूद्र दास जिन में मुख्य मानेजाँय ऐसे होंगे ॥ २५ ॥ सत्त्व, रज और तम यह गुण पुरुष में दीखते हैं और काल के प्रेरणा करेहुए वह गुणही अन्तःकरण में घूमते रहते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इन्द्रियें, सत्त्वगुण में अधिक प्रवृत्त होती हैं उस समय सत्ययुग जानै, जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २७ ॥ यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनां ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥ यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥ यदा मायाऽनृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखंडदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किरीटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

के समय में प्राणियों की ज्ञान में और तप में रुचि होती है ॥२७॥ जब मनुष्यों की धर्म, अर्थ काम में प्रीति होती है तब हे बुद्धिमान् राजन् ! रजोगुण की वृत्तिवाला त्रेतायुग जानो ॥ २८ ॥ जब लोभ, असन्तोष, अभिमान और मत्सर यह प्रवृत्त होकर लोगों की काम्य कर्मों में प्रीति होती है तब रजोगुण तमोगुणवाला द्वापरयुग जानना ॥ २९ ॥ और जब कपट, असत्य, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह भय और दीनता यह उत्पन्न होते हैं तब पूर्ण तमोगुणी कलियुग जानना ॥ ३० ॥ जिस से लोग—मन्दबुद्धि, मन्दभाग्य, अधिक खानेवाले, और निर्धन होकर भी विषयासक्त होंगे तथा स्त्रियें भी व्यभिचारिणी और दुष्ट होती हैं ॥३१॥ देश बहुत से चोरों से युक्त होंगे, वेद पाखण्डों से दूषितहोजायँगे, राजे प्रजा के भक्षक (उनका सर्वस्व लूटनेवाले) होंगे, ब्राह्मण केवल मैथुन करने और पेट भरने में तत्पर होंगे ॥३३॥ ब्रह्मचारी अपने आश्रम के आचार और पवित्रता से हीन होंगे. गृहस्थी आप भीख मांगेंगे, फिर दूसरों को देने की तो बात ही क्या ? तपस्वी वन छोडकर गाँवों में आकर रहने लगेंगे और संन्यासी धन के लिये अतिलोभी होजायँगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियें, ठिगनी, बहुत खानेवालीं, बहुतसे बच्चोंवालीं, निर्लज्ज, निरन्तर कठोर वा अप्रिय भाषण करनेवालीं तथा चोरी, कपट और अति साहस करनेवालीं होंगी ॥३४॥ व्यापारी लोग, हलके और ठग होकर कपट से दैनलैन करेंगे, और भी सब लोग सङ्कट न होने पर भी निन्दित जीविका को ही अच्छा मानेंगे ॥ ३५ ॥ नौकर लोग, सर्वोत्तम होने पर भी द्रव्यहीन स्वामी को और स्वामी भी, रोगादि कारणों से काम करने में असमर्थहुए कुलपरम्परा के भी (पुराने भी) अपने २ सेवकों को और बूढी होने के कारण दूध न देनेवालीं गौओं का त्याग करेंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननांदृस्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥ शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनं ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यंति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपंकजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाखंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥ यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ॥ सर्वान्हरति

कलियुग में मैथुन के कारण से मित्रभाव करनेवाले और स्त्री के वश में होने से दीनहुए पुरुष पिता, भ्राता, मित्र और जातिवालों का त्याग करके अपनी स्त्री के बहिन भाइयों के साथ सम्मति करनेवाले होंगे ॥ ३७ ॥ तपस्वियों का वेष धारकर निर्वाह करनेवाले शूद्र, दान लेंगे; धर्म न जाननेवाले पुरुष उत्तम (ऊँचे) आसन पर बैठकर धर्मोपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन्! कलियुग में वर्षा न होने के भय से व्याकुल हुई प्रजा, पृथ्वीमण्डल प कहीं भी अन्न न मिलने पर दुष्काल और राजकर से पीडित होकर निरन्तर घबडाई हुई वस्त्र, अन्न, पान, शय्या, मैथुन, स्नान और भूषण इन से रहित होने के कारण पिशाचसी दीखने लगेंगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कलियुग में के लोग, बीसकौडीमात्र धन के निमित्त स्नेह छोडकर वैर करेंगे और अपने सगों को भी मारडालेंगे और मारने में असमर्थ होने पर अपने प्रियप्राणों को भी त्याग देंगे ॥ ४१ ॥ शिश्न और पेट की तृप्ति करनेवाले नीच मनुष्य, अपने बूढे माता-पिताओं की और सब विषयों में चतुर अपने प्रिय पुत्रों की भी रक्षा नहीं करेंगे ॥ ४२ ॥ हे राजन्! कलियुग में प्रायः वेदविरुद्धमार्गों से विक्षिप्तचित्तहुए मनुष्य, त्रिलोकी के स्वामी ब्रह्मादिक भी जिन के चरणकमल को नमस्कार करते हैं ऐसे लोकों के परमगुरु अच्युत भगवान् की पूजा नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ अहो! मरताहुआ, रोग से घबडाकर परवशहुआ अथवा गिरकर ठोकरें खाताहुआ, मनुष्य जिन का नाम उच्चारण करने पर कर्मबन्धन से छूटकर उत्तमगति को पाता है, उन भगवान् का पूजन कलियुग में लोग नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! अन्तःकरण में प्रकाशित होनेवाले पुरुषोत्तम भगवान्, पुरुषों के निषिद्ध पदार्थ, निषिद्ध देश और विषयासक्त मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यंतशुद्धिं लभतेऽतरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिं ॥ ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ॥ कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ७ ॥ ७ ॥

से उत्पन्न होनेवाले कलियुग के करेहुए सब दोषों को दूर करते हैं ॥ ४५ ॥ सुने, कीर्त्तन, ध्यान, पूजन वा आदरसत्कार करेहुए भगवान्, मनुष्यों के हृदय में रहकर उन के सहस्रों जन्मों के करेहुए पापों का नाश करते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्ण में का अग्नि ही, उस के ताम्बे आदि धातुओं के सङ्ग से प्राप्तहुए मल का नाश करता है, जल आदि उस का नाश नहीं करते हैं तैसे ही योगियों के हृदय में विद्यमान विष्णुभगवान् ही उन की पापवासनाओं का नाश करते हैं, योग आदि साधन नाश नहीं करते हैं ॥ ४७ ॥ अनन्तभगवान् के हृदय में स्थित होने पर जैसी प्राणियों के अन्तःकरण की अत्यन्त शुद्धि होती है, तैसी विद्या, तप, प्राणनिरोध (प्राणायाम), मैत्री, तीर्थस्नान व्रत, दान और मन्त्रों के जप से नहीं होती है ॥ ४८ ॥ इस से हेराजन् ! तुम भी मरण को प्राप्त होने को होरहे हो सो सावधान होकर चित्तको एकाग्र करके भगवान् को अपने हृदय में स्थापन करो तब तुम उत्तमगति को पाओगे ॥ ४९ ॥ क्योंकि–हेराजन् ! मरण को प्राप्त होतेहुए पुरुषों के ध्यान करने योग्य, सबों के अन्तर्यामी भगवान् परमेश्वर, ध्यान करनेवाले पुरुषों को अपने स्वरूप की एकता को पहुँचादेते हैं । ५० ॥ दोषों के निधि (खजाने) भी इस कलियुग का ग्रहण करनेयोग्य एक बड़ा गुण है कि–श्रीकृष्णजी के नामसंकीर्त्तन से मनुष्य, संसारबन्धन से छूटकर परम पद को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! सत्ययुग में विष्णु भगवान् का ध्यान करनेवाले को त्रेता में विष्णु भगवान् का यज्ञोंसे यजन करनेवाले को और द्वापरमें विष्णुभगवान्का पूजन करनेवाले को जोफलप्राप्त होता है वह फल, कलियुग में विष्णु भगवान् का नामसङ्कीर्त्तन करने से ही प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥२॥ तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ॥ त्रयो लोकाः इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि" ॥३॥ एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेते ऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥४॥ द्विपरार्द्धे त्वतिक्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥५॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥ आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥६॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योऽन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुंचति ॥ ॥ ८ ॥ ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! परमाणु से लेकर दो परार्द्धपर्यन्त काल का और सत्ययुग आदि का प्रमाण मैंने तुम से (३ स्कन्ध में) कहा है अब कल्प (स्थित) और प्रलय का प्रमाण कहता हूँ सुनो ॥१॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों के सहस्रवार होजाने पर ब्रह्माजी का एक दिन कहलाता है, उस में ही क्रम से स्वायम्भुव आदि चौदहों मन्वन्तर होजाते हैं ॥२॥ उस कल्प (ब्रह्माजी के दिन) के अन्त में उतना ही (चारसहस्रयुग का) प्रलय होता है उस को ब्रह्माजी की रात्रि कहते हैं, हे राजन्! उस प्रलय में स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक नष्ट होजाते हैं ॥३॥ जब विश्व को उत्पन्न करनेवाले शेषशायी नारायण भगवान्, विश्व को अपने में समेटकर सोते हैं तब ब्रह्माजी भी उन नारायण में ही लीन होजाते हैं; यह ब्रह्माजी के निद्रारूप निमित्त से होता है इसकारण इस को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥ ४॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी की आयु का दो परार्द्ध वर्षकाल वीतजाता है तब महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा यह सातों प्रकृति लीन होजाती हैं और उस प्रलय में नाश होने का कारण प्राप्त होने पर हे राजन्! महत्तत्त्वादिकों का कार्य यह ब्रह्माण्डकोश भी लीन होजाता है इसकारण यह प्राकृतिक प्रलय है ॥५॥ ६ ॥ हे राजन्! यह प्राकृतिक प्रलय होनेलगती है तब पहिले सौवर्षपर्यन्त पृथ्वी पर वर्षा न होने से कहीं भी अन्न न मिलने के कारण भूँख से घबड़ाई और काल की पीडित करीहुई प्रजा, आपस में एक को एक खानेलगती है तब धीरे २ सब का नाश होजाता है ॥ ७ ॥ तब प्रलयकाल का वह सूर्य, अपनी तीखी किरणों से समुद्र, देह और पृथ्वी के सब रस को सुखालेता है और फिर नहीं छोडता है ॥८॥ फिर सङ्कर्षण भगवान् के मुख से उत्पन्न हुआ और वायु के अधिक वेग का बढ़ायाहुआ प्रलयकाल का अग्नि, 'देह के रस को सूर्य के खेंचलेने से' प्राणीरहित हुए पृथ्वी, पाताल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धूंदिवरानथे ॥ ९ ॥ उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यण्डं देग्धगोमयपिंडवत् ॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥ ११ ॥ ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥ तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरांतरम् ॥ १३ ॥ तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्यापः उदप्लुवे ॥ ग्रस्तगंधा तु पृथिवी मलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥ अपां रसमयो तेजस्तां लीयन्तेऽथ नीरसाः ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५ ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणं ॥ १६ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ॥ तैजसश्चेंद्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥ महान् ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन नोदितम् ॥ १८ ॥ ने

आदि देशों को जलाडालता है ॥ ९ ॥ तब नीचे, ऊपर चारों ओर से, अग्नि और सूर्य की ज्वालाओं से भस्म हुआ यह ब्रह्माण्ड,जलेहुए गोवर के पिण्डे की समान दीखनेलगता है ॥१०॥ फिर सौ वर्ष से कुछ अधिक वर्षोंपर्यन्त प्रलयकाल का प्रचण्ड पवन चलता है और जिधरतिधर धूलि से भराहुआ आकाश धुमैला होजाताहै॥ ११॥ फिर सौवर्षपर्यन्त चित्र विचित्र वर्ण के अनेकों मेघ, 'हाथी की सूँड की समान धाराओं से'वर्षा करते हैं और भयङ्कर शब्दों से गर्जते हैं ॥ १२ ॥ उस वर्षा से ब्रह्माण्डविवर में का सब जगत् जलमय होजाता है ॥ १३ ॥ इसप्रकार सब जगत् के जल में डूबते ही भूमि के गन्धगुण को जल ग्रसलेता है अर्थात् जल में पृथ्वी का गन्धगुण लीन होजाता है, गन्धगुण का नाश होतेही पृथ्वीका भी नाश होजाता है ॥१४॥ फिर उस जल के रसगुण को तेज निगल लेता है तब नीरस हुआ वह जल तेज में लीन होजाता है, फिर तेज के रूपगुण को वायु ग्रसलेता है तब रूपरहित हुआ वह तेज वायु में लीन होता है; तदनन्तर वायु के स्पर्श गुण को आकाश निगल लेता है फिर वह वायु आकाश में प्रविष्ट होता है, आकाश के शब्दगुण को तामस अहङ्कार ग्रसलेता है फिर वह आकाश भी तिस तामस अहङ्कारमें लीन होता है, हे राजन् ! फिर इन्द्रियों को उन की वृत्तियों सहित राजस अहङ्कार ग्रसलेता है और इन्द्रियों के देवताओं को सात्त्विक अहङ्कार ग्रसलेता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ तामस, राजस और सात्विक तीनो प्रकार के अहङ्कार को महत्तत्त्व ग्रसलेता है उस महत्तत्त्व को सत्त्वादि गुण ग्रसलेते हैं, हेराजन् ! फिर काल की प्रेरणा करीहुई प्रकृति उन सत्त्वादि तीनो गुणों को ग्रसलेती है अर्थात् तीनोगुण उस में मिलजाते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवतां वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥ न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥ बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः खानि

हैं ॥ १८ ॥ केवल उस प्रकृति को ही काल के दिनरात आदि अवयवों से परिणाम आदि विकार नहीं प्राप्त होतेहैं, क्योंकि,—वह आदि और अन्त से रहितहै, वही अव्यक्त (अस्तित्व विकार से रहित) हैं इसकारण ही दीखने में नहीं अती है, वह नित्य समान (क्षय-वृद्धिरहित) होती है और वह कभी भी नष्ट नहीं होती सब का कारण है ॥ १९ ॥ जिस में वाणी मन, सत्व गुण, तमोगुण, रजोगुण, महत्तत्व आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रियें, और देवता तैसे ही यह लोकरूप रचना, इनमें से कुछ नहीं है ॥ २० ॥ जहाँ स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति यह तीन अवस्था आकाश, जल, भूमि, वायु, अग्नि और सूर्य यह कोई नहीं रहते हैं और जो इन्द्रियरहित होने के कारण सोएहुए की समान और अतर्क्य होने के कारण शून्यसी प्रतीत होती है परन्तु शून्य नहीं है, हेराजन्! वही जगत् का मूलभूत तत्वहै ऐसा तत्त्वज्ञानी पुरुष वर्णन करतेहैं॥ २१॥ जिस समय पुरुष और और प्रकृति की सत्त्वादिशक्तियें, काल से तिरस्कार पाने के कारण परवश होकर लयपाती हैं उससमय यह प्राकृतिक लय होता है ॥ २२ ॥ अब तीसरा आत्यन्तिक लय (मोक्ष) कहते हैं वह मोक्ष ब्रह्मज्ञान से प्रपञ्चका लयरूप है, ऐसा जानो, अब आत्मा की समान ही यदि प्रपञ्च को सत्यता होयगी तो उस का लय नहीं होगा; इसकारण ज्ञानरूप ब्रह्म से निराला प्रपञ्च है ही नहीं ऐसा कहते हैं कि—हे राजन्! बुद्धि, इन्द्रियें और विषय यह जो ग्राहक, साधन और ग्राह्यरूप से प्रसिद्ध हैं, उन का आश्रय एक ब्रह्म ही उन के रूप का प्रतीत होता है, ब्रह्म से जुदे होकर उन की प्रतीति नहीं होती है; मट्टी में प्रतीत होनेवाले घडे सकोरे आदि वस्तु जैसे दृश्य और आदिअन्तवाले होने के कारण मृत्तिका से जुदे नहीं हैं तैसे ही ब्रह्म में प्रतीत होनेवाला यह बुद्धि इन्द्रिय आदि प्रपञ्च दृश्य और आदि अन्तवाला होने के कारण अपने कारण ब्रह्म से निराला नहीं है ॥ २३ ॥ हेराजन्! जैसे दीपक, चक्षु और रूप यह अपने कारण तेज से जुदे नहीं हैं तैसे ही बुद्धि, इन्द्रियें और विषय यह कार्य रूप अपने से अत्यन्त निराले और अपने अधिष्ठान ब्रह्म से जुदे नहीं हैं अर्थात् सर्प भासने का कारण जो डोरी वही जैसे तिस सर्प से अत्यन्त निराली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात्॥ २४॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥ सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवांशुतंतवः ॥ २७ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत सं भ्रमः ॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २८ ॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्समं आत्मवत् ॥ २९ ॥ नहि सत्यस्य नानात्वमविद्वान् यदि मन्यते ॥ नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

होती है परन्तु उस में भासनेवाला सर्प डोरी के विना नहीं होता है तैसे ही प्रपञ्च से ब्रह्म निराला है परन्तु प्रपञ्चमात्र ब्रह्म से जुदा नहीं है ॥ २४ ॥ हे राजन्! बुद्धि की जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं उन अवस्थाओं का अभिमान धारण करनेवाला जो यह विश्व तैजस-प्राज्ञरूप नानात्व सो परब्रह्म में केवल माया का कल्पना कराहुआ है, सत्य नहीं है ॥ २५ ॥ जैसे आकाश में मेघ किसी समय होते हैं और किसी समय नहीं होते हैं तैसे ही अवयवोंवाला और उत्पत्तिनाशयुक्त यह जगत्! परब्रह्म में (सृष्टिकाल में) उत्पन्न होता है और प्रलयकाल में नष्ट होजाता है अर्थात् जैसे घडा अवयवी और आदि अन्तवाला होने से नाश पाता है तैसे मृत्तिका नष्ट नहीं होती है; तैसे ही यह विश्व भी अवयवी और आदिअन्तवाला होने के कारण नाश पाता है, ब्रह्म का नाश नहीं होता है इसकारण ब्रह्म ही सत्य है ॥ २६ ॥ हे राजन्! व्यवहार में सब ही अवयवी (घट आदि) पदार्थों का कारणभूत जो (मट्टी आदि) अवयव होता है वही सत्य है; जैसे वस्त्र के अवयव डोरे होते हैं वह वस्त्र न होने के समय भी प्रतीत होते हैं तैसे ही घडे आदि अवयवियों के विना भी मट्टी आदि अवयव प्रतीत होते हैं; इस से ब्रह्म के विना केवल जगत् की प्रतीति नहीं होती है और जगत् के विना ब्रह्म की प्रतीति होती है ॥ २७ ॥ कारण और कार्य के स्वरूप से जो भिन्न २ पदार्थ देखने में आते हैं उन में परस्पर एक को दूसरे की अपेक्षा होने के कारण वह सब ही भ्रम है इसकारण जिन का आदि और अन्त है वह सब ही पदार्थ सत्य नहीं हैं, इसकारण ब्रह्म में आरोपण करेहुए कारणता आदि धर्म भी आरोपित हैं, वास्तविक नहीं है ॥ २८ ॥ प्रकाशवान् होनेवाला भी प्रपञ्च, आत्मा के प्रकाश के विना अणुमात्र भी 'प्रकाशवान् है' ऐसा नहीं कहाजासक्ता; और यदि वह प्रपञ्च प्रत्यगात्मा के विना प्रकाशवान् है ऐसा निरूपण कियाजाय तो-वह प्रपञ्च चिद्रूप आत्मा की समान स्वयंप्रकाश होगा अर्थात् आत्मा की समान एकरूप ही होगा ॥ २९ ॥ हे राजन्! अज्ञानी पुरुष, सत्य पदार्थ को यदि अनेकपना माने तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि—सत्य पदार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु॥एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः" ॥३१॥ यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबन्धनम्॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमंग संप्लवम् ॥ ३३ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३४ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः॥ ३५ ॥ अनाद्यनन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था

को अनेकपना है ही नहीं. यदि कहो कि—सत्यरूप आत्मा को जीवब्रह्मरूप से अनेकपना है तो-ऐसा अनेकपना मानना, उपाधि की करीहुई, परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नता के विषय में घटाकाशमहाकाश की समान, अथवा उपाधि के करेहुए विकारीपन और अविकारीपन के विषय में जल में प्रतिबिम्बित और आकाश में स्थित सूर्य की समान, अथवा उपाधि के करेहुए कर्मभेद के विषय में बाहर के और शरीर के भीतर के वायु की समान वास्तविक नहीं है ॥ ३० ॥ हे राजन्! जैसे सुवर्ण व्यवहार में कडे कुण्डल आदि अनेकों अलङ्कार के भेदों से अनेकों प्रकार का लोकों के देखने में आता है तैसे ही अधोक्षजभगवान् को, अहङ्काररूप उपाधि स युक्त पुरुषों ने, व्यवहार में लौकिक और वैदिक वचनों के द्वारा नानाप्रकार का वर्णन करा है; भेद केवल इतना ही है कि—सुवर्ण इन्द्रियगोचर है और अधोक्षजभगवान् इन्द्रियगोचर नहीं हैं ॥ ३१ ॥ जैसे सूर्य से उत्पन्नहुआ और सूर्य से प्रकाश पानेवाला मेघ, सूर्य के अंश चक्षु इन्द्रिय को, अपने स्वरूप सूर्य का दर्शन होने में प्रतिबन्धक होता है तैसे ही ब्रह्म का कार्य और ब्रह्म से प्रकाशित हुआ अहङ्कार ब्रह्म के अंश जीव को ब्रह्म का दर्शन होने में प्रतिबन्धक होता है ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जिस समय वह सूर्य से उत्पन्नहुआ मेघ, दूर होता है उससमय, चक्षु इन्द्रिय अपने स्वरूपभूत सूर्य को देखता है, तिसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्नहुआ अपने को ढकनेवाला अहङ्कार, जब विचार के प्रभाव से दूर होजाता है तब जीव भी अपने स्वरूपभूत ब्रह्म को देखता है अर्थात् मैं ही ब्रह्मरूप हूँ ऐसा देखता है ॥ ३३ ॥ हेराजन्! जबजीव, इस विवेकरूप शस्त्र से इस मायामय अहङ्काररूप अपने बन्धन को काटकर, पूर्ण आत्मस्वरूप का अनुभव लेता है उससमय उस को आत्यन्तिकलय कहते हैं ॥ ३४ ॥ हेराजन्! कितने ही सूक्ष्म विचार को जाननेवाले विद्वान् पुरुष, ऐसा कहते हैं कि—ब्रह्मादि सकल प्राणियों के प्रतिक्षण में उत्पत्तिलय होते हैं ॥ ३५ ॥ जैसे परिणाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नैवं दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३६ ॥ नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥ एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नो—जोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥ स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमितां ॥४१॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पानेवाले नदी के प्रवाह और दीपक की ज्योति आदि की अनेकों ऊँची नीची दशा क्षण २ में बदलने के कारण उन के उत्पत्ति नाश दिखाती हैं तिसी प्रकार कालरूप प्रवाह के वेग से बदलनेवाली शरीर की दशा, देह के क्षण २ में उत्पत्तिनाश दिखाने की कारण होती हैं ॥ ३६ ॥ हेराजन्! जिस के आदि और अन्त नहीं ऐसे परमेश्वरमूर्त्ति काल के द्वारा, आकाश में गमन करनेवाले चन्द्रमादिकों के चलने की अवस्थाएँ जैसे दीखती नहीं हैं तैसे ही काल के द्वारा देह की क्षण २ में होनेवाली अवस्था भी दीखती नहीं है, इसकारण जैसे उन चन्द्रमा आदिकों के उदय अस्तादिकों के द्वारा क्षण २ में होनेवाली मध्य की अवस्थाओं की कल्पना करीजाती है तैसे ही, देह की बाल वृद्धादि अवस्थाओं से मध्यकी अवस्थाओं की कल्पना करी जाती है ॥ ३७ ॥ इसप्रकार नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकार का प्रलय कहा; हेराजन्! ऐसी काल की गति है ॥ ३८ ॥ हेकुरुकुलश्रेष्ठ राजन्! सर्वान्तर्यामी, जगत्कर्त्ता, भगवान् नारायणकी यह लीलारूप कथा, मैंने तुम से संक्षेप करके कही हैं, विस्तार के साथ कहने को तो ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! अनेक प्रकार के दुःखरूप दावाग्नि से पीड़ितहुए और दुस्तर संसार समुद्र को तरने की इच्छा करनेवाले पुरुष, को पुरुषोत्तम भगवान् की लीलारूप कथामृत के रस का सेवन करेविना दूसरा तरने का उपाय है ही नहीं इसकारण वह यथाशक्ति भगवत्कथाओं का ही श्रवण करे ॥ ४० ॥ हे राजन्! पहिले अविनाशी नारायण ऋषिने, यह पुराणसंहिता नारदजी से कही थी; उन नारदजी ने व्यासजी से कही ॥ ४१ ॥ हेप्रभो राजन्! उन भगवान् व्यासजी ने प्रसन्न होकर यह श्रीमद्भागवत की वेदसमान संहिता मुझ से कही है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥ न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजांकुरवदेहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पंचत्वाद्यात्मनः स्वयं ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः॥५॥मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः॥तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हेराजन् ! इस श्रीमद्भागवत में, जिन की रजोगुण वृत्तिरूप हर्ष से जगत को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं और जिन के क्रोध से सब का संहार करनेवाले रुद्र उत्पन्न हुए हैं उन, भक्तों के दुःख दूर करनेवाले जगदात्मा भगवान् का वारंवार वर्णन करा है ॥ १ ॥ हेराजन् ! तुम तो, इस श्रीमद्भागवत को सुनने से कृतार्थ ही हो, इस से 'मैं मरूँगा' इस अविवेक को त्याग दो; क्योंकि--जैसे देह, पहिले न होकर अब हुआ है इस कारण नाश को प्राप्त होगा तैसे तुम (आत्मा) पहिले कभी उत्पन्न न होकर अब भी उत्पन्न नहीं हुए हो इसकारण आगे को नाश भी नहीं पाओगे ॥२॥हेराजन्!जैसे बीजही अंकुर रूप से उत्पन्न होतेहैं और वह अंकुर फिर बीजरूपसे उत्पन्न होतेहैं तैसे तुम पुत्रपौत्रादि रूपवान् होकर नाशनहीं पाओगे, क्यों कि—जैसें अग्नि काठ में व्याप्त होकर रहताहुआभी वास्तव में काठ से जुदा ही होता है तैसेही तुम भी देह में व्याप्त होकरभी तिस देह से जुदे ही हो, तात्पर्य यहकि—देह से देहही उत्पन्न होताहै आत्मा उत्पन्न नहींहोताहै॥३॥जैसे स्वप्नमें अपने शरीर का शिर कटना आप ही देखता है यह केवल भ्रम है तैसेही जाग्रत् अवस्था में भी अपने देह के जन्मादि विकार आप ही देखता है, तिस में पुत्रादिकों का जन्म और पिता आदिकामरण देखने से अपने जन्म मरण भी ऐसेही हैं ऐसा अनुमान करता है और शेष बढ़ना आदि विकार स्वयं अनुभव से देखता है और वह विकार देह के अध्यास से अपने कोहीहैं ऐसा मानता है यह केवल भ्रम ही है, क्योंकि—जन्म मरणादिकों का देखनेवाला जो आत्मा वह उन से निराला होने के कारण जन्म मरण आदि से रहित है ॥ ४ ॥ घड़ा फूटजाने पर उस में का आकाश जैसे पहिले की समान महाकाश रूप होता है तैसेही तत्त्वज्ञान से देह का लय होनेपर यह जीव फिर ब्रह्मरूप होता है ॥ ५ ॥ मन ही आत्मा को, देह गुण और कर्म उत्पन्न करता है तिस मन को माया उत्पन्न करती है,फिर उन माया आदि उपाधियों के समूह से जीव को जन्म मरणादि रूप संसार प्राप्त होता है स्वयं नहीं प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो-भवः ॥ रजःसत्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयं-ज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥ आकाशइव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥ ८ ॥ एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृशं प्रभो ॥ बुद्ध्याऽनुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥ मृत्युर्वो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥ दंशं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥ एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥ इतिश्रीभा० म० द्वा० ब्रह्मोपदे-

होता है ॥ ६ ॥ हे राजन्! जबतक तेल, उस का पात्र, रुई की वत्ती और अग्नि का संयोग यह रहते हैं तबतक दिये का दियापन (ज्योति का ज्वालारूप से परिणाम) दीखता है ऐसे ही जबतक कर्मरूपी तेल, मनरूपी पात्र, देहरूपवत्ती और चैतन्य का अध्यास रूप अग्नि का संयोग रहता है तबतक संसाररूप दीपक प्रतीत होता है, वह रजोगुणकी वृत्ति से उत्पन्न होताहै, सत्वगुणकी वृत्तिसे रहताहै और तमोगुण की वृत्तिसे नाशको प्राप्त होता है ॥७॥दीपक का नाश होने पर भी जैसे पञ्चमहाभूतरूप तेज नष्ट नहीं होता है तैसे ही संसार का नाश होनेपर भी स्वयम्प्रकाश स्थूल सूक्ष्म देहों से निराला और आकाश की समान आधार जो आत्मा वह नाश को नहीं प्राप्त होता है इसकारण ही वह अनन्त और निरुपम है ॥ ८॥ इस से हे प्रभो राजन्! वासुदेव भगवान् का वारम्वार चिन्तवन करतेहुए तुम, द्रष्टा दृश्य, अन्वय और व्यतिरेक की विचारशक्ति से युक्त अपनी बुद्धि के द्वारा आप ही अपने देहादि में के अपने आश्रय आत्मा का विचार करो ॥ ९ ॥ हे राजन्! ऐसा विचार करने पर,ब्राह्मण के वचन का प्रेरणा कराहुआ तक्षक,तुम्हें जलाकर भस्म नहीं करेगा, क्योंकि—मृत्यु के कारण जो काल आदि हैं वह भी, मृत्यु के भी मृत्युरूप ईश्वर को जलाकर भस्म करने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ १० ॥ हे राजन्! जो मैं हूँ सो परमपदरूप ब्रह्म है और जो परमपदरूप ब्रह्म है सोई मैं हूँ, इसप्रकार निरुपाधिक ब्रह्म में जीवात्मा को स्थापन करके एकरूप से देखनेवाले तुम, जीभ से ओठों के प्रान्त को चाटनेवाले और विषैले मुखों से, अपने पैर में काटनेवाले तक्षक को, अपने देह को और जगत् को आत्मा से भिन्न मानकर नहीं देखोगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे तात राजन् परीक्षित्! तुम ने विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि की लीला के विषय में जैसा मुझ से बूझा था, तैसा यह सब मैंने तुम से कहा है, हे राजन्! अब तुम और क्या सुनने की इच्छा करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्निशम्य मुनिनाऽभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादपद्ममुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सिद्धो स्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवतां करुणात्मना ॥ श्राविता यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापितेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥ अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तसर्वाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः सार्कं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मान-

हो ? ॥१३॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त॥*॥ सूतजी कहते हैं कि–हे शौनकादि ऋषियों ! सर्वात्मा श्रीहरि को निरन्तर देखनेवाले, समदृष्टि, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी के इसप्रकार कहेहुए इसपुराण को सुनकर वह विष्णुरात राजा परीक्षित्, नम्रमस्तक से उन शुकदेवजी के चरणकमल पर शीस रखकर और हाथ जोड़कर उन से कहनेलगे कि–॥१॥ हे शुकदेवजी ! मैं कृतार्थ हूँ, क्योंकि–करुणामूर्त्ति तुम ने, जो मुझे आदि अन्तरहित साक्षात् श्रीहरि का श्रवण कराया है सो तुम ने मेरे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह करा है ॥२॥ हे ऋषे ! भगवद्रूपी महात्मा पुरुषों का, संसारताप से तपेहुए अज्ञानी प्राणियों के ऊपर जो अनुग्रह करना, उस को मैं कोई बड़ा आश्चर्य नहीं मानता हूँ, क्योंकि–वह उन का स्वाभाविक कार्य है॥३॥ जिस में पुण्यकीर्ति भगवान् का वारम्वार वर्णन करा है ऐसी यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण संहिता हम सबोंने, आप से सुनी हैं ॥४॥ हे भगवन् ! मैं मृत्यु के कारण तक्षकादि से नहीं डरता हूँ, क्योंकि–तुम्हारे दिखायेहुए निर्भय मोक्षरूप ब्रह्म में प्रविष्ट हुआ हूँ ॥५॥ हे शुकदेवजी ! मैं अब वाणी का और सब इन्द्रियों का नियमन करके, कामवासनाओं से रहित हुआ अपना चित्त, अधोक्षज भगवान् में लगाकर प्राणों को त्यागताहूँ, इस से ऐसा करने की मुझे आप आज्ञा दें ॥६॥ तुमने भगवान् का परम कल्याणकारी स्वरूप दिखाया है, तिस से ज्ञान विज्ञान की निष्ठा करके मेरा अज्ञान और अज्ञान से होनेवाला संस्कार नष्ट होगया है ॥ ७ ॥ सूतजी कहते हैं कि–हे शौनकादि ऋषियों ! इसप्रकार प्रार्थना करके राजा ने जिन की पूजा करी है ऐसे वह भगवान् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी, राजा को आज्ञा देकर और अपने जाने की राजा से आज्ञा लेकर संन्यासियों के साथ तहाँ से चलेगये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी के चलेजाने पर जिसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले वर्हिष्यासीनो गङ्गाकूल उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहो हि गरलाग्निना बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनां ॥ १३ ॥ हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सहद्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेंद्रं भय-

सन्देह दूर होगया है ऐसा, निःसङ्ग और गङ्गातटपर पूर्वदिशा की ओरको अग्रभाग करे हुए कुश के आसन पर उत्तर को मुख करके बैठेहुए तिस राजा परीक्षित् ने भी, बुद्धि से अपने मन को प्रत्यगात्मा में लगाकर परमात्मा का ध्यान करा, तब वह महायोगी राजा ब्रह्मरूप होकर वृक्ष की समान लीनप्राण होगया अर्थात् राजा ने प्राणों को त्यागदिया ॥ ९ ॥ १० ॥ हे विप्रो ! क्रुद्धहुए ब्राह्मण के पुत्र के प्रेरणा करेहुए तक्षक सर्प ने, राजा को मारने के निमित्त जाते में मार्ग के विषैं कश्यप ऋषि को देखा ॥ ११ ॥ (वह कश्यपजी, तक्षक का विष उतार कर राजा परीक्षित् की रक्षा करने से धन पाने के निमित्त राजा की ओर को जाते थे, उन को देखते ही उन के परीक्षा करने के निमित्त, तहाँ एक बड का वृक्ष था उस को तक्षक ने डसकर जलाके भस्म करदिया, तब कश्यपजी ने उस बड़ के वृक्ष को मन्त्रबल से अंकुरादियुक्त पहिले की समान जीवित करदिया यह देखकर) तक्षक ने उन विष उतारनेवाले कश्यपजी को, यथेष्ट धन आदि देकर पीछे को लौटालादिया, और इच्छितरूप धारण करनेवाले उस तक्षक ने ब्राह्मण के वेष से राजा के समीप जाकर फिर तक्षकरूप धारकर राजा को डसलिया ॥ १२ ॥ ब्रह्मरूपहुए राजा का देह, तब सब लोकों के देखतेहुए तक्षक के विषरूप अग्नि से तत्काल भस्म होगया ॥ १३ ॥ उससमय पृथ्वी पर, आकाश में और दशोंदिशाओं में जिधरतिधर बडा हाहाकार शब्द हुआ और देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सब ही लोक आश्चर्ययुक्त हुए ॥ १४ ॥ फिर देवताओं की बनाईहुई दुन्दुभि बजनेलगीं, गन्धर्व अप्सरा आदि गान करनेलगे, और राजा का मोक्ष हुआ यह बडा सुन्दर हुआ ऐसा कहतेहुए देवता फूल वर्षानेलगे ॥ १५ ॥ फिर राजा जनमेजय, मेरे पिता तक्षक के डसलेने से मरण को प्राप्तहुए ऐसा सुनकर क्रोध में भरगया, और ब्राह्मणों को ऋत्विज् करके यज्ञ में सब सर्पों का हवन करनेलगा ॥ १६ ॥ तब उस सर्पयज्ञ में के धधकतेहुए अग्नि में बडे २ सर्प जलने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विजं उदारधीः ॥ सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे । तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्त्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदितास्वेषैः स्थानादिंद्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतंतं विमानेन सह तक्षकमंबरात् ॥ विलोक्यांगिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता

लगे ऐसा देखकर भय से अतिव्याकुल हुआ वह तक्षक 'रक्षा के निमित्त' इन्द्र की शरण गया । १७ ॥ इधर परीक्षित् के पुत्र जनमेजय ने, सर्पयज्ञ में तक्षक के दृष्टि न पडने से ब्राह्मणों से बूझा कि-हे द्विजो ! सर्पों में अधम तिस तक्षक का अभी तक तुम हवन क्यों नहीं करते हो ? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मण कहनेलगे कि-हे राजेन्द्र ! वह तक्षक इन्द्र की शरण में गया इसकारण इन्द्र उस की रक्षा कररहा है, तिस इन्द्र ने तक्षक को रोका है इसकारण वह सर्प अग्नि में नहीं गिरता है ॥ १९ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणों के कहने को सुनकर वह उदारबुद्धि परीक्षित् का पुत्र राजा जनमेजय कहनेलगा कि-हे विप्रो ! तो फिर इन्द्रसहित तिस तक्षक को तुम अग्नि में क्यों नहीं गिराते हो ? ॥ २० ॥ यह राजा का भाषण सुनकर वह ब्राह्मण इन्द्रसहित तक्षक का हवन करने के निमित्त प्रेष उच्चारण करनेलगे कि-हे तक्षक ! मारुत्नामक देवगणों के साथ रहनेवाले इन्द्रसहित तू 'अग्नि में' शीघ्र गिर ॥ २१ ॥ इसप्रकार ब्रह्मणों के उच्चारण करेहुए परुष वाक्यों से तक्षक और विमानसहित इन्द्र अपने स्थान से चलायमान हुआ और घबड़ा गया ॥ २२ ॥ तब आकाश में के विमान में से तक्षक सहित गिरनेवाले उस इन्द्र को देखकर, अङ्गिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति उस राजा के समीप आकर ऐसा कहनेलगे कि- ॥ २३ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! राजन् ! यह सर्पों का राजा तक्षक, तुमसे वध पाने के योग्य नहीं है, क्योंकि-इस ने अमृत पिया है तिस से यह अजर अमर होगया ॥ २४ ॥ इसपर भी तुम अपने पिता को डसने के कारण इस को भस्म करने का आग्रह करो तो सुनो प्राणी का जीवित रहना, मरना, तथा स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होना यह सब अपने कर्मों से होते हैं, इसकारण हेराजन् दूसरे को सुख दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है इसकारण अकालमृत्यु से पिता की दुर्गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुखंदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पञ्च त्वमृच्छते जन्तुर्भुंक्ते आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥ सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिं ॥ २८ ॥ सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्याऽलक्षणा या ॥ मुह्यत्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥ नैवात्र दंभीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोर्भयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिद्ध्य चोभौ विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सि-

इस तक्षक ने करी है ऐसा तुम अपने मन में न समझो ॥ २५ ॥ हे राजन्! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, वा भूख, प्यास, रोगादि से, जो जीव का मरण होता है वह उस को अपने प्रारब्धकर्मों से ही मिलता है अर्थात् उस के कर्म के प्रेरणा करेहुए ही सर्पादि काटते हैं वह स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ २६ ॥ तिस से हे राजन्! हिंसायुक्त इस सत्र को अब तुम समाप्त करो; इस में दूसरे निरपराधी सर्प निष्कारण ही जलगये; यह तुम्हारा भी दोष नहीं है, क्योंकि—सब प्राणी अपने पुरातन कर्म का ही भोग करते हैं ॥२७॥ सूतजी कहते हैं कि—इसप्रकार बृहस्पतिजी ने कहा तब उन के वचन का आदर करतेहुए राजा जनमेजय ने 'बहुत अच्छा ऐसा' कहकर सर्पयज्ञ को समाप्त करा और बृहस्पतिजी का पूजन करा ॥ २८ ॥ वह यह विष्णुभगवान् की अतर्क्य महामाया ही है कि—जिस अनिवार्य माया के द्वारा यह विष्णुभगवान् के ही अंशभूत प्राणी, क्रोध लोभादि के कारण मोहित हो प्राणियों में वैरभाव करके बाध्यबाधकता पाते हैं ॥ २९ ॥ यह पुरुष कपटी है, ऐसी बुद्धि में जिस का वारम्वार उल्लेख होता है वह माया, जहाँ आत्मविचार करनेवाले पुरुषों के वारम्वार आत्मविचार प्रारम्भ करने पर निर्भयपने से प्रकाशित नहीं होती है किन्तु भयभीतसी हुई अपने मोह आदि कार्यों को न करके बडे कष्ट से रहती है और जहाँ माया का आश्रय अनेकप्रकार का वादविवाद नहीं है तथा जहाँ सङ्कल्पविकल्परूप वृत्तिवाला मन भी नहीं है ॥ ३० ॥ और जहाँ इन्द्रियों के समूहसहित कर्म नहीं हैं, उन इन्द्रिय तथा कर्म दोनों से सिद्ध होनेवाला फल भी नहीं है; तैसे ही कर्म, इन्द्रियों का समूह, फल इन तीनों से युक्त अहङ्कारात्मकजीव भी नहीं है इस कारण ही जहाँ बाध्यबाधकों का निषेध करा है ऐसे तिस आत्मस्वरूपमें मननशील पुरुष अहङ्कारादि का त्याग करके रमण करै ॥ ३१ ॥ आत्मा के सिवाय दूसरे स्थान में प्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥ त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमां ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यात्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वा-

न रखनेवाले और 'नेति नेति' इस निषेधवाक्य के द्वारा आत्मा से भिन्न वस्तुओं का त्याग करने की इच्छा करनेवाले भक्तपुरुष, उस आत्मस्वरूप को ही विष्णुभगवान् का सर्वोत्तमस्वरूप जानते हैं और देह में के अहङ्कार का त्याग करके एकाग्रचित्त हुए मुमुक्षु पुरुषों ने, उस ही स्वरूप का हृदय में ध्यान आदि करके निश्चय करा है ॥३२॥ जिन पुरुषों को देह और घर में मैं और मेरा ऐसा दुष्ट अभिमान नहीं है वही पुरुष, विष्णुभगवान् के इस सर्वोत्तमस्वरूप को पाते हैं ॥ ३३ ॥ दूसरे के दुष्ट भाषण को सहन करै, 'अ.ना अपमान करने के कारण से' स्वयं दूसरे का अपमान न करै और तिस (नाशवान्) देह का आश्रय करके 'तिस देह के निमित्त' दूसरे किसी के भी साथ वैरभाव न करै ॥ ३४ ॥ जिन के चरणकमल का ध्यान करके, यह श्रीमद्भागवतसंहिता प्राप्त हुई है तिन अकुण्ठबुद्धि भगवान् व्यासजी को मेरा नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ शौनक ने कहा कि-हे सूतजी! व्यासजी के शिष्य, वेदों के प्रवर्त्तक, जो पैल आदि महात्मा ऋषि थे, उन्होंने वेदों के कितने प्रकार के विभाग करे हैं सो मुझ से कहिये ॥ ३६ ॥ सूतजी ने कहा कि-हे शौनक! समाधि लगाकर भगवान् के ध्यान में बैठेहुए परमेष्ठी ब्रह्माजी के हृदयाकाश से पहिले नाद उत्पन्न हुआ कि-जो कानों में अंगुलि डालकर उन की बाहर का शब्द सुनने की वृत्ति को बन्द करने पर अस्मदादिकों के भी सुनने में आता है ॥ ३७॥ और हे शौनकजी! जिस नाद ब्रह्म की उपासना से योगिजन, अपने अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव नामक मल को धोकर मोक्ष पाते हैं ॥ ३८ ॥ उस नाद से अकार- उकार मकाररूप तीन मात्राओं से युक्त ॐकार उत्पन्न हुआ, जिस ॐकार की उत्पत्ति स्पष्ट समझने में नहीं आती है, जो स्वयं ही हृदय में प्रकाशित होता है, जो ब्रह्मरूप परमात्मा भगवान् का स्वरूप है ॥ ३९ ॥ यदि कहो कि-कौनसा परमात्मा तो जो इस अस्पष्ट ॐ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥ स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥४१॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥४३॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥४४॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मपौत्रान्ब्रह्मकोविदान्॥ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन्॥४५॥ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥

कार को सुनता है, अब जीव ही उस को सुनता है ऐसा कहो सो ठीक नहीं होसक्ता; कानों को बन्द करलेने से श्रोत्र इन्द्रिय, श्रवण करनेवाली वृत्ति से रहित होनेपर जो ॐकार को सुनता है वही परमात्मा है. जीव तो 'इन्द्रियों के अधीन ज्ञानवाला होने के कारण, उससमय नहीं सुनता है, उस को तिस की प्राप्ति परमात्मा के द्वारा ही होती है ईश्वर तो ऐसा नहीं है, क्योंकि—वह इन्द्रियों के समूह का लय होनेपर भी ज्ञानवान् है; अर्थात् जब सोयाहुआ पुरुष, शब्द सुनकर जगता है तब उस शब्द को इन्द्रियों के लीन होजाने के कारण जीव नहीं सुनता है किन्तु जो उस समय शब्द को सुनकर जीव को जगाता है वही परमात्मा है; उसकाही वाचक ॐकार है और जिस ॐकार से वैखरी वाणी प्रकट होती है और जिस की हृदयाकाश में आत्मा से उत्पत्ति है ॥ ४० ॥ और जो अपने आश्रय स्थान साक्षात् ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का वाचक है वही ॐकार सब मंत्रो का रहस्य और वेदों का नित्य एकरूप (निर्विकार) कारण है ॥ ४१ ॥ हे शौनकजी ! उस ॐकार के अकार, उकार, और मकार यह तीन वर्ण हैं; जिन अ, उ, म्, इन तीन वर्णों से, क्रम से रज, सत्त्व और तम यह तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद यह नाम; भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक यह अर्थ, और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति यह वृत्तियें धारण करी हैं ॥ ४२ ॥ हे शौनकजी ! तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने, उन 'अ, उ, म्, इन वर्णों से, य, र, ल, व, यह अन्तःस्थ, श, ष, स, ह, यह ऊष्म, अ से लेकर औ पर्यन्त स्वर, क से लेकर म पर्यन्तस्पर्श और ह्रस्व दीर्घ आदि लक्षणों वाला सम्पूर्ण अक्षरसमूह उत्पन्न करा ॥ ४३ ॥ फिर उन अक्षरों के समूह से, उन ब्रह्माजी ने, अपने चारमुखों करके होता अध्वर्युआदि चार ऋत्विजों के करने का कर्म (यज्ञ) वर्णन करने की इच्छा से 'भूर्भुवःस्वः' इन तीन व्याहृति और ॐकार सहित चारवेद उत्पन्न करे ॥ ४४॥ और वह चारों वेद, वेदाध्ययन करने में चतुर अपने मरीचि आदि पुत्रों को पढ़ाये फिर उन धर्मोपदेश करनेवाले ऋषियों ने वह वेद अपने पुत्रों को पढाये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर वह वेद, नियम धारण करनेवाले शिष्यों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्युगेष्वथ व्यस्तो द्वापरादौ महर्षिभिः ॥४६॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतनोदिताः ॥४७॥ अस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मशर्वैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये॥४८॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधं ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहितां ॥ अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वां संहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इंद्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥ अध्यौ-

परम्परा से चारों युगों में आये और द्वापर के अन्त में महर्षियों ने उन वेदों का विभागकरा ॥ ४६ ॥ हृदय में रहनेवाले भगवान् के प्रेरणा करेहुए उन महर्षियों ने, कालवश दिन पर दिन सकल मनुष्य, बल हीन, तिसपर भी दुर्बुद्धि और तिस में भी अल्पायु होनेलगे ऐसा देखकर वेदों के 'भिन्न २ शाखाओं के द्वारा' विभाग करे ॥ ४७ ॥ हे शौनकजी! इस मन्वन्तर में भी,ब्रह्मा शिव आदि देवताओं ने और इन्द्रादि लोकपालों ने धर्मकी रक्षा के निमित्तजिनकी प्रार्थना करी है ऐसे लोकपालक प्रभु भगवान्—॥४८॥ पराशरऋषिकी सत्यवती नामक स्त्रीकेविषें मायाके सात्विक अंशकरके व्यासरूप से अवतीर्णहुए और उन्होंने वेद के चारभाग करे॥४९॥जैसे एक स्थान में की अनेक प्रकार के रत्नों की बड़ी भारी ढेरी में से पद्मराग आदि रत्नों की ढेरियें भिन्न २ निकाली जाती हैं तैसे ही सम्पूर्ण वेद के बड़े भारी समूह में से ऋक्,अथर्व, यजु और साम इन मंत्रों के समूह अनेकों प्रकरणों के भेदरूप से निराले २ निकालकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यह चार संहिता करी हैं ॥ ५० ॥ हे शौनकजी ! फिर उन महाबुद्धिमान् व्यासजी ने अपने चारशिष्यों को बुलाकर हरएक को एक २ संहिता उपदेश के द्वारा ददी ॥ ५१ ॥ बह्वृच नामवाली ऋग्वेदसंहिता पैल ऋषि को दी, दूसरी निगद नामवाली गद्यरूप यजुर्वेदसंहिता वैशम्पायन नामक ऋषि को, तैसेही तीसरी छन्दोग नाम की सामवेद संहिता जैमिनि ऋषि को और चौथी अथर्वाङ्गिरसी नामवाली अथर्ववेद संहिता सुमन्तु ऋषि को उपदेश करी ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ हे शौनक ! पैल ऋषि ने,अपनी ऋक्संहिता की दो शाखा करके, उनमेंसे एक इन्द्रप्रमिति को और दूसरी बाष्कल नामक शिष्य को पढ़ाई,उन बाष्कलने भी अपनी संहिता की चार शाखा करके एक बोध्य को,दूसरी याज्ञवल्क्य को,तीसरी पराशर को और चौथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविं ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवेतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहितां ह्येतां एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥ वैशम्पायनशिष्यो वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांऽहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहोभगवन्किंयत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्राव-

अग्निमित्र को पढ़ाई, हे शौनक ! पहिले कहेहुए आत्मज्ञानी इन्द्रप्रमिति ने अपने माण्डूकेय नामक विद्वान् पुत्र को अपनी सब संहिता पढ़ाई, माण्डूकेय का शिष्य देवमित्र था उस ने वह संहिता अपने सौभरि आदि शिष्यों को पढ़ाई ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उस माण्डूकेय का पुत्र शाकल्य था, उस ने उस अपनी संहिता के पाँचभाग करके वात्स्य मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर इन पाँच शिष्यों को पढ़ाई ॥ ५७ ॥ उन शाकल्य का शिष्य जातूकर्ण्य नामवाला था उस ने अपनी संहिता के तीन भाग करके और वेद में कहे पदार्थों का व्याख्यान रूप चौथा निरुक्त रचकर तिस के साथ वह बलाक, पैज, वैताल और विरज इन को सिखाई ॥ ५८ ॥ बाष्कल के पुत्र बाष्कलि ने, पहिली सब शाखाओं में से बालखिल्य नाम की एक संहिता रची, वह बालायनि, भज्य और कासार ने पढ़ी ॥ ५९ ॥ हे शौनकजी ! यह ऋग्वेद की संहिता ब्रह्मर्षियों ने धारण करी हैं जो कोई पुरुष, इन संहिताओं के विस्तार को सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥६०॥ हे शौनक ! वैशम्पायन ऋषि के चरकाध्वर्यु नामवाले शिष्य थे, उन का चरकाध्वर्यु नाम पडने का कारण यह था कि—उन्होंने अपने वैशम्पायन गुरु को ब्रह्महत्या लगने पर उस ब्रह्महत्या को दूर करनेवाला उन गुरु के करने का व्रत (प्रायश्चित) आप करा था इसकारण वह चरकाध्वर्यु नाम को प्राप्त हुए ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्य भी उन वैशम्पायन के शिष्य थे, वह गुरु से कहनेलगे कि—हेभगवन् ! अल्प दृढ़तावाले इन शिष्यों के करेहुए व्रत से कौन फल प्राप्त होगा ? इसकारण इन को अति कठिन ऐसे व्रत को मैं ही करूँगा ॥६२॥ ऐसा कहनेपर वैशम्पायन जी क्रोध में होकर कहनेलगे कि—अरे ! ब्राह्मणों का अपमान करनेवाले तुझ शिष्य से भरपाये, तूने मुझ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्त्रां शिष्येणं मेदीतं त्यजाम्यहंवमि ॥ ६३ ॥ देवरातसुतः सोपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः ॥ तैत्तिरीयाः इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन् छन्दांस्यधिगवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूर्यतस्थेऽर्कमीश्वरं ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ओं नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदुह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन

पढ़ा है उस को त्यागकर यहाँ से शीघ्र निकलना, ऐसा कहते ही ॥ ६३ ॥ देवरात के पुत्र वह याज्ञवल्क्य भी यजुर्वेदों के समूह का तहाँ ही वमन करके डालकर तहाँ से चले गये, फिर वह वमन करेहुए यजुर्वेद कितने ही ऋषियों की दृष्टि पड़े ॥ ६४ ॥ तब उन की तिन यजुर्वेद के मंत्रों को ग्रहण करने की इच्छा हुई परन्तु वमन ग्रहण करना ब्राह्मणों को उचित नहीं है इसकारण उन ऋषियों ने,उन वेदों के लोभसे अपने तीतर पक्षीके रूप रखकर उनको ग्रहण करलिया;तब अतिसुन्दर तैत्तिरीय नामसे प्रसिद्ध यजुर्वेदकी शाखाहुई ॥६५॥हेशौनक! वह याज्ञवल्क्य, अपने गुरु के पास,व्यासजी के विभाग करके न कहने के कारण जो नहीं थे ऐसे दूसरे ही यजुर्वेद के मंत्रों की खोज करतेहुए ऋग्वेदादि सब वेदोंके नियन्ता सूर्यनारायणकी स्तुति करनेलगे।६६।याज्ञवल्क्यजी बोले कि हेसवितः सूर्यनारायण! जो तुम एक ही भगवान् होकर जरायुज, अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज इन चारप्रकार के प्राणियोंके समूहरूप ब्रह्माजी से लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् के हृदय में आत्मस्वरूप से और बाहर क्षण,लव,निमेष आदि अवयवों से बढ़ेहुए सम्वत्सरसमूहरूप कालस्वरूप से 'जैसे आकाश घट मठ आदि उपाधियों के भीतर और बाहर व्याप्त होने पर भी कहीं भी लिप्त नहीं होता है तैसे ही' देहादि उपाधियों के भीतर और बाहर रहकर भी उपाधियों से आच्छादित न होते हुए प्रतिवर्ष जल को सुखाना और फिर वर्षा करना इस के द्वारा लोकों का आजीवन करते हो ऐसे तुम आदित्यरूपी भगवान् को नमस्कार हो (इस प्रकार गायत्री के प्रथम पाद का अर्थ वर्णन करा) ॥ ६७ ॥ अब गायत्री के दूसरे चरण के अर्थ का वर्णन करतेहुए स्तुति करते हैं कि—हे देवोत्तम! हे सवितः! प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्या के समय वैदिक कर्म की रीति से तुम्हारी स्तुति करनेवाले भक्तों के सकल पातकों से उत्पन्न होनेवाले दुःखों के बीज का नाश करनेवाले हे सूर्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवतः सर्वाभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥ य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइंद्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥ ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशांजलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ हे भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वंदितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पंच शतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसेन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥ ॥ ४७ ॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ता-

नारायण! इस तुम्हारे प्रतिदिन प्रकाश पानेवाले मण्डल का हम ध्यान करते हैं ॥ ६८ ॥ हे सूर्यनारायण! जो तुम, सब के अन्तर्यामी आत्मा होतेहुए, अपने आश्रित स्थावर जङ्गमरूप जीवों के जडरूप मन, इन्द्रियों और पंचप्राणों को प्रेरणा करते हो ऐसे तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ ६९ ॥ अब गायत्री के तीसरे चरण से स्तुति करते हैं कि— हेसूर्यनारायण! जो परमदयालु भगवान, अतिभयानक मुखवाले अन्धकार नामक अजगररूप ग्रहके निगलेहुए और उस से ही मृतक समान अचेतन पड़ेहुए इस लोक को देखकर और अपनी दयायुक्त दृष्टि से उठाकर प्रतिदिन तीनो काल में कल्याणकारी अपने धर्मरूप परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त करते हो, 'जैसे राजा दुष्ट पुरुषों को भय देताहुआ विचरता है तैसे,दुराचारियों को भय देते हुए गमन करते हो—॥७०॥और जिन के चारोंओर इन्द्रादि लोकपाल, जहाँ तहाँ अपने २ स्थानो में रहकर कमल की समान हाथोंकी अञ्जलियों से अर्घ्य देते हैं तिन भगवान् सूर्य को नमस्कार हो। ७१॥हे भगवन् क्योंकि—तुम ऐसे हो इसकारण दूसरों के यथार्थ न जानेहुए यजुर्वेद के मंत्रों की इच्छा करके मैं,त्रिलोकी के अधिपतियों करके वन्दना करेहुए तुम्हारेदोनों चरणकमलों का भजन करता हूँ ॥७२॥ सूतजी कहते हैं कि—इस प्रकार स्तुति कर के प्रसन्न करेहुए उन भगवान् सूर्यनारायण ने वाजिरूप धारण करके, याज्ञवल्क्यमुनि को अयातयाम (विस्मरण आदि दोषों से रहित और दूसरों को प्राप्त न हुए) यजुर्वेद के मन्त्र दिये ॥ ७३ ॥ फिर उन याज्ञवल्क्यजी ने उन असंख्यात यजुर्वेद के मन्त्रों की १५ शाखा करीं; उन वाजसनेयी नामक शाखाओं को काण्व माध्यन्दिन आदि ऋषियों ने पढा ॥ ७४ ॥ सामवेद का गान करनेवाले जैमिनि का एक सुमन्तु नामवाला पुत्र था और उस सुमन्तु का एक सुन्वान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥७५॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजाः॥७६॥हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः॥ शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः॥ ७७॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंचशतानि वै ॥ पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥ लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यंजिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशति संहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान्८०॥ इतिश्रीभागवते म० द्वादशस्कंधे वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥७॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ॥ संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥ शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलि-

नामवाला पुत्र था उन दोनों को (पुत्र और पौत्र को) उन्होंने अपनी संहिता की दो शाखा करके एक २ को एक २ पढाई ॥७५॥ उन जैमिनि का सुकर्म नामवाला भी एक बडा बुद्धिमान् शिष्य था, उस ने सामवेदरूप वृक्ष की एक सहस्र संहिता निराली २ करीं ;फिर हे शौनकादि ऋषियों ! उस सुकर्मा का एक शिष्य कौशल्य हिरण्यनाभ,दूसरा शिष्य पौष्याञ्जि और तीसरे शिष्य ब्रह्मवेत्ता (सामवेद जानने वाले) आवन्त्य ने उन सब संहिताओं को ग्रहण करा ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उन पौष्याञ्जि तथा आवन्त्य के और हिरण्यनाभ के भी उत्तर दिशा में रहकर सामवेद का गान करनेवाले पाँच सौ शिष्य थे उन्होंने उन संहिताओं को समानभाग करलिया; यद्यपि वह सबही उदीच्य थे तथापि कालवश उन में से कितनो ही को प्राच्य (पूर्ववासी) कहते हैं ॥ ७८ ॥ लौगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुशीद और कुक्षि यह पौष्याञ्जि के शिष्य थे उन्होने सौ सौ संहिता लीं ॥ ७९ ॥उस हिरण्यनाभ का कृतनामा शिष्य था उनने चौवीस संहिता अपने शिष्यों को पढ़ाईं और शेष रहीं संहिता आवन्त्य ऋषिने अपने शिष्यों को पढ़ाईं ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी ने कहाकि हे शौनक ! अथर्ववेद जाननेवाले सुमन्तु ऋषि ने, अपनी संहिता कबन्ध शिष्य को पढ़ाई उस कबन्ध ने भी अपनी संहिता की दो शाखा करके, एक पथ्यनामक शिष्य को और दूसरी वेददर्श नामक शिष्य को पढ़ाई ॥ १ ॥ वेददर्शने अपनी संहिता की चार शाखा करके शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि इन चार शिष्यों को पढ़ाईं, अब पथ्य के शिष्य कहता हूँ, सुनो—हेशौनक ! कुमुद, शुनक, और जाजलि यह तीन 'पथ्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपांगिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशंपायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगां ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितं ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥ सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षांतराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥

ने अपनी संहिता की तीन शाखा करके पढ़ायेहुए होने से' अथर्व के जाननेवाले हुए ॥ २ ॥ शुनक के बभ्रु और सैन्धवायन दो शिष्य थे, उन्होंने दो संहिता पढ़ी, तैसे ही सैन्धवादिकों के सावर्ण्य आदि अर्थात्-नक्षत्रकल्प, शांतिकल्प कश्यप और आङ्गिरस आदि शिष्य अथर्व वेद के आचार्य (शाखा विभाग करके प्रवृत्त करनेवाले) थे; हेमुने ! अब पुराणों के आचार्य कहता हूँ सुनो ॥३॥४॥ हेशौनक ! त्रय्यारुणि, कश्यप सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत यह छः पौराणिक थे ॥५॥ पहिले वेदव्यासजी ने, पुराण की छः संहिता रचकर मेरे रोमहर्षण पिता को सिखाई फिर उन व्यासजी के शिष्य मेरे पिता के मुख से त्रय्यारुणि आदि छःजनोंने एक २ संहिता पढ़ी, और उन सबों का शिष्य मैं, छहों संहिताओं को पढ़ा हूँ ॥६॥ कश्यप, मैं, सावर्णि, परशुराम का शिष्य अकृतव्रण इन हम चारों ने, व्यासजी के शिष्य से पुराणों की चार मूलसंहिताओं को पढ़ा है ॥ ७ ॥ अब शुकदेव और राजा परीक्षित् के सम्वाद में कहेहुए पुराणों के लक्षण और उन के भेद कहताहूँ हेशौनक ! ब्रह्मर्षियों ने वेदशास्त्रों के अनुसार जो पुराणों के लक्षण कहे हैं उन को ध्यान देकर सुनो ॥ ८ ॥ हेशौनक ! इस विश्व का सर्ग, विसर्ग, वृत्ति (स्थान), रक्षा (पालन) मन्वन्तर, वंश तथा वंशवालों का चरित्र (ईशानुकथा), संस्था (निरोध) मुक्तिहेतु (ऊति) और अपाश्रय यह दश विषय जिस में हों उस को विद्वान् पुरुष पुराण कहते हैं और कितने ही आचार्य कहते हैं कि—सर्ग, विसर्ग वंश, वंशजों का चरित्र और मन्वन्तर यह पाँच विषय जिस मे हों वह पुराण कहलाता है, इस मतभेद में ऐसी व्यस्था है कि-दशों विषयों का जिस में भिन्न २ वर्णन हो वह महापुराण और जिस में अन्य पाँच लक्षणों का अन्तर्भाव करके पाँच लक्षणवर्णन करे हों उस को अल्पपुराण (उपपुराण) मानै

१ श्लोक में 'मूल संहिता' ऐसा पद है इस से प्रतीत होता है कि—और भी बहुतसी संहिता थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोहंमः ॥ भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयाऽपि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यते यैस्त्रयीद्विषः॥१४॥ मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः॥ऋषयोऽशावतारा हरेः षड्विधमुच्यते ॥१५॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥१६॥ नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ॥ १७ ॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः॥ यं वानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्व-

॥ ९ ॥ हे शौनक ! प्रधान (प्रकृति) के गुणों का क्षोभ होकर तिस से महत्तत्त्व की, महत्तत्त्व से तीन प्रकार के अहङ्कार की और उस से शब्दादि तन्मात्रा इन्द्रियें पञ्चतत्त्व और उन के देवताओं की जो सृष्टि होती है उस को 'सर्ग' कहते हैं ॥ ११ ॥ ईश्वर के अनुग्रह करेहुए (सृष्टि की सामर्थ्य दियेहुए महत्तत्त्व आदि का जो, पूर्वकर्मों की वासनाओं वाला और ' जैसेबीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है तैसे ' प्रवाह की समान ' कार्यभूत ' चराचर प्राणिरूप समुदाय तिस को ' विसर्ग ' कहते हैं ॥ १२ ॥ चर प्राणियों की सामान्य रीति से चराचर प्राणी जीविका का साधन हैं, तिन में मनुष्यों की अपने २ स्वभाव के अनुसार राग से वा शास्त्र के वचनों से जो आजीविका कहीगई है उस को वृत्ति कहते हैं ॥ १३ ॥ जिन से दैत्यों का नाश कियाजाता है तिस २ प्रत्येक युग में पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि और देवताओं में अच्युत भगवान् के अवतार की लीला होकर जो विश्व का पालन होता है उस को रक्षा कहते हैं ॥ १४ ॥ मनु देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तऋषि और श्रीहरि के अंश का अवतार इन छहों का समूह जब अपने २ अधिकार में प्रवृत्त होते हैं उससमय के उस काल को 'मन्वन्तर, कहतेहैं ॥१५॥ ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए (शुद्ध) राजाओं की भूत,भविष्य और वर्त्तमानकाल की सन्तति को ' वंश , कहते हैं और उन शुद्ध राजाओं के चरित्र को तथा उन के वंशधरों के चरित्र को ' वंश्यानुचरित , कहते हैं ॥ १६ ॥ इस विश्व का नैमित्तक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक जो चार प्रकार का, माया से प्रलय होता है तिस को विद्वान् पुरुष ' संस्था , कहते हैं ॥ १७ ॥ हे शौनक ! चैतन्य को मुख्य माननेवाले कितने ही पुरुष, जिसजीव को अनुशायी कहते हैं और दूसरे उपाधि को मुख्य माननेवाले कितने ही पुरुष, अव्याकृत कहते हैं वह अविद्या से ' मोहित होकर , कर्म करनेवाला जीव, इस विश्व की उत्पत्ति आदि होने का कारणभूत है इस कारण उस को 'हेतु' कहते हैं॥ १८॥परब्रह्म कि—जो जाग्रत,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसुप्तिषु ॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपंचतां तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥२० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहायो निवर्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कंडेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥ ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायु-

स्वप्न और सुषुप्तिमें जीवपनेसे वर्त्तनेवाले मायामय विश्व, तैजस और प्राज्ञमें पुराहुआ है और समाधि आदिमें उनसे भी जुदा है तिस को, 'अपाश्रय,कहते हैं ॥१९॥ जैसे कारणरूप मृत्तिका आदि वस्तु,नामरूपवाले अपने कार्यरूप घटादि पदार्थों में अनुस्यूत होकरभी तिन से भिन्न होते हैं तैसे ही,गर्भाधान से मरणपर्यन्त होनेवाली देह की अवस्थाओं में अधिष्ठानपने से' अनुस्यूत और 'साक्षीपने से' उन से भिन्न जो, नामरूपों में सत्तामात्र से रहने वाला परब्रह्म वही अपाश्रय है ॥२०॥ जिस समय पुरुष का मन, रजःसत्त्वतमोगुणरूप तीनों वृत्तियों को त्यागकर विराम पावे, अथवा यहाँ ही करेहुए योगबल से अथवा सर्गादि लक्षणों के श्रवण कीर्त्तन आदि से होनेवालीभक्ति से वैराग्य को प्राप्त होय तब विक्षेप के नष्ट होजाने के कारण यह पुरुष आत्मा को जानेगा और संसाररूप अविद्या से स्वयं ही छूटजायगा ॥ २१ ॥ हे शौनकजी! इसप्रकार के लक्षणों से जानने में आनेवाले महापुराण और उपपुराण अठारह हैं ऐसा प्राचीन विद्वानों का कथन है ॥ २२ ॥ ब्राह्म (ब्रह्मपुराण), पाद्म (पद्मपुराण), वैष्णव और शैव, लैंग, गारुड़, नारदीय, भागवत, आग्नेय, स्कान्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मात्स्य, कौर्म और ब्रह्माण्ड यह अठारह पुराण हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे शौनक! व्यास, व्यासजी के शिष्य, उन के शिष्य और उन के भी प्रतिशिष्य इत्यादिकों का कराहुआ और श्रोताओं के ब्रह्म सर्वस्व को बढानेवाला यह शाखाओं का विस्तार मैंने तुम से वर्णन करा है ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ शौनक ने कहा कि—हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ सूतजी! तुम चिरंजीव रहो, तुम संसाररूप अपारअन्धकार में घूमतेहुए पुरुषों को पार दिखानेवाले हो, इसकारण हम जो बूझते हैं सो कहो ॥ १॥ जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ॥ यैः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ ॥ २ ॥ स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ नैवाधुनाऽपि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यद्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नेश्छिंधि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् । छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥ बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्चैनियमर्द्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयंन्संध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स

प्रलय से यह जगत् नष्ट होता है उस कल्प के अन्त में होनेवाले प्रलय में भी जो शेष रहे उन मृकण्ड के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि को सब लोक 'चिरायु' कहते हैं सो यह कैसे होसक्ता है? अर्थात् प्रलय में भी कैसे जीवित रहते हैं ॥२॥ दूसरे यह कि—वह मार्कण्डेय ऋषि भृगुवंश में श्रेष्ठ होने के कारण इस ही कल्प में और हमारे कुल में उत्पन्न हुए हैं और अबतक (भृगुकुल की उत्पत्ति होने से) तो प्राणियों का प्राकृत वा नैमित्तिक इन मे से कोई भी प्रलय नहीं हुआ है अर्थात् इस समयपर्यन्त जब प्रलय ही नहीं हुआ तो 'प्रलय में शेष रहे' यह कहना कैसे बनसक्ता है? ॥ ३ ॥ एक और भी अघटित बात है कि—वह मार्कण्डेयऋषि, प्रलयकाल के समुद्र में इकले ही भ्रमण कररहे थे, सो बड के पत्ते के पुटके ऊपर (दोनें में) उन्होंने सोयेहुए एक आश्चर्यकारी बालकरूप पुरुष को देखा ॥ ४ ॥ यह बडाभारी संशय उत्पन्न होने के कारण सुनने को बडी उत्कण्ठा होरही है; हे बहुत जाननेवाले सूतजी! तुम केवल महायोगी ही नहीं हो किन्तु सब पुराणों को जानने के विषय में माननीय भी हो, इसकारण हमारे उस संशय को दूर करो ॥ ५ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक! जिस तुम्हारे प्रश्न का समाधान करते में कलियुग के दोषों का नाश करनेवाली भगवान् की कथा गाई जायगी ऐसा यह लोकों के भ्रम को दूर करनेवाला तुम ने बडा सुन्दर प्रश्न करा है ॥६॥ जब मार्कण्डेयजी ने गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रम करके पिता से यज्ञोपवीत संस्कार पाया तब वह ब्रह्मचर्य व्रत धारकर वेद को पढ़कर तप और स्वाध्याय में लगगए ॥ ७ ॥ वल्कलवस्त्र ओढ़े, जटा धारण करे वह शान्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मार्कण्डेयजी, धर्म को बढाने के निमित्त दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत, मेखला, जपकरने की रुद्राक्षकी माला सहित काली मृगछाला और कुशा धारण करके अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मा में श्रीहरि का पूजन करनेलगे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥ १३ ॥ तस्यैवं युंजतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥ ॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलांतरे ॥ तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसंतमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्रारूया च शिला विभो ॥ १७ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलतांचितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयं ॥

वह प्रातः और सायङ्काल भीखमाँग के लाकर अपने गुरु को अर्पण करते थे और जब अपने गुरु आज्ञादेते थे तब मौनसाधकर एकसमय भोजन करते थे, कभी गुरु ने भोजन करने को आज्ञा न दी तो निराहार ही रहजाते थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ हेशौनक ! ऐसे तप और स्वाध्याय में तत्पर रहनेवाले उन मार्कण्डेय जी ने दशकरोड वर्षपर्यन्त श्रीहरि की आराधना करके अतिकठिनता से जीतनेयोग्य मृत्यु को भी जीतलिया ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयजी के मृत्यु को जीतलेने के कारण ब्रह्मा, भृगु, महादेव, दक्ष और ब्रह्माजी के नारदादि पुत्रों को तथा और जो मनुष्य, देवता, पितर तथा भूत आदि थे तिन को बडा आश्चर्य प्रतीत हुआ ॥ १२ ॥ ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करनेवाले वह योगी, तप, स्वाध्याय और इन्द्रियजय के द्वारा अन्तःकरण को रागादिरहित करके अधोक्षज भगवान् का ध्यान करनेलगे ॥ १३ ॥ ऐसे बडे योग के बल से मन का नियमनकर, रहनेवाले उन मार्कण्डेयजी को छः मन्वन्तर का (१७०४ युगों की चौकड़ी) समय वीतगया ॥ १४ ॥ हे शौनकजी ! इस सातवें मन्वन्तर में इस वार्त्ता को जानकर इस मन्वन्तर में के पुरन्दर नामक इन्द्र ने, तपस्या से यह मेरे इन्द्रपद को लेलेगा ऐसा सन्देह करके, उन की तपस्या में विघ्न करने को उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ उस इन्द्र ने, मार्कण्डेय मुनि को तपस्या से डिगाने के निमित्त गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव वसन्त ऋतु और मलयागिरि के पवन तथा रजोगुण के अतिप्रिय लोभ और मद को भेजदिया ॥ १६ ॥ हेशौनकजी ! वह सब ही हिमालय के उत्तर की ओर जहाँ पुष्पभद्रा नदी और चित्रानामक शिला है तहाँ मार्कण्डेयजी के आश्रम के पास आपहुँचे ॥ १७ ॥ उस पवित्र आश्रम का स्थान सुन्दरवृक्षलताओं से शोभायमान, पवित्र पक्षियों के समूहों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो वनवानुत्तमयन् स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गंधर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतातत्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ॥ गीलितांक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलं ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुमनोरमं ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पंचमुखं तदा ॥ मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकंपयन्॥२५॥क्रीडंत्याः पुंजिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रसितस्रजः॥२६॥इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलंत्या अनुकन्दुकम्॥वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥२७॥ विससर्ज

से भराहुआ और पवित्र निर्मल जलाशयों से युक्त था ॥ १८ ॥ जहाँ मदमत्त भौंरे गुञ्जार रहे थे, और मत्त कोकिल अपना कुहू २ शब्द कर रहे थे, जहाँ मदोन्मत्त मोर नट नृत्य कररहे थे ऐसा वह मदोन्मत्त पक्षियों के कुलों से भराहुआ था ॥ १९ ॥ ऐसे उस आश्रम में फूलों से सुगन्धित हुआ वह मलयाचल का पवन, ठण्डे झरनों के कणों को लेकर कामदेव को दीप्त करताहुआ चलनेलगा ॥२०॥ जिस में चन्द्रमा निकला है ऐसे प्रदोष काल के होनेपर वसन्त ऋतु भी कोमल पत्तों की पक्तियों से लिपटेहुए वृक्षों के और लताओं के झुण्डोंपर प्रकट हुआ ॥२१॥ और गानेवजाने वालों सहित गन्धर्वोंको साथ लेकर सज्ज (तयार) धनुष और वाणों को धारण करनेवाला कामदेव, उस आश्रम में दृष्टि पड़नेलगा ॥२२॥ फिर अग्नि में हवन करके नेत्रमूँदे बैठेहुए वह मार्कण्डेयजी, तिरस्कार करनेको अशक्य होने के कारण उन इन्द्र के सेवकों को मूर्त्तिमान् अग्नि से प्रतीत होने लगे ॥२३॥ अप्सरा उन मार्कण्डेयजी के सामने नाचनेलगीं, गन्धर्व गानेलगे और कितने ही मृदङ्ग, वीणा, ढोल आदि बाजों का मनोहर शब्द करनेलगे ॥ २४ ॥ उस समय कामदेव ने, शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन ऐसे पाँच मुखवाले अस्त्रको अपने धनुषपर चढाया, उस समय वसन्त ऋतु, लोभ तथा और भी इन्द्र के सेवक ऋषि के मन को चल विचल करनेलगे ॥ २५ ॥ फिर तहाँ पुञ्जिकस्थली अप्सरा, गेंद खेलने लगी तब स्तनों के भार से उसकी कमर बहुतही झुकगई थी, और उसकी चोटी में से फूलों की माला नीचे को खसक रही थीं ॥ २६ ॥ वह अप्सरा गेंद के पीछे फिरती हुई जिधरतिधर को दृष्टि डालती थी,इतने ही में कमर की तगड़ी के तूटकर गिरजाने से मलयाचल के पवन ने उस के महीन वस्त्र को उड़ादिया ॥ २७ ॥ तब 'मार्कण्डेय को मैंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः २८॥ तं इत्थमपकुर्वतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्यमाना निवव्रतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥ इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन् धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट् ॥ श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ । तस्यैवं युंजतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकंजलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलांबरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥ पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्णपिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थाया-

जीतलिया' ऐसा मानकर कामदेव ने अपना बाण छोडा; परन्तु जैसे भाग्यहीन का कराहुआ उद्योग निष्फल होता है तैसे कामदेव का तप से डिगाने के निमित्त कराहुआ सब प्रयत्न उन मार्कण्डेयजी के ऊपर निष्फल हुआ ॥ २८ ॥ हे मुने! ऐसे मार्कण्डेयजी के प्रतिकूल आचरण करनेवाले वह इन्द्र के दूत, उन के तेज से जलनेलगे तब 'जैसे बालक सर्प को जगाकर भय से पीछे को भागजाते हैं तैसे वहाँ से लौटगये ॥ २९ ॥ हे राजन्! ऐसे इन्द्र के अनुचरों के तिरस्कार करेहुए उन महामुनि मार्कण्डेयजी को अहङ्कार से होनेवाला कामक्रोधादि विकार उत्पन्न नहीं हुआ; तिस से ऐसे महात्माओं में यह बात कुछ आश्चर्य मानने की नहीं है ॥३०॥ इधर भगवान् इन्द्र, अन्य मण्डली के साथ मलिनमुखहुए उस कामदेव को देखकर और 'उस से' उन ब्रह्मर्षि का प्रभाव सुनकर परमविस्मय को प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ फिर, इस रीति से तप, स्वाध्याय और यमनियमों के द्वारा चित्त को जीतनेवाले उन मार्कण्डेयऋषि के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त नर और नारायण के रूप से श्रीहरि उन के समीप प्रकटहुए ॥३२॥ वह आकार में ऊँचे और चतुर्भुज होकर शुक्ल तथा कृष्णवर्ण के थे, उन के नेत्र कमल की समान सुन्दर थे, वह काली मृगछाला और वल्कल धारण करे और हाथ में पवित्री, गले में तीन आवृत्ति के (नौ सूत्र के) यज्ञोपवीत को धारण करेहुए थे; उन के शरीर की कान्ति चमकनेवाली बिजली की समान पीले वर्ण की थी इसकारण वह साक्षात् तप की मूर्त्ति ही दीखते थे; वह कमण्डलु, बांस का सूधा दण्डा, कमलगट्टों की माला 'चलते में कीडे आदि प्राणी न मरैं इसकारण' उन को एक ओर करने के निमित्त (वस्त्र की कूँची आदि) और कुशा की मुट्ठी यह एक २ धारण करेहुए थे वह श्रेष्ठ देवताओं के भी पूजनीय थे, ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे शौनक! वह भगवान् के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दरे णो चैनंनामांगेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥ स तत्संदर्शनानंदनिर्वृतात्मेंद्रियाशयः॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव॥ नमो नमं इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ किं वर्णये तव विभो येदुदीरितो ऽसुः संस्पन्दते तमनुवाङ्मन इंद्रियाणि ॥ स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्ववोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥ मूर्तीः इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नीना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं-

नरनारायण नामवाले अवतार थे, ऐसे उन ऋषियों को देखते ही मार्कण्डेयजी ने उठकर और अति आदर सत्कार करके शरीर से दण्डवत् नमस्कार करा ॥ ३५ ॥ उनके दर्शन से होनेवाले आनन्द करके जिनके शरीर, इन्द्रियें और मन परमशान्त हुए हैं, जिन के शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं और जिन के नेत्र आँसुओं से भर आये हैं ऐसे वह मार्कण्डेय ऋषि, उन नरनारायण की ओर को देखभी नहीं सके ॥ ३६ ॥ फिर वह मानो उत्कण्ठा से आलिङ्गन ही करते हैं ऐसे उठकर हाथ जोड़कर नम्र होते हुए तिन नरनारायण से, नमस्कार हो, नमस्कार हो, ऐसा अटकते अटकते कहने लगे ॥ ३७ ॥ और उन्हो ने उन को आसन देकर तथा उन के चरण धोकर अर्घ्य, चंदन, फूल, धूप, आदि सामग्रियों से पूजाकरी ॥ ३८ ॥ फिर मार्कण्डेय ऋषि, सुख से आसन पर बैठे हुए और प्रसाद करने को समर्थ उन अतिपूजनीय नरनारायण मुनि के चरणों में फिर गिरकर ऐसे कहनेलगे ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा कि—हेप्रभो ! मैंतुम्हारी क्या स्तुति करूँ? क्योंकि देहधारी प्राणियों का तुम्हारा प्रेरणा कराहुआ प्राण प्रवृत्त होता है और उस के पीछे वाणी मन, इन्द्रियें, यह अपने २ कर्म करने में प्रवृत्त होती हैं, केवल प्राकृत प्राण की है यह दशा नहीं है किन्तु ब्रह्मा शिव के प्राणादिक भी तुम्हारे ही प्रेरणा करने पर प्रवृत्त होते हैं और मेरे प्राणादिक भी तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रवृत्त होते हैं, इसकारण तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी स्वतन्त्र नहीं है तथापि तुम, अपना भजन करनेवालों के आत्मा के बन्धु हो, पिता मातादि के समान केवल देह के ही नहीं ॥ ४० ॥ हेभगवन् ! जैसे तुम इस विश्व की रक्षा करने के निमित्त मत्स्य कूर्म आदि अनेक अवतार धारण करते हो तैसे यह दो भगवन् की (तुम्हारी) मूर्ति भी त्रिलोकी का पालन करने के निमित्त, दुःख को दूर करने के निमित्त और मृत्यु को जीतकर मोक्ष की प्राप्ति होने के निमित्त तुम धारण करते हो, जैसे मकड़ी पहिले अपने पेट में से तार निकालकर घर (जाला) रचती है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिदं त्वमेव नाभिः ॥ ४१ ॥ तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्वं न कर्मगुणकालरजः स्पृशंति ॥ यद्वै स्तुवंति निगमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भय ईश विद्मः ॥ ब्रह्मा विभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतमियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदत्यभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्यैर्नृणां व्यसनमोहभियश्च योभ्याः ॥ ४५ ॥ तस्मात्त्वमेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति ॥ यत्सा-

फिर उस को आप ही भक्षण करजाती है तैसे तुम भी इस जगत् को उत्पन्न करके फिर इस का संहार करते हो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! स्थावर-जङ्गम जगत् को प्रेरणा करनेवाले और पालन करनेवाले तुम्हारे चरणकमल का मैं भजन करता हूँ, कि—जिस की उपासना करनेवाले पुरुष को, कर्म, गुण और काल का दोष स्पर्श भी नहीं करता है, और वेद का तात्पर्य जाननेवाले मुनि, उस की प्राप्ति के निमित्त जिस (चरण) की स्तुति करते हैं, पूजन करते हैं, नमस्कार करते हैं और निरन्तर ध्यान करते हैं॥ ४२॥ हे ईश! तुम भ्रुकुटि को उघाडकर देखते हो उससमय तिस भ्रुकुटि के चढने से ही, जिन का स्थान दो परार्द्ध पर्यन्त रहता है वह ब्रह्माजी भी, अत्यन्त भयभीत होजाते हैं फिर उन ब्रह्माजी के रचे हुए प्राणियों के डरने का तो कहना ही क्या ? इससे सर्वत्र भय पानेवाले प्राणी को, मोक्षरूप तुम्हारे चरण की प्राप्ति को छोड़कर दूसरा कल्याणकारी स्थान हम नहीं जानते हैं ॥ ४३ ॥ इसकारण आत्मस्वरूप को ढकने वाले निष्फल, तुच्छ, नाशवान् और 'अत्यन्त ही मिथ्या होने के कारण' आत्मस्वरूप से भिन्न न दीखनेवाले इन देहादि पदार्थों को त्यागकर मैं, उस जीवनियन्ता, सत्यस्वरूप और कारण से पर तुम्हारे तिस चरणतलका भजन करता हूँ, जब पुरुष तुम्हारा भजन करेगा तो उस को तुम से इच्छित फल प्राप्त होयगा ही ॥ ४४ ॥ हे जीव के हितकारिन् ! यद्यपि, सत्त्व, रज और तम यह तीनो गुण, तुम्हारी ही मूर्ति हैं और इन से तुम, इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय होने की हेतु जो माया तिस के द्वारा लीलाओं को धारण करते हो; तथापि हे परमेश्वर ! उन में की जो सत्त्वगुणमयी मूर्त्ति है वही मनुष्यों को मोक्ष मिलने का कारण होती है; दूसरी (रजोगुणी वा तमोगुणी) मूर्त्ति का ध्यान करने पर उस से दुःख, मोह वा भय प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ क्योंकि—सत्त्वगुणी मूर्त्ति ही कल्याणकारिणी है तिस से हे भगवन् ! इस लोक में चतुरबुद्धिवाले पुरुष, तुम्हारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वेताः पुरुषरूपमुशंति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥४६॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्मायया वृतमतिः स उ एव साक्षाद्ज्ञस्तवाऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरा यतंतः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनिगूढबोधं ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभा० म० द्वादशस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो ब्रह्मर्षिवर्याऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्या

(नारायण की) शुद्धसत्त्वगुणी मूर्त्ति का और तुम्हारे भक्तों के मन को प्रिय लगनेवाली शुद्धसत्त्वगुणी (नररूप) मूर्त्ति का ही भजन करते हैं; क्योंकि—जिस सत्त्वगुणी मूर्त्ति से वैकुण्ठलोक प्राप्त होकर अभय मिलने के कारण आत्मा को सुख होता है; वह सत्त्व ही पुरुष का रूप है ऐसा भक्तजन मानते हैं, रजोगुण और तमोगुण को ईश्वर का रूप नहीं मानते हैं ॥४६॥ हे ईश्वर! तुम सर्वान्तर्यामी, व्यापक, विश्वरूप, विश्वगुरु, परमदैवत, शुद्धमूर्त्ति और वाणी के नियन्ता, वेदों के भी प्रवर्त्तक होकर अब नारायण और नरोत्तम इन रूपों को धारनेवाले ऋषि हुए हो तिन तुम भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ निष्फल इन्द्रियों से विक्षिप्तबुद्धि हुआ जो पुरुष, अपनी इन्द्रियों में, प्राणों में और हृदय में तथा दीखतेहुए पदार्थों में रहनेवाले भी तुम्हें नहीं जानता है, वह तुम्हारी माया से आच्छादितबुद्धिवाला पुरुष, पूर्व की समान अज्ञ होकर भी, सबों के गुरु तुम से प्रवृत्तहुए वेद को पाने पर तुम्हें प्रत्यक्ष जानलेता है ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! तुम्हारे गुप्तभेद को प्रकाशित करनेवाला जिन तुम्हारा ज्ञान वेद में होता है, जिन तुम्हारे विषैं, ब्रह्मानी महादेव आदि बडे २ विद्वान् भी 'स्वरूपज्ञान होने की आशा से' सांख्य योग्य आदि के द्वारा यत्न करतेहुए भी मोहित होते हैं, जिन का स्वभाव सकल सांख्यवादी लोकों के वाद के भेद आदि के अनुसार है और जिन का ज्ञान देहादि के संघात से गुप्त है ऐसे महापुरुषरूपी तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनक! उन बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनि ने, इसप्रकार स्तुति करके जिन को प्रसन्न करा है ऐसे वह नर के मित्र भगवान् नारायण, उन भृगुकुल श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी से कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—हे ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ! तुम ने चित्त को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽनपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्वृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदर्शादभीप्सितम् ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेण तावताऽलं नो यदद्राक्ष्मोऽसमीक्षत ॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनं ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यनुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदां ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इतीडितोर्चितः कामपृपिणा भगवान्मुने ॥ तथेति सस्मयन्प्रागाद्वर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेवं चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ कंचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ॥ उपासीनस्य संध्या-

एकाग्र करके मुझ में निर्दोष भक्ति करीहै और तपस्या, वेदाध्ययन तथा इन्द्रिय जय यह भी करे हैं इसकारण तुम सिद्ध होगए हो ॥ २ ॥ हे ऋषे ! तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से हम प्रसन्न हुए हैं इसकारण वर देनेवालों मे श्रेष्ठ ऐसे हम से तुम इच्छित वर माँगलो, तुम्हारा कल्याण हो॥३॥मार्कण्डेयजी ने कहाकि–हेदेव देव ! हे शरणागतों के दुःख दूर करनेवाले अच्युत ! वरदान से मुझे लोभ युक्त करके तुम ने अपना उत्कर्ष दिखलाया, हे ईश्वर ! अब जो तुमने दर्शन दिया यही बहुत है इस से दूसरे वर की मुझ को इच्छा नहीं है ॥ ४ ॥ ब्रह्मादि देवता, योगाभ्यास करके पक्व (शुद्ध)हुए केवल मन से ही जिन तुम्हारे श्रीमान् चरण कमल का दर्शन करके कृतार्थ होते हैं वह तुम प्रत्यक्ष मेरी दृष्टि पड़े हो, फिर इस से अधिक दूसरा कौनसा वरदान मांगने योग्य है ? ॥ ५ ॥ तथापि हे पवित्र कीर्तिवालों में श्रेष्ठ कमलदल नयन ! जिन की माया से ब्रह्मादिकों सहित यह जन सत्यवस्तु में देवता, तिर्यक, मनुष्य आदि भेद देखता है वह माया ही मेरे देखने में आवे ऐसी मुझ को इच्छा है ॥ ६ ॥ सूतजी कहते हैं कि--हे शौनक ! इसप्रकार मार्कण्डेय ऋषि ने बहुतसी स्तुति करके पूजा करी, तबवह ईश्वर (नरनारायण) भगवान्, तथास्तु (मेरे माया तुम्हें दीखेगी) ऐसा कहकर और विस्मय करके बदरिकाश्रम को चलेगये ॥ ७ ॥ फिर उस माया का दर्शन मुझे कब होयगा ऐसा विचारते हुए वह मार्कण्डेय ऋषि, अपने आश्रम में ही रहकर अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, भूमि वायु, आकाश और आत्मा इन में तथा दूसरे भी सब स्थानों में श्रीहरि का ध्यान करते हुए मानसिक सामग्रियों से उन का पूजन करनेलगे, एक समय वह आनन्द रूप प्रवाह में निमग्न होतेहुए तिन श्रीहरि की पूजा करने को भूलगये ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् शौनकजी ! एक दिन सन्ध्याकाल के समय वह मुनि, पुष्पभद्रा नदी के तटपर सन्ध्या आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यां ब्रह्मन्वायुरधून्महान् ॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्कराला: ॥ अक्षत्यविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥११॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः ॥ समीरवेगोर्मिगिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥ अन्तर्बहिश्चाद्रितिद्युभिः खैः शतह्रदाभीरुपतत्पितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मनाऽमुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समंत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभंजनावूर्णितवारिमहार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधाद्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ ॥ १४ ॥ सक्ष्माऽन्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडांधवत् ॥ १५ ॥ क्षुत्तृट्परीतो मकरैरितस्ततो गिलद्भिरुपद्रुतो वीचिभिरभ्यताहतः ॥ तमस्यपारे पतितोऽभ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमोपितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्ते

कररहे थे सो हे भृगुश्रेष्ठ ! बडाभारी वायु का झोकाचला ॥ १० ॥ प्रचण्ड शब्द करने वाले वायु के पीछे भयानक मेघ घुमड़आये, उन मेघों में से बिजलियों की चमक के साथ बड़ा कड़कड़ाहट का शब्द होकर रथ के पहिये के छिद्र में के दण्डे (धुरे) की समान बड़ी २ वर्षा की धारा जिधर तिधर से पडनेलगीं ॥ ११ ॥ फिर जिन में अतिक्रूरनाके तथा महा भयानक भँवर हैं और गम्भीर शब्द होरहे हैं ऐसे चारों समुद्र चारों ओर से वायु की झकोलों से उत्पन्न हुई तरङ्गों से भूमण्डल को डुबाते हुए दीखने लगे ॥ १२ ॥ स्वर्ग और पातालों को भरदेनेवाले उन जलों से, सूर्य की तीखी किरणों से (अथवा प्रचण्ड पवनों से) और बिजलियों से, अपने सहित (मार्कण्डेय सहित) जरायुज आदि चार प्रकार का जगत्, भीतर और बाहर से अत्यन्त भयभीत हुआ, और पृथ्वी को जल में डूबी देखकर वह मार्कण्डेय मुनि अति खिन्न होकर भय को प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ इसप्रकार उन मार्कण्डेय ऋषि के देखतेहुए, वर्षा करनेवाले मेघों के जलों से भरेहुए और अति प्रचण्ड पवन से जल के उछलने के कारण तरङ्गों से अतिभयानक दीखनेवाले समुद्र ने, द्वीप, खण्ड और पर्वतों सहित पृथ्वी को ढकादिया ॥ १४ ॥ हे शौनक ! पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, तारागण, और दिशाओं सहित सारी त्रिलोकी अत्यन्त डूबगई; उस में से इकले मार्कण्डेय मुनि ही शेष रहगये; वह जटाओं को बखेरकर बावले और अन्धे की समान भटकनेलगे ॥ १५ ॥ मगर और छोटे २ मत्स्यों को खानेवाले बडे मच्छों से नोचेहुए, और तरङ्गे तथा वायु के लुडकने के कारण अत्यन्त थककर भूँख प्यास से व्याकुलहुए वह मुनि, फिरते २ अपार अन्धकार में पडगये तिस से दिशा, आकाश, पृथ्वी आदि कुछ भी उन की समझ में नहीं आया ॥ १६ ॥ वह कहीं बड़े भँवर में पड़जाते थे, कहीं समुद्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैरलैस्ताडितः कैचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते कैपि स्वयमन्योन्यघातिभिः॥१७॥ कैचिच्छोकं कैचिन्मोहं कैचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ कैचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितैः ॥१८॥ अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसंतं प्रभया तमः ॥२१॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ॥ कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमादरभासेपच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥ पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शना-

की तरङ्गों से धक्का खाते थे, कहीं कहीं उन को भक्षण करने के निमित्त परस्पर में युद्ध करनेवाले जल के प्राणियों से वह भक्षण करेजाते थे ॥ १७ ॥ उन को कभी शोक होता था, कभी मोह होता था, कभी दुःख होता था, कभी सुख, कभी भय और कभी २ तो रोगादि से पीडित होकर मृत्यु को प्राप्त होजाते थे ॥ १८ ॥ इसप्रकार विष्णु की माया से मोहितचित्त हुए उन मार्कण्डेय मुनि को, उस प्रलयसमुद्र में फिरते एक शङ्कु (१००००००००००००) वर्ष बीतगये ॥१९॥ उन ब्राह्मण को उस समुद्र में फिरते हुए एकसमय पृथ्वी के ऊँचे प्रदेशपर फलों से और पत्तों से शोभायमान वड का पौधा (छोटासा पेड) दृष्टि पडा ॥ २० ॥ और उस वड की ईशानदिशा में की शाखा के एक पर्णपुट (दोने) में सोयाहुआ और अपने तेज से अन्धकार का नाशकर नेवाला एकबालक उन को दीखा ॥ २१ ॥ वह बालक उत्तम मरकतमणि की समान श्यामवर्ण,शोभायमान मुख कमलवाला और शंख के से बल पडेहुए कण्ठवाला, चौड़ी छाती-सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंवाला था ॥ २२ ॥ और वह श्वासलेते में हलनेवाले केशों से शोभायमान और शंख के से बल भीतर पडे होने के कारण सुन्दर दीखनेवाले उस के दोनो कानोपर दाडिमी के फूल थे; वह मूँगे की समान ओठों की कान्ति से कुछ एक लालहुए अमृत समान (स्वेत) हास्य से युक्त था; उस के नेत्रों के कोये कमल के भीतरीभाग की समान कुछ एक लाल थे मनोहर हास्य के साथ देखरहा था और उस के पीपल के पत्तेकी समान पेटपर की त्रिवली श्वासों से हलती थी इसकारण उस की गदरी नाभि चलायमान होरही थी ॥ २३॥२४॥ वह सुन्दर अङ्गुलिवाले हाथों से अपना चरणकमल ऊपर को करके और उस को मुख में लेजाकर चूसरहा था,तिस मनोहरमूर्त्ति बालक को देखकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः ॥ प्रहृष्टरोमाऽद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकं ॥ २६ ॥ तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽतःशरीरं मशको यथाविशत् ॥ तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुरा मुह्यदतीवविस्मितः ॥ २७ ॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान् द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥ यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ॥ विश्वं विपश्यन् श्वसितात्शिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धि-

---

विस्मय को प्राप्तहुए ॥२५॥ हे शौनक ! उप का दर्शन होते ही जिन का परिश्रम दूर हुआ है, आनन्द से जिन के नेत्र कमल और हृदयकमल प्रफुल्लित हुए हैं और तिस परमआश्चर्यकारीरूप से शङ्कित होने के कारण जिन के शरीर पर रोमाञ्च खडे होगये हैं वह मार्कण्डेयजी उस बालक से प्रश्न करने के निमित्त आगे को सरककर उस के समीप में को गये ॥ २६ ॥ इतने ही में, उस बालक के ऊपर को खेंचेहुए श्वास से वह मार्कण्डेयजी, उस के पेट में मच्छर के समान खिचेचलेगये, तहाँ जाते ही उन्होंने, यह जगत् जैसा प्रलय से पहिले बाहर था तैसाही भीतरभी सब देखा तब वह अति विस्मित होकर मोहित होगए ॥२७॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारे, पर्वत, समुद्र, खण्डोंसहित द्वीप, दिशा, देव, दैत्य, वन, देश नदी, शहर, खान, किसानो के गाँव, ग्वालों की गढहयें, आश्रम, वर्ण, उनकी आजीविका ॥ २८ ॥ पञ्चमहाभूत, उन से उत्पन्न हुए पदार्थ, अनेक युगों की और कल्पों की कल्पना करनेवाला काल और भी जो कुछ व्यवहार का कारण था सो सब ही, बालकरूप परमेश्वर से ही परमार्थ की समान (सत्यसा) भासमान हुआ उन मार्कण्डेयजी की दृष्टि पड़ा ॥ २९ ॥ तैसे ही उन्होने, वह हिमालय, वह पुष्प भद्रा नदी, उस के तटपर वह अपना आश्रम और उस में के वह सब ऋषि भी देखे. हे शौनक ! मार्कण्डेयजी के इसप्रकार उस विश्व को देखतेहुए उस बालक के श्वास में को होकर बाहर निकले सो उसी प्रलय समुद्र में जापड़े ॥ ३० ॥ और उन्होने फिर पृथ्वी के उस टीलेपर उगाहुआ वह वड़ और उस के पत्ते के दोने में सोयाहुआ वह बालक देखा तब उस बालक ने प्रेम के साथ अमृत समान गन्द मुसकुरान से युक्त नेत्र के कटाक्षों से उस की ओर को देखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥ तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥३४॥ इ० भा० द्वा० मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्यैनं भगवन्विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदङ्मपवातो वातापाये यथाऽर्णवः ॥

फिर अतिक्लेश को प्राप्त हुए वह मार्कण्डेय जी, नेत्रों के द्वारा हृदय में स्थापन करेहुए उस बालकरूप अधोक्षज, भगवान् को आलिङ्गन करने के निमित्त उन के समीपगये ॥३१॥३२॥और हृदय से लगाने को थे कि—इतने ही में 'जैसे भाग्यहीन का कराहुआ उद्योग सर्वथा नष्ट होजाता है, तैसेही' सबों के हृदय मे रहनेवाले वह योगाधिपति भगवान्, मार्कण्डेय ऋषि के समीप से एकायकी अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ भगवान् के अन्तर्धान् होनेके अनन्तर हेशौनक! वह बड़, वह जल और वह लोको का प्रलय आदि सब ही एक क्षण मे नष्ट होगया, और वह मार्कण्डेय मुनि भी पहिले की समान अपने आश्रम में स्वस्थ रहे ॥ ३४ ॥ इतिश्री मद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी कहते हैं कि—इसप्रकार वह मार्कण्डेयमुनि, भगवान् नारायण की रचीहुई योगमाया के इस वैभव का अनुभव लेकर उन ही नारायण की शरण गये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी कहनेलगे कि—हे भगवन् श्रीहरे! बडे २ विद्वान् भी ज्ञान की समान प्रकाशित होनेवाली जिस तुम्हारी माया से 'हम ज्ञानी हैं ऐसा अहङ्कार करके' मोहित होते हैं ऐसे, शरणागत को अभय देनेवाले तुम्हारे चरणतल की मैं शरण आया हूँ ॥ २ ॥ सूतजी ने कहा कि—तदनन्तर एक समय पार्वतीसहित नन्दी पर बैठकर और अपने भृङ्गी भृङ्गी आदि गणों को साथ लेकर आकाश में विचरनेवाले भगवान् महादेवजी ने, समाधि लगाये बैठेहुए उन मार्कण्डेयमुनि को देखा ॥ ३ ॥ तब पार्वतीजी, उन ऋषि को देखकर महादेवजी से कहनेलगीं कि—हे भगवन्! मेघ न होने के समय जल और मच्छमगर आदि प्राणियों के शान्त होने पर जैसे समुद्र शान्त होता है तैसे जिस का देह, इन्द्रियें और मन यह निश्चल होगये हैं ऐसे इस (शान्त) ब्राह्मण की ओर को देखकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धि-दो भवान् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्ध्वा-न्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथाऽपि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥ न वेद रुद्धधीर्वृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया ॥ आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं भासं तडित्पिंगजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुकं कपालपरशुं सह ॥ १२ ॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो

इस की तपस्या का फल प्रकट करो; क्योंकि—तुम ही तपस्याओं की सिद्धि देनेवाले हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीशङ्करभगवान् ने कहा कि—हे पार्वति ! इस को अविनाशी पुरुषोत्तम भगवान् में बडीभारी भक्ति उत्पन्न हुई है इसकारण यह ब्रह्मर्षि मार्कण्डेय, तप की फल-सिद्धि होने की इच्छा नहीं करता है, अधिक क्या कहूँ ! निःसन्देह मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता है, फिर सांसारिक सुखों को नहीं चाहता इस का तो कहना ही क्या ॥ ६ ॥ तथापि हे पार्वति ! इस साधु के साथ हम भाषण करें, क्योंकि—साधुओं का समागम होना ही मनुष्यों को निःसन्देह परमलाभ है ॥ ७ ॥ सूतजी ने कहाकि—हे शौनक ! सकल प्राणियों का 'अन्तर्यामिरूप से नियन्ता होने के कारण सकल विद्याओं के ईश उन, भक्तों को गति देनेवाले महादेवजी ने, ऐसा कहकर उन मार्कण्डेयऋषि के समीप गमन करा ॥८॥ उससमय तिन मार्कण्डेयजी ने, अन्तःकरण की वृत्ति को रोककर अन्तर्यामी ईश्वर की ओर लगाया था इसकारण जो अपने शरीर को और विश्व को नहीं जानते थे उन मार्कण्डेयजी को जगदात्मा शिवपार्वती का आना ज्ञान (मालूम) नहीं हुआ ॥ ९ ॥ उन की अन्तःकरण की वृत्तियें रुकीहुई हैं यह जानकर भगवान ईश्वर, योगमाया के प्रभाव से उस के हृदय रूप गुहा में के आकाश में—जैसे वायु जिधर २ छिद्र मिलता है उधर २ को ही प्रवेश करता है तैसे प्रविष्ट होगये ॥ १० ॥ तब बिजली की समान पीली जटाओं को धारण करनेवाले, और त्रिशूल, धनुष, बाण, तरवार तथा ढाल सहित, व्याघ्रचर्म रूप वस्त्र, रुद्राक्षों की माला, डमरू, मनुष्य की खोपड़ी और फरसा धारण करे तथा तीननेत्र वाले, दशभुज और ऊँचे तथा जो हृदय के भीतर सूर्य की समान उदय हुए हैं ऐसे केवल बाहर से ही नहीं किन्तु हृदय में भी प्राप्तहुए भगवान् सदाशिव को देखकर वह मार्कण्डेय मुनि, यह हृदय में एकायकी क्या भासमान हुआ ? और कहां से हुआ ! ऐसे विस्मय से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनिः ॥ १३ ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् ॥ रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घगंधस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ॥ करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥ नमः शिवाय शांताय सत्त्वाय मृडयाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ॥ परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ॥ अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विंदतेऽमृतम् ॥१९॥ ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः ॥ एकांतभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः॥२०॥सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ॥ अहं च

उदककर समाधि से उछटगये ॥११॥१२॥१३॥ फिर नेत्र उघाड़ते ही अपने गणोंसहित पार्वती को साथ में लिये त्रिलोकी के एक ही गुरु भगवान् रुद्र आये हैं ऐसा उन की दृष्टि पड़ा तब उन मुनि ने, मस्तक से नमस्कार करा ॥ १४ ॥ और आयेहुए गणों सहित पार्वती के साथ उन की स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप और दीप आदि सामग्रियों से पूजा करी ॥ १५ ॥ और कहनेलगे कि—हेप्रभो ईश्वर! जिन तुम से इस जगत् को सुख मिलता है ऐसे, अपने प्रभाव से पूर्णकाम हुए आपका हम कौनसा कार्य करें? ॥ १६ ॥इस से हे विभो! वास्तव में देखाजाय तो तुम निर्गुण और शान्त होकर भी, सत्त्वगुण को ग्रहण करके (विष्णुरूप से पालन करके) सब को सुख देते हो; तैसेही रजोगुण को स्वीकार करतेहो तथा तमोगुण को स्वीकार करके अतिभयानक होते हो ऐसे आप को मेरा वार २ नमस्कार हो ॥ १७ ॥ सूतजी कहते हैं कि—ऐसे स्तुति करने पर प्रसन्न हुए, साधुओं के गतिरूप वह भगवान् आदिदेव शङ्कर, अन्तःकरण में प्रसन्न होकर हँसते २ उन मार्कण्डेयजी से ऐसे कहनेलगे ॥ १८ ॥ भगवान् महादेवजी ने कहाकि—हेमार्कण्डेय! जिनका दर्शन होना कभी निष्फल नहीं होता है और जिन से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होती है ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव हम तीनो वरदेनेवालों में श्रेष्ठ हैं, सो हम से तुम अपना इच्छित वर मांगलो ॥ १९ ॥ हे मुने! जो ब्राह्मण साधु (सदाचारवान), शान्त (मत्सरताआदिरहित),निःसङ्ग(निष्काम), प्राणीमात्र में दयायुक्त, निर्वैर और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले होने के कारण हम तीनों में एक समान निष्कपटभक्ति करनेवाले होते हैं—॥२०॥ उन को लोकोंसहित इन्द्रादि लोकपाल वन्दना करते हैं, उन का पूजन करते हैं; सेवा करते हैं.और केवल वही तुम्हारा भजन करते हैं ऐसा नहीं किन्तु मैं(महादेव)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः॥२१॥ नते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २२ ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ॥ बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपि वः ॥ शुद्ध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन्२६॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुंजस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरचेष्टेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥ धर्मं ग्राहयितुं

ब्रह्माजी और स्वयं ईश्वर (मेरेसहित सबों का ईश्वर) श्रीहरि यह हम तीनों ही उन को वन्दना आदि करके सेवा में तत्पर होते हैं ॥२१॥ क्योंकि—वह ब्राह्मण, मैं (महादेव), विष्णु और ब्रह्मा इन हम तीनों में, अपने में तथा अन्य सांसारिक प्राणियों में भी अणुमात्र भी भेदभाव नहीं जानते हैं इसकारण हम,तुम ब्राह्मणों को भजते हैं ॥२२॥ हे मुने! जलमयतीर्थ और चेतनारहित (पाषाणमय) देवता अर्थात् जलमयतीर्थ और पाषाणमय मूर्त्तियों के अधिष्ठात्री देवता, पवित्र तो करते हैं परन्तु सेवा करते रहने पर बहुतकाल में पवित्र करते हैं और तुम साधुपुरुष तो दर्शन होते ही उद्धार करते हो ॥ २३ ॥ जो, चित्त की एकाग्रता, शास्त्र देखना, वेद पढना, और वाणी आदि का संयम करना, इन के द्वारा वेदत्रयीरूप हमारा (ब्रह्मा, विष्णु, शिव का) रूप धारण करते हैं उन ब्राह्मणों को हम नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ तुम ब्राह्मणों के दर्शन से अथवा केवल नाम सुनने से महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध होजाते हैं फिर तुम से सम्भाषण आदि करके शुद्ध होयँगे, इस का तो कहना ही क्या? ॥२५॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनकजी! जिन के भाल में चन्द्रमा ही भूषण है, उन भगवान् महादेवजी का धर्म के रहस्य से युक्त अमृतसमान मधुर वचन कानों से पीकर वह मार्कण्डेयऋषि तृप्त नहीं हुए ॥ २६ ॥ जो विष्णुभगवान् की माया से बहुत दिनोंपर्यन्त भ्रान्त से होकर अतिदुर्बल होगये थे, परन्तु इस समय महादेवजी के वचनामृत से जिन के सकल क्लेश दूर होगये हैं ऐसे वह मार्कण्डेयजी, तिन महादेवजी से कहनेलगे ॥ २७ ॥ मार्कण्डेयजी ने कहा कि—अहो! यह ईश्वर की लीला, देहधारियों की तर्कना में भी आना कठिन है, कि—जिस से शिक्षा दियेजानेवाले मुझ समान प्राणियों को स्वयं जगदीश्वर भी नमस्कार करते हैं और स्तुति करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनां ॥ आचरंत्यनुमोदंते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥ २९ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वप्नदृग्यथा ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ३२ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ॥ यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३३ ॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ॥ भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवान् शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३५ ॥ कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोऽक्षजे ॥ आकल्पांताद्यशः

हैं ॥२८॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि—प्रायः धर्मोपदेश करनेवाले पुरुष, जिस को आप आचरण करते हैं, करने की इच्छावालों को सम्मति देते हैं और करने पर उस की प्रशंसा करते हैं वह, देहधारी प्राणी अपने २ धर्म को स्वीकार करें इस निमित्त ही है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! ऐसा लोकव्यवहार करने से, अपनी मायामय वृत्तियें जिस में हैं ऐसे दूसरों को नमस्कार आदि करने से,तुम मायाधीश भगवान् का प्रभाव ऐसे दूषित नहीं होता है जैसे जादूगर के जादू में करेहुए आचरण से उस का वास्तविक प्रभाव दूषित नहीं होता है ॥३०॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला पुरुष, स्वप्न में ही अविद्या के द्वारा मन से अनेकों पदार्थों को कल्पना करके उन में प्रवेश करता है तब उस को ऐसा प्रतीत होता है कि—इन्द्रियों की करीहुई क्रिया मैंने ही करी हैं तैसे ही, तुम सङ्कल्पमात्र से इस विश्व को उत्पन्न करके फिर उस में जीवरूप से प्रवेश करते हो तुम गुणोंकी करीहुई क्रियाएं तुम ही करते हो ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु जो तुम त्रिगुणात्मक होकर भी जीव की समान गुणों से तिरस्कार न पाने के कारण गुणों को वश में रखनेवाले ही हो, ऐसे शुद्धरूप, अद्वितीय, गुरु और ब्रह्मरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे व्यापक प्रभो ! जिन तुम्हारा दर्शन करने से पुरुष को,सबप्रकार का इच्छानुकूल आनन्द प्राप्त होने से उस के सब मनोरथ पूरे होजाते हैं ऐसे उत्तम दर्शनवाले तुम से दूसरा कौनसा वरदान माँगूँ ? ॥ ३३ ॥ तथापि भक्तों के मनोरथ पूरे करनेवाले और पूर्णकाम तुम से एक यही वर माँगता हूँ कि—मेरी अच्युत भगवान् में, उन के भक्तों में और तैसे ही तुम में भक्ति होय ॥ ३४ ॥ सूतजी कहते हैं कि—इसप्रकार मधुरवाणी से स्तुति और पूजन करनेपर वह शिवजी, पार्वती की भी सम्मति लेकर उन मार्कण्डेयजी से ऐसा कहने लगे कि—॥ ३५ ॥ हे महर्षे ! तुम ब्रह्मतेजस्वी हो और अधोक्षज भगवान् में भक्तिमान हो इस से तुम्हारा यह मनोरथ पूरा हो; इस कल्प के अन्तपर्यन्त तुम्हारी कीर्त्ति अटल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्नुभूतं पुरा मुनेः ॥ ३८ ॥ सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ॥ अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादु तावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० । ७ ॥ शौनक उवाच ॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवि-

रहैगी और तुम्हें अजर अमरपना भी प्राप्त होगा;हेब्राह्मण!तुम्हें भूत—भविष्य वर्त्तमान काल की वस्तुओं का ज्ञान, वैराग्य सहित विज्ञान और पुराणों का आचार्यपना प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनक ! मार्कण्डेयजी को ऐसा वरदान देकर वह त्र्यम्बक ईश्वर, मार्कण्डेयजी के पहिले देखेहुए भगवान् की माया के वैभव को पार्वती जी से कहते हुए तहाँ से चलेगये ॥ ३८ ॥ फिर वह मार्कण्डेय मुनि, महायोग की सामर्थ्य प्राप्त होने पर साक्षात् श्रीहरि के एकान्त भक्त बनकर इस भूलोक में विचरनेलगे, और अब भी वह आनन्द से विचरते हैं ॥ ३९ ॥ हे शौनक ! उन बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी का यह चरित्र और उन का अनुभव कराहुआ अद्भुत भगवान् की माया का वैभव मैंने तुमसे विस्तार के साथ कहा ॥ ४० ॥ यह मार्कण्डेयजी का अनुभव कराहुआ भगवान् की माया का अनेक कल्परूप वैभव, भगवान् की इच्छा से अकस्मात् केवल उन के ही देखने में आया वैसा सब की दृष्टि नहीं पडा इसकारण वह प्राकृत वा नैमित्तिक प्रलय नहीं है,और मनुष्यों के उत्पत्ति प्रलय आदि होते हैं वह भगवान् की माया ही है ऐसा न जाननेवाले कितने ही पुरुष, बहुतकाल पर्यन्त 'देवताओं के दो सहस्र युगों में' फिर (अनेकवार) उत्पत्ति प्रलय हुए ऐसा कहते हैं और विद्वान् पुरुष तो—वह मार्कण्डेयजी, उस मायिक बालक के श्वासों के साथ सातवार फिर २ पेट में जाकर उसी समय बाहर आये ऐसा कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे भृगुकुलश्रेष्ठ शौनकजी ! जो पुरुष, विष्णुभगवान् की माया के वैभव से युक्त इस वर्णन करेहुए मार्कण्डेयजी के चरित्र को आप सुनेगा अथवा जो कोई दूसरे को सुनावेगा उन दोनों ही को कर्मवासनाओं का जन्ममरणरूप संसार नहीं प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में दशम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ शौनक बोले कि—हे भगवद्भक्त सूतजी ! तुम सकल तन्त्रशास्त्रों के सिद्धान्त का रहस्य जानते हो इसकारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्तमम् ॥ समस्ततन्त्रसिद्धांते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ॥ अंगोपांगायुधाकल्प कल्पयन्ति यथैव यैः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सतां ॥ येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यतां ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नमस्कृत्वा गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्विष्णवीरपि ॥ याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥ मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः सविकारमयो विराट् ॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् । ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ॥ नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ॥ रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात्

बहुज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ तुम से हम इस विषय का प्रश्न करते हैं कि—॥ १ ॥ तन्त्र की रीति से भगवान् का आराधन करनेवाले पुरुष, चैतन्यधन लक्ष्मीपति भगवान् की पूजा में, चरण आदि अङ्ग, गरुड आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि आयुध और कौस्तुभ आदि अलङ्कारों की जिस प्रकार जिन तत्त्वों से कल्पना करते हैं ॥ २ ॥ वह क्रियायोग (उपासना की रीति) सुनने की इच्छा करनेवाले हमसे कहो, कि—जिस क्रियायोग में चतुरता प्राप्त होनेपर मनुष्य अमरपने को पहुँचता है, हेसूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥ सूतजी ने कहाकि—हेशौनक ! मैं श्रीगुरुओं को नमस्कार करके, ब्रह्माजी आदि आचार्यों ने वेद में तन्त्र में जो वर्णन करी है वह विष्णुभगवान् की विराट् देह आदि विभूति कहता हूँ, ॥ ४ ॥ चेतनाधिष्ठित (चैतन्ययुक्त) जिस में यह त्रिलोकी दीखती है; प्रकृति, सूत्र, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पाँच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वों से ग्यारह इन्द्रियें और पञ्चमहाभूत इन सोलह विकारों का समूहरूप विराट् शरीर बना है ॥ ५ ॥ हेशौनक ! यह (ब्रह्माण्ड) तिस विराट् पुरुष का रूप है, पृथ्वी उस के चरण स्वर्ग मस्तक, आकाश नाभि, सूर्य नेत्र, वायु नासिका, और दिशा प्रभु के कान हैं ॥६॥ प्रजापति उन ईश्वर का शिश्न, मृत्यु गुदा, लोकपाल बाहु, चन्द्रमा मन, यम भौं ॥ ७ ॥ लज्जा ऊपर का ओठ, लोभ नीचे का ओठ, चाँदनी दाँत, भ्रम हँसना, वृक्ष रोमाञ्च और मेघ व्यापक पुरुष के केश है ॥ ८ ॥ हेशौनक ! जितना यह व्यष्टि (साधारण) पुरुष लौकिक अङ्गों से अपनी सात बिलस्त के प्रमाण का है उतना ही वह समष्टि (विराट पुरुष)भी भूर्लोकादि अङ्गों से सात बिलस्त का है ॥ ९ ॥ उन जन्मरहित व्यापक भगवान् ने, कौस्तुभमणि के बहाने से शुद्ध जीवचैतन्य धारण करा है और अपने वक्षःस्थल पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीवत्समुरसा बिभ्रत् ॥ १० ॥ स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं परमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्मभिहोच्यते ॥ ॥ १३ ॥ ओजः सहो बलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ॥ अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिं ॥ १५ ॥ इंद्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मतां ॥ १६ ॥ मंडलं देव यजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥ आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णा-

श्रीवत्सचिन्ह के स्थान में उस शुद्ध चैतन्यरूप कौस्तुभ की व्यापक प्रभा धारण करी है ॥ १० ॥ उन्हों ने अनेक गुणयुक्त अपनी माया वनमाला नाम से धारण करी है, और वेदमय पीतवस्त्र तथा तीनमात्रा का स्वर (ॐकार) ही यज्ञोपवीत धारण करा है ॥ ११ ॥ उन देव ने, सांख्य और योगही दो मकराकार कुण्डल और ब्रह्मलोक ही सब लोकों को अभय देनेवाला मुकुट धारण करा है ॥ १२ ॥ वह जिस के ऊपर आधार बनाकर बैठे हैं और जिस को प्रधानरूप अनन्त-(शेष) नामक आसन कहते हैं उस धर्म-ज्ञान-वैराग्य आदि शक्तियों से युक्त कमल को इसलोक में सत्त्वगुण कहते हैं ॥ १३ ॥ उन्हों ने ओज (मन की शक्ति), सह (इन्द्रियों की शक्ति), और बल (देह की शक्ति) इन से युक्त मुख्य प्राणतत्त्व ही गदा, जलों का तत्व शंख, तेज का तत्त्व सुदर्शन चक्र, आकाश का तत्वही श्यामवर्ण खड्ग, अन्धकाररूप ढाल, कालरूप शार्ङ्ग धनुष, और कर्ममय बाण रखने का तर्कस यह धारण करे है ॥ १४ ॥ १५ ॥ इन भगवान् के-इन्द्रियें बाण हैं ऐसा कहते हैं, क्रियाशक्ति युक्त मन उनका रथ और पञ्चतन्मात्रा उस रथ का बाहर दीखने वाला रूप है, और वह भगवान् मुद्रा के द्वारा वरद अभय आदिरूप धारते हैं इसकारण तिस २ मुद्रा से तैसी २ भावना करके पूजन करै॥ १६ ॥ देवपूजा का जो स्थान वह सूर्य मण्डल (वा अग्नि कुण्ड), गुरुकी दी हुई मन्त्र दीक्षाही आत्मा की पूजाकरनेकी योग्यता और भगवान् की पूजा करना ही अपना पापक्षय है अर्थात् उन की पूजा अपने पापों का नाश होने के निमित्त ही है ऐसी भावनाकरै॥ १७॥ उन भगवान् ने, 'भग' शब्द के अर्थ जो ऐश्वर्य आदि छः गुण वही लीला के निमित्त कमल धारण करा है, तैसे ही उन भगवान् ने, धर्मरूप चँवर और कीर्त्तिरूप पङ्खा धारण करा है ॥ १८ ॥ निर्भय वैकुण्ठ (कैवल्य) नामक तापहारी स्थानही उन भगवान् का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूयो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ॥ विष्वक्सेनस्तत्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ नन्दादयोष्टौ द्वास्थाश्च ते ऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥ वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥ २१ ॥ स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः॥२३॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत्। सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः

घर (वा छत्र) है, ऋक्–यजु–सामरूप तीन वेदही उन का सुपर्ण (गरुड़) नामक वाहन है, वह गरुड़ उन यज्ञरूप पुरुष को उठाकर लेजाता है ॥ १९ ॥ 'आत्मस्वरूप से चिद्रूप का अभेद होने के कारण' भगवती (चिद्रूप) लक्ष्मी ही उन आत्मस्वरूप श्रीहरि की अविचल शक्ति है, पञ्चरात्र आदि आगम रूप प्रसिद्ध विष्वक्सेन उन के पार्षदों का अधिपति (मुख्य पार्षद) है और अणिमादि सिद्धिरूप आठगुण श्रीहरि के द्वारपाल हैं ॥ २० ॥ हे शौनक ! वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध इन मूर्त्तियों से स्वयं भगवान् नारायण ही हुए हैं इसकारण चतुर्व्यूह मूर्त्ति से ही उन की उपासना करते हैं ॥ २१ ॥ वह भगवान् विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इनचार वृत्तियों (अवस्थाओं)से जानेजातेहैं,बाहरी विषय,मन'इन दोनो के संस्कारसे युक्त'अज्ञान और इन तीनों का साक्षी ज्ञान यह वृत्तियों की उपाधि हैं अर्थात् जिस समय,नेत्र नासिका आदि इन्द्रियों से बाहरी विषय समझनेमें आते हैं वह जाग्रत् अवस्थाहै,उस ही में विश्वहै, जिस समय केवल मन को ही कल्पित विषय भासते हैं, वह स्वप्नावस्था है, उस में ही तैजस; जब बाहरी विषय और मन इन दोनो के संस्कार से युक्त अज्ञान होता है वही सुषुप्ति अवस्था है,तिस में प्राज्ञ और इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर जो इन से भिन्न है उस को तुरीय समझो ॥२२॥ वह भगवान् अङ्ग,उपाङ्ग,आयुध और भूषणों से युक्त तथा वासुदेवादि चार मूर्तिवाला होकर भी विश्व तैजस आदि चार स्वरूपों को धारण करता है और ऐसा होने पर भी उस को जीवपना नहीं है किन्तु वह भगवान् श्रीहरि उन सबोंके नियन्ता ही हैं ॥ २३ ॥ हेब्राह्मणश्रेष्ठ शौनकजी ! वह वेदोंके प्रवर्त्तक, स्वयं प्रकाश और अपने प्रभाव से परिपूर्ण भगवान्, अपनी माया से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं उनका सङ्कोचित ज्ञान न होने पर भी शास्त्र में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन नामों से, मानो भिन्न २ हैं ऐसा वर्णन करा है परन्तु वास्तव में वह भिन्न नहीं हैं इसकारण उन की भक्ति करनेवाले पुरुषों को वह (अन्तःकरण में) आत्मस्वरूप से प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोपवनितात्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥ य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ॥ तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच ॥ शुको यदाह भगवान्विष्णुरातय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥२८॥ सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनां ॥ निर्मितो लोकतन्त्रोयं लोकेषु परिवर्तते॥२९॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥३०॥ कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥ मध्वादिषु

होते हैं ॥ २४ ॥ हेअर्जुन के मित्र ! हेयादवश्रेष्ठ ! हे पृथ्वीद्रोही राजाओं के वंश को भस्म करनेवाले ! हे अक्षीणपराक्रम ! हे श्रवण करनेपर मङ्गलकारक ! जिन की पवित्र कीर्ति गोपाङ्गनाओं के समूह और नारदादि भक्तों ने गाई है ऐसे हे गोविन्द ! हेश्रीकृष्ण ! तुम हम दासों की रक्षा करो ॥ २५ ॥ हेशौनक ! जो पुरुष, प्रातःकाल के समय उठकर स्नानादि कर शुद्ध होकर और भगवान् की ओर को ध्यान लगाकर इस (वर्णन करेहुए) महापुरुष के लक्षणों का जप करेगा उस को हृदय में ब्रह्म का दर्शन होगा ॥ २६ ॥ शौनकजी कहते हैं कि—हे सूतजी ! श्रीशुकदेवजी ने, पञ्चमस्कन्ध में, राजा परीक्षित् के सुनते समय उन से सूर्य के 'ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा नाग, यक्ष, राक्षस और देवताओं का' सात २ का गण प्रतिमास में बदलता है ऐसा जो कहा था ॥२७॥ उन के तिन २ अधिपतियों (सूर्यों के नामों) से युक्त उन के नाम और कर्म हम से कहो, क्योंकि—हम उन सूर्यात्मा श्रीहरि के व्यूह को सुननेकी इच्छा करते हैं ॥२८॥ हे शौनक ! सब देहधारियों के प्राणमात्र के आत्मा विष्णुभगवान् की अनादिमाया करके रचाहुआ और लोकों के व्यवहार को प्रवृत्त करनेवाला यह सूर्य, सब लोकों में फिरता है ॥२९॥ जो सब लोकों का आत्मा और सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले श्रीहरि वही एक सूर्य हैं, वह सूर्य सकल वेदविहित कर्मों का मूल हैं और कितने ही ऋषि कहते हैं कि-उन वेदविहित कर्म्मों की उपाधि से ही अनेक प्रकार के हैं ॥३०॥ हे शौनक ! वह भगवान् श्रीहरि मायाके द्वारा प्रातःकाल आदि काल, ऊँचा नीचा इकसार आदि देश, अनुष्ठान, ब्राह्मण आदि कर्त्ता (यजमान) स्रुक् आदि साधन, यज्ञ आदि क्रिया, वेदमन्त्र, व्रीहि आदि द्रव्य और स्वर्ग आदि फल इन भेदों से नौ प्रकार के हैं ऐसा वर्णन करा है॥३१॥वह कालरूप धारण करनेवाले भग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ॥ लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥ धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३ ॥ अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली ॥ नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ॥ रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठो वरुणो रंभा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयत्यमी ॥ ३६ ॥ इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥ अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ३८ ॥ पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥ क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ॥ विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥ अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ॥ विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयन्त्यमी ॥ ४१ ॥ भगस्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण

वान् सूर्य, लोक व्यवहार चलाने के निमित्त भिन्न २ बारह गणों को (प्रत्येक महीने में के एक २ सप्तक गण को) साथ लेकर चैत्रादि बारह महीनों में घूमते हैं ॥ ३२ ॥ हे शौनक ! धातानामक सूर्य, पुलस्त्यनामक ऋषि, तुम्बुरु गन्धर्व, कृतस्थलीनामक अप्सरा, वासुकि नाग, रथकृत् यक्ष और हेति राक्षस यह अपने २ कर्म करके चैत्रमासको बिताते हैं ॥ ३३ ॥ अर्यमा सूर्य, पुलह ऋषि, नारद गन्धर्व, पुंजिकस्थली अप्सरा, कच्छनीर नाग, अथौजा यक्ष और प्रहेति राक्षस यह वैशाखमास को बिताते हैं ॥ ३४ ॥ मित्रनामक सूर्य, अत्रिऋषि, हाहा गन्धर्व, मेनका अप्सरा, तक्षक नाग, रथस्वन यक्ष और पौरुषेय राक्षस यह ज्येष्ठमास को व्यतीत करते हैं ॥ ३५ ॥ वरुण सूर्य, वसिष्ठ ऋषि, हूहू गन्धर्व, रम्भा अप्सरा, शुक्र नाग, सहजन्य यक्ष और चित्रस्वन राक्षस यह आषाढ मास को बिताते हैं ॥ ३६ ॥ इन्द्र सूर्य, अङ्गिरा ऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, प्रम्लोचा अप्सरा, एलापत्र नाग, श्रोता यक्ष और वर्य राक्षस यह श्रावणमास को बिताते हैं ॥ ३७ ॥ विवस्वान् सूर्य, भृगु ऋषि, उग्रसेन गन्धर्व, अनुम्लोचा अप्सरा, शङ्खपाल नाग, आसारण यक्ष और व्याघ्र राक्षस यह भाद्रमास को बिताते हैं ॥ ३८ ॥ पूषा सूर्य, गौतम ऋषि, सुषेण गन्धर्व, घृताची अप्सरा, धनञ्जय नाग, सुरुचि यक्ष और वात राक्षस यह माघमास को बिताते हैं ॥ ३९ ॥ पर्जन्य सूर्य, भरद्वाज ऋषि, विश्व गन्धर्व, सेनजित् अप्सरा, ऐरावतनाग, ऋतुयक्ष, और वर्चा राक्षस यह फाल्गुन मास को बिताते हैं ॥ ४० ॥ अंशु सूर्य, कश्यप ऋषि, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, महाशंख नाग, तार्क्ष्य यक्ष और विद्युच्छत्रु राक्षस यह मार्गशीर्षमास को बिताते हैं ॥ ४१ ॥ भग सूर्य, आयुर् ऋषि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयुश्च पंचगः ॥ कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ॥ ४२ ॥ त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा ॥ ब्रह्मापेतोऽर्थशतजिद्धृतराष्ट्रइषंभराः ॥४३॥ विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥ विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४ ॥ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ॥ स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरन्त्यहो दिने दिने ॥४५॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ॥ चरन्समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिं ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् ॥ गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥४७॥ उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ॥ नोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥ बालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ पुरतोऽभिमुखं यांति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इ० भा० म० द्वा० आदित्यव्यूहविवरणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥

अरिष्टनेमि गन्धर्व, पूर्वचित्ति अप्सरा, कर्कोटक नाग, ऊर्ण यक्ष और स्फूर्ज राक्षस यह पौष मास को बिताते हैं ॥४२॥ त्वष्टा सूर्य, जमदग्नि ऋषि, धृतराष्ट्र गन्धर्व, तिलोत्तमा अप्सरा कम्बल नाग, शतजित् यक्ष और ब्रह्मापेत राक्षस यह आश्विनमास के पालक हैं ॥ ४३ ॥ विष्णु सूर्य, विश्वामित्र ऋषि, सूर्यवर्चा गन्धर्व, रम्भा अप्सरा, अश्वतर नाग, सत्यजित् यक्ष और मखापेत राक्षस यह कार्तिकमास को बिताते हैं ॥ ४४ ॥ हे शौनक! यह विष्णुमूर्त्ति भगवान् सूर्य की विभूतियें, प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्याकाल में स्मरण करनेवाले पुरुष के पातकों को हरती हैं ॥ ४५ ॥ हे शौनक! सूर्य अपने गन्धर्व आदि छहों के साथ बारहों मास में चारों ओर विचरतेहुए इस प्राणी को इस लोक और परलोक में उत्तमबुद्धि देते हैं ॥ ४६ ॥ ऋषि, सूर्य के प्रकाशक, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मंत्रों से इन सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व इन के गुणों का गान करते हैं, अप्सरा इन के आगे नृत्य करती हैं॥४७॥ नाग इन के रथ को बाँधते हैं, यक्ष रथ को जोतकर ठीक करते हैं और बलवान् राक्षस इन के रथ को पीछे से ढकेलते हैं ॥ ४८ ॥ और पवित्र साठ सहस्र बालखिल्यनामक ब्रह्मर्षि सूर्य की ओर को मुख करके उन के आगे स्वयं पीछे को चलतेहुए उन विभु की स्तुतिरूप मंत्रों से स्तुति करते हैं, यह ऋषि ही प्रतिमास में न बदलकर वहके वहीं रहते हैं ॥ ४९ ॥ हे शौनक! इसप्रकार आद्यन्तरहित और अजन्मा सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि, हरएक कल्प में अपने ही स्वरूप का विभाग करके लोकों की रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में एकादश अध्याय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥ अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥ नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥ पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहितांप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः

समाप्त ॥ * ॥ सूतजी कहते हैं कि—हरिभक्ति के लक्षणरूप परमधर्म को नमस्कार हो और उन जगत्कर्त्ता श्रीकृष्णजी को (अथवा व्यासगुरु को) नमस्कार हो अब मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करके 'इस पुराण में कहेहुए' अनादिधर्मरूप सकल विषय कहता हूँ ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणों! तुम ने जिस विषय का मुझ से प्रश्न करा था वह मनुष्यों के पुरुषत्त्व को 'श्रवण आदि करके सेवन करने के' योग्य यह श्रीविष्णुभगवान् का उत्तम चरित्ररूप उत्तर मैंने तुम से कहा ॥ २॥ इस श्रीमद्भागवत में सबों के पापों को दूर करनेवाले और सब सङ्कटों को दूर करके भक्तों की रक्षा करनेवाले, सब इन्द्रियों के प्रवर्त्तक भगवान् नारायण का ही प्रत्यक्ष वर्णन करा है ॥ ३ ॥ तैसे ही इस में, जिन से जगत् की उत्पत्ति होती है और जिन में फिर लय होजाता है उन निर्गुण परब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होनेपर्यन्त ज्ञान और उस ज्ञान को प्रकाशित करनेवाले साधन कहे हैं ॥ ४ ॥ साध्यसाधनरूप भक्तियोग और उस से होनेवाला वैराग्य यह मुख्यरूप से कहे हैं; हे ब्राह्मणों! (प्रथम स्कन्ध में—) राजा परीक्षित् के जन्मादि का उपाख्यान और उस के प्रस्ताव के निमित्त नारदजी का उपाख्यान कहा है ॥ ५ ॥ फिर ब्राह्मण के शाप के कारण राजर्षि परीक्षित् का प्रायोपवेश (अन्न-जल त्यागकर मरण होनेपर्यन्त ईश्वरस्मरण करतेहुए बैठने का नियम) वर्णन करा; तदनन्तर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ जो शुकदेवजी उन का और राजा परीक्षित् का सम्वाद कहा है ॥६॥ (दूसरे स्कन्ध में—) योगधारण से ऊर्ध्वलोक की गति, नारद और ब्रह्माजी का सम्वाद, अवतारों का वर्णन और महत्तत्त्वादि के क्रम २ से प्रधान के कार्यभूत विराट्रूप की उत्पत्ति कही है ॥ ७ ॥ (तृतीय स्कन्ध में) विदुर और उद्धवजी का सम्वाद, फिर विदुर और मैत्रेय का सम्वाद, पुराणसंहिताओं के विषय में प्रश्न प्रलय में महापुरुष की स्थिति(स्वस्थ रहना)—॥८॥ प्रकृति से होनेवाला गुणक्षोभ, महत्तत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्विराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥ भुव उद्धरणेऽम्भोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥ ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्यार्थं यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा । संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥ देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥१४॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रियव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनु चरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः ॥ यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥ दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ म-

अहङ्कार और पञ्चमहाभूत इन सात विकृतियों की और विकारों की उत्पत्ति; तिन से ब्रह्माण्ड कि—जिस में विराट्पुरुष व्यापरहा है तिस की उत्पत्ति कही है ॥ ९॥ तदनन्तर स्थूल सूक्ष्म काल का स्वरूप, कमल की उत्पत्ति, पृथ्वी को समुद्र में से ऊपर को निकालते समय हिरण्याक्ष का वध जिसप्रकार हुआ वह वृत्तान्त ॥ १० ॥ देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियों की उत्पत्ति,और रुद्रसृष्टि वर्णन करी तदनन्तर, जिस स्त्रीरूप आधेभाग से स्त्रियों की आदि प्रकृति उत्तम शतरूपा और पुरुषरूप आधे भाग से स्वायम्भुव मनु हुए; उन अर्धनारीनर (ब्रह्माजी) की उत्पत्ति, कर्दम प्रजापति की उत्पत्ति तिन से महात्मा भगवान् कपिल महामुनि का अवतार और उन बुद्धिमान् कपिल महामुनि के साथ देवहूती का सम्वाद (चौथे स्कन्ध में--) मरीचि आदि नौ ब्राह्मणों की उत्पत्ति, धर्म की पत्नियों का वंशविस्तार, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस, ध्रुवजी का चरित्र, उन के पीछे राजापृथु का चरित्र, प्राचीनबर्हि राजा का चरित्र और उन का नारदजी से सम्बाद, यह कहे हैं. फिर हे ब्राह्मणों ! (पञ्चम स्कन्ध में—) प्रियव्रत राजा का चरित्र, तदनन्तर नाभि राजा का, तिस के पीछे ऋषभदेव का और तदनन्तर भरतजी का चरित्र कहा है ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ फिर द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियों का वर्णन ज्योतिश्चक्र की स्थिति, पाताळों और नरकों की स्थिति वर्णन करी है ॥ १६ ॥ (षष्ठ स्कन्ध में—) प्रचेतस् राजाओं से दक्ष की उत्पत्ति, उन की कन्याओं की, उन से देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, वृक्ष और पक्षी आदि योनियों की उत्पत्ति ॥ १७ ॥ और वृत्रासुर के जन्म मरण का वर्णन करा है.हे ब्राह्मणों ! (सप्तम स्कन्ध में) दिति के हिरण्याक्ष और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वंतरावतारांश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसां ॥ २० ॥ देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥ २२ ॥ सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ॥ खट्वांगस्य च मांधातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥ रामस्य कोसलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरंगपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेंद्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नाहुषस्य च ॥ २५ ॥ दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च

हिरण्यकशिपु दोनों पुत्रों का मरण, दैत्यों के राजा महात्मा प्रह्लादजी का चरित्र और नृसिंहावतार इतने विषय वर्णन करे हैं-(अष्टम स्कन्ध में-) मन्वन्तरों का वर्णन, गजेन्द्र का मोक्ष, देवताओं को अमृत मिलने के निमित्त जगत्पति भगवान् का कराहुआ क्षीर समुद्र का मन्थन, कूर्मावतार, देवदैत्यों का बड़ाभारी युद्ध, विष्णुभगवान् के मन्वन्तरों में के अवतार, वामनावतार, मत्स्यावतार और हयग्रीवादि अवतारों का वर्णन करा है. (नवम स्कन्ध में-) राजाओं के वंशों का वर्णन, इक्ष्वाकुराजा का जन्म, उस का वंश, महात्मा सुद्युम्न का चरित्र-॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ इस में ही इला का उपाख्यान कहा है, तदनन्तर तारा का उपाख्यान, सूर्य वंश का वर्णन, शशाद और नृग आदि राजाओं का वृत्तान्त,-॥ २२ ॥ सुकन्या का वृत्तान्त, राजा शर्याति का चरित्र, बुद्धिमान् राजा ककुत्स्थ का, राजा खट्वाङ्ग का, मान्धाता का, सौभरि ऋषि का और राजा सगर का चरित्र ॥ २३ ॥ कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी का पापनाशक चरित्र, राजा निमिका देह त्याग, जनक के वंश में के राजाओं की उत्पत्ति,-॥ २४ ॥ भृगुकुलश्रेष्ठ परशुरामजी का कराहुआ पृथ्वी को क्षत्रियहीन करनारूप चरित्र, सोमवंश के प्रथम पुरुष राजा ऐल का चरित्र, राजा ययाति का चरित्र, नहुष का चरित्र,-॥२५॥ दुष्यन्त के पुत्र (भरत) का, राजा शन्तनु का और उन के पुत्र (भीष्मजी) का चरित्र कहा है, फिर ययाति के बड़े पुत्र यदु का वंश कहा है ॥२६॥ कि-जिस यदु वंशमें जगन्नियन्ता श्रीकृष्णभगवान् अवतीर्ण

(१) मूल में कहीं २ कोई विषय बिलकुल छूट गया है और कहीं किसी विषय का आगे पीछे होगया है सो, वक्ता के भक्तिरस में व्याकुल होने से हुआ ऐसा समझना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोकुले ॥ २७ ॥ तस्य कर्माण्यपारीणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः। धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥२९॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥ व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनं ॥ ॥ ३१ ॥ गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडां च रात्रिषु ॥ ३२ ॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ । व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥३५॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥३६॥ आदानं पारिजातस्य-

---

हुए, वह वसुदेव के घर जन्म धारकर गोकुल में (नन्दजी के घर) बढे॥२७॥ (दशमस्कन्धमें) उन दैत्य द्वेषी श्रीकृष्णजी के अपार कर्म (चरित्र) कहे हैं, तिन में से मुख्य मुख्य यह आगे कहता हूँ—पूतना का प्राणों सहित दूध पीना, बालकपन में ही गाड़ा उलटदेना ॥ २८॥ तृणावर्त दैत्य का वध तथा बकासुर और वत्सासुर का वध, मित्रसहित धेनुकासुर का वध, प्रलम्बासुर का वध,— ॥ २९ ॥ चारों ओर से फैलनेवाले दावाग्नि से गोपो की रक्षा करना, कालिय सर्प का दमन, अजगर से नन्द जी का छूटना,— ॥३०॥ जिस में भगवान् श्रीकृष्णजी यमनियम आदि व्रतों से प्रसन्न हुए वह गोप कन्याओं का कात्यायनी व्रत करना, यज्ञ पत्नियों को प्रसाद (अनुग्रह) और (उन के पति) ब्राह्मणों को पश्चात्ताप प्राप्त होना, ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धन उठाकर धारना, फिर इन्द्र और कामधेनु की करीहुई श्रीकृष्ण जी की पूजा और अभिषेक, शरदऋतु की रात्रि में गोपियों के साथ रास क्रीड़ा ॥ ३२ ॥ दुष्टबुद्धि शंखचूड़ दैत्य का वध, अरिष्टासुर और केशी का वध, अक्रूरजी का गोकुल में आना, पीछे बलराम कृष्ण का मथुरा को जाना,— ॥ ३३ ॥ व्रज की स्त्रियों (गोपियों) का विलाप, फिर श्रीकृष्ण बलराम का मथुरा को देखना, कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक, चाणूर और कंसादिकों का वध, ॥ ३४॥ फिर सान्दीपनि नामक गुरु के मरेहुए पुत्रों को लाकर देना, हेब्राह्मणों ! फिर उद्धवजी और बलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी ने मथुरा में रहकर जो २ प्रिय करा वह, जरासन्धकी लाईहुई सेनाका अनेकों वार वध, कालयवन को मारना, द्वारकापुरी का बनाकर बसाना, ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुधर्मायाः सुराँलयात् ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विपतो हरेः ॥३७॥ हरस्य जृंभणं युद्धे बाणस्य भुजकृंतनं ॥ प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥३८॥ चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शंबरो द्विविदः पीठो मुरः पंचजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनं ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥४०॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥ उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥४२॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥ चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ ४४ ॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः

युद्ध में शत्रुओं को जीतकर श्रीकृष्णजी का रुक्मिणी को हरना, स्वर्ग में से पारिजात वृक्ष और सुधर्मा सभा को लाना, ॥ ३७ ॥ 'ऊषाहरण के' युद्ध में महादेवजी को जम्भाई उत्पन्नकरना, बाणासुरकी भुजाकाटडालना, प्राग्ज्योतिष नगर के स्वामी (भौमासुर) को मारकर (सोलहसहस्र एक सौ) राजकन्याओं का हरण करना,– ॥ ३८ ॥ शिशुपाल, पौण्ड्रक (मिथ्यावासुदेव), शाल्व, दुर्मति और दन्तवक्र का वध, औरभी जो शम्बरासुर, द्विविद (वानर), पीठ, मुर, पञ्चजन (शंखासुर) आदि दैत्य थे उन का प्रभाव और वध, काशी को जलाना और पाण्डवों को निमित्त करके उन के हाथ से भूमिका भार उतरवाना यह वर्णन करा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ (एकादश स्कन्ध में) ब्राह्मणों के शाप को निमित्त करके अपने (यादवों के) कुल का संहार करना, उद्धवजी और श्रीकृष्णजी का अद्भुतसम्वाद, कि–जिस सम्वाद में सम्पूर्ण आत्मज्ञान और वर्णाश्रम धर्मों का विशेषनिर्णय कहा है. फिर अपनी योगशक्ति से श्रीकृष्णजी का मनुष्यपने से अन्तर्धान होना यह कहा है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ (और द्वादश स्कन्ध में–) युगों के लक्षण उन के अनुसार वृत्ति, कलियुग के मनुष्यों की दुर्दशा, चार प्रकारका प्रलय, तैसेही प्राकृतिक, नैमित्तिक और नित्य यह तीन प्रकार की उत्पत्ति ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् राजर्षि परीक्षित् का देहत्याग, श्रीव्यासजी का कराहुआ वेदों की शाखाओं का विस्तार मार्कण्डेयमुनि की उत्तम कथा, 'भगवान् के पूजन में' महा पुरुष के अङ्ग आदि की कल्पना और जगदात्मा सूर्यनारायण का व्यूह यह विषय वर्णन करे हैं ॥ ४४ ॥ हेब्राह्मणों! इसप्रकार तुमने इस विषय में यह तथा और भी जो कुछ मुझ से पूछा था वह सब मैंने तुम्हें सुनाया, इसमें भगवान् ने लीला करने के निमित्त अवतार धारकर जो २ कर्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये नम इत्युच्चै मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसां ॥ प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥ ४७ ॥ मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायन्ति गृणंति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्क-

करे, उन का प्रसङ्ग निरूपण करते समय वह सब कहे ॥ ४५ ॥ कोईभी मनुष्य, गिरते ठोकर खाते, छींकते तथा और किसी दुःखसे पीड़ित होतेहुए परवश होनेपरभी यदि ऊँचे स्वर से 'हरये नमः' ऐसे कहे तो वह सकल पापों से छूटजाता है ॥ ४६ ॥ जैसे सूर्य पर्वत के गुफा में के अन्धकार का नाश करताहै अथवा प्रचण्डपवन मेघोंको फाड़कर लुप्त करदेता है तैसे ही 'अनन्त भगवान् का कीर्त्तन करने पर वह कीर्त्तन करना अथवा उसका प्रभाव सुननेपर वह 'कीर्त्तन करनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंके हृदयमें प्रवेश करके उनके सकलदुःखों को घोडालताहै॥ ४७॥जिन वाणियों से अधोक्षज भगवान्की कथा वर्णन नहीं करीजाती हैं, और जिन में दुष्ट पुरुषोंकी बातेंहैं वह वाणी असत्य और व्यर्थहैं, जिन में भगवान् के गुणों का प्राकट्य (वर्णन) है वही वचन सत्य,वही मङ्गलकारक और वही पुण्यकारकहैं ॥ ४८॥ जिस में पुण्यकीर्त्ति भगवान् का यश वर्णन कराजाता है वही वचन मनोहर, मधुर और क्षण २ में नवीन २ सा होता है, वही निरन्तर मन को आनन्द देनेवाला है, और वही मनुष्यों के शोकरूप समुद्र को सुखाने वाला है ॥ ४९ ॥ जिस में चित्रविचित्र पद हैं परन्तु जगत् को पवित्र करनेवाला श्रीहरि का यश वर्णन नहीं करा है वह वचन, काक की समान अपवित्र विषयी पुरुषों को ही प्रीतिपात्र होता है, ज्ञानी पुरुषों के सेवन करने योग्य नहीं होता है,क्योंकि—जहाँ अच्युतभगवान् का वर्णन होता है तहाँ ही निर्मल साधु पुरुष रहतेहैं ॥ ५० ॥ असम्बद्ध अर्थात् सम्बन्धरहित वा अपभ्रंश शब्दों से युक्त भी जिस ग्रन्थ के प्रत्येक श्लोक में अनन्तभगवान् के, उन के यश से शोभित वाक्य हैं वह वाक्यप्रयोग (ग्रन्थ) जनसमूह के पापों का नाश करनेवाला है, क्योंकि—साधुपुरुष 'दूसरों के उच्चारण करेहुए' उन ही भगवान् के नामों को सुनते हैं, श्रोताओं के मिलने पर उन को गाते हैं और श्रोता न मिलें तो आप ही गाते हैं ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणों ! उपाधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र्थमप्यच्युतभावेवर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनं ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे नेहार्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥ अविस्मृतिः कृष्णपदारविंदयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ॥ सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तं ॥ ५४ ॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतं ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताविवेश्य ॥ ५५ ॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥ एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यो मां क्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

को दूर करनेवाला और ब्रह्म को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान, यदि भगवद्भक्तिरहित होय तो कुछ भी शोभा नहीं देता है अर्थात् उस से साक्षात्कार नहीं होता है. फिर अतिउत्तम कर्म हो और वह यदि परमेश्वर को अर्पण नहीं करा हो तो वह कैसे शोभा पावेगा ? अर्थात् कभी शोभित नहीं होगा; क्योंकि-वह कर्म साध्य करतेसमय और उस का फल प्राप्त होनेके समय भी दुःख का कारण होता है अर्थात् खटपट करके भी फल नहीं मिलता है ।५२। और वर्ण, आश्रम, आचार, तप तथा शास्त्र में परिश्रम करने पर उस से कीर्त्ति और लक्ष्मी ही प्राप्त होती है और श्रीहरि का गुणानुवाद तथा उस का श्रवण करने पर लक्ष्मीपतिभगवान् के चरणारविन्द का विस्मरण नहीं होता है ॥५३॥ श्रीकृष्णजी के पदारविन्दों का अविस्मरण (स्मरण रहना) पापों का नाश करता है, शान्ति उत्पन्न करता है और अन्तःकरण की शुद्धि करके परमात्मा में भक्ति तथा विज्ञान वैराग्यसहित ज्ञान देता है ॥ ५४ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! तुम अखण्डभक्तिवाले होने के कारण निःसन्देह बडे पुण्यवान् हो, क्योंकि—तुम, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, सबों के उपास्य और जिन से दूसरा देवता नहीं है ऐसे श्रीनारायण को अन्तःकरण में दृढता के साथ धारण करके उन का निरन्तर भजन करते हो ॥ ५५ ॥ और पहिले (गङ्गातटपर) प्रायोपवेशन करके बैठे हुए राजा परीक्षित् की सभा में बडे २ ऋषियों के सुनतेहुए महर्षि शुकदेवजी के मुख से मैंने जो सुना था उस आत्मतत्त्व का तुम ने मुझे स्मरण दिलाया ॥ ५६ ॥ इसकारण हे ब्राह्मणों! जिन के अनेकों कर्म वर्णन करने योग्य हैं उन वासुदेव का यह सब पापनाशक माहात्म्य मैंने तुम से कहा ॥ ५७ ॥ जो श्रद्धावान् पुरुष, दूसरे किसी में ध्यान न रखकर नित्य नियम से एक पहर वा एकक्षण भी इसप्रकार (तुम्हारी समान) सुनता है वह अथवा जो दूसरे को सुनाता है वह पुरुष, स्नानादि करके केवल शरीर को ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ॥ पठेत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छंति कामान् गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोधीत्यानुविंदते ॥ मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः ॥ प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्यानुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णं ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥ नमहमजमनंतमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्ति ॥ द्युपतिभिरजशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६६ ॥ उपचितनवशक्तिभिः स्वे आत्मन्युपरचितस्थिरजं-

पवित्र नहीं करता है किन्तु साक्षात् अपने आत्मा को भी पवित्र करता है ॥ ५८ ॥ जो एकादशी के दिन वा द्वादशीके दिन इस को सुनताहै उस की आयु बढ़ती है, जो निराहार रहकर ध्यान के साथ पढ़ता है वह अत्यन्त पापरहित होता है ॥ ५९ ॥ जो पुष्कर में मथुरा में, वा द्वारका में निराहार रहकर इन्द्रियों को वश में करके इस संहिता का पाठ करता है वह संसारभय से छूटजाता है ॥६०॥ इस का कीर्त्तन करनेपर देवता मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और राजे 'पुराण के 'श्रोताओं को और वक्ताओं को इच्छित मनोरथ देते हैं ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण को, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पढ़ने से क्रमकरके मधुकुल्या (घृतकी नदी वा कुण्ड), घृतकुल्या और पयःकुल्या का जो फल प्राप्त होता है वह फल इस संहिता का पाठ करनेवाले पुरुष को मिलता है ॥ ६२ ॥ और हे द्विजो ! जो पुरुष, जितेन्द्रिय होता हुआ इस पुराण की संहिता को पढेगा वह, भगवान् ने जो कहा है तिस परमपद को प्राप्त होयगा ॥ ६३ ॥ इस पुराण संहिता को पढ़कर ब्राह्मण विद्या को, राजा समुद्रतटपर्यन्त पृथ्वी के राज्य को, वैश्य कुवेर की समान सम्पत्ति को पावेगा और शूद्र पातकों से शुद्ध होयगा ॥ ६४ ॥ अन्य शास्त्रों में कलियुग के अनेको दोषों को दूर करनेवाले सर्वेश्वर श्रीहरि का वारंवार गान नहीं करा है और इस भागवत शास्त्र में तो कथाओं के प्रसङ्ग से पद २ में अखिल मूर्त्ति भगवान् का वारंवार वर्णन करा है ॥ ६५ ॥ जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलयरूप रजोगुण आदि जिन की शक्तियें हैं; ब्रह्मा, इन्द्र और शिव आदि देवता जिन की स्तुति करना नहीं जानते हैं और जो जन्मरहित होने के कारण अन्तरहित हैं तिन आत्मस्वरूप अच्युतभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६६ ॥ जिन्होंने बढी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गर्मोलयाय ॥ भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ६७॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ६८॥ इतिश्रीभा०द्वा०द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ ७ ॥ सूत उवाच॥ यं ब्रह्मा वरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥ पृष्ठे भ्राम्यदमंदमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसा यातायातमतंद्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥२॥ पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ॥ दानं

हुई प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा इन नौ शक्तियों से अपने ही स्वरूप में स्थावरजङ्गमरूप जगत् को रचा ऐसे ज्ञानस्वरूप सनातन श्रेष्ठदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६७ ॥ जिन का चित्त आत्मानन्द में निमग्न होरहा था इसकारण दूसरे स्थानपर ध्यान नहीं जाताथा ऐसे होकर भी जिन की, आत्मसुख से प्राप्तहुई स्थिरता भगवान् की सुन्दरलीलाओं से खिचगई थी इसकारण सब लोकों के ऊपर कृपा करके, सकल पातकों का नाश करनेवाले इस परमार्थ प्रकाशक श्रीमद्भागवतनामक पुराण को रचा उन व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे ऋषियों ! ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, शङ्कर और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रों से तथा अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदों सहित वेदों से जिन की स्तुति करते हैं, सामवेद के गानेवाले पुरुष जिन का गान करते हैं, योगीजन ध्यान से निश्चल करेहुए और उन में ही लगाएहुए मन से जिन का दर्शन करते हैं और देवदैत्यों के गण जिन का अन्त नहीं जानते हैं ऐसे देव को नमस्कार हो ॥ १ ॥ पीठपर घूमतेहुए अतिभारी मन्दराचल के पत्थरों की नोकों से जिन का अङ्ग खुजलायाजाने से सुख प्राप्त होकर जो निद्रा को प्राप्तहुए थे उन कूर्मरूपी भगवान् विष्णु के श्वासों के वायु तुम्हारी रक्षा करैं ; कि—जिन के संस्कारलेश के अनुवर्त्तन से (श्वास छोडने से और ऊपर को चढाने से) समुद्र के जलों का एकसमान ऊपर को आना और भीतर को जाना चलरहा था और अब भी बन्द नहीं होता है अर्थात् ज्वारभाटे के बहाने से पहिले की समान ही चलरहा है ॥ २ ॥ अब पुराणों की संख्या, उन की सम्भूति और समाहार, इस श्रीमद्भागवत का विषय,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥३॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ॥ श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशति ॥ मार्कंडेयं नव वान्हं तु दश पञ्च चतुःशतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥ चतुर्विंशति वाराहमेकाशीति सहस्रकं ॥ स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥७॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तच्चतुर्दश ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माडं द्वादशैव तु ॥ ८॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥ ९ ॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥

प्रयोजन, दान, दान का माहात्म्य तथा पाठ आदि का भी महात्म्य यह कहे हैं सो सुनो ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराण (श्लोक संख्या) दश सहस्र (१००००), पद्मपुराण पचपनसहस्र (५५०००), श्रीविष्णुपुराण तेईस सहस्र (२३०००) और शिवपुराण चौबीससहस्र (२४०००) है ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवत अठारहसहस्र (१८०००), नारदपुराण पचीससहस्र (२५०००), मार्कण्डेयपुराण नौ सहस्र (९०००) अग्निपुराण पन्द्रह सहस्र चार सौ (१५४००), ॥ ५ ॥ भविष्यपुराण चौदहसहस्र पाँच सौ (१४५०० ब्रह्मवैवर्त्त अठारह सहस्र (१८०००), लिङ्गपुराण ग्यारहसहस्र (११०००) ॥ ६ ॥ वराहपुराण चौबीससहस्र (२४०००), स्कन्धपुराण इक्यासी सहस्र एकसौ (८११००), वामनपुराण दश सहस्र (१००००) कहा है ॥ ७ ॥ कूर्म पुराण सत्रह सहस्र (१७०००), मत्स्यपुराण चौदह सहस्र (१४०००), गरुड़ पुराण उन्नीस सहस्र (१९०००) और ब्रह्माण्डपुराण (श्लोकसंख्या) बाईस सहस्र (२२०००) है ॥ ८ ॥ ऐसा यह पुराणों का समूह सब चारलाख श्लोकों का कहा है, जिस में श्रीमद्भागवत पुराण अठारह सहस्र है ऐसा कहते हैं ॥ ९ ॥ पहिले यह श्रीमद्भागवत, विष्णुभगवान् ने अपनी नाभि में के कमल पर बैठेहुए और संसार से भय भीत हुए ब्रह्माजी से बड़ी दया करके कहा है ॥ १० ॥ यह श्रीमद्भागवत आदि, मध्य और अन्त में वैराग्य उत्पन्न करनेवाली कथाओं से युक्त और श्रीहरि की लीला तथा कथाओं के समूहरूप अमृत से साधु और देवता आदिकों को आनन्दित

१ महाभारत इतिहास है और वाल्मीकीय रामायण ऋषि प्रणीत काव्य है, यह दोनों पुराण नहीं हैं इस कारण पुराणसंख्या में इन की गणना नहीं करी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ११ ॥ सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ । राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ॥ यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरम् ॥ सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा । तथा पुराणवातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः १८॥ कस्मै येन विभासितोयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारु-

करनेवाला है । ११ ॥ इस में सब वेदों का सार है और ईश्वर तथा जीवकी एकता होने का लक्षण जो अद्वितीय वस्तु (परब्रह्म) वह इस का विषय है, मोक्ष की प्राप्ति ही इस का प्रयोजन है ॥ १२ ॥ जो पुरुष भाद्रमास में पूर्णिमा के दिन श्रीमद्भागवत सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर दानदेता है वह उत्तम गतिको (मोक्ष को) प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जबतक यह अमृत का सागररूप श्रीमद्भागवत नहीं सुनीजाती है तबतक ही और पुराण साधुओं की सभा में शोभा पाते हैं॥१४॥ यह श्रीमद्भागवत सकल वेदान्त का सार मानीजाती है, इस श्रीमद्भागवत के रसामृत को पीकर तृप्तहुए पुरुष की दूसरे किसी में भी प्रीति नहीं होगी ॥ १५ ॥ जैसे नदियों में गङ्गा, जैसे देवताओं में विष्णु और जैसे विष्णुभक्तों में शिव श्रेष्ठहैं तैसे ही सब पुराणों में यह श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हे द्विजों ! जैसे सबही क्षेत्रों में काशी अति उत्तम है तैसे ही यह श्रीमद्भागवत सब पुराण समूहों में उत्तम है ॥ १७ ॥ जो अमल और वैष्णवों को अति प्रिय है, जिस में परमहंसों के प्राप्त करनेयोग्य और निर्मल उत्तम ज्ञान वर्णन करा है और तिस में ज्ञान वैराग्य—भक्ति सहित सब कर्मों में उपरति प्रकट करी है ऐसे इस श्रीमद्भागवत को मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनकर वा पढ़कर मनन करे तो वह 'जन्ममरण रूप संसार से' छूटजायगा ॥ १८ ॥ हे ऋषियों ! जिन परमात्मा ने, यह अनूपम श्रीमद्भागवतरूप ज्ञानदीपक कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी को प्रकाशित (उपदेश) करा, उन ब्रह्माजी के रूप से नारदजी को प्रकाशित (उपदेश) करा, उननारदजी के रूप से श्रीव्यासमुनि को प्रकाशित करा और तिस के अनन्तर श्रीशुकमुनि के रूप से बड़ी करुणा करके राजा परीक्षित को प्रका-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ण्यतस्तच्छुद्धं विमलं वि-शोकममृतं सत्यं परं धी-महि ॥ १९ ॥ नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे । यः इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे॥२०॥ योगींद्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥ संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥ भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ॥ तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥ नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परं ॥ २३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वादशस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

शितकरा उन शोकरहित निर्मल, शुद्ध और जन्ममरणादि रहित, सत्यस्वरूप श्रीनारायण नामक परमतत्त्व का हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ अब उन को ही देवतारूप से और गुरुरूप से प्रणाम करते हैं—जिन्हों ने यह (श्रीमद्भागवतरूप पुराण) मोक्ष की इच्छा करनेवाले ब्रह्माजी से व्याख्यान करके कहा, उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेव को नमस्कार हो ॥ २० ॥ और जिन्हों ने संसाररूप सर्प से डसेहुए राजा परीक्षित् को 'श्रीमद्भागवत की कथारूप अमृत पिलाकर तिस दुःख में से , छुटाया उन ब्रह्मरूप योगिराज श्रीशुकदेवजी को नमस्कार हो ॥ २१ ॥ हे देवेश ! क्योंकि-तुम हमारे नाथ हो तिस से हे प्रभो ! जन्म जन्म में हमें जैसे तुम्हारे चरणों में भक्ति उत्पन्न होय तैसा करो ॥२२॥ जिन के नाम का कीर्त्तन सकल पापों का नाश करनेवाला है और जिन को प्रणाम करना सकल दुःखों को शान्त करनेवाला है उनसर्वोत्तम श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में त्रयोदश अध्यायसमाप्त ।*। पाठकानां शुभमदमस्तु ।*।

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि—मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र—गौडवंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान—विद्यालये प्रधानाध्यापक—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र—महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप—नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितो द्वादशस्कन्धः समाप्तः ॥

समाप्तोयं द्वादशस्कन्धः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामगङ्गातटे रम्ये मुरादाबादपत्तने ।
भारद्वाजऋषेर्गोत्रे गौड़वंशे शुभोदये ॥ १ ॥
जातः सत्तमश्रीमद्दोलानाथात्मजोऽन्तिमः ।
तेनेयं संहिता स्फीता श्रीमद्भागवताभिधा ॥ २ ॥
ग्रहभूताङ्कभूवर्षे माधवस्य सिते दले ।
पञ्चम्यां सूर्यवारे च सोमे हि मिथुनस्थिते ॥ ३ ॥
समापिताऽन्वयाङ्कैश्च नृगिराऽभीप्सतां मुदे ।
श्रोतॄणां वाचकानाञ्च शुभदास्तु पुनः पुनः ॥ ४ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

शिवलाल गणेशीलाल

लक्ष्मीनारायण प्रेस

मुरादाबाद.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi